राष्ट्र भारती



नवम्बर १९५३

'राष्ट्रभारती' बिहार, राजस्थान, मध्यभारत, हैदराबाद और भोपाल राज्यके शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कालेजों और वाचनालयोंके लिअे स्वीकृत हो चुकी है।

[सूचना —'राष्ट्रभारती'में, सर्वश्री डा. बाबूराम सक्सेना, आचार्य काका कालेलकर, महामहोपाध्याय दत्तो वामन पोतदार, स्वर्गीय किशोरीलाल मशरूवाला और उत्तर प्रदेशके वर्तमान राज्यपाल श्री कन्हैयालाल मुंशीजी आदि विशेषज्ञोंकी अेक समिति द्वारा १९३६ में निर्णीत नागरी लिपिका प्रयोग होता है —अि, अी, अु, अू, अे, अै (इ, ई, उ, ऊ, ए और ऐ की जगह) और ख, ण और क्ष (ख, ण और क्ष अक्षरोंके स्थानपर) —सं०]

—विषय-सूची—

(शेष पृष्ठ ३ पर)

राष्ट्र भारती

[भारतीय साहित्य और संस्कृतिकी मासिक पत्रिका]

—: सम्पादक :—

मोहनलाल भट्ट : हृषीकेश शर्मा

* वर्ष ३ * वर्धा, नवम्बर १९५३ * अंक ११ *

"काकासाहेब"

: श्री गंगाधर शिंदूरकर :

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनके अध्यक्ष श्री नरहरि विष्णु गाडगील अपने परिचितोंमें "काकासाहेब"-अिस नामसे ही अधिक प्रसिद्ध हैं। मैं समझता हूँ कि श्री गाडगील को भी यह नाम बहुत पसंद है। अिसका कारण शायद यह है कि 'काकासाहेब' अिस अभिधानसे व्यक्त होनेवाली आत्मीयता काकासाहेबके सार्वजनिक जीवनमें भी व्याप्त है। अच्छे नेताओंमें गिनती होनेपर भी अव्यवहार्य आदर्शोंका अुच्च आडंबर अुनमें नहीं है, और मोटे रूपमें जनसाधारणको पतनाभिमुख करनेवाली मानसिक दुर्बलतासे भी वे बहुत दूर हैं। अिसीलिअे "काका" से परिचित लोगोंके मनमें अुनके प्रति आदर और आत्मीयता—दोनों ही भावनाअें हैं। जहांतक मैं समझ पाया हूँ "काका" के जीवनका आदर्श वह स्वप्नकुसुम नहीं है, जो कभी व्यवहारमें दिखायी ही न दे और न वही है जो बिना किसी परिश्रम तथा बिना आयास प्राप्त हो जाअे। जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें "काका" मध्यममार्गी हैं और वास्तविक अर्थोंमें वे मध्यमवर्गका प्रतिनिधित्व करते हैं।



सन् १९२०में राष्ट्रीय आंदोलनमें भाग लेकर सार्वजनिक जीवनमें प्रवेश करनेके बाद जिला काँग्रेस कमेटीके मंत्रीपदसे लेकर केंद्रीय सरकारके अेक प्रमुख मन्त्रीतक और अब लोकसभाके अेक साधारण-सदस्यके

रूपमें "काका" के सार्वजनिक जीवनने बड़े अुतार-चढ़ाव देखे हैं। अुनका विश्लेषण करनेपर मुझे अेक बात बहुत ही महत्त्वपूर्ण दिखायी दी है। जनसाधारणकी तरह वे प्रतिक्षण "शुभ" की आकांक्षा करते हैं और किसी महान व्यक्तिकी तरह "अशुभ" का मुकाबला करनेके लिअे प्रस्तुत रहते हैं। शायद यही "काका" के सार्वजनिक जीवनमें सफलताकी कुंजी है। अनेक अन्य नेताओंकी तरह जीवनके अुतार-चढ़ावसे अुनका मन कभी भी निराशासे अभिभूत नहीं हुआ।

विचारोंकी स्पष्टता और व्यवहारमें आडंबरहीनता "काका" की विशेषता है। वे राष्ट्रभाषा प्रचार-सम्मेलनके अध्यक्ष हो रहे हैं, यह समाचार सुनकर मैं नयी दिल्लीमें अुनके निवास-स्थानपर अुनसे मिलने गया था। अेक पत्रकारके नाते मैंने अुनसे पूछा—"आप हिंदीको राष्ट्रभाषाके अुपयुक्त क्यों समझते हैं?" "काका" का अुत्तर बहुत ही संक्षिप्त था—'संविधानने अुसे स्वीकार कर लिया है अिसलिअे अब यह विवाद व्यर्थ है।" विवादमें न अुलझकर कार्यपर ही दृष्टि रखनेकी "काका" की मनोवृत्तिका अुक्त संक्षिप्त अुत्तर अेक सुन्दर प्रतीक है।

पर पाठक भूलसे यह न समझ बैठें, कि संविधान द्वारा स्वीकृति प्राप्त होनेके पहले वे हिन्दीको राष्ट्रभाषाके अुपयुक्त नहीं समझते थे। महात्मा गांधी द्वारा संचालित कांग्रेस-आंदोलनका हिन्दी प्रचार भी अेक प्रमुख अंग था और अिस प्रकार "काका" भी हिन्दी प्रचारके कार्यमें काफी समयसे दिलचस्पी लेते रहे हैं। सन् १९२८-२९ के पूनेके युवक आंदोलनमें 'काका" का प्रमुख हाथ था और अुस समय अुन्होंने स्वयं हिन्दी पढ़ानेके लिअे कुछ वर्ग भी चलाये थे। आगे चलकर १९३४ में प. ग. र. वैशंपायनके सहयोगसे पूनेमें अेक संस्थाकी नींव रखी गयी, जो "हिन्दी प्रचार संघ" कहलायी। आज भी महाराष्ट्रमें हिन्दीका प्रचार करनेवाली यह अेक प्रमुख संस्था है। अिस संस्थाके प्रारंभिक वर्ग "काका" के निवास स्थानपर ही चलते थे। राष्ट्रभाषाके साथ "काका" का संबंध बादमें भी बराबर बना रहा। पूनेमें हुअे राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनके तीसरे अधिवेशनका अुद्घाटन भी काकासाहेबने ही किया था।

"काका" को हिन्दी सीखनेके लिअे बहुत प्रयास नहीं करना पड़ा। पूनेके अनन्य कोंकणस्थ महाराष्ट्र ब्राह्मण कुलमें जन्म होनेपर भी अुनकी जन्मभाषा अेक प्रकारसे हिन्दी ही कही जा सकती है। राजस्थान और मालवेकी सीमापर स्थित मल्हारगढ़ नामक स्थानमें १० जनवरी १८९६ के दिन आपका जन्म हुआ। यह स्थान मध्यभारतके नीमच जिलेमें है। अुस समय आपके पिता वहाँ रेल्वेमें थे। अिस प्रकार आपकी प्रारंभिक शिक्षाका श्रीगणेश ही हिन्दी-माध्यमके द्वारा हुआ है।

"काका" की बादकी शिक्षा पूनेके प्रसिद्ध फर्ग्युसन कालेजमें हुअी। पर वहाँ भी आपने हिंदीके साथ अपना संबंध बनाये रखा। १९१६-१७ में सरस्वतीमें प्रकाशित होनेवाले कुछ लेखोंका आस्वाद 'काका' अनुवादके द्वारा मराठी पाठकोंको चखाते रहे। १९२० में अेल्-अेल् बी की परीक्षा अुत्तीर्ण कर आपने जीवनमें अध्ययनका अध्याय समाप्त किया और पूनें जिला कांग्रेस कमेटीके मन्त्रीके रूपमें आप सार्वजनिक क्षेत्रमें अुतरे। सार्वजनिक जीवनके प्रारंभसे ही 'काका' को हिन्दीमें बोलनेके अवसर बराबर आते रहे।

राजनीतिक नेताका व्यस्त जीवन बिताते हुअे भी काकासाहेबका मराठी-साहित्यमें अपना अेक विशिष्ट स्थान है। विवरणात्मक लेख लिखनेकी अुनकी अपनी शैली है और वह मराठीमें काफी लोकप्रिय भी है। लगभग सभी दल और विचारोंके पत्र पत्रिकाअें 'काका' का लेख छापनेके लिअे अुत्सुक रहते हैं और 'काका' भी राजनीतिक पक्षपात नहीं करते। 'केसरी' तथा 'विविध-वृत्त' जैसे कांग्रेस विरोधी पत्रोंमें भी 'काका' के कुछ अच्छे लेख प्रकाशित हुअे हैं। दीवालीके अंकके निमित्त तो कुछ पत्रोंके लिअे लेख लिखना अुनके लिअे अनिवार्य है और वे स्वयं-स्वीकृत अिस बन्धनको संक्षिप्त-कालमें भी निभाते रहे। थोड़ा भी अवकाश प्राप्त होते ही अुसका अुपयोग लिखने-पढ़नेमें करना, अुनका स्वभाव है। "काका" ने राजनीति तथा समाजशास्त्रपर मराठीमें कुछ पुस्तकें भी लिखी हैं।

हिन्दीमें भी "काका" लिखते हैं। कुछ स्वतंत्र लेखोंके रूपमें और कुछ अपने ही लेखोंका स्वयं हिन्दीमें अनुवाद किया है। अिनमेंसे अधिकांश लेख दिल्लीके प्रसिद्ध हिंदी दैनिक पत्र हिंदुस्तानमें प्रकाशित हुअे। 'सत्ता-शास्त्र' नामक 'काका" की अेक पुस्तक भी हिंदीमें प्रकाशित हो चुकी है और "हजार वर्षके बाद" नामक दूसरी पुस्तक भी प्रकाशित होनेवाली है। (यह भी प्रकाशित हो गयी है। सं.)

यह प्रसिद्ध है कि 'काका' स्वर्गीय सरदार पटेलके अत्यन्त विश्वासभाजन थे और असीलिअे स्वातन्त्र्य-प्राप्तिके बाद केन्द्रीय मन्त्रिमंडलमें अुनका समावेश हुआ था। गत आम निर्वाचनके बाद, नये मन्त्रिमंडलमें जब अुनका समावेश नहीं हुआ कुछ लोगोंने कहा— 'काका' की लोकप्रियताका सूर्य अब अस्त हो रहा है। यह भी प्रसिद्ध है कि मन्त्री न बननेपर 'अ' भागके अेक राज्यका राज्यपाल बनना 'काका' ने अस्वीकार कर दिया था। कुछ लोगोंको असमें भी 'काका' की राजनीतिक भूल प्रतीत हुअी। पर मुझे लगता है कि अुक्त दोनों ही बातें निराधार हैं। पिछले पौने दो वर्षके संसदीय जीवनमें कांग्रेस दलके साधारण सदस्यकी हैसियतसे 'काका' ने जो कुछ काम किया, अुनमें अुनकी लोकप्रियता मन्त्रित्वकालकी अपेक्षाकृत कुछ बढ़ी ही है, घटी नहीं। अतअेव किसी प्रकार राज्यपालका पद अस्वीकार करनेमें अुनकी आर्थिक हानि भले ही हुअी हो और यह अुपेक्षणीय भी नहीं है पर सार्वजनिक जीवनका मूल्य कभी भी रुपये-आने पाअीमें नहीं आंका जाता। अिस प्रश्नका अेक दूसरा पहलू भी है। पुणेके जिन मतदाताओंने श्री गाडगीलको लोकसभामें भेजकर अुनपर विश्वास प्रकट किया था यदि गाडगीलजी केवल अपना लाभ और प्रतिष्ठाका ही विचारकर राज्यपालका पद स्वीकार कर लेते, तो वे मतदाता क्या सोचते? मतदाताओंके विश्वासको निभानेमें कुछ आर्थिक स्वार्थसे मुँह मोडना प्रत्येक निर्वाचित प्रतिनिधिके लिअे आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है।

केवल अितना ही नहीं केन्द्रीय सरकारके महत्वपूर्ण मन्त्री जैसे अूँचे पदपर रहनेके बाद लोकसभाके साधारण सदस्यका जीवन बितानेका अवसर आनेपर भी 'काका' के अुत्साहमें कोअी कमी नहीं आयी। फिरोजशाह रोडपर ही "काका" के दो जीवन— मन्त्रिकालीन बडी कोठीका और आजका छोटे और साधारण बंगलेका— देखकर स्मरण हो आता है भर्तृहरिके अेक वाक्यका— 'क्वचिद्भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यंक शयनम्'। पर अिस अवस्था-परिवर्तनसे 'काका' की जीवनकी गति और अुत्साहमें कोअी परिवर्तन नहीं हुआ। पिछले मन्त्रिमंडलके दो अन्य मन्त्रियोंपर नये मन्त्रिमंडलमें न लिये जानेका प्रभाव अितना अधिक रहा है कि दोनोंनेही संसदमें अपने मुँहपर ताला सा लगा रखा है, पर श्री गाडगीलकी हलचलमें पहले जैसा ही अुत्साह और प्रसन्नताका वातावरण है। हाँ, अुनकी वाणी मन्त्रित्वकालकी अपेक्षाकृत आज कुछ अधिक जनमुखी हो गयी है जो कि स्वाभाविक और अुचित भी है।

जैसा कि मैंने पहले लिखा है 'काका' के मनमें अपने परिचितोंके प्रति आत्मीयताकी अितनी भावना रहती है कि अुनके राजनीतिक विरोधी भी, जो मंचपर अुनको सभी प्रकारकी खरी खोटी सुनानेमें नहीं हिचकते, अुनसे हार्दिक स्नेह करते हैं। अिसका अेक कारण और भी है। 'काका' अपने राजनीतिक विरोधियोंको अवसर मिलनेपर मुँहतोड अुत्तर अवश्य देते हैं, पर विरोधीके प्रति अपने मनमें कटुता अुत्पन्न नहीं होने देते। वे अक्सर कहा करते हैं कि अुनके प्रति कही गयी जली-कटी बातोंका संस्कार अुनके मनपर दूसरे दिन भी नहीं रहता। 'काका' का नयी-दिल्ली स्थित निवासस्थान दिल्ली आनेवाले अुनके सभी परिचित मित्रोंके लिअे खुला हुआ है। 'काका' का कभी-कभी विरोध करनेवाले मराठी साहित्यिक राजनीतिज्ञ और पत्रकार भी 'काका' के घरको अपनाही समझते हैं। यह स्थिति जब वे मन्त्री थे तब तो थी ही, पर आज भी है। आजकी परिवर्तित अवस्थामें यह आतिथ्यका बोझ अवश्यही अुनपर कुछ अधिक होता होगा, पर अुन्हें कभी किसीने शिकायत करते नहीं सुना।

राजनीतिक क्षेत्रमें 'काका' भाषाके आधारपर राज्योंके निर्माणके समर्थक हैं और महाराष्ट्रीय होनेके कारण संयुक्त महाराष्ट्रके निर्माणमें अुनकी विशेष रुचि और प्रयत्न होना भी स्वाभाविक है, पर अपनी अिष्ट सिद्धिके लिअे वे आंदोलनवादी नहीं, बल्कि समझौतावादी हैं। पिछले वर्ष हैदराबादमें अुन्होंने अिस संबंधमें कहा— संविधानकी चौखटमें रहकरही हमें यह समस्या हल करानी होगी। मारपीट अथवा अुपद्रवोंसे समस्या हल नहीं हो सकती। अन्य प्रांतोंको अप्रसन्नकर किसी अेक प्रांतका कल्याण नहीं हो सकता। अैसा कभी न समझिये कि जो महाराष्ट्रीय नहीं है, वे आपके दुश्मन हैं। हमें लोगोंको यह समझाना होगा कि जनतंत्रके विकासकी ही दृष्टिसे भाषाके आधारपर राज्योंका पुनर्गठन आवश्यक है।

अंतमें 'काका' के जीवनको यदि अेक वाक्यमें अभिव्यक्त करना हो तो यह कहकर किया जा सकता है कि सिद्धांत और व्यवहारका सामंजस्यही 'काका' का जीवन है। अिस वर्ष अैसे सभापति नागपुर अधिवेशनके राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनको प्राप्त हुअे, यह अवश्य ही संतोष और सुखकी बात है।

डॉ० भवानीशंकर नियोगी

(संक्षिप्त परिचय)

आंध्र देशके स्मार्त ब्राह्मण कुलमें औ० सन् १८८६ में जन्म। मध्यप्रदेशमें, १८६१ में ब्रिटिश सरकारको जमीनका बन्दोबस्त (रेविन्यु सेटलमेंट) करनेके लिअ अंग्रेजी भाषा जाननेवाले कर्मचारियोंकी आवश्यकता पडी थी, तब िस प्रदेशमें अिंग्लिश भाषा जाननेवाला नहीं मिलता था। अंग्रेज अमलदारोंने अुस समय मछली-पट्टमकी अुनकी फॅक्टरीमें काम करनेवाले जिन कुछ अंग्रेज़ीदाँ कर्मचारियोंको यहाँ बुलाया, अुनमें श्री नियोगी जीके प्रपितामह भी आये थे। नाम अुनका 'बैरागी बाबू" था। अिस विचित्र नामका कारण यों बतलाते है, कि जब अेक साधु पुरुष अुनके घर आया और माताने बालकको अुसके चरणोंमें रखा तो साधुने "चिरजीव हो बच्चा" का आशीर्वाद दिया। अेक ही बच्चा, साधुका वचन और माता पिताकी—निष्ठा! बच्चेका नाम 'बैरागी बाबू" ही अुस परिवारमें चल पडा।



डॉ० भवानीशंकर नियोगी

श्री नियोगीजीके पिता-महका नाम भी भवानी-शंकर था वे रायपुरमें कमिश्नरके दफ्तरमें सुपरिन्टेंडेंट थे। १८८५ में अुनका देहान्त हुआ। जब १८८६ में डॉ सर नियोगीका जन्म हुआ और यही अुन कालमें पहला बालक था, तो पितामहका नाम ही अुनको नाम-धरण संस्कारमें दिया गया। िनके पिता नागपुरके सरकारी सचिवालयमें हेडक्लार्क थे। जब नियोगीजी ८ सालके थे तभी अिनके पिताकी मृत्यु हो गयी। अिनकी माता, जब ये दो ढाअी सालके रहे होंगे, तभी मर चुकी थीं। काकाजर बालकके पालन-पोषणका भार आ पडा। काका सीतारामजी नियोगी (नियोगी यह खानदानी नाम है) कट्टर सनातनी थे और थियासाफिस्ट भी थे। घरमें देवतार्चन और भजन-पूजन चलता। साधु-बावा बैरागियोंपर अटूट श्रद्धा।

अिधर समाज सुधार प्रेमी छोटे चाचा श्री दुर्गाशंकर नियोगीने विधवा विवाह किया, तो अुन्हें जाति-च्युत किया गया। भाअी-बन्दोंने बहिष्कार किया। डॉ नियोगीकी स्कूलमें पढाअी हुअी। संगतका असर। बीडी पीना, स्कूलकी अपनी कक्षासे पलायन कर जाना, ताश खेलना—अिस प्रकारके शरारती चक्करमें आप पड गये। चौदह सालकी अुम्र। अिसी समय विवाहके लिये भी परिवारमें आग्रह हो रहा था जब कि मिडिलस्कूलमें ही पढ़ रहे थे। चाचा दुर्गाशंकरके साथ रहनेके कारण बिगडोंमें बिगडे माने जाने लगे। चाचाने अिनकी आदतोंको सुधारा और पढवाया। अच्छी सोहबतमें आये। 'मन्मगति मुद मंगलमूला।' मराठीके अुत्तम बोधप्रद ग्रंथोंका पाठ। सार्वजनिक कार्योंमें रुचि जाग्रत हुअी। १९०६ में नागपुरके हिस्लाप कालेजसे बी. ओ किया। कुछ कालतक आप नागपुरके पटवर्धन

हाअीस्कूलमें अध्यापक रहे। १९१० में अेम अे, अेल-अेल बी हुअे। वकालतका धंधा आरंभ किया। साथ ही अुस समयके कांग्रेसी कार्यकर्ता स्व० डॉ मुंजे और बैरिस्टर अभ्यंकर आदिके साथ राष्ट्रीय कार्य करते। १९२० की प्रसिद्ध नागपुर कांग्रेसमें डॉ मुंजे मंत्री थे और आप सहायक-मंत्री। १९२१ में अपनी वकालत स्थगित कर दी १९२२ से फिर शुरू की। नागपुरके कअी सांस्कृतिक, सामाजिक, शैक्षणिक कार्योंमें भी तन मन-धनसे संलग्न। शुक्रवारी तालाबके चौराहेपर लोकमान्य तिलक महाराजकी भव्य पाषाणमूर्तिकी स्थापना नियोगीजीके भगीरथ प्रयत्नोंका फल है। अनेक वर्षोंसे आप नागपुरमें अनेक अुच्च शिक्षण-संस्थाओंके जन्मदाता, संचालक, पोषक, प्रेरक रहे हैं और अब भी हैं। आज आप गोरक्षण सभा, सरस्वती महाविद्यालय, लेडी अमृताबाअी महिला महाविद्यालय, स्कूल ऑफ आर्ट तथा प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति नागपुरके अध्यक्ष हैं। १९२३ से १९३६ तक आप नागपुर युनिवर्सिटीके वाअिस चान्सलर रहे और १९३६ से १९४६ तक नागपुर हाअी कोर्टके जस्टिस तथा चीफ जस्टिस रहकर सरकारी सेवासे निवृत्त हुअे। सी आअी अी और 'सर' (नाअीट हुड) की अुपाधियाँ भी मिली और विश्वविद्यालयसे अेल अेल डी की पदवी। जब देशमें कांग्रेस-सरकारका राज्य स्थापित हुआ तब कांग्रेसी सरकारका भी नियोगीजीने विश्वास सम्पादन किया। १९४८ से १९५३ तक आप म प्र सरकारके पब्लिक सर्विस कमीशन (लोक-सेवा-आयोग) के अध्यक्ष रहे।

सौभाग्यसे आपको पत्नी श्रीमती डाक्टर अिन्दिराबाअी नियोगी भी सच्ची सहचारिणी आपको मिली। वे बम्बअी विश्वविद्यालयकी अेम बी बी अेस हैं और कुछ समयतक आप पूनेकी सुविख्यात स्त्री-शिक्षण संस्था कर्वे महिला विद्यापीठमें हाअुस सर्जनका काम करती रहीं। आज भी अितनी वृद्धावस्थामें श्रीमती अिन्दिराबाअीका कार्यक्षेत्र नागपुरमें बहुत व्यापक है। आप महाराष्ट्रीय हैं।

श्री नियोगीजीका दृष्टिकोण प्रजातंत्री है। सारे भारतकी अखंडताके समर्थक और पॉर्टी पावर पॉलिटिक्ससे दूर रहते हैं। मत मतान्तरों तथा भाषावार प्रान्तोंकी रचनाओंकी धींगाधींगीका आप समर्थन नहीं करते। आपने संस्कृत-साहित्यका विशेषकर मीमांसा, प्राचीन न्याय, पातंजल योग दर्शन, वेदान्त, बौद्ध-दर्शन आदिका मर्मज्ञतापूर्वक गहरा अध्ययन किया है और अुच्च कोटिके संस्कृत विद्वानोंकी सत्संगतिका लाभ अुठाते रहते हैं। आपकी अडसठ (६८) बरसकी अुम्र है। रोज तीन-चार मील मैदानमें पैदल घूमते हैं। चुस्त, फुर्तीले और कार्यव्यस्त रहते हैं। श्री नियोगीजी मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन नागपुर अधिवेशनके स्वागताध्यक्ष हैं।



कन्नड़ साहित्यके अितिहासकी अेक झाँकी

: श्री के. वेंकटरामप्प, अेम. अे., कन्नड़-अध्यापक, मैसूर विश्वविद्यालय :

लगभग पचहत्तर साल पहले स्वयं कन्नड भाषा भाषियोंको अिस बातका पता नहीं था, कि कन्नडका साहित्य कितना प्राचीन है, अुसमें कौन-कौन कवि हुअे हैं और अुसकी क्या महत्ता है। अिस दिशामें सबसे पहले काम करनेवाले थे रेवरेण्ड अेफ किट्टल साहब, जो जर्मन थे और मंगलोरमें आकर बस गये थे। रेवरेण्ड किट्टल गंभीर विद्वान थे और थे भाषा तथा साहित्यके अनन्य पुजारी। जैसेही वे कन्नड भाषाके सौष्ठवसे अवगत हुअे, वैसेही वे कन्नड भाषा अेवं साहित्यके अध्ययनमें लग गये। अल्प कालहीमें वे कन्नड भाषा तथा साहित्यके असाधारण पंडित बन गये। साहित्यके रसास्वादनसे तृप्त न होकर किट्टल साहबने कन्नड़के प्राचीन ग्रंथोंकी खोज अेवं प्रकाशनका कार्य शुरू किया। अुनका सबसे महान् कार्य कन्नड-अंग्रेजी कोशका संपादन और प्रकाशन है। अब तक कन्नड भाषाके जितने कोश लिखे गये हैं, अुनमें किट्टलका कोश सबसे बडा और गवेषणापूर्ण है। किट्टल साहबने कोशके प्रकाशनके साथ-साथ "छंदोम्बुधि" नामक ग्रंथका संपादन करके कन्नड साहित्यके अितिहास-पर अेक गवेषणापूर्ण निबन्ध लिखा, जिससे कन्नड साहित्यके अितिहासपर काफी प्रकाश पडा। अिस दिशामें काम करनेवाले दूसरे महानुभाव थे मि बी अेल् रैस जो मैसूरके प्राच्य-अनुसंधान विभागके प्रधान थे। रैस साहबने कअी शिलालेखोंका पता लगाकर जो कुछ प्रकाशित कराया, अुसके द्वारा कन्नडके कअी अेक कवियों और राजाओंके बारेमें बहुत-सी बातोंकी जानकारी प्राप्त करनेमें मदद मिली। मिस्टर रैसने भट्टाकलंकके "शब्दानुशासन" के लिअे भूमिका लिखते हुअे कन्नड़ साहित्यके कअी पहलुओंपर प्रकाश डाला। साथ ही मैसूर गजेटियरमें अेक खोजपूर्ण लेख प्रकाशित किया, जिससे अनेक समस्याओंपर विचार करनेमें सुगमता हुअी। रेवरेण्ड किट्टल और रैस साहबने जो कार्य प्रारंभ किया था, अुसीको प्राच्य-विभागके सहायक अधिकारी श्री आर नरसिंहाचार्यने अपने हाथमें लिया और आगे बढ़ाया। अुन्होंने अपने अेक बन्धु श्री अेस जी नरसिंहाचार्यके सहयोगसे "कर्नाटक कवि चरिते" नामक बृहद् ग्रंथका प्रथम भाग सन् १९०७ में प्रकाशित किया। यह बडे ही दुर्भाग्यकी बात हुअी कि 'कर्नाटक कवि चरिते" का काम समाप्त होनेके पहले ही श्री अेस जी नरसिंहाचार्यका देहान्त हो गया, किन्तु आर नरसिंहाचार्यने अपनी ढलती अुम्रकी परवाह न करके, निरंतर परिश्रम कर 'कवि चरिते' का दूसरा तथा तीसरा भाग प्रकाशित किया। अिस प्रकार चार विद्वानोंके अुद्योगके फलस्वरूप कन्नड साहित्यके अितिहासकी रूपरेखा ही नहीं अपितु अेक बृहत् ग्रंथ भी प्रस्तुत हो गया; जिससे कन्नडकी प्राचीनता तथा महत्ताका परिचय कन्नड भाषा-भाषियोंको प्राप्त हुआ।

'कर्नाटक कवि-चरिते", कन्नड साहित्यके अितिहासपर अबतक जितने ग्रंथ रचे गये हैं, अुनमें सबसे बडा है। अिसमें नवीं शताब्दीसे अुन्नीसवीं शताब्दीके अंत तकके कवियोंके नाम अुनका काल तथा अुनकी कृतियोंके नाम दिये गये हैं। भूमिकामें कन्नड प्रदेशकी राजनैतिक, भौगोलिक तथा सामाजिक परिस्थितियोंका वर्णन करते हुअे कन्नड भाषाके विकासका बडा ही रोचक परिचय दिया गया है। लेकिन कवियों और अुनके ग्रंथोंकी आधुनिक ढंगसे आलोचना नहीं की गयी। पर हाँ, आलोचनात्मक अध्ययनके लिअे काफी सामग्री जुटायी गयी है।

छठी शताब्दीके कअी कन्नड-शिलालेख प्राप्त हुअे हैं; जिनके आधारपर अिस बातका निर्णय हो गया है कि नवीं शताब्दीके आरंभमें लिखा हुआ "कविराज-मार्ग" कन्नडका आदि ग्रंथ है। यह अेक अुच्च कोटिका रीतिग्रंथ है। अिसके रचयिता थे राष्ट्रकूट चक्रवर्ती

राजा नृपतुंग । अब यह मालूम होने लगा कि अिसके पहले ही कन्नडमें साहित्यकी रचना हुआ करती थी। प्राचीनताकी दृष्टिसे भारतीय भाषाओंमें अगर संस्कृतका स्थान सर्वप्रथम है, तो तमिलका दूसरा और कन्नडका तीसरा । कन्नडका साहित्य जितना पुराना है अुतना ही बृहन् और सर्वांग-सुंदर भी है। 'कर्नाटक कवि चरिते' में करीब १२०० कवियोंका अुल्लेख हुआ है। भाषाकी प्रौढता, काव्य-सौष्ठव रसाभिव्यंजना, विषयकी विविधता तथा रचना कौशल्यकी दृष्टिसे कन्नडका प्राचीन साहित्य दुनियाके किसी भी अूंचे दर्जेके साहित्यसे टक्कर ले सकता है। छंद, रस, अलंकार, व्याकरण आदि भाषा तथा साहित्य-शास्त्र सम्बन्धी कितने ही प्रौढ ग्रंथ बारहवीं शताब्दीके पहले ही लिखे गये थे।

यह सर्वविदित ही है कि भारतवर्षमें धार्मिक विचारोंके प्रचारके लिअे सबसे पहले भगवान् बुद्ध और अुनके अनुयायियोंने देशी भाषाओंको माध्यम बनाया था। अिस तत्वकी महत्ताको समझकर जैनोंने भी बौद्धोंका अनुकरण किया। अिन दोनों धर्मोंके आचार्यों तथा प्रचारकोंने धर्म सम्बन्धी सभी ग्रंथोंका देशी भाषाओंमें अनुवाद किया। कन्नडमें भी धार्मिक तथा साहित्यिक ग्रंथ निर्माण कार्य जैनोंने ही सबसे शुरू किया। अिस बातका तो पता नहीं चलता कि बौद्धोंने कन्नडमें ग्रंथ रचे थे या नहीं, यद्यपि जैनोंके पूर्व ही बौद्ध धर्मका काफी प्रचार कर्नाटकमें हो चुका था।

जिस तरह आजकल विज्ञान (सािअंस) का बोल-बाला है अुसी तरह प्राचीन कालमें मानव समाजमें धर्मकी प्रबलता थी और अिन धार्मिक भावनाओंसे समाज जितना मथित तथा प्रभावित हुआ था, अुतना शायद ही और किसीसे हुआ हो। अीसवी पहली-दूसरी शताब्दीसे बारहवीं शताब्दी तक कन्नड भाषा भाषियोंपर जैन धर्मका काफी प्रभाव पडा। जैनोंने अपने धर्मके प्रचारके लिअे कन्नड भाषा और साहित्यको माध्यम बनाया। यद्यपि जैन कवियोंका प्रधान लक्ष्य अपने धर्मका प्रचार करना ही था, तो भी अुनके रचे हुअे काव्योंमें साहित्यिक सौष्ठवकी कमी नहीं। अिन जैन कवियोंने जैन-तीर्थंकरों तथा आचार्योंकी कथाओंको ही अपने काव्यकी वस्तु अवश्य बनाया, लेकिन लोगोंके जीवनके निकट आने और अुन्हें अपनी तरफ आकर्षित करनेके लिअे पौराणिक कथाओंसे भी अपने काव्योंको सजाया। अिन कवियोंने पौराणिक कथाओंमें अवश्य कुछ परिवर्तन कर लिया किंतु कथाओंकी रोचकताको वैसे ही बनाये रखा जैसी कि मूल कथाओंमें थी। यही कारण है कि अिन जैन कवियोंके रचे गये भारत, रामायण और भागवतकी कथाअें कन्नड भाषा-भाषियोंके लिअे अुतनी ही प्रिय हैं जितने संस्कृतके काव्य ग्रंथ। पम्पका 'विक्रमार्जुन विजय' अथवा पम्प-भारत, रन्नका 'साहस भीम विजय'' कन्नडके अनमोल रत्न हैं, जिनमें कन्नडके लोगोंके जीवनके रोचक चित्र अंकित हैं।

कन्नडका आदिकाल जो नवीं शताब्दीसे बारहवीं शताब्दी तक माना जाता है, जैन-कालके नामसे प्रसिद्ध है। अिसका कारण यही है कि अिस अवधिमें कन्नड साहित्यकी श्री वृद्धि करनेमें जैनोंका विशेष हाथ रहा। जैन कवि संस्कृत भाषा तथा साहित्यके अच्छे ज्ञाता थे। अिसलिअे यह स्वाभाविक ही था कि कन्नड साहित्यके निर्माणके लिअे संस्कृतका साहित्य प्रेरक शक्ति बन जाय। अिसलिअे अिस कालमें ग्रंथोंकी भाषा न केवल संस्कृतमय थी बल्कि शैली, छंद कथा वस्तु आदि सभी बातोंमें संस्कृतका अंधानुकरण हुआ। अिस कालकी सबसे बडी विशेषता यह है कि सब ग्रंथ 'चम्पू' शैलीमें ही रचे गये। अतः अिसको चम्पू काल भी कहते हैं। यह तो स्वाभाविक ही था कि कन्नडके अत्यन्त लोक-प्रिय 'त्रिपदि', षट्पदि 'सांगत्य', 'रगळे'' आदि छंदोंका प्रयोग कम होने लगा। चूंकि संस्कृतके समृद्ध साहित्यका गहरा प्रभाव कन्नडपर पडा, अिसलिअे भाषामें नयी जान आयी और अभिव्यंजना प्रणालीका चरम विकास हुआ। जैसा कि जगत्की सभी भाषाओंके आरंभिक कालकी समस्त रचनाअें पद्यमें ही हुअी हैं अिस समयका सारा साहित्य पद्यमें ही निर्मित हुआ। यहांतक कि शबके सब शास्त्र ग्रंथ भी पद्यमें बनें। नृपतुंग केशि-राज नागवर्म नामक प्रसिद्ध कवियोंने अपने लक्षण ग्रंथोंका प्रणयन पद्यमें ही किया। गणितके महान् पंडित

राजादित्यन लीलावती का अनुवाद भी पद्यमें किया। अिसी कालमें कन्नडमें गद्य लिखनेका सूत्रपात हुआ। अैसे गद्य प्रयोमें 'चाण्डराय-पुराण' अुल्लेखनीय है। यद्यपि अिस समय बड़े बड़े कलात्मक प्रौढ़ काव्योंका निर्माण हुआ तो भी समाजके सधारण लोगोंके जीवनके साथ साहित्यका सपर्क नहीं रहा। अिसका कारण यह था कि आमतौरपर अिस कालमें कवि राजाओंके आश्रयमें रहते थे और वे जो कुछ लिखते थे या तो अपने आश्रयदाताओंका यश गानेके लिअ लिखते थे या दरबारके अन्य पण्डितोंके बीचमें वाहवाही लूटनेके लिअ अथवा अपने धर्मके प्रचारके लिअ। अिसका परिणाम यह हुआ कि न बोलचालकी भाषा साहित्यके सृजनके लिअ अुपयुक्त समझी गयी न कन्नडके छदोंका ही प्रयोग किया गया। लेकिन चम्पू शैलीमें बड़े ही प्रौढ काव्य रचे गये जो मौलिकताकी दृष्टिसे सस्कृतके महाकाव्योंके टक्करके बने।

सन १२०० से सन १६०० तकका काल 'वीर शैव काल' माना जाता है। यद्यपि अिस कालमें अन्यान्य धर्मावलम्बियोंने भी साहित्यकी सेवा की, तो भी कन्नड साहित्यमें अेक क्रांतिकारी नूतन युगके निर्माणमें वीरशैव सम्प्रदायके अनुयायियोंका ही विशेष हाथ रहा। बारहवीं शताब्दीके अन्तमें कर्नाटकमें श्री बसवेश्वरका प्रादुर्भाव हुआ जिनके व्यक्तित्वके प्रभावसे समस्त कन्नड भाषा भाषियोंका ही नहीं बल्कि दक्षिणापथके विशाल भूभागके निवासियोंके धार्मिक सामाजिक अेव नैतिक जीवनमें बड़ा अुथल पुथल मची। बसव तथा अुनके शिष्योंने अपने मतके प्रचारके लिअ बोलचालकी कन्नड भाषाको माध्यम बनाया। बसवकी वाणी वचन साहित्यके नामसे प्रसिद्ध है जो अपने ही ढगका अेक अनूठा साहित्य है। अिन वचनोंमें न केवल वीरशैव सप्रदायके सिद्धान्तोंका निरूपण हुआ, बल्कि बड़ी ही सरल सरस और चुस्त भाषामें भक्ति ज्ञान प्रेम लोकनीति सदाचार आदिका सदेश दिया गया। अिन वचनोंके द्वारा बसवके महान व्यक्तित्वकी गहरी छाप कन्नड जनतापर पड़ी। वचन-साहित्यके निर्माणके फलस्वरूप कन्नड भाषा और साहित्यमें नूतन चेतनाका सचार हुआ। पुरानी रूढ़ियोंका अेक तरफ बहिष्कार हुआ दूसरी तरफ साहित्यमें लोक जीवनका सच्चा चित्र प्रतिबिम्बित हुआ। वचनकारोंकी सख्या दो सौसे भी ज्यादा है जिसमें बसव, अल्लमप्रभु सिद्धराम चिन्नबसव और अक्कमहादेवी अग्रगण्य हैं।

'वचन साहित्यके साथ साथ अिस कालमें और भी कअी प्रकारकी शैलियाँ प्रचलित रहीं। हम्पीनगरके हरिहरने गिरिजाकल्याण नामके चम्पूकाव्यकी रचना की और 'रगळे' नामक छदका प्रयोग करते हुअे कअी ग्रंथ रचे जिनमें शिव भक्तोंका जीवनियाँ बड़ी ही लोकप्रिय हुअीं। अिस कारणसे हरिहरको 'रगळे कवि' भी कहते हैं। हरिहरके बाद 'रगळे' छदमें लिखनेकी प्रणाली खूब चल पडी। अिसके अतिरिक्त 'षट्पदि' और 'सागत्य' छदोंकी शैलियाँ भी खूब प्रयुक्त होने लगीं। हरिहरके भतीजे और शिष्य राघवाकने 'हरिश्चद्र काव्य' षटपदीमें लिखा। कअी अेक वीरशैव कवियों और कुमार व्यास कुमार वाल्मीकि, लक्ष्मीश प्रभृति ब्राह्मण कवियोंने षटपदी छदके बड़ी सफलताके साथ प्रयोग करते हुअे कअी महाकाव्योंका निर्माण किया। अिस प्रकार अिस आलोच्य-कालमें सस्कृतके छदोंका अुपयोग करना कम होने लगा और शुद्ध कन्नडके छदोंकी अुपयोगिता सर्वत्र बढ़ने लगी। जैसा कि अूपर लिखा जा चुका है अिस कालकी सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि साहित्य केवल राजदरबारोंकी वस्तु न रहकर, जन साधारण लोगोंके रसास्वादनकी वस्तु बन गया।

अिस तरह वीरशैव भक्तोंने अपने लोकप्रिय वचनोंके द्वारा कन्नड-साहित्यको समृद्ध और जनप्रिय बनाया, अुसी तरह वैष्णव भक्तोंने अपने भजन और कीर्तनों द्वारा कन्नड भाषा व साहित्यको समुन्नत किया। अिन वैष्णव हरिदासोंका काल सोलहवीं शताब्दी तक बराबर चलता है। ये सारेके सारे हरिदास श्री मध्वाचार्यकी शिष्य परपराके थे जिनमें पुरदरदास, कनकदास, जगन्नाथदास प्रधान हैं। अिन सन्तोंने कर्नाटकमें वही काम किया जो काम अुत्तर भारतमें सूर तुलसी मीरा बाअी आदिने किया। अपने सुदर भजनों द्वारा अिन हरिदासोंने कर्नाटकमें भक्ति गगा बहायी और प्रेम ज्ञान वैराग्य, सदाचार लोकनीति आदिका अमर सदेश घर घर तक पहुँचाया। अिन भजन साहित्यके प्रचारसे कर्नाटक सगीतके विकासमें बड़ा सहायता मिली।

अठारहवीं शताब्दीके आरभमें अेक अत्यन्त लोकप्रिय कवि हुअे जिनका नाम था सर्वज्ञ। सुवर्ज्ञ

(शेष पृष्ठ-सख्या ८०३ पर)

सम्पादकाचार्य बाबूराव विष्णु पराड़कर

: श्री लक्ष्मीशंकर व्यास, अेम. अे. (आनर्स) :

आधी शताब्दीसे भारत भारती और भारतकी सतत साधनामें संलग्न रहनेवाले तथा देशमें घटित अेवं अनेकानेक युग-परिवर्तनोंके स्रष्टा और द्रष्टा सम्पादकाचार्य पण्डित बाबूराव विष्णु पराड़कर राष्ट्रकी विभूतियोंमें प्रमुख हैं। विचारों द्वारा देशमें जिन महापुरुषोंने नव जागरण और राष्ट्रीय-चेतनाका स्फुरण किया अुनमें श्रद्धेय पराड़करजीका विशेष अेवं विशिष्ट स्थान है। [illegible] अिस जादूगरने देशके लक्ष-लक्ष जनोंको मानवताका पाठ पढ़ाया, अपने अधिकारोंका बोध कराया और बताया है अुन्हें दासत्व शृंखलासे मुक्त होनेका मन्त्र। बीसवीं सदीके प्रारम्भसे कार्य-क्षेत्रमें अवतीर्ण होकर अब तक लाखों जनोंकी विचार धाराको अुत्तेजित-आन्दोलित करनेवाले अिस सूत्रधारका जितना महान् व्यक्तित्व है अुतना ही महान् है अुसका कृतित्व। देशके समाज, अितिहास और साहित्य-गगनपर अिस महान् तपस्वीकी लेखनीने अपनी अमर छाप अंकित की है। यही नहीं, राष्ट्रभाषा हिन्दीके समाचारपत्रोंका मार्ग-दर्शनकर अुनका मापदण्ड बनाया है। सम्प्रति, देशके हिन्दी समाचारपत्रोंके विकास तथा अुनकी रूपरेखाके वर्तमान रूपका अधिकांश श्रेय अिसी महारथीको प्राप्त है।

बचपन तथा शिक्षा-संस्कार

महात्माओं, सन्तों, विचारकों तथा साहित्यके प्रवर्तकोंको जन्म देनेवाली अैतिहासिक काशी नगरीमें बालक बाबूराव पराड़करका जन्म कार्तिक शुद्ध षष्ठी मंगलवार, संवत् १९४० विक्रम तदनुसार १६ नवम्बर सन् १८८३ को हुआ। आपके पिताका नाम पंडित विष्णु शास्त्री था। आप बिहारके राजकीय स्कूलोंके हेडपण्डित थे। बालक बाबूरावका नामकरण 'सदाशिव' किया गया था किन्तु पिता स्नेह भाववश अुन्हें 'बाबू' ही पुकारा करते थे। परिणाम यह हुआ कि यही 'बाबू' बाबूराव विष्णु पराड़कर हो गये। आगे चलकर बचपनका 'सदाशिव' नाम अेकदम ही विस्मृत कर दिया गया हो, अैसी बात नहीं। अपने सुदीर्घ पत्रकारिताके जीवनमें पण्डितजीने 'सदाशिव' के नामसे बहुतसे लेख लिखे हैं। अस्तु। बालक बाबूरावकी शिक्षा-दीक्षा सनातनी परिवारके बालका जैसी हुअी। यज्ञोपवीतके पूर्व अुन्हें लंगोटी लगाकर वेदांगका अध्ययन करना पड़ा। बुद्धि पहलेसे ही कुशाग्र रही और अिसके परिणामस्वरूप यज्ञोपवीतके पूर्व ही वेदांग कण्ठाग्र हो गये, जनेअू हो जानेके बाद आपने वेदका अध्ययन किया। बाल्यकालकी अिस शिक्षाने पराड़करजीके संस्कारोंको सनातनी बनाया और जिसकी छाया अब भी अुनके व्यक्तित्वमें परिलक्षित होती है।

सम्पादकाचार्य पराड़करजी

बाल्यकालकी विषम परिस्थितियाँ

आपके पिता श्री विष्णु पराड़कर बिहारके सरकारी हाअीस्कूलमें संस्कृतके हेडपण्डित थे। अिसलिअे परिवार सहित अुन्हें छपरा जाना पड़ा। यहीं बचपनमें बालक बाबूरावको रोमन अक्षरोंका संस्कार कराया गया। कठिनतासे अेक वर्ष बीता होगा कि आपके पिताजीकी बदली अन्यत्रके लिअे हो गयी। यही क्रम देख पण्डित विष्णु शास्त्री अपने परिवारको काशी पहुँचा गये। बालक पराड़कर अपनी माता तथा छोटे

माओीके साथ पुनः काशी आ गये। श्री विष्णु शास्त्री अिस प्रकार छपरा, मुंगेर, भागलपुरके सरकारी हाअीस्कूलोंमें अध्यापन करते रहे और अिधर बाबूराव पराडकरका शिक्षाक्रम पुनः काशीकी गलियोंमें होने लगा। अुस समय बनारसकी दण्डपाणि गलीके निकट अेक स्कूल था, वहीं आप पढने लगे। अिसके बाद आपका नाम हरिश्चन्द्र स्कूलमें लिखाया गया जो अुस समय बुलानालाके निकट मुन्शिया मुहल्लेमें था। अिस समय आपकी संगत काशीके कुछ कबूतरबाज लडकोंसे हो गयी। वे पैसा चाहते थे पर श्री बाबूरावके पास पैसा कहां? अेक दिन अुन्हींकी प्रेरणासे श्री बाबूरावको अपनी माताकी अंगूठी चुरानी पडी। अुसे अेक सर्राफके यहां बेचा गया। अेक ही दो दिन बाद आपकी माताजीने अुस अंगूठीकी खोज की तो अिस काण्डका रहस्योद्घाटन हो गया। बादमें वह अंगूठी भी सोनारको रुपये देकर प्राप्त कर ली गयी। अिस घटनाकी खबर आपके पिताजीके पास पहुंची जो अुस समय भागलपुर हाअीस्कूलमें हेड पंडित थे। वे काशी आये और बिना कुछ डांटे-फटकारे चुपचाप बालक बाबूरावको अपने साथ भागलपुर ले गये। भागलपुरके जिले स्कूलमें वे अध्यापक थे, अुसीमें अुनका नाम लिखाया गया। अंगूठी लेकर बेचनेकी घटना श्री बाबूरावजीके जीवनमें परिवर्तनकारिणी रही। अिसी कारण काशीकी गलियोंमें परम स्वतन्त्र होकर कबूतर अुडानेवालोंके साथ घूमनेवाले अिस महान् बालकका जीवनक्रम अेक नयी दिशामें परिवर्तित हुआ। अभी श्री बाबूरावजी अिन्ट्रेन्स परीक्षा भी अुत्तीर्ण न हो पाये थे कि आपके पिताका दुखद देहावसान हो गया। परिवारमें बडे होनेके नाते आप-पर अनेक नये भार अेवं अुत्तरदायित्व आ गये। अिन्हीं परिस्थितियोंमें आपने सन् १९०० में अिन्ट्रेन्सकी परीक्षा अुत्तीर्ण की। आर्थिक साधनोंके अभावमें भी आपने अध्ययन न छोडा। अिसका अेक कारण तो यह था कि स्कूल कालेजमें आप अपनी प्रतिभाके बलपर सबके प्रिय छात्र बन गये थे। दूसरे भागलपुरके जमींदार पाडेजीके यहां जो आपके पिताजीके शिष्य थे, आपको पारिवारिक स्नेहका वातावरण मिला। अिसलिअे काशी अेवं पटनामें भी आपने भागलपुरके टी अेन जुबली कालेजमें अपना नाम लिखाया। अभी आप अिस कक्षाका अध्ययन पूरा भी न कर सके थे कि सन् १९०३ में काशीमें प्लेगका भयंकर प्रकोप हुआ और आपकी माताजी अिस लोकसे चल बसीं। पन्द्रह वर्षके जब आप थे तभी पिताजी परलोकगामी हो गये थे और अब माताजी अिन्हें छोडकर चली गयीं। पिताकी मृत्युके बाद छह-सात वर्षोंमें घरमें जो कुछ था समाप्त हो चुका था। काशी आकर श्री बाबूराव-जीने देखा कि अब पढनेका अवसर नहीं रह गया था। परिवारके पोषणका दायित्व आ गया था और कमाने खानेका प्रश्न सामने था।

छात्रसे गृहस्थ बने

अिसी बीच काशीके सम्भ्रान्त जडे परिवारमें आपका विवाह सम्बन्ध हो [illegible]। यह परिवार अब भी काशीमें विद्यमान है। पंडितजीकी अिस पत्नीके देहावसानके बाद अुनके कभी विवाह हुअे पर स्त्री-सुख जो आपको पहली पत्नीसे प्राप्त हुआ वह किसी अन्यसे नहीं। वे आयीं और रोगका शिकार बनकर चली गयीं। पंडितजीकी पहली पत्नीकी मृत्यु सन् १९१२-१३ में हुअी। अिस बीच कामकी तलाश जारी थी। और अिसी प्रसंगमें आपको काशीके क्वीन्सकालेजके अेक पण्डितजीको ट्यूशन भी करना पडा। आपके श्वशुर भी आपके लिअे कामकी तलाश कर रहे थे और अिसमें सफलता भी मिली। नमक-विभागमें आपको नौकरी मिल गयी और क्रमशः सुस्थिर होनेका पथ भी मिला पर सरकारी नौकरी न करनेका आपने निश्चय कर लिया था।

लोकमान्य तिलकसे सम्पर्क

गम्भीर आर्थिक परिस्थितियोंमें रहते हुअे भी सरकारी नौकरी न करनेका विचार तथा संस्कार श्री बाबूरावपर पहले ही पड चुका था। आपके दूसरे रिश्तेमें लगनेवाले मामा श्री सखाराम गणेश देअुस्कर अपनी बडी लडकीके विवाह-प्रसंगमें काशी आये थे।

श्री सखारामजीने बालक बाबूरावसे बातचीतके अनन्तर प्रश्न पूछा कि अकबर बड़ा था या औरंगजेब? श्री बाबूरावने जैसा अितिहासमें पढ़ा था कह दिया 'अकबर महान्' था। श्री सखारामजीने छूटते ही पूछा—क्यों? अिस 'क्यों' का अुत्तर बाबूरावके पास न था। अिसपर सखारामजीने अुन्हें बताया कि अकबरकी नीतिसे हिन्दू संस्कृतिका अभ्युत्थान कैसे सम्भव था और अुस परिस्थितिमें शिवाजी कैसे अुत्पन्न होते। आपने बताया कि ठीक अुसी प्रकारकी नीति अंगरेजोंकी भी है जो हमारी सभ्यता और संस्कृतिको ही नष्ट कर देना चाहते हैं। यही बाबूरावजीके लिअे राष्ट्रीयता तथा देश-प्रेमका पहला पाठ था। अिस घटनाने आपका दृष्टिकोण ही बदल दिया। अिसके बाद सन् १९०५ में बनारसमें कांग्रेस हुअी तो आप कांग्रेस स्वयंसेवकके रूपमें अुसमें सम्मिलित हुअे। अिसी अवसरपर आपको लोकमान्य तिलकके दर्शन तथा सम्पर्कका सौभाग्य प्राप्त हुआ। लोकमान्य अिन्हें अपने साथ राजनीतिक कार्यके लिअे ले जाना चाहते थे किन्तु पारिवारिक परिस्थितियोंके कारण बाबूरावजी काशी छोड़कर नहीं जा सकते थे। श्री सखारामजी, बनारस कांग्रेस और लोकमान्य तिलक अिन तीनोंकी प्रेरणा तथा प्रभाव श्री बाबूरावकी जीवनधाराको नयी दिशा देने और गतिवान करनेमें सहायक हुअे। आपमें देशप्रेम और राष्ट्रीयताकी भावनाका अुदय हुआ, जिसके परिणामस्वरूप आपने डाक तार विभागकी नौकरी ठुकरा दी तथा राष्ट्रके नव जागरणके महान कार्योंमें प्रवृत्त हुअे। श्री सखारामजीके आदेशानुसार आपने प्रसिद्ध मराठी साप्ताहिक 'केसरी' पढ़ना प्रारम्भ कर दिया था।

पत्रकारिताके क्षेत्रमें

विधाताने श्री बाबूरावको पत्रकारिताके लिअे बनाया था, तो भला वे किस प्रकार तार-विभागकी सरकारी नौकरी स्वीकार करते और किस प्रकार राज-नीतिके क्षेत्रमें लोकमान्यके साथ अुतर पड़ते। अुन्हें तो सरकारी कर्मचारियोंकोही नहीं, सरकार बदलनेके लिअे कार्य करना था। राजनीतिक नेता बनकर भाषणकी अपेक्षा अुनका मार्गदर्शन करा, देशकी कोटि-कोटि जनतामें देशभक्तिकी भावना अुत्पन्न करनी थी। अिसलिअे जब कलकत्तेसे प्रकाशित होनेवाले 'हिन्दी बंगवासी' में सहायक सम्पादककी आवश्यकताका विज्ञापन आपने देखा तो अपने हाथसे आवेदनपत्र लिख भेजा। अिसके साथ किसीकी न तो सिफारिश थी, न कोअी सार्टीफिकेटही था।

श्री हरेकृष्ण जौहर 'हिन्दी बंगवासी' के सम्पादक थे। आवेदन-पत्रकी शैलीसे आप अितने प्रभावित हुअे कि बाबूरावजीको अुस पदके लिअे चुना और बुला भेजा। अुन दिनों दुर्गा पूजाके अवसरपर दैनिक पत्रोंमें अेक सप्ताह और साप्ताहिकोंमें दो सप्ताहकी छुट्टियां होती थी। अुसी वर्ष जौहरजी पूजावकाशमें काशी आये तो बाबूरावजीसे अुनकी भेंट हुअी। जौहरजी आपसे मिलकर बड़े प्रसन्न हुअे और आपकी लेखन-शैलीकी सराहना की। अिसी बीच बाबूरावजीने अपने मामा श्री सखारामजीको जिनका घर बंगाल परगनामें था पत्र लिखा और अुनकी सम्मति मांगी। श्री सखारामजी अुस समय बंगला दैनिक 'हितवादी' के सम्पादक थे और कलकत्तेमेंही रहते थे। अस्वस्थ होनेके कारण वे अपने घर गये हुअे थे। बाबूरावजीका जब अुन्हें पत्र मिला तो अुन्होंने तत्काल सहमति दी और कहा कि कलकत्ता जानेके पूर्व मुझसे मिलते जाओ तथा घरकी ताली लेते जाओ। सन् १९०६ के पूजावकाशके बाद बाबूरावजीने काशीसे कलकत्तेकी ओर प्रस्थान किया। आप 'बंगवासी' में कार्य करने लगे लेकिन रहते थे श्री सखारामजीके निवासपरही। कुछही दिनोंके बाद आपके मामा श्री सखारामजी आ गये। बाबूरावजीकी मामी भी अुनके साथ आयी थी। अिस प्रकार कलकत्तेमें पत्रकारिताके क्षेत्रमें आप अवतीर्ण हुअे। देशसेवाकी भावना तथा 'केसरी' के अध्ययन-मननके व्यवहारिक प्रयोगका समय अब आ गया था। अुस समय 'बंगवासी' का बड़ा प्रचार था। पर यह पत्र था प्रतिक्रियावादी नीतिका समर्थक। अिससे श्री बाबूरावका चित्त कुछ समयके लिअे हटने लगा, पर अपने मामाके आदेशका पालन करते हुअे वे वहीं कार्य करते रहे।

अध्ययन और मननके वे दिन

'हिन्दी बंगवासी'में सहायक सम्पादकके वेतन रूपमें अुन्हें पच्चीस रुपये मासिक प्राप्त होते थे। वेतन जिस दिन मिलता अुसी दिन मामा सखारामजीकी आज्ञानुसार २० रु० मनिआर्डर बनारस कर देना पडता था और रसीद अुन्हें दिखानी पडती थी। यही क्रम प्रत्येक मास चलता था। पांच रुपये कपडे-लत्ते अथवा हाथ खर्चके लिअे अपने पास रखनेकी श्री बाबूरावजीको आज्ञा थी। वे सदा अिसका पालन करते रहे। भोजन और निवासकी समस्त व्यवस्था मामा सखारामजीके यहां थी ही। पांच रुपया जो बचता था अुसका अधिकांश भाग कलकत्ता स्थित अिम्पीरियल लाअिब्रेरीके आने-जानेमें व्यय होता था। कार्यालयसे लौटकर आनेपर श्री बाबूरावजीको सखारामजीके आदेशानुसार प्रायः नित्य ही अिम्पीरियल लाअिब्रेरी जाकर विभिन्न विषयोंका अध्ययन अेवं तथ्य-संग्रह करना पडता था। यह क्रम अितना नियमित हो गया था कि अुक्त देश-प्रसिद्ध पुस्तकालयके पुस्तकाध्यक्षने आपके लिअे स्थायी प्रवेश-पत्र तथा पृथक बैठकर अध्ययनकी समस्त सुविधाअें सुलभ कर दी थीं। काशीमें नागरी प्रचारिणी सभाके आर्य भाषा पुस्तकालयमें बैठकर वहांकी अधिकांश पुस्तकोंको पढ जानेवाले बाबूरावजीने अिम्पीरियल पुस्तकालयमें भी अुसी वृत्तिसे काम लिया। अिसके अतिरिक्त श्री सखारामजी प्रायः नित्य ही अेक न अेक प्रश्न या समस्या सम्बन्धी विवाद छेड देते थे और जिस पक्षका बाबूराव समर्थन करते अुसका वे खण्डन पक्ष ग्रहण करते। अिस प्रकार बाबूरावजीको महान अध्ययन-मननके साथ तर्कशक्ति अेवं प्रश्नके दोनों पहलुओंपर व्यापक विचार करनेकी शैलीका अभ्यास हो गया। कलकत्तेमें अुस समय पण्डित गोविन्द नारायण मिश्र तथा पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र हिन्दीके प्रख्यात विद्वान थे। आप अिनके पास जाकर हिन्दी-लेखनकी शैली तथा व्याकरणकी बारीकियां समझने लगे। अिन दोनों विद्वानोंका श्री बाबूरावजीपर अत्यधिक प्रभाव पडा।

क्रान्तिकारी समिति और नजरबन्दी

बीसवीं शताब्दीके अुन प्रारम्भिक दिनोंमें बंगालके नवयुवक समाजमें गुप्त समितियों और क्रान्तिकारी भावनाओंका व्यापक प्रचार था। श्री सखारामजीके घर अनेक क्रान्तिकारी अेकत्र होते और परामर्श लेते। बाबूरावजीका भी सम्बन्ध अिन्हीं दिनों गुप्त समितिसे हो गया जिसका केन्द्र था चन्द्रनगर। अिधर अेक और घटना हुअी। कलकत्तेमें राष्ट्रीय शिक्षाके निमित्त नेशनल कालेजकी स्थापना हुअी और अिसके प्रधान थे श्री अरविंद घोष। अिस संस्थामें विनयकुमार सरकार, राधाकुमुद मुखर्जी जैसे देश-प्रसिद्ध विद्वान अध्यापन कार्य करते थे। श्री बाबूरावजीको भी यहां अध्यापन कार्य सौंपा गया। हिन्दी बंगवासीके सम्पादकको यह बात न रुची, फलतः बाबूरावजीने पत्रसे अिस्तीफा दे दिया। 'हिन्दी बंगवासी' से पृथक होनेपर आपको साप्ताहिक 'हितवार्ता' के सम्पादक पदपर बुलाया गया। अिस पत्रको आपने राजनीति प्रधान बनाया, जो अुस समयके हिन्दी-पत्रोंकी परम्परामें सर्वथा नवीन प्रयोग था। सन् १९०७ में आपने अिस पत्रका भार संभाला और लगभग चार वर्षोंतक अिसका सम्पादन किया। अिसके बाद नीति सम्बन्धी मतभेदके कारण 'हितवार्ता'से पृथक् होकर आप 'भारतमित्र' में चले गये जो दैनिक रूपमें निकलने लगा था और जिसके सम्पादक थे पण्डित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी। सम्पादन-कार्यके साथ ही साथ आपका सम्बन्ध गुप्त समितियोंसे भी बराबर बना रहा। यह बात छिपी नहीं रही। फलतः सन् १९१६ की १ जुलाअीको सरकारने १८१८ के ३ रे रेगुलेशनमें आपको साढे तीन वर्षके लिअे नजरबन्द कर दिया।

'आज' सम्पादकः पराड़करजी

सन् १९२० अीस्वीमें जब ३॥ वर्षकी नजरबन्दीके पश्चात् श्री बाबूरावजी काशी लौटे तो अुनकी द्वितीय पत्नी यक्ष्मासे पीडित थीं। सन् १९१५ में यह विवाह बम्बअीमें हुआ था। विवाहके अेक वर्ष बाद ही श्री बाबूराव नजरबन्द कर लिये गये और जब १९२० में मुक्त होकर आये तो अुनकी पत्नीके स्वस्थ होनेकी कोअी आशा न थी। आते ही आप पत्नीकी सेवा-शुश्रूषामें लगे। किन्तु थोडे ही दिन बाद आपको पुनः पत्नी-शोक सहना पडा। अिधरसे आप 'भारतमित्र' में जाने ही वाले थे कि बाबू शिवप्रसाद गुप्तने आपको

रोक लिया और 'आज' निकालनेकी योजना बनायी। मभी सन् १९२० से श्री बाबूराव 'आज के प्रकाशनकी व्यवस्थामें लगे। अिसी सिलसिलेमें आप लोकमान्य तिलकसे मिलने भी गये थे। तिलकसे आपकी यही अन्तिम मुलाकात थी। बनारसमें स्वयंसेवक रूपमें, कलकत्तामें पत्रकार रूपमें और पूनामें अेक नये समारम्भके प्रसगमें आप अुनसे मिले। तिलकको श्री बाबूरावजी अुस समय अपना राजनीतिक गुरु मानते थे।

अिसी वर्ष जन्माष्टमीके दिन 'आज'का प्रथम अक प्रकाशित हुआ और श्री बाबूरावजी श्री श्रीप्रकाशके साथ सयुक्त सम्पादक बनाये गये। अिस समय तक बाबूरावजी अपनी देशभक्ति, क्रान्तिकारी भावनाओं, गुप्त समितियोंसे सम्बन्ध आदिके कारण काफी प्रसिद्ध हो चुके थे। 'आज'के सम्पादक रूपमें तो आपने देशमें राष्ट्रीयताकी अैसी लहर फैलायी कि 'आज' और पराड़करजी समानार्थक हो गये। सन् १९२० से लेकर सन् १९५३ तक थोड़ेसे समयके अतिरिक्त आप निरन्तर 'आज'के सम्पादकके रूपमें कार्य कर रहे हैं। 'आज'के स्वरूप-अकनके जन्मदाता आपही हैं। आप ही हैं अुसके पालक पोषक और जनताके हृदयमें अुसका प्रतिष्ठापन करनेवाले। आपने जब 'आज'का सम्पादन प्रारम्भ किया तो गान्धीजीका अुदय हो रहा था और अुसीके अेक दो वर्ष बाद देशमें स्वाधीनताका आन्दोलन छिड़ गया। पराड़करजी गान्धीजीके भक्त बने और राष्ट्रको विदेशी आधिपत्यसे मुक्त करानेके लिअे अपनी लेखनीसे जनताके विचारोंमें क्रान्तिकी भावना भरने लगे। आपकी भक्ति, अन्धभक्ति न थी। अिसीका परिणाम था कि अनेक प्रश्नोंपर आपने गान्धीजीकी आलोचना भी की। आपने 'आज' में कांग्रेसके वार्षिक अधिवेशनमें अध्यक्षीय पदसे दिया गया पूराका पूरा भाषण प्रकाशित करनेकी व्यवस्था की। सन् '२२ और ३० के स्वदेशी आन्दोलनके देशके कोने कोनेके समाचार छापने शुरू किये। दमन-चक्रमें पीसे जानेवाले तथा देशकी स्वाधीनताके निमित्त बलिदान होनेवाले देशभक्तोंके समाचार आपके 'आज'में छपने थे। यही नहीं, अग्रलेख और टिप्पणियों द्वारा आपने देशको, देशकी जनताको और देशके नेताओंका मार्गदर्शन किया। कांग्रेस तथा अुसके सूत्रधार गान्धीजीने अेकबार नहीं अनेकबार 'आज'के परामर्शानुसार ही आन्दोलनकी धारा मोड़ी और अन्तमें विजयी हुअे।

राजद्रोहका मुकदमा

आपपर कअी बार राजद्रोहका मुकदमा चला और कअी बार पत्रसे जमानत मांगी गयी। अुस समय बर्मामें भ्रमण करनेवाले बाबा राघवदासका अेक लेख छापनेके लिअे आपपर मुकदमा चला और छह मासकी कैद अथवा १००० रु० जुर्माना देनेकी आज्ञा हुअी। आपने जेल जाना ही पसन्द किया था बशर्ते कि घरका सामान आदि कुर्क न करनेका अधिकारियोंसे आश्वासन मिल जाअे। तत्कालीन बनारसके जिला मजिस्ट्रेट श्री ओवेनने अिस प्रकारका आश्वासन देनेसे अिनकार किया। अुधर श्री प्रकाशजी आदिकी सलाह भी यही हुअी कि जुर्माना दे दिया जाअे। यह घटना सन् १९३१ ओस्वीकी है।

'रणभेरी' का प्रकाशन

सन् १९३० में राष्ट्रीय आन्दोलनके समय 'आज' से जमानत मांगी गयी। सरकारी आर्डिनेन्सके विरुद्ध पराड़करजीने पत्र बन्द ही करना अुचित समझा। पर देशमें स्वाधीनताका सग्राम चल रहा था। जनता तथा नेताओंको राष्ट्रीय आन्दोलनकी गतिविधिसे अपरिचित रखना भी सम्भव न था। अिसीलिअे आपने "आजके" समाचार बुलेटिन साअिक्लोस्टाअिलपर निकाले। जब सरकारने अिसे भी बन्द करनेकी आज्ञा दी तो 'रणभेरी' नामकी गुप्त पत्रिका आप निकालने रहे। यह पत्रिका जनतामें प्रसिद्ध हो गयी थी। पुलिस परेशान थी पर लाचार थी। अुसकी सारी दौड़धूप और छान-बीन व्यर्थ जाती थी। अेक दिन चर्चामें श्रद्धेय पराड़करजीसे मैंने पूछा कि आप लोग पुलिसकी नजरोंसे कैसे बच निकलते थे, तो आपने बताया कि यदि हमारी लिपि और लिखावट देखकर पुलिस चाहती तो हमें तत्काल पकड़ सकती थी। पर यह बात अुसके ध्यानमें आयी ही नहीं। 'आज' के पुन प्रकाशनपर आपने राष्ट्रीय आन्दोलनके समाचार ही प्रमुखतासे प्रकाशित

किये। सत्याग्रहियोंकी पूरी सूची 'आज' में छापी जाती रही है। अुस समयके हिन्दी पत्रोंके लिअे यह सर्वथा नवीन और साहसका कार्य था।

पराड़करजीकी देन

श्रद्धेय पराडकरजीके चरणोंमें बैठकर कार्य करनेका सौभाग्य, अिन पक्तियोंके लेखकको विगत दस वर्षोंसे प्राप्त है। अिस कालमें और अिसके पूर्वके दशकोंमें कुछ मिलाकर विगत अर्ध शताब्दीमें अिस महान् साधक और युग-निर्माताकी सेवाअें चिरस्मरणीय रहेंगी। सर्वप्रथम अिस महान् तपस्वीने स्वाधीनता और राजनीतिक स्वतन्त्रताके लिअे जो प्रयत्न किया था वह सफल हुआ, 'आज के अग्रलेखों और टिप्पणियोंने तत्कालीन परिस्थितियोंमें विचारोंकी कैसी क्रान्ति की है, अब भी सहजमें ही जाना जा सकता है। पराडकरजीकी टिप्पणियाँ बड़े-बडे अंग्रेजी पत्रोंकी टिप्पणियोंको मात कर देती थी और लोग अुनका लोहा मानते रहे हैं, आधुनिक समाचार-पत्रोंमें अग्रलेखोंका वह महत्त्व नहीं रह गया है, जो अुस समय था। अुस समय लोग साँस रोककर 'आज'के अग्रलेख टिप्पणियाँ पढनेको आकुल व्याकुल रहते थे। हिन्दी भाषाके पत्र तत्कालीन समयमें अत्यन्त हेय दृष्टिसे देखे जाते थे, किन्तु पराडकरजीने 'आज' द्वारा हिन्दी पत्रकारिता तथा भारतीय पत्रकारिताको नया मानदण्ड दिया और अुसका स्तर अितना अुन्नत किया कि लोग अिनका लाहा मानने लगे। यही नहीं, हिन्दीके समाचार-पत्रोंके सर्वांग सुन्दर रूपके लिअे 'आज' आदर्श पत्र माना जाता रहा है। यह सब कुछ पराडकरजीका ही चमत्कार रहा है और है आपकी सतत साधना। भारतमें हिन्दीके सभी समाचार-पत्रोंने 'आज'से प्रेरणा ली है और अुससे प्रभावित हुअे हैं, सहज भावसे यह कथन अन्यथा दृष्टिसे न देखा जाना चाहिये। अिन सबके मूलमें श्रद्धेय पराडकरजीकी कठिन तपस्या और साधना निहित है। प्राय लोग पराडकरजीके साहित्यके सम्बन्धमें प्रश्न करते हैं और अुसे पुस्तकोंके रूपमें खोजते हैं। वस्तुत पराडकरजीको 'आज' के सम्पादकीय लेख और सम्पादन कार्यके बाद अवकाश ही कहाँ मिला है कि वे पुस्तकोंका प्रणयन करें। 'आज' के अग्रलेख और बहुत-सी टिप्पणियाँ हिन्दी साहित्यकी स्थायी सम्पत्ति है, जिनकी ओर बहुत कम लोगोंका ध्यान अबतक गया है।

राजनीतिक स्वतन्त्रताके लक्ष्यमें सफलता प्राप्त करनेके अतिरिक्त जिस प्रश्नको लेकर 'आज'ने प्रारम्भसे ही आन्दोलन किया वह था कि हिन्दी राष्ट्रभाषा बनायी *जाये। सिद्धान्ततः अुसका यह लक्ष्य भी पूरा हो चुका* है। अिसका भी सारा श्रेय पराडकरजीको ही है। पिछले वर्षों हिन्दीकी विशेषता बताते हुअे आप कहते रहे कि प्राय सभी भारतीय भाषाओंमें दूसरी भाषावालोंके लिअे घृणा व्यक्त करनेवाले शब्द हैं पर हिन्दीमें नहीं। अिसके अुदाहरण स्वरूप आप मराठीका 'रागडा', बगलाका 'खोट्टा' आदि शब्द सम्मुख रखते। 'मिस्टर' के लिअे 'श्री' का प्रयोग सर्वप्रथम 'आज' ने ही चलाया और आज सरकारने भी अिसीको मान्यता प्रदान की है। अिसी प्रकार न जाने सैकड़ों हजारों नये शब्द 'आज' के स्तम्भोंमें नये गढ़े गये होंगे, जिनका पहले कहीं पता भी न था, पर अब वे नवेंद्र प्रयोगमें आते हैं। व्याकरण सम्बन्धी आपकी मौलिक धारणाअें है, जिन्हें अभी तक किसी हिन्दी व्याकरणमें निबद्ध नहीं किया गया है। यह है 'को' के प्रयोगके सम्बन्धमें। हिन्दी भाषा तथा साहित्यकी अिन्हीं सेवाओंका समादर आपको सन् १९३८ में हिन्दी साहित्य सम्मेलनके शिमला अधिवेशनका सभापति बनाकर किया गया। समकालीन और निकट होनेके नाते व्यक्तिकी विशेषताओंका विवेचन विश्लेषण प्राय. कठिन होता है। अिस स्थितिमें श्रद्धेय पराडकरजीकी विलक्षण और विशिष्ट अनेक विशेषताओंका दृष्टिसे ओझल होना स्वाभाविक है।

श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर—अेक भेंट

श्री कमलेश

पहले दिन जब अिन्टरव्यूके लिअे समय माँगने गया तो 'आज' के सम्पादक श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर आराम कुर्सीपर बैठे थे। दुबला पतला शरीर, ठिगना कद, नंगा बदन, पन्नीदार धोती और निस्संकोच वार्तालाप सब मिलकर किसी भी व्यक्तिको अुनकी सादगी और सरलताका भान करानेवाले अुपकरण थे। अिससे भी अधिक चश्मेसे भीतरसे चमकनेवाली आँखें सहसा सामने बैठे व्यक्तिको यह अनुभव करा देती हैं कि यह व्यक्ति गहराअी तक देखनेकी क्षमता रखता है। देखते ही बोले— जब मैं किसी मिलने वालेको आते हुअे देखता हूँ तो मुझे विपत्ति सी जान पड़ती है।

अिस अप्रत्याशित शब्दावलीसे मैं चौंक पड़ा। मुझे लगा कि अिस व्यक्तिको व्यर्थ समय बरबाद करनेवालोंसे बहुत पीड़ित होना पड़ा है। लेकिन मैं समय बरबाद करने नहीं गया था। मैं गया था हिंदी-पत्रकार जगतके अेक अनुभवी सम्पादककी जीवन गाथा जानने। अिसलिअे जब मैंने अपना अुद्देश्य बताया तो वे प्रसन्नतापूर्वक अिंटरव्यू देनेके लिअे राजी हो गये और दूसरे दिन तीन बजेका समय निश्चित कर दिया।

अिन्टरव्यूका समय तो निश्चित कर दिया था पर अुस समय वे 'मूड' में थे। अिसलिअे घण्टे डेढ़ घण्टे तक साहित्यकारोंके संस्मरण सुनाते रहे। अुन संस्मरणोंमें अधिकांश संस्मरण आचार्य पं. महावीरप्रसादजी द्विवेदीके थे। अुन संस्मरणों द्वारा द्विवेदीजीकी जागरूकता और साहित्य सेवाकी लगनपर प्रकाश पड़ता था। स्वयं अुनसे सम्बन्धित अेक संस्मरण मुझे बहुत अच्छा लगा। अुन्होंने कहा— अेक बार अैसा हुआ कि मैं सम्पादकीय लिखने बैठा। लिखनेके लिअे कोअी विषय नहीं सूझता था। बैठे-बैठे पर्याप्त समय बीत गया था और कम्पोजीटर सरपर सवार था। अिस बार मैंने 'क्या लिखें?' शीर्षक सम्पादकीय लिखा। वह आचार्य पं. महावीरप्रसाद द्विवेदीने पढ़ा और दूसरे ही दिन मेरे पास अुनका अेक पत्र आया। अिस पत्रमें मेरे अुस सम्पादकीयकी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा की गयी थी। अुस समय मुझे द्विवेदीजीकी गुण ग्राहकताका परिचय मिला। यह कहते कहते वे गद्गद हो गये।

वे अिसी प्रकार संस्मरण सुनाते रहे। और भी सुनाते परन्तु मैं अुनकी कठिनाअी और मन:स्थितिसे अुसी समय परिचित हो गया था जब मुझे देखकर अुन्होंने मिलनेवालोंको 'विपत्ति' बताया था। अिसलिअे अिच्छा न रहते हुअे भी विदा लेकर चला आया।

दूसरे दिन जब पहुँचा तो अपने पत्रकार जीवनकी कहानी सुनाते हुअे अुन्होंने बताया— मेरा जन्म काशीमें हुआ और बचपन भी काशीमें ही बीता। मेरे चार भाअी और अेक बहन थे। मैं सबसे छोटा था। पढ़ाअीका रूप अुस समय अुलटा था। आजकलकी भाँति स्टैण्डर्ड (दर्जे) नहीं होते थे, क्लास होते थे। बारह वर्षकी अुम्रमें जब मैं पाँचवें क्लासमें था, मैंने अंग्रेजी पढ़ना प्रारम्भ किया। पढ़नेका मुझे अितना शौक था कि बचपनमें ही अठारह पुराण पढ़ डाले थे। कसरत करना और अखाड़ेमें जाना गुण्डापन समझता था पर फुटबाल खेलनेमें बड़ा मजा आता था। अुस मजेकी सजा भी मुझे अच्छी मिली। मेरी हँसलीकी हड्डी टूट गयी।

जब पन्द्रह वर्षका था तब मेरे पिता चल बसे। सन १९०१-२ में प्लेगकी अैसी भयंकर बीमारी फैली कि गलियोंमें मुर्दे बिछे रहते थे। वह बीमारी माँको ले गयी। अुस समय मैं अिन्ट्रेन्समें था। परिवारमें सबसे बड़ा था। काशीमें रहना और बिना माता पिताके सबको सँभालना कठिन कार्य था। अिस कारण नौकरी

करनेकी सोची। संयोगकी बात है कि अुन्हीं दिनों स्वदेशी आन्दोलनके प्राण और हितवादके सम्पादक श्री सखाराम गणेश देअुसकर अपनी बड़ी लड़कीकी शादीमें काशी आये। वे मेरे दूरके मामा होते थे। नवयुवकोंको प्रोत्साहन देना अुनकी विशेषता थी। अुन्होंने मुझसे प्रश्न किया— औरंगजेब अच्छा था या अकबर?

मैंने कहा— अकबर।

अुन्होंने पूछा— क्यों?

मैंने बताया— अितिहासमें असा ही लिखा है।'

अिसपर अुन्होंने मुझे समझाया— 'असा कहना ठीक नहीं है। अकबरको अच्छा लिखनेवाले वे अंग्रेज हैं जो अकबरकी नीतिपर चलकर शताब्दियोंसे भारतको गुलाम बनाये हुअे हैं। अच्छे-बुरेका निर्णय स्वयं करना चाहिये। अकबर दगाबाज था जब कि औरंगजेब सदाचारी था। अुसने अपने वायक द्रोहियोंका ही नाश किया, सबको समदृष्टिसे देखा। अितना ही नहीं अुसने बहुतसे मन्दिरोंको दान दिया था जो बहुत दिनतक मिलता रहा।' अुन्होंने मुझे मराठी मँगानेकी राय दी।

अुस दिनसे मेरी प्रवृत्ति देश-सेवाकी ओर हुअी। यहाँ तक कि मैं अेफ० अे० की परीक्षा भी न दे सका। मैंने कुछ दिन पोस्ट अेण्ड टेलीग्राफमें नौकरी की। लेकिन शीघ्र ही मुझे देअुसकरजीका अेक पत्र मिला जिसमें मुझे बंगवासीमें सहायक सम्पादक होकर जानेको लिखा था। मैं तत्काल कलकत्ते चल दिया। ठहरा भी अुन्हींके यहाँ। वहाँ मुझे खाने-पीनेका कोअी खर्च नहीं करना पड़ता था। फिर राजनीतिकी चर्चा भी वहाँ खूब होती थी। अुस वातावरणका लाभ अुठाकर मैंने सप्ताहमें तीन दिन अिम्पीरियल लायब्रेरी (अब नेशनल लायब्रेरी)में जाना आरंभ किया। चार महीने बाद मुझे अुनका स्थायी पास मिल गया। जो कुछ मैंने पढ़ा अिसी बीच पढ़ा। घरपर नियमित राजनीतिक चर्चा और लायब्रेरीमें सद्ग्रन्थोंके वाचन दोनों प्रकारसे मेरा मानसिक गठन प्रौढ़ता प्राप्त करने लगा। देअुसकरजीका आनंदवादियोंसे भी सम्बन्ध था। अिसलिअे मेरा भी अुनसे सम्पर्क हो गया। यह सन् १९०६ की बात है। देअुसकरजी अुस समय बंगाल नेशनल कालिजमें अितिहास पढ़ाते थे। अुन्होंने मुझसे वहाँ मराठी पढ़ानेके लिअे कहा। बंगवासीके प्रबन्धकोंने अिसपर आपत्ति करते हुअे कहा कि बंगवासीमें रहते हुअे असा नहीं हो सकता। मैंने अिसपर त्याग-पत्र दे दिया और दूसरे ही दिन हितवार्ताका सम्पादक हो गया। हिन्दी समाचार-पत्रोंमें गंभीर राजनीतिक समावेश हितवार्तासे ही हुआ। 'प्रताप' में गणेशजी तब अच्छा काम कर रहे थे। सन् १९१० में मैं दैनिक भारत मित्रमें गया जहाँ श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयीसे मेरा साथ हुआ।

सन् १९२० में काशीमें श्री शिवप्रसाद गुप्तने 'आज' निकाला और मुझे अुसका सम्पादक बनाया। फलस्वरूप मैं कलकत्ता छोड़कर काशी आया। काशी आनेके दो कारण थे— अेक तो काशी मेरी जन्मभूमि थी और दूसरे बाबू शिवप्रसाद गुप्तका यह कहना था कि हिन्दीके पत्र बंगालमें ही निकलते हैं यू० पी० से नहीं। यू० पी० हिन्दीका क्षेत्र है अतः यहाँसे पत्र निकले और सफलतापूर्वक चले यह नितांत आवश्यक है। 'आज' में आनेपर अेक मित्रने कहा— 'यदि तुम पाँच वर्ष यहाँ टिक जाओ तो मेरी नाक काट लेना। दस-पन्द्रह वर्ष बाद जब मैं अुनसे मिला तो मैंने अुनसे कहा— देखिये अभीतक मैं 'आज' में हूँ और आपकी नाक भी अपने स्थानपर है।' अिसपर वे लज्जित हो गये। यह मेरे पत्रकार जीवनकी कहानी है पर मैं यह मानता हूँ कि कोअी अदृश्य शक्ति ही मुझे अिसमें खींच ले गयी और राजनीतिमें गांधीजीके आनेके बाद तो पत्रकारिता ही मेरा जीवनाधार बन गयी।

लेकिन देअुसकरजीके अतिरिक्त आपके पत्रकारके निर्माणमें किन किन व्यक्तियोंका हाथ रहा? मैंने पूछा।

वे बोले— देअुसकरजीके अतिरिक्त सर्वश्री गोविन्दनारायण मिश्र, दुर्गाप्रसाद मिश्र और अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी प्रमुख हैं। गोविन्दनारायण मिश्रने भाषा तथा साहित्यका दृष्टिकोण और वाजपेयीजीने परिश्रमका जो दान दिया वह मेरे जीवनकी सबसे बड़ी सम्पत्ति है। वाजपेयीजी तो मेरे भाअीके ही सदृश हैं। आपको आश्चर्य होगा कि जब मैं आनंदवादियोंसे सम्पर्क रखनेके

कारण जेल गया तो वाजपेयीजीके पिता फूट फूटकर रोये थे। यही नहीं मरते समय भी अुन्होंने मेरे विषयमें पूछा था।"

पत्रकार कला और सफल पत्रकार बननेका प्रसंग चला तो वे कहने लगे— सफल पत्रकार बननेके लिअे सबसे पहली बात तो यह है कि पत्रकारमें कामकी लगन हो। अुसका हृदय काममें होना चाहिये। केवल नौकरीकी भावनासे काम करके कोअी सफल पत्रकार नहीं बन सकता। श्री बाअी. चिन्तामणि, अमृतलाल चक्रवर्ती, श्री निवासन अिसके प्रमाण हैं कि कामकी लगन पत्रकार बननेमें कितनी सहायक होती है। अिसीलिअे जब कोअी युवक मेरे पास पत्रकार बननेकी अभिलाषा लिये आता है तब मैं अुससे कहता हूँ कि यदि तुममें कामकी लगन होगी तो नौकरी तुमको ढूंढती आअेगी, तुम्हें नौकरी नहीं ढूंढनी पड़ेगी। काम करो, फल कभी न कभी अवश्य मिलेगा। दूसरी बात पत्रकारकी भाषाकी है। अुसकी भाषा शुद्ध और मुहावरेदार होनी चाहिये। (पहले मेरा आदर्श श्री गोविन्दनारायण मिश्रकी भाषा थी पर वह जीवित भाषा न थी अिसलिअे मैंने अुसे छोड़ दिया और अपनी शैली स्वयं बना ली।) मेरा विचार है कि भाषा हृदयके भावोंके अनुकूल होनी चाहिये क्योंकि भाषा वही अच्छी है जिसके शब्द कानोंको बुरे न लगें। शैली निर्माणमें जानसनकी भांति मैं भी यही मानता हूँ कि परिश्रमशीलता ही प्रतिभा है। तीसरी बात कभी शान्त न होनेवाली अधिकाधिक जाननेकी भूख है। मुझे स्वयं पढ़नेकी बड़ी आदत रही है। अच्छी किताब मिली और मुझे दो तीन रात नींद नहीं आयी, अुसे ही पढ़ता रहा। देअुसकरजी मुझे रोकते थे पर अब मैं अनुभव करता हूं कि पत्रकारके लिअे अध्ययन अत्यंत आवश्यक है। और पत्रकारको थोड़ा-थोड़ा सब जानना चाहिये तथा अुसे यह पता होना चाहिये कि अमुक विषय कहां मिलेगा। अिस प्रवृत्तिके वशीभूत होकर ही मैं 'गुप्तन-संहिता' भी पूरा पढ़ गया था। 'आज' में आनेपर अिसीलिअे मैंने सबसे पहला कार्य यह किया कि 'अेन्सायक्लोपीडिया ब्रिटानिका' खरीदवाया। कहनेका अभिप्राय यह है कि पत्रकारको 'स्कॉलर' नहीं होना चाहिये। यदि अैसा होगा तो वह जन साधारण की रुचिकी चीज न लिख सकेगा। लेकिन थोड़ा जाननेके साथ अुसमें अितनी कला अवश्य होनी चाहिये कि कोअी अुसकी कमजोरी न पकड़ सके। चौथी बात यह है कि अनुवाद करते समय जिस भाषामें वह अनुवाद कर रहा है अुसकी अुसे पूरी जानकारी होनी चाहिये। अिसका मुझे निजी अनुभव है। मेरी मातृभाषा मराठी है हिंदी नहीं, अिसलिअे पहले बहुत दिन तक मेरे अनुवादमें मराठीका प्रभाव आ जाता था। वर्षों मैं अनुवादको सही करनेके लिअे दूसरोंसे पूछता रहा और अनुवाद दूसरोंसे कराता रहा। मेरा विचार है कि अिन बातोंको ध्यानमें रखनेवाला अवश्य सफल पत्रकार हो सकता है।

"आपके लिखनेका ढंग क्या है?" मैंने चर्चा आगे बढ़ायी।

अुन्होंने कहा—"मैं आज तक होल्डर-दावातसे लिखता हूं। फाअुन्टेन पेनसे विचार विकृत हो जाते हैं। लिखनेके लिअे डेस्क या टेबुल होना आवश्यक है। अग्रलेख और टिप्पणी लिखनेके लिअे डिमाअी साअिजके कागजके आठवें हिस्सेवाले स्लिप बहुत अच्छे लगते हैं। मैं लाअिनदार कागजपर नहीं लिख सकता क्योंकि मुझे अैसा लगता है कि लाअिन मेरे बाधा बनकर खड़ी है। बहुधा मैंने रातको लिखा है और दिनको पढ़ा है लेकिन आवश्यकता पड़नेपर रात और दिन दोनोंमें भी लिखा है। सन् २३-२४ में नशबा लिया है तबसे रातको लिखना बन्द कर दिया है। लिखते समय जब मस्तिष्क कुहासेसे ढका जान पड़ता है तब मैं कोअी अच्छी पुस्तक अुठा लेता हूं और पढ़ने लग जाता हूं। पृष्ठ-आधा पृष्ठ पढ़नेही मस्तिष्क स्वच्छ हो जाता है और मैं लिखनेकी स्फूर्ति अर्जित कर लेता हूं। अिसके लिअे यह आवश्यक नहीं कि पुस्तक हिन्दीकीही हो, वह किसी भी भाषाकी हो सकती है। यह देअुसकरजीका मत है जो बड़ा लाभप्रद सिद्ध हुआ।"

पत्रकारोंकी आर्थिक स्थितिपर बातचीत होने लगी तो मैंने अुनसे हिन्दी पत्रकारोंके ट्रेड यूनियनके आधारपर हुअे संगठनका जिक्र किया और कहा कि

अिस समय मुझे तो यही अेक मार्ग पत्रकारोंके हितोंकी रखवाला दिखायी देता है। पराड़करजी अिसमें अपनी असहमति प्रकट करते हुअे बोले— 'ट्रेड हो तो ट्रेड यूनियनकी जरूरत है। हिन्दीमें पत्र लाभकी दृष्टिसे नहीं निकाले गये । अनेक पत्र घाटेमें चले हैं और आज भी चल रहे हैं। अमेरिका और ब्रिटेनकी-सी स्थिति यहाँ नहीं है। वहाँ ट्रेड है अिसलिअे ट्रेड यूनियन भी है। मेरा निजी अनुभव है, जिसके आधारपर मैं कह सकता हूँ कि मालिकोंको कुछ भी नहीं मिलता। मुझसे खराब स्थिति बहुतोंकी नहीं है पर मैं ट्रेड यूनियनके विरुद्ध हूँ। मेरी दृष्टिमें पत्रकारिता अेक मिशन है। मिशन मानता हूँ अिसीलिअे वृद्धावस्थामें भी मेरी यह दशा है कि मैं बिना पत्रका काम किये बीमार हो जाता हूँ। मुझे लगता है कि जब तक मैं यह काम कर रहा हूँ तभी तक जीवित हूँ।"

यहाँ वे कुछ रुके और सहज आवेशमें आकर कहने लगे—"पत्रकारोंकी जो स्थिति खराब है अुसका कारण है और वह यह कि वे बेकारीके कारण अिस पेशेको अपनाते हैं। पहले अैसी बात नहीं थी। पहले लोग नामके लिअे आते थे। दूसरी बात यह है कि अधिक पत्रोंका प्रकाशन भी बन्द होना चाहिये। चुनावोंके जमानेमें तो बरसाती मेंढककी भाँति पत्र निकलते हैं और पत्रकार-कलाकी कलंकित करते हैं। यदि अिसी प्रकारकी स्थिति रहेगी तो पत्रों और पत्रकारोंका स्तर कैसे अूँचा होगा। बीस वर्ष पहले पत्र-संचालकों और पत्रकारोंके सम्बन्धका पता अिससे लगता है कि 'आज' में रहते हुअे मैंने अपना वेतन घटाया था, क्योंकि *'आज' की स्थिति खराब हो गयी थी।* अितपर बाबू शिवप्रसाद गुप्तके आँसू आ गये थे।"

"लेकिन आजके अनेक पूँजीपति पत्र-संचालक बाबू शिवप्रसाद गुप्त नहीं है और अुनकी दृष्टि शोषण की है। अुनसे कैसे भुगता जाअेगा ?"

"अिस सम्बन्धमें मैं यही कहूँगा कि पत्रकारोंको अपनी योग्यता और परिश्रम तथा 'मिशनरी स्प्रिट' से पत्र संचालकोंको यह अनुभव कर देना चाहिये कि बिना अुनके काम चलाना कठिन है।"

जब मैंने अुनसे हिन्दी समाचार-पत्रोंकी वर्तमान दशा और भविष्यकी संभावनाओंके विषयमें पूछा तो अुन्होंने कहा—'हमारे आजके पत्रोंका स्तर बंगला, मराठी और गुजरातीके पत्रोंसे अच्छा है। यह 'प्रताप' तथा 'आज' जैसे मिशनरी पत्रोंके कारण ही हुआ है। 'आज' का विश्वास तो अंग्रेजी पत्रोंसे भी अधिक किया जाता है और विरोधी तक अुसकी प्रशंसा करते हैं। भविष्य भी पत्रोंका बड़ा अुज्ज्वल है। कारण, राजनीतिज्ञोंमें ८० प्रतिशत अंग्रेजी न जाननेवाले हैं और हिन्दी पत्रोंको ही अपनाते हैं। पाठकोंकी संख्या भी बराबर बढ़ रही है। यह शुभ चिन्ह है।"

अन्तमें चाय पीते समय कम्यूनिज्मका जिक्र आ गया। अिस विषयमें अुनका मत था कि मार्क्सवादसे मनुष्य मशीन बनता जा रहा है, जिसमें मेरा विश्वास नहीं है। अर्थशास्त्रकी अतिसे, जिसका मार्क्सवाद हामी है, नैतिकताका ह्रास अवश्यम्भावी है। यदि अैसी व्यवस्था आयी तो आदमी आदमी न रहेगा। अिससे आर्थिक नियमोंको मानवीय नियमोंपर आधारित करना अिस देशके लिअे नितान्त आवश्यक है।

जब मैं चलने लगा तो अपनी जिन्दादिलीका सबूत देते हुअे मजाकमें अुन्होंने कहा— "आपने मुझे दोनों रूपोंमें देख लिया। कल दाढ़ी मूँछके साथ देखा था, आज सफाचट। शायद आपको पता नहीं कि टांग टूट जानेसे पिछले ६-७ महीने बिस्तर पर पड़ा रहता था। हजामत बनवानेमें कठिनाअी होती थी अिसलिअे बनवाता ही न था। अब अच्छा हुआ तो अुसे साफ करा दिया।"

अितपर मैं हँस पड़ा और प्रसन्न हृदयसे नमस्कार कर चला आया।

मेरी दक्षिण-भारत-यात्राके दस दिन

प्राध्यापक विनयमोहन शर्मा अेम अे

दक्षिणके सम्बन्धमें हमारा ज्ञान कितना सीमित है कितना अधूरा है ! हम हर दक्षिणवासीको जिसकी आकृतिपर श्यामल छटा दीख पड़ती है मद्रासी कह देते हैं और हर द्राविड़ भाषाको मद्रासी । नओ भाषा विज्ञानकी पुस्तकोंतकमें तमिळको तामिल लिखा मिलता है । दक्षिणकी भाषाओंका शुद्ध नामोच्चार तक हम नहीं कर पाते और हम कहते हैं भारत अेक है अविभाज्य है ! जिस दक्षिण भारतके आचार्योंने अुत्तर भारतमें पवित्र वैष्णव धर्मका संचार किया जिनके कारण हिन्दीका भक्तिकाल स्वर्ण युग कहलाया अुसी दक्षिणके प्रति हमारी अितनी अुदासीनता चिन्तनीय है । पुरानी सरस्वतीकी फाअिलोंमें राजा रविवर्माके चित्रोंकी बड़ी प्रतिष्ठा थी अुनपर हिन्दी कवि भावमयी कविताअें लिखते थे । मनमें बात अुठती थी— रविवर्माका वह कौन देश होगा जहाँ अितनी मोहक कला पनपती है कौनसे दृश्य चित्रकारके अन्तरमनपर अुल्लासपूर्ण प्रेरणामूर्ति अंकित करते होंगे ? लोगोंसे सुना, वह केरल है । फिर जब दर्शनकी ओर थोड़ी रुचि हुअी तो शंकराचार्यकी जन्मभूमिकी जिज्ञासा बढ़ी । अुनके सम्बन्धमें भी सुना— वह केरल है । वर्षोंसे मन केरलके दर्शनोंके लिअे भीतरही भीतर आकुल था । अिस वर्ष परिस्थितियोंने केरल दर्शनका अवसर ला दिया—

> जो अिच्छा करिहौं मन माहीं ।
> रामकृपा कछु दुर्लभ नाहीं ॥

हाँ तो १३ अप्रैलको मद्रास अेक्सप्रेससे श्रीमतीजी सहित दक्षिण जा रहा हूँ—गाड़ी चली जा रही है गर्मी रंग ला रही है फूलोंके पेड़ोंको देखकर पद्माकरकी पंक्ति याद आ रही है—

> किंशुक गुलाब कचनार औ अनारनकी
> डारन पै डोलत अंगारनके पुंज हैं ।

यहाँ वहाँ आमोंपर बौर लगे हुअे दिखायी देते हैं और अुनमें छिपी कहीं बौराअी 'कोयलिया की कूक' भी कानमें पड़ जाती है पर अिससे मनमें कमी नहीं मालूम पड़ती । राम राम करते रात बीती । सबेरा होते ही बेजवाड़ा पर गाड़ी रुक गयी । कृष्णा नदीका पुल काफी लम्बा है नहर भी बड़ी है । छींद (खजूर)के पेड़ चारों ओर नजर आते हैं । बाँस या खजूरकी छतवाली झोपड़ियाँ खड़ी दिखायी देती हैं । खेतोंकी काली मिट्टी अुर्वरा प्रदेशकी शहादत देती है । ओंटोंके पक्के मकान बहुत कम दृष्टिगोचर होते हैं । प्रातःकाल स्टेशनोंपर फूलोंकी वेणी (मालाअें) बिक रही हैं । सधवा स्त्रियाँ अुन्हें खरीदकर अपने वेणीको सवार रही हैं । रेल्वे स्टेशनोंपर तेलगु हिन्दीमें विज्ञप्तियाँ लिखी हुअी हैं ।
Veg tarian Refreshment room के नीचे शाक अुपाहार गृह अंकित है । हमारे साथ अेक तमिल सज्जन भी यात्रा कर रहे हैं । टूटी फूटी हिन्दी बोल लेते हैं । बातचीतके सिलसिलेमें जब मैंने अुनसे कहा कि त्रावनकोर कोचीन राज्यमें हिन्दीके प्रति जनताका बड़ा अुत्साह है । वहाँ युनिवर्सिटीमें भी बहुत बड़ी संख्यामें छात्र हिन्दी पढ़ते हैं । अिसपर वे बोले— आप जानते हैं वे हिन्दी विषय क्यों लेते हैं ? हिन्दीमें अुत्तीर्ण होना बहुत आसान है । दूसरे विषयोंमें अधिक श्रम करना पड़ता है । तो मैंने कहा हिन्दी सीखना कठिन नहीं है । लेकिन मलयाली हिन्दी सीखकर भी बोल नहीं पाते केवल लिख लेते हैं । ये महाशय मलियालियोंका श्रेय देनेमें बड़े कृपण जान पड़े । अिनके द्वारा दक्षिणके कअी स्थानों और व्यक्तियोंका ज्ञान हुआ । बेजवाड़ासे समुद्रसे दो मीलके अन्तरसे गाड़ी जा रही है । अिधर अुधर बालूके मैदान हैं । खेतोंमें कुअें हैं । नजदीक पानी है । स्त्रियाँ अुतरकर अपनी गगरी भर रही हैं । यह आन्ध्रका सम्पन्न भाग कहा

जाता है। गाडी किसी स्टेशनपर रुक गयी। अेक भिखारी गाता चला जा रहा है—

"संसारम् प्रेम सुधा नवजीवन सारम्, संसारम्"

यह तेलुगु भाषी भाग है। संस्कृत प्रचुर शब्दावलीसे भिखारीके स्वरका भाव हृदयगम हो जाता है। बडी लोच है अुसके कठमें। अिस ओर कच्चे और पके काजू प्लेटफार्मपर बिकते दिखायी देते हैं। गोल काजू, रसदार, कुछ मीठा पर अधिक कसैला होता है। चूसकर खाया जाता है। भुंजा हुआ काजू सोंधा और स्वादिष्ट लगता है। यद्यपि अिस हिस्सेमें यह बहुत पैदा होता है तो भी सस्ता नहीं है। जिस प्रकार नागपुरमें सतरे खूब पैदा होते हैं, परन्तु बाहर निर्यात होनेके कारण मँहगे बिकते हैं, वही हाल यहाँके काजुओंका है। विदेशी अेजेन्ट सब ढो ले जाते हैं। स्टेशनोंपर छोटे पीले केलोंकी छोर भी बहुत दिखलायी देती है। सूर्यास्त होनेके पूर्व ही गाडी मद्रास स्टेशनपर खडी हो गयी। हमें त्रिवेन्द्रम जाना था। अत: हम यहाँसे अुतरकर मद्रासके मोटर गेजके स्टेशन अेगमोर पहुँचे। मद्रास स्टेशनपर अेक अपरिचित तरुणने बडा सौजन्य प्रदर्शित किया। वह हमें टेक्सी कराकर अेगमोर ले गया। टिकटघरमें प्राय सभी महिला कर्मचारिणी थी। अेकने टिकिटकी चिट्ठी काटी, दूसरीने टिकिट दी, तीसरीने टिकिट नम्बर नोट किये और टिकिट कलेक्टरके नाम अेक चिट दी जिससे वह हमें सुरक्षित स्थानपर आसीन कर दे। प्लेटफार्मपर बहुत देरतक त्रिवेन्द्रम अेक्सप्रेस नहीं आयी। हम प्रतीक्षा कर ही रहे थे कि अेक लुगी धारी गौर वर्ण महाशय मेरे पास आकर पूछने लगे कि 'आप ही शर्मा हैं न?" मैंने कहा, "जी हाँ"। 'मेरी साली मीनाक्षीने आपके यहाँ आनेकी सूचना दी थी, मेरे लायक कोअी काम हो तो बताअिये"। मैंने कहा, "विशेष तो कुछ नही है"। फिर भी वे दौडे-दौडे दो चार कचालियाँ, दाल और फल ले ही आये। बडी आत्मीयता प्रदर्शित की। अुनकी साली मीनाक्षी मैसूरमें रहती है। अुन्होंने नागपुरसे हिन्दीमें अेम. अे अुत्तीर्ण किया है। यही अुनकी आत्मीयताका कारण था।

रातभर त्रिवेन्द्रमकी ओर गाडी बढती गयी। प्रात मधुराय (मदुरा) आया। चारों ओर मदिरोंके दर्शन हुअे। मदुराय मदिरोंका नगर ही कहलाता है। बेजवाडाके पूर्व जहाँ धरती सूनी और सूखी दिखायी देती थी, वहाँ अुसके बादमें वह हरी-भरी हो जाती है। क्योंकि यहाँ तो—

"मेहा बरसिबो करे रे।
नान्हो नान्हो बूँद मेघ घन बरसे
सूखे सरवर भरे रे।"

अैसे मनोरम दृश्योंको देखकर मनमें अुल्लासकी सीमा नहीं रह जाती। पर जब यह कल्पना अुठती है कि यह सुन्दरता शीघ्र ही आँखोंसे ओझल हो जाअेगी, तब ये पक्तियाँ स्मरण हो आती हैं—

"बहुत दिना पै पीतम पायो
बिछुरनको मोहि डर रे।"

त्रावणकोरकी सीमा लगते ही भूमि तृण और जनसकुल हो जाती है। पग-पगपर खेत, खलिहान और छोटे बडे घर दिखलायी देने लगते हैं। हरे पहाड-पहाडियों और मैदानोंको देखकर जी हरा हो जाता है। नारियल, कदली और खजूरके बडे-बडे वन खडे हुअे हैं। हर मकानके आँगनमें नारियलके दस-पाँच पेड लगे हुअे हैं। ताड तमालकी जोडी भी भली लगती है। त्रावणकोरको दक्षिणका कश्मीर कहा जाता है। यहाँ नारियलके पेडके विभिन्न अंगोंसे पूरा मकान बना लिया जाता है। कोलम स्टेशनके बडी दूरतक समुद्रका जल पृथ्वीके भीतर प्रविष्ट होकर कोचीन 'हारबर' तक जाता है, जिसे 'बैक वाटर्स' कहते हैं। अिसके दोनों ओर नारियलके पेडोंकी कतारें लगी हुअी हैं। लोग नौका और छोटे जहाजोंमें कोचीन तककी यात्रा कर सकते हैं। ससारके रमणीक स्थानोंमें अिसकी गणना है।

मलयाली स्त्रियाँ श्वेत अुज्ज्वल रगकी साडियाँ अधिक पसद करती हैं और तमिल स्त्रियाँ लाल और हरे रगकी। अिस प्रदेशके अधिकाश स्त्री पुरुषोंको देखकर अैसा जान पडता है मानो अुन्होंने अपना समस्त सौंदर्य प्रकृति देवीको प्रदान कर दिया है। अिसीलिअे

तो प्रकृति यहां अितनी अधिक मनमोहक बन गयी है कि—

ज्यों ज्यों निहारिय नरे ह्वे ननन
त्यों त्यों खरी निसर सुनिकाअी।

असा जान पडता है कि यगोनक देखनपर भी हमारे नत्रोंकी तप्ति नहीं होती।

जनम अवधि हम रूप निहारल
नयन न तिरपत भल विद्यापति।

शामको गाड़ी त्रिविन्द्रम पहुंच गयी यहां हिन्दीके पुराने राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचारक प्राध्यापक बन्धुओंसे भेंट हुअी। अुनमें मस्थ्री चन्द्रहासन चिदम्बरम कुमारी जोशुआ विलायुधन पी के केशवन नायर अय्यर अग्रहम आदि तो प्राय हमारे साथ ही रहे अिनकी हिन्दीके प्रति निष्ठा प्रशसनीय है। अिन्होंने अपने मनोस हिन्दी प्रचार सभामें हिन्दी सीखनके मधुर अनुभव सुनाये। अिनमें कअी तो राष्ट्रभारती के सम्पादक श्री हृषीकेश शर्माके शिष्य थे जो अपने गुरुके प्रति बडी श्रद्धा भावना रखते थे। आजसे ३५ वर्ष पूर्व अत्तर भारतके जिन सज्जनोंने राष्ट्र सेवा भावनासे प्रेरित होकर दक्षिण भारतमें हिन्दी प्रचार कार्य किया अुनमें अिनकी बडी ख्याति है—प प्रतापनारायण वाजपेयी प हृषीकेश शर्मा प अवधनन्दन प देवदूत विद्यार्थी प रघुवरदयालु मिश्र प रामानन्द शर्मा प ब्रजनंदन शर्मा श्री जमुनाप्रसाद। मध्यप्रदेशके दो ही व्यक्ति थे—अेक हृषीकेशजी और दूसरे जमुनाप्रसादजी (अिनका देहान्त हो गया है)। अिनके साथ दक्षिणके प हरिहर शर्मा शिवराम शर्माकी भी हिन्दी सेवाअें अत्यन्त मूल्यवान हैं। यहां लोगोंने बतलाया कि या तो अुत्तरसे बहुतसे सज्जन दक्षिणमें हिन्दी कार्यके सम्बन्धमें आये पर वे अधिक समय तक ठहर नहीं सके। प रघुवरदयालजी और अवधनन्दनजी तो अब तमिळ प्रान्तमें अितने अधिक अेकाकार हो गये हैं कि अुन्हें भिन्न प्रान्तीय मानना ही अप्रस्तुत सा है। दोनोंका तमिळ भाषापर अच्छा अधिकार है।

त्रिविन्द्रममें दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार-सभाका कार्य बडी क्षिप्रगतिसे चल रहा है। केरलके ६०२ हाअीस्कूल और अिन्टर कालेजोंमें हिन्दी पढ़ायी जाती है। त्रावणकोर विश्वविद्यालयमें बी अे तक हिन्दी विषयका अध्यापन होता है वहां अिसवर्ष केवल अिन्टर-मीडियट परीक्षामें लगभग पांच हजार छात्र छात्राअें अच्छिक रूपमें हिन्दी विषय लेकर बैठी थी। बी अे में पांच सौ से अधिक विद्यार्थी हिन्दी लेकर रहे। यहां बी काम और बी अेस-सी में भी हिन्दीका अेक प्रश्न पत्र अनिवार्य है। केरलमें सुदूर कन्याकुमारी तक हिन्दीके प्रति जनतामें बहुत अुत्साह है। हिन्दीका संस्कार सस्कृतिसे सम्बद्ध हो गया है।

सभ्रान्त परिवारमें स्त्रियोंका हिन्दी सीखना अुतना ही आवश्यक है जितना संगीत और नृत्य। अिन स्त्रियोंमें विनोदमें यहां कहा जाता है— हिन्दी? अरे यह तो लडकियोंका विषय है। त्रावणकोर विश्वविद्यालयसे सम्बद्ध प्राध्यापकोंमें श्री चन्द्रहासन हिन्दीके पुराने लेखक हैं स्व प्रेमचन्द और श्री कन्हैयालाल मुंशी द्वारा सम्पादित हंस में अिनके लेख छपते रहे हैं। अिधर दिल्लीके देवनागर में भी अिनके मलयालम साहित्य परिचयात्मक लेख छप रहे हैं। जिन्होंने केरलमें हिन्दी प्रचारका बहुमूल्य कार्य किया है कुमारी जोशुआजी विश्वविद्यालयके महिला महाविद्यालयकी वरिष्ठ प्राध्यापिका हैं। पूर्ण खादीधारी और गांधीवादी हैं। वर्धामें गांधीजीके आश्रममें काफी समय तक रह चुकी हैं। हिन्दीमें अेम अे हैं। अिन्होंने श्री जिलाचन्द्रजीके संन्यासी श्री रामकुमार वर्माके रेशमी टाअी और श्री पृथ्वीनाथ शर्माके अपराधी का मलयालममें अनुवाद किया है। मलयालममें अिन्होंने सेवासदन नामक अुपन्यास भी लिखा है। आप अीसाअी महिला हैं और सर्वथा निरामिष भोजी हैं। केरलमें कअी अीसाअी परिवार ब्राह्मणकी नाअी सात्विक आहारी हैं।

प्रा चिदम्बरम् कअी तमिल कहानियोंका हिन्दी अनुवाद किया है। राष्ट्रभारती में राष्ट्रकवि तमिळके सुब्रह्मण्य भारतीके काव्य गीत छप रहे हैं। और प्रतिमा में तमिलकी कहानी क्रमशः आ रही है। श्री अय्यरने भी कअी छात्रोपयोगी रचनाअें की हैं। श्री विलायुधनमें भी लिखनेकी प्रवृत्ति है।

त्रिविन्द्रमके बाजारोंमें आपको बहुतसे स्त्री-पुरुष नंगे पैर चलते दिखलायी देते हैं। अिसका कारण यह है कि यहाँ प्राय: बारहों महीने बून्दा-बाँदी होती रहती है। अिसलिअे कीचड़से बचनेके लिअे लोग प्राकृतिक ढंगसेही नंगे पाँव चलते हैं। लुंगी, कुर्ता पुरुषोंका और अधिकांश शुभ्र साड़ी स्त्रियोंका परिधान है। विश्व-विद्यालयके कार्यसे निवृत्त होकर सबसे पहिले मैंने समुद्र दर्शनकी अिच्छा की। प्राध्यापक चन्द्रहासन और विलायुधनके साथ हम हवाअी अड्डेको छूते हुअे समुद्र तटपर गये। यहाँ समुद्र बड़ा अुग्र है। खूब आवाज करता है। सामने दूरसे लहरें छोटी-छोटी किश्तियोंके समान हिलती-डुलती चली आ रही हैं। अेकके बाद अेक अूपर अुठती जा रही है, पहाड़-सा बना रही हैं। अेकही समयमें न जाने कितने पर्वत बन रहे हैं—मिट रहे हैं। लहरें दौड़ती हुअी चली आ रही हैं, हमारे पैरोंको छूकर न जाने कितनी दूर पीछे चली गयीं। हम अुनमें घिर गये। वे हमें बहाना चाहती हैं, पैर जमीनसे अुखड़ना चाहते हैं, हम प्रयत्न कर अुन्हें जमाये हुअे हैं, बस क्षणभरहीमें लहरें हमें छोड़कर भाग गयीं, हमारे गीले पैर पानीसे दूर हो गये-लगता है लहरें अब नहीं आअेंगी पर कुछही क्षणोंमें फिर टकराकर झोंका आया और हमारे पैरोंपर बिखरकर हमें पुनः घेरकर पीछे और फिर तेजीसे आगे दौड़ गया। हम लहरें लेनेमें अभ्यस्त हो गये। पैर जमे रहते हैं। लहरें आती हैं—जाती हैं। अब भय नहीं लगता, आनन्द आता है। कुछ फासलेपर मछुअे अपनी नौका लहरोंमें डाल रहे हैं। वह देखो, दो मछुओंने अपनी कश्ती लहरोंमें फेंक दी, वे भयंकर समुद्रमें जाना चाहते हैं। लहरें कश्तीको बार-बार अूपर नीचे कर रही हैं। लगता है, डूब गये। बड़े समयके बाद मछुअे समुद्रकी सतहपर नौका खेते दिखलायी दिये। प्रकृतिपर विजय पाकर ही मनुष्य दम लेता है। सामने बहुतसे मछुओंकी नावें समुद्रमें तैर रही हैं। समुद्र जब कुपित होता है तब न जाने कितने मछुओंकी वह समाधि बन जाता है। यों जब प्रात मछुआ घरसे निकलता है, वह शामको वापस लौटनेकी शपथ नहीं ले सकता। वह समुद्रके गर्भमें निर्दयताकी लहरोंसे खेलता है जो अुसके सरपर मौत बनकर नाचती रहती है।

समुद्र-दर्शनके पश्चात् हम लोग अुस अजायब-घरमें गये जहाँ समुद्रकी तरह-तरहकी मछलियों, सर्पों, केकड़ों आदि प्राणियोंको रक्षित रखा गया है। कहा जाता है कि भारतमें यह मत्स्यालय अपने ढंगका अेक ही है। यहाँसे हम 'अनन्त शयनम्'का मंदिर देखने गये। मंदिरमें सिला हुआ वस्त्र या जूता पहनकर जाना निषिद्ध है। महिलाओंको साड़ी सिला वस्त्र न होनेके कारण मंदिरमें प्रवेश पा सकती है। मंदिरमें मूर्तिकी विशालता दर्शनीय थी। वहाँ बड़ा भारी 'हाल' था जहाँ पहिले हजारों ब्राह्मण भोजन किया करते थे। दक्षिणके विशाल मंदिरोंकी कला अपना अलग ही वैशिष्ट्य रखती है।

त्रिविन्द्रमसे कन्या कुमारीतक लगातार बस्ती होनेसे अैसा जान पड़ता है मानो त्रिविन्द्रमही पचास मीलतक चला गया हो। अितनी घनी आबादी भारतके किसी भागमें नहीं। मार्गमें गाड़ीके पंक्चर हो जानेसे हम अेक निकटवर्ती कुअेंपर गये जहाँ तमिल स्त्रियाँ ताड़की बनी हुअी बाल्टीसे पानी खींच रही थीं। अुन्होंने हमें प्यासा अनुमान कर स्वयं पानी पिलाया। अुन्हें हम अजनबियोंको देखकर कुतूहल होता था और हमें अुनके नीचेतक लटके फटे कानोंमें सोनेके कर्णफूल देखकर आश्चर्य होता था। अैसा जान पड़ता था कि कान अब अधिक भार न सहकर फट ही पड़ेंगे। दक्षिणमें मामूली स्त्रियाँ सोनेके आभूषण पहनती हैं। सभ्रान्त परिवारकी स्त्रियाँ हीरे, मोती, जवाहरातको काममें लाती हैं। सोना अुनके लिअे हलकी धातु है।

हम सूरज डूबनेके पहिले कन्या कुमारी पहुँच गये। समुद्रतीरपर भव्य दृश्य देखकर आनंदित हो गये। तीन समुद्रोंका मिलन! हमारे सम्मुख हिन्द महासागर, दायीं ओर अरब सागर और बायीं ओर बंगालकी खाड़ीका जल अुछल अुछलकर तरंगित हो रहा था। बहुतसे नर-नारी समुद्रमें सूर्यास्त देखनेके लिअे अुत्सुक थे, पर बादल सूर्यको रह रहकर ढाँक लेते थे। संसारमें यही स्थान है जहाँ सूर्य समुद्रमें डूबता और समुद्रसे अुगता है। हम सूर्यास्तका दृश्य देखनेके लिअे अस्त-दिशाकी ओर आँख गड़ाये रहे, पर बादलोंने सूर्यको अपने आंचलसे मुक्त

नही दिया धीरे धीरे आकाशमें चद्रकी रेखा चमकने लगी। बादल सूर्यको डुबाकर ही छटे। निराश लौटकर हम कुमारी मदिरमें पार्वतीके दर्शनके लिये गये। यहाँ भी 'अुघारे बदन' जाना पडता था। यहाँकी पार्वतीके सम्बन्धमें अेक कथा है कि जब अिनका शिवसे परिणय होनेवाला था, शिवजीकी बरात वहाँ तक नही पहुँच पायी। कुमारी पार्वती अुनकी खोजमें चली गयी पर अुनका पता नही चला। सवेरा होनेपर ज्ञात हुआ कि शिवजी शुचिन्द्रम् तक आ गये हैं। पर विवाहका मुहूर्त रात ही में था। अत पार्वतीजीको अुदास होकर अपने निवास-स्थानपर लौट आना पडा और तभीसे वे 'कन्या-कुमारी' कहलाकर अिस मन्दिरमें 'वास' करती हैं। मन्दिर समुद्रके किनारे है, जहाँ समुद्रकी शोभा अवर्ण्य है। रातको दूरसे आते हुअे जहाजोंका प्रकाश समुद्रपर तैरता हुआ दीपक-सा जान पडता है। कन्याकुमारीसे लौटते समय हमने शुचिद्रम्के भव्य मन्दिरके दर्शन किये। अिसका 'गोपुरम्' (मन्दिरद्वार) काफी अूँचा है। भीतर काले पत्थरकी विशाल हनुमानकी मूर्ति है। यह मुख्यत शिवमदिर है। शिवका सजीव नादिया भी दर्शनीय है। मन्दिरके अेक प्रस्तर स्तभकी यह विशेषता है कि अुसे हाथसे ठोकनेपर धीमी धीमी सुरीली आवाज निकलती है 'सरगम' के समान।

त्रिविन्द्रम् जिसे तिरुअनन्तपुरम् भी कहते है रातको लौट आये। त्रिविन्द्रम् और कन्याकुमारीके बीचकी भूमि सुपारी काजू केला, नारियल, धान आदिसे अुर्वरा है। समय कम होनेसे मलयालमके कअी साहित्यकारोसे भेंट नही हो पायी। पर यह जानकर हर्ष हुआ कि मलयालम् भाषामें भी तुलसी-कृत रामायणका अनुवाद हो चुका है। मलयालम साहित्यमें यौन-विषयक कृतियोंका चलन अधिक बढा है प्रगति-वादकी भी लहर है।

दूसरे दिन विश्राम कर रातको मदुरा रवाना हो गये। हमारे मित्र प्रा चिदम्बरमने वहाँके हिन्दी प्रचार सभाके कार्यकर्ताओंको हमारे आनेकी सूचना दे दी थी। त्रिविन्द्रम्में चन्द्रहासनके अतिरिक्त श्री पी के केशवन नायर, कुमारी जोशुआ, चिदम्बरम् भारद्वाज और अेब्राहम्ने हमारे लिअे बहुत कष्ट अुठाये, जिसके लिअे हम अुनके कृतज्ञ हैं। मदुरामें या मदुराअीमें श्री गुरुस्वामी और अुनके सहयोगी श्री रत्नसभापतिने हमें वहाँके दर्शनीय स्थल दिखलाये जिनमें मीनाक्षीका मन्दिर देशप्रसिद्ध है। यह बहुत विस्तीर्ण है जो कअी गोपुरम्से घिरा हुआ है। गोपुरम् "अूँचा गुबदके समान द्वार" है जिसमें अनेक मूर्तियोंमें पौराणिक गाथाअें अकित हैं। मन्दिरके प्रत्येक खम्भेपर सिंह हाथीके अूपर सवार दिखलाया है। ये बडी सजीव मूर्तियाँ हैं। यहाँ अेक हजार खम्भोवाला बडा 'हॉल' है, जहाँ हजारो नर नारी प्रसाद-पान कर सकते हैं। मन्दिरोंकी कलामें प्राचीन भारतीय संस्कृति बोलती है। दक्षिणके मदिरोंमें कुछ दाक्षिणात्य सन्तोंकी प्रतिमाअें हैं, जो सख्यामें कदाचित ६३ हैं। मन्दिरोंमें अिनकी वाणियोंका अध्ययन, मनन होता रहता है।

शामको मदुरामें हिन्दी प्रचार सभामें स्थानीय साहित्यिकोंकी अेक गोष्ठी भी हुअी जिसमें तमिल साहित्यके विद्वानोंने भी भाग लिया। ज्ञात हुआ तमिलके कवि कम्बरकी तुलना तुलसीसे की जा सकती है। तमिल भाषा सर्वथा अपने पैरोंपर खडी हो सकती है, अुसे सस्कृतकी बैसाखी लेनेकी बिलकुल आवश्यकता नही। हिन्दीके प्रति यहाँ बडा अुत्साह पाया गया। नगरके कअी स्थानोंमें पुरुष और स्त्री-वर्ग चल रहे है, जहाँ शिक्षिता महिलाअें पढती पढाती हैं।

वहाँसे रामेश्वरम् धनुष कोटि भी गये। धनुष कोटिसे लंका थोडे ही फासलेपर रह जाता है। 'अगिन बोट' आती जाती है। यहाँ तीर्थयात्री समुद्रकी लहरोंमें स्नान करते हैं। रामेश्वरम्में मदिर तो विशाल है पर स्वच्छता नहीं। कअी तीर्थ-कूप हैं, जिनका पानी मीठा है। यहाँ भी हिन्दी जाननेवालोंकी कमी नहीं है। अेक होटलके स्वामी तो धडाकेके साथ हिन्दी बोलते थे। वे कअी भाषाओंके जानकार मालूम हुअे। रामेश्वरम्से लौटते हुअे हम त्रिचिनापल्ली गये। यहाँ हमने तमिल-नाड हिन्दी प्रचार सभामें श्री अवधनन्दनजीका आतिथ्य ग्रहण किया। यहाँ सभाका हिन्दी कार्य बहुत प्रगतिपर है।

त्रिचिनापल्लीके निकट ही श्री रंगमका मंदिर दर्शनीय है। वह कावेरी नदीके द्वीपमें बना हुआ है। त्रिचिनापल्लीमें सैकड़ों सीढ़ियां चढ़नेके बाद बहुत ऊंचाईपर एक विशालका मन्दिर है। यहांसे नगर और नदीका दृश्य बड़ा सुन्दर दिखायी देता है। यहांकी धरती शस्यश्यामला है। धानकी सालमें तीन फसल होती है। यह तमिलनाडका प्रमुख नगर है। यहीं भी चर्चामें ज्ञात हुआ कि तमिल साहित्य बहुत प्राचीन है उसकी धारा अखण्ड रूपसे चली आ रही है। संस्कृतके सम्पर्कमें आनेसे उसमें संस्कृत शब्द आ गये हैं। पर अब शुद्ध चुन चुनकर बहिष्कृत किया जा रहा है। श्रवणनन्दनजी तमिल भाषा, साहित्य और संस्कृतिका विस्तृत इतिहास लिख रहे हैं। इन्होंने ज्ञात हुआ कि तमिलका जो व्याकरण ईसाके चार शताब्दीपूर्व लिखा गया था वह आज तक चल रहा है। तमिलका एक ही रूप सभी जगह बोला जाता है उसकी उप भाषाएं नहीं हैं।

त्रिचिनापल्लीसे मद्रास आये। यहां हमने हिन्दी प्रचार-सभाके संयुक्त मंत्री श्री रघुवरदयालु मिश्रके यहां एक दिन ठहरकर आतिथ्य प्राप्त किया। सभामें श्री वेंकटाचल शर्मासे जो साहित्य विभागमें काम कर रहे हैं और जो दक्षिणी भाषाओंके अतिरिक्त हिन्दीके अच्छे अध्ययनशील विद्वान हैं भेंट हुई। इनके कभी निबन्धोंसे इनकी हिन्दी साहित्यमें गतिका परिचय मिलता है। श्री सत्यनारायणजीकी जो सभाके मंत्री हैं कार्य कुशलता सभाको दक्षिणमें हिन्दीके प्रमुख विद्यापीठका रूप प्रदान कर रही है। यहांसे हिन्दीके बहुतसे अध्यापक अध्यापिकाएं प्रतिवर्ष शिक्षा ग्रहण कर दक्षिणके अनेक शालाओं तथा विश्वविद्यालयके कालेजोंमें हिन्दी अध्यापन-कार्य कर रहे हैं। महावीर श्री शास्त्रीजी तथा सिद्धनाथ पंतके दर्शन हुए जो सभाकी विभिन्न प्रवृत्तियोंमें निःस्वार्थ भावसे सहयोग दे रहे हैं। श्री रघुवरदयालु मिश्र तो श्री सत्यनारायणके दाहिने हाथ ही हैं। महात्माजीने जब मद्रासमें हिन्दी प्रचारका नाद उठा तब हृदयेशजीके साथ-साथ रघुवरदयालुजी भी 'सभा' में पहुंचे थे। तबसे आजतक हिन्दी-राष्ट्रभाषाको अपनी मानकर वे 'सभा' में कार्य कर रहे हैं। मद्रासमें मिश्रजीकी गृहस्वामिनी ही निकट थी और रामानन्दजीसे भेंट हुआ। निकटताका सुख हुई थी बड़ी मधुर लगी उनकी कविताके समान ही। दक्षिणमें कभी जो हिन्दी भाषाभाषी सज्जन हिन्दीकी सेवा कर रहे हैं। तनालीके श्री कस्तूरी वरदा चौधरी हिन्दीमें अच्छी कविताएं लिखते हैं। उनका 'स्पन्दन' कविता संग्रह प्रकाशित हो चुका है। इन दिनों प्रसिद्ध बालसाहित्यके पत्र 'चन्दामामा' के सम्पादकीय विभागमें कार्य कर रहे हैं। श्री अ. रमेश चौधरीने "भगवान भला करे" नामक कहानी संग्रह भी प्रकाशित किया है। ये कहानियां उनकी मौलिक सूझी हैं। श्री रघुवरदयालुजी मिश्रने बतलाया कि कि हजार पुष्ट कालमें पणि प्रवाल नामक बहुत पुराना हस्त लिखित ग्रंथ है जिसमें अन्य भाषाओंके साथ साथ हिन्दीमें भी रचना है। अध्यात्मके कोई व्यावहारिक सज्जन भी हिन्दीमें काव्य रचना की है। मद्रास सरकारकी "दक्षिण भारती" अच्छी पत्रिका निकल रही थी, जिसके सम्पादक श्रीरामानन्द शर्मा थे।

मद्रासमें अड्यार पुस्तकालय बहुत सुन्दर है। पर आज वाचनालय बन्द था। यहांका जगत्प्रसिद्ध वट-वृक्ष दर्शनीय है। इसका लम्बाई उत्तरसे दक्षिणकी ओर २२० फुट और चौड़ाई पूरबसे पश्चिमकी ओर २०५ फुट है। क्षेत्रफल ४०,००० वर्ग फुटसे भी अधिक है। इसके नीचे अनेक बार थियोसाफिकल सोसाइटीकी अनेक महत्वपूर्ण सभायें की हैं। डाक्टरका यह विश्रामस्थल बना हुआ है। श्री डाक्टरकी मृत्युके पश्चात आत्माकी शान्ति निमित्त हो गया है।

मद्रासका समुद्रतट बहुत सुन्दर है। शामको मेला-सा लग जाता है। सैलानियोंका रातके ८ बजे तक मद्रासके स्त्री बालकका भाग अपना कार्यक्रम चलता रहता है। जिन्होंने कन्याकुमारीका सागर देखा होगा उन्हें मद्रासका समुद्र बड़ा दृश्यमें जमीन आसमानका अन्तर दिखायी पड़ेगा। उधर पाश्चात्य ढंगके मकान और बसके नगर हैं और इधर भारतके सागरकी चरम सीमा जो हमें मुग्ध बनाती है।

मद्रासमें दक्षिण भारत साहित्य कला सुन्दर का समन्वय स्थल है। सच बात तो यह है कि

जिगर अब भी खाली नहीं है
दुनिया दाश्ताओंसे।
कोई दर्द तो कर ले
देखनेवाला नजर करले।

सभ्यताका संकट

: श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर :

[स्व० गुरुदेव कविके अन्तिम जन्मोत्सव समारोहपर दिये हुअे भाषणका सारांश]

आज मेरी अुम्रके अस्सी बरस पूरे हुअे। मेरे जीवन क्षेत्रकी विस्तीर्णता आज मेरे सामने फैली हुअी है। पूर्वतम दिगन्तमें जिस जीवनका आरम्भ हुआ था अुसके दृश्यको दूसरे छोरसे आज निःसंग दृष्टिसे देख पा रहा हूँ और अनुभव कर पा रहा हूँ कि मेरे जीवनकी तथा सारे देशकी मनोवृत्तिकी परिणति द्विखण्डित हो गयी है। अिस विच्छिन्नतामें गहरे दुःखका कारण छुपा हुआ है।

'सिविलिजेशन' का—जिसे हमने सभ्यता नाम देकर अनूदित कर लिया है—कोअी सच्चा प्रतिशब्द अपनी भाषामें पाना आसान नहीं। अिस सभ्यताका जो रूप हमारे देशमें प्रचलित था, मनुने अुसका नाम दिया था सदाचार। दूसरे शब्दमें यह कुछ अेक सामाजिक नियमोंका बन्धन था। अिन नियमोंके सम्बन्धमें जो धारणा पुराने समयमें प्रचलित थी वह भी अेक सँकरे भूगोलखण्डमें आबद्ध थी। सरस्वती और दृषद्वती नदियोंके बीचका जो देश ब्रह्मावर्तके नामसे प्रसिद्ध था अुसी देशमें परम्परासे प्रचलित आचारको सदाचार कहा जाता था। अर्थात् जिस आचारकी नींव प्रचलित प्रथापर ही खड़ी थी—चाहे अुस प्रथामें कितनी ही निष्ठुरता, कितना ही अन्याय क्यों न हो। सदाचारके जिस आदर्शको अेक समय मनुने ब्रह्मावर्तमें प्रतिष्ठित देखा था, अुसी आदर्शने क्रमशः लोकाचारका सहारा ग्रहण किया। मैंने जिस समय जीवन प्रारम्भ किया था, अुस समय अंग्रेजी-शिक्षाके प्रभावसे अिस बाह्य आचारके विरुद्ध देशके शिक्षित मनमें विद्रोह फैल गया था। जिस सदाचारके स्थानपर हमने सभ्यताके आदर्शको अंग्रेज जातिके चरित्रसे साथ मिलाकर अपना लिया था। हमारे परिवारमें यह परिवर्तन न्यायबुद्धिके अनुशासनपर—यथा धर्ममें और क्या लोकव्यवहारमें—पूर्णतया ग्रहण कर लिया गया था। मन अैसी ही भावनाके बीच जन्म लिया था और अिसीसे मेरा हमारा स्वाभाविक साहित्यानुरागने अंग्रेजोंको अुच्च आसनपर प्रतिष्ठित किया था। यह हुआ जीवनका प्रथम भाग। अुसके बाद ही मेरे कठिन दुःखके बीच परिवर्तन होना शुरू हो गया। मैंने बराबर देखा कि जिन्होंने सभ्यताको चरित्रसे अुनसे निकाली हुअी वस्तुके रूपमें स्वीकार किया था, वे ही रिपुकी प्रेरणासे किस प्रकार अुसे अुत्पन्न भी कर सकते हैं।

अेक दिन मुझे अेकान्त साहित्य रसके अुपभोगके अुपकरणोंके घेरेसे बाहर निकल आना पड़ा था। अुस दिन भारतवर्षके जनसाधारणकी जो निदारुण दरिद्रता मेरे सामने प्रकट हुअी, वह हृदयविदारक थी। सभ्य समाजकी महिमाके ध्यानमें अेकान्त चित्तसे डूबा हुआ था, तब कभी किसी सभ्य नामधारी मानव आदर्शके अितने बड़े निष्ठुर, विकृत रूपकी कल्पना भी नहीं की थी। अन्तमें अेक दिन अिसी विकारके भीतरसे बहुकोटि जनताके प्रति सभ्य जातिकी अपरिसीम अवज्ञा-पूर्ण अुदासीनताको भी देखना पड़ा। भारतवर्ष अंग्रेजोंके सभ्य शासनकी भीमकाय चट्टानको छातीपर रखकर निरुपाय निश्चल होकर नीचे पड़ा रहा। किस प्रकार यूरोपीय जातिकी स्वभावगत सभ्यताके प्रति क्रमशः विश्वास खो गया, अिसीका शोचनीय अितिहास मुझे यहाँ आज दुहराना पड़ा।

सभ्य शासनकी चालनासे भारतवर्षकी जो सबसे बड़ी दुर्गति आज सिर अुठाये है, वह केवल अन्न-वस्त्र-शिक्षा और आरोग्यका शोकावह अभाव ही नहीं है, वह है भारतवासियोंके बीच अत्यन्त नृशंस आत्म-विच्छेद। अिस विदेशी सभ्यताने यदि अिसे सभ्यता कहते हो, हमारा क्या कुछ लूट लिया, यह हम जानते

है ! अुसीके स्थानपर हाथमें दण्ड लेकर अुनने जिसकी स्थापना की है अुसका नाम दिया है Law and order, विधि और व्यवस्था—जो अेकबारगी बाहरकी चीज है, अेक किस्मकी दरबानी मात्र है। पाश्चात्य जातिके सभ्यता अभिमानके प्रति श्रद्धा बनाये रखना असाध्य हो अुठा है। अुन्होंने अपना शक्तिरूप हमें दिखाया, मुक्ति-रूप वह नहीं दिखा सकी। अर्थात् मनुष्य मनुष्यके बीच जो सम्बन्ध सबसे अधिक मूल्यवान् है, जिसे यथार्थ सभ्यता कहा जा सकता है, अुसीकी कृपणताने भारतीयोंकी अुन्नतिका रास्ता बिलकुल बन्द कर रखा है। फिर भी अपने व्यक्तिगत जीवनमें सौभाग्यसे बीच-बीचमें महदाशय अंग्रेजोंके साथ मेरा मिलन हुआ है, जिनका परिचय मेरे जीवनमें अेक श्रेष्ठ अैश्वर्यके रूपमें संचित रह गया है। यदि जिन्हें न देखता और न जानता तो पाश्चात्य जातिके सम्बन्धमें मेरी निराशा कहीं प्रतिवादही न पाती।

भाग्यचक्रके परिवर्तनसे किसी-न-किसी दिन अंग्रेजोंको भारत-साम्राज्य त्याग करके जाना ही होगा। किन्तु अुस दिन वे किस भारतवर्षको—कैसी श्रीहीन दीनताके कूड़े कर्कटको अपने पीछे छोड़कर जायेंगे ! अेकाधिक शताब्दियोंकी शासनधारा जब सूख चुकेगी, तब यह कैसी विस्तीर्ण पङ्कशय्या दुर्विषह निष्फलताका ढोती रहेगी ! जीवनके प्रथम आरम्भमें समूचे मनसे यूरोपकी सम्पद-अन्तरकी जिस सभ्यताके दानपर विश्वास किया था। और आज अपनी विदाके दिन वही विश्वास अेकबारगी दिवालिया हो बैठा। आज यही आशा किये हूं कि हमारी जिसी दारिद्र्यलाञ्छित कुटियामें ही परित्राणकर्त्ताका जन्म दिवस आ रहा है, प्रतीक्षा किये रहूंगा कि सभ्यताकी देववाणीको लेकर वह आयेगा, मनुष्यके चरम आश्वासकी वाणीको वह मनुष्यके कानों तक पहुंचायेगा—जिसी पूर्व दिगन्तसे ही ! आज अुस पारकी ओर यात्रा शुरू कर दी है—पीछेके घाटपर क्या देख आया—क्या छोड़ आया—जितिहासके तुच्छ अुच्छिष्ट सभ्यताभिमानका कैसा परिकीर्ण भग्नस्तूप ! किन्तु मनुष्यके प्रति विश्वास खो देना पाप है, अुस विश्वासको अन्ततक रक्षा करूंगा। आशा करूंगा कि महाप्रलयके पश्चात् वैराग्यके मेघमुक्त आकाशमें जितिहासका अेक निर्मल आत्मप्रकाश कदाचित् आरम्भ होगा—जिसी पूर्वाचलके सूर्योदयके दिगन्तसे ! अेक दिन फिर अपराजित मानव अपनी विजय-यात्राके अभियानमें समस्त बाधाओंको लांघता हुआ अग्रसर होगा—अपनी महान् मर्यादाको वापस पानेके पथपर ! मनुष्यके अन्तहीन प्रतिकाररहीन पराभवको चरम मानकर। अुसपर विश्वास करनेको मैं अपराध समझता हूं।

आज यही कहकर जाअूंगा—प्रबल प्रतापशालीकी क्षमता, मदमत्तता और आत्मम्भरिता भी निरापद नहीं—जिसके प्रमाणित होनेका दिन आज आ गया है, निश्चित रूपसे यह सत्य प्रमाणित होगा ही कि :

"अधर्मेणैधते तावत् ततो भद्राणि पश्यति।
ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति॥"

: अनुवादक—श्री मोहनलाल वाजपेयी :



सरस्वती-पुत्रोंके प्रति !

श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन

बात काफी पुरानी है और यूं है भी अयन्त साधारण। १९३७ में में लगभग अक महीना चटगांवमें रहा। शायद कुछ अधिक ही। सारा बर्मा मलेरियासे पीड़ित। अक विहारसे कुछ स्वस्थ होकर दूसरे पासके विहारमें जाता। यहां जाकर फिर गिर पड़ता। सेवा सुश्रूषाकी वहां भी कमी न थी। अक विहारमें तो अक श्रमणेर मेरे ही सेवा की।

अक दिन मन कृतज्ञताभिभूत होकर कहा —

श्रमण! मैं तुम्हारा कुछ और तो प्रत्युपकार कर नहीं सकता। पढ़ना चाहो तो कुछ पढ़ा सकता हूँ। क्या पढोगे ?

'अंग्रेजी'।

मैं अंग्रेजी न सकता था। लेट टेन बिना पुस्तकके अंग्रेजी पढानी आरम्भ की। आओी और बी दो शब्द सिखाये अर्थात मैं और हम। जब तीसरा यू अर्थात तुम याद कराना आरम्भ किया तबतक वह आओी और बी मेंसे अक भूल चुका था। मुझे अच्छी तरह याद है अनेक बार प्रयत्न करनेपर भी मैं अपने अुस श्रमणके धुको तीनों शब्द अक साथ नहीं ही याद करा सका।

अिस समय जो बात विशेष रूपसे याद आ रही है वह यही कि जिसके दिमागकी यह हालत थी कि अंग्रेजीके तीन शब्द भी अक साथ न याद रख सके वह भी अंग्रेजी ही पढ़ना चाहता था!

अिधर कुछ महीने पहले 'जेतवन' जाना हुआ। वर्तमान बलरामपुर (जि. गोण्डा अुत्तर प्रदेश) के पास जेतवन ही वह जगह है जहाँ भगवान बुद्धने अपने जीवनके ४५ वर्षावासोंमेंसे २५ वर्षावास बिताये थे। कभी जहाँ श्रावस्ती जैसा बड़ा नगर बसा था वहीं आज सहेट महेट नामके दो ग्राम मात्र हैं। वहीं जेतवनके पवित्र खण्डहरोंमें मेरी अेक बर्मी भिक्षुसे भेंट हुआी। वयोवृद्ध श्री महिन्द महास्थविरकी साधनाके परिणामस्वरूप यहाँ अक जेतवन विहार स्थापित है। आप अिसीमें रह रहे थे।

पूछा— यहाँ किस अुद्देश्यसे आये ?

अंग्रेजी पढ़ने।

अितने दिनोंके बाद आज मैं बैठा यह सोच रहा हूं कि जेतवनके खण्डहरोंमें भी अंग्रेजी ही पढ़ने!

यहीं जिस धर्मोदय विहारमें बैठा मैं ये चन्द सतरें लिख रहा हूँ अक भिक्षु हैं जो नेवारीमें कविता करते हैं कुछ लिखते भी और खासी नेपाली भी बोल लेते हैं सामान्य हिन्दी भी समझ और बोल ही लेते हैं किन्तु वे अपने ज्ञानको अत्यन्त अधूरा समझते हैं क्योंकि अुन्हें अंग्रेजी नहीं आती!

पिछले बाओीस वर्षसे परिचित अक दूसरे भिक्षु हैं जो सिंहल बोलते हैं बर्मी बोलते हैं तिब्बती बोलते हैं कुछ पालि तथा कुछ संस्कृत भी जानते हैं अच्छी खासी हिंदी लिखते पढ़ते हैं कुछ जापानी भी जानते हैं— तब भी अुन्हें अपनी शिक्षा अत्यन्त अधूरी लगती है क्योंकि वे अंग्रेजी पूरी नहीं जानते।

सच तो यह है किसीको भी कोओी भाषा पूरी नहीं आती अुन्हें खास तौरपर किन्तु चिन्ता अंग्रेजी की ही है।

अभ्याससे मैं ऋणी हूँ राष्ट्रभाषाका किन्तु आज-कल मुझे यहाँ पढ़ानी पड़ रही है अंग्रेजी ही अंग्रेजी!

अिसमें कुछ सन्देह नहीं कि अंग्रेजोंने भारतपर अंग्रेजी लादी, किन्तु लदी हुआी अंग्रेजी जो आसानीसे अुतर नहीं रही है और नहीं कहीं तो और भी सिरपर चढ़ी चली आ रही है हमें स्वीकार करना ही चाहिये कि अिसके मूलमें है अंग्रेजीकी साहित्यिक शक्ति।

अुस दिन बात चलनपर ‘अंग्रजी’ की अकदम अ बी सी डी जाननवाले अक भाअीने कहा ‘अंग्रजी जान लेनेसे सब कुछ जाना जा सकता है।’

अंग्रजीकी राजनीतिक-स्थितिकी यदि अुपेक्षा कर भी दें तो भी अंग्रजी और अंग्रजी-साहित्यके बारेमें जो यह सामान्य धारणा बनी हुअी है जिससे अभिभूत होकर ख्वाहमख्वाह आदमी अुधर लुढ़क जाता है अुसका लेखा-जोखा तो लेना ही होगा। अपनी अभ्यस्त भाषामें कहूँ तो अुस धारणासे तो लोहा लेना ही होगा।

प्रश्न है कि अंग्रजी भाषा और अंग्रजी साहित्यकी अिस धाकके मूलमें क्या है? आप कहेंगे अंग्रजी साम्राज्यके डेढ़ सौ साल। अुत्तर सही है, किन्तु अधूरा है। क्योंकि प्रश्न फिर पैदा होता है कि अंग्रजी-साम्राज्यके मूलमें क्या रहा है? स्वीकार करना ही होगा कि अंग्रजोंका अपना चरित्र। मेरा निवेदन है कि अंग्रजी साहित्यका भी मूलाधार वह अंग्रजी चरित्र ही है जिसे हम अंग्रजी साम्राज्यका मूलकारण मानते हैं।

प्रतिकूल परिस्थितियोंमें हिन्दी सेवियोंने भी हिन्दी की जैसी सेवा की है वह किसी भी साहित्यके साहित्यकोंके लिअ अभिमान करनेकी चीज है। किन्तु अुधरकी अनुकूलता तो जैसे प्रतिकूलता ही बन गयी है।

कवि अंचलकी अक पंक्ति याद आती है—

फूल काटोंमें खिला था सेजपर कुम्हला गया

केन्द्रमें और कभी राज्य सरकारोंसे राष्ट्रभाषा तथा राज्य भाषा हिन्दीके सम्बन्धमें जो घोषणाअें निकलती हैं अुन्हें पढ़कर तबीयत प्रसन्न हो जाती है। काश! हम सबकी वह आँखें ही फूट जाअें जो अुन्हें कार्यान्वित हुआ देखनेकी भी अिच्छा रखता हैं!

स्वराज्यके छह साल बीत गये। आज भी केन्द्रीय सरकारके हर अक मन्त्रालयका लगभग सारा कारोबार अंग्रजीमें ही होता है। अभी और नौ वर्षोंके बाद तो अुसमें धीरे धीरे परिवर्तन होना आरम्भ होगा! तबतक न जाने किस राजाका राज्य होगा!

केन्द्रीय सरकारकी बात जाने दो। वहाँ बड़े-बड़े लोगोंकी बड़ी बड़ी बातें हैं। क्या आज भी अुन राज्योंने जो अपनी राज्य भाषा हिन्दी घोषित कर चुके हैं-अुनमें सरकारोंमेंसे कोअी अक भी सरकार यह कह सकती है कि अंग्रजी ज्ञानसे सर्वथा शून्य कोअी व्यक्ति अुनके किसी भी महत्वपूर्ण पदको सुशोभित कर सकता है?

कमेटियोंपर कमेटियाँ बनी हैं और बिगड़ी हैं। क्या आज भी हम हिन्दीके किसी अक भी टाअिप राअिटरके बारेमें कह सकते हैं कि यह हिन्दीका टाअिप राअिटर है?

हिन्दी टेलिप्रिंटरकी भी चर्चा बीच बीचमें होती है। क्या आज भी हिन्दी टेलिप्रिंटरके अभावमें हिन्दीसे अंग्रजीमें और पुनः अंग्रजीसे हिन्दीमें अनुवाद होनेके बाद ही दिल्लीकी किसी प्रेस अजेंसी द्वारा भेजा गया हुआ समाचार भी हिन्दी पत्रोंमें नहीं छपता?

यह सब यूँ चल रहा है और ‘दिनकर’ देवता बीच बीचमें अुपदेश दे देते हैं कि राष्ट्रभाषाके प्रचार कार्यमें जल्दबाजीसे काम नहीं लेना चाहिये।

प्रान्तीय भाषाओंको आगे खड़ा करके अुनकी ओटमें अंग्रजीके निहित स्वार्थोंको सुरक्षित रखनेका अच्छा ढंग निकल आया है!

सरकारके पास—अुसके शिक्षा विभागके पास—योजनाअें हैं सूचनाअें हैं। कोअी अक भी कार्यान्वित हो पाये तब न?

गैर-सरकारी साहित्यिक संस्थाओंके पास भी योजनाअें हैं किन्तु साधन नहीं। किसी भी शहरकी अक सड़ी सी दूकानके पास जितनी पूंजी होती है अुतनी भी पूंजी हमारे अक बड़े प्रान्तीय साहित्यिक अनुष्ठानके पास नहीं दिखायी देगी।

जिस मध्य प्रदेशकी राजधानी नागपुरमें राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका पाँचवाँ अधिवेशन होने जा रहा है वहाँके मध्य प्रदेश हिन्दी-साहित्य सम्मेलनका पाँचवा मासिक विज्ञप्ति मेरे सामने है— कुल जमा छह पन्नेकी।

अिसी विज्ञप्तिमें सम्मेलनके प्रधान मन्त्री श्री रामगोपालजी माहेश्वरीका वक्तव्य पढ़नेको मिला—

यद्यपि अर्थाभावके कारण तीसरे दो महीनोंमें विज्ञप्ति प्रकाशित नहीं की जा सकी, तथापि यह सिलसिला चालू रखनेका प्रयत्न किया जा रहा है।

यह है हमारे अन्तर्प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी पूंजी।

आप यदि साहित्यकार हैं और आपकी अपनी कोओ साहित्यिक कृति है अथवा आपने किसी विषयपर कोओ साहित्यिक रचना की है, तो आज आपको अुसे प्रकाशित करने करानेमें काफी कठिनाओका सामना करना पड़ेगा। कोओ व्यवसायिक पूंजीपति प्रकाशक अुसे निःशुल्क नहीं प्रकाशित करना चाहेगा, क्योंकि अुसे अपनी पूंजीके ही डूब जानेका डर लगा रहता है, और कोओ साहित्यिक संस्था आर्थिक नहीं प्रकाशित कर सकती, क्योंकि अुसके पास पैसा नहीं।

साहित्यिक सौन्दर्यकी दृष्टिसे जो कृति जितनी ही अधिक श्रेष्ठ है, आज दिन अुसके प्रकाशित करनेमें अुतनी ही कठिनाओ है।

प्रश्न गम्भीर है। अिस चक्रव्यूहको कहांसे और कैसे तोड़ा जाय। हिन्दीको सचमुच एक साहित्यिक अभिमन्युकी आवश्यकता है।

मेरी विनम्र सम्मतिमें हिन्दी साहित्यकी प्रगतिके जिस संधिस्थलपर आकर हम खड़े से हो गये हैं अुसका एक कारण यह भी है कि समाजका अपेक्षाकृत सम्पन्न वर्ग न हिन्दी पढ़ता है, न लिखता है और यहां तक कि खरीदता तक नहीं। जिस वर्गके दो हिस्से किये जा सकते हैं—

(१) धनवान किन्तु ज्ञानशून्य
(२) ज्ञानवान किन्तु वित्तशून्य।

पहला वर्ग जितने पैसे पान सिगरेटपर ही खर्च करता है अुससे आधे पैसे भी यदि हिन्दी समाचारपत्र खरीदकर पढ़नेमें खर्च करने लगे तो हर हिन्दी समाचारपत्रकी ग्राहक संख्या लाखोंमें गिनी जाने लगे। आठ करोड़की आबादीवाले जापानके अखबारोंकी पचास लाख प्रतियां रोज खपती हैं। चालीस करोड़ लोगोंके राष्ट्रकी राष्ट्रभाषाका कौन सा अखबार दैनिक है जो अेक लाखकी भी बात कर सके?

दूसरा वर्ग ज्ञानवान किन्तु सचमुच अत्यन्त वित्तशून्य है। अुसीकी कृपासे कलकत्ते (और दूसरे शहरोंमें भी होगा) में अेक विशेष तरहका साहित्य रस ले लेकर खरीदा जाता है, पढ़ा जाता है, पढ़ाया जाता है। लोगोंमें आत्मा अपना लेखा देखना ही तो अधिक पसन्द करता है। अुन लोगोंके जीवनमें जो कुछ है और जितने अधिक विकृत रूपमें है, अगर वे साहित्यमें भी देखना चाहते हैं तो असा साहित्य यदि अुन्हें अच्छा लगता है तो अिसमें आश्चर्यकी कौनसी बात है?

गजब यह है कि कहीं कहीं तो असा साहित्य पुस्तकालयोंकी संख्या-संख्य बढ़ानेके लिओ खास तौरपर रखा जाता है।

वैसे साथ साथ जबतक अेक भय मनमें अविवेकका गठबन्धन बना रहेगा तबतक अुससे लाभ अुठानेवाले साहित्यिक ठग भी प्रचुर मात्रामें रहेंगे ही। बुद्धिमान लोग जरूर रहते हैं जो अपना ढंग बदलना अधिक पसन्द करते हैं, किन्तु अेक ढंग बनते न बनते दूसरे ढंग भी तो हैं।

निःसन्देह सभी भाषाओंमें सभी तरहका साहित्य है। किन्तु जो साहित्य जिस कोटिका है वह अुस कोटिका ही समझा जाकर अपनी हैसियतसे अूंचा दर्जा पा न जाय।

आजके हिन्दी संसारका रूप असा ही कुछ बनी हुई स्थिति और परिस्थितिसे गुजरता है। अिसमें तनिक सन्देह नहीं कि अुसका और अुसकी साहित्य साधनाका भविष्य अुज्ज्वल है, किन्तु चमकनेके लिओ अुसे शायद अभी भी काफी तपना है।

अगर अुन मसिजीवियोंकी रुझान तो क्या कहा जाय जिनके पास पढ़नेके लिओ अवकाश नहीं, पुस्तकें खरीदनेके लिओ पर्याप्त पैसा नहीं और जिनकी अपनी लिखी हुई पुस्तक छापनेको कोओ प्रकाशक तैयार नहीं। राष्ट्रभाषाका सौभाग्य है कि तो भी आज ही जितनी

तपस्या कर रहे हैं कि कुछ न पूछो । अैसे बंधुओंके सम्मुख तो वह सारा समाज अुत्तरदायी है, जिसकी अव्यवस्थाके परिणामस्वरूप हीरे कोयलाके भाव बिकते हैं।

किन्तु साराका सारा सावपर समाज अैसा ही नहीं है। निस्सन्देह देश दरिद्र है। किन्तु देशकी दरिद्रताके हिसाबसे देखा जाअ तो अिस देशके बहुतसे धनी बहुत धनी हैं । अैसे समय सावपर लोगोंकी कअी श्रेणियाँ हैं।

आर्थिक दृष्टिसे विचार करनेपर हमारा ध्यान सहसा पहले देशके कालेजोंके कुछ प्रोफेसरोंकी ओर जाता है। अुनमेंसे अेक वर्ग तो प्रोफेसर बननेके साथ ही जैसे लिखना पढ़ना बन्द कर देता है। अुनके पास हर साल नये बच्चे नये मूर्ख आते ही रहते हैं। पढ़ने लिखनेकी क्या जरूरत ।

जिन्हीं बंधुओंका अेक दूसरा वर्ग है जो अपना अधिकांश समय पाठ्य पुस्तकें लिखने छपवाने प्रकाशित कराने तथा अुन्हें भिन्न भिन्न परीक्षाओंके लिअे स्वीकृत करानेमें ही खर्च करता है। यहाँ अुसका बंधा बंधाया पेशा है। जिनमें कआी कोअी तो स्वयं पुस्तकें लिखते तक नहीं। लड़ सिपाही नाम सरदारका होता है। पुस्तकें किसी विद्यार्थीसे लिखायी जाती हैं— कुछ मेहनताना दे दिला दिया जाता है। किन्तु विज्ञापित नामकी पूरी कीमत जिसके भरोसे पुस्तक परीक्षा विभागके पाठ्यक्रममें आती है— प्रोफेसर महोदयको मिलती है।

साहित्यिक क्षेत्रमें जहाँ निरन्तर यू ही सम्पादकोंका ... किया जाता है वह अेक अैसा भयानक ब्लैक मार्केट है जिसकी सीमा नहीं।

जिन्हीं समय बंधुओंसे अनुरोध है कि आपपर कोअी भी दूसरा किसी प्रकारका अंकुश नहीं लगा सकता। अपनेपर रहम करें अपने विद्यार्थियोंपर रहम करें और अपने साहित्यपर रहम करें और कुछ अैसा करें जिसे लेकर हर हिन्दी प्रचारक हर हिन्दी ... कुछ अर्ग बढ़ सके।

पढ़ाने लिखानेके पेशेसे बाहर भी पढ़े लिखे लोगोंकी कमी नहीं। हमारे समाजका यही अेक बड़ा दुर्भाग्य है कि जो पढ़ाने लिखानेके पेशेमें नहीं वे कुछ कहने-सुनने लायक पढ़ते लिखते ही नहीं।

अेक दिन अेक मित्र जापानी टैक्सीमें बैठकर किसीसे मिलने गये। आप भीतर चले गये। टैक्सी बाहर खड़ी रही। लौटकर देखा तो ड्राअिवर भारतीय भवन निर्माण कलापर पुस्तक पढ़ रहा था।

यू यह देश संत कबीर का देश है जिस जुलाहेके व्यक्तित्वमें अपनी जीविकाके साधन और अध्यात्मकी अूँचीसे अूँची साधनाका सुन्दर समन्वय हुआ था किन्तु तब भी हमारा आजका कारोबारी व्यवसायी भी ज्ञान क्यों कल्याण खरीदकर रखनेसे ... आगे नहीं बढ़ पाता ?

हमारे योग्य व्यवसायपति चाहें तो अपने ज्ञान और हिन्दी-साहित्यकी वृद्धि अेक साथ कर सकते हैं। किन्तु समाजमें अुनके विषयमें कुछ अैसी निकृष्ट धारणा बन गयी है कि वे कुछ लिखें-पढ़ें भी तो कोअी विश्वास ही नहीं करता कि अुनका अपना लिखा पढ़ा होगा ? यह सही भी है कि कभी कभी होता भी नहीं। विचारे धन कमाअें या ज्ञान ? लेकिन वह युग गया जब लक्ष्मीके वाहनका अुल्लू होना अनिवार्य माना जाता था। आज भी यदि वह अुल्लू ही बना रहेगा तो अपने साथ अपने समाज और अपने देशको भी ले डूबेगा।

तीसरा वर्ग है अुन सावपर लोगोंका जिनका न तो पढ़ना लिखना पेशा ही है और न वे व्यवसायी ही हैं। ... अुन्हें सभी सुविधाअें प्राप्त हैं। साधन सम्पन्न हैं। ... अपने देशमें यथोचित मात्रामें सरस्वती-आराधन नहीं हो करते। बड़ी-बड़ी नौकरी निश्चित मासिक आय नियत निश्चित काम और मौज। सरस्वतीके चरणोंमें श्रद्धाके दो फूल चढ़ानेमें क्या कम मानसिक आनन्द है जिसने अिस रसका चखा हो अुससे पूछो। वह कहेगा—

हाय कमबख्त। तूने पी ही नहीं।

आप कल्पना कीजिये किसी देशके गवरनरकी और कल्पना कीजिये असके पालि पढ़नेकी और कल्पना कीजिये असके पालिग्रन्थोंके सम्पादन और अनुवाद-कार्यकी।

श्री चामस सिहल (सिलोन) के असे ही गवरनर थे।

पालि अंग्रेजी-कोश के रचयिता और 'बुद्धिस्ट अिण्डिया' के प्रसिद्ध लेखक श्री रीज डेविड्स सिलोन सिविल सर्विसके अेक योग्य पदाधिकारी ही थे।

अपने ही देशमें तीस वर्षतक पुराणोंका अध्ययन करके 'भारतीय अैतिहासिक परम्परा को वैज्ञानिक अितिहासकी भित्तिपर ला खड़ा करनेवाले श्री डब्ल्यू टी पार्जिटर कलकत्तेके अेक बड़े न्यायाधीश ही तो थे।

हमारे अुच्च पदस्थ अधिकारी भी यदि चाहें तो क्या किसी न किसी शाखा विशेषका अध्ययन करके 'राष्ट्रभारती के चरणोंमें अनेक अमूल्य रत्न समर्पित नहीं कर सकते ?

यहाँ कालिम्पोङमें प्रायः रोज ही अेक साठ वर्षीय महिलासे भेंट होती है जो यूरोपकी कअी भाषाअें मातृभाषावत् बोलती हैं और अिस समय चीनी, तिब्बती और संस्कृतके अूँचे साहित्यिक ग्रन्थोंका तुलनात्मक अध्ययन कर रही हैं। अुस दिन अुन्हें अेक चीनी-कोश मिल गया। वे अैसी प्रसन्न दिखायी दीं जैसे कोअी बालक कटी पतंग मिल जानेपर।

मध्यप्रदेशके भूतपूर्व गृहमंत्री पं. द्वारकाप्रसाद मिश्रने अपने अवकाशके समयमें 'कृष्णायन'की रचना कर निस्सन्देह सब लोगोंका मार्गदर्शन किया। जो अिससे कुछ भी प्रेरणा लेना चाहते हों ले सकते हैं।

गोसाअी तुलसीदासकी अेक चौपाअीके प्रचलित अर्थसे मैं किसी भी तरह सहमत नहीं हो पाया। गोसाअीजी कहते हैं—

"कीन्हे प्राकृत जन गुण गाना
सिर धुनि गिरा लागि पछिताना

[साधारण जनोंका गुणगान करनेसे सरस्वती अपना सर धुन पछताने लग जाती है।]

मेरा निवेदन है कि सरस्वतीका वरद पुत्र जब और जिसके बारेमें भी लेखनी अुठाता है वह साधारण जन रह ही नहीं जाता।

साधारणको असाधारण बनाना ही सरस्वती पुत्रोंकी विशेषता है।

पर्लबकका गुड अर्थ अेक चीनी किसानकी कथा-मात्र ही तो है किन्तु माटीका प्रेम काहेको कहीं अन्यत्र अैसी तीव्रताके साथ अभिव्यक्त हुआ होगा ?

हिन्दीमें क्या कुछ है अिसकी सूची भी बहुत लम्बी है, क्या कुछ नहीं है अुसकी सूची और भी लम्बी है। अुस लम्बी सूचीको पूरा करनेके लिअे लेखकों, प्रकाशकों पुस्तकविक्रेताओं सभीके सम्मिलित सहयोगी प्रयत्नोंकी आवश्यकता है।

और आवश्यकता है लक्ष्मी पुत्रोंके आगे आनेकी।

साहित्यकारोंने अिस युगको न जाने हिन्दीका कौनसा युग माना है। मुझे लगता है कि यह हिन्दीका सन्ध्या-युग है। संस्थाअें किसी न किसी अूँचे अुद्देश्यको लेकर दो डग भी आगे नहीं चल पाती कि अुद्देश्य पीछे पड़ जाता है और पद तथा विचार आगे आकर खड़े हो जाते हैं।

प्रेमचन्द हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सभापति न हुअे न सही। वे हिन्दीके अुपन्यास-सम्राट कहला गये।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी कहींके सभापति न बने, न सही, वे हिन्दी गद्य लेखकोंको बना गये।

साहित्यिकको संस्थाका सहयोग मिल जाअे, सोनेमें सुहागा है। अन्यथा कोअी भी संस्था किसी न किसी की छाया-मात्र ही तो होती है।

सरस्वतीके वरद पुत्रोंको ही प्रणाम है।

कुमार दुरंजय

श्री राहुल सांकृत्यायन

दुनियाके बहुतसे भागोंमें सामन्तवादका खात्मा हुअे बहुत समय बीत गया। लेकिन भारतमें अुसे अंग्रेज बहुत पाल-पोसके रखे था। भारतकी स्वतन्त्रताके बाद अुसका टिकना सम्भव नहीं था, जब कि असली राजशक्ति अंग्रेज थैलीशाहोंके हाथसे निकल करके भारतीय थैलीशाहोंके हाथमें आ गयी। [illegible] सबसे बड़े थैलीशाह जिस राजस्थानसे आते थे, वहां अपनी प्रजापर निरंकुश शासन करनेके लिये अंग्रेजोंने राजाओंको छोड़ रखा था। पूजा भेंटके सहारे अपना कुछ काम थैलीशाह जरूर बना लेते थे, लेकिन आखिर वहां कानून नहीं बल्कि अेक आदमीका मनमाना राज्य था। कमसे कम पूंजी लगाकर कारखाना खोलनेके लिये तो कोअी मैदान तैयार नहीं था। अिसलिये भारतके वास्तविक शासक भारतीय थैलीशाहोंकी आंखोंमें ये निरंकुश गुड़िया राजा कांटेकी तरह खटकते थे। लेकिन जब तक अंग्रेज यहां थे तब तक ही नहीं बल्कि अुनके चले जानेके बाद भी थैलीशाहोंमें अितनी शक्ति नहीं थी कि केवल अपने बलपर अिन कांटोंको रास्तेसे दूर फेंक सकते। अिसके लिये अुनको चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि अंग्रेजोंके शासनके समय ही [illegible] प्रजाने अनेक बार गोलियां खायीं, तो भी अपने संघर्षको नहीं छोड़ा। अुन्हींके [illegible] सारे राजाओंको अपनी निरंकुशता नहीं, बल्कि अधिकारको भी छोड़ना पड़ा। अब वह सरकारके [illegible] जिसमें गरीब प्रजाकी कमाअीपर फलाहार [illegible] किया जा रहा है। [illegible] पुरानी रियासतोंको यद्यपि [illegible] पाठ पढ़नेकी आवश्यकता नहीं पड़ी, अुनका [illegible] लेकिन [illegible] हुआ। [illegible] राजा [illegible] अपने अपने निजी जेवर और [illegible] खजानेको [illegible] लिया, दरबारका [illegible] अिमारतोंको निजी सम्पत्ति बना लिया। और [illegible] नाबालिग या मूर्ख राजा थे, वहां [illegible] सरदारोंने "लूट सके सो लूट" का नारा [illegible] छोड़ दिया। कितनी ही [illegible] दिन [illegible] अपने जमकी [illegible] दनके लिये [illegible] पुराने कागजात होने लगी—जिन [illegible] कितने ही अैतिहासिक महत्त्वके दस्तावेज सदाके लिये नष्ट हो गये। [illegible] राजाओंने [illegible] नौकरोंकी सहायतासे साधारण [illegible] राज्यकी अधिकसे अधिक सम्पत्ति अपने हाथमें करनी चाही। [illegible] हजारों [illegible] अपने [illegible] फार्म बना लिये और [illegible] नहीं [illegible] करनी शुरू कर दी। [illegible] किसानोंके [illegible] क्यों ख्याल करती है जहां अुन अुनके लिये [illegible] होना पड़ता है।

कुमार दुरंजय [illegible] तरहके अेक रियासती कुमार थे। अुनके पिता [illegible], १९४१ [illegible] आंख देखनेके लिये रह नहीं गये, नहीं तो [illegible] साथ अुनको भी हाथ [illegible] हो जाना—[illegible] बड़े निरंकुश तानाशाह थे, जिनका [illegible] तक कम हुआ था [illegible] अंग्रेज [illegible] नाकमें वह नहीं पहुंचती थी। [illegible] अुनमें बादल भी [illegible] लेकिन [illegible] अनन्त [illegible] नहीं [illegible] बाहर [illegible] रियासत [illegible] नहीं [illegible] था [illegible] अपने [illegible] नदा [illegible] थे। जब पहाड़में अुनके [illegible] और [illegible] दूर [illegible] रहनेवाल [illegible] हिसाब [illegible] जाता है। लेकिन अिस तरह [illegible] नहीं [illegible]।

स्वयं हर जगह खुद यत्न नहीं जाता। पर अुन्होंने अपने कितने ही रामभक्त अफसर छोड़ रखे थे, जो राज्य और शहरकी सुन्दरियोंको जमा करनेका काम किया करते थे। प्रातःस्मरणीय मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्रके पिता प्रातःस्मरणीय मर्यादा पुरुषोत्तम दशरथकी साठ हजार रानियाँ थीं। जिन महाराजाकी रानियोंकी संख्या सोलह हजार तक तो नहीं पहुँची थी, लेकिन हजारसे अूपर जरूर थीं। चार दर्जनसे अूपर तो अुनकी राज कुमारियाँ थीं और राजकुमारोंकी भी अेक पल्टन जम सकती थी। जिन्हींमेंसे अेक हमारे चरित्रनायक कुमार दुर्जयसिंह भी थे। दस और बारहके लिये तो बैकुण्ठवासी महाराजाने अपने अन्तःपुरमें सिविलियनोंका सा धन्धा रखा था। बाकी रानियोंकी संख्या कितनी ही हो और अुनमें अपनी सुन्दरता और बादुके कारण कितनी ही कुछ समय तक महाराजाकी चहेती भी रही हों, लेकिन जहाँ तक गद्दीका सवाल था, वह कुलीन वंशीय रानीके बड़े पुत्रको ही मिल सकती थी। जिस प्रकार कुमार रिपुजय जेठे होनेपर भी गद्दीसे वंचित रहे और अुनके दर्जेके अनुजोंमेंसे सजग बड़े महाराज बने। लेकिन बैकुण्ठवासी अन्नदाताने अपने सबसे ज्येष्ठ पुत्रके साथ और कुमारोंसे अैसा बेजुमाका बर्ताव नहीं किया, जिससे मालूम होता कि मधुपुरीमें दुर्जयका अुन्हान दो तीन नगर और पैदावारवाली काफी जमीन पहले ही मुकर्रर की गयी था।

कुमार दुर्जयका रंग साँवला बल्कि कुछ हद तक काला था। वैसे शरीर छह फुटका, बहुत लम्बा-तगड़ा था। रंग काओी बिगाड़ न कर सकता, यदि रूप अच्छा होता—यह मालूम ही है, रंग सुन्दरताकी गारण्टी नहीं है। कुमारके भारी भरकम शरीर और अुसके अनुरूप ही सिरमें कुछ थोड़ी मज्जाकी कमी जरूर थी, लेकिन अुनको बेवकूफ हरगिज नहीं कहा जा सकता था। वह युवराज नहीं थे, दर्जनों कुमारोंमेंसे अेक होनेके कारण हाथखर्च भी अुनको बहुत कम ही मिलता था। जब पिताकी रियासतकी सारी आमदनी अपने ही हरमके चलानेके लिये पर्याप्त नहीं होती, तो कुमार दुर्जयके साथ वह कितनी अुदारता दिखला सकते थे? बड़ी रियासतके आखिर कुमार थे, जिसलिये वहाँ तक हाथमें सवाल करते? आखिर वह थे भी अेक राजाके साले और दूसरेके बहनाओी। दुनियामें बड़े कुमारके तौरपर जानके बाद पिताने अुनके साथ प्रारम्भमें लाड़-प्यार भी अधिक दिखलाया था। अपने मुसाहिब और दूसरे लगु-भगु भी थे। राज्यसे सबके लिये जागीर मिली हुआी थी, लेकिन अुससे अुनका काम नहीं चलनेवाला था। तब भी पिता जब तक जीवित थे और खासकर अंग्रेज जब तक भारत छोड़कर नहीं गये, तब तक कुमार अभी बदस्तूर कुमार थे। मधुपुरीके अेक और सागरका रेतका अुनको ख्याल आया। वे वहाँ गये। अुनके साथ तलवार और बन्दूक लिये हुअे अर्दली और मुसाहिब भी थे। पर बचनवाली मछलियाँ दूरसे जब अिस पल्टनको देखा तो वह सचमुच ही डर गयी। डाकू होनेका ख्याल तो अुससे नहीं हो सकता था। क्योंकि डाकुओंकी वर्दियाँ जितनी भड़कीली नहीं हो सकती थीं और न दिन-दहाड़े वे अिस तरह आ ही सकते थे। साथ ही मधुपुरीमें डाका क्या, तब तक कभी चोरी भी नहीं सुनी गयी थी। पीछे जब मालूम हुआ तो वह और अुसकी सहेलियाँ बहुत हँसी। यह अुस समयकी बात है, जब कि मधुपुरी पूरी तौरसे अंग्रेजोंकी थी, अर्थात् वे अुसपर सारे हिन्दुस्तानकी तरह शासन ही नहीं करते थे, बल्कि अुसे हिमालयका अेक टुकड़ा बनाये हुअे थे। अुस वक्त कोओी गोरा या अधगोरा अिन राजाओंका कानी कौड़ी बराबर नहीं समझता था।

(२)

रियासतकी गद्दीपर छोटा भाओी बैठ चुका था, किन्तु थोड़े ही समय बाद आजादी आयी और अुसे भी पेन्शन लेकर अलग होना पड़ा। अुसके दर्जनों भाओियों और बहनोंने भी पेन्शन पायी। कुमार दुर्जय भी खाली हाथ नहीं रहे, बल्कि अपनी दुनियामें पहले आनेके कारण भारत सरकारने अुनके साथ खास रिया-यत करनी। जागीर अभी हाथसे नहीं गयी थी। नये प्रभु यद्यपि किसानोंको सन्तुष्ट करनेके लिये जमीं-दारियोंकी तरह रियासतोंकी जागीरोंको भी अुठानेके लिये मजबूर थे, लेकिन जागीरदारोंके साथ पूरी तौरसे

मनसा-वाचा-कर्मणा अहिंसात्मक वर्तावके साथ । वर्षोंसे अुनके साथ बातचीत हो रही है मोल तोल किया जा रहा है, दाम और बढ़ानेके लिअे जागीरदार कितनी ही बार रूठ भी जाते है, फिर अुन्हे मनाया जाता है ।— शायद नये महाप्रभुओंके समाजवादका रास्ता अिसी ओरसे है । कुमार दुर्जयकी जागीर भी अभी सरकारने अपने हाथमें नही ली थी, लेकिन सरकार सुस्त थी तो किसान अधिक चुस्त थे । कुमारका अपनी जागीरमें अब कोओ रोब नही रह गया था । हथियारबन्द तिलंगोंके साथ भड़कीली पोशाकमें जानेपर किसानोंपर रोब गाँठनेकी तो बात अलग, वे अुनके अुपहासके शिकार होने । कारतूस और बन्दूक रखते हुअे भी वे अुनका मुँह नही बन्द कर सकते थे, अिसके लिअे बेचारे हाथ मलकर रह जाते । यदि अिस समय वैकुण्ठवासी पिता महाराजा होते ! तब तो अेक दो खून कर देनेपर कुमारका कोओ बाल बाँका नही कर सकता था । राज्य और जागीरमें अैसी स्थिति देखकर कुमार साहबने यही पसन्द किया कि अपना अधिकसे-अधिक समय मधुपुरीमें बिताअें । पहाड़ मकड़ी, बिच्छू या केकड़ाकी शकलमें फैलते है, अेकके बाद दूसरी टेढ़ी मेढ़ी बाहियाँ फूट निकलती है, और देखनेमें कुछ ही सौ गजोंपरके सामने स्थानपर पहुँचनेके लिअे मील मीलका चक्कर काटना पड़ता है । अंग्रेजोंने सवा सौ वर्ष पहले जब मधुपुरीको अपने रहनेके लिअे चुना, तो अुस समय वह शीतलताने आकृष्ट हुअे थे । छह-सात हजार फुट अूँचे पहाड़ोंपर शीतलताके साथ अुस समय घना जंगल भी था, जिसके कारण अिसका सौन्दर्य दूना हो गया था । चार चाँद लगाते अिसके बहुतसे स्थानोंसे सनातन हिमसे आच्छादित शिखर पंक्तियाँ दिखलायी पड़ती थीं । अंग्रेज प्राय अपने बंगलोंको अैसे स्थानपर बनाना चाहते थे, जहाँसे हिमालय श्रेणियाँ अधिकसे अधिक दिखायी पड़ें । लेकिन जैसा कि आम तौरसे होता है, पहलेवाले बाजी मार ले गये और पीछे आनेवालोंको दूसरे-नम्बरपर सन्तोष करना पड़ा । अंग्रेज दूकानों और बाजारोंसे मीलों दूरके स्थानोंको अधिक पसन्द करते थे । वहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य भी अधिक था और काले लोगोंकी परछाँओं भी कम पड़ती थी । अेकान्तकी खोजमें कितने ही अंग्रेजोंने अैसी जगहोंमें भी अपने बंगले बनाये, जहाँसे हिमालय श्रेणियाँ नही दिखायी पड़ती । दूसरे नम्बरके वे बंगले थे, जहाँसे हिमालय नही तो कमसे कम बीस मील दूर नीचेकी समतल भूमि दिखायी पड़ती थी । तीसरी श्रेणीके बंगले अिन दोनोंसे वंचित थे और हरियालीसे आच्छादित किन्हीं दो पर्वतवाहियोंमें पड़ते थे । अेक अैसा ही बंगला कुमार दुर्जयके भाग्यमें पड़ा था । मधुपुरीमें बंगले बनने यद्यपि सवा सौ वर्ष पहले शुरू हुअे, लेकिन अुनकी बहुतायत अेक शताब्दी पहले शुरू हुओ फिर आधी शताब्दी तक तो नये बंगलोंके बनानेमें होड़ लग गयी थी । अुनकी गति रुकी अिसी समय पहला महायुद्ध आ गया, जिसके बादसे तो अिस मधुर नगरीसे लक्ष्मीही रूठ गयी । बहुतसे अंग्रेज अपने बंगले बेचने लगे और भारतीयोंने विशेषकर राजा महाराजाओं और कुछ सेठोंने, अुन्हें खरीदना शुरू किया । कुमार दुर्जयको भी अिसी समय यह बंगला प्राप्त हुआ था । कहा नही जा सकता पिता महाराजाने खरीदकर अिसे अपने सुपुत्रको दिया था या अुन्होंने खुद खरीदा था । अन्तःपुरमें पैदा होनेवाले बुद्धिके सम्बन्धमें कुछ घाटेमें रहते ही है, अूपरसे अपने सारे काम अपने मुसाहिबों द्वारा कराते है, अिसलिअे यदि खरीद-फरोख्तमें वे और अधिक घाटेमें रहे, तो अिसमें आश्चर्य क्या ? हिमशिखरों और नीचेकी समतल अुपत्यकाके सुन्दर दृश्योंसे वंचित अिस बंगलेमें आकर अुन्हें अफसोस होना ही था खासकर जब कि *कभी-कभी वह जाड़ोंके आरम्भ तक भी यहाँ रह जाते।* प्राय सारे दिन सूर्यकी किरणोंसे वंचित अिन स्थानकी सर्दीमें अुनको तकलीफ भी होती थी । क्या करें, अब तो ढोल गलेमें पड़ चुकी थी ।

कुँअरानीको अपने बंगलेके गुण अवगुणकी चिन्ता करनेकी फुर्सत नही थी । वे अेक रियासतकी राजाकी पुत्री थी और कुमार साहब पिताके अुनेकियन दर्जनों कुमारोंमेंसे अेक । कुँअरानीके पास कुछ पैसा भी था, पीहरसे कुछ और भी मिलता रहता था, अूपरसे राज-पुत्री होनेका अभिमान, अिसलिअे वे अपने पतिकी बहुत पर्वा करनेके लिअे मजबूर नही थीं । दूसरी तरफ कुमार भी मर्यादा पुरुषोत्तम अपने पिताजीके कदमोंपर चलनेके

लिअ स्वत थ थ, यदि अुसमें बाधा थी तो यही कि हाथ तग था और अिसीलिअ दूर दूर तक निशाना नही लगा सकते थ। कुँअरानीको दुनिया जहानकी पवा हो भी नही सकती थी क्योकि सबेरे छोटी हाजिरीके समयही अुनकी मेजपर बोतल और चषक आ जाते फिर अुनके प्यालोका ताता करीब करीब रातको सोनके वक्तही खतम होता। अुनका दिमाग चौबीसो घट नशमें चूर रहता। शराबके प्यालोंसे गम गलत करती हुअी बेचारी कुअरानी अक दिन परलोक सिधार गयी। तब रियासत विलीन हो चुकी थी। यद्यपि कुँअरानी कहनपर कभी अिसपर विश्वास करनके लिअ तैयार नही थी।

कुमारको कुँअरानीके मरनेकी फिकर नही थी। सारे भारतके रजवाड़ोकी तरह अनके ससुरालपर भी पाला पड गया था, अिसलिअ अुधरसे कोअी आशा नही हो सकती थी। अपनी जो आमदनी थी अुसमें छोटी चादरवाली हालत थी सिर ढाको तो पर नगा पैर ढाके तो सिर नगा। अूपरसे यह सोच सोचकर और भी दिल मरता जाता था कि आमदनीके स्रोत सूखते जा रहे ह और सम्पत्तिको बेचकर बहुत दिन काट नही जा सकते। अुनक साले राजा जब पहले आते तो खूब हँसी खुशीकी पान गोष्ठी रची जाती और मालूम होता अुनकी दुनियामें कही दु खका पता नही। साले राजा अब अपनी विपत्ताम पड हुअ थ। खर्च चलानके लिअ अपनी सम्पत्ति बचनके लिअ मजबूर थ। बहनोअीस पहले सालेनेही अपन बगलेको बचनक लिअ दौड धूप शुरू करवायी थी। अुस समय अुन्हे अपन बगलक लिअ काफी रकम मिल रही थी लकिन राजा लोग बिना मुसाहिबोके मशोरेके अपनी सम्पत्ति बच नही सकते थ। खरीदारको यदि असी सम्पत्ति लेनी है तो मुसाहिबोके अूपर अच्छा फल चढाना जरूरी है। अिसी गडबडीम राजा साहबका बगला नहा बिक सका और कुछ ही सालो बाद यह देखकर अुनको और अुनके मुसाहिबोको बडी निराशा हुअी कि मधुपुरीके बगलों और कोठियोका दाम अुस समयसे अब आधा भी नही रहा।

कुमार दुरजय 'योग्य पिताके योग्य पुत्र थ, फक केवल परिमाणका था। पिताने अगर अकसे अक कीमती सैकडो कुत्त पाल रख थ तो पुत्र दो चार भी न पाले यह कैसे हो सकता था? अुनके पास यूरोपीय नसलका सबसे बड कुत्त ग्रट डनका अक जोडा था और अक जोडा खूखार भोटिया कुत्ताका। ग्रट डन लम्बाअी अूचाअीमें बहुत बडा होनपर भी भयकर नहा थ। वे काफी समझदार थ और जानते थ कि मनुष्य हमारा शिकार बननके लिअ नहीं है। अपरिचित व्यक्तिपर वे कभी भूक भाक देते थ। लेकिन भोटिया जाडकी बात दूसरी ही थी। वे अपन लम्ब बालोके कारण ग्रट डनस कही अधिक भारी भरकम दिखलायी पडते, शायद ताकतमें भी ग्रट डन अुनका मुकाबला नही कर सकते थ। पर तु बाहरी आदमियोक लिअ काल थ। अुन्हे देखकर या दूरसे अुनकी भयकर आवाज सुनकर लोगोकी रूह कापती थी। कुमार साहबका बगला अक सुनसानसी जगहमें छोटी सडकके किनारे था। यह अैसी सडक थी, जिसपर बहुत कम लोगोको आनकी जरूरत पडती थी। जो भी अुधरसे गजरता पहलेहीसे देख लेता कि भोटिया कुत्त अच्छी तरह बध ह या नहा। कुमार अैसे बेवकूफ नही थ, कि अपन अिन दरिदाको छोड रखते जो बिना काट आदमीको छोड नही सकते थ।

बापकी राजधानी और जागीरके गाँवमें अभी भी कुमारके महल मौजद थ। मधुपुरीम सीजन बिताकर अभी वहां जाना अुनका बन्द नहा हुआ था विशषकर राजधानीवाले महलमें वे अक्सर अपन जाडाको बिताते थ। अुनके पास यही दो जोड कुत्त नही थ बल्कि घोड दूसरे कुत्त चिडिया हिरन वगैरह भी मौजद थ। नौकर चाकर तीनो जगहोम रहते थ— खर्चीला सौदा था। अूपरसे कुमारका अपना जीवन अभी चादरके अनुसार नहा था। खान पीन और दावतोमें सावर्ची बढती जाती थी। मधुपुरीमें कोअी जल्सा या फक्शन होता अुसमें कुमार अवश्य निमन्त्रित हाते और वहां जाकर वह अपनी सावर्ची भी बिलकुल भूलनके लिअ तयार नही थ। अच्छा अच्छी शराबोपर अुनका गम कम नहीं हुआ और न कुमार-पुत्र कम हसियतमें रख जा सकते थ। अग्रजोके जानेपर भी

अंग्रेजोंका राज्य तो अभी हिन्दुस्तानसे गया नहीं है, अिसलिअे कुमार अपने पुत्रोंको मधुपुरीके अेक अच्छे युरोपियन स्कूलमें पढाते थे। पुत्रियां छोटी होनेसे अभी कान्वेन्टमें थीं। धीरे-धीरे पैसेका अितना टोटा पड गया था, कि स्कूलकी फीस तक नहीं दे पाते थे— या यों कहना चाहिये, कि कुमार अुसी खर्चको अदा करना चाहते थे, जिसके लिअे वैसा करना अनिवार्य था। खाने-पीनेकी चीजोंपर भी कुमारका काफी खर्च था, क्योंकि अेक तरफ सभी चीजें महगी थीं और दूसरी तरफ मेहमानोंका आवागमन कम नहीं था। अपने और अपनी नयी प्रियतमाओंके लिअे कपडों और जेवरोंकी भी जरूरत पडती थी। सभी चीजें अुधारपर आती थीं। बनिये अिस बातकी हिम्मत नहीं करते थे, कि अुधार देना बन्द कर दें, क्योंकि अिससे सालमें कुछ रुपये लौट आते थे। अिस तरहके अुधार और बेबाकी कुमारके यहाँ चलती ही रहती थी और कितने ही बनिये तो पता नहीं पाते थे, कि कर्जेकी तमादी लग चुकी है।

लादूराम मनमाने दामपर कुमारको चीजें दिया करते थे। कभी-कभी नगद रकम भी अुधार दे देते थे, क्योंकि कुमार मनमाना सूद देनेके लिअे तैयार थे। लादूराम बेचारे १५–२० हजारके आसामी थे। अर्थात् पहिलेके चार-पाँच हजारके। कुमारपर चार हजार रुपया अुधार हो गया। तकाजा करनेका यही फल हुआ, कि कुमारने अुनके यहाँसे चीज खरीदनी छोड दी। कुछ दिनों तक नगद दाम और फिर अुधारपर, अुन्होंने लादूरामके किसी दूसरे पडोसीको पकडा। आदमियोंके साथ तकाजा करनेसे कोअी फायदा न होते देख लादूराम अेक दिन स्वयं कुमारके बंगलेपर पहुँचे। झाँक झूँककर दूरसे ही अच्छी तरह देखा। दोनों मोटिया कुत्ते आज बंगलेके सामने नहीं बंधे थे। दिल अब भी डर रहा था, लेकिन अेक पुराने परिचित नौकरने अुन्हें विश्वास दिलाया, कि कुत्ते पीछेकी तरफ हैं। लादूरामके जानमें जान आयी। बडे आदमियोंको मनमाने दामपर यों ही सौदा बेचा नहीं जा सकता, अिसके लिअे नौकर चाकरोंकी मुट्ठी गरम करनी पडती है, अतः कुमार साहबके नौकर यदि लादूरामके साथ महृदयता दिखलानेके लिअे तैयार थे तो वाजिब ही था। लादूरामके कहनेपर अेक नौकरने जाकर कुमार साहबसे पास अरज की—सरकार, अेक आदमी आया है?

—कौन-सा आदमी, बंगलेका खरीदार?

—नहीं हुजूर लादूराम बनिया, पैसोंके लिअे।

लादूरामका नाम सुनते ही कुमारकी त्योरी बदल गयी। अुन्होंने अपने नौकरको पुकारकर कहा:

— खियाली, मोटियोंको छोड दे।

कुमारने कुछ अूँची आवाजसे कहा था, जिसकी जरूरत भी नहीं थी, क्योंकि लादूराम कुमारके कमरेसे बहुत दूर नहीं थे। मोटियोंका नाम सुनते ही लादूरामके प्राण हवा हो गये। वे अुल्टे पैर अपनी तोंद हिलाते बाहरकी तरफ लपके तुरन्त ही कुछ गजकी चढाअी शुरू हो जाती थी, लादूरामको न जाने कहाँसे अितनी ताकत पैदा हो गयी, कि दौडकर चढ गये और फिर सडक पकडकर तब तक दुलकी ही भागते रहे, जब तक कि बंगला ओटमें नहीं चला गया। लादूरामको अपनी बेवकूफीपर झुँझलाहट हुअी। वकीलसे पूछकर अुन्हें मालूम हो गया था, कि नालिश करनेकी मियाद खतम हो चुकी है। कुमार अिस तरह तकाजेके मारे किसीका ऋण चुका देनेके लिअे तैयार नहीं थे। ज्यादासे-ज्यादा वह यही कृपा कर सकते थे, कि आगेके लिअे अुधार चीजें न मंगायें। जिसीको नालिश करनी है तो नालिश करता फिरे। कुमारके अूपर ममनता मोल होना संभव नहीं था। लादूरामको घर लौटनेपर अुस दिन १०३ डिग्री बुखार आ गया।

(४)

कुमार दुरजयको अब अुधार भी मधुपुरीमें कोअी देनेवाला नहीं था। सभी जानते थे, कि अुनको अुधार देना रुपयेको पानीमें फेंकना है। मधुपुरीमें रहनेपर कुमारका खर्च भी अधिक बढ जाता था। अुन्हें अपने खर्चको कम करनेकी फिक्र पैदा हुअी। जागीरके महलको अब अेक तरह अुन्होंने छोड दिया था और अधिकतर राजधानीके महलमें ही रहते थे। वे जानते थे, कि पहाडोंमें तर होते रहे और जुमस्में दिन काटना मेरे लिअे बहुत मुश्किल होगा, लेकिन मधुपुरीके खर्चेके

लिए अब पैसा कहाँसे आय? मधुपुरा-जैसी राज-
धानीके महलमें रहकर खर्च चलाना अुनके लिए
मुश्किल था। जितनी भी जंगम और स्थावर सम्पत्ति
बेच चुके थे, अब मधुपुराके अपने रनवासके गहने भी
बेचनेके लिए तैयार थे। लेकिन अब अुस कोठी मिट्टीके
मोलपर भी लेनेवाला नहीं था। तीन वर्ष पहले जब
अच्छा दाम मिल रहा था तब तो सभासदोंकी तिकड़मसे
दुकान भी सोनेकी तरह अुस समय बेचा। मुसाहिब
मन और बड़े लोगोंकी तरह होते हैं। अब
मजा होता लाभकी बाजमें तो वह बना क्या न बने?
कुमार अगर कार्यालयके हो बन जायं, तो अुन्हें कौन
पूछेगा? अुनको लालसा कम करने? रियासतोंके
टूटनेसे सभी जगह मुसाहिबों, सभासदों, नौकरोंकी अवाज
मिल रहे थे और अेक नअेक गला रोजके खान हो
गये थे।

कुमार इसीके लिए बड़े चिंतित थे और इस
बातके लिए और भी चिंतित थे कि जब सारी सम्पत्ति
चुककर खा जायेंगे तो फिर कैसे गुजारा होगा?
आखिर कुमारकी अुमर अभी ५० तक नहीं पहुंची थी।
दूसरे बच्चोंकी फिकर न भी करें, तो अपनी फिकर तो
अुन्हें थी ही। अेक दिन तमकन्दार सभासदने कुमारको
सलाह दी कि मधुपुरीवालोंका कारोबार जमके महाराज-
कुमारके फार्मसे बदल दिया जाय। कुमार जिस समय
जाड़ोंमें राजधानीसे अपने महलमें थे, जब कि मुसा-
हिबने यह सलाह दी। अुसी समय दुरजयके दिल्लीसे
अेक दूसरे महाराजकुमार भी नगरमें आये हुअे थे।
महाराजकुमार रत्न रियासतके जानेके समय रियासतको
लूटमें हाथ बटाया था और अपने लिए दो हजार
अेकड़का फार्म भी बना लिया था। यह कहनेकी आव-
श्यकता नहीं कि पाकिस्तानसे जिस जमीनको जोतनेवाले
गरीब किसानोंसे खेतोंको छीन करके ही यह फार्म
बना था। कांग्रेसी शासनका थाय अयय लेनेका
कुछ डर था, क्योंकि यह तो सभी जगह अिसी तरह
चल रहा था। फिर वह पुराने सम्भ्रान्त कुलकी
मर्यादा भी गिरने देना नहीं चाहता था। महाराज-
कुमारने जब अपना फार्म बनाया तो अुनके पास पस

वाली थे। अुन्होंने दो ट्रैक्टर मंगवा लिये और फार्मपर
अपने रहने लायक अेक बंगला भी तैयार करा लिया।
अुस समय जितना अुत्साह था कि लाओ रुमाल और
पैंट पहनकर स्वयं ट्रैक्टर चलाते थे। आखिर
जब मोटर भी ठीक तरह चला सकते थे, तो ट्रैक्टर
चलाना क्या मुश्किल था? फार्मके सबसे अमगिषा
और अिजतदारको कितना ही किराया पड़ा, मस्तान मस्त
ग्राम और खाद भी मंगवायी। तथा किसी मुसाहिबके
कहनेपर असर मजदूरोंको कृषि विनायक बनाकर भी
रख लिया। तीन साल तक फार्म किसी तरह चलता
रहा। पैसा कहाँसे कितना आ रहा है और किस तरह
खर्च हो रहा है, जिसका लेखा महाराजकुमार अपना
प्रतिष्ठाके विरुद्ध समझते थे। ट्रैक्टर भी बराबर बिग-
ड़ने लगे। अक्सर कोओ न कोओ पुर्जा टूट जाता।
महाराजकुमार मोटर ड्राअिव कर सकते थे, अिसलिअे
ट्रैक्टर भी अच्छी तरह चला लेते थे, लेकिन मरम्मत
और पुर्जा बदलना अुनके बसकी बात नहीं थी। तीसरा
वर्ष बीतते बीतते फार्मकी स्थिति देखकर अुत्साह मन्द
हो गया। चौथे साल तो कुछ सबक सामने दिखायी
पड़ने लगा। जितनी आमदनी होती, खर्च अुससे अेक
बराबर पड़ता और अुसे पूरा करनेके लिअे कर्ज लेना
पड़ता या कोओ सामान बेचनी पड़ती। महाराजकुमारको
फार्मसे दिल छुड़ाना मुश्किल हो गया और स्वयंवाला
अनिहरका जबतक दर्जा देखने लगा।

फार्म चलाते समय भी महाराजकुमार अपना
कुअुगनी और दस भगुआके साथ गर्मी बिताने मधुपुरा
या किसी दूसरे पहाड़ी स्थानपर चले जाया करते थे।
वहीं अुनका अपना कोओ ठाला नहीं था, पिताका जो
था अुसे वह भाओको दे दिया था। पर और अेक
जगी बात हुआ। महाराजकुमार फार्मसे दिल छुड़ाना
चाहते थे और मधुपुरा अुस स्थानमें अेक नगर लेना
चाहते थे। कुमार दुरजय अपनी कोठी बेचना चाहते
थे। पहले अुनका ख्याल तकलीफ बेचनेका था, लेकिन
स्वाभिमानने सुमा दूसरे सुझाव दिया कि बेचनेकी जगह
अुस फार्मसे बदल लेना अच्छा होगा। बेचनेके लिअे
खरीदार भी नहीं था और फार्म आमदनीका जरिया

था। कुमारको अपने मोटर और जीप चलानेके कौशल पर अभिमान था। अुनके मनमें अुमंग पैदा हुअी मैं भी खाकी वर्दी पहनकर अमेरिकन किसान बन जाअूं। कुमारके मुसाहिबने महाराजकुमारसे बातचीत की। महाराज कुमारने पूछा मधुपुरीमें कोठी कैसी और किस जगह है।

कुमारके मुसाहिबने बड़े अदबके साथ बतलाया— सरकार वह मधुपुराके अुस मुहल्लेमें है जहां केवल साहब लोग रहा करते थे। चार रूम हैं, डाअिंग और डाअिनिंग हाल हैं। बाहर भी चार कमरोंका प्राअिवेट सेक्रेटरी या मेहमानोंके रहनेके लिअे छोटा सा बंगला है। चारों तरफ हरियाली है बड़ी सुंदर जगह है।

और वहांतक मोटर भी जाती है? — महाराज कुमारने पूछा।

मुसाहिबने नम्रतापूर्वक कहा—हुजूर बिल्कुल बंगलेके भीतर तक जीप जाती है, थोड़ा रास्ता ठीक करनेसे मोटर भी वहां तक पहुँच जाअेगी।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि कुमार और महाराजकुमार दोनोंके मुसाहिबान पहलेहीसे बातचीत कर सौदेमें अपना हिस्सा भी निश्चित कर लिया था। कुमार दुरजयके पिता भी महाराजा थे अिसलिअे अुन्हें महाराजकुमार कहना चाहिये किन्तु सरलताके लिअे हमने यहां अुन्हें कुमार कहा है। महाराजकुमारके मुसाहिबने बीचमें बोलते हुअे कहा

सरकार, मधुपुरीमें यदि आप चली जायें तो वही बहुत है। वहांके बंगले आप देखने ही हैं आराम अकान्तता और सुन्दरताको देखकर बनाये गये हैं। जीप जाती है यहां गनीमत है।

महाराजकुमारने विचार करके दो दिन बाद जवाब देनेके लिअे कहा। विचार क्या करना था वह तो जानते ही थे कि कुमार दुरजयको फार्म क्या अब कहां मिलेगा। अितना बड़ा बंगला मधुपुरीमें अुस चीजके बदले मिल रहा है जिसे वे बिना दामके भी फेंकनेके लिअे तैयार थे। अुसे खरीदनेके लिये कौन न अुत्सुक हो जाता? अुसी जाड़ेमें अुन्होंने अपने मुसाहिबको बंगला देख आनेके लिअे मधुपुरी भेजा जिसने अुसकी प्रशंसाके पुलकी भारी रखते हुअे भी अिस बातको साफ कह दिया था कि मोटर वहां हर्गिज नहीं जा सकती। बंगलेकी और बातें सुनकर महाराजकुमारके मुंहमें पानी भर आया। कुमारने भी फार्मको जाकर देख लिया। वे मन ही मन कहने लगे कि महाराजकुमार अपनी नातजर्बेकारीसे अिस सोनेकी चिड़ियाको हाथसे खो रहे हैं।

अुसी जाड़ेमें फार्मको मधुपुराकी कोठीसे बदलनेकी बात ही नहीं तय हो गयी बल्कि लिखा पढ़ी भी हो गयी। अब कुमार दुरजय फार्मके मालिक थे। अुनकी मोटर महलसे सत्तर मील दूरपर अवस्थित फार्मकी ओर दौड़ने लगी। अपने मुसाहिबोंके साथ मिलकर वह भविष्यका प्रोग्राम बनाने लगे। अुन्हें अिस बातकी प्रसन्नता होनी ही चाहिये थी कि सड़ी-गली कोठीसे पिंड छूटा और अुसकी जगह सोनेकी चिड़िया हाथ आयी। सबसे अधिक प्रसन्नता अुन्हें अिस बातकी थी कि अब मधुपुरीके कर्ज देनेवालोंके तकाजेसे पिंड छूटा। मनमें यह ख्याल करके और भी प्रसन्न होने लगे कि फार्मकी प्राप्तिके साथ साथ कर्जके बीस हजार रुपये भी अुसी कोठीके दाममें हैं।

महाराजकुमारके अेक दो आदमी पहले ही आकर मधुपुराके नये बंगलेको तैयार करनेमें लग गये थे। बस होता तो दो चार हफ्ते बाद महाराजकुमार मधुपुरी पहुँचते किन्तु जबकी अुन्हें अपने नये मकानके देखनेकी बेकरारी भी थी, अिसलिअे जल्दी आ पहुँचे। अंग्रेजोंके शासनमें मधुपुरीमें बहुतेरही मोटरोंको रुक जाना पड़ता था और लाट साहब तथा दो चार और बड़े अधिकारियोंको मोटरसे अनुकूल सड़कोंपर गुजरने दिया जाता था। लेकिन अंग्रेजी राज्यके हट जानेसे अब यह सुभीता हो गया कि कोअी भी कुछ रुपये देकर मोटर-लायक सड़कोंपर अपनी मोटर ले जानेके लिअे स्वतंत्र है। महाराजकुमारको मालूम था कि बंगले तक मोटर नहीं जाती अिसीलिअे अपनी जीप लाये थे। परमिट लेकर बंगलेकी तरफ चले लेकिन चार फर्लांग पगडंडी जोतसे रुक जाना पड़ा। लोगोंने बतलाया कि आगे जीपका रास्ता नहीं है। महाराजकुमारको कुछ झुंझलाहट पैदा हुअी। लेकिन यह समझाने पर कि जीपके जानेमें कुछ मरम्मत करनेकी जरूरत है अुनका टेम्परेचर ठीक हो

गया। अुतरकर अपने बंगलेकी ओर पैदल ही बढ़े। बंगलेको नौकरोंने ठीकठाक कर दिया था। अुसमें अुनको अुतनी शिकायत नहीं हुअी। सभी चीजें वहां पुरानी थीं और फर्नीचर भी संख्यामें कम थे, तो अुनका फार्म भी तो कुछ अिसी तरहका था। दो चार दिन रहनेके बाद महाराजकुमारकी कुँअरानी और लड़के जंगलके भीतर दम घुटनी सी जगहके अिस सुनसान बंगलेमें अुकता गये। अुन्होंने शिकायत करनी शुरू की। महाराज-कुमारका भी अब मन भर गया। सबसे बड़ी शिकायत अुनको अिस बातकी थी कि यहां और भी नहीं आ सकती। किसी समय अपने टूट फूट घोड़को मधुपुरीकी सुन्दर कोठीमें बदलकर वह फूले न समाते थे, समझते थे, मैंने दुर्जयका खूब अुल्लू बनाया। लेकिन अब अुन्हें अिस बूढ़ी कोठी और अुसके आसपासका स्थान देखकर मालूम हुआ कि दुर्जय बाजी मार ले गया।

महाराजकुमारको अब यह चिन्ता होने लगी, कि अिस कोठीको बेंचकर कोअी और जगह ली जाये। मधु-पुरीमें अुन्होंने कुछ जगहोंपर स्वयं घूमकर पता लगाया, तो मालूम हुआ कि २० २५ हजारमें अिससे कहीं अधिक अच्छी कोठी मिल सकती है और अैसी जगहपर जहाँ मोटर भी पहुँच सकती है। अुन्होंने भारी कमीशनका लोभ दे अजेन्टोंको कह रखा है कि कोठी बिकवा दें। लेकिन मसूरीका कोअी निवासी आशा नहीं रख सकता, कि अिस कोठीको कोअी मिट्टीके मोलपर भी लेनेके लिअे तैयार होगा। हजार पाँच सौ फर्नीचरके आ सकते हैं किवाड़ और जंगल धन्नसे अुखाड़कर बेचे जाअें तो अुससे भी कुछ पैसा मिल सकता है लेकिन अिसमें सन्देह है कि वह कामपर लगाये गये मजूरोंकी मजूरीके लिअे भी पर्याप्त होगा।



ब्रिटेनकी सांस्कृतिक विरासत—

सामाजिक प्रगतिके प्रणेता विश्वविद्यालय और शिक्षाशास्त्री

• श्री ओमप्रकाश आर्य

अिस लेखमालामें हमने अभी तक संस्कृति और सभ्यता सबध सांस्कृतिक दृष्टिसे कला और विज्ञानकी मूल्यवान कल्पनाकी स्थापना और कलाकृतियों अेव वस्तुनिष्ठ अुपादान का अैतिहासिक पार्श्वभूमि देखी है। परन्तु मैं समझता हूँ कि ब्रिटनकी सांस्कृतिक विरासतका यह रूपरेखात्मक चित्र वहाँकी शिक्षा संस्थाओंकी चर्चाके बिना पूरा नहीं कहा जा सकेगा। हर देशकी संस्कृतिमें वहाँकी शिक्षा-संस्थाओंका अेक अपना ही स्थान होता है। हम जब अपने देशकी प्राचीन संस्कृतिकी चर्चा करते हैं तो गुरुकुलों और ऋषियोंके आश्रमोंका बखान किया करते हैं और सही तरीकेसे किया करते हैं। मैं समझता हूँ कि कुछ वैसी ही बात ब्रिटनके साथ भी लागू होती है। और बस भी संस्कृतिकी चर्चामें यदि शिक्षाको निकाल दिया जाय तो रह ही क्या जाता है? अितिहास अिस बातका साक्षी है कि हर विशिष्ट संस्कृतिकी प्रगति शिक्षाके विकासके साथ और अुसकी अवनति शिक्षाके ह्रासके साथ संबद्ध रही है।

जब मैं शिक्षाका बखान करता हूँ तो कुदरती तरीकेसे अुसे सार्वजनिक हित मान लेता हूँ। यह बतलाना मैं अिसलिअे आवश्यक समझता कि आज अपने देशमें कितने ही ऐसे लोग आवश्यकता और शिक्षामें भेद करना भूल जाते हैं। अिसका सीधा परिणाम यह होता है कि विचारशील व्यवहार अेक अनावश्यक पुछल्ला बन जाता है। मैं ऐसे लोगोंसे अलग रहना चाहता हूँ।

अितना मान लेनेके बाद अब ब्रिटिश विश्वविद्यालयोंकी चर्चा की जा सकती है। अधिकतर लोग सोचा करते हैं कि ब्रिटिश विश्वविद्यालय अपने विचारधारामें अनुदार, कट्टर और परंपराओंमें बंधे होते हैं और अिसलिअे अुनके द्वारा जिस शिक्षाका प्रसार होता है वह नवीन युगके लिहाजसे नये समाजको प्रगतिके विचारसे वांछनीय नहीं। मैं स्वयं अिस विचारका नहीं स्वीकार करता। जो लोग अैसे विचार रखते हैं वे यह भूल जाते हैं कि विश्वविद्यालय केवल सामाजिक संस्थाअें ही नहीं जो कि अपनेको शासक वर्गकी मान्यताओंका दर्पण बनाकर रहनेमें ही अपने कार्यकी अिति श्री समझती हों। अिनमें जो लोग काम करते हैं अुनका कर्तव्य ज्ञानकी रक्षा और अुसका प्रसार भर ही न होकर नये ज्ञानकी अुपलब्धि हुआ करता है। नये ज्ञानकी खोजका यह तत्व ही विश्वविद्यालयोंको आधुनिक जीवनमें वह अनिवार्य स्थान दिलवा पाता है जिसका जिक्र अूपर आया है।

अितिहासके सम्बन्धमें चर्चामें ज्ञानकी अुत्कृष्टतम परंपराओंकी रक्षा, ज्ञानका प्रचार और प्रसार तथा नये ज्ञानकी खोज ये अैसे अुद्देश्य हैं जिनके सहारे कलाविद और वैज्ञानिक समाजकी शासक शक्तियोंके साथ संघर्षमें आ जाते हैं। क्योंकि यदि वे अपने मानवीय अुद्देश्योंके प्रति सच्चे हैं तो सारे अितिहास सामनेमें विशेष वास्तविक रहा, वैयक्तिक स्वतंत्रताओंके सीमाकरणका और खोजके अूपर लगनेवाले नियंत्रणके प्रतिवादका विरोध हर हालतमें करना ही पड़ेगा। हमने देखा है कि बराबर अुन लोगोंने अैसा किया। फिर अुनके कर्तव्य यहीं समाप्त नहीं हो जाते। अुन्हें यह भी देखना पड़ता है कि अुनके द्वारा जो नये ज्ञान प्राप्त किये गये हैं अुनका कैसा और क्या अुपयोग समाजमें किया जा रहा है? क्योंकि बिना अिसके नया संस्कार वैज्ञानिक कायम नहीं रह सकता। अिस प्रकार विश्वविद्यालयोंमें पढ़ानेवाले बड़े-बड़े अध्यापक भी अेक व्यापक सामाजिक संघर्षके दायरेमें आ जाते हैं। अैसे अवसर प्रायः ही

क्यों न हो। आखिर तो अुन्हें यह देखना पड़ता है कि अुनके अपने कार्यके स्वार्थ किस ओर रहनेसे पूरे किये जा सकते हैं। यह ब्रिटनमें जितना आज सही है अुतना ही पिछले युगोंमें भी सही था।

यह अंग्रेजी क्रान्तिके समय १७ वीं सदीमें लोगोंने जाना कि ज्ञानका अर्थ प्रकृतिपर मनुष्यकी विजय अथवा फ्रांसिस बेकनके शब्दोंमें **मनुष्यकी जायदादका आराम।** मिल्टन अंग्रेजीका नामी कवि हो गया है। परन्तु अुसका नाम और मान केवल अुसकी कविताके कारण ही नहीं वरन् अुसकी प्रगतिशील राजनीतिक विचारधाराके कारण भी है। अेक नौजवान विद्यार्थीके रूपमें ही अुसने कैम्ब्रिजमें मध्ययुगीन अध्ययनक्रमके विरुद्ध और अुसके अूपर आधारित शिक्षाके विरुद्ध अपनी आवाज़ बुलन्द की थी क्योंकि अुससे सच्चाअीपर पर्दा पड़ता था और आम जनताको सचाअीसे दूर किया जाता था। कैम्ब्रिज-विश्वविद्यालयसे शिक्षा प्राप्त करनेके बाद निकलते समय अपने विद्यार्थी जीवनके अन्तिम भाषणमें मिल्टनने अेक समयकी कल्पना की थी और वह यों थी " अेक समय आअेगा जब कि मनुष्यकी चेतना अितनी अधिक अुन्नत हो जाअेगी कि अुसकी आज्ञा सितारे तक मानने लगेंगे, अुसके हुक्मपर जमीन और समुद्र चलने लगेंगे और अुसकी सेवामें वायु और तूफानतक लगे रहेंगे और अन्तमें **माँ प्रकृतिने** अुसके सामने अिस प्रकार आत्म समर्पण कर दिया होगा जैसे कि मानो परमात्माने विश्वका सिंहासन अपनी अिच्छासे छोड़ दिया हो और विश्वके अधिकार, कानून और प्रशासन मनुष्यके हाथमें दे दिये गये हों।" यह ठीक है कि मिल्टनका यह अुच्च विचार ब्रिटनके विश्वविद्यालयोंमें पूरी तरहसे घर नहीं कर पाया परन्तु अुसकी आन्तरिक प्रतिष्ठा बनी रही। अुसीके सहारे रायल सोसाअिटीकी स्थापना हुअी। आधुनिक विज्ञानोंके अितिहासकी नींव पड़ा। पीछे जब नये सुधारक लोगोंने लिअे अनुदारपूर्ण भावनाओंके सहारे और धार्मिक परम्पराके कारण औक्सफोर्ड और कैम्ब्रिजके दरवाजे बन्द हो गये तब अुन्हीं लोगोंने नये रूपमें बेकनकी परम्पराओंको कायम रखनेके लिअे और आगे बढ़ानेके लिअे नयी शिक्षा संस्थाअें खोलीं।

ब्रिटनकी डिस्सेंटिंग अकेडमीज़के नौनकौनफौर्मिस्ट संस्थापक लोग जैसेही थे जिनका १८ वीं सदीमें खूब बोलबाला था। अुनके साथ अुस समयके अधिकतर प्रगतिशील विचारक संबद्ध थे। अिन्हींमें **अिरेस्मस डार्विन** थे—कवि, चिकित्सक, वैज्ञानिक और शिक्षा शास्त्री। अिन्हींकी **जूनोमिया** नामक पुस्तकने विकासवादके सिद्धान्तकी सर्वप्रथम स्थापना की। अिन्हींमें **पर्सिवल** थे। मैंचेस्टरके अेक डाक्टर और समाज शास्त्री, मैंचेस्टर साहित्यिक और दार्शनिक समाजके संस्थापक जिन्होंने मैंचेस्टरमें अेक विश्वविद्यालय खोलनेका पहला प्रस्ताव रखा था। अिन्हींमें **जौन डाल्टन** थे—मैंचेस्टरके ही जिन्होंने रसायनशास्त्रमें अणु सिद्धान्तकी नींव डाली। वैसे ही **जोसेफ प्रीस्टले** थे शिक्षक, दार्शनिक और व्यवहारिक वैज्ञानिक जिनका घर बर्मिंघमके चर्चको माननेवालों और राजाके भक्तोंने अिसलिअे जला दिया था और वैज्ञानिक अुपकरणोंको अिसलिअे तोड़ फोड़ दिया था क्योंकि अेक चेतन विचारकके नाते अिन्होंने फ्रांसीसी क्रान्तिका समर्थन किया था।

अिन व्यक्तियोंने जिनका जन्म नये औद्योगिक केन्द्रोंके अन्दर हुआ था अपनी आँखें सदा भविष्यपर रखीं। ये अपने समयके सब अेक विचारोंसे केवल सहमत या अवगत ही नहीं थे वरन अुनमें भाग लेनेवाले थे जिन्हें हम आजकी भाषामें क्रान्तिकारी कह सकते हैं। अुन्होंने फ्रांसीसी क्रान्तिका खुले हाथों स्वागत किया। अुन्होंने सदा विचारों और खोजोंकी स्वतन्त्रताके लिअे संघर्ष किया और अिसका सदा विरोध किया कि परम्परागत विचारोंको बिना सवाल किये ही स्वीकृत कर लिया जाअे। अिसलिअे अिसमें कोअी शक नहीं रह जाता है कि शासक वर्ग अिन संस्थाओंसे और अिन संस्थाओंको चलानेवाले व्यक्तियोंसे क्षुब्ध हो गया। युकन हैकनी कालेजको खतरनाक घोषित कर दिया क्योंकि अुस कालेजके विद्यार्थियोंने टौमपेन जैसे क्रान्तिकारीको अपने कालेजमें सम्मानके साथ भोजन करवाया था और अपने लिअे स्वयं सोचनेके अधिकारका खुले-आम प्रतिपादन किया था।

अिसी प्रकार स्काटलैंडमें भी अुन्नतवादी और अुदारवादी शिक्षाकी परंपरायें कायम हुआीं। स्काट-लैंडके दार्शनिक स्कूल और चिकित्साके स्कूल अपने जमानेमें बड़े मशहूर हुअे जो पीछे जाकर आजकी स्कौटिश् यूनिवर्सिटियोंके बड़े-बड़े विभाग बन गये। यदि आप अुस जमानेके अुदारवादी ब्रिटिश समाजमें शिक्षाकी ओर देखें तो आपको पता चलेगा कि ब्रिटिश शिक्षा शास्त्री लोग स्कौटिश विश्वविद्यालयोंको, अमेरिकामें जेफरसन द्वारा खोले वर्जीनियाके नये विश्वविद्यालयको और बर्लिन और बौनके महान जर्मन विश्वविद्यालयोंको जो १८१३ के बाद जर्मन जनताके संघर्षके फलस्वरूप स्थापित हुअे थे, अपने सामने रखकर देखा करते थे। कहना न होगा कि अपना लन्दनका यूनिवर्सिटी कालेज १८२८ में स्थापित करते समय अुनके सामने अुक्त संस्थायें ही थीं, जो अपनी कहानी आप कहती हैं।

लन्दनके यूनिवर्सिटी कालेजका संस्थापन कोअी आसान काम नहीं था। जिसके लिअे संस्थापकोंको काफी राजनीतिक जद्दोजहद करनी पड़ी। अुसका परिणाम यह हुआ कि १८३२ के शिक्षा सुधार बिले-यकके पारित हुअे बिना अिसे रौयल चार्टर नहीं मिल पाया। ब्रिटेनमें सामाजिक प्रगतिके प्रणेता रूपमें यूनिवर्सिटी कालेज, लन्दनका बहुत बड़ा स्थान रहा है। यहींपर ही पहली दफे अेक कालेजमें कला, विज्ञान, शिल्प, प्रौद्योग आदिकी शिक्षा बिना धार्मिक आधारके दी जाने लगी। ब्रिटेनके अितिहासमें पहली दफे अेक कालेजमें दर्शनके प्राध्यापकका पद अेक अैसे आदमीको दिया गया जो कि पादरी नहीं था। अिन्हीं सब कारणोंसे अिसने गणितज्ञ डि मोर्गन, रसायनज्ञ विलि-यमसन, साहित्यिक मैसन, कवि मिल्टन, समाजशास्त्री बैन्थम, स्टुअर्ट मिल और ग्रोर्ज ग्रोटको मानसिक विकास पानेका अवसर दिया। ब्रिटेनकी शासक श्रेणियोंकी घोर टोरी विचारधारापर यह अुदारवादी हमला अिसी कालेजके महान प्राध्यापकोंके कारण संभव हो सका।

लन्दनके यूनिवर्सिटी कालेजसे शिक्षा पाकर अुन्नीसवीं सदीके अुत्तरार्द्धमें ब्रिटेनके नये-पर बड़े औद्यो-गिक केन्द्रोंमें नये-नये विश्वविद्यालय स्थापित किये गये। अिनके प्राध्यापक अेक कदम और आगे बढ़े। अिनमेंसे बहुतोंने समाजवादी आन्दोलनके साथ अपनेको देखा। प्रोफेसर बीजली कार्ल मार्क्सके दोस्त थे। मैंचेस्टर विश्वविद्यालयके मशहूर प्रोफेसर शौर्लेमर, जिन्होंने अेंगेल्सको रसायन-शास्त्र पढ़ाया था, स्वयं अेक बड़े प्रगतिवादी विचारक थे। मार्क्सकी मृत्युके बाद अेंगेल्सने कहा था 'मार्क्सके बाद निःसंदेह शौर्लेमर ही यूरोपीय सोशलिस्ट पार्टीमें सबसे प्रमुख व्यक्ति हैं। मैंने जब आजसे बीस साल पहले अुन्हें जाना था तो वे पहलेसे ही कम्युनिस्ट हो चुके थे।' कहना न होगा कि आज ब्रिटेनके विश्वविद्यालयोंमें अेक नहीं बरन कअी शौर्लेमर मौजूद हैं। प्रोफेसर जे डी. बर्नाल, प्रोफेसर हाअीमन लेवी, डाक्टर मौरिस डैब, प्रोफेसर जे बी अेस. हाल्डेन आदि महान विचारक शौर्लेमरकी सुन्दर और स्वस्थ परम्पराके ही अनुगामी हैं। आजके ब्रिटेनमें जो सांस्कृतिक प्रगतिकी अविच्छिन्नता नजर आती है, जो सामाजिक अुद्बोध दिखलाअी देता है, अुसका अधिकतर श्रेय अुक्त श्रेणीके ब्रिटिश अध्यापकोंको ही है, जिन्होंने अपनी पदकी सुरक्षापर खतरा मोल लेकर भी, शासक श्रेणीसे वैर करके भी, श्रमिक जनतामें नये ज्ञानकी ज्योत जगाये रखनेका पूरा और सफल प्रयत्न किया।

पिछले बीस सालोंमें जो ब्रिटेनमें शान्त सामाजिक-क्रान्ति हुअी है अुसने ब्रिटेनकी श्रमिक श्रेणीके बेटे-बेटियोंको विश्वविद्यालयोंके दरवाजे खटखटानेकी ओर संकेत किया। और आज अुनके अन्दर भी ज्ञानकी पिपासा अेवं सांस्कृतिक अुपादानोंको भोगनेकी तीव्र अिच्छा पायी जाती है। ब्रिटेनकी मजदूर सरकारने युद्धोत्तर कालमें यहांके विद्यालयोंका और विद्यार्थी शिक्षाका पुनःसंघटन किया है, जिसके अनुसार गरीब घरोंके भी प्रतिभाशाली नौजवानोंको विश्वविद्यालयोंमें जानेका मौका मिल सका है, और फिर बड़ी-बड़ी ट्रेड यूनियनोंने अपने सदस्योंके बेटे-बेटियोंके लिअे भी कुछ विशेष छात्रवृत्तियोंका अिन्तजाम किया है। अिसीके साथ पिछले दस सालोंमें रातमें चलनेवाले औद्योगिक और कलात्मक स्कूल और कालेजोंकी अनपेक्षित वृद्धि भी यहां हुअी है, जिससे लाखों कमकर व्यक्ति अपने

फुरसतके समय विशिष्ट शिक्षाओंके लिअ आते जाते हैं। वैसे ही कअी बडी बडी संस्थाअं बनी हैं जैसे 'वर्कर्स अेजूकेशनल असोसियेशन' जिनका काम औद्योगिक केन्द्रोंमें समाजशास्त्र, राजनीति, अर्थशास्त्र, प्रौद्योग आदि विषयोंपर बडे बडे विद्वानों द्वारा भाषणों और कोर्सोंका आयोजन करना है। जिनमें भी श्रमिक जनता बडे अुत्साहके साथ भाग लेती है।

जिन सबके सहयोगने अेक असी स्थिति पैदा कर दी है जिससे यहाँकी बुजुआ श्रेणियाँ काफी भयभीत होती जाती हैं। वे ज्ञान और संस्कृतिके प्रसारके जिन साधनोंको कम करना चाहती हैं। टोरी सरकारने और अधिकतर टोरी नीतियोंने प्रणाली रूपमें कमकर जनताकी जिन सभी सुविधाओंपर हमला करना शुरू कर दिया है। सरकारकी ओरसे शिक्षापर किया जानेवाला खर्च कम किया जा रहा है। नये स्कूलोंका निर्माण लगभग ठप्प है। हरसाल नये नये विद्यार्थी स्कूलोंमें आते जाते हैं परन्तु अुनके लिअ नये स्थान नहीं। जिस लिअ जिस श्रेणीमें तालीमको जगह मिलनी चाहिये असमें पचास शिक्षार्थी बठाये जाते हैं। कहना न होगा कि ब्रिटनकी प्रगतिशील विचारधाराओंने जिस प्रवृत्तिका जमकर विरोध किया है।

आम जनताने ज्ञानके जिस प्रसारने और संस्कृतिके जिस विस्तारने अुनको पुरानी और दकियानूसी विचारधाराओं छोड़कर स्वस्थ और जनवादी तर्कवादी विचारधाराओंकी ओर पुरस्सर किया है। यहाँपर भी टोरी विरोध बहुत पक्का है। आज यह सर्वविदित है कि पूंजीवादके गढ अमरिकामें केवल राजनीतिमें ही नहीं वरन् विज्ञानमें भी प्रतिक्रियावादी विचारधाराका बोलबाला है। ब्रिटिश टोरी समाजका अुद्देश्य यह है कि पूंजीवादी व्यवस्थाको बचानेमें अुन विचारधाराओंका खुले आम अुपयोग होना चाहिये। जिसलिअ आज ब्रिटनके विश्वविद्यालयोंमें 'प्रतिभाका शिकार' प्रारंभ हो गया है। प्रगतिशील विचारधारा रखनेवाले लोगोंकी नियुक्ति मुश्किलसे ही होती है। क्योंकि आज भी विश्वविद्यालयोंकी शासिका संस्थाओंमें टोरी विचारधाराके लोगोंका, लाडौं और सरके खिताबधारियोंका ही बोलबाला है। वे ही नये प्राध्यापक चुनाव करते हैं। परन्तु ब्रिटनमें 'प्रतिभाका शिकार' जरा छिप छुपकर होता है। खुले आम नहीं जैसा आज अमरिकामें देखनेको मिलता है।

जिसने भी विश्वविद्यालयोंमें अेक संघर्षकी स्थिति पैदा कर दी है जिसके अनुसार अनेक बहलोंके लिअ राजनीतिक विचारधाराओंको परख अनावश्यक करार दी जाने लगी है। केवल योग्यताके ही आधारपर *नियुक्तिका नारा आज ब्रिटनके सब विश्वविद्यालयोंमें* गूंज रहा है। क्योंकि यह संघर्ष भी विचारकी स्वतंत्रताकी खोजकी स्वतंत्रताका संघर्ष है जिसके सहारे धन निकी शोध कार्यपर गोपनीयताका पर्दा न डालनेकी बात कही जाती है। कहना न होगा कि आजके प्रगतिशील प्राध्यापकगण ही जिस आन्दोलनका नेतृत्व भी कर रहे हैं। और वे जानते हैं कि अुन्हें यदि अपने *संघर्षमें किसीसे सहयोग मिलेगा तो श्रमिक श्रेणीसे ही* जो कि स्वयं टोरी नीतियोंके विरुद्ध है।

जिस तरह हम देखते हैं कि आजके ब्रिटिश विश्वविद्यालय और जिसके महान शिक्षाशास्त्री अपनी स्वर्णिम परम्पराओंके अनुकूल ही ब्रिटिश संस्कृतिकी रक्षा और अुसके विकासमें असी तरह दत्तचित्त हैं जैसे अुनके पुरखा १८ वीं और १९ वीं सदीमें थे। यही अुस स्वास्थ्यकी निशानी है जिसके सहारे ब्रिटनके आगे आज भी ग्रेट [बड़ा] का विशेषण लगाया जाता है और मैं समझता हूँ कि सही तरीकेसे लगाया जाता है।



तमिळ कहानी :

अेकताका अंत

श्री शाण्डिल्यन्

"बदमाश और बहादुरमें कौनसा फर्क है ? दोनो दूसराको मारते-पीटते ही तो है न ?"

वैद्यलिंगमजी पिल्लैने 'बडी हवेली' के मालिकसे जो छोटे मालिक' के नामसे मशहूर थे, सवाल किया। गांवोमें नित्य प्रति होनेवाली चर्चाओंमेंसे यह भी अेक है।

यहांपर अिस बातका स्पष्टीकरण जरूरी है कि छोटे मालिक सचमुच छोटे मालिक या बच्चे नही थे। अुनेकी अुम्र लगभग छियालीस सालकी होगी। वे अनदानपुरमके सबसे बडे रईस थे। यही कारण है कि अुनका घर भी 'बडी हवेली' के नामसे पुकारा जाता था।

अनदानपुरमकी अुस बडी हवेलीके मालिक अर्थात् 'छोटे मालिक' के पिता जबतक जीवित थे, तब तक अुनके सुपुत्र सुन्दरेशन 'छोटे मालिक' के नामसे पुकारे जाते थे। अतः बडे मालिककी मृत्युके बाद भी अुनका वही 'छोटे मालिक' नाम स्थायी हो गया। केवल वैद्यलिंगम पिल्लैजीके लिअे ही नहीं, वरन सारे गांववालोंके लिअे भी वे 'छोटे मालिक' ही बन गये थे।

वैद्यलिंगम पिल्लै जब कभी बडी हवेलीके बडे मालिकसे मिलने जाते, तब यही प्रश्न किया करते थे कि 'छोटे मालिक' क्षेम-कुशलसे तो है न ? अब वे ही छोटे मालिक सुन्दरेशन बडे हो गये और सुन्दरम अय्यरके नामसे हस्ताक्षर भी करने लग गये, फिर भी 'छोटे मालिक' की अुपाधि अुनसे अैसी चिपट गयी कि निकाले नही निकलती। हालांकि छाम्के अेक छोटा पैदा होकर अुस छाम्के भी बूढ़ा भी आ गयी, फिर अय्यर अपने गांववालोंकी दृष्टिमें आज मार्कण्डेयकी तरह निरंतर 'छोटे मालिक' ही बन रहे। गांवकी दही-दूध बेचनेवाली ग्वालिन भी 'छोटे मालिक' ही कहा करती थी।

वैद्यलिंगमजी पिल्लैके सवालका जवाब छोटे मालिक तुरन्त नही दे पाये। अतः, आराम कुर्सीपर पडे ही पडे अुन्होंने अेक करवट बदली और पूछा, क्या पिल्लैजी ! आपको अिसमें अैसा क्या सन्देह हो गया ? फिर निकटवर्ती पानदानको हाथमें अुठा लिया और दो चार पान निकाले तथा अुनमें चूना लगा अुनकी नस निकालकर घडी की और मुंहमें दबा लिया। जब किसी बातका अुत्तर देते न बन पडा तो अय्यर अैसी ही कोअी तरकीब निकाल लेते कि जवाब देनेसे पिंड छूट जाअे। अिस प्रकार चुप्पी साधनके लिअे स्वयं अपनेपर दफा १४४ जारी करनेमें अय्यरका ख्याल था कि पिल्लैजीको हमने धोखा दे दिया और अुत्तर देनेसे हम साफ-साफ बच गये। हां, अैसे अवसरों पर वे सचमुच छोटे अर्थात् बच्चे ही बन जाते थे और जबान नहीं खोलते थे। अगर मजबूर होकर किसी हालतमें बोलना भी पडे तो अैसी मानसी बोली बोलते कि सुननेवालेकी समझमें कुछ न आता। अैसे मौकोंपर अुनका ताम्बूल चबाना सच्चा मददगार साबित होता।

अय्यरको तो वैद्यलिंगम पिल्लै बचपनसे जानते थे। क्या अिस हालतमें वे आसानीसे अिन बातोंमें पडकर धोखा कैसे खा सकते थे ? पिल्लैजी फिर भी अपनी बातपर अडे रहे और पूछा 'छोटे मालिक ! मेरे सवालका जवाब दिये बिना आप पान खानेमें लग गये ! यह क्या ?

छोटे मालिकने अपने होठोंमें आधा हँसी लाकर अिस प्रकार दबाया मानों अुनके सवालका तो अुत्तर मौजूद है परन्तु मुंहके अन्दर पानकी पीक अडचन डाल रही है। फिर हूं करते हुअे कुर्सीपरसे अुठे और बाहरी बैठककी अेक ओर जाकर मुंहका पीक थूका और अंदरकी ओर मुंह करके आवाज लगाया, 'अजी, सुनती तो हो ! जरा अेक लोटा पानी लाना कुल्ला कर लूं।

वर्धाग्गम पंडितजीको यह समझते देर न लगी कि अय्यर अपनेको जवाब देनेसे पिंड छुड़ानेके लिअ अिस अुपायका प्रयोग कर रहे हैं। अय्यरकी यह दूसरी तरकीब थी। जब पंडितजीका मुंह बन्द करनेमें पहली तरकीब कारगर न हुअी तो किसी बहाने अपनी वेदनाको दुहराकर और सान्त्वनाका रुख दूसरी ओर मोड़नेकी चेष्टा करने लगे।

अिसपर भी पंडितजीने अुनका आसानीसे नहीं छोड़ा और कहा — छोड़ो साहिब, अब तो अब अितनी बीत गयी। मान्दिनका क्या नाहक नष्ट करते हैं? पोंगल* दिन बहुत अुसके मायके वाले जाकर लाड़ गये हैं न? अुनसे कहिये तो वे पानी ला दें।

पंडितजी जानते थे कि अय्यर अपनी बहुत बात नहीं करेंगे। अब अुन्होंने सोचा कि अुनको बातोंमें बहलाना ठीक नहीं और किसी बहाने बातोंमें फंसा दें।

अय्यर और पंडित अिस प्रकार बातोंमें लगे थे कि अय्यरका बन्दराम लाठी पकड़ता वहीं आ पहुंचा। अुसका मुंह देखते ही दोनों जरा ठिठके। अय्यरका मुंह अुद्विग्नता और विषादसे भर गया। बन्दरामके माथेसे खूनकी धारा बह रही थी। अुसने अपने हाथसे माथेपरकी अुस चोटको दबाये हुअे था। अिसलिअे अय्यरको यह समझनेमें देर न लगी कि चोट कहाँ लगा है? अुसका हाथ हटाकर चोट देखनेके बाद ही अय्यरने शोक हुलास छिपाते आये। अेक जरा निश्वास लेकर बोले — परम साथी पर बचाव कि अुन्होंने बाल बाल बचा लिया। चोट जरा नीचे अगर लग गयी होती तो क्या होता?

थोड़ा देर अुस चोटको गौरसे देखकर अय्यरने पूछा — क्या बन्दराम! यह क्या बात है? यह चोट कैसे लगा?

बन्दरामने अुत्तर दिया — कोअी बड़ी बात न थी पिताजी! मंदिरके पुजारी है न? अुनका बड़ा अन्धा स्नान संध्यासे निवृत्त होकर भगवानकी पूजाके हेतु जा रहा था। तब पिंडजीका पोता मारिमुत्तु अुसपर जबर दस्ती आगे बढ़ने लगा। मैं अुसे रोकने गया तो मेरी यह दशा हो गयी।

किसने अैसा किया? क्या लक्ष्मण पिंडपोत्तन? यह प्रश्न अय्यरके मुंहसे और किसने? मारिमुत्तु? यह सवाल वर्धाग्गम पिंडजीके मुंहसे अेक साथ निकले।

अेक रामका मां मुत्तका घाव धोकर अुस पर मलहम* लगा। घाव पर अपनी पत्नीको बुलाकर अय्यरने आदेश दिया और वर्धाग्गम पिंडजीसे आंख मिलाकर अय्यर देखने लगे। यदि यही काम किसी दूसरे घरके लड़केने किया होता तो अुसका पक्ष लेकर बकवाद करते। अय्यरने अैसा महसूस की होगी कि अुसकी खुशी अुधर जाती। लेकिन पिंडजी तो अेकसे अेक दूरके मित्र तथा हितचिन्तक थे। अुनके प्रति अैसा व्यवहार कैसे कर सकते थे। अिसलिअे अुन्होंने अेक आग्नेय दृष्टि फेरकर अय्यरसे कहा — पिंडजी अब मैं आपके सवालका जवाब दे सकता हूं। बन्दरामकी बगलमें लड़कपनवालोंका बस्तान है। अपनी जातिपर घमंड है अुन्होंने भी रखवा करनेवाला बनाअे हैं। आजकल हमारे गांवमें प्रथम श्रेणीके गुण्डोंकी संख्या दिन दिन बढ़ती जा रही है।

अितना कहकर अय्यर अपने पूजाघरमें अन्दर चले गये। अय्यरका यह कथन केवल अुनके गांव या अुस गांवका ही विषय नहीं, बल्कि सारे भारतके विषयमें सत्य प्रमाणित हो सकता है।

बड़ी हताशासे सीढ़ी अुतरते हुअे वर्धाग्गम पिंडजीने अपने गांवपर अेक बार दृष्टि दौड़ायी। अुनकी आंखोंकी दोनों कोरोंसे दो बूंद आंसू छलक आये। ओह! कितना अच्छा गांव था और आज कैसी दशा!

---

*मकर संक्रान्तिका ही दूसरा नाम पोंगल है। अुस दिन खेतसे नया अनाज लाते हैं और अुसीको पकाकर खाते हैं। अेक तरहसे कहा जाये तो यह फसली त्योहार Harvest Festival माना जाता है।

*अुदिमलार अेक तरहका पौधा है जिसके फूल शामको चार ही खिलते हैं और पत्ते घावपर मरहमका काम करते हैं।

प्राप्त हो रहा है !" यह विचार आतेही अुनको नाकसे अेक गरम निश्वास निकल पडी।

सचमुच अन्नदानपुरम् बहुत बड़ा सुन्दर गांव था। प्रकृति माताने यहाँ खुले हाथों अपना सौंदर्य-भण्डार बिखेर रखा था। गांवके पूरबमें अेक बडा तालाब था, जिसके चारों किनारोंपर बेलकी केवडेके पेड़ लगे थे। तालाबके किनारे शिवजीका अेक मन्दिर था। पश्चिमकी दिशामें, कुमुदके पत्तों और फूलोंसे ढका अेक तालाब था। अुसके तटपर भगवान विष्णुका मन्दिर और अुत्तरमें ग्रामदेवता 'पिडारी'का मन्दिर था। दक्षिणके अेक कोनेमें 'मारि अम्मन' अर्थात् 'महामाया का मन्दिर था। गांवके चारों तरफ हरे लहलहाते खेत थे। बरसातके दिनोंमें गांव अैसा नजर आता था कि जैसे कोओ ग्रामवाला हरे रंगकी मखमली चादर ओढे सुखकी मीठी नींद ले रही हो। कार्तिककी खेती अुस ग्रामवालाको सुन्दर सुनहरी साडी पहना देती। पौषके शुरू होनेके पहलेही खेतके चारों तरफ फसलके ढेर लग जाते। अुस समय अैसा मालूम होता कि मार्गशीर्षकी ठिठुरती सर्दीसे बचनेके लिअे, वह ग्रामबाला, मोटी चादरको अुठा, अेक ओर फेंककर अुत्तरायणके सूर्यके गले लग गयी ताकि धूप लेकर सर्दीको भगा दे। अिस मंगलमय कार्यके शुभागमनका स्वागत करते हुअे ग्रामवासी नये धानसे शर्करान्न बनाकर सूर्य भगवानको चढाते, दावतें अुडाते और आनन्दमंगल मनाते। आनन्दोत्सवके अुपलक्ष्यमें बडी धूमधामसे मन्दिरोंमें अभिषेक-आराधना की जाती। किसानके साथी गाय-बैल भी अिस आनन्दमें शरीक होते और अपने गलेकी बजती घंटियोंसे कल-कल निनादसे आकाशको भी गुंजा देते। कहनेका मतलब कि 'पोंगल'के त्योहारके दिनोंमें गांवोंमें हँसी-खुशीका अैसा दौर चल पड़ता कि कुछ न पूछो!

अैसे आनन्दमय पोंगल-त्योहार बहुत दूर होते हुअे भी गांव, अपनी सुस्ती भगा देते और अंगडाअी लेकर अुठ बैठते तथा बडी मुस्तैदी अेव चुस्तीके साथ आनेवाले पोंगलका त्योहारका स्वागत करनेके लिअे तैयार हो जाते। गांवोंमें मस्तीका अैसा आलम छा जाता कि बडे जोर और शोरसे खेतोंमें फसल काटना शुरू हो जाता और खलिहानोंमें अनाजके ढेर लगने लग जाते। जहाँ देखो, वहाँ सभी धूल-धूसरित कृषक ही देखनेको मिलते। गांवके सभी मन्दिर साफ किये जाते और मन्दिरोंकी दीवारें चूनेसे सफेद की जातीं।

सब प्रकारके अभिषेकके सामान और खर्चेके लिअे रुपये 'बडी हवेली' होने सब मन्दिरोंको भेजे जाते। "बडी हवेली' के मालिक जातिके अय्यर हैं— जिस कारणसे विष्णुका मन्दिर या पिडारीका मन्दिर अथवा मारियम्मनका मन्दिर किसी सुविधासे अेक रत्तीभी वंचित नहीं रहता। अभिषेक और अुत्सव सबकी सारा प्रबन्ध वैद्यलिंगम पिल्लैजीकी देख-रेख ही में होता। अय्यर या पिल्लैके मनमें कभी यह भेद भावना नहीं अुठी कि हम जातिके अय्यर हैं या पिल्लै।

अय्यर अपने आचार-व्यवहारके विषयमें जितने कट्टर थे कि पिल्लैजीके साथ सामने बैठकर भोजन नहीं करते और दृष्टि-दोषसे बचते। पिल्लैजी भी जिस बातको बुरा नहीं मानते तथा अपने मनमें अिस बातके लिअे जगह भी न देते कि हमारे साथ अिस प्रकारका व्यवहार क्यों किया जाता।

आहार-व्यवहारको छोड अन्य सभी कार्योंमें पिल्लैजी अय्यरके अपने घरके और अय्यर पिल्लैके घरके आदमी थे। पिल्लैजीके घरमें किसीकी जरा भी तबीयत खराब हाती, अय्यर सहायताके लिअे दौड पडते। अुसी प्रकार अय्यरके घरमें कुछ हो जाता तो पिल्लैजी तबतक चैनकी साँस न लेते जबतक अय्यर अुससे पूर्णरूपसे छुटकारा न पा जाअें। यद्यपि अय्यर और पिल्लैमें अिस कदर अूपरी भेदभाव था कि अय्यर पिल्लैका छुआ ही नहीं, देखा भी नहीं खाते थे और अुनके स्पर्शमें छुआछूत अनुभव करते फिर भी अुन दोनोंमें अितना विशुद्ध प्रेम था कि किसी भी प्रकारकी विषमताका विष न पडने पाता था। कहनेका मतलब कि दोनों दो शरीर अेक प्राण थे।

लेकिन आजकल हम देखते क्या हैं कि वर्तमान पीढी बदल रही है। पुराने जमानेके विपरीत आज अूपरी अेकता बढ गयी है और अन्दरकी अेकता घट गयी है। जिसे देखो, अुसीने चोटीके बाल कटवा डाले हैं,

और तिलक-हीन शून्य मस्तकको ही सभ्यताकी निशानी माने हुअे है, जैसे-जैसे यह बाहरी अेकता बढ़ती जा रही है, वैसे-वैसे भीतरी वैषम्य विभिन्नता भी बढ़ती जा रही है।

यही हाल अयदानपुरका भी था। किसीकी समझमें न आया कि आपसका यह झगड़ा और मनमुटाव क्या ? लोग अिस दुविधामें पड़ गये कि क्या करें, क्या न करें ? कांग्रेसवालोंने झंडा फहराकर सभायें कीं तो विरोधी दलोंने भी कुछ बलवान व्यक्तियोंको अपनी तरफ करके लम्बे-चौड़े भाषण दिलवाये। जिला कलक्टरों और तहसीलदारोंने गाँवके मुखियों और पटवारियोंका सहयोग प्राप्त किया और भिन्न-भिन्न प्रकारके प्रचारके चित्रपट दिखलाकर गाँवकी जनताको अपनी सरकारकी ओर आकृष्ट करनेका भरपूर प्रयत्न किया। अिस प्रकारके विभिन्न मतोंके चक्करमें पड़कर जनता किंकर्तव्यविमूढ़ हो गयी तथा अपनी बुद्धिके अनुसार दल बाँधकर झगड़े-फिसाद और हाथापाअीपर अुतारू हो गयी। प्राचीन कौटुम्बिक प्रेम-बन्धन तथा गाँवकी मान-मर्यादा आदि अेक-अेक करके गाँवसे रुखसत होने लगे और अुनके स्थानपर बदमाशी तथा गुण्डाशाहीने अपना आसन जमाया।

मानिकलाल और बलरामके मनमुटाव और हाथा-पाअीकी तहक़ीक़ातमें अुतरकर देखा जाये तो स्पष्टतया विदित होता कि अुसमें भावनाका अन्यत्र हाथ था। लेकिन अुन्नत अुच्च आदर्शोंपर चलनेवाले वैद्यराज पिल्लैजीके मनमें अिस विपदने बड़ी गहरी चोट पहुँचा दी। अन्न पानेकी आशासे आनेवाले सभी लोगोंको जो अन्न दान-पुण्य अन्न बाँटनेमें कोअी कसर अुठा न रखता था, वही दलबंदी और गुटबंदीके दलदलमें फँसकर, कच-हरियोंके आश्रयमें जा, पानीकी तरह पैसे बहाये और उनके दानेके लिअे दूसरोंका मुँहताज बन जाये तो क्या हो ?— यह विचार वैद्यराज पिल्लैके मनको दीमककी तरह खाने लगा। आज 'बड़ी हवेली'के अिस छोटेसे फिसादमें वैद्यराजजी पिल्लैको अच्छे लक्षण नहीं दिखायी दिये थे। वे भिन्न-भिन्न प्रकारके विचारोंमें डूबते-अुतराते और लम्बी-लम्बी अुसाँसें लेते हुअे अपने घरकी ओर चले।

+ + +

गुस्सेसे भरे हुअे फुर्तीसे अन्दर गये तो छोटे मानिक देखते हैं कि बलराम आँगनमें बैठा अपना घाव धो रहा है। अुन्होंने अुसके पास जाकर बड़े प्यारभरे शब्दोंमें पूछा, 'क्यों राम, चोट ज्यादा तो नहीं लगी ?''

बलराम अुत्तर देनेके लिअे मुँह खोले-अिससे पहलेही, अय्यरकी सहधर्मिणी, जो अपने बेटेको घाव धोनेमें पानी अुँडेलकर मदद कर रही थीं, बोल अुठीं, 'मैं पूछती हूँ कि अुस दुष्ट लड़केको अितना साहस कहाँसे आ गया ? अिस विषयमें आपने पिल्लैजीसे पूछा ?''

'जब पाला अितना दुष्ट है, तो पिल्लैजी बेचारे क्या करते ?''—अय्यरने पिल्लैजीका पक्ष लिया।

अुनकी पत्नीने अुसका कोअी जवाब न दिया और मौन धारण कर लिया।

"चोट भी ज्यादा नहीं लगी। वह जाने लगा तो अेक कंकड़ अुठाकर फेंक दिया, नहीं तो चोट भी न लगती।"—बलरामने अपने पिताको समझाया।

अुसपर अय्यर बिना जवाब दिये, सीढ़ी चढ़कर अुपर चले गये। जब बलराम अपना हाथ-मुँह तथा घाव धो चुका तो अुसकी माताने 'अदिमन्दारै' का पत्ता चिरागपर सेंका और चोटपर लगा दिया। थोड़ीही देरमें खुनका बहना बन्द हो गया।

अगर यही चोट शहरमें किसीके लगी होती तो चार-पाँच बार डाक्टर आते, पचटीकी भाँति सिरपर मरहम पट्टीका 'बेंडेज' बाँधते, दो चार 'अेंटी टिटानीस' अिन्जेक्शन देते और अेक लम्बा-सा बिल बनाकर भेज देते और अिस हाथ दे, अुस हाथ ले, की नीतिसे अेक अच्छी खासी रकम अेंठ लेते। पर यहाँ गाँवमें तो अिसका अिलाज अितनी आसानीसे हो गया कि जेबसे अेक पैसा निकालनेकी भी जरूरत न पड़ी।

बलराम फिर यह कहकर कि आज मुझे भूख नहीं है, बाहरी बैठकसे सटा जो कमरा था, अुसमें सोने चला गया।

'अच्छा ! भूख न हो तो जाओ और लेट रहो। मैं अभी दूध गरम करके लाती हूँ।" यह कहती हुअी अुसकी माँ भी रसोअीघरकी तरफ चली गयी।

बलरामका दिल जब चोट या चोटके दर्दसे हट गया और वहाँ चला गया, जहाँसे 'झन झन झनन' करके चूड़ियोंकी आवाज आ रही थी। वह चूड़ीवाली रसोअी-घरके द्वारपर घुंघलकेमें खड़ी थी। बलरामके दिलके साथ-साथ अुसके नेत्र भी अुस ओर लग गये।

कमरेमें लेटनेके बाद बलरामने अुच्च स्वरमें पुकारा, "कोअी दरवाजा तो बंद करो !"

बलरामने यद्यपि 'कोअी' शब्दकाही अिस्तेमाल किया था, फिर भी अुस चूड़ीवालीने समझ लिया कि अुस 'कोअी' शब्दका आशय किससे है ? अुसने हंसिनीकी मन्द चालसे चलकर अुसकी आज्ञाका पालन किया और वैसे ही चालसे वापस चली गयी। जब अुसके पैरोंकी नूपुर ध्वनि धीरे-धीरे मन्द पड़कर रसोअीघरकी तरफसे आयी तथा थोड़ी देरमें रुक भी गयी तो बलरामने अटकलसे जान लिया कि वह रसोअीघरमें चली गयी है और सिर पकड़कर अेक लंबी निश्वास छोड़ी।

\+ \+ \+

'बड़ी हवेली' का परिवार अुतना बड़ा न था। 'बड़े मालिक' के अेकलौते बेटे थे, 'छोटे मालिक'। *बड़े लोगोंकी जायदाद बँटकर छोटे-छोटे टुकड़े न हो जायें*-अिस कारण, अिसे प्रकृतिकी नियति कहिये या और कुछ। बलराम 'छोटे मालिक' का अेकलौता बेटा था। बड़े मालिक और अुनकी देवीजीकी मृत्यु हो जानेसे, 'छोटे मालिक', अुनकी पत्नी और बलरामको छोड़ परिवारमें कोअी चौथा व्यक्ति नहीं था।

बलरामकी अभी-अभी नयी शादी हुअी थी। [illegible] बरतन चढ़ानेके लिअे अेक हफ्ते पहले ही वह मायकेसे ससुराल आ गयी थी। [तमिल-नाडका यह रिवाज है कि अिन प्रकारके तीज-त्योहारोंमें वधू अपने मायकेसे ही ससुराल आ जाये] वधू तो आज-[illegible] चली थी। लड़का कालेजकी शिक्षा पास हुआ था। पर अितना बड़ा था कि नवीन दम्पती आसानीसे लुक-छिपकर मिल लें। जिनसिअे बलरामके मनमें प्रेम-मिलनकी लहरें और विरह-वेदनाकी हूक अेक साथ अुठने लगी तो आश्चर्य करनेकी कौनसी बात ?

मनुष्योंकी रोक-थाम या विघ्न-बाधायें यद्यपि अिस घरमें अधिक न थी तथापि प्राचीन सम्प्रदायमें पगी अय्यरकी सहधर्मिणी अपनी बहूको आँखोंकी ओट न होने देती थीं। अुनका यह खयाल था कि सुहागरातका मुहूर्त चार जनोंके मध्य, जरा धूम-धामके साथ हो तथा बहूके मायकेसे कुछ बरतन-भाड़े और रुपये-पैसे भी मिल जायें। यही कारण था कि दैवोंसे बेटे और *पतोहूके होश होशहर बनी रहती।*

कमरेका दरवाजा खुला तो बलरामने देखा कि हमेशाकी तरह माँ अन्दर आ रही हैं। अुसके मुँहपर वेदनाकी रेखा खिंच गयी। वह करे तो क्या करे !

माँ बलरामके पास आकर बैठ गयी और बोली, "अभी दूध गरम नहीं हुआ है। पार्वतीसे कहा है कि दूध गरम कर लाओ।" यह वाक्य बलरामको अुस दूधसे भी मीठा लगा जो बादमें आनेवाला था।

'भोर होते, तो * भोगी' का त्योहार है। आज तुम सिर फोड़कर आये हो ! क्या कहूँ, तुम्हारी बद्धिको !" माँने अत्यन्त अुदास होकर कहा।

'क्या किया जाये, माँ ? क्या तुम चाहती हो कि पुजारीजीके घरका लड़का मारिमुत्तुके हाथों पिटे और मैं चुपचाप हाथ बाँधे खड़ा देखता रहूँ ? यह मुझसे नहीं हो सका, माँ !"

'हम लोगोंको अिस प्रकारके लड़ाअी झगड़ोंमें नहीं पड़ना चाहिये। आज-कलका जमाना बहुत खराब है। चोट हल्की लगी अिससे बचे ! नहीं तो क्या हुआ होता ? त्योहारके दिन तुम बिस्तरपर पड़े रहते। दुखकी मारी अकेली मैं तुम्हारी सुश्रूषा करती था

---

* 'भोगी' वह त्योहार है, जो सक्रान्ति यानी पोंगलके पहले दिन मनाया जाता है। अुस दिन लोग तैल अभ्यंग स्नान आदि करते हैं और सुस्वादु मिष्टान्न बनाकर आनन्दसे भोजन करते हैं।

त्योहारका काम सभालू। भगवानको धन्यवाद है कि तुमको बाल बाल बचा दिया।

त्योहार-व्योहारकी बात छोडो माँ! तुमको मालूम है कि हमारे देशमें कितने लोग अनके भूखों तड़प रहे हैं? असी हालतमें केवल हमीं त्योहार मनायें तो क्या अच्छा होगा?

अरे रे! बस बस! तू फिर अपना वही पुराना देशभक्तिका पचड़ा सुनाने बैठ गया! मुझे तेरी यह बकवास गवारा नहीं। क्या हमारे घर-द्वार नहीं, जमीन जायदाद नहीं? हम चार जनोंके मध्य वयतव्यकी बकवास क्या किया करें? तुम्हारी यह बकवासी किसी दिन आफत ढा देगी।

हम केवल अपना ही काम देखें, दूसराका छोड़ दें, अिसको क्या तुम अच्छा समझती हो माँ? बलरामने माँसे प्रश्न किया।

हाँ अच्छा क्या नहीं? याद रखो तुमने किसीका हाथ पकड़ा है। अगर मेरी बात नहीं मानते तो जाओ जहन्नुम जाओ, दुनीमें जाओ। मैं तुम्हें रोकनेवाली कौन होती हूँ? मन मानी करायी मेरे सिर क्षुम जाने जाओ। किसका फल मुसीबतें भोगना है न? माँने कुछकर कहा।

अिसी समय पार्वतीने दायें हाथमें दूधका लोटा और बायें हाथमें साड़ीका लटकता दामन ठीक करते कमरेके अन्दर प्रवेश किया।

क्यों पार्वती! दूध बहुत गरम तो नहीं है?' सासने सवाल किया तो बहूने न मतलब सिर हिलाया और दूधका बरतन सासके हाथमें दे दिया।

अरे! बहुत गरम है, जरा और ठण्डा करो न! सासने बहूको हुक्म दिया।

बहूने खड़े हो खड़े दूधको जरा ठण्डा करनेके लिये अिस लोटेसे अुस लोटेमें और अुस लोटेसे अिस लोटेमें अुड़लना शुरू कर दिया। अिसी समय बाहरसे किसीने आवाज लगायी, माँजी माँजी! पुकार सुनकर देवीजी बाहरकी ओर गयीं।

माँके आँखोंसे सामनेसे ओझल होते ही बलरामने कहा, बस बस! और ठण्डा करनेकी कोअी जरूरत नहीं, लाओ अिधर।

नववधू लज्जासे जरा कठिन हुअी। फिर अेक कदम आगे बढ़ी और दूधका लोटा पतिकी तरफ बढ़ाया। बाहरी कमरेमें देवीजी और आदमीमें किसी बातपर गरमागरम विवाद खड़ा हुआ और यहाँ कमरेके अन्दर नवदम्पतीमें प्रथमकी जो अंतरंग बात हुअी वे बाहर सुनायी नहीं दी।

दूसरे दिन और अुसके दूसरे पोंगलके दिन नव दम्पतीकी घनिष्ठता और भी बढ़ गयी। संक्रान्तिके दिन सवेरे जब बलरामने घरके अन्य लोगोंकी आँख बचाकर अपनी पत्नीसे कुछ छेड़खानी शुरू की, तो अुसने कहा, जीजी! न न, मैंने तो स्नान कर लिया है। छूओगे तो सोला बिगड़ जाअगा। माँने आज मुझे पोंगलकी हांडी चढ़ानेको कहा है।

असी चेतावनीसे अुसने बलरामको यह प्रकट कर दिया कि अिस घरकी भावी मालकिन मैं हूं।

❀ ❀ ❀

वर्णालिंगम पिल्लै अुस दिन अकथनीय दुख और वेदनाके साथ घरकी तरफ बढ़े। अनके दिमागमें भिन्न भिन्न प्रकारके विचार आये और गये। छोटे मालिक जो अुनको अपने पितासे भी बढ़कर मानते थे और बिना अुनकी राय लिये कोअी काम न करते थे वे ही अुनपर गुस्सा अुतारकर अन्दर चले गये तो वर्णालिंगमजी पिल्लैके मनमें दुखका कोअी पारावार न रहा। वे असहनीय वेदनासे तिलमिला अुठे। मेरी ही गोदीमें खेलेकूदे छोटे मालिक ने महसे असे शब्द कैसे निकले? -अिस बातका दिलमें आना था कि अुनके मन चक्षुके सामने चित्रपटकी नाअी अनगवज्य वे दृश्य अुभर आये जिनमें अपनी और बड़ी हवेलीकी तीन पीढ़ियोंके अटूट सम्बन्ध का दृश्य साफ झलकता था। जब अिस विचार शृंखलाकी कड़ी टूटी तो वर्णालिंगम पिल्लैने अपने दिलको यह कहकर समझाया कि जब हमारे ही घरका लड़का असा आवारा बना फिरता है, तो दूसराको दोष क्या दिया

जाये ? अिस विचारमें पड़ आखिर मारिमुत्तुको ही अिसका दोषी ठहराया।

फिर अुनकी विचार-शृंखला जुड़ी तो 'बड़ी हवेली' के बलराम और अपने घरके मारिमुत्तुके बचपनकी बातें स्मरण हो आयीं — जब ये दोनों बच्चे थे अेक साथ गिल्ली डंडा खेलते थे, अेक साथ तालाबमें नहाने जाते थे और पेड़की अूंची डालपर चढ़कर पानीमें कूदते तैरते और अध्यापककी आंखोंमें धूल झोंककर खेल-तमाशा देखने खिसक जाते थे। अैसे अभिन्न मित्र आज कैसे परमशत्रु हुअे ? — अिस बातपर अुनका ध्यान गया। अुन्होंने गहरे पानी पैठ कर देखा तो मालूम हुआ कि अिन सबका मूल कारण राजनैतिक दलबंदी और गांवमें आनेवाले समाचार-पत्र ही हैं। अतः अुनका गुस्सा अुन दोनोंकी ओर मुड़ गया।

पिल्लैजीने अनुभव किया कि कौटुंबिक जीवनमें ननदें जितना खलल डालती हैं अुससे दुगुनी तिगुनी गांवके जीवनमें ये पत्र पत्रिकाअें डालती हैं।

पिल्लैजीने अपने आपसे यह प्रश्न कर लिया कि किस परम-पुण्य कार्यकी साधनाके लिअे गांवके पुजारी और ज्योतिषी मुब्बय्यर 'बड़ी हवेली' के द्वारपर धन्ना देकर बैठ जाते हैं और पत्रके आते न आते अुसे चीलकी तरह झपटकर अुठा ले जाते हैं ? अच्छा हो यदि पुजारी अपने धर्म कर्ममें निरत रहें और मुब्बय्यर ज्योतिषका अपना कार्य करते रहें ? अपने कामोंसे निवृत्त होनेपर अवकाशके समय अिन पत्र पत्रिकाओंमें माथापच्ची न कर रामायण-महाभारत पढ़ें तो कमसे कम परलोकका रास्ता तो बन जाअे ! यदि अुनमें भी मन न लगे तो किसी मंदिरपर जा बैठें और रामनाम या शिव-स्मरण करें ! अुनको रोकना कौन है ?

फिर अुनकी विचार-शृंखलाने करवट बदली तो अुनका सारा गुस्सा चित्रनवेलपर गया जो पासकी गलीमें रहता था। अुनका यह विचार था कि मारिमुत्तु चित्रनवेलके कारण खराब हो रहा है।

चित्रनवेल स्वभावसे अच्छे व्यक्ति थे। चूंकि अुनके बुजुर्ग अुनके नाम बहुत बड़ा जायदाद छोड़ गये थे और अुनका मन और किसी काममें नहीं लगने पाता था, अिसलिअे अुन्होंने सोचा कि किसी सुगम रास्तेसे थोड़ा-सा कीर्ति लाभ किया जाअे। तंजौरके कुछ मित्रोंने अुनका नाम * जस्टिस पार्टी में लिखा दिया और गांवकी पंचायतका अुन्हें अेक सदस्य भी बना दिया। अितना ही नहीं अुनके सिरपर अपने दलके अेक मुख्य-पत्रका भी भार मढ़ दिया।

अिसके बाद ही चित्रनवेलने समझा कि समाजने अुनके प्रति कैसे अैसे दुर्व्यवहार और अत्याचार किये हैं ? अुन्होंने अनुभव किया कि अिनका किसी प्रकार परिहार करना चाहिये। अपनी अिन सेवाओंके लिअे अुन्हें अेक शिष्यकी सख्त जरूरत पड़ी तो अुन्होंने मारिमुत्तुको हर तरहसे काबिल पाया और अुसीको चुनकर अपना चेला भी बना लिया। अुसे कुश्ती लड़ाना, लाठी चलाना आदि विद्याअें भी सिखायीं। जस्टिस दलके प्रचारके लिअे यह सब जरूरी है — अिस बातका चित्रनवेलको जितना ज्ञान था अुतना अुस दलके और किसी नेताको नहीं था।

अिस संगतमें पला मारिमुत्तु यह कैसे सहन कर सकता था कि अुसके दादा 'बड़ी हवेली' की गुलामी करें ? अतः अुस दिन घरमें जब मारिमुत्तु और वैद्यलिंगम पिल्लैमें मुलाकात हुअी तो बड़ी खलबली मच गयी। वैद्यलिंगम पिल्लैजीकी पत्नीने दरवाजेपर खड़ी होकर यह दृश्य देखा तो सिर पीट लिया।

मारिमुत्तु जब घरमें दाखिल हो रहा था तब वैद्यलिंगम पिल्लै द्वारके पासके दालानमें आराम कुर्सी पर लेटे थे। मारिमुत्तु सीढ़ीपर पैर रख ही रहा था कि पिल्लैजीने सवाल किया "क्यों भैया ! आज अितनी देर क्यों हुअी ?'

अुनके सवाल करनेके तरीकेहीने यह बता दिया कि गुस्सेका पारा कितना चढ़ा है ? मारिमुत्तुने कोअी जवाब न दिया, चुपचाप खड़ा रहा। अुसके भी हृदयका तहमें क्रोधकी अग्नि धधक रही थी। फिर भी

---

* दक्षिणमें अेक जमानेमें 'जस्टिस पार्टी' का बोलबाला था। बड़े बड़े प्रमुख सज्जन अिसके सदस्य थे। अंग्रेजोंके शासन कालमें अिस पार्टीने मंत्रित्व ग्रहण कर कअी भले काम किये।

पिल्लैजीके मुँह लगने या मुकाबला करनेकी हिम्मत अुसे न पड़ी। पिल्लैजीने अुसके मुखपरसे मात्र यह गिरने वालोंकी दशा देखी, पर ताड़ गये कि मारिमुत्तुके हृदयमें भी ज्वालामुखी धुआँ अुगल रहा है। न जाने कब फट पड़े।

"क्यों रे! मैंने तुझसे कितनी बार कहा कि सिरके बाल अिनने लम्बे न रखा कर। कटवाकर छोटा क्यों न किये! कुछ सुनता ही नहीं? क्या बात है?" वैद्यलिंगम पिल्लैने पूछा।

वैद्यलिंगम पिल्लैका जब कभी अिस प्रकार चिढ़ जाते तब मारिमुत्तुके घोर विद्रूप स्वरूपका वर्णन छेड़ा करते। भारतकी प्राचीन संस्कृति तथा सभ्यताकी निशानी चोटीका कटाकर अिस प्रकार बाल कटवाना अुन्हें जरा भी पसन्द न था। बड़ी हवेलीके बलरामने भी जब अिस तरह बाल कटवा लिये तब विवश होकर अुन्हें मारिमुत्तुको क्षमा करना पड़ा।

अेक दिन शहरके कालेजसे बलराम जब बाल कटवाकर लम्बा जुल्फा रखके घर आया तो अय्यरकी सहधर्मिणी अुसका यह भेष देखकर आग बबूला हो गयी और कहा "कलमुँहे! यह कैसा भेष बनाया है, जिन बालोंने तेरा क्या बिगाड़ा कि जिनको अिस प्रकार कटवा दिया?" तब अय्यरने बलरामका पक्ष लेकर कहा कि "नाहक क्यों जबान चलाती हो? जब 'वीर शैव' * वैद्यलिंगम पिल्लैके पोते मारिमुत्तुने ही बाल कटवाकर 'क्रॉप' रख लिया, तो तुम्हारा लाड़ला, जो सन्ध्या-वन्दनतक ठीक तरह नहीं करता, बाल कटवा ले तो धर्म कैसे बिगड़ेगा? अिस प्रकार यदि परस्परिक कर्षण और पौरुष बढ़नवाले अुन दोनों वृद्धोंके बीच वज्र गिरानेवाला कोअी काम हो तो वैद्यलिंगम पिल्लैको गुस्सा क्यों न आता?

पिल्लैजीने अुपरोक्त पूर्व-पीठिकाके बाद सीधा आक्रमण करना शुरू कर दिया, "क्यों भैया! मालूम होता है कि तुम्हारे हाथ आजकल लम्बे होते जा रहे हैं। क्या यह सब चित्रकविके पढ़ाये पाठ हैं?"

मारिमुत्तुको अुनकी बात समझते देर न लगी। बोला, "मैं पुजारीके घरके लड़केसे बात कर रहा था तो 'चिन्न कुळन्दै' [छोटा बच्चा] को बीचमें पड़नेकी क्या जरूरत थी?"

गाँवमें बलराम 'चिन्न कुळन्दै'के नामसे प्रसिद्ध था। वही नाम मारिमुत्तुने लिया।

'तुम्हारी हिम्मत अितनी बढ़ गयी? तुम अिस घरमें रहना चाहते हो या कुत्तेकी मौत मरना चाहते हो? जानते हो, हमारा कुटुम्ब कैसा था और कैसा हो रहा है?'

वैद्यलिंगम पिल्लैकी अिस बातका मारिमुत्तुने कोअी जवाब न दिया, "क्यों, चुप क्यों हो? मालूम होता है कि तुम्हारा दिमाग खराब होता जा रहा है।'

'मैं कहता हूँ, बकवास बन्द कीजिये!" मारिमुत्तुके मुँहसे यह वाक्य सुनकर पिल्लैजी हक्के बक्के रह गये। अुन्होंने स्वप्नमें भी नहीं सोचा था कि मारिमुत्तुके मुँहसे अैसा वाक्य निकल सकता है। वे अत्यन्त दुःखी हुअे। अपना लड़का बिगड़ रहा है—अिस विचारने अुनका गुस्सा और भी अुभाड़ दिया। वे बोले, "क्यों, बे! मर सामने अैसी बातें करते तुझे शरम नहीं आती? "बड़ी हवेली' का लड़का कैसा पढ़ता है, मालूम है? वैसा पढ़ना तो दूर रहा, बातें करना कहाँसे सीख गया?'

यह कहते हुअे वे अुठकर लपके और मारिमुत्तुके गालपर जोरका अेक तमाचा मार दिया। मारिमुत्तुने तब भी कोअी अुत्तर न दिया। अुसको पिल्लैजीके बदले बलरामपर क्रोध आया, जिसने पहले अुसके हाथों मार खायी थी। मारिमुत्तुने गालपर हाथ फेरते हुअे कहा, "हाँ, हाँ, मुझे मालूम है कि वह कैसा पढ़ता है और क्या पढ़ता है? अब मैं देखूँगा कि अुसकी पढ़ाअी कैसे होती है?"

अितना कहकर वह 'धड़ाधड़' सीढ़ी अुतरता जल्दीसे कहीं चला गया।

पिल्लैजीकी पत्नीने द्वारकी ओटसे झाँककर देखा और कहा, "लड़का तो खाने आया था। अुसको अिस

---

* 'वीर शैव' वे हैं जो शिवजीके भक्त हैं और अितने अपने धर्ममें कट्टर हैं कि भूलकर भी अपने मुँहसे विष्णुका नाम नहीं लेते। वीर वैष्णव भी अिसी प्रकारके हैं।

तरह खरी-खोटी सुनाकर निकाल दिया। यह आपने क्या कर दिया ?

अितना सुनना था कि पिल्लैने रौद्र-रूप धारण कर लिया और कड़ककर बोले क्या यहाँ भी स्त्री राज चलने लगा। अन्दर जाती हो कि मरम्मत हो ? तुम्हारा लाडला कहीं जानेका नहीं, कुत्तेकी तरह दुम हिलाकर फिर आ जायगा।

लेकिन पिल्लैने जो सोचा वह नहीं हुआ। यानी वह भूखे कुत्तेकी तरह दुम हिलाता नहीं आया। दो दिनोंसे पोंगलका त्योहार गाँवमें बड़े ठाठ बाठसे मनाया जा रहा था। किन्तु पिल्लैजीके घरमें कोलाहल या कौतूहल नहीं था। अुनका घर शोभा-शून्य दिखायी दे रहा था। वहाँ त्योहारके कोअी आसार न थे।

पिल्लैजी घरसे बाहर ही नहीं निकले। 'बड़ी हवेली'के छोटे मालिक न दो बार आदमी भी भेजे। फिर भी पिल्लैजी टससे मस न हुअे। मारिमुत्तुकी याद अुनको हरदम सताती रही। पिल्लैजीको बात बातपर पश्चात्ताप होने लगा कि हमने अपना मुँह नाहक क्यों खोला ? वह जैसा चाहे रहे ! हमें अुससे क्या ? हम तो जीवनकी सन्ध्यामें पदार्पण कर चुके हैं। पिल्लैजीकी पत्नीकी आँखें लड़केके वियोगसे बराबर आँसू बहाती रहीं और अपनी बोलीमें कह रही थीं कि फूल जैसे सुकुमार बालकको घरसे भगाकर हम बूढ़े त्योहार क्या मनावें ? दुखददसे भरे अपनी पत्नीके मुँहको पिल्लैजीसे सीधी आँखें देखते न बन पड़ा तो वे भी अुसकी आँखें छिपा मुँह ढाँपकर आठ आठ आँसू बहाने लगे।

× × ×

सक्रान्ति आयी। माघ-अुपरे गाँवकी शोभाको बढ़ाकर और भी जगमग जगमग करनेके लिअे अुत्तरायन का सूर्य पूर्व दिशामें अुगा। अन्नदानपुरमें अुस दिन अलौकिक सौन्दर्य शोभायमान था। अुस गाँवमें तीन ही पक्के घर असे थे जिनमें चूना पाना जा सकता था। अेक तो बड़ी हवेली' या दूसरा वहाँके पिल्लैजीका घर और तीसरा चिन्नतंबिका मकान। बाकी समूचे घर मिट्टी और पत्तेके ही थे। लेकिन अुनकी सजावटमें भी किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं थी। जहाँ-जहाँ फर्श या दीवारकी मिट्टी अुखड़ी वहाँ वहाँ काली मिट्टी कोयला और गोबर तीनोंको मिलाकर, अच्छी तरह पीसकर, घरकी बड़ी बूढ़ी स्त्रियाँ मरम्मत कर देतीं। अैसा करनेपर फर्शकी शोभा कितनी बढ़ जाती कि कड़पाके बहुमूल्य पत्थर भी अुनके सामने फीके मालूम होते।

घर मिट्टीके बने होते थे और अुनकी छत ना देशी खपरैलोंकी थी। – किसलिअे वे बड़े आरामदेह थे। अैसे घरोंमें न तपती गरमी पड़ती थी और न ठिठुरती सरदी। घरोंमें कहीं भी कूड़ा-करकट देखनेको न मिलता था। घरकी बड़ी बूढ़ी औरतें जब कोअी काम न रहता तब खुदको झाड़-बुहार देतीं। अगर कभी अुनसे यह काम न हो पाता तो अपनी बहुओं और पोतियोंको आदेशपर आदेश देकर करवाकर छोड़तीं।

घरकी बड़ी-बूढ़ी स्त्रियोंकी यह आदत थी कि अपने अवकाशके अवसरपर अपनी पोती बच्चियोंको 'माक्कल'* से तरह तरहकी चौक पूरना सिखावें और रोज शाम-सवेरे गाँवकी वीथियोंमें अपने घरके सामने आँगनके आगे चौक पूरें। सक्रान्ति जैसे शुभ दिनोंमें अपनी सिखायी चौक बड़े पैमानेपर पुरवातीं।

अन्नदानपुरमकी बड़ी बूढ़ी स्त्रियाँ अपनी पोती बच्चियोंको आदेशपर आदेश दे रही थीं कि चौक पूरो। जब तक चौक पूरी न हो जाती तब तक नाकों दम करतीं। लड़कियाँ भी शुभ दिन आया जानकर, बड़ी

---

* माक्कल' अेक अैसा पत्थर है जो जमीनपर घिसनेसे खड़िया जैसा बुकनी पैदा करता है। अुसके बरतन भी बनते हैं। सांभार और रसम जैसी खाद्य सामग्रियाँ अुनमें बनायी जाती हैं। क्योंकि नींबू जैसी खट्टी चीजें दूसरे बरतनोंमें पकानेसे बिगड़ जाती हैं। पर माक्कलके बरतनोंमें बनायी गयी चीजें बिगड़ती नहीं। ये बरतन भी मिट्टीके बरतनोंकी तरह नीचे गिरनेपर टूट जानेवाले होते हैं। टूटे बरतनोंके अुन टुकड़ोंसे घरकी बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ बच्चियोंको लकीरें खींचकर चौक पूरना सिखाती हैं।

कौतूहलके साथ द्वारपर, द्वारकी चौखटपर, देहलीपर सुंदर सुन्दर चौक पूर रही था।

अहमदाबादपुरमकी अेस सुंदरतामें चार चांद लगानेके प्रयत्नमें अुत्तरायणका मरीचिमाली अपनी सुनहरी किरण रश्मियां बिखेरता हुआ आकाशपर चढ़ने लगा। पक्षी-समूह अपने नाना प्रकारके कलरवोंसे गांवको गजा रहे थे। पंछियोंके तालाबमें बालक कूदते तैरते हुअे किलोल कर रहे थे। कुमारकी बहनियां लड़कोंकी अिस हंसी खुशीको देखकर अपनी पखुड़ियां खोल खोलकर हंस रही थीं और अनकी हंसी-स्वरूप माग भी ले रही थीं।

केवल वर्धालिगम पिल्लेके घरमें कोअी कौतूहल नहीं था। यह बात बड़ी हवेलीके मालिकके कानों तक पहुंची तो वे खुद पिल्लेजीके घरकी तरफ चल पड़े।

छोटे मालिक जब पैरोंमें जूता पहन हाथमें छड़ी लिये और कंधेपर अंगोछा डाले बाहर चल पड़े थे तब किसान यह नहीं सोचा कि वे पिल्लेजीके घरकी तरफ जा रहे हैं।

बड़ी हवेलीके छोटे मालिक तो अेक प्रकारसे अुस गांवके छोटे मोटे राजा थे। वे किसीके घर नहीं जाते थे। कोअी काम आ पड़ा तो गांवके लोग ही अनके पास आते। अिसलिअे छोटे मालिक जब वर्धालिगम पिल्लेके घरमें दाखिल हुअे तो गांवका सारा गांव भौंचक्का सा हो गया। किसी किसीको तो अपनी आंखोंपर भी विश्वास नहीं हो रहा था। सामने सामनेके और अड़ोस पड़ोसके लोग बाहर सिर निकालकर देखने लगे कि क्या सचमुच छोटे मालिक हो आये हैं?

अुस वक्त वर्धालिगम पिल्ले बाहरी बैठकमें बैठे पान चबा रहे थे। छोटे मालिक को देखते ही पिल्लेजी अपना अंगोछा कांखमें दबाये झटपट अुठ बैठे।

पिल्लेजी आप बैठिये! खड़े क्यों होते हैं? बैठिये न! कहते हुअे छोटे मालिक अेक ओर बैठ गये। पिल्लेजी बैठे नहीं मौन खड़े रहे।

मैं तो कह रहा हूं कि बैठिये। पर आप खड़े हैं? जब अय्यरने बहुत आग्रह किया तो पिल्लेजी बैठ गये पर जबान नहीं खोली।

अय्यरने बात समझ ली और स्वयं अिस प्रकार शुरू किया क्या पिल्लेजी! बादको तो आप अिस ओर आये ही नहीं?

अय्यरके बातका शब्दका अर्थ पिल्लेजी समझ नहीं अैसा नहीं हो सकता? अिसलिअे मृदु हास्य धारसे जबाब दिया क्या करें? मनमाने तभी तो आ सकता हूं!

अैसा क्या हो गया कि आपका मन बड़ा चंचल हो अुठा? हां बच्चोंका झगड़ा हुआ वह तो अैसी दम मल जानेकी बात है। अुसको लेकर हम विरोध ठान लें यह हम जैसोंको शोभा नहीं देता? छोटे मालिकने पूछा।

बात तो अब बहुत बढ़ गयी छोटे मालिक! वह अब छोटी न रहा।

मारिमुत्तुके संबंधमें ही न आप कहते हैं? हां हां वह तो मुझे मालूम है। पर पिल्लेजी अेक बात है। वह तो अबोध बच्चा है अनजानमें अुसने कुछ कर दिया तो अुसके लिअे आपको अितना तूल मचाना अुचित न था? — अय्यरने मारिमुत्तुका पक्ष लेकर यह प्रश्न किया।

अय्यरके मुंहसे निकली अिस बातने वर्धालिगम पिल्लेके दिलको बड़ी शांति प्रदान की। अिस झगड़े और फिसादमें छोटे मालिक का दिल नहीं बिगड़ा यह जानकर पिल्लेजी मन ही मन बहुत संतुष्ट हुअे। फिर भी अिस बातने अुनके दिलकी वेदनाके फोड़को कुरेद दिया कि पोंगलके अिस पर्वके दिन घरका अुत्तराधिकारी घरमें न रहा। अुनकी आंखें छलछला आयीं। फिर वे छोटे मालिक की बातोंका अनुमोदन करते हुअे बोले हां मैं तो बड़ा हो गया हूं न छोटे मालिक! अिसलिअे मुझे किसमें क्या कहना चाहिये और क्या न कहना चाहिये? अिसका विवेक ही जाता रहा!

यह सुनते ही छोटे मालिक का भी दिल पिघल गया। वर्धालिगम पिल्लेजीके आंसूने अय्यरके हृदयको हिला दिया कि अुनकी आंखें भी डबडबा आयीं। फिर भी अुन्होंने दिलमें हिम्मत लाकर कहा पिल्लेजी! अिसके

लिअ आप रंज न कीजिये। आपका और हमारा कुटुम्ब क्या अलग अलग या दो दो है? आपका दुख हमारा दुख है। आपका दुख मुझसे देखा नहीं जाता। चिंता त्यागिये। मारिमुत्तुको बुला लानेका मैंने बंदोबस्त कर दिया है। परसों सब अिन्स्पेक्टरको भी खबर दे दी है। मारिमुत्तु आ जाअगा जरूर आ जाअगा जरूर आ जाअगा। जहाँ भी हो अुसे यहाँ लाकर खड़ा कर देंगे। आप दुख करें और हमारे घरमें दूध अुफने—* यह कहीं हो सकता है?'

अय्यरके मुँहसे निकले अिन वाक्योंकी सत्यता बादकी घटी घटनाओंने प्रमाणित कर दिया। अय्यर और पिल्ले दोनों बातें करते हुअे वहाँसे चले और बड़ी हवेली की ओर आये तो देखते क्या हैं कि पुलिसके दरोगा बलरामको गिरफ्तार कर हथकड़ी पहना रहे हैं और मारिमुत्तु कुछ किताबें हाथमें लिये जरा हटकर खड़ा है। अय्यरकी धर्मपत्नी, पताहू दोनों धाड़ें मारकर रो रही हैं।

यह दृश्य देखा तो दोनोंकी आँखोंके सामने अँधेरा छा गया। वेदाचलम पिल्लेजी तो अैसे पत्थर बन खड़े हो गये कि काटो तो खून नहीं। अय्यरने अपनेको किसी तरह सँभाल लिया और जरा हिम्मतके साथ दारोगाकी तरफ बढ़कर सवाल किया, क्या, दारोगा साहब! माजरा क्या है? फिर अुन्होंने बलरामकी तरफ आँखें फेरीं तो देखा कि बलरामके चेहरेपर केवल अुदासी छायी है और डरका लेश भी नहीं।

छोटे मालिक! आपको मालूम हो या न हो सरकारने यह घोषित किया है कि कुछ असी किताबें हैं जिन्हें अपने पास रखना बड़ा भारी जुर्म है। अैसी कुछ किताबें आपके लड़केके पास मिलीं। अिसलिअ अुन्हें गिरफ्तार किया है। दारोगाने अपने कार्यका कारण स्पष्ट करते हुअे कहा।

अय्यरने अपने मनकी पीड़ा और मोतिकी अंदर ही अंदर दबाते हुअे मारिमुत्तुके हाथोंकी किताबें देखीं। अेक बार देहलीकी आड़में खड़ी अपनी पताहूको भी देखा। अुनको लगा कि बुद्धि चकराने लगी है और अपनी आँखें अुस ओरसे फेर लीं। फिर दारोगाकी तरफ मुड़कर अुन्होंने पूछा क्या दारोगा साहब! आज अेक दिनके लिअ लड़केको बाहर छोड़ रखनेका कोअी मार्ग नहीं?

'मालिक? आप तो सब जानते हैं? क्या आपको भी कुछ कहना पड़ेगा? अिस विषयमें आप जानते हैं कि मेरा कोअी बस नहीं। अगर मेरे बसकी बात होती तो आपकी खातिर असे अवश्य करता। मारिमुत्तुने अगर यह पता न दिया होता तो क्या मुझे स्वप्नमें भी यह ख्याल होता कि आपके घरमें अैसी किताबें भी हो सकती हैं? मेरी क्या मजाल कि अैसा विचार मनमें लाता!'—दारोगाने अपनी विवशता दर्शायी।

अुसी समय वेदाचलम पिल्लेजीके जीमें जी आया होगा, हवास ठिकाने हुअे। अुनके दुखका कोअी पारावार न रहा। अुनके हाथपैर ही नहीं सारा शरीर दुख और क्रोधके आवेशमें असे काँप अुठा मानो आँधीमें केलेके पत्ते हों। अुनके होंठ फड़क अुठे। क्रोधसे काँपते स्वरमें अपना पूरा बल लगाकर वे गरज अुठे, पाजी! पापी! दुष्ट! आखिर तुम्हीं अिसका कारण बने! अितना कहनेके बाद वे मारिमुत्तुको अैसा घूरने लगे जैसे अुसे कच्चा ही चबा जाअेंगे।

मारिमुत्तुके अिन वचनोंका अर्थ, कि हाँ, हाँ! मुझे मालूम है कि वह कैसा पड़ता है और क्या पड़ता है? अब मैं देखूँगा कि अुसकी वह पढ़ाओ क्या होती है? स्पष्ट रूपसे पिल्लेजीके सामने आ गया।

बलरामने अपने पिताको दिलासा दिया पिताजी! आप क्या अिसकी चिंता करते हैं? देशकी खातिर चिन्ता छोड़ दीजिये। जब मैंने देश-सेवाका व्रत ठाना

---

* पोंगल त्योहारके दिन सबसे पहले तामिल-गृहस्थके घरमें चूल्हेपर दूधकी हाँडी ही चढ़ायी जाती है और दूध अुफनकर अूपर आने तक गरम करते हैं। दूधका अुफनना शुभ शकुन माना जाता है। लोग आपसमें पोंगलके दिन मिलते जुलते हैं तो आपसमें कुशल प्रश्न अिसी सवालसे करते हैं कि क्या आपके घरमें दूध अुफना? अिससे स्पष्ट है कि पोंगलके दिनसे ही अगले वर्ष तक घर धान्यसे संपूर्ण हो जाता है और अिसी खुशीमें यह आनन्दोत्सव मनाया जाता है।

था तब भली भाँति जानकर ही ठाना था कि यह सब जिस कायम अवश्यम्भावी है। और जरा गौर करके देखा जाअे तो हमारा यह देश ही अेक प्रकारका कैद खाना है। यहाँ तो यह नहीं बोल सकते वह नहीं बोल सकते। जिस देशमें जितने कड़े कानून हैं वहाँ कोओी घरमें रहे या जलमें दोनों बराबर है।

जितना सुनना था कि अम्बाकी घबराहट और आहत हो गयी और आँखोंमें आँसू भरकर भराये स्वरमें बोली क्या कहा! तुम्हारी बुद्धि फिर गयी क्या जो अैसी बात मुँहसे निकालते हो? पिताजीके सामने भी तो तुमने अपनी स्वकरवाजी शुरू कर दी? त्यौहारके शुभ दिन अैसा हो गया—जिस विचारसे हमारा हृदय टुकड़े-टुकड़े होता जा रहा है। अैसी अवस्थामें भी तुम अपनी सनक नहीं छोड़ते। क्या यह तुम्हें शोभा देता है?

बलरामने देखा कि अुसकी पत्नी भी माँके पीछे मुँह ढाँपकर बिलख बिलखकर रोने लगी तो अुसने दारोगासे कहा अिन्सपेक्टर साहब! पाँच मिनटकी मोहलत दीजिये जिससे मैं अिन लोगोंको समझा-बुझाकर आ जाअूँ!'

अिस प्रार्थनाको अिनकार कर देनेका साहस अिन्सपेक्टरको न हुआ। क्योंकि वे जानते थे कि अुस हलकेमें छोटे मालिककी कैसी धाक है! छोटे मालिकने यदि ठान लिया तो अुनका अुस हलकेसे तबादला करवाके अैसे किसी नरकमें धकेल सकते थे जहाँके गुण्डोंसे पाला पड़ना और अपनी आबरू तक बचाना असम्भव हो जाता। अतः अुन्होंने प्रार्थनाकी अनुमति दे दी।

बलराम शील सकोच छोड़ सीधे अपनी पत्नीके पास गया और बोला अरे! क्या तुम भी मूर्खोंकी तरह रोने लगी! मेरी अनुपस्थितिके अवसरोंपर जब कि माँको समझा बुझाकर सान्त्वना देनेका भार तुमपर हो अिस तरह रोनेसे काम कैसे चलेगा? तुमने तो वचन दिया था कि देशकी खातिर हर प्रकारके त्यागके लिअे मैं भी तैयार रहूँगी। क्या तुम अपनी वह बात भूल गयी? तुमको तो दृढ़ प्रतिज्ञ वीरपत्नी बननाही शोभा देगा। जिस प्रकार रोना रुलाना

यह सुनकर अुसका रोना और भी बढ़ गया। वह सिसकियाँ भरती हुअी बोली मुझे अैसी बातोंका बड़ा दुख हो रहा है कि त्यौहारके अिस शुभ दिनमें बिना भोजन किये आपको '

बलरामने अुसका वह वाक्य पूरा करने न दिया और बीचहीमें टोककर बोला आज त्यौहार है तो अुससे क्या हुआ? तुम जानती हो आज कितनोंके घरोंमें दूध अुफनेगा पोंगल यानि सवा सिरकी मीठी खिचड़ी पकेगी? अिस देशमें अैसे कितने लाखों करोड़ों घर हैं जिनके यहाँ वर्षमें कटोराभर गंजी (भातका माँड) भी मयस्सर नहीं होती मालूम है? कुछ घरोंमें चावलके दाने दूधमें अुफन पायेंगे बस और नवयुवक तो क्या वह काफी होगा? अरी पगली! मैं तो कहता हूँ कि जिसका नाम पागल नहीं। किसी दिन हमारे देशकी समूची जनताका दिल जोशसे भरकर अैसा अुफनेगा और अुमगेगा कि गुलामीकी जंजीर तोड़ फोड़ डालेगा और देशको आजाद कर देगा। तभी सच्चे मानेमें हम पोंगल मना सकेंगे। स्वतंत्रताकी अुफनती अुमंगती भावना भरनेके हर घरमें नित्य प्रति पोंगल अर्थात् खाना बनानेका साधन जुटा देगी। सब साधारणको भरपेट खाना मिले—देशमें अैसे पोंगलकी स्थापना करनेके लिअे ही हम जैसे लाखों-करोड़ों व्यक्ति देश सेवामें जुटते हैं। तुम दुःख करोगी तो मुझे अिस काममें अुत्साह कैसे प्राप्त होगा? तुम अिस काममें अुत्साहसे मेरा हाथ बटाओ तभी मैं दुगुने अुत्साहसे अुसे कर सकूँगा? ज्यादासे ज्यादा दो सालकी जेल होगी। अुसके बाद तो हम आजाद होकर अवश्य मिलेंगे।'

अितना कहकर अुसने अपनी पत्नीके गालोंपर प्रमसे हाथ फेरा तो पास ही खड़ी अुसकी माँने अुसे देखा अनदेखा करके अपना मुँह फेर लिया।

बलराम बाहरको बाहर आया और दारोगासे बोला, मैं तैयार हूँ। फिर अपने पिताकी ओर मुड़कर कहा 'पिताजी आपने अुस दिन कहा था न कि मुझमें और

पिल्लैमें अेक बातका तर्क वितर्क हो रहा था। अुसका जवाब आज मुझे मिल गया। वह यह है कि देश सेवकोंसे झूठी दोस्ती कर जो अैन मौकेपर पुलिसके हाथमें, पकड़वा देता है वह बदमाश है। बहादुर कौन हो सकता है— अिस बातका आप स्वयं निर्णय कर लें।''

यह कहकर वह आगे बढ़ा। दूसरे क्षण वैद्यलिंगम् पिल्लैजीके मनकी गहराअीसे यह विचार अुफनकर अूपर अुठा कि बलराम जैसा सच्चा देशसेवक ही सचमुच बड़ा बहादुर है, शूरवीर है। अुसके मनमें अुठने-अुमगनेवाला अुत्साह ही देशका सच्चा 'पोंगल' है।

बस, मनमें अिस विचारका अुभरना था कि वैद्यलिंगम् पिल्लैकी नस फूल गयी और अुनके दिलमें अेक प्रकारके जाशकी लहरें अुठने लगीं तो वे मारिमुत्तुकी ओर अुंगलीका निर्देश कर गरज अुठे, "अरे, तू ही बदमाश है! मेरे कुलके नामपर बट्टा लगानेवाला कुलांगार है। मेरी आँखोंके सामनेसे हट जा! निकल जा यहाँसे!"

अितना कहना था कि अुनका सिर चकराने लगा, आँखें ज्योतिहीन हो गयीं और अुनकी वृद्ध जर्जर देह लड़खड़ाकर गिरनेको ही थी कि पास खड़े छोटे मालिकने अुनका यह हाल देखा और झट लपककर अपने हाथोंका सहारा देकर पकड़ लिया। अुन दोनोंके अुस आलिंगन-पाशको, प्रेम-बन्धनको दूर ही दूर खड़ा अेक खेतिहर देख रहा था। अुसने दही बेचनेवाली ग्वालिनसे जो पास ही खड़ी यह दृश्य देख रही थी, कहा—

"अिन दोनोंके जीवनके साथ-साथ गाँवकी अेकताका अंत समझो। अिनके बाद हमारा गाँव कभी अेकताके सूत्रमें न बंधेगा और आपसमें झगड़ा-फिसाद करके मर-मिटेगा।"

अुसका वह कथन सत्य हो गया। सुख शांतिमय अुस गाँवमें झगड़ा-फिसाद फैला और अुस आंधीमें वह गाँव नष्टप्राय हो गया।

(तमिलसे अनुवादक—श्री रा. वीळिनाथन)



सन्त-साहित्यकी अमूल्य विभूति-गुरु ग्रन्थ साहिब

डॉ हरदेव बाहरी

गुरु ग्रंथ साहिब के साथ गुरु शब्द सम्भवतः अिसलिअ है कि अिसमें अनेक सन्त सम्प्रदायोंके गुरुओंकी वाणियाँ संग्रहीत हैं। यह ग्रंथ स्वयं भी गुरु है। गुरु नानक (जन्म सन १४६९ अी०)से लेकर गुरु गोविन्दसिंह (मृत्यु सन १७०८ अी०) तक दस गुरु हुअ हैं। अंतिम गुरुने ग्रंथ साहिबको ही अपना अुत्तराधिकारी नियुक्त किया—'सब सिक्खनको हुकम है गुरु मान्यो ग्रंथ।' तबसे ग्रन्थ साहिबकी गुरुवत् पूजा-सुश्रूषा होती है। अुसका दरबार लगता है, अुसे सिंहासनपर विराजमान किया जाता है और रेशमी कपड़े ओढ़ाये जाते हैं—रूमाल, चादर, दुपट्टे, तकिये अित्यादि। सायं प्रातः सिक्ख अुसके चरणोंमें पड़ते हैं और अुसके आगे 'अरदास' (अनुनय विनय) करते हैं। अुसे कड़ाह प्रसाद, रुपया-पैसा, फल फूल और अन्न वस्त्रकी भेंट दी जाती है। सब सिक्ख गुरु ग्रंथ साहिबका आशीर्वाद और वरद हाथ चाहते हैं। समय समयपर आनन्द कार्योंमें अथवा संकट कालमें—अुसका आश्रय ग्रहण करते हैं। अुसकी आज्ञासे काम होता है। बच्चेका नाम रखना हो, कोअी कार्य प्रारंभ करना हो, श्रद्धापूर्वक भेंट नजराना लेकर गुरु ग्रंथके द्वारपर आते हैं, चँवर झलते हैं, सिंहासनके चरण दाबते हैं और गुरु मन्त्रका जाप करते हुअ कोअी पन्ना खोल देते हैं। अिस पन्नेका पहला अक्षर, पहला शब्द अथवा पहली पंक्ति गुरु आज्ञाके रूपमें ग्रहण की जाती है। सिक्खोंका विश्वास है कि दसों गुरुओंकी आत्मा ग्रंथ साहिबमें वास करती है।

गुरु ग्रंथ या आदि ग्रंथका संकलन पाँचवें सिक्ख गुरु अर्जन देव (१५६३–१६०६ अी०) ने किया था। अुन्होंने प्रथम चार गुरुओंकी वाणियाँ बड़ी खोज और साधनासे संग्रहीत कीं। अुनका यथाक्रम सम्पादन किया और अुनके साथ अपनी वाणी भी जोड़ी। आदि ग्रंथमें सबसे अधिक पद गुरु अर्जन देवके ही हैं। अुन्होंने भारत भरके सन्तोंकी वाणियोंकी छानबीन की और केवल अुन वाणियोंको अपने संकलनमें स्थान दिया जो निर्गुणिया मतके अनुकूल था। जिन भक्त कवियोंकी वाणी अिस आदर्शसे हीन समझी गयी अुसे नहीं लिया गया। अुदाहरण स्वरूप—पंजाबहीके कान्ह, छज्जू, शाह हुसन, पीलू आदिकी वाणियाँ गुरु अर्जनदेवके विचाराधीन रहीं पर आदि ग्रंथमें नहीं आ पायीं, क्योंकि कान्हने अपनेको परमेश्वर कहा, छज्जूने स्त्रियोंकी निन्दा की और शाह हुसन और पीलू निराशावादी थे। गुरु ग्रंथ साहिबमें छह सिक्ख गुरुओं और १६ भक्तोंकी वाणियाँ हैं। अिनका विवरण अिस प्रकार है—

गुरुओंमें—	प्रथम गुरु नानक के	२९४९ पद
	द्वितीय गुरु अंगद के	५७ पद
	तृतीय गुरु अमरदास के	२५२२ पद
	चतुर्थ गुरु रामदास के	१७३० पद
	पंचम गुरु अर्जन देव के	६२०४ पद
	नवम गुरु तेगबहादुर के	१९७ पद
भक्तोंमें—	कबीर के	११४६ पद
	नामदेव[1] के	२३९ पद
	रविदास के	१३४ पद
	जयदेव के	२ पद
	बेणी के	३ पद
	त्रिलोचन के	४ पद
	रामानन्द का	१ पद
	सेन का	१ पद
	परमानन्द का	१ पद
	सदना का	१ पद

१ नामदेव दो हुअ थे—अेक महाराष्ट्रके, दूसरे पंजाबके। दोनोंकी वाणियोंको अलग अलग करना अत्यन्त कठिन है।

धना के		४ पद
पीपा का		१ पद
भीखन के		२ पद
फरीद के	१३० सलोक,	४ पद
मीरा[२]		१ पद
सूरदास		२ पद

सिक्ख गुरुओंकी कृतियोंको 'गुर-वाणी' और अन्य सन्तोंकी कृतियोंको 'भगत वाणी' कहा जाता है। अिनके अतिरिक्त सुन्दरजीका अेक सद् है जिसके छह पद हैं। राय बलवंडकी अेक वार और भाओी मरदानाका अेक 'शब्द' है। अन्तिम भागमें ११ भट्टोंके १२३ सवैये हैं जो सिख-गुरुओंकी स्तुतिमें लिखे गये हैं।

अुपरिलिखित सूचीमें नवें सिक्ख गुरु, तेग बहादुरजीका नाम देखकर पूछा जा सकता है कि पाँचवें गुरुके बाद नौवें गुरु ही की वाणी क्यों ली गयी, दूसरे गुरुओंकी वाणीको क्यों स्थान नहीं मिला? अिस सम्बन्धमें किंवदन्ती है कि गुरु अर्जनदेवने स्वयं भविष्यवाणी की थी कि हमारे संकलनमें केवल गुरु तेग बहादुरकी कृतियोंको स्थान मिलेगा। ६ ठे, ७ वे और ८ वे गुरुकी वाणियाँ मिलती ही नहीं। १० वे गुरु गोविन्दसिंह बहुत अच्छे कवि थे, लेकिन अुनकी वाणी भी आदि ग्रन्थमें नहीं है। अुनका संग्रह 'दशम ग्रन्थ' के नामसे प्रसिद्ध है।

सन् १६०४ ओी में गुरु अर्जनदेव द्वारा संकलित आदि ग्रंथकी हस्तलिखित प्रति हरिमन्दिर, अमृतसर, में रख दी गयी थी। यह प्रति अब करतारपुर (जिला जालन्धर) में पड़ी है। वर्षमें अेक बार अिनके दर्शनोंके लिअे लाखों सिक्ख वहाँ जमा होते और चढ़ावे चढ़ाते हैं। महाराजा रणजीतसिंहने दर्शन करते समय अेक बड़ी जागीर चढ़ावेके रूपमें भेंट की थी जिसका अुपभोग आज भी गुरु अर्जनदेवके वंशज कर रहे हैं। अिस प्रतिमें मीराका पद कलमसे काटा हुआ है।

मूल ग्रन्थकी दो प्रतिलिपियाँ और भी थीं जिनपर गुरु अर्जनदेवके हस्ताक्षर ले लिये गये थे—अेक भागट (जिला गुजरात) में और दूसरी दमदमा साहबमें। भागटवाली प्रति-लिपिका देशके बँटवारे (१९४७) के बाद क्या हुआ, कुछ ज्ञात नहीं, दमदमेवाली प्रतिलिपि अहमदशाह अब्दालीके समयसे अुपलब्ध नहीं, परन्तु जो मुद्रित ग्रन्थ अिस समय प्रचलित है वह अिसीका संस्करण है।

गुरु ग्रन्थ साहिबका क्रम अिस प्रकार है—

१ जपुजी—गुरु नानक-कृत—अिसमें मिलोंका मूलमन्त्र, १ ओंकार सतनाम करता पुरखु निरभअु निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि भी है।

२ सोदर—गुरु नानक कृत। अिसमें पाँच शब्द (पद) हैं।

३ सो पुरखु—गुरु रामदास-कृत। अिसमें चार पद हैं। जपुजीका पाठ प्रातः तथा सोदर अेवं सोपुरखुका पाठ सायंकालमें करते हैं।

४ सोहिला—गुरु नानक-कृत। अिसमें चार पद हैं। पाठ रातमें सोनेसे पहले किया जाता है।

५ राग, निम्नलिखित ३१ राग प्रयुक्त हुओे हैं—सिरी, माझ, गअुड़ी, आसा, गूजरी, देवगंधारी, बिहागड़ा, वडहंसु, सोरठि, धनासरी, जैतसिरी, टोडी, बैराड़ी, तिलंग, सूही, बिलावलु, गोंड, रामकली, नटनाराअिन, माली गउड़ा, मारू, तुखारी, केदारा, भैरअु, बसंतु, सारंगु, मलार, कानड़ा, कलिआन, प्रभाती, जैजावंती।

अिनके अतिरिक्त छह राग संयुक्त होकर प्रधान रागोंके साथ आये हैं—ललित, आसावरी, हिंडोल, भोपाली, बिभास, दीपकी।

अिन रागोंमें निम्नलिखित काव्यरूप मिलते हैं—सबद, अष्टपदियाँ, छन्द और वार। अन्य वाणियोंके नाम ये हैं—पहरे, वणजारा, बारहमासा, दिन रैणि, बारहे, बावन अखरी, सुखमनी, थिती, बिरहड़े, पट्टी, घोड़ियाँ,

---

२ मीराका पद मुद्रित प्रतिमें अुपलब्ध नहीं होता।

अलाहुणियाँ आरती कुचज्जी सुचज्जी गुणवंती वार सत अनन्दु, सद्‌ ओअंकार सिद्धगोष्ठी अंजलियाँ सोहिले। ये वाणियाँ प्राय अष्टपदियोंके बाद आती हैं।

रागोंमें गुरुवाणी पहले और भगत वाणी असके पश्चात आती है। सिक्ख गुरु सभी अपने पदोंके अंतमें नानक नाम लिखते हैं अतः अनकी वाणीके साथ क्रमशः महला १ महला २ महला ३ महला ४ महला ५ और महला ९ का संकेत रहता है। भगत वाणीमें प्रत्येक भक्तका अपना नाम आता है।

६ भाग जिसके अंतर्गत सलोक (शाहू) गाथा फुनहे और चअुबोले हैं।
७ सलोक फरीद।
८ सवये सिरीमुखवाक।
९ भट्टोंके सवये—पहले पाँच गुरुओंकी स्तुतिमें।
१० अतिरिक्त सलोक।
११ सलोक महला ९।
१२ मुंदावणी।
१३ रागमाला।

पृष्ठोंकी कुल संख्या १४३० है। मुद्रित ग्रंथ साहिब हिंदीमें हो चाहे गुरुमुखीमें २०×३०/८ हो १८×२२/८ हो २०×३०/४ हो २२×२९/४ हो और चाहे १८×२२/२ हो सभी साअिज हो पृष्ठों और पंक्तियोंकी संख्या वही रहती है— टाअिपका अंतर जिस हिसाबसे रहता है कि प्रत्येक संस्करणका कोअी पृष्ठ ले लो अेक ही शब्दसे प्रारंभ होगा।

किस भावको प्रगट करनेके लिये किस किस रागका प्रयोग हुआ अभी अिस विषयपर विशेष खोज नहीं हुअी। रागमालामें ६ प्रधान राग, ३० रागिनियाँ और ४८ अिनके पुत्र = कुल ८४ राग गिनाये गये हैं। पर गुरु ग्रंथमें केवल ३० रागोंके प्रयोग हुअे हैं। अिसका कारण अवश्य होगा। पुरातन रागोंमें मेघ दीपक मालकौंस, जोग आदि अत्यंत प्रसिद्ध रागोंमें वाणियाँ नहीं हैं। अिसका कारण यह जान पड़ता है कि अिनसे असामंजस्य ताप अुदासी अथवा आल्हादकी अुत्पत्ति होती है। ये गुरु ग्रंथके भाव मण्डलके अनुकूल नहीं पड़ते। जोगियोंको सम्बोधन करनेवाले पद रामकलीमें और मुसलमानोंको अुपदेश देनेवाले पद आसा सूही अथवा तिलंगमें लिखे गये हैं। अिसका कारण यह है कि अैसे ही राग क्रमशः जोगियों और मुसलमान फकीरों द्वारा अधिक प्रयुक्त होते थे।

गुरु ग्रंथकी रचनामें संगीत शास्त्रका बहुत ध्यान रखा गया है और घर, ताल स्थायी, अस्थायी अन्तरा गत जत धुन आदिके संबंधमें पूरे-पूरे संकेत दिये गये हैं। काव्यमें संगीतकी सूक्ष्मताओंके महत्त्वको आज बहुत कम लोग समझते हैं।

यह बात विशेषतया अुल्लेखनीय है कि गुरुवाणी तथा भगत वाणीमें प्रयुक्त छन्दोंमें शास्त्र-छन्दोंको देख कर यह प्रश्न अुठ सकता है कि जिन्हें आज साहित्यिक छंद कहते हैं क्या वे भी मूलमें और विशेषतया अुस समय लोक गीतों ही के छंद तो नहीं थे? गुरु ग्रंथमें प्रयुक्त सिठणियाँ सोहाग घोड़ी आदि आज भी विवाहोंके अवसर पर पंजाबमें गाये जाते हैं। मृत्युपर वैण और अलाहुणियाँ आज भी लोक-प्रचलित हैं। बारहमासा, थिती वार सद्‌ आदि पंजाबके प्रसिद्ध लोक छंद हैं। सोहिला प्रत्येक शुभ अवसरपर गाया जाता है। दुपदे, चअुपदे अष्टपदियाँ दोहरा आदि छन्दभी पुराने लोक गीतोंमें मिलते हैं। संत साहित्य लोक साहित्यका ही अेक विशिष्ट रूप माना जाये तो अनुचित न होगा। अतः अिसमें लोक छंदों लोकोक्तियों और लोकभाषाका व्यवहार स्वाभाविक ही है। हमारा विश्वास है कि सवया झूलना कवित्त दोहा सोरठा चौपाअी आदि छंद लोक-साहित्यकी देन हैं— वहींसे ये छंद गुरुओं और भक्तोंको प्राप्त हुअे हैं।

गुरु ग्रंथ साहबकी भाषा अेक रूप नहीं है— अेकरूपता थी भी असंभव। जयदेव बंगालके नामदेव सैन और त्रिलोचन महाराष्ट्रके कबीरदास और रविदास भोजपुरी प्रदेशके भीखनजी अवधके धना राजस्थानके नानक अंगद और फरीद लहंदी प्रदेशके अेव अन्य सिक्ख गुरु पंजाबी प्रदेशके थे। अिनकी वाणियोंमें प्रादेशिकता स्पष्ट है। परंतु अिस विविधताके बीचमें भाषाकी अेकता देखकर आश्चर्य होता है। गुरु नानक और भक्त कबीरकी भाषामें विशेष अंतर नहीं त्रिलोचन और गुरु अर्जनकी भाषा अेक-सी लगती है। अिससे कहा जा सकता है कि कम-से-कम १५ वीं- १६ वीं शताब्दी तक राष्ट्रभाषाका स्वरूप प्रतिष्ठित हो गया था—और वह राष्ट्रभाषा हिंदी ही थी जिसमें मराठी बंगाली भोजपुरी अवधी गुजराती राजस्थानी, पंजाबीका पुट होते हुअे भी स्वरूपकी अेकता निश्चित थी। गुरु ग्रंथ साहिबमें सन १६०४ से सुरक्षित चली आती हुअी भारत भरके लोक-नायकोंकी वाणियाँ हिंदीकी

व्यापक मान्यता और सर्वग्राह्यताका जोरदार प्रमाण अुपस्थित कर रही हैं।

अुद्धरण —

अंतर मलि निरमलु नहीं कीना बाहरि भेख अुदासी।
हिरदै कमलु घटि ब्रह्म न चीन्हा काहे भअिआ संनिआसी॥
भरमे भूली रे जैचंदा। नहीं नहीं चीन्हिआ परमानंदा॥

(त्रिलोचन)

अेक अनेक बिआपक पूरक जत देखअु तत सोअी।
माअिआ चित्र बिचित्र बिमोहित, बिरला बूझै कोअी॥
सभु गोबिंदु है, सभु गोबिंदु है, गोबिन्द बिन नहिं कोअी।
सूतु अेकु मणि सत सहंस जैसे, ओत पोत प्रभु सोअी॥

(नामदेव)

ना मै जोग धिआन चितु लाअिआ।
बिन बैराग न छूटसि माअिआ॥
कैसे जीवनु होअि हमारा।
जब न होअि राम नाम अधारा॥
कहु कबीर खोजअु असमान।
राम समान न देखअु आन॥

(कबीर)

तुम चंदन हम अिरंड बापुरे, संगि तुमारे बासा।
नीच रूख ते ऊँच भअे हैं, गंध सुगंध निवासा॥
माधअु सत संगति सरनि तुम्हारी।
हम अअुगन तुम अुपकारी॥

(रविदास)

बेड़ा बंधि न सकिओ बंधन की वेला।
भर सरवर जब ऊछले तब तरन दुहेला॥

(फरीद)

अेक बूंद जल कारनै, चात्रिक दुख पावै।
प्रान गअे सागर मिलै, फुनि कामि न आवै॥
प्रान जु थाके थिर नहीं, कैसे बिरमावअु।
बूडि मूअे नअुका मिलै, कहु काहि चढावअु॥
मैं नाहीं कछु हअु नहीं किछु आहि न मोरा।
अअुसर लजा राखि लेहु सधना जनु तोरा॥

(सधना)

दुख सुख दोअू सम करि जाणै, बुरा भला संसार।
सुधि बुधि सुरति नामि हरि पाअिअै,
सतसंगति गुर पिआर॥
अहिनिसि लाहा हरि नामु परापति गुरु दाता देवणहार।
गुरमुखि सिख सोअी जनु पाअे,
जिसनो नदरि करे करतारु॥
काअिआ महलु मंदरु घरु हरि का,
तिसु महि राखी जोति अपार॥
नानक गुरमुखि महलि बुलाअिअै, हरि मेले मेलणहार॥

(नानक)

अैसा नामु रतनु निरमोलकु पुंनि पदारथ पाअिआ।
अनिक जतन करि हिरदै राखिआ,
रतनु न छपै छपाअिआ॥
हरिगुन कहते कहनु न जाअी। जैसे गूंगे की मिठिआअी।
रसना रमत सुनत सुखु स्रवना, चित चेते सुखु होअी।
कहु भीखन दुअि नैन संतोखे, जहँ देखा तहँ सोअी॥

(भीखन)

हरि दरसन कअु मेरा मनु बहु तपतै
जिअु त्रिखावंतु बिनु नीर।
मेरै मनि प्रेमु लगो हरि तीर।
हमरी बेदन हरि प्रभु जानै, मेरे मन अंतर की पीर।
मेरे हरि प्रीतम की कोअी बात सुनावै, सो भाअी सो बीर॥
मिलु मिलु सखी गुण कहु मेरे प्रभु के,
सतिगुर मति की धीर।
जन नानक की हरि आस पुजावहु
हरि दरसनि सांति सरीर॥

(रामदास)

बिसरि गअी सभ तात पराअी,
जबते साध संगति मोहि पाअी।
ना को बैरी नाहीं बिगाना
सगल संगि हम कअु बनि आअी॥
जो प्रभु कीनो सो भल मानिअु, अेह सुमति साधू ते पाअी।
सभ महि रवि रहिआ प्रभु अेकै,
पेखि पेखि नानक बिगसाअी॥

(अर्जनदेव)

मनकी मनही माहि रही।
ना हरि भजे न तीरथ सेवे, चोटी काल गही॥
दारा मीत पूत रथ संपति, धन पूरन सभ मही।
अवर सगल मिथिआ अे जानहु भजन रामको सही॥
फिरत फिरत बहुते जुग हारिअु मानस देह लही।
नानक कहत मिलन की बिरिआ, सिमरत कहा नही॥

(तेगबहादुर)

हिन्दीमें नगरवर्णनात्मक साहित्य

' मुनि श्री कान्ति सागर :

गजल अरबी भाषाका शब्द है। जिसका अर्थ छदका अेक प्रकारका न होकर, काव्यका अेक प्रकार है। फारसीमें अिस शब्दका प्रयोग प्रेम-वर्णन-परक काव्यके साथ अक विशिष्ट प्रकारसे सम्बद्ध ज्ञात पडता है। यहाँपर जिन नगरवर्णनात्मक गजलोंका अुल्लेख किया जा रहा है वे छद विशेषके रूपमें आ अुपस्थित हुअी हैं। तात्पर्य यह कि वर्णनका जो तरीका अख्तियार किया गया, वह सर्वथा गजल शब्दके अुपयुक्त है। वर्णनात्मक काव्योंके लिअे अिस छद या ढगका सर्वप्रथम प्रयोग जैन यति जटमल नाहरने अपनी लाहोरकी गजलमें किया है और परवर्ती अन्य कवियोने अिसका अनुकरण किया। अिस प्रकारकी रचनाअें हमें दो रूपोंमें मिलती हैं। अेक तो स्वतत्र नगरवर्णनात्मक काव्योंके रूपमें तथा पुरातन आचार्योंको विशेष प्रसगोपर प्रेषित विज्ञप्ति-पत्रोंमें। अुपलब्ध साहित्यसे तो यही प्रकट होता है कि प्रथम अिस प्रकारकी रचनाअें स्वतत्र हुआ करती थी, बादमें विज्ञप्ति पत्र लेखकोंने अिस परम्पराको अपनाया, क्योंकि वैसे पत्रोंमें अिसकी आवश्यकता अधिक रहती थी। छद, राग और सिज्झाय आदि शब्दान्तर्गत नगरवर्णनात्मक साहित्य भी प्रचुर परिमाणमें अुपलब्ध होता है।

गजलोंकी पूर्व परम्परापर प्रकाश डालते हुअे पुरातत्त्वाचार्य मुनि श्री जिन विजयजी लिखते हैं —

' अिस प्रकारके स्थलोंके वर्णनकी पद्धति भारतमें बहुत प्राचीन कालसे चली आ रही है। पुराणकारोंने अिसका माहात्म्य नामसे व्यवहार किया है और जैन ग्रन्थकारोंने अिसका कल्प नामसे व्यवहार किया है। काशी-माहात्म्य, प्रयाग-माहात्म्य, गया माहात्म्य, श्री-स्थल माहात्म्य अित्यादि नामसे सैकडोंही स्थानोंके अैसे माहात्म्य वर्णन पुराणोंमें लिखे हुअे मिलते हैं। पुराणोंकी दृष्टि धार्मिक है, अिसलिअे अुनके वर्णनमें प्रधानतया स्थानका दैवी-माहात्म्य बतलाया गया है और अुसके अगभूत जो नदी, सरोवर, देवस्थान और पूजनीय वृक्षादि हैं अुनकाही विशेष वर्णन किया गया है। अिन माहात्म्य-वर्णनोंमें कहीं-कहीं कुछ प्राकृतिक वर्णन और कुछ अैतिहासिक स्मरणका भी योग बहुत अुल्लेख मिल जाता है। जैन ग्रन्थकारोंके कल्पात्मक स्थान वर्णन भी प्राय अिसी धार्मिक दृष्टिको सामने रखकर लिखे हुअे होते हैं और अुनमें भी विशेषतया स्थान या तीर्थका माहात्म्य बतलाया गया है परन्तु साथमें अुनमें कुछ अैतिहासिक अुल्लेखोंकी अुपलब्धि भी अधिक परिमाणमें पायी जाती है। जिनप्रभसूरिका 'विविध तीर्थ कल्प' नामका ग्रथ अिस विषयका मुख्य अुदाहरण भूत है। पुराणोंकी और कल्पग्रन्थोंकी पद्धतिका अनुकरण पिछले देशी भाषाके कवियोंने भी किया। अुन्होंने भी लोक भाषामें अैसी स्थल-वर्णनात्मक और तीर्थमाहात्म्य विषयक अनेक रचनाअें की। अिन्हीं रचनाओंकी जैसी ये गजलात्मक कृतियाँ समझनी चाहिये। अन्तर अिनमें अितना है कि ये कृतियाँ माहात्म्यकी दृष्टिसे नहीं किन्तु केवल मनोरजन और स्थल परिचयकी दृष्टिसे लिखी गयी हैं।

या तो पुरातन कथात्मक ग्रन्थोंमें और कतिपय अैतिहासिक ग्रन्थोंमें नगर वर्णन विस्तृत रूपमें पाया जाता है। पर अुनकी सीमा है। कवि अपनिवेश रस सृष्टिका ही ध्यान रखता है। गजलके लेखकोंने सार्वकत अपना दृष्टिकोण बहुत ही व्यापक तथा सार्वजनिक रखा है। अपेक्षाकृत भले ही नूतन ज्ञात होती हो पर वर्णनात्मक परम्परा बहुत प्राचीन है।

गजलोंकी अुपलब्धि -

आजसे १४ वर्ष पूर्वकी बात है। मुझे चातुर्मास बम्बअीमें करना था। अुस समय अनन्तनाथजीके पुरातन हस्तलिखित ग्रन्थ व्यवस्थित किये जा रहे थे। मुझे भी कुछ योग देना पडा था। अुस समय मैंने अैतिहासिक

कृतियोंपर विशेष रूपसे ध्यान दिया। जो महत्वकी लगती अुसकी प्रतिलिपि भी कर लेता था। चित्तौड़, अुदयपुर, बंगाल, सूरत और बड़ौदाकी गजलें तथा कोठारीका छन्द आदि रचनाअें वहींपर प्राप्त हुअीं। अिनमेंसे कुछ मैंने भारतीय विद्याभवनके तात्कालिक सर्वेसर्वा मुनि श्री जिनविजयजीको बतायीं। वे भी प्रसन्न हुअे। अैसी रचनाके संग्रहका महत्व मुझे समझाकर प्रोत्साहित किया। वम्बअीसे अुन्होंने मुझे अपने पूज्य गुरुमहाराज श्री अुपाध्याय सुखसागरजी महाराजके साथ नागपुर आना पड़ा। चातुर्मास वहीं हुआ। यहांके और कामठीके ज्ञान-भंडारोंकी जांच करनेपर मुझे अेक गुटका मिल गया। जो वि स १८३५ का था और अिसके लेखक यति दौलतराम थे, जो कामठीके अितिहास-प्रेमी यति थे। अिसमें अुपलब्ध गजलोंकी नकलें थी ही, साथ ही नागौर मरोट, बीकानेरकी गजल और पाल्नपुर छंद अुपलब्ध हुआ। नागपुरके बाबू पारसप्रताप कोठारीके और बालापुर निवासिनी श्राविका चंदन बहनके संग्रहके फुटकर पत्रोंमें गजलोंकी प्रतियाँ मिल गयी हैं। प्राप्त गजलोंमेंसे [1]अुदयपुर, [2]बंगाल, [3]लाहोर और [4]चितौड की गजलें मैंने प्रकाशित करवा दी थीं। सूरतकी गजल स्व० मोहनलालभाअी देसाअी 'जैनयुग" (वर्ष ४) में तथा बडौदाकी गजल प० लालचन्दभाअी गांधी "सुवास" में प्रकट कर चुके हैं।

बीकानेरवासी श्री अगरचन्दजी नाहटाने लिखनेपर अपने संग्रहकी कतिपय गजलें मुझे भेजीं। बादमें अिन्हीं दिनों मैंने लाहौर, झींगोर, बीकानेर, अुदयपुर, गिरनार, आगरा, चित्तौड़, मरोट, बंगाल, पाटन, बडौदा, डीसा सूरत कापरडा आदिकी गजलोंके आदि अंत भाग तथा अुनपर कुछ आवश्यक विवेचन लिख "जैनोंका गजल साहित्य' शीर्षक निबन्ध लिखा, जो फार्बस गुजराती सभाके त्रैमासिकमें प्रकट हुआ था। आगे चलकर प्राप्त गजलोंमेंसे चुनी हुअी, मेरे द्वारा सम्पादित गजलें श्रीनगर वर्णनात्मक हिन्दी-पद्य संग्रहमें प्रकट हुअीं। अिस बीच बुद्धिप्रकाशमें मेवाड़पर अेक प्रशस्ति प्रकट हुअी थी जो वर्णनकी दृष्टिसे बहुत ही सुन्दर तथा भावपूर्ण थी। नाहटा बंधुओंने अिस बीच अपनी खोज जारी रखी और जो-जो गजलें अुन्हें नवीन मिलती गयीं वे मुझे बराबर भेजते रहे, क्योंकि मेरा विचार था कि अुनका सामूहिक प्रकाशन होना चाहिये, मैंने प्रारंभ तो किया था, पर अर्थके अभावमें वह कार्य आगे न चल सका।

गजलोंकी शैलीसे प्रभावित होकर अिनकी जैसी चालमें नगरवर्णनके अतिरिक्त अन्य प्रकारकी रचनाअें भी बनी अेवं अिस चालसे भिन्न अन्य छन्दोंमें नगर-वर्णनात्मक गजलें बनी। अुन छंदोंमें--पद्धरी, कवित्त, छप्पय आदि तो गजलके अन्तमें प्राय मिलते हैं। अुपर्युक्त पंक्ति वर्णित रचनाओंके अुदाहरणस्वरूप क्रमश अिन रचनाओंको रखा जा सकता है, सुन्दरी गजल, हनुमान गजल, पालनपुर छंद, मेवाड़का छंद, जैसलमेरका सिलोका, गुजरात वर्णन, थलीकाकी अुत्तमता और नीचता, कोठारा[1] (कच्छ) का छंद, पूर्वदेश वर्णन छंद, देशान्तरी छंद, फलवर्द्धिका छंद आदि-आदि।

प्रस्तुत गजलोंका अैतिहासिक महत्त्व :

श्रमण परम्पराका अितिहास तथा कला विषयक प्रेम कितना व्यापक था, वह आजके युगमें शायद ही बतानेकी आवश्यकता रहती हो। जैन साहित्यकी विभिन्न शाखाओंके अवगाहनसे स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि अुसके प्रणेताओंने आत्मलक्षी संस्कृति पोषक विचारोंको स्वानुभवसे लिपिबद्ध तो किया ही, साथ ही साथ लोक चेतनाको अुद्बुद्ध करनेवाले लौकिक तत्त्वोंकी भी अुपेक्षा नहीं की। यही कारण है कि आज जैन-साहित्यके प्रयासमें,

---

१ भारतीय विद्या भा १ अंक ४ पृष्ठ ४१३
२ भारतीय विद्या भा. १ अंक ४ पृष्ठ ४१३
३ जैन विद्या भा अंक १ पृष्ठ २५-३१
४ फार्बस गुजराती सभा त्रैमासिक भा. ५ अं ४ पृष्ठ ४५८-४७०

१ किसी यतिने घनघोर अप्रसन्न वायुमंडलमें अिसकी रचना की है। अिसमें वहांके जैनोंको खूब गालियाँ दी हैं। कोठाराका छंद अपशब्दोंका कोश है।

ज्ञान भंडारोंमें अितिहासकी बहुमूल्य सामग्री प्रचुर परिमाणमें अुपलब्ध होती है। प्राय प्रत्यक शताब्दीमें जन मुनियोंने अैतिहासिक साहित्यकी भी रचना की। १६वी शताब्दी पूर्वकी अैसी रचनाअें सस्कृत प्राकृत और अपभ्रंशमें मिलती ह—अुन दिनो अिन भाषाओका अितना व्यापक प्रचार था कि सामान्य जनता भी कुछ न कुछ तो समझ ही लेती थी। तदनन्तर भाषाने करवट बदली। कवियोंने भी अपने माध्यममें परिवर्तन किया। साथ विषय भी बदला। मुगलोंके समागम पूर्व सचित अितिहास केवल पुन जाग्रत ही नही हुआ अपितु अुसमें नवीन सस्कार भी प्रविष्ट हुअ। फलस्वरूप गजलोंकी सृष्टि होने लगी। भले ही अिन गजलोका वर्ण्य विषय मनोरजनात्मक ही क्या न हो पर अिनमें अैतिहासिक तथ्य भी है। अिमलिअ भाषा और साहित्यिका सौन्दर्य न होने हुअ भी गवेषणाके क्षेत्रमें अिन्हे स्थान प्राप्त है। अिन नगर-वर्णनात्मक गजलोंमें अुसका पूरा अितिहास भलेही न आता हो पर साधन सामग्रीकी दृष्टिसे अिनका महत्व विशेष है।

समुपलब्ध गजलोको मैंने अपने दृष्टि-कोणसे पढ़ने समझनेकी चेष्टा की और गजलवर्णित स्थान तथा विषयका समर्थन, तात्कालिक अन्यान्य अैतिहासिक साधनो द्वारा किस सीमा तक होता है अिस तुलनामूलक पद्धतिका भी अपनानेका लघु प्रयास किया कारण सिद्धाचल गिरिनार और पाटन आदिकी गजलोमें जिन जिन महत्वपूर्ण जैन अजैन स्थानोके अुल्लेख आय ह अुनका समर्थन तीर्थमालाओंसे तो होता ही है कुछ अक स्थानोका समर्थन पुराण तक करते ह। कतिपय पद्योमें किंवदन्तियाँ भी अुपलब्ध होती ह।

गजलोंमें शुद्ध अितिहास भले ही अुपलब्ध न होता हो पर अैतिहासिक तथ्योका सग्रह अवश्य रहता है। अुस स्थानपर अुस समय कौन राजा था? शासित प्रदेशकी सीमा कितनी विस्तृत थी? अिसमें कौन कौनसे नगर मुख्य थ? अुनके तात्कालिक क्या नाम थे और बादमें कैसे परिवर्तन हुआ? नगर और देशमें किन किन वस्तुओका व्यापार होता था? स्थानीय कौनसी वस्तु प्रसिद्ध थी? वहाँपर दर्शनीय तथा अैतिहासिक अव धार्मिक कौन-कौनसे स्थान थ और अुनके साथ किस प्रकारकी जनश्रुतियाँ जुडी हुअी ह आदि। नगरके कूप वापिका और जलाशय प्रधान बाद्य नगरके प्रमुख नागरिक और राजकर्मचारी बाजार राजा तथा अुनके परिवारके सदस्य वहाँके खण्डहरोका परिचय वहा बसनेवाली जातियाँ और अुनके व्यवसाय तथा सामाजिक प्रथाअें आदि अनेक महत्वपूर्ण बातोका सग्रह अैसी गजलोंमें रहता है जो अन्यत्र शायद अुपलब्ध न हो। भौगोलिक दृष्टिसे भी अिनका अपना महत्व है। अैसी कृतियोको यदि नगरोका गजेटियर कह तो अत्युक्ति न होगी।

अधिकाश गजलोके रचयिता प्राय जैन या यति ह। १७ वी शताब्दीसे २० वी शती तक अिस प्रकारकी पद्यनिर्माण पद्धति सुरक्षित रही। धार्मिक नियमानुसार जैन मुनि अधिक समय तक अक स्थानपर, बिना विशेष कारणके नही रह सकते। वे पैदल चलते है किसी भी स्थितिमें वाहनका अुपयोग नही करते अत पाद विहार अनिवार्य है। सास्कृतिक प्रचारकी विशुद्ध भावनासे अिन्हे भारतके सब प्रदेशोंमें भ्रमण करना पडता था जहा जनोका निवास हो। अत वे नगर देश ग्रामोसे पूर्व परिचित थ। अुनमें अैतिहासिक दृष्टिकोण था प्रत्यक वस्तुको हृदयकी आखसे देखकर समुचित मूल्याकनकी क्षमता थी वे प्रकृति सुषमाके मौलिक तत्वोका सयम द्वारा जीवनमें आत्मसात कर चुके थ, जनकल्याण और सास्कृतिक लोक-चेतना कैसे जाग्रत हो यह अुनके जीवनका दृष्टि बिन्दु था। अिन्ही अुदात्त भावनाओंने अुन्हें अिस ओर आकृष्ट किया। अनुभूतिको कविताके द्वारा व्यक्त करनेको अुत्प्रेरित किया। रचयिता जैन मुनि थ। परन्तु अुनकी दृष्टि विशाल अुदार और समत्वकी भावनापर प्रतिष्ठित होनेके कारण प्रत्यक साम्प्रदायके साथ न्याय किया गया। गिरिनारकी गजलमें दर्वेश कि अजैन तीर्थस्थानोका अुल्लेख भी जनयति कितने सम्मानके साथ करता है। प्रत्यक्ष अनुभवजन्य ज्ञानका परिपाक गजलो द्वारा हुआ है। य विश्वस्त साधन ह। हिन्दी राजस्थानी भाषाके अैतिहासिक साहित्यमें जैन श्रमणोको यह मौलिक देन है।

गजलका पूरा चित्र पाठक तथा अन्वेषकके सामने आ सके इसलिये आगरा और बीकानेरकी गजलें ज्योंकी त्यों दे रहा हूँ। अतिरिक्तके आदिम तथा अन्त भाग एवं ऐतिहासिक परिचयसे ही संतोष करना पड़ रहा है।

गजलोंका प्रान्तवार विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है —

(१) पंजाब—लाहौर, सिगार।

(२) उत्तर प्रदेश—आगरा।

(३) सिंध—मरोट गजल।

(४) राजस्थान—उदयपुर, चित्तौड़, बीकानेर, सांचोर, नागौर, मेड़ता, जोधपुर, कापरड़ा, पाली और आबू।

(५) गुजरात—ईडर, पाटन, सूरत, खंभायत, जंबूसर, सिनोर, बड़ौदा, बम्बई, अहमदाबाद।

(६) सौराष्ट्र—पोरबन्दर, सिद्धपुर, पालीताना, भावनगर, गिरिनार, मांगरोल।

(७) बंगाल—बंगालकी गजल पूरब देशका वर्णन।

(८) मध्य भारत—इन्दौर।

उपर्युक्त विभाजनसे तो स्पष्ट है कि इन गजलोंका मुख्य स्थान पश्चिम भारत ही रहा है। दूरवर्ती इन नगरोंपर जिन विद्वान यतियोंने गजलें लिखीं वे भी पश्चिम भारतीय यति थे। केवल चातुर्मास स्थानके कारण लिखे गये यहीं रहे थे। तात्कालिक परिवेश पढ़नेसे भी उनमेंसे कुछेकका तात्कालिक भौगोलिक अनिश्चित सिद्ध होता है।

जिन कवियोंने रचनाकाल सूचित किया है और जिनका नहीं है उनका आनुमानिक रचनाकाल स्थिर किया जा सका है। ये सब रचनाएँ क्रमिक रूपसे दी हैं पर इनमें ३–४ रचनाएँ ऐसी हैं जिनमें न रचयिताका नाम दिया। और न रचनाकाल ही निर्दिष्ट है—ऐसी रचनाएँ अन्तमें दी गई हैं।

ये १–२ गजलें आगराके विजय धर्म लक्ष्मी-ज्ञान मंदिरमें कविके हाथकी लिखी विद्यमान हैं।

भाषा

गजलोंकी भाषामें फारसी भाषाके शब्दोंकी प्रचुरता है एवं राजस्थानीका भी खूब सम्मिश्रण है, जो स्वाभाविक है। सौराष्ट्रसे सम्बद्ध रचनाओंमें कहीं कहीं ठेठ काठियावाडी शब्द भी मिल जाते हैं तो कहीं कहीं ठेठ खड़ीबोलीके प्रयोग भी उपलब्ध हैं। रचनाओंका उर्दू-साहित्यसे मिलता जुलता है, तो उर्दू भाषाका प्रभाव पड़ना भी अस्वाभाविक नहीं। उदाहरणार्थ मरोटकी गजलको ही लें, भारतीय साहित्यमें रचनाके अन्तमें रचनाकाल देनेका विधान है और अरबी फारसीमें रचनाकाल ग्रंथके पूर्व। द्वितीय टाइपका प्रभाव स्वरूप मरोट गजलमें विद्यमान है। जिसमें रचयिताने रचनाकाल शुरूमें दे दिया, जब कि भारतीय परम्परानुसार अन्तमें देना चाहिये था। जहाँ भाषाका विचार किया जाता है वहाँ छंद भी अनुपेक्षणीय नहीं। मुगलोंसे सम्पर्क बढ़ने पर गजल निर्माताओंने फारसी शब्द परम्पराके साथ छंदोंको भी अपनाया जैसे रेखता और गजल। गजलमें आये दोहा, चौपाई आदि भारतीय छंद मिलेंगे। ऐसा लगता है कि कवियोंने विषय तथा भाषानुकूल छंदोंको अपनाया।

हिन्दी राजस्थानी और उर्दू मिश्रित ये रचनाएँ भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे या शुद्ध साहित्यकी दृष्टिसे कुछ भी महत्त्व नहीं रखतीं पर लोक-साहित्य और ऐतिहासिक तत्त्वकी दृष्टिसे अनुसंधानीय हैं। हाँ किसी किसी रचनामें भाषाके साथ भावमूलक सौन्दर्य है, पर कवि इस परम्पराका अन्त तक निभा नहीं सका। किसी रचनामें चन्द शब्द सुंदर रहनेसे वह रस-सृष्टि नहीं हो सकती जिसके लिये तो उनमें प्रचंड प्रवाह शान्तिक और पाण्डित्य चाहिये। मैं मानता हूँ नम्रता कि गजलें अधिकांश प्रणेता स्वातिप्राप्त साहित्य-सेवी रहे हों।

समालोचकोंसे मेरा विनम्र निवेदन है कि वे गजलोंकी भाषापर अधिक ध्यान न देकर उनके वर्ण्य विषयपर ध्यान दें।

गजल प्रति परिचय

जिन जिन प्रतियाम प्रस्तुत निबन्ध मनरूप धारण कर गया अुनमेंस अुपरोक्त प्रतियोंका परिचय देना अत्यत आवश्यक है।

(१) लाहौर गजल—

ढाल्म गुटकेमें लाहौर अुदयपुर चितौड और मरोटकी गजल लिखी ह। वह मरे सग्रहम सुरक्षित ह। पुष्पिका अिस प्रकार है —

सवत १८३५ वर्षे शाके १७०० मध्रीका प्रवतमान मासोत्तम भाद्रमास शक्ल पक्ष ७ तिथो चन्द्रवासर श्री मरोटका है। खरतर आचार्य-गच्छ पण्डित प्रवर गुरुजी श्री १०७ श्रीर भाणजी तत्शिष्य मुख्य (न्य) अनवामा प प्र श्री टाहामल्जी तत्सिष्य प प्र दालतराम मुनिना लिपी चक्र अिय पुस्तिका ॥

दाहा (दूहा)

जब लग सूरिज चन्द्रमा जब लग जमी आकास।
तब लग अिह पोथी सदा रह हमारे पास ॥१॥

अिह पोथी वितरसनो वांच ज्यो चित्लाय।
पढ़ुयां गुण्यां सुख ऊपजै अिह कहे दोलतराय ॥२॥

नाहटा सग्रहकी लाहौरका गजलके बाद जटमल-कृत 'स्त्रीगजल' दी है। अुसके अन्तमें यह प्रशस्ति है—

'सवत १७६५ रा इन्द्रमरमध्ये पदमा ॥

मरे सग्रहमें तीन प्रतियां लाहौर गजलकी ह। सुन्दर ह, पर लिपिकाल नहीं है।

(२) चितौडकी गजल—

जिसकी तो अनेक प्रतियां विभिन्न भडारोमें पायी जाती ह पर नाहटाजीके सग्रहकी प्रति सब प्राचीन है। लखनकाल है —

सवत १७८९ माह सुदि १ दिने लिपते रिणी नगर मध्य द० भाग्य समुद्रण ॥छ॥

लिपि सुन्दर तथा सुपाठ्य है। अिसीम अुदयपुर गजल भी है।

(३) अुदयपुर गजल—

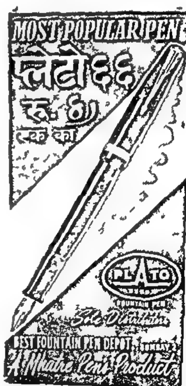
सवप्राचीन प्रतिका प्रशस्ति न २ में दी है। दो प्रतियां मरे सग्रहमें भी ह।

(४) आगरा गजल—

४ पत्रकी यह प्रति कहा-कहा दीमको द्वारा नष्ट हो चुकी है और अिसका प्रति अन्यत्र होनेकी सूचना अिन पक्तियोंके लिखन समय तक नहीं मिली। प्रति कवित स्वय अपन हाथम लिखी है।

(५) बगालकी गजल—

मन अनन्तनाथजीके वस्त्रअीवाज ज्ञान भडारसे प्रतिलिपि की थी अुसीके सहारे मन अिसे यहां लिया है। परन्तु आज १४ वष पूर्वकी बात है अत प्रति परिचय विस्मृत हो चुका है। प्रतिका आना सभव नहीं। अत अिततसे ही सतोष करना पडगा। हां नाहटाजीके सग्रह (कलकत्ता)म अिसकी प्रतियां ह।



(६) गिरनार गजल—

गिरनारकी गजलकी प्रति नाहटाजीके संग्रहकी है। प्रति अति सामान्य है और कुछ खंडित भी थी। क्योंकि नाहटाजीने कुछ पंक्तियां स्वहस्तसे लिखकर प्रति पूर्ण की है। लिपि सामान्य है। पत्र २ है।

(७) पाटनकी गजल—

पाटन गजलकी अक प्रति अभी अभी मूल वाला पुरवासी पाटन वहनके कुछ खण्डित पत्रोंमें प्राप्त हुआी। लेखन प्रशस्ति जिस प्रकार है—

॥ संवत १८९४ समय विजयन लपिकृत बालापुर ॥

जिसके लेखक बालापुरमें ही रहने थे। आसन वहाँपर रहकर सबसे ग्रन्थोंका अपने हाथसे लेखनकर भान भंडार स्थापित किया। बालापुरमें पाटनवाले ही अधिकतर हैं अतः पाटनके प्रति प्रेम होना स्वाभाविक है। बाबू अगरचंद नाहटाके संग्रहमें भी पाटनकी गजलकी ३ प्रतियाँ हैं जिनका परिचय जिस प्रकार है—

प्रति १— पत्र संख्या १० प्रशस्ति—

अिति श्री नरसमुद्र पाटणनी गजल संपूर्ण श्री रस्तु ॥श्री॥ सं १८७५ मिति माह वदि ४ लिखत॥

प्रति २— पत्र सं ५ जिसकी लिपि बहुत सुन्दर स्वच्छ और सुपाठ्य है। जिसका लेखक भी पटुजान पड़ता है। जिस प्रतिका महत्व बड़ी विशेषता यह है कि हाशियेमें पत्रोंमें पाठान्तर लिखे हुओ हैं। कहीं कहीं तो मूल प्रतिके पाठमें ही परिवर्तन किये गये हैं। जिन सबको देखते तो मुझे यही लगता है कि जिसकी प्रतिलिपि करनेवाला या तो कविका ही परम्पराका शिष्य या निकटवर्ती कोअी यति रहा होगा अब तो वह जितना अधिकारपूर्ण संपादन कर सका। जो भी हो सम्पादनका यह अच्छा श्रम उल्लेख हलका कर दिया। अन्तिम प्रशस्ति जिस प्रकार है—

॥ अिति श्री नरसमुद्र पाटणनी गजल सम्पूर्ण॥
सं १८७२ वर्षे मा ॥ १० गुरुवासरे लखीतं॥

मेरा तो ख्याल है अुपयुक्त प्रतिका आदर्श यही प्रति है।

प्रति ३—यह प्रति भी अुपयुक्त प्रतिके समान है। पत्र सं ६ हैं। तीनों प्रतियोंकी लिपि तो प्रायः समान है। संभवतः अक ही परम्पराके लेखकोंकी भिन्न भिन्न लिपियाँ हों तो क्या आश्चर्य।

(८) डीसानी गजल—

जिसकी भी अेक प्रति नाहटाजीके संग्रहमें प्राप्त हुअी है। प्रति बड़ी सुन्दर और छह पत्रोंकी है। जिसमें भी पाठान्तर प्रचुर हैं। मूलमें भी पाठान्तर परिवर्तित किये गये हैं। पाटन और डीसाके पाठान्तरका लेखक भिन्न नहीं जान होता कारण लिपि-साम्य स्पष्ट है। जिसके अतिरिक्त जो छोटे मोटे वर्णन हैं वे भी फुटकर पत्रोंमें लिपिकारके कुण्डलियोंके रूपमें मिले हैं, कुछक लम्बे चौड़े विशिष्ट पत्रोंमें संग्रहीत हैं। अतः अुनका विस्तृत परिचय देना समुचित प्रतीत नहीं होता।

भाषा विषयक परिवर्तन जितना शीघ्र लोक-काव्य साहित्य विषयक कृतियोंमें होता है अुतना साहित्यमें नहीं। गजल अेक प्रकारका लोक-साहित्य ही है पर निर्माण होनेके बाद बहुत शीघ्र व लिपिबद्ध हो गयीं—कभी तो कविका ही लिखी हुअी है—अतः भाषा विषयक अधिक परिवर्तन न हो सका। भाषा विज्ञानके आधारपर हिन्दीके वीर गाथाकालीन ग्रन्थोंके अध्ययन तथा अुनके सम्पादक विद्वानों द्वारा जो भारी भूलें हुईं, अुनका अेक यह भी कारण है कि जब जो रचना बनी वह तत्काल या अुसी शताब्दीमें न लिखी जाकर बहुत वर्षों तक मौखिक परम्पराके रूपमें जीवित रही फिर बादमें लिपिबद्ध की गयी। पिछली पीढ़ी भाषाको मूल आदर्श मान्य माना जाता तो शायद अितनी भूलें न होतीं। जिसका फल यह हुआ कि भाषा विषयक परिवर्तन जितने अधिक हो गये कि मौलिकता खोजना कठिन हो गया। पर अन साहित्यकी रचनाओंके लिए यह बात नहीं है। गजल तो बिल्कुल अपवाद है।

व्यासका आक्रोश

: आचार्य श्री स ज भागवत :

> अूर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति माम् ।
> धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्मः किं न सेव्यते ॥
>
> —महाभारत

समाजके आरम्भसे ही समाजके प्रतिभाशाली पुरुष सतत यह स्वप्न देखते आये हैं कि आदर्श समाजकी रचना किस प्रकार की जाअे। कवियोंने आदर्शोंका चित्र खींचा, सुधारकोंने आदर्शकी ओर ले जानेवाले आचार बतलाये, वीरोंने आदर्शोंको मूर्तनाके लिअे अपने प्राणोंका भी बलिदान कर दिया, तो भी आदर्श अभी प्रत्यक्षसे अतिशय दूर—कल्पनाके अन्तरालमें ही रहते आये हैं।

भारतीय संस्कृतिके पवित्र काव्य रामायण और महाभारतमें जीवनके दो आदर्श दिखलाये गये हैं। आदर्श-मानव चित्रित करनेमें रामायणमें वाल्मीकिकी प्रतिभा खर्च हुअी है और महाभारतमें व्यासने अपनी समस्त बुद्धिका अुपयोग करके जीवनका सामाजिक आदर्श अुपस्थित किया है। वस्तुतः अिन दोनों आदर्शोंका परस्पर दृढ सम्बन्ध है, क्योंकि यद्यपि आदर्शभूत समाजके निर्माणके लिअे असामान्य व्यक्तियोंकी आवश्यकता है, तो भी आदर्श-समाजमें ही आदर्श-मानव निर्मित होना सम्भव है। अिस कारण समाजके सब व्यवहार आदर्श-जीवन निर्माण करनेकी दृष्टिसे चलानेके लिअे आदर्शोंकी व्यावहारिक साधनाकी प्रधान रूपसे आवश्यकता है।

व्यवहारके नित्य और महत्त्वके प्रश्न अर्थ तथा काम हैं। मानवी-जीवनकी पूर्णताके लिअे भारतीय ऋषियोंने 'मोक्ष' शब्दका अुपयोग किया है। जीवनका प्रत्यक्ष स्वरूप अर्थ-काममें है और अुसका परोक्ष स्वरूप मोक्षमय-आनन्दमय है। भारतीय द्रष्टाओं तथा समाज सुधारकोंका यह परम्परागत विश्वास है कि जीवनके अिन प्रत्यक्ष और परोक्ष स्वरूपोंमें चाहे कुछ भी विरोधका आभास क्यों न हो, परन्तु अुनमें वैर नहीं है और अुन्होंने अर्थ-काम अेवं मोक्ष अिन द्विविध अंगोंके साधनके रूपमें केवल अेक धर्मकी साधनाको प्राधान्य दिया है। 'धर्म' शब्दसे जीवनकी सर्वांगीण साधनाका बोध होता है। प्रस्तुत लेखके आरम्भमें अुद्धृत किये गये महाभारतके प्रसिद्ध श्लोकमें भी 'धर्म' शब्दका यही अर्थ सूचित किया गया है। धर्म-साधनासे मोक्षसिद्धि होती है, अिस विषयमें कभी किसीने संशय प्रकट नहीं किया, फिर भी अर्थ-कामकी जो सिद्धि धर्माचरणसे होती है अुसके विषयमें बहुत मतभेद दर्शाया जाता है। परन्तु भारतीय विचार-सरणिमें यह सिद्धान्त सर्वमान्य समझा गया है कि धर्मसे ही अर्थ-कामकी सिद्धि होती है। यदि यह ध्यानमें रख लिया जाअे कि 'धर्म' का अर्थ 'न्याय' है तो यह विदित होगा कि भारतका अुक्त सिद्धान्त प्रायः जगन्मान्य है। यदि समाजके व्यवहार कभी भी सबके लिअे सुखकर होना है, तो यह आवश्यक होगा कि अिन सब व्यवहारोंका आधार न्यायबुद्धि हो। सुख और न्यायमें तत्त्वतः विरोध नहीं। परन्तु जब सुखका स्वरूप संकुचित हो जाता है अुस समय अुस संकुचित सुख अर्थात् स्वार्थका न्यायसे विरोध हो जाता है। सबके चिरस्थायी सुखका वास्तवमें, न्यायसे कोअी विरोध नहीं। परन्तु सामाजिक अितिहासके अध्ययनसे यह प्रकट होता है कि समाजमें अभी भी यह न्यायनिष्ठा सुदृढ रूपसे स्थापित नहीं हुअी, अिसीलिअे व्यासके समान ज्ञानी और 'सर्वभूतहिते रत' महान् पुरुषोंको दुखपूर्ण आक्रोश करना पड़ा है।

समस्त महाभारतका निरीक्षण करनेसे यह बात सहज ही ध्यानमें आ जाती है कि व्यासका यह आक्रोश कितना यथार्थ था। धर्मका संस्थापन करनेकी प्रतिज्ञा पूरी करनेके अुद्देश्यसे अवतीर्ण भगवान् श्रीकृष्णके चरित्रका प्रत्यक्ष परिणाम, समाजसाफल्यकी दृष्टिसे, हमें क्या दिखता है? जिन यादवोंके कुलमें श्रीकृष्णका

जन्म हुआ, वे लोग अुन्हींके सामने मदिरामत्त होकर नष्ट हो गये। 'यादवी' शब्द अुसका स्मारक है! पितामह भीष्मने अपने वैयक्तिक सुखजीवनका होम करके जो कुलसेवा की, सम्भवतः अुसके ही फलस्वरूप अुन्हें अपने कुलका सर्वनाश देखना पड़ा और विदुर जैसे स्थितप्रज्ञ ज्ञानी संतको, अपना अुपदेश निरर्थक होते देख, जगत्कल्याणकी अिच्छा होते हुअे भी, अपने स्थानमें दुखी होकर बैठना पड़ा। स्वतः 'महाभारत' कार व्यासके अन्तिम अुद्‍गार आरम्भमें दिये ही गये हैं।

यह बात नहीं है कि यह अनुभव केवल भारतीय विचारकोंको ही आया हो। योरोपीय संस्कृतिके अग्रभागमें दीप्तिमान सॉक्रेटीज और प्लेटोकी भी कथा अैसी ही है। सॉक्रेटीजने यह आग्रहपूर्वक प्रतिपादित किया था कि जीवनका सौख्य विचारोंकी शुद्धतापर अवलम्बित है। अिस कारण अुसे विष-प्याला पीना पड़ा। प्लेटोकी कथा तो अिससे भी करुणाजनक है। अुसने अपनी विशाल प्रतिभासे सामाजिक जीवनके सम्पूर्ण आदर्शोंका निर्माण करके अपने सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ 'रिपब्लिक' के द्वारा यह तथ्य तत्कालीन जगत्‌के सामने अुपस्थित किया कि जीवनका परमसत्य जाननेवाले ज्ञानी पुरुषोंके हाथोंमें ही समाजका शासनसूत्र होना चाहिये। अुसका यह सिद्धांत आज भी विश्व-मान्य है। परन्तु अुसका स्वयंका अनुभव शोचनीय है। तत्त्वज्ञके राजा होनेकी अपेक्षा राजाका तत्त्वज्ञ होना सुलभ होगा, अिस कल्पनासे अुसने सिराक्यूजके राजाको, अुसके निमंत्रणपर, अपना प्रथम शिष्य मान लिया। परन्तु राजाको यह प्रतीत हुआ कि तत्त्वज्ञ होना असुविधाजनक है। अिस कारण अुसने अुस प्रसिद्ध जीवनाचार्यको गुलामके रूपमें बेच डाला! वहाँ किसी मित्रकी दयासे वह बेचारा किसी प्रकार अपने प्राण बचाकर स्वदेश वापस आया।

प्राचीन चीन देशके प्रसिद्ध ज्ञानी पुरुष कान्-फू-त्सेने भी समाज-धारणाके सम्पूर्ण दर्शनकी रचना की थी। अुसे यह बड़ी आशा थी कि यदि कोअी राजपुत्र मेरा शिष्य होना स्वीकार कर ले तो मैं अपने दर्शनके अनुसार चीनके जीवनकी रचना कर सकूँगा। परन्तु अुस समयके राजा आपसमें प्राणघातक युद्ध करनेमें अितने व्यस्त थे कि अुन्हें कान-फू-त्सेकी ओर ध्यान देनेका अवकाश ही नहीं मिला। अुसकी मृत्युके समय अुसके शिष्योंने अुससे पूछा 'आपकी आन्तरिक अिच्छा क्या है?' कहा जाता है कि अुसने ये अुद्‍गार प्रकट किये थे कि मुझे अन्त तक अैसा राजपुत्र नहीं मिला जो मुझे अपने दर्शनका प्रयोग करनेका अवसर देता। यह बात मेरे हृदयको बहुत दुख दे रही है।

प्राचीन अीरानी लोगोंके धर्म संस्थापक जरदुष्ट्रकी भी कथा अिसी प्रकार मजेदार है। अिस महापुरुषमें समाज-सौख्यकी दिव्यदृष्टि थी और प्लेटोव कान्-फू-त्सेके समान ही अुसकी बहुत दिनोंसे यह महत्वाकांक्षा थी कि वह किसी राजाका गुरुत्व करे। अेक राजाको निरुपाय होकर जरदुष्ट्रका शिष्य बनना पड़ा। कारण, अुस राजाका घोड़ा अकस्मात बीमार पड़ गया। जरदुष्ट्रको अश्वविद्या मालूम थी। अिस कारण अुसने अिस अवसरका अुपयोग करके अपना गुरुत्व अुसके अूपर लाद दिया।

आधुनिक यूरोपके 'यूटोपिया' (आदर्श समाज) ग्रंथके कर्ता सर टामस मूरको राजाके हाथसे मरना पड़ा और अुस ग्रंथके नामसे 'यूटोपियन' यह अवहेलनादर्शक विशेषण अंग्रेजी भाषामें रूढ हो गया।

आदर्श-वादियोंकी अिस नामावलीमें अिच्छानुसार वृद्धि की जा सकती है। जगके सब साधुसंत सदा ही यह कहते आये हैं कि मनुष्योंको धर्मशील बनना चाहिये। बहुतसे लोगोंका विचार है कि अीसा अथवा बुद्धका अुपदेश सन्यासवादका था, परन्तु अुनके अुपदेशोंका प्रत्यक्ष अवलोकन करनेपर यह कहना पड़ता है कि यह विचार ठीक नहीं। अीसाके 'Kingdom of Heaven' का अर्थ 'Kingdom of Righteousness' है। यह बात अुन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें कही है। अर्थात अुनका 'स्वर्गीय राज्य' 'धर्मराज्य' ही था। अुनका मुख्य सिद्धांत यही था कि 'तुम धर्म और न्यायके अनुसार आचरण करो। तब तुम्हें जीवनके अैहिक सुख भी सरलतापूर्वक प्राप्त होंगे।' यह सिद्धान्त पूर्वोक्त भारतीय सिद्धान्तसे बिलकुल मिलता है, परन्तु अिसी सिद्धान्तके लिअे अीसाको वध-स्तम्भपर चढ़ना पड़ा! अिसी प्रकार यह नहीं कहा जा सकता कि गौतम बुद्धका

अष्टांगमार्ग केवल सन्यास जीवनके लिअे ही है। यह स्पष्ट है कि सामाजिक जीवनका वही आधार है। वैशालीके वज्जी लोगोंको अुन्होंने जो सात प्रसिद्ध नियम बतलाये अुनका अुपदेश अुन्होंने समाजमें धर्मराज्य प्रस्थापित करनेके साधनके रूपमें ही किया।

अिस्लामी धर्म संस्थापक महम्मद पैगम्बर तथा यहूदी धर्माचार्य मोजेस ये दोनों महापुरुष कर्मयोगी ही थे। अुन्होंने प्रधानतः अरब और अिस्रायल जातियोंके लोगोंकी समाज-रचना की, परन्तु अुन दोनोंने अपने सामाजिक आदर्शोंकी सिद्धिके लिअे धर्म-साधनाका ही अुपदेश किया। अिस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यासके अिस सिद्धांतको कि **"धर्म ही अर्थ-काम सिद्धिका अेकमात्र साधन है"** सार्वत्रिक मान्यता प्राप्त है। परन्तु अैसा होते हुअे भी प्रत्यक्ष व्यवहारमें धर्मबुद्धिसे आचरण करनेवाले व्यक्तियोंका वर्ग अभीतक अल्प ही दिखता है। सामाजिक सुधारकी दृष्टिसे यह अेक रहस्यमय घटना समझना चाहिये।

यदि हम आधुनिक युगके समाज सुधारकोंके प्रयत्नोंको देखें तो अैसा नहीं मालूम होता कि यह रहस्य समझ लिया गया। आधुनिक कालमें न्यायकी प्रस्थापनाके लिअे राजकीय, आर्थिक, शैक्षणिक अित्यादि विविध क्षेत्रोंमें अनेक क्रांतिकारक प्रयोग हुअे हैं। अिन नाना विध प्रयोगोंमें अन्य कितने भी भेद मिलें तो भी अुनमें यह सिद्धांत सर्वत्र अंगीकृत किया हुआ दिखता है कि सामाजिक-व्यवहारोंके न्यायबुद्धिपर आधारित होनेसे ही समस्त समाजको सुख और सन्तोषकी प्राप्ति हो सकेगी। तो भी ये प्रयत्न अुल्लेखनीय रूपसे सफल हुअे प्रतीत नहीं होते।

यह कल्पना अति प्राचीन कालसे प्रचलित रही है कि मनुष्य बुद्धिवादी प्राणी है और अुसकी बुद्धिमें सत्यका जाननेकी शक्ति है। ज्ञान ही मनुष्यका अलंकार है, यह सिद्धान्त हमारे यहाँ मान्य था। और ज्ञान ही सद्‌गुण है, यही साक्रेटीजका सिद्धान्त था। आधुनिक कालमें पाश्चात्य देशोंमें बुद्धिपूजाका पुनरुज्जीवन बड़े अुत्साहसे किया गया, परन्तु अिन बुद्धिपूजकोंकी श्रद्धा प्रत्यक्ष व्यवहारमें, अिस समय बहुत अंशोंमें, विफल प्रतीत होती है। प्रख्यात अंग्रेज लेखक जार्ज बर्नार्ड शाका अनुभव बहुत अुद्‌बोधक है। बुद्धिवादी अिंग्लैण्डमें पैदा हुअे अिस प्रतिभाशाली पुरुषको तरुणावस्थामें अैसा प्रतीत हुआ कि यदि समाजके सब वर्गोंमें पर्याप्त ज्ञानका प्रसार किया जाअे तो समस्त अन्याय और विषमताका अपने आप अंत हो जाअेगा। अिसलिअे अपनी वाणी और कलमकी सहायतासे शाने अिंग्लैण्डकी अखिल जनतापर ज्ञानकी मूसलधार वर्षा की। तथापि अुसे यह स्पष्ट हो गया कि समाजकी क्रियाशून्यता कम नहीं हुअी। अुसे यह दिखा कि लोगोंकी विशेष प्रवृत्ति व्याख्यान प्रवचन सुनने अथवा निबंध पढ़नेकी ओर न होकर रंगभूमिकी ओर होती है। यह समझनेपर अुसने अपने विचारोंका प्रचार करनेके लिअे रंगशालाका आश्रय लिया और मनोरंजनके लिअे अेकत्रित सब स्त्री-पुरुषोंको ज्ञानी बनानेका निश्चय किया। परन्तु २४ वर्षोंसे अधिक समय तक यह नयी साधना करनेपर भी शा को अिष्टसिद्धि नहीं प्राप्त हुअी। अन्तमें अुसने निराश होकर यह नाटकीय घोषणा की कि, प्रचलित मानवप्राणी आदर्श समाजके निर्माणके लिअे स्वभावसेही अपात्र है और आदर्श समाजके निमित्त नवमानव', 'अतिमानव निर्माण करनेकी योजना करनी चाहिये।' बुद्धिवादके पराभवकी यह स्पष्ट घोषणा है। अिसका निष्कर्ष यह है कि मनुष्यमें बुद्धिकी अपेक्षा भावनाओं और विकारोंका अधिक प्राधान्य है और तर्क बुद्धिसे प्राप्त ज्ञान मनुष्यकी संकल्प शक्तिको जाग्रत नहीं कर सकता। आजकल पाश्चात्य विचार-धारामें बुद्धिवादके विरुद्ध प्रतिक्रिया आरम्भ हुअी दिखती है। मनुष्यके जीवनपर विकारोंका प्रभुत्व रहता है और अुसकी बुद्धिपर भी विकारोंका आधिपत्य होनेके कारण बुद्धिवाद नामके अंतर्गत सत्यके विकृत दर्शनकाही प्रसार होता है। यह बात बहुतसे विचारकोंके ध्यानमें आने लगी है। अनेक लेखकोंने जिस आशयके विचार व्यक्त किये हैं कि यद्यपि मनुष्यको स्वयंके सुखकी जिज्ञासा होती है तो भी अुसकी सामान्य प्रेरणाअें बहुधा बुद्धिविरोधी और बहुत अंशोंमें दुख निर्माणका ही कारण होती हैं। अुदाहरणार्थ बर्ट्रेंड रसलने अपने विविध ग्रंथोंमें सुखी समाज निर्माण करनेकी अनेक कल्पनाओंका विवेचन

किया, परन्तु अंतमें हताश होकर अुसने ये अुद्गार प्रकट किये हैं कि 'मनुष्य स्वयं अपने विनाशकी योजना करनेवाला प्राणी है।'

सामाजिक ध्येयवादके विफलतापूर्ण अितिहासकी यह कहानी कितनी ही करुणाजनक क्यों न हो, फिर भी मानवी अंतःकरणका पूर्णताकी ओर खिंचाव मनुष्यको कभी सम्पूर्ण रूपसे निराश नहीं कर सकता और आज तकके प्रयोगवीरोंको कितनीही असफलता क्यों न प्राप्त हुअी हो, नये प्रयोगवीर नये अुत्साहसे अग्रसर हुअे विना नहीं रह सकते। अितनाही नहीं, बल्कि प्रत्येक असफलता मनुष्यके ध्येयवादको अधिकाधिक शुद्ध करती जाअेगी। सृष्टिके अितिहासमें मानव संस्कृतिके प्रयोगका आरम्भ हुअे बहुत थोडा समय हुआ है। यदि व्यापक दृष्टिसे देखा जाअे तो मानव-समाज अभी बाल्यावस्थामें ही है। अपने जीवनकी आंतरिक प्रेरणाओंका अुसे यथार्थ आकलन नहीं हुआ है। अिस कारण अुसे सुखकी अिच्छा होते हुअे भी, सुखका मार्ग स्पष्ट रूपसे नहीं दिखता और यदि अुसे दिखेभी तो वह अुसपर स्थिर रूपसे नहीं चल सकता। मानव हृदयमें पूर्णताकी जो प्रेरणा है वह अुसके दैवी अंशकी द्योतक है। परन्तु अभी अुस दैवी अंशकी अुसमें अखिल जीवनमें प्रभुता स्थापित नहीं हुअी है। जैसा कि खलील जिब्रानने अपने '*Prophet*' नामक ग्रंथमें कहा है—

> '*Much in you is still man,*
> And much in you is not yet man,
> But a shapeless pigmy that
> Walks asleep in the mist,
> Searching for its own awakening.'

मनुष्यमें अभी अमानव अंश ही बडे प्रमाणमें विद्यमान है और दीर्घ तपस्याके पश्चात ही यह अंश मानवताका स्वरूप ग्रहण कर सकेगा। रवीन्द्रनाथने कहा है, कि विधाताके हाथमें काल अनंत है। अुसे जल्दी नहीं है।

> 'प्रतीक्षा करिते जानो शतवर्ष धरे
> अेकटि पुष्पेर कलि फुटाबार तरे
> चले तव धीर आयोजन।'

विधातामें विकासकी प्रतीक्षा करनेकी शक्ति होती है। अेक पुष्पकली खिलानेके लिअे अुसकी तैयारी सैकडो वर्षोंसे मन्द गतिमें चलती है। परन्तु मनुष्यमें धैर्य नहीं होता। अुसे फलके आस्वादकी आतुरता होती है, अिसीलिअे वह अत्याचारी और अश्रद्धालु बनने लगता है। यदि ध्येयवादीको किसीका भय है तो वह स्वयं अुसीके हृदयकी अुतावलीका है। मानवी-पूर्णताका कार्य किसी अेक व्यक्तिका नहीं। वह विधाताका विश्वकार्य है। वह यथा समय सफल हुअे विना नहीं रह सकता। यदि ध्येयवादी पुरुषने अपने हृदयकी प्रेरणासे सत्यनिष्ठ रहकर अपनी शक्तिके अनुसार स्वकर्तव्य किया तो समझना चाहिये कि अुसका कार्य पूरा हो गया। तात्कालिक फलके मोहसे अुसे अपनी श्रद्धाका नाश करना अुचित नहीं। अिसी अर्थमें ही अनासक्ति-योगका अुपदेश सभी तत्वज्ञोंने किया है।

यदि न्याय तथा सुखमें तत्वतः विरोध न हो, तो आज नहीं कल, सामाजिक जीवनमें अिस सिद्धांतका सबको विश्वास अवश्य होना चाहिये। परन्तु यह विश्वास स्थापित होनेके लिअे समाजको अनेक आघात सहन करने पडेंगे। अुसके हृदयके अुन्मादी-विकारोंको विवेकांकित होनेके लिअे कदाचित अनेक आपत्तियोंसे गुजरना पडेगा। समाजके ज्ञानी व्यक्तियोंको समाज-दुःखके सम्बन्धमें कितनी ही दया क्यों न मालूम हो, फिर भी अपेक्षित समाज-व्यवस्था त्वरित मूर्तस्वरूप नहीं धारण करेगी। केवल शाब्दिक अुपदेशसे विशेष कार्य नहीं होगा, अितना ही नहीं, अपितु प्रत्यक्ष अुदाहरणसे भी शीघ्र कोअी भारी परिवर्तन होनेकी सम्भावना नहीं। फिर भी ध्येयवादी लोगोंकी कृतियों तथा अुक्तियोंसे समाजके अन्तर्मनपर सतत शुभ संस्कार होते रहते हैं और अन्तमें अुन्हींके कारण समाजका हृदय-परिवर्तन होगा। समाज सुखके लिअे समाज-शुद्धिकी आवश्यकता है, और सामाजिक शुद्धिके लिअे समाजमें मंगल-भावनाओंके सतत आवाहनकी आवश्यकता है। अिस कारण, यद्यपि 'बुडतो हे जन न देखवे डोळा, म्हणोनी कळवळा' अुत्पन्न होना आवश्यक गुण है, तो भी समाज हितके लिअे भी 'पिटून काढिनो या लोका' की वृत्ति कभी भी अुपकारक नहीं होगी।

कारण किसी भी हिंसात्मक साधनसे समाजके अन्तर्मनकी शुद्धि नहीं होती, अिसके विपरीत अहंकार और अविवेककी ही वृद्धि होती है। यह समझनेका कोअी कारण नहीं कि हिंसाका अर्थ केवल पाशवी-शक्तिका अुपयोग है। नैतिक मूल्योंकी श्रेष्ठता प्रतिपादित करनेमें यदि अवहेलना और असहिष्णुताको अंगीकार किया गया तो हिंसाका ही आश्रय लेना हुआ। अिस कारण समाज शुद्धिके प्रयत्नोंमें दंडधारी राजा, कर्मठ शास्त्रज्ञ *अथवा सुधारके शस्त्रखोर सदा विफल होते आये हैं* और अक्रोधसे क्रोधका, साधुतासे असाधुताका अथवा अहिंसासे हिंसाका प्रतिकार करनेवाले प्रेममय संतोंको ही समाजके मानसिक जीवनमें अटल पद प्राप्त हुआ है।

सामाजिक ध्येयवादके अितिहासमें यह अेक विरोधाभास नित्य देखनेमें आया है कि बुद्धिमान तथा साधनसम्पन्न वर्ग ध्येयजीवनसे धीरे-धीरे भ्रष्ट होता जाता है। अुसकी न्यायबुद्धि मलिन अथवा विकृत होने लगती है और अुसकी जीवनश्रद्धा भी लुप्त हो जाती है। परन्तु बुद्धिहीन तथा साधनहीन सामान्य जनतासे चाहे ध्येयवादका आचार संसारमें न सधे फिर भी अुसके हृदयमें ध्येयवादी पुरुषोंके विषयमें भक्ति रहती है और सामाजिक सत्ययुगकी प्रतिष्ठापनाके *सम्बन्धमें श्रद्धाका दीप कभी नहीं बुझता। यह स्पष्ट* है कि सामाजिक-न्याय-प्रस्थापनापर ही व्यावहारिक सुखका निर्माण अवलम्बित होनेके कारण सामान्य *जनताके लिअे यह श्रद्धा अपरिहार्य है।*

प्रत्यक्ष जीवनकी अर्थ-काम-प्राप्ति और परोक्ष जीवनकी मोक्ष सिद्धि अिन दोनोंका अेकमेव साधन धर्म ही है। प्रत्यक्ष और परोक्ष ये अेक ही जीवनके दो अंग हैं। ये दोनों अंग तत्त्वतः अविरोधी ही होने चाहिये। धर्मका संशोधन तथा संस्थापन करनेवाले जीवनाचार्य मोक्षके अंतरंगकी ओर स्वभावतः ही अभिमुख होनेके कारण अुनके सम्प्रदायमें धर्मसाधना निष्काम तथा निरपेक्ष जीवन-वृत्ति हो जाती है। अुसीमें अुन्हें निरतिशय आनन्दका लाभ होता है और अुनमें सहज ही यह अिच्छा अुत्पन्न होने लगती है कि यह आनन्द अपने बन्धुओंको भी अुपलब्ध कराया जाअे। सामान्य लोगोंको अपने व्यावहारिक जीवनके अर्थ-काम विषयक प्रश्नोंको हल करनेके लिअे धर्मका, न्यायका आश्रय लेना पड़ता है। अिस कारण वे व्यावहारिक साधनके रूपमें अुन जीवनाचार्योंके अुपदेशका आदर करते हैं। फिर भी सम्पूर्ण अहिंसासे जीवनके सब व्यवहार सिद्ध करके दिखानेवाला श्रेष्ठ जीवनाचार्यका अभी निर्माण होना शेष है और व्यवहारका मोक्षसे *मेल दिखलानेवाला धर्म भी अभी सिद्ध होना है। अिस* दृष्टिसे देखनेपर यह कहनेमें कोअी हानि नहीं कि सत्याग्रहका मार्ग सम्पूर्ण जीवन धर्मका अेक महान् प्रयोग है और म० गांधी अिस धर्मके पहिले आचार्य हैं। लोकनायक अणेने महात्माजीको अुपरोक्त श्लोक बतलाकर अहिंसा धर्मकी विफलता सिद्ध करनेका प्रयत्न किया था। अिसपर म० गांधीने जो अुत्तर दिया वह सच्चे ध्येयवादियों द्वारा यत्नपूर्वक हृदयमें रखा जाने योग्य है। लोग अर्थ-काम प्राप्त करनेवाले धर्मका सेवन क्यों नहीं करते? म० गांधीने व्यासके आक्रोशका यह अर्थ लिया कि व्यासके अुद्‌गारोंसे धर्मवादकी आवश्यकता ही सिद्ध होती है और समाज-कल्याणकी चिन्ता करनेवाले धर्मका ही अनुसरण किया जाना चाहिये। आदर्श समाज निर्माण करनेवाले प्रत्येक ध्येयनिष्ठ साधकको, अिसी विचारसे, अपनी श्रद्धा जीवित रखनी चाहिये तथा *अपने स्नेहमें ध्येयपूर्तिके निमित्त मरण स्वीकार करनेके* लिअे भी तैयार रहना चाहिये क्योंकि अैसा ध्येयवादी प्रयत्न बाहरसे चाहे असफल दिखे परन्तु जीवनको अंतिम सफलताकी ओर ले जानेकी शक्ति अवश्य रखता है।

(मराठीसे अनुवादक:—श्री राजेन्द्रप्रसाद भट्ट)

कहावत और न्याय

प्राध्यापक श्री कन्हैयालाल सहल अेम अे

सन १८७७ की डा० Buhler की काश्मीर रिपोर्टमें 'न्याय' शब्दका प्रयोग परिचित अुदाहरणोंसे निकाले हुअे अनुमान के अर्थमें किया गया था। कर्नल जेकबने न्याय के पर्यायके रूपमें Maxim शब्दका ग्रहण किया था किन्तु अिस पर्यायसे वे सन्तुष्ट नहीं थे। अुन्होंने तो केवल बड़े बड़े विद्वानों द्वारा न्याय के अर्थमें गृहीत Maxim शब्दको देखकर ही अिसे अपनाया था अन्यथा अुनकी मान्यता थी कि अंग्रेजी भाषामें 'न्याय' के अर्थको पूर्णतः व्यक्त करनेवाला कोअी अुपयुक्त शब्द है ही नहीं। अुन्होंने न्याय के अन्तर्गत दृष्टान्त नियम और अधिकरण तीनोंका सन्निवेश किया था। अंग्रेजीका Maxim शब्द अितना व्यापक नहीं कि वह अुक्त तीनों प्रकारके अर्थोंका वाचक बन जाअे। अिसलिअे जेकबके मतानुसार तो "न्याय" शब्दका अंग्रेजी अनुवाद न करके अंग्रेजी भाषामें भी अिसे ज्योंका त्यों ग्रहणकर लेना चाहिये। *

हिन्दी शब्द सागर"के सम्पादकोंकी दृष्टिमें न्याय वह दृष्टान्त-वाक्य है जिसका व्यवहार लोकमें कोअी प्रसंग आ पड़नेपर होता है। यह कोअी विलक्षण घटना सूचित करनेवाली अुक्ति है जो अुपस्थित बातपर घटती हो। न्याय के पर्यायके रूपमें सम्पादकोंने कहावत शब्दका भी प्रयोग किया है। अैसे न्याय या दृष्टान्त वाक्य बहुतसे प्रचलित चले आते हैं और अुनका व्यवहार प्रायः होता है।

"संस्कृतमें लौकिक न्यायके अन्तर्गत बहुसंख्यक सूत्र अुस समयका या अुसके पहलेकी लोक-विश्रुत कहावतें ही हैं। अुनमें जो युक्तिमूलक दृष्टान्त हैं वे किसी अेक समयके नहीं, भिन्न भिन्न परिस्थितियोंमें पड़कर बुद्धिमानोंको जो सच्चे अनुभव हुअे अुन्होंको अुन्होंने सूत्रबद्ध करके जनताको सौंप दिया। जनताने अुनको अुपयोगी समझकर अपना लिया। अिसी प्रकार मुक्त भोगियोंके कितने ही सच्चे हृदयोद्गार लोकोक्तियोंके रूपमें प्रचलित हो गये। +

संस्कृत-साहित्यमें सहस्रों स्थलोंपर न्याय का प्रयोग हुआ है। अिनका व्यवहार अधिकतर टीका टिप्पणी, समालोचना व्याख्या शंका समाधान आदिमें देखा जाता है। ध्यानपूर्वक मनन करनेसे यह सर्वदा स्पष्ट हो जाअेगा कि न्याय में किसी घटना, किसी कहानी अथवा किसी विशेष अर्थके बृहत् भाव-सूत्र रूपमें गुम्फित रहते हैं। देखनेमें छोटे लगें, घाव करें गम्भीर वाली अुक्ति यहां अक्षरशः चरितार्थ होती है। न्याय आकार प्रकारमें तो बहुत छोटा होता है पर भाव बहुत गंभीर रहता है। पूर्व समयमें मुद्रण-यन्त्रके अभावके कारण सूत्र पद्धति प्रचलित थी और अिसीसे लोकोक्तियां भी न्याय शब्दके नामपर सूत्र रूपमें ग्रथितकर दी गयी थीं। प्रयोगमें न्याय शब्द भी जुटा रहता है। यथा, घुणाक्षरन्याय काकतालीयन्याय पंकप्रक्षालनन्याय स्थालीपुलाकन्याय। न्याय शब्दका व्यवहार कभी अुपमा कभी नियम कभी सिद्धान्त कभी अुक्ति कभी कहानी तथा कभी विशेष कार्यके अर्थमें होते पाया गया है। प्रसंगानुसार अर्थव्यंजना होती है। प्रत्येक न्यायमें विशेष भावकी व्यंजना रहती है और स्वभावतः रूपमें अिसका प्रयोग होता है।"[1]

संस्कृतके बहुतसे निबन्धोंमें 'लोकप्रसिद्धयुक्ति' को न्यायकी संज्ञा दी गया है।[2]

---

* लौकिक न्यायाञ्जलि तृतीया भाग पृष्ठ २

+ मालवी कहावतें भाग १ का प्राक्कथन प० रामनरेश त्रिपाठी पृष्ठ २

१ संस्कृत लोकोक्ति-सुधा (श्री जगदम्बाशरण) पुस्तक परिचय (ख) और (ग) पृष्ठ

२ लोकप्रसिद्धयुक्तिन्याय (भूमिका भुवनेश लौकिक न्याय साहस्री)

लोकोक्ति और न्याय दोनों अेक ही हैं अथवा अिन दोनोंमें अन्तर है अिसपर विचार करना आवश्यक है। न्यायके स्वरूपका विवेचन करनेसे निम्नलिखित तथ्योंपर प्रकाश पड़ता है—

१ अनेक न्याय अैसे हैं जो केवल पदात्मक हैं। "मात्स्य न्याय, टिट्टिभ न्याय" आदि अुदाहरणस्वरूप रखे जा सकते हैं। विश्वमें शायद ही कोअी अैसी लोकोक्ति हो जो केवल अेक पदमें समाप्त हो जाती हो। छोटी-से-छोटी लोकोक्तिके लिअे भी कम से कम दो पद आवश्यक हैं। ट्रेंचके मतानुसार voll, toll जर्मन लोकोक्ति दुनियाकी सबसे छोटी कहावत है।

२ बहुतसे न्याय अथवा अधिकांश न्याय अैसे हैं जो द्विशब्दात्मक हैं और जिनका सम्पूर्ण वाक्यकी भाँति प्रयोग नहीं होता। अुदाहरणार्थ कुछ न्याय लीजिये— अजाकृपाणी न्याय, अन्धगज न्याय काकतालीय न्याय, कूपमण्डूक न्याय, जामातृ शुद्धि न्याय आदि। अिन सभी न्यायोंके मूलमें कोअी न कोअी कथा मिलती है जिसको जाने बिना अिन न्यायोंका स्पष्टीकरण नहीं हो सकता। बहुत सी कहावतें भी अैसी होती हैं जिनके पीछे कोअी न कोअी कथा पायी जाती है, किन्तु कहावतें सामान्यत सम्पूर्ण वाक्यकी भाँति प्रयुक्त होती हैं, दो-दो शब्दोंके पदांशकी तरह नहीं। कहावतोंके रूपमें क्रियाका कभी-कभी अभाव होनेपर भी क्रिया सदा गम्य रहती है।

३ कुछ न्याय अैसे हैं जिन्हें लोक-प्रसिद्ध अुपमाओंका नाम दिया जा सकता है। अूषरवृष्टि न्याय, करस्थामलक न्याय, चक्रभ्रमण न्याय, अरण्यरोदन न्याय, अजागलस्तन न्याय आदि अुदाहरणस्वरूप रखे जा सकते हैं। कहावतोंमें अुपमाओंके भी अुदाहरण मिलते हैं किन्तु लौकिक न्यायोंमें जिस प्रकारकी अुपमाओंका प्राचुर्य दृष्टिगत होता है।

४ अनेक न्याय अैसे भी अुपलब्ध हैं जिन्हें यदि लोकोक्ति अथवा कहावतका नाम दिया जाअे तो किसी प्रकारका अनौचित्य नहीं दिखलायी पड़ता। नीचे जो अुदाहरण दिये जा रहे हैं अुनमें लोकोक्तिके सभी लक्षण मिलते हैं—

(क) अर्के चेन्मधु विन्देत किमर्थं पर्वतं व्रजेत्। यदि समीप ही मधु मिलता हो तो पर्वतपर जानेसे क्या प्रयोजन ?

(ख) भक्षितेपि लशुने न शान्तो व्याधि। लहसुन खानेपर भी रोग शान्त न हुआ। जेकबने अिस न्यायके लिअे Maxim शब्दका प्रयोग न कर Proverb शब्दका प्रयोग किया है।

(ग) वर सांशयिकान्निष्कादसांशयिक कार्षापण। अनिश्चित निष्ककी अपेक्षा निश्चित कार्षापण श्रेष्ठ है।

(घ) वरमद्य कपोत श्वो मयूरात्। कलके मयूर (मोर) से आजका कपोत (कबूतर) अच्छा। वात्स्यायन कामसूत्रके द्वितीय अध्यायमें ग और घ सम्बन्धी अुक्तियों का प्रयोग हुआ है, जिन्हें जेकब भी proverbs कहना ही अुपयुक्त समझते हैं।

(ङ) अन्धस्यवान्धलग्नस्य विनिपात. पदे-पदे। जो अन्धेके सहारे लगा है अुसे पद-पदपर गिरना पड़ता है। अिस न्यायका प्रयोग भामतीमें हुआ है जहाँ अिसका "आभाणक" शब्द द्वारा अुल्लेख किया गया है। "तथा चाभाणक अन्धस्यवान्धलग्नस्य विनिपात पदे-पदे।"

(च) सर्व पद हस्तिपदे निमग्नम्। हाथीके पैरमें सब पैर समा जाते हैं।

(छ) शीर्षे सर्पो देशान्तरे वैद्य। सर्प सिरपर और वैद्य देशान्तरमें।

(ज) विक्रीते करिणि किमकुशे विवाद। हाथी बिक जानेपर अंकुशका विवाद कैसा ?

(झ) पुत्रलिप्सया देव भजन्त्या भर्तापि नष्ट। पुत्र प्राप्तिकी अिच्छासे देवताकी अुपासना करती हुअीका पति भी नष्ट हो गया।

(ञ) वराटकान्वेषणे प्रवृत्तश्चिन्तामणिं लब्धवान्। कौड़ीकी तलाश करते हुअे चिन्तामणि हाथ लग गयी। कबीरकी साखियोंमें अिसका निम्नलिखित रूप अुपलब्ध होता है।

"चौहटे चिन्तामणि चढ़ी, हाडी मारत हाथ।"

५ कुछ न्याय अैसे भी हैं जिनके कहावती रूप आज भी अुपलब्ध होते हैं। अुदाहरणार्थ—

(क) गोमहिषीन्याय ।

अेक राजस्थानी लोकोक्तिमें कहा गया है कि "गायकी भैंसके लागे और भैंसरी गाय के लागे ?" अर्थात् गायका भैंससे क्या सम्बन्ध और भैंसका गायसे क्या सम्बन्ध ?

(ख) तरक्षुडाकिनीन्याय । अिसी न्यायका प्रतिरूप "डाकण और जरख चडी" राजस्थानी भाषामें अुपलब्ध है।

६ जैकब द्वारा सग्रहीत और सम्पादित "लौकिक न्यायाजलि" म कहीं-कहीं न्यायके स्थानमें "निदर्शन" और "नियम" शब्दका प्रयोग हुआ है। यथा—

(क) तम प्रकाशनिदर्शनम् अर्थात् अधकार और प्रकाशकी युगपत् स्थितिका दृष्टान्त ।

(ख) तैलकलुषितशालिबीजादकुरानुदयनियम ॥ अर्थात् तैलसे कुलषित शालि बीजके अकुरित न होनेका नियम ।

७ कहीं-कहीं प्रश्नोत्तरके रूपमें भी न्यायोंके अुदाहरण मिलते हैं। जैसे—

(प्रश्न) जागर्ति लोको ज्वलति प्रदीप
सखीजन पश्यति कौतुकं मे ।
क्षपणकमात्रं कुरु कान्त धैर्यं
बुभुक्षित कि द्विकरेण भुक्ते ?

(अुत्तर) जागर्तु लोको ज्वलतु प्रदीप
सखीजन पश्यतु कौतुकन्ते ।
क्षपणकमात्र न करोमि धैर्यं
बुभुक्षित न प्रतिभाति किंचित् ॥

लौकिकन्यायाजलि प्रथमो भाग ।
वही पृष्ठ ६६
भुवनेशलौकिक न्याय साहस्री पृष्ठ १८५।
वही पृष्ठ २३१

भुवनेश लौकिकन्यायसाहस्रीके सपादकने "बुभुक्षित कि द्विकरेण भुक्ते" और "बुभुक्षित न प्रतिभाति किंचित्"की न्यायमें गणना की है।

८ न्यायोंमें अेक आभाणक-न्यायकी गणना की गयी है। 'वराटकान्वेषणे प्रवृत्तश्चिन्तामणि लब्धवान्' अिसे आभाणक-न्यायके अन्तर्गत रखा गया है। आनद घनकृत कुथुनाथ-स्तवन भी अिस सम्बन्धमें द्रष्टव्य है, जहाँ कहा गया है—

"रजनी वासर वसती अुजड़, गयण पयालो जाय ।
साँप खाय नै मुखडूं थोथो, अे अूखाणो न्याय ॥"

साँप दूसरेको काटता है किन्तु अिससे साँपका पेट नहीं भरता। अिसे "अूखाणो-न्याय" या "आभाणक-न्याय" कहा गया है।

९ कुछ कवियोंकी अुक्तियाँ भी अैसी हैं, जिन्हें "न्याय" के अन्तर्गत कर लिया गया है। अुदाहरणार्थ-

(क) छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति (विष्णु शर्मा)

(ख) सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृता (श्रीमद्भगवद्गीता)

"न्याय" के अुक्त स्वरूपोंको देखनेसे स्पष्ट है कि सस्कृत साहित्यमें "न्याय" शब्द अत्यन्त व्यापक है। अिसके अंतर्गत लोक प्रचलित पदोंको, प्रसिद्ध अुपमाओं विश्रुत दृष्टान्तों, सूक्तियों तथा आभाणकों अथवा लोकोक्तियों सभीको स्थान मिल गया है। बहुतसे न्याय अैसे हैं जिन्हें "कहावत"की सज्ञा दी जा सकती है। अनेक न्याय अैसे हैं जिन्हें पारिभाषिक दृष्टिसे "लोकोक्ति" तो नहीं कहा जा सकता किन्तु जो सूत्र शैलीमें ग्रथित अैसे पद-समुच्चय हैं जो अपनेमें गभीर अर्थ छिपाये हुअे हैं। दार्शनिक ग्रन्थोंके भाष्योंमें अिस प्रकारके न्यायोंका प्रचुर प्रयोग हुआ है। "योगाद्रूढिर्बलीयसी" जैसे अनेक शास्त्रीय न्याय भी हैं जो कहावतोंकी अपेक्षा सिद्धान्त, नियम आदिके अधिक सन्निकट हैं।

यही कारण है कि कहावत और न्यायके आपेक्षिक विवेचनमें शास्त्रीय न्यायोंको जानबूझकर छोड़ दिया गया है।

कलाचार्य श्री पंधे गुरुजी

: श्री रामेश्वरदयाल दुबे, अेम. अे., साहित्यरत्न :

"यदि कोअी फ्रांस-निवासी 'लुव' के चित्रालयकी बात नहीं जानता, या कोअी अँग्रेज लंडनकी नेशनल गेलरीसे अपरिचित होता है तो वह अपने समाजमें संस्कारहीन गिना जाता है। परन्तु अिसे भारतका दुर्भाग्य ही कहना चाहिये कि भारतवासी कला, कलाकार और कलाकृतियोंकी चर्चा करना केवल निठल्ले बेकार और आरामतलब मनुष्योंका ही काम समझ बैठे हैं।"

गुजरातके प्रसिद्ध कलाकार श्री रविशंकर रावलजीके अिन शब्दोंमें कलाके प्रति हमारी अुपेक्षाकी करुण कहानी कही गयी है।

किन्तु यह आजकी कहानी है, अतीतकी नहीं। कला और कलाके प्रति प्रेमकी दृष्टिसे हमारा अतीत कम गौरवशाली न था। भारतीय कलाकारोंकी वे विभिन्न कृतियाँ, जिनमें अुनके हृदयका रंग छलका था, आज भी विद्यमान हैं, और यदि हम चाहें तो अुनका रसास्वादनकर आत्मविभोर हो सकते हैं। अुन महान कलाकार कवियोंके काव्य ग्रंथ, चतुर चित्रकारोंके रुचिर चित्र, पत्थरोंमें मृदुताको अंकित करनेवाले मूर्तिकारोंकी मूर्तियाँ, अींट-पत्थरके सहारे सौन्दर्यकी सृष्टि करनेवाले शिल्पियोंके शिल्पकौशल्य आज भी हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। किन्तु अुन सबको हमारी ममता नहीं, अुपेक्षा मिल रही है। काश, हम सब अिनका सही-सही मूल्यांकन कर पाते, अुनके प्रति आदर और श्रद्धा व्यक्त करना सीख पाते!

अतीतको हम थोडी देरके लिअे छोड भी दें, तो भी वर्तमानके कुछ कलाकार अैसे महान् हैं जो किसी कोनेमें पडे रहकर अपनी अनवरत साधनाके द्वारा कलाकी भव्य सेवा करते जा रहे हैं। अिस अर्थ-प्रधान युगमें भी, अिन कलाकारोंने अपना सम्पूर्ण जीवन अेकमात्र कलाकी अुपासनामें अर्पण कर रखा है। वर्तमान युगके अैसे कलाकारोंमेंसे कुछका परिचय जनताको प्राप्त हो चुका है, किन्तु अभी अनेक अैसे व्यक्ति हैं जिन और जिनकी कला-साधनाका ज्ञान बहुत ही थोडे व्यक्तियोंको है। तिलक राष्ट्रीय विद्यालय खामगांव (जिला बुलढाना मध्यप्रदेश) के आचार्य मौन साधक, कलाकार श्री पंधेगुरुजी अुनमेंसे अेक हैं। नीचेकी पंक्तियोंमें अुनका संक्षिप्त परिचय देनेका प्रयत्न किया जा रहा है।



कलाचार्य श्री पंधे गुरुजी

कलाकार पंधेगुरुजीका पूरा नाम श्री मुकुन्द श्रीकृष्ण पंधे है। आपका जन्म १२ फरवरी १९०३ को नरसिंहपुर जिला होशंगाबादमें अेक मध्यम-वर्गीय ब्राह्मण परिवारमें हुआ था। पंधेगुरुजीके पिता श्रीकृष्ण अप्पाजी पंधे बडे ही अुदार तथा धर्मभीरु व्यक्ति थे। सन्त महात्माओंके प्रति वे विशेष श्रद्धा-भाव रखते थे, और हृदयसे अुनका स्वागत किया करते थे।

पंधेजीका परिवार सुख-समृद्धिसे सम्पन्न था। बाल-बच्चोंसे भरा हुआ घर अभावोंसे वंचित था। अैसे ही सुन्दर तथा धार्मिक वातावरणमें कलाकार पंधे गुरुजीका शैशवकाल बीता।

पन्धेगुरुजीकी प्राथमिक शिक्षा नरसिंहपुर तथा होशंगाबादकी शालाओंमें हुअी। किन्तु यदि सच कहा जाये तो अुनकी सच्ची शिक्षाका प्रारम्भ प्राकृतिक सौन्दर्यसे सम्पन्न नर्मदा नदीके अुस तटपर हुआ, जहां की हरी-हरी झाड़ियाँ झूम झूमकर हृदयको हरा कर देतीं और नर्मदा नदीकी लोल लहरें जीवनको सरस बना देती हैं। प्रकृति प्रांगणकी यह रंगशाला बालक पन्धेको अितनी आकर्षक प्रतीत होती कि वह शाला न जाकर नर्मदा नदीके रेतीले तटपर कछुअे और मछलियोंके चित्र बनाना अधिक पसन्द करता था।

प्रकृति सौन्दर्यके प्रति अिस आकर्षणका अेक स्थायी प्रभाव श्री पन्धेगुरुजीके जीवनपर पड़ा। शहरकी भीड़-भाड़से अुन्हें अरुचि है और अपने हाथों लगाये पेड़-पौधोंके बीच अपने कला भवनमें रहकर कलाकी साधनामें अुन्हें विशेष आनन्द मिलता है।

किसे ज्ञात था कि नर्मदा नदीके तटपर चिकनी मिट्टीसे कछुअे और मछलियाँ बनानेवाली छोटी अुंगलियाँ ही आगे चलकर मिट्टीमें सौंदर्य भरकर कलाकी प्राण-प्रतिष्ठा किया करेंगी? खामगांवके कला-भवनमें निर्मित होनेवाली सुन्दरतम कला-कृतियोंका कारणभूत नर्मदातटके अुन बाल-खिलौनोंमें मिलेगा, जो टूट-फूटकर भी अेक कलाकारका निर्माण कर रहे थे।

अपनी प्रायमरी शिक्षा समाप्त करनेके पश्चात अपने पिताजीके साथ बालक पन्धेको नागपुर आना पड़ा। अिसलिअे आगेकी पढ़ाअीका प्रबन्ध नागपुरमें ही हुआ। सन् १९१९ में आपने मैट्रिक पास की। कॉलेजमें अिन्टरका दूसरा वर्ष चल रहा था। राष्ट्र-पिता पूज्य महात्माजीका असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। अुथल-पुथलके अुस अैतिहासिक दिनोंकी आज कल्पना भी नहीं की जा सकती। प्रत्येक युवकके हृदयमें अेक द्वंद्व अुठ खड़ा हुआ था। वह क्या करे? अपने स्वार्थोंकी पूजा-साधनामें लगा रहे या देशकी बलिवेदीपर प्राण-बलिदान करे? श्री पन्धे गुरुजीके मनमें भी मंथन चलता रहा। अन्तमें, जैसा अेक सहृदय, भावी कला-कारके लिअे स्वाभाविक था, श्री पन्धेजीने देश-सेवाका पथ अपनाया। वे कॉलेजको ही नहीं, घर-परिवारको भी अन्तिम नमस्कार करके असहयोग आन्दोलनमें शामिल हो गये।

श्री पन्धे गुरुजीके जीवनकी यह पहली मोड़ थी। अिस नयी दिशाकी ओर जानेके लिअे अुन्हें दो बातोंसे प्रेरणा मिली। सन् १९२० के नागपुर कांग्रेस अधि-वेशनमें स्वयंसेवक बनकर आपने काम किया था। अुसी समय लाला लाजपतरायकी सेवा-सत्संगका लाभ आपको प्राप्त हुआ। लालाजीके जीवनसे आप विशेष प्रभावित हुअे। अिसलिअे जब आप गांधीजीके असहयोग आन्दोलनमें कूदे तब आजन्म अविवाहित रहकर देश-सेवा तथा ग्रामोद्धारकी दृढ़ प्रतिज्ञाके साथ ही कूदे थे। और आज भी हम देखते हैं कि श्री पन्धेजी अुसी तन्मयता, अुसी निष्ठा और अुसी श्रद्धाके साथ दोनों कार्योंमें लगे हुअे हैं।

युवावस्थापर भावनाओंका राज्य रहता है। पंधेजीको धार्मिक वातावरणका लाभ मिला ही था, मनमें यह विचार आया कि अीश्वरकी कृपा प्रसादके बिना लोक सेवा या देश-कार्य नहीं हो सकता। अुसी अुद्देश्यसे आप रामकृष्ण मिशनमें सम्मिलित हुअे और अीश्वर-भक्तिके साथ जन-सेवाका कार्य करने लगे। धीरे धीरे वैराग्यकी भावना हृदयमें स्थान पाती गयी। सन्यासी बनकर जीवन बितानेका निश्चय करनेका विचार हुआ। नागपुरके निकट रामटेक तीर्थमें रहकर कुछ समयके लिअे आपने भगवा वस्त्र भी धारण किया था, किन्तु मनमें अन्य विचारोंकी भी आँधियाँ चल ही रही थीं। स्वतन्त्रता संग्रामका अेक सक्रिय सिपाही बनना अथवा केवल कल्पोंशमय बनकर जीवन बिताना? अन्तमें देश भक्तिके प्रति आकर्षणकी विजय हुअी। फलतः मुळशी सत्याग्रहने अपने मान लिया।

अुन दिनों सत्याग्रही और जेलका घनिष्ठ सम्बन्ध था। यरवडा जेलमें आपको बहुत समय तक रहना पड़ा। वहीं आप सेनापति बापट, शंकरराव देव और महात्मा गांधीके निकट सम्पर्कमें आये। सेनापति बापटके ज्वलन्त देश-प्रेम, अटूट सेवा भाव तथा असीम त्यागने

आपको विचार स्पष्ट प्रभावित किया। पूज्य बापूके प्रवचनोंका लाभ तो नित्य मिलता ही था। उनके शुभ त्यागमय तपस्यामय वातावरणमें बापूके सान्निध्यमें जीवनकी सादगी स्वयं चलानेका आपको स्वर्ण अवसर मिला। स्वदेश समर्पणकी भावना यहां पल्लवित पुष्पित हुई।

सन १९२३ में आप यरवदा जेलसे मुक्त हुए। अब सत्याग्रह आश्रमके आधारपर आपने विदेश भ्रमणका विचार किया कुछ प्रयत्न भी किया किन्तु जिस मर्म पर आप सफल न हो सके। जिसपर बचपनसे ही कलाके प्रति जो सहज आकर्षण था वह अपनी ओर खींच रहा था। बम्बईके स्कूल आफ आर्टसमें प्रवेश पानेका प्रयत्न किया किन्तु यहाँ भी आपको सफलता न मिली।

बम्बईके स्कूल आफ आर्टके प्राङ्गणमें घटनेवाली घटना साधारण न थी। पं. जं. गुरुजी जैसे सत्य कला प्रेमी नवयुवक बड़ी श्रद्धाके साथ जब स्कूलके प्रिंसिपलके पास प्रवेश पानेकी जिज्ञासा गये थे। किन्तु उनकी वेश भूषाको देखकर ही गोरा प्रिंसिपाल भड़क उठा। यथार्थ पं० जी खादीधारी थे।

स्वाभिमान भारतीय होनेके कारण श्री पं० जी का उत्तर अंग्रेज प्रिंसिपालसे मिला वह इस प्रकार था—

You political lunatic ! get out of my Art school otherwise I shall call my chaparasi to drive you out

स्वतंत्र भारतके नव नागरिक कामनाकी शुभ डिग्रीधारी कल्पना भी न कर सकेंगे जो उन दिनों हमारे देशके घर घरमें व्यक्तिगत जिन अनुभवकी बात थी। किन्तु यह भी कम गौरवकी बात न थी कि उन दिनों देशका नव युवक समाज इस दास्य भावनाके विरुद्ध एक तीव्र विद्रोहकी भाव लेकर उठ खड़ा हुआ था और उसीका यह शुभ परिणाम है कि आज हम मुक्त गगनके तले स्वतंत्र वातावरणमें सांस ले रहे हैं—हम स्वतन्त्र हैं।

श्री पन्तजीने बम्बईके उस कला भवनमें फिर पैर तक न रखनेका निश्चय किया। आप मध्य प्रान्त लौट आये। उन दिनों नागपुरमें झंडा-सत्याग्रह चल रहा था। श्री पं जीने उसमें भाग लिया और फल स्वरूप फिर उन्हें जेल जाना पड़ा। स्वातंत्र्य संग्रामके एक निष्ठावान सिपाही होनेके कारण आन्दोलनोंमें सक्रिय भाग लेना और जेल जाना ही प्रायः उन दिनों आपका कार्यक्रम रहा करता था। किन्तु इधर आपकी कला पिपासा अनन्त हो बनी रही।

सन १९२४ में कुछ मित्रोंके आग्रहसे आपने सामगांवके तिलक राष्ट्रीय विद्यालयमें काम करनेका निश्चय किया। उन दिनोंके कष्टमय जीवनके पश्चात् एक स्थिर जीवनका यहीं प्रारम्भ हुआ। श्री पन्तजीने अनुभव किया कि वे यहीं इस प्रकारका एकान्त वातावरण प्राप्त कर सकेंगे जिसकी आवश्यकता कला साधनाके लिये हुआ करती है।

यह कहना ठीक ही होगा कि श्री पथे गुरुजीकी कला साधनाका वास्तविक प्रारम्भ सामगांवके राष्ट्रीय विद्यालयमें ही हुआ। और यही वह विद्यालय है जिसमें गुरुजीने अपने स्वप्नोंको साकार रूप देनेका प्रयत्न किया। श्री पन्त गुरुजीने अपनेको इस राष्ट्रीय विद्यालयमें इस तरह खपा लिया कि आज अनेक और उनके विद्यालयमें विलग नहीं रह गया है।

अपनी साधनाके प्रारम्भ कालमें श्री पं जं गुरुजीने भारतके प्रसिद्ध प्रसिद्ध कलाकारोंसे परिचय प्राप्त किया तथा उनकी कला पद्धतियोंका अध्ययन किया। अध्ययन और आत्म प्रेरणाके बलपर कलाके विविध रूपोंकी उपासना चलती रही।

सन १९३० ३२ के आन्दोलनमें अपनी देशभक्तिके फलस्वरूप आपको फिर जेल जाना पड़ा। वहाँसे मुक्त होनेपर आपने दक्षिण प्रान्त तथा श्री लंकाकी कला यात्रा की। द्राविड शिल्प कलासे आप विशेष प्रभावित हुए और वहांकी मूर्तियोंका आपने अच्छा अध्ययन किया। सामगांवके कला भवनमें आपके द्वारा निर्मित नटराजकी शिल्प और सभ्य मूर्ति दर्शक भाव विभोर बनाये बिना नहीं छोड़ती।

अजन्ता और एलोराके कला मन्दिरोंका तो आपने बड़ी श्रद्धासे अध्ययन किया है। आपने उत्तर भारतमें भी घूम घूमकर विभिन्न स्थानोंकी कला कृतियोंकी दशा

है। हिमालय-यात्रामें आप शुभ प्रकृति देवीके निकट सम्पर्कमें आये जो कलाकारोंको नव-स्फूर्ति और नव-रचनाकी मजुल प्रेरणा दिया करती है।

वर्तमान भारतीय कलाकारोंमें आप सबसे अधिक शान्तिनिकेतन-निवासी श्री नन्दलाल बोससे प्रभावित हुओ। श्री पन्धेजीको अुनसे कला सम्बन्धी अेक विशेष दृष्टि प्राप्त हुआी है।

कांग्रेस अधिवेशनोंके साथ होनेवाली अनेक प्रदर्शनियोंमें आपने काम किया है। अिन्हीं मौकोंपर आप कला विषयपर बापूके निकट सम्पर्कमें आये और अुनकी प्रेरणासे ग्रामीण कलाओंके पुनरुद्धारकी ओर आपका ध्यान गया। अिस दिशामें आज तक आपने स्पृहणीय प्रयत्न किया है। राष्ट्रीय क्षेत्रमें आपकी कलाका विशेष आदर है। हैदराबादमें हुओ कांग्रेस—अधिवेशनके अवसरपर आपहीने प्रदर्शिनी तथा पडाल आदिके द्वारोंको अपनी कला-सृष्टिसे सुन्दर रूप दिया था, जिसकी भूरि-भूरि प्रशंसा सभीने की थी।

सामगांवका तिलक राष्ट्रीय विद्यालय, जिसे अेक 'कलाधाम'की सज्ञा दी जा सकती है, श्री पन्धेगुरुजीकी कल्पनाओंका मूर्त रूप है। दिन प्रतिदिन अुसे आकर्षक बनानेका अुनका प्रयत्न जारी रहता है। अिस विद्यालयके प्रति अुनकी ममता भी थोडी नहीं है, किन्तु यह ममता अुनके कर्तव्य-मार्गमें बाधा नहीं बना करती। व्यापक मानव-जीवनकी ओर दृष्टि रखने और जननी जन्म भूमिके प्रति अगाध प्रेमके कारण सन ४२के आन्दोलनमें आप चौथी बार जेल गये। अिस बार जबलपुर जेलमें सेठ गोविन्ददास, ब्यौहार राजेन्द्रसिंह, लक्ष्मणसिंह चौहान आदि देशभक्त साहित्यकारोंके सम्पर्कमें आये। श्री पन्धेगुरुजी जेलमें रहे अथवा जेलके बाहर, कला सम्बन्धी अुनका अध्ययन और मनन सदैव चलता रहा। 'अेक भारतीय आत्मा' श्री पडित माखनलालजी चतुर्वेदीके कलाविषयक विचारोंके जाननेका शुभ अवसर सामगांवके विद्यालयमें ही आपको मिला, जहाँ वे अतिथि होकर अनेक दिन रहे। अमरावती निवासी डाक्टर पटवर्धनजीकी सक्रिय सहानुभूति यदि आपको न मिली होती, तो आपकी कलाकृतियाँ समाजके सामने न आयी होतीं। डाक्टर साहबके द्वारा ही नेताजी सुभाषचद्र बोसका आशीर्वाद आपकी कला-साधनाको प्राप्त हुआ था।

श्री पन्धे गुरुजीकी जीवन-प्रवृत्ति राजनीतिकी ओर नहीं है। फिर भी, जब तक देश पराधीन था, राजनैतिक सग्राम जीवन कार्यका अेक अग बन जाना अनिवार्य था। प्राणवान कला-प्रधानक अिन सघर्षोंसे भागकर किसी अेकान्त कोनेमें बैठकर अपनी कला-निर्मिति कैसे कर सकता था?

किसीने ठीकही कहा है कि "कलाकी प्रेरणाका श्रोत जीवनके सघर्षमें है। संघर्षमें सत्, शिव और सुन्दरको ढूंढकर अुसे शब्द, स्वरनाद, वर्ण-छटा आकार रूपमें प्रकट करना कलाकारका काम है। वह दुनियाके प्रमुख शान्ति दूतोंमेंसे अेक है। "Composer, Sculptor, painter poet, prothet—these are the peace makers of the World' अिनके हाथोंसे जन्म पायी हुआी कला, अिनके हृदयमें भरी हुआी अपार शान्ति प्रेमकी धारा बहाती है, जो द्वेष, मत्सर, क्रूरतासे जली-भुंजी मानवताकी भूमिका सिचनकर अुसे हरी-भरी करती है।

मनुष्यके जीवनमें सस्कारोंका अेक महत्वपूर्ण स्थान है। श्री पन्धे गुरुजीको अपने प्रारम्भिक जीवनमें जो सात्विक तथा धार्मिक वातावरण मिला, अुसने आपके जीवनपर गहरी छाप डाली। कला विषयक आपके विचार अुसी सात्विक प्रभावकी छायामें विकसित हुअे हैं।

कलाके सम्बन्धमें आपने जो अपने स्पष्ट विचार अपने अेक पत्रमें व्यक्त किये हैं, अुनको यहाँ अुद्धृत करनेका लोभ सवरण नहीं कर पा रहा हूँ।

"कलाको मैं सम्प्रदायकी चीज नहीं मानता। वह निर्मल शुद्ध जलके समान पवित्र है। धर्म, पथ, सम्प्रदायकी अनुयायी कला अपना सत् स्वरूप प्रकट नहीं कर सकती। कला और कलाकारके लिअे देश, धर्मकी सीमा अुचित नहीं।

कला राष्ट्रकी अक अमूल्य निधि है। समाज और राष्ट्रका हृदय कलाद्वारा पहचाना जाता है। अिसलिअ कलाकारको अिस अमूल्य राष्ट्रनिधिको भ्रष्ट होने नहीं देना चाहिये। व्यक्ति समाज राष्ट्र—अिनका सम्बन्ध कलाद्वारा जोडा जाता है। अिसलिअ कला और राष्ट्र अभिन्न है।

अपनी कला-दृष्टिके सम्बन्धमें आगे आपने लिखा है—

सौभाग्यवश मेरी जीवन ध्येय दृष्टि सात्त्विक आनन्द तथा कला-साधना देनेवाले महान पुरुषोंके प्रत्यक्ष सान्निध्यमें प्राप्त हुआी है। पूज्य पिताजीकी दार्शनिक प्रवृत्तिका प्रभाव भी पडा ही है।

अक बार अिन पंक्तियोंका लेखक तिलक राष्ट्रीय विद्यालयमें ही बैठा श्री गुरुजीसे कला चर्चा कर रहा था। कला सम्बन्धी प्रारम्भिक प्रेरणाओंकी बात करते हुअे अुन्होंने बताया कि— मेरी माताजी कला शब्दको न जानती होंगी किन्तु वे कलाकी आत्माको पहचानती थीं। अक दिन मैं नहाकर घर पहुंचा। भूख लग रही थी। अिसलिअ जल्दीमें अपनी गीली धोती आंगनके तारपर योंही बडा तिरछे फला दी। रसोअी घरमें बैठी माँने यह देख लिया। वे वहांसे अुठकर आयीं और बडे प्रेमसे मुझे बतलाया कि धोती अिस प्रकार तिरछी बनी नहीं डाली जाती है। फिर अुन्होंने धोतीकी किनारीसे किनारीको मिलाकर बराबर किया और मुझसे पूछा —अब अच्छी लगती है या पहले अच्छी लगती थी?

कलाकी शिक्षा मेरी असी दिन प्रारम्भ हुअी थी।

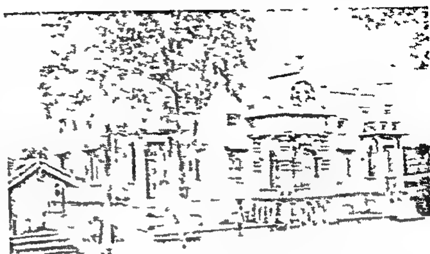
श्री पंथ गुरुजी बहुमुखी प्रतिभाके कलाकार हैं। शिल्प मूर्ति तथा शिल्पकलाकी ओर आपकी विशेष अभिरुचि है। चित्रकलाके प्रति भी आप रुचि रखते हैं विशेषरूपसे आप अजन्ता पद्धतिकी कलाके अुपासक हैं। चित्रकलाके जितने प्रकार हैं सभीमें आपने कौशल प्राप्त किया है। संगीत (गीत वाद्य नृत्य) अक प्रकारसे आपके जीवनका मानसिक सात्त्विक दैनिक आहार बन गया है। साहित्यके भी आप प्रेमी हैं। मराठी साहित्यके आप ज्ञाता है ही राष्ट्रभाषा हिन्दीका अध्ययन भी आपने बडी श्रद्धासे किया है। राष्ट्रभाषाके प्रचार कार्यमें आप अपना सक्रिय सहयोग दिया करते हैं।

तिलक राष्ट्रीय विद्यालयको कलाधाम की संज्ञा दी जा चुकी है किन्तु वास्तवमें यह अक विद्यालय है और असा विद्यालय है जहां सच्चरित्र राष्ट्रीय वृत्तिके भावी नागरिक तैयार किये जाते हैं। श्री पंथगुरुजी ही अिस विद्यालयके प्रधान आचार्य भी हैं। अुन्हींकी देख रेखमें बालकोंका शिक्षण होता है।

काँग्रेसके राष्ट्रीय शिक्षा सम्बन्धी प्रस्तावके आधारपर तिलक राष्ट्रीय विद्यालय खामगांवकी स्थापना १९२१ में हुअी थी। राष्ट्रीय शिक्षाका आदर्श रखते हुअे गत ३० वर्षमें यह संस्था राष्ट्र निर्माणका स्तुत्य कार्य करती आ रही है। विभिन्न राष्ट्रीय आन्दोलनोंमें अिस संस्थाके विद्यार्थियों और शिक्षकोंने भाग लिया था। जाति पाँति-पंथ रहित प्रखर राष्ट्रीयता तथा प्रजातन्त्रकी शिक्षा देकर स्वावलम्बी नीतिमान राष्ट्र सेवक नागरिक निर्माण करना अिस संस्थाका पावन अुद्देश्य है।

विद्यालयको देशके सभी नेताओंने भेंट देकर गौरव तथा आशीर्वाद दिया है। अिस संस्थासे पूज्य महात्मा गांधीका निकट सम्बन्ध रहा है। विद्यालयको प्रान्तीय सरकारका भी सक्रिय सहयोग प्राप्त है।

अिसी विद्यालयके प्रांगणमें श्री पंथ गुरुजीका वह भव्य कलाभवन स्थित है जहां अक मौन साधकके रूपमें कलाके विविध रूपोंकी अुपासना वे गत ३० वर्षसे कर रहे हैं। अिस कला भवनकी स्थापत्य कला बडी ही आकर्षक और प्रभाव डालनेवाली है। स्थापत्य सम्बन्धी भारतीय विभिन्न शैलियोंका बडा ही मनमोहक समन्वय अिस भवनमें प्रस्तुत किया गया है। कला भवनके अूपरी भागमें जो अक विशाल हाल है संगीत नृत्य वाद्य नाटकके लिअ अुपयोगमें आता है और अुसके नीचेके भागमें जो अक प्रकारसे गर्भगृहसा है चित्रकला तथा मूर्तिकलाकी प्राण प्रतिष्ठा होती है।



अिस भवनमें श्री पद्म गुरुदेवकी तथा अुनका रूप त्वमें अुनके शिष्यों द्वारा तैयार की हुअी अनेक नाना पूर्ण मूर्तियां तथा चित्र सुशोभित हैं। अिन चित्रोंमें 'ज्ञान और शक्ति' 'मुगना' 'काम-विजय' 'दधीचिका अस्थिदान' 'आमा और ईमान', 'बापूकी रक्तांजलि' आदि बहुत ही भावपूर्ण सुन्दर चित्र हैं।

'ज्ञान और शक्ति' चित्रमें शक्तिका प्रतीक— सुगठित शरीरवाला अेक पुरुष पीछे चल रहा है अुसकी आंखोंपर पट्टी बंधी है—यह सूचित करनेके लिये कि शक्ति (पशुबल) अन्धी होती है। शक्तिका हाथ पकड़े हुअे ज्ञानका प्रतीक—अेक सुन्दर रमणी आगे-आगे चलकर मार्गदर्शन कर रही है। अुसके दाहिने हाथमें दीपक है, जिससे किरणमाला निकलकर पथ-आलोकित कर रही है।

'मुगना' में श्रद्धा और करुणा, 'दधीचिका अस्थि-दान' में त्यागका भाव साकार हो अुठा है। 'बापूकी रक्तांजलि' तो हृदयको हिला देनेवाला चित्र है। बापू बड़ी ही भावभरी गम्भीर मुद्रामें बैठे हैं। अुनकी छातीके तीन स्थानोंसे, जहां गोली लगी था, रक्तकी बूंदें गिर रही हैं जो बापूके दोनों हाथोंकी अंजलिमें भर रही हैं। अुस अंजलिसे अुमड़कर रक्त छलकता हुअे विश्वपर गिर रहा है। विश्वका अर्ध भूभागमें अंकित किया गया है, जिसमें हिंसाकी ज्वालायें निकल रही हैं। बापूका रक्तदान विश्वकी अिस हिंसा ज्वालाको शान्त करनेका प्रयत्न कर रहा है।

कला-भवन खानगाव

चित्रोंके अलावा अनेक भावनोंकी मूर्तियां अिस कला-भवनमें विद्यमान हैं। अेक तरफ दीवारमें 'नट-राजका ताण्डव-नृत्य' बहुत ही भावपूर्ण कलाकृति है।

अिसी प्रकार 'किसान परिवार' अत्यंत पूर्ण सुन्दर कृति है। अिस कलाभवनमें 'किसान परिवार' की छोटी मूर्ति है। अेक बड़ी मूर्ति नागपुरके नगरभवन (म्यूनि-सपल) मुख्य द्वारके ठीक सामने लगी हुअी है। नगर-भवनमें प्रवेश करते समय दर्शक अिस मूर्तिके अपूर्व सौन्दर्यको देखकर चित्रलिखित-सा खड़ा रह जाता है। पार्श्व मूर्तिमें त्रय खड़े हैं। किसान अपने अेक हाथमें कुदाली लिये है और दूसरे हाथकी अुंगलीको पकड़ अुसका छोटा बच्चा खड़ा है। किसानके पैरके पास बकरी और बच्चेके पास कुत्ता खड़ा है। किसानके पीछे सिरपर टोकरी और गोदमें बच्चा लिये किसानकी स्त्री खड़ी है। अुसके पीछे किसानकी वृद्ध मां खड़ी है—झुकी कमर, सिरपर अंधियारी, हाथमें छोटी टोकरी। वहीं पास ही किसानकी लड़की खड़ी है जिसके सिरपर थाल है। पार्श्व मूर्तिमें कृषककी अेक भावना दिखती देती है जिसके फलस्वरूप अेक सबको अुत्साह रहा है।

विमान-परिवारका यह कितना सर्वांग-सम्पूर्ण सुन्दर चित्र है। कुशल कलाकारने बड़ी ही तन्मयतासे इसे बनाया है। इसके पात्रोंकी मुखमुद्रासे उनका स्वाभाविक भाव प्रकट हो रहा है। जिस समय पात्रोंकी यह रचना नागपुर महोत्सवमें रखनेका अवसर मिला तो मैंने उनसे अनुरोध किया कि वे इस प्रकार मूर्तिको ध्यानसे रखना न भूलें।

विविध नाट्योंके चित्रोंसे भवनमें और भी अनेक सुन्दर मूर्तियाँ रखी हुई हैं जिनमें 'रामायणका अवतार' तथा विशाल रथ आदि चित्र सुन्दर बनाये हैं।

श्री पद्म गुरुजी द्वारा निर्मित अनेक सुन्दर मूर्तियाँ आज विभिन्न स्थानोंमें लोगोंकी श्रद्धाको स्वीकार कर रही हैं। अमरावतीके नाना हॉलमें स्वामी विवेकानन्दकी मूर्ति, वहीं न्यायालयमें भारतमाताकी मूर्ति तथा विद्यामन्दिरमें गौतम बुद्धकी मूर्ति प्रस्थापित है। नागपुर (महल)में अग्रवालोंकी विशाल मूर्ति आप ही के द्वारा बनायी हुई है। हरिपुरा काँग्रेसमें स्थापित श्री विट्ठलभाईजीकी मूर्तिके निर्माता भी श्री पद्म गुरुजी ही थे।

कलाकी अनवरत साधनामें रत श्री पद्म गुरुजीके द्वारा सुन्दर कलाकृतियाँ तयार होती रही हैं और होती रहेंगी। चित्र और मूर्तियोंके बनानेमें जब गुरुजी तल्लीन होते हैं तब उनकी तन्मयता देखते ही बनती है। जब कलाकृति बन तयार हो जाती है तब वह जिस आनन्दकी अनुभूति करते हैं उसे शब्दोंमें व्यक्त नहीं किया जा सकता। उस अवसरपर उनकी आँखोंमें एक अपूर्व चमक और प्रतिभाके दर्शन सभी कर सकते हैं।

अपनी धुनके मौन कलाकार

श्री पद्म गुरुजी विज्ञापनसे दूर रहकर कलाकी मौन साधना करनेवाले शान्त स्वभावके निरहंकार पुरुष हैं। यही कारण है कि आपकी कलाको विज्ञापनका प्रकाश नहीं मिला है।

श्री गुरुजीका स्वभाव जितना मधुर और सौम्य है कि उनके निकट बैठनेपर सात्त्विक प्रभावकी अनुभूति स्वयं होती है। सच अर्थोंमें वे साधु पुरुष हैं। कलाके इस मौन साधकसे परिचय प्राप्त करना और उनके कलामन्दिरका दर्शन करना जीवनका एक पुण्य-लाभ समझना चाहिये।

अखॉमिया रामायण

: प्रो॰ रंजन, अेम. अे. :

'राष्ट्रभारती'के माध्यमसे दक्षिणका श्रेष्ठ साहित्य हिन्दी पाठकोंके सम्मुख नियमित रूपसे आने लगा है। प्रत्येक अंकमें तमिल अथवा तेलुगुके ललित-साहित्यको पढ़नेका सौभाग्य पाठकोंको मिलता रहता है। और अिस प्रकार दक्षिणी-साहित्य (तमिल, तेलुगु, मल्यालम और कन्नड़)के अनेक अमूल्य ग्रंथ हिन्दीके माध्यमसे देशके अुत्तरी कोनोंतक पहुँच रहे हैं। प्रान्तीय-साहित्यकी अुच्चतम रचनाओंको अिस प्रकार विभिन्न माध्यमोंसे और विशेषकर राष्ट्रभाषाके माध्यमसे संपूर्ण देशकी संपत्ति बना देना, आजकी अेक बड़ी आवश्यकता है। देशकी कअी अेक अन्य भाषाओं, बंगला, गुजराती और अुड़िया भी हिन्दीके झरोखोंसे जनताके सामने आयी हैं, परन्तु असमिया (अखॉमिया) साहित्यके विषयमें हिन्दीमें बहुत कम अथवा कुछ भी नहीं लिखा गया। जिससे पता चलता है कि अखॉमिया भाषामें देशको देने लायक कुछ है ही नहीं। हमारे असमिया भाअियोंकी यह अुदासीनता स्थानक साहित्यके विकासमें बड़ी बाधक सिद्ध हुअी है। अिस बार अपने असम-भ्रमणके समय मैंने असमियामें कअी अेक पंडितोंसे अिस विषयमें चर्चा की। पर अुनकी अुदासीन वृत्तिको देखकर बड़ा क्षोभ हुआ। अन्य भाषाओंके समानही असमियामें अनेक अमूल्य ग्रन्थ भरे पड़े हैं, पर हिन्दीवाले अुनके विषयमें कुछ भी नहीं जानते। अैसे लोक-प्रचलित ग्रन्थोंमें सर्व प्रथम स्थान सन्त शंकरदेव रचित 'कीर्तन' को प्राप्त है। असम प्रान्तमें 'कीर्तन'का वही स्थान है जो अुत्तर प्रदेशमें तुलसी-रामायणको और महाराष्ट्रमें सन्त तुकारामके अभंगको। यह पुस्तक असम प्रान्तके प्रत्येक हिन्दू-घरकी शोभित है।

सन्त शंकरदेव द्वारा रचित 'कीर्तन' के बाद दूसरा लोकप्रिय ग्रंथ माधव कन्दली द्वारा विरचित रामायण है। बहुतसे अुत्तर भारतीय हिन्दी भाषियोंकी यह धारणा है कि हिन्दीकी तुलसीकृत रामायणही प्रान्तीय भाषाओंकी सबसे प्राचीन रामायण है, जिससे गलत धारणा दूसरी नहीं हो सकती। वाल्मीकि रामायणके बाद प्रान्तीय भाषामें सर्वप्रथम तमिलमें रामायणकी रचना हुअी थी। अिसके पश्चात असम प्रान्तमें आजसे लगभग १२०० वर्ष पूर्व अखॉमियामें माधव कन्दलीने वाल्मीकि रामायणके आधारपर असमिया रामायणकी रचना की।

भारतीय साहित्यकी दो प्रधान मणियाँ महाभारत और रामायण किसी-न-किसी रूपमें आज प्रत्येक प्रान्तीय साहित्यमें अुपलब्ध हैं। अनेक कारणोंसे अपनी बौद्धिक प्रतिष्ठाके बावजूद महाभारत अुतना लोक-प्रिय नहीं हो सका जितनी कि रामायण। यों रामायणकी कथा भारतीय प्रान्तीय साहित्यमें वाल्मीकि द्वारा रचित संस्कृत रामायणसे ही आयी, परन्तु अपनी भावना, परंपरा और प्रान्तके अनुकूल प्रान्तीय रामायणकी कथा भी मूलसे बहुत भिन्न हो गयी है। असमी लोक-जीवनमें राम, कृष्ण वैसे ही घुले पड़े हैं जैसे अुत्तर प्रदेशमें। थोड़ा अन्तर अवश्य है और वह यह कि वर्तमान भक्ति-पद्धतिके अुन्नायक हैं सन्त शंकरदेव और अुनके अिष्ट देव हैं कृष्ण। अिसलिअे असममें आज भक्तिके प्रतीक प्रधानतया कृष्ण माने जाते हैं। परन्तु अपने कीर्तनमें स्वयं सन्त शंकरदेवने कृष्णको रामका ही रूप बताकर रामकृष्णके अेक होनेकी घोषणा कर कृष्णके साथ रामके प्रति भी भक्तिकी प्रतिष्ठा कर दी है।

भारतीय संस्कृति और परंपराका प्रतिनिधित्व करनेवाली कअी अेक रामायणें आज असमिया भाषामें अुपलब्ध हैं। रामायणोंके जितने प्रकार शायद किसी प्रान्तमें देखनेको नहीं मिलेंगे। ३-४ पद्य-रामायणोंके अलावा जनताके विचार अेक रामायण केवल गद्यमें है। नाटकके रूपमें भी अेक रामायणकी रचना असमिया विद्वानोंने की है। जैसा कि अूपर अुल्लेख किया गया है, आर्य भाषाओंमें असमिया-रामायणसे पूर्वकी रचना

कोअी भी नहीं। तुलसीकृत रामायणके अिसके निर्माणका काल १५० वर्ष पूर्व है। असमियाकी अिस 'रामायनी', (रामायण) के रचयिता श्री माधव कन्दली थे, जिन्होंने असमिया छन्दमें वाल्मीकि रामायणका रूपान्तर सा किया है। तुलसीदासने अिससे १५० वर्ष बाद अपनी रामायण जनताको भेंट की। श्री माधव कन्दलीके बाद असममें रामायण लिखनेकी अेक बाढ़-सी आती है। विभिन्न कवियोंने कवितामें, गद्यमें, गीतोंमें, कीर्तनमें, रामायणकी रचना की। परिणामस्वरूप आज असमियामें रामायणके पाँच रूप प्राप्त हैं। और प्रत्येककी शैली, कथा और छन्द अलग-अलग हैं। परन्तु मूल कथाका स्रोत सबने वाल्मीकिको ही माना है।

१४ वीं शताब्दीमें जब स्वामी रामानन्दने राम-भक्तिका प्रचार देशमें शुरू किया तबसे असममें रामायण लेखन द्वारा राम-भक्तिकी प्रतिष्ठाकी लहर फैली। रामानन्दके शिष्योंने अुत्तरी भारत और मध्यभारतमें रामभक्तिका प्रचार किया। यही लहर देशमें घूमनेवाले आसामी धार्मिक व्यक्तियोंके द्वारा असममें पहुँची। और अिस प्रकार असममें रामायणके प्रथम रचयिता कविवर माधव कन्दलीका काल १४ वीं शताब्दीका अन्तिम भाग माना जा सकता है। अपने समकालीन राजा महा-माणिक्यचन्द्रकी प्रार्थनापर अुन्होंने रामायणकी रचना शुरू की। संत शंकरदेवने अपने अुत्तर काण्डमें अुन्हें अपना पूर्वगामी और दोषशून्य कवि माना है। श्री भारतने द्वारा लिखित 'कथा गुरु चरित' में अेक स्थानपर अैसा अुल्लेख है जिससे पता चलता है कि श्री राघवाचार्य संत शंकरदेवके शिक्षक श्री महेन्द्र कन्दलीके समकालीन थे और महेन्द्रकन्दली श्री माधवकन्दलीके शिष्य थे।

जिस समय श्री माधवने असमियामें रामायण लिखना आरम्भ किया, अुस समय देशकी किसी दूसरी भाषामें कोअी रचना अुपलब्ध नहीं थी जिसके आधारपर वे असमिया भाषामें अपनी रचना करते। अिसलिअे अुन्होंने सीधे संस्कृतके 'आदि काव्य'में व्यवहृत छन्दको ही अपनी रचनाका आधार माना। अिस विषय में स्वयं श्री कन्दलीका कथन है कि महाकवि वाल्मीकिने अनेक छन्दोंमें रचना की। मैंने बड़ी सावधानीसे अुन्हें पढ़ा और अपने ढंगसे जो कुछ समझ सका, अुसे संक्षिप्त रूपमें अिस रामायणमें लिया है। अैसा कौन है जो अुनके समस्त रसोंको समझ सके? और अिसलिअे 'रामायनी' में कवि माधव कन्दली आवश्यकतानुसार कुछ जोड़ देते हैं, कभी कुछ कम कर देते हैं। कवि अेक स्थानपर कहता है कि आदि काव्यके शब्द अीश्वरके वाक्य नहीं वरन् वह भी अेक मानव-कृति ही है, अतः यदि मैं अपनी रचनामें कोअी हेर-फेर करता हूँ तो लोगोंको नाराज नहीं होना चाहिये।

माधव कन्दलीकी रामायणमें केवल ५ काण्ड थे—अयोध्यासे लेकर लंकाकाण्ड तक। आदि काण्ड और अुत्तर काण्डके बारेमें कहा जाता है कि वे शायद खो गये हैं। और बहुत बादमें महादेव और संत शंकर-देवने आदि और अुत्तर काण्डोंको माधव रचित रामायणमें जोड़ा है। बहुतसे लोगोंका विचार है कि माधव कन्दलीने जान-बूझकर ये दो काण्ड छोड़ दिये, लेकिन अुनकी रचनामें कअी स्थानोंपर सात काण्डोंका अुल्लेख मिलता है, जिससे पता चलता है कि शायद अुन्होंने सातों काण्डोंकी रचना की है। असोमिया भाषामें अुपलब्ध अन्य रामायणोंमें भी अिन दो काण्डोंका समावेश नहीं किया गया।

माधव कन्दली द्वारा लिखित रामायणकी विशे-षताओंको संक्षेपमें अिस प्रकार रखा जा सकता है—

(१) प्रकृतिके वर्णनमें अुन्होंने स्थानीय दृश्योंको, व्यक्तियोंके कार्योंका विशेष वर्णन किया है। अुनकी भाषामें वेग है और अुसमें अुचित स्थानीय मुहावरों, कहावतों, रूपकों और अलंकारोंका वर्णन बड़े सम्यक ढंगसे किया गया है। कुछ अलंकार अुन्होंने मूलसे लिये हैं, कुछ स्थानीय भाषासे और कुछ अपने आप बनाये हैं। दृश्योंका वर्णन बड़ा सजीव और नाटकीय है। भिन्न-भिन्न वर्णनोंके अनुसार अुन्होंने अलग-अलग छन्दोंको चुना है। रूपक और अुपमाके विषयमें वे कभी कभी मूलसे दूर चले जाते हैं। और अैसे अुल्लेखोंमें अुनके युगका प्रभाव स्पष्ट झलकता है। अुदाहरणके लिये वे राम और अुनके राजमहलकी तुलना

कैलाशस करते है। माधव कन्दलीके समयमें असममें शैव विचार धाराकी प्रधानता थी, जिसीलिअ वैकुंठके स्थानपर अुन्होने कैलाशको चुना। अिसके अलावा कअी अैसे स्थान है जहाँ अुनका वर्णन 'आदिकाव्य' से भिन्न है। चित्रकूटका वर्णन, सुग्रीवके आदेशपर सीताकी खोज, मधुवनमें हनुमानकी राक्षसोंसे मुठभेड और लंका-दहनके वर्णन अैसे ही है।

कुछ स्थलोंके वर्णन बडे मार्मिक और सुन्दर हैं - कवि भरतके चित्रकूट जाते समय निषादके मनकी दशाको बडे स्वभाविक ढंगसे प्रस्तुत करता है—

" अितो धज दण्ड पताका देखिया,
जानो लोहो सरपत,
अनहतु नहि रामाक मारिते
असिला भाओ भरत।'
'कैकेयी मातार हते राघवर
करिला राज्य नैरास।"

अर्थात्—जितने अस्त्रशस्त्रोंसे सज्जित सेना और ध्वज-दण्डोंको देखकर निषाद सोचता है कि निश्चय ही रामको मारनेके लिअे भरतने अितनी सेना सजायी है। कैकेयी माता रामको मारकर निष्कंटक राज्य करना चाहती है।

अिसी प्रकार परशुराम-रामसंवाद तुलसीकी रामायणसे सर्वथा भिन्न है। यहाँ परशुरामके क्रोधको फैलने और लक्ष्मणके आगमें घी डालनेका कोअी अवसर ही नहीं आता।

" ऋषिधर्म अनुसरि आछा महाभाग,
आमाक तोमार कैन अैन महाराग।
क्षमाते अुचित धर्म होअिब तोमार,
हिंसक करिला तुमि ताक परिहार।'
" धर्म अैरी अधर्म करय जिनो नर,
तार दण्ड करिबे लागय नृपतिवर।

अर्थात्–राम कहते है कि हे महात्मा ऋषिधर्मका अनुसरण करना आपका धर्म है। अैसी अवस्थामें मेरे और आपके बीचमें क्रोधके लिअे कोअी स्थान ही नहीं। आपके धर्मकी क्षमा करना है। क्या अुस धर्म छोड सकते हैं? अपने धर्मको छोडकर जो व्यक्ति अधर्म करता है अुसे दण्ड देना क्षत्रियका धर्म है।

रामके वन चले जानेपर दशरथका विलाप बडा करुण हुआ है—

'मरन कालत रामने देखिलो तोक।
यम कवलको गैले नेराअि बोहो शोक।
शुना बान्धे कौशल्या नकरा हृदिखेद।
तोमार आमार अैवे भैल परिच्छेद।
चौधय वरिव रामे वनवास तरि
पुनरपि असिवन्त अयोध्या नगरी।
स्वर्ग हन्ते येहेन आसिव सुरराजे।
लोके वेढ़िवेक जे देवता समाजे।
ताक देखिवाक क्यालत भाग्य नाअि।
पुत्रशोके हेरा मोर प्राण फुटि याअि।"

अर्थात्—मरते समय रामको देखनेकी अिच्छा लेकर मैं जाअूँगा। मेरी अिस अिच्छाको यम-लोकमें चले जानेके कारण शोकमें बदलना पडेगा। अैसा सुनकर पत्नी कौशल्यासे अुसने शोक न करनेकी प्रार्थना की और कहा कि तुम्हारी और हमारी जीवन-यात्रा अब पूरी हो चुकी। १४ वर्षके पश्चात् राम जब वनसे लौटकर आवेंगे तो अयोध्याके नरनारी अुन्हें अपने बीच पुनः देखकर स्वर्गसे आते समय जैसे सुरराजको देवता घेर लेते हैं वैसे अुन्हें घेर लेंगे। अुस अवस्थामें रामको देख सकनेका भाग्य अपने नहीं है अैसा दशरथ कहते है और कहते है कि पुत्र-शोकसे मेरे प्राण शेष नहीं रहेंगे।

(२) गीतरामायण

नीलाचलके निवासी श्री दुर्गावरने सुविस्तृत रूपमें गीत रामायणकी रचना की। यह कवि कूचबिहारके विश्वसिंहके राज्यकालमें (१५१५-४०) में हुअे थे। अिस गीत रामायणमें ७० रागोंका समावेश है। कुछ छन्दोंमें माधव कन्दलीका प्रभाव झलकता है।

परन्तु दृश्योंके चयन और तथ्योंको जन-मनोविज्ञानके अनुकूल ढालनेमें अिनकी अपनी मौलिकता है। डा॰ वी॰ काकतीने असमके प्राचीन असमिया साहित्यमें अिस रचनाको वाल्मीकिकी रामायणका जन-संस्करण कहा है। अिस रचनाके भी आदि और अुत्तर पर्व नहीं हैं। यह रचना सर्वप्रथम स्वर्गीय हिमदचन्द्र द्वारा ३०

वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ थी और आज यह अप्राप्य है। अिस रचनामें स्थल स्थलपर कविकी मौलिकता झलकती है —

(१) जगलमें राम सीता अपना समय पासर खेलकर व्यतीत करते है। (२) अिसी समय सीताजी स्वर्ण हिरन देखती है और अुसे जीवित पकडकर लानेके लिअे रामसे आग्रह करती है ताकि वे अुसे अपने पास पाल सकें। (३) चित्रकूटमें राम अुदास रहते है लेकिन सीताने जगलमें अयोध्याका निर्माण कर दिया है। राम, सीता और लक्ष्मण वसतोत्सवमें डूब जाते हैं और होली खेलते है। ठीक अिसी समय रावण आकर सीताको ले जाता है।

गीत रामायण आरभिक असमिया साहित्यका अेक नमूना है। अिसे थेवलागीतकी श्रेणीमें रखा जा सकता है।

अनन्त कन्दलीकी 'रामायण'

दुर्गावरके पश्चात् अनन्त कन्दलीने रामायणकी रचना की। ये सत शकरदेवके शिष्य और समकालीन थे। अनन्त कन्दलीने माधव-कन्दलीकी रचनाको ही हाथमें लिया और अधिकाशमें अुनकी रचनासे ही वर्णन और छन्दोंको अुधार लिया है। कहीं-कहीं अुन्हे सक्षिप्त कर दिया है कहीं-कहीं विस्तार दे दिया है। अुन्होने अपने काव्यमें भागवती-तत्वका विशेष रूपसे अुल्लेख किया है, अुन्होने स्पष्ट कहा है —

> "माधव-कन्दली विरचिला रामायण
> ताक शुनि आमार कौतिक करे मन
> रामार सामान्य सत कथा यथावत्
> भाजन्य गुनजत न भैला अेकत।

अर्थात्— माधव कन्दलीने रामायणकी रचना की। अुसे सुनकर मेरा मन भी कुछ लिखनेको अुत्साहित होता है। रामके जीवनके सभी तत्वोपर कौन प्रकाश डाल सकता है? परन्तु अभी तक अुनके भक्ति पक्षपर विस्तारसे नही लिखा गया अिसलिअे भक्ति पक्षके वर्णनके लिये मैं प्रयत्न करता हूँ।

अनन्त कन्दली और अुनके गुरु शकरदेवके लिअे रामकृष्णसे भिन्न और कुछ नहीं थे। अिस प्रकार अिसमें भक्ति पक्षका समावेशकर अिसे समयके अनुरूप अेक धार्मिक ग्रथका रूप दे दिया है। अिसमें कअी स्थानोपर अुन्होने अपनी विशेषता प्रदर्शित की है —

> "रामायण कथा पदे निबन्धिलो
> भगवत परचा, करो
> हरि कथा बिने दुघोर कलित
> तरि सेके हो रमारो।"

मैंने रामायणके तत्वोंका वर्णन छन्दोंमें किया है और अैसा करनेमें मैंने भागवतका अुल्लेख किया है क्योंकि कलि-कालमें बिना हरि-नामके कोअी मुक्ति नही पा सकता।

अनन्त कन्दली तुलसीके समान रामको अीश्वर मानते हैं। वन जाते समय वे सीतासे कहते हैं —

> "भारत हैबेक राजा
> पालिबेक सर्व प्रजा
> तातो मोरकिछो चिन्ता नाम
> घटेकेसे मार सोक तजिलो माकत लोक
> सुभरन्ते प्रान फुटि जाय
> यहेन अयोध्यापुरी अर यता नर-नारी
> सब मोर परम भक्त।"

अर्थात्—भरत राजा होकर प्रजाकी रक्षा करेंगे। मुझे अिसकी चिन्ता नहीं। मेरे दुखका कारण यह है कि मैंने अपने भक्तोंको छोड दिया यह विचार मेरे हृदयको विदीर्ण कर देता है। अयोध्याके समस्त नर-नारी मेरे भक्त हैं।

माधव कन्दलीसे भिन्न अनन्तकदलीने राम महलकी अुपमा वैकुठसे दी है। अिस रामायणमें कहीं-कहीं व्यक्तिगत अुल्लेख भी मिलते हैं। कविने अपने जन्म और ग्रामके विषयमें भी कुछ छन्द लिखे हैं।

अुपरोक्त तीन रामायणोंका असमिया-साहित्यमें विशेष महत्व है, परन्तु राम-चरित कहनेकी प्यास आसाममें बड जोरसे प्रकट हुअी थी। अिसलिअे अिन तीन रामायणोंके अतिरिक्त भी कुछ अन्य रचनाअें अिस दिशामें हुअी जिनमें खास-खासके नाम अिस प्रकार हैं —

(४) 'श्रीरामकीर्तन' अिसके रचयिता श्री अनत ठाकुर थे। अिनका जन्म शकरदेवके बाद चौथी पीढीमें हुआ था। भाषा, पद्धति आदिकी दृष्टिसे यह रामायण अुपरोक्त रामायणोंसे भिन्न है। 'रामकीर्तन' का रचना-काल १५७४ शाक सवत माना जाता है।

(५) कथा-रामायण— यह रामायण शुद्ध गद्यमें लिखी गयी है। अिसका रचनाकाल १६ वी शताब्दीका मध्य माना जाता है। श्री रघुनाथ महन्त अिसके लेखक थे। अिसी लेखकने अेक दूसरी रामायण 'अद्भुत-रामायण' भी, लिखी है। अिसकी भाषा बिल्कुल जनताकी बोली है।

(६) नाटय रामायण—लोक अिच्छा और जन-प्रचारकी दृष्टिसे सत शकरदेवने सर्वप्रथम रामायणको नाटकका रूप दिया। 'सीतास्वयवर' और 'रामविजय' नामसे अुन्होने रामायणके अनेक प्रसगोको लेकर नाटक लिखे है।

वंगलाका पहला अुपन्यास

: श्री मन्मथनाथ गुप्त :

बंगालमें अंग्रेजी शिक्षाके प्रवर्तनके साथही साथ अुपन्यास साहित्यका आविर्भाव हुआ। यों तो कहनेके लिअे यह कहा जा सकता है कि भारतमें भी पहले अुपन्यास होते थे, पर सच्ची बात यह है कि न केवल भारतमें, बल्कि सभी देशोंमें पूंजीवाद और छापाखानेके साथ-साथ आधुनिक अर्थमें अुपन्यासोंका आरम्भ हुआ।

यों तो रामायण, महाभारतमें भी अुपन्यासका मजा आता है, पर वे पद्यमें हैं। यदि हम संस्कृत गद्य साहित्यकी ओर दृष्टिपात करें, तो कथा सरित्सागर, वेताल पंचविंशति, दशकुमार चरित, कादम्बरी तथा बौद्ध जातकोंमें अुपन्यासके कभी अुपादान मौजूद हैं। अवश्य अिन ग्रन्थोंमें वर्णनके आडम्बरके नीचे अक्सर कहानी दबकर रह गयी है। बौद्ध जातकोंमें फिर भी कुछ गनीमत है, क्योंकि अुनमें राजाओंसे अुतरकर साहित्यकी वस्तुकी बहुत कुछ मध्यमवर्गमें लाया गया है और वर्गोंका भेद अुतना स्पष्ट नहीं है। फिर भी अिन सबकी कहानियोंमें अूलजलूल बातोंके साथ-साथ वास्तविक घटनाअें अिस प्रकार मिलायी गयी हैं कि आधुनिक पाठक अुसे सहन नहीं कर सकता। अनैसर्गिक अप्राकृतिक या अतिप्राकृतिक बातोंकी भरमार है।

पंचतन्त्र अिनसे बिल्कुल भिन्न प्रकारका साहित्य है। यदि कहा जाअे कि पंचतन्त्र सारे विश्व-साहित्यमें अनोखा है, तो कोअी अनुचित न होगी। केवल अीसापकी कहानियां अुसके कुछ पास फटकती हैं, यद्यपि यह भी अेक मत है कि अीसापकी कहानियां पंचतन्त्रसेही अुत्पन्न हैं। पशुपक्षियोंकी बातचीतके जरियेसे जीवन सम्बन्धी मोटी-मोटी बातें बता देनेकी ओरही लेखकका ध्यान है, अुसमें चरित्र चित्रण या नाटकीय गुण-अुत्पादनका कोअी प्रयास नहीं। कहानी तो महज अेक बहाना है, लेखकका अुद्देश्य नीतिकी शिक्षा देना है। अवश्य विष्णु शर्माने अिससे अधिक कुछ दावा भी नहीं किया। अुन्होंने तो साफ कह दिया है कि कथाके मिससे बालकोंके लिअे नीतिशिक्षादानही अुनका अुद्देश्य है। बाल साहित्यके रूपमें पंचतन्त्र हमेशा आदर प्राप्त करेगा, पर अुपन्यास-साहित्यसे जो रस मिलता है, अुसमें अुसकी आशा करना सर्वथा व्यर्थ है।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, हमारे प्राचीन साहित्यमें जातक साहित्यही अुपन्यासके सबसे नजदीक है। अुस युगकी बहुत-सी घटनाओंका जिससे परिचय प्राप्त होता है। अुसमें अतिरंजन और कपोल कल्पनाकी मात्रा अपेक्षाकृत कम है।

जब बंगलाका निजी अस्तित्व कायम हो गया, तो अुसमें भी बहुत कुछ संस्कृतकाही सिलसिला चला, पर बंगलामें अुस प्रकार शब्दाडम्बरपूर्ण समासबहुल रचनाकी गुंजाअिश नहीं थी। अिसके अलावा बंगलाकी रचनाअें पंडितोंके लिअे न होकर साधारण लोगोंके लिअे थी, अतअेव रचना कुछ सरल अवश्य हो गयी, फिर भी ढांचा तो वही रहा और अुपाख्यानोंका रस भी धार्मिकही रहा।

महाप्रभु चैतन्यपर जो पुस्तकें लिखी गयीं, अुनमें रामकृष्णकी जगह चैतन्यको बैठाया गया, फिर भी बातें वही रहीं। अिस सम्बन्धमें बल्कि कलकत्ता विश्वविद्यालयके द्वारा संगृहीत मैमनसिंहके गीत आधुनिक अुपन्यासके अधिक निकट हैं। अिन गीतोंका रचनाकाल सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी माना गया है। अिन गीतोंके आविष्कारसे बंगला-साहित्यकी अेक लुप्त कड़ीका पता लगा है। कृत्तिवास, काशीराम, मुकुन्दराम और भारतचन्द्रमें जो खामी है, वह अिनके आविष्कारसे बहुत कुछ पाटी जा चुकी है। अिन गीतोंमें छोटे-छोटे अुपाख्यान भी आते हैं। अिनमें अुस समयके समाजके बहुत सजीव चित्र मिलते हैं। अिन गीतोंके सम्बन्धमें सबसे बड़ी बात यह है कि अिनमें परम्परागत वर्णनशैलीको

वस्तुको हटाकर जो चीज जैसी है अुसे अुसी रूपमें देखनेकी चेष्टा है। प्रेमिक प्रेमिकाओंकी बातचीत या व्यवहारमें कृत्रिमता लानेकी चेष्टा न कर कुछ अधिकसे अधिक स्वाभाविक बनानेकी चेष्टा की गयी है। यदि बंगला साहित्यमें अंग्रेजीसे स्वतंत्र कोअी अैसा साहित्य है जो आधुनिक अुपन्यास साहित्यके बहुत करीब है तो वह मयमनसिंहके गीत हैं।

अिनके अतिरिक्त बंगला साहित्यमें अरबी फारसी सूत्रसे आये हुअे हातिमताअीकी कहानी, लैला मजनू, बहारदरवेश, गुल बकावली आदि कहानियाँ भी मौजूद थीं। अिन कहानियोंका प्रचार हिन्दू मुसलमान सभी घरोंमें था।

बंगालमें समाचारपत्रोंका आरम्भ हुआ, अुसीके साथ साथ अुपन्यास साहित्यका भी सूत्रपात हुआ। १८२१ में समाचार दर्पणमें 'बाबू' नामसे अेक रेखा चित्र छपा। दो अंकोंमें यानी २४ फरवरी और ९ जूनके अंकोंमें यह रेखा चित्र सम्पूर्ण हुआ। अिसमें अुस युगके अेक धनीपुत्र तिलकचन्द्रका चित्रण था। यह धनीपुत्र मुसाहबोंसे घिरे रहते हैं, अुन्हें न तो कोअी शिक्षा मिली और न अुनमें कोअी चरित्र बल है। तिलकचन्द्र अपने अन्तरकी शून्यताको बाहरी आडम्बरसे ढकनेकी चेष्टा करते रहते हैं। अुनकी अेक चिन्ता यह भी है कि मुसाहबोंमें अुनकी अिज्जत बनी रहे। नतीजा यह है कि वे शुरूसे आखिरतक हास्यास्पद बने रहते हैं। यह रेखा चित्र पाठकोंके मनोरंजन और साथ ही नसीहतके लिअे लिखा गया था।

मालूम होता है 'बाबू' रेखाचित्र बहुत प्रसिद्ध हुआ अिसलिअे १८२३ में प्रमथनाथ शर्माने 'नवबाबू विलास' नामसे अेक रचना प्रकाशित की जिसके सम्बन्धमें यह बताया जाता है कि यह बंगलाका पहला अुपन्यास है। प्रमथनाथ शर्माका असली नाम भवानी चरण वन्द्योपाध्याय था। अैसा भी अनुमान है कि शायद 'बाबू' के भी यही लेखक थे। वे 'समाचारचन्द्रिका' और 'सम्वाद कौमुदी' नामक दो पत्रोंके सम्पादक थे और हिन्दू समाजके स्तम्भ माने जाते थे। 'नवबाबू विलास' को 'बाबू' का ही अेक परिवर्द्धित संस्करण कहा जा सकता है। अिसमें भी अुन्हीं बातोंका चित्रण था जिनका चित्रण 'बाबू' में था। अिसका अुद्देश्य भी समाजसुधारमूलक था।

अिन दोनों रचनाओंमें चित्रित 'बाबू' अुस समयके समाजकी अेक विशेष अुपज थी। अुसकी सारी आमदनी जमींदारीसे आती थी पर पहलेके युगमें जमींदारोंपर जो थोड़ा बहुत रोब था वह अुसके शहरमें आकर बस जानेसे मिट गया था। धन अुड़ानेके अुपाय पहलेके मुकाबलेमें अधिक थे, अिसीसे 'बाबू चरित्र' बना।

१८५७ में प्यारीचांद मित्रका 'आलालेर घरेर दुलाल' प्रकाशित हुआ। मजेकी बात यह है कि यह भी अुसी विषयको लेकर चला। १८६२ में कालीप्रसन्न सिंहने 'हुतोम पचार नक्शा' लिखा, वह भी अिसी विषयपर था। मालूम होता है कि अुस युगके बुद्धिजीवी धनियोंकी अुच्छृंखलतासे बहुत परेशान थे।

'आलालेर घरेर दुलाल' पहलेके धनी पुत्रोंसे विशिष्ट अिस अर्थमें था कि अुसका नायक 'मिस्टर नारोनके स्कूलमें' गया था अिसलिअे अुसने कुछ अंग्रेजी शब्द और टीमटाम अपनायी। अुस समयका सुन्दर चित्र अुसमें आ जाता है। चरित्र चित्रणकी दृष्टिसे यह अुपन्यास बादके अनेक अुपन्यासोंसे अच्छा है। अिसमेंसे अेक चरित्र 'ठग चाचा' है। झूठ वादे करनेमें और चालाकीमें वह अेक अैसा चरित्र बन जाता है जिसे भुलाना असंभव है। कोअी चरित्र नाकसे बोलता है तो कोअी किसी ढंगसे वाक्योंकी रचना करता है। कोअी गंवासेसे पीड़ित है, जिस प्रकार यह अेक सफल व्यंग्यात्मक रचना है। अिस अुपन्यासकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि अिसमें वागाडम्बरपूर्ण भाषा छोड़कर बोलचालकी भाषा अपनायी गयी। अिससे भी बड़ी बात अिस अुपन्यासके बारेमें यह है कि यह बंगलाका पहला अुपन्यास है। अैतिहासिक दृष्टिसे कुछ भी कहा जाअे साहित्यिक दृष्टिसे यहींसे बंगला अुपन्यासका सूत्रपात होता है। फिर तो वह अेक अनवरत धारामें चलने लगता है।

"आलालेर घरेर दुलाल" में अंग्रेजी शिक्षाकी प्रथम प्रतिक्रियाके चित्र मिलते हैं। श्री श्रीकुमार बनर्जीके अनुसार जिस पुस्तकमें १७७५ से लेकर १८२५ तकके बंगाली समाजका चित्र मिलता है। अभी तक अंग्रेजी-शिक्षा जातीय जीवनमें मज्जागत नहीं हुआी थी, अभी तक अिस बातका प्रबल संघर्ष चल रहा था कि यह रहे या वह रहे। अिस कारण ये अुखाड़ पछाड़का वातावरण था और चूँकि अभी तक यह तय नहीं हुआ था कि कितना रहेगा और कितना जायेगा, अिसलिअे वातावरणमें विक्षोभ और आलोडन मचा हुआ था। अुस समय यह तो निर्णीत-सा हो चुका था कि पाश्चात्य रंग-ढंग और विचारधारा बल्कि विचारशैलीकी विजय होगी, पर अभी न तो प्राचीन और अर्वाचीनका कोअी समन्वय होते दिखाई पड़ा था और न दोनों अेक दूसरेपर पूरी तरहसे हावी हो सके थे।

यहाँपर यह बात स्पष्ट कर दी जाये कि जिन लोगोंने पाश्चात्य सभ्यताकी चकाचौंधमें आकर अुसकी बुरी-भली सब बातें अपना लीं, स्वाभाविक रूपसे अुन लोगोंने बंगला छोड़कर अंग्रेजी अपनायी, नतीजा यह कि बंगला-साहित्यमें वे अपनी कोअी निशानी नहीं छोड़ गये। हाँ, जैसे लोगोंमें माअिकेल मधुसूदन थे, जिन्होंने अीसाअी धर्म ग्रहण किया और अंग्रेजीमें काव्य रचना करनेकी ठानी, पर कुछ अैसा संयोग हुआ कि भीतर-भीतर वे बंगलासे प्रेम करते थे और अन्त तक अुन्होंने अंग्रेजीको तिलांजलि देकर बंगला अपना ली। अिसी प्रकार श्री राजनारायण बसुको बुढ़ापेमें होश आया और अुन्होंने अपने यौवनकी आनन्द प्रमादित लीलाओंकी कहानी व्यंग्यात्मक रूपसे लिखी। पर किसीने अुपन्यासमें अुस धाराका प्रतिनिधित्व नहीं किया, जिसने पाश्चात्य सभ्यताके सामने साष्टांग दण्डवत्कर आत्म-समर्पण कर दिया था। अुपन्यास-साहित्यमें यह पहलू अज्ञात ही रह गया।

फिर भी "आलालेर घरेर दुलाल" और बादके बहुतसे अुपन्यासोंमें जिस संघर्षका चित्र हमारे सामने आता है, अुससे हम अुस युगके सामाजिक मन्थनका बहुत अच्छी तरह अनुमान कर सकते हैं। यह बात सही गयी है कि "आलालेर घरेर दुलाल" के लेखक जीवनके बहुत व्यापक सत्यको अपनी सत्तामें प्रस्फुटित नहीं कर पाये, पर अुन्होंने जो सामाजिक चित्र हमारे सम्मुख पेश किया है, वह बहुमूल्य है।



कन्नड़-लिपिकी अुत्पत्ति और वर्णमाला

: श्री गुरुनाथ जोशी :

भारतमें अति प्राचीन कालसे लिपिका प्रयोग चला आ रहा है। डा० बनर्जीने महामाहम करके हरप्पा और महेंजोदाडोका पता लगाया। वहाँ जो अवशेष मिले हैं, अुनपर जो लिपि अंकित है वह चित्र-लिपि है। अुस चित्र-लिपिसे मिलती-जुलती कोअी लिपि भारतमें अब तक अुपलब्ध नहीं हुअी। यही भारतकी सबसे प्राचीन लिपि है। अिस लिपिको कोअी अचानि अच्छी तरहसे नहीं पढ़ सका। अिस चित्र लिपिको अगर छोड़ दें तो भारतमें सबसे प्राचीन लिपियाँ दो हैं — (१) ब्राह्मी, (२) खरोष्ठी। खरोष्ठी अरमय्य लिपि है और अिसके शिलालेख बहुत कम मिलते हैं। ब्राह्मी लिपिके लेख ही अधिक मिलते हैं। यह सुनकर सबको आश्चर्य होगा कि यह ब्राह्मी लिपि ही अुत्तर और दक्षिणकी सभी भाषाओंकी लिपियोंकी जननी है। यह बात तब स्पष्ट मालूम हो जाअेगी जब अुत्तर और दक्षिणकी लिपियोंका अध्ययन किया जाअेगा। यह भी विदित होगा कि अुत्तरकी ब्राह्मी लिपि और दक्षिणकी ब्राह्मी लिपिमें थोड़ा-सा अंतर है।

डा० गायीने धारवाड़ आकाशवाणी केन्द्रपर १९५३ मार्चकी ५ वीं को दक्षिण भारतकी लिपियोंपर भाषण देते हुअे कहा था कि अी० पूर्व ४५ वीं सदीसे अी० सन् ८ वीं सदी तक भारत भरमें ब्राह्मी लिपि ही प्रचारमें थी। अुसके अुपरांत अुसमें स्थूल रूपसे दो भाग किये गये—अुत्तरी और दक्षिणी। लिपि विशारदोंने दक्षिणकी लिपियोंको ६ या ७ भागोंमें विभक्त किया है —पश्चिम शैलीकी लिपि, मध्यप्रदेशकी लिपि, कलिंग लिपि कन्नड तेलुगु लिपि तमिऴ और वट्टेळुत्तु लिपि। ये लिपियाँ कालक्रमसे परिवर्तित होती गयीं और विशेषताअें प्राप्त करती गयीं। कन्नड तेलुगु लिपिका बंबअी, कर्नाटक, हैदराबाद (दक्खिन) का दक्षिण भाग, मैसूर, मद्रासका पूर्वोत्तर भाग अिन प्रदेशोंमें अी० सन ५ वीं सदीसे प्रचारमें था। अिसके विकासमें ३ या ४ अवस्थाअें हैं —५ से ८ वीं सदी तक, ८ से ११-१२ वीं सदी तक, अुसके अुपरान्त विजयनगरके राजाओंके काल तक। ८ वीं सदीसे १४-१५ वीं सदी तक कन्नड-तेलुगु लिपिका प्रयोग कन्नड और तेलुगु दोनों भाषाओंके लिअे किया गया है। अिसलिअे अिसका कन्नड-तेलुगु लिपि नाम पड़ा। विजयनगर साम्राज्यके पश्चात् कन्नड और तेलुगुके लिअे अलग अलग लिपि बन गयी। पर आधुनिक कन्नड लिपिमें बिल्कुल थोड़ा-सा अंतर है। तेलुगु-कन्नड लिपि अेक दूसरेके निकट है।

मैसूर रियासतमें हल्मिडि नामक अेक ग्राममें अेक शिलालेख मिला है जो अबतक अुपलब्ध कन्नड शिलालेखोंमें सबसे प्राचीन माना जाता है। डा० श्यामशास्त्रीके अनुसार अिस शिलालेखका समय अी० सन् २८० है, पर ल्यूअी रिअसके अनुसार ४ थी सदीका अंत है और डा० अेम् अेच कृष्णके अनुसार अी० सन् ४५० है। अिस शिलालेखकी प्रथम पन्द्रह पंक्तियोंमें गुहालिपिका अर्वाचीन रूप दिखायी पड़ता है। अिस शिलालेखकी लिपिके बारेमें मैसूर आर्कियालाजिकल' विभागके अधिकारीने कहा है--The Writing of the inscription at least in the first fifteen lines is in a very late form of the cave alphabet which has not yet fully developed into the early Kannada of the Chyalukyan and Ganga inscriptions.

अुपरोक्त बातोंसे हम अिस परिणामपर पहुँचते हैं कि कन्नड लिपिकी अुत्पत्ति ब्राह्मी लिपिसे हुअी और वह अुत्पत्ति अी० सन् २८० से ६५० के बीचमें हुअी होगी। कन्नड लिपिका विकास आप आगके चित्रमें देख सकते हैं।

ಅ = अ
ಇ = इ
ಈ = ई
ಎ = ए
ಒ = ओ
ಕ = क
ಚ = च
ಜ = ज
ಡ = ड
ತ = त
ನ = न
ಪ = प
ಮ = म
ಯ = य
ರ = र

वर्णमाला

कन्नडकी वर्णमाला भी नागरी वर्णमालाके अनुसार ही है, पर थोड़ा सा अन्तर है। स्वर और व्यंजन पूर्ण हैं, स्वरोंमें ह्रस्व तथा दीर्घके भेदको दिखानेवाले संकेत भी हैं, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय, अनुस्वार, विसर्ग और दूसरे वर्णोंको सूचित करनेवाले चिह्न भी हैं, व्यंजनाक्षरोंसे स्वरोंका सुन्दर संयोग है और आर्य और द्राविड़ भाषाओंकी ध्वनिको अच्छी तरह व्यक्त भी किया जा सकता है।

कन्नड वर्णमालाका परिचय देवनागरी लिपिमें प्राप्त करानेका प्रयत्न करेंगे।

कन्नडमें कुल १४ स्वर हैं जिनमें ६ ह्रस्व हैं और ८ दीर्घ।

ह्रस्व स्वर — अ इ उ ऋ, ए, ओ

दीर्घस्वर — आ, ई, ऊ ॠ, ए, ऐ ओ औ

व्यंजनोंमें दो प्रकार है—वर्गीय व्यंजन और अवर्गीय व्यंजन और जिनकी संख्या २५ और ९ है।

वर्गीय व्यंजन— (स्वरोंके मिलाकर) —

क ख ग घ ङ
च छ ज झ ञ
ट ठ ड ढ ण
त थ द ध न
प फ ब भ म

अवर्गीय व्यंजन– (स्वरोंके साथ) —

य, र, ल, व, श, ष, स, ह ळ

अयोगवाह— अयोगवाह २ हैं — अनुस्वार और विसर्ग। कन्नडमें अनुस्वारको बिन्दी अक्षरके आगे दी जाती है, जैसे क०=कं ख०=खं। विसर्गकी दो बिन्दियाँ जैसे हिन्दीमें लिखी जाती हैं वैसे ही कन्नडमें भी लिखी जाती हैं, जैसे कः=कः खः=खः।

कन्नड वर्णमालामें १४ स्वर ३४ व्यंजन, २ अयोगवाह, कुल ५० मूलाक्षर हैं। पर ऋ ॠ लृ कन्नडमें प्रयोग किये जानेवाले संस्कृत शब्दोंमें आते हैं। महाप्राणोंके मिले हुये शब्द और ङ, ञकारके शब्द कन्नडमें कम प्रयुक्त किये जाते हैं। पर आजकलकी अधिक संस्कृत मिश्रित शैलीमें इनका काफी मात्रामें उपयोग किया जाता है। ष तो कन्नडमें ष की तरह और क्ष तो क्ष की तरह ही लिखा जाता है।

व्यंजनोंके आगे स्वर चिह्न मिलाकर हिन्दीकी तरह गुणिताक्षर या बारहखड़ी भी बनायी जाती है।

स्वरोंको छोड़कर व्यंजन लिखनेका तरीका भी है, जैसे क=क्, ग=ग्।

कन्नडमें उपरोक्त 'ए' ह्रस्व स्वरका उच्चारण इसी प्रकार किया जाता है, जैसे 'एक्का' शब्दमें एका किया जाता है पर शब्दके एकारका। ह्रस्वस्वर 'ओ' का उच्चारण इसी प्रकार किया जाता है, जैसे कोतवाल मोहन, मालन शब्दोंके ओकारका किया जाता है। ए दीर्घस्वरका उच्चारण इसी प्रकार किया जाता है, जैसे 'एक' शब्दमें ए का किया जाता है और दीर्घस्वर ओ का उच्चारण इसी प्रकार किया जाता है जैसे मोहन, गोरा आदि शब्दोंमें ओ का किया जाता है।

जिसका तात्पर्य यह है कि ह्रस्व 'ए' और 'ओ' का अुच्चारण अेक मात्रिक और दीर्घ ए और ओ का अुच्चार प्लुत (त्रिमात्रिक) होता है और कन्नडमें यह भेद दिखानेके लिअे अलग अलग स्वर-वर्ण हैं।

"कन्नड संशोधन संस्था" (Kannada Research Institute) के तत्वावधानमें कन्नड पंडित श्री म प्र. पूजारने कन्नड व्याकरणपर जो दो व्याख्यान दिये, वे कहते हैं कि कन्नड वैयाकरणी केशिराजने 'शब्दमणिदर्पण' में अक्षर प्रकरणमें कहा है कि कन्नड भाषाके स्वरूपकी कल्पना देनेके लिअे अे (ह्रस्व) ओ (ह्रस्व)स्वर, महाप्राण अक्षर, र, ळ ळ आदि सहायक होते हैं।

केशिराजने अक्षरोत्पत्तिके बारेमें कहा है कि शब्द अेक द्रव्य है वह शुभ्र रंगका है वह तुरहीका सा होता है, हमारे कंठसे बाहर निकलनेवाली ध्वनि अुस शब्दद्रव्यका कार्यरूप है। किन्तु शब्द सामान्य ध्वनि-रूपका हो या अक्षररूपका, यह यहाँ विचारणीय है कि शब्द द्रव्य कैसे? अगर शब्द द्रव्य हो तो गुण चाहिये। श्वेत रूप अुसका गुण है। जैनोंकी राय है कि पुद्‌गलस्कंधोंके आघातसे ध्वनि पैदा होती है। अुनके अनुसार कर्म केवल क्रिया नहीं, पुद्‌गलरूप है। 'ज्ञानावरणीय' आदि पुद्‌गलकर्म आत्माको घेरते हैं। अिन विचारोंके जैनोंके पहले जो हुअे हैं, वे कहते हैं कि शब्द अेक गुण है और वह द्रव्याश्रित है। शब्दगुणक आकाशम्। आकाश शब्द गुणका है। जैसे गंध पृथ्वीका गुण है जैसे शीतस्पर्श जलका गुण है वैसे शब्द आकाशका गुण है। आधुनिक वैज्ञानिक भी शब्दको द्रव्य (Matter) नहीं कहते। पर यह तो चर्चात्मक विषय है।

केशिराज अक्षरोंमें दो प्रकार करते हैं— श्रावण और चाक्षुष। चाक्षुष अक्षर कैसे? यह भी विचारणीय है। क्योंकि चाक्षुष अक्षर जो हैं वे अक्षर-चित्र हैं, न कि अक्षर। केशिराजके अनुसार अक्षरोंकी संख्या ५२ है और अुनमें ९ प्लुत और र (ड) ळ (देशी अक्षर) जोड दें तो ६३ अक्षर होते हैं। अगर प्लुतोंको छोड दें तो ५७ अक्षर हो जाते हैं। पर कालानुक्रममें कुछ अक्षर हट गये और अब अूपर दिये हुअे ५० मूलाक्षर कन्नडमें हैं।

पंडित पूजारजीका कहना है कि निम्नलिखित विषयोंका कन्नड शिक्षा ग्रंथमें समावेश होना चाहिये—

(१) अकारका अुच्चारण सामान्यतः शब्दोंके अंतमें यदि वह हो तो विस्तृत होता है—अुदाहरणार्थ— बंद, होद माडिद। जिसलिअे कुछ लोग बंदा, होदा, माडिदा लिखते हैं। यह गलत है। शब्दोंके मध्यमें अकारका अुच्चार संकुचित होता है। (२) ऋ और लृ का अुच्चारण भी कभी लोग रु और लु की तरह करते हैं। (३) जिव्हामूलीय (अुदा–प्रातःकाल), अुपध्मानीय (अुदा–पयःपान) का ठीक अुच्चार। (४) महाप्राणोंका अुच्चार। (५) सानुनासिक संयुक्त घटित शब्दोंका अुच्चार। (६) ह्ग, ह्ण ह्न ह्म ह्य आदिका अुच्चार। (७)द्वित्ताक्षरोंका लिखना। (८) शिथिल द्वित्ताक्षरवाले शब्दोंका अुच्चार। (९) नित्य शिथिल द्वित्ताक्षरके शब्दोंका अुच्चार।

कुछ अंग्रेजी, फारसी अक्षरोंके लिअे भी कन्नड लिपिमें संकेतोंकी आवश्यकता है। अितनी आवश्यकताके बावजूद भी तमिळ और वट्टिळुत्तुको छोड, दक्षिणकी सभी लिपियाँ सर्वोत्तम हैं जिनमें अेक कन्नड लिपि भी है।



परकीया

: श्री पी. वें. राजमन्नार :

'पात्र'

ब्रह्मानन्द . अेक अध्यापक

प्रभा . ब्रह्मानन्दकी पत्नी

सत्यं और मोहनराव : ब्रह्मानन्दके मित्र

कृष्णराव डाक्टर

गाडीवान

(अेलूरमें ब्रह्मानन्दके घरका अेक कमरा जो ड्राअिंगरूम कहला सकता है। बीचमें अेक मेज है, जिसके चारों ओर चार कुर्सियाँ पडी हैं। अेक कोनेमें पलंग बिछा हुआ है। दूसरे कोनेमें अंदर जानेका द्वार। दाहिनी ओर बाहर जानेका द्वार।

ब्रह्मानन्द और सत्यं बैठे बातें कर रहे हैं। ब्रह्मानन्द अेक स्कूलमें अध्यापक है। अुम्र लगभग ३० है। सुगठित शरीर है। लेकिन मुख तेजोहीन, बुझे-हुअे चूल्हेके समान। सत्यं भी अुसका समवयस्क है। कुशल व्यवहारिक-सा दीखता है। मद्रासमें किसी कम्पनीका अेजेन्ट है। किसी कामसे अेलूर आया हुआ है। सिगरेटका धुंआ छोड रहा है।)

ब्रह्मानन्द :—क्यों भाओी सत्यं ! तो तुमको यहाँ आये तीन दिन हो गये। अब मेरी याद आयी?

सत्यं :—नहीं भाओी ! जिस दिन आया था अुस दिन अितना थका था कि कहीं हिलनेकी अिच्छा भी नहीं हुआी। कल काम पूरा करके जब यहाँ आनेको निकला कि रास्तेमें अचानक मोहनराव मिला। अुसे देखे बहुत दिन हो गये थे। मैंने कहा, "वाह भओी, कितने दिनों बाद मिले।" "हाँ भओी ! आज भी अच्छा दिन है। अिसलिअे अुचित रीतिसे आदर सत्कार करना चाहिये। चलो होटलमें चलें। बडी भूख लगी है। दावत दोगे?" अुसने कहा।

जब अुसने अिस प्रकार भोलेपनके साथ पूछा तो मैं कैसे रोकता। खैर, होटलमें गये। अुसके बाद गपशप......आज तुम्हारे स्कूलमें छुट्टी है, अिसलिअे जल्दी चला आया।

ब्रह्मानन्द :—अरे ! मोहन अिस शहरमें है। यहाँ रहते हुअे अेक दिन भी मुझसे मिलने नहीं आया। बडी गहरी दोस्ती थी।

सत्यं :—था तो अिसी शहरमें। आज भी रहेगा शायद। लेकिन क्या ठिकाना ! दस दिन कहीं अेक जगह रहना पडे तो प्राण छोड देगा।

ब्रह्मानन्द :—अेक ही दिन सही। अुसको मालूम है कि मैं अिस शहरमें हूँ। तीन महीने पहले अुसने अपना खंड-काव्योंका अेक संग्रह भी भेजा था।

सत्यं :—(कुछ सोचकर) क्या अुसे मालूम है कि तुम्हारा विवाह हो गया?

ब्रह्मानन्द :—क्यों नहीं, मेरी स्त्री भी तो मछलीपट्टणम्‌की है। अुसीके शहरकी।

सत्यं :—तो मुझे अेक कारण दिखायी देता है। अुसने सोचा होगा कि तुम अपनी पत्नीके साथ सुखमय जीवन बिताते हो फिर अुसका जैसा आदमी सद्‌गृहस्थके यहाँ क्यों आअे।

ब्रह्मानन्द :—अरे ! भाओी ! तुम भी अजीब बात करते हो। हाँ, मुझे मालूम है कि अुसे शराब पीनेकी आदत कालेजके दिनोंसे ही है, लेकिन अितनी-सी बातके लिअे—

सत्यं :—(हँसकर) तो तुम अुसका पूरा अितिहास नहीं जानते। तुमको मालूम है कि अुसकी शादी हुआी?

ब्रह्मा :—(नकारात्मक रूपसे सिर हिलाता है।)

सत्य —बचपनमें ही हो गयी। पत्नीने आनेके तीसरे दिन ही अुसने कहा तुम्हारे साथ जीवन बिताना मृत्युके समान है। तुमने कोअी अपराध नहीं किया। तुम चाहो तो किसी दूसरेसे शादी कर लो। मुझे कोअी अुज्र नहीं। मैं पिताजीसे कह दूंगा कि मेरी जायदाद तुमको दिला दें।

अुसने पिताजीसे भी यही कहा और अेक महीनेके अन्दर ही अन्दर निदराकवालोंकी * बहूको मगा ले गया। अुसके पिताजी बड़े कट्टर सनातनी विचारके हैं। यह देखकर मारे क्रोधके जल अुठे और अपनी जायदादका आधा हिस्सा बहूको दे दिया। बाकी ट्रस्टियोंको सौंपकर महावार सौ रुपये मोहनरावको देनेका प्रबंध किया। अिसके बाद बेचारेने स्वर्गकी राह ली।

ब्रह्मा —अितना काण्ड हुआ! तो मोहन अब अुसीके साथ

सत्य — भाग्य अच्छा था कि शीघ्रही अुस बहूकी भी मृत्यु हो गयी। बेचारीने न जाने कितनी तकलीफें अुठायी। लेकिन मोहन तो कहता है कि अुसको बड़ा सुख था।

ब्रह्मा —अुसके बाद ?

सत्य —निरंतर भ्रमण। होटलोंमें खाना और स्टेशनोंके छप्परोंमें सोना। हाथमें पैसा रहनेपर मदिरालय या वेश्यालयमें अुसका ठिकाना रहता। अिस हालतमें अुसने यदि यह समझा हो कि तुम्हारे समान प्रतिष्ठित जीवन बितानेवालेके यहाँ जाअू तो तुम्हें न जाने कैसा लगे तो आश्चर्य क्या ?

ब्रह्मा —बेचारा रोजी कैसे कमाता है ?

सत्य —कहा न पिताजीके वसीयतनामेके अनुसार ट्रस्टीगण माहवार अुसको सौ रुपये देते हैं जो दस बारह दिनोंमें ही अुड़ जाते हैं। अुसके बाद जीवन अेक दैनिक समस्या है। किसी तरह महीना पूरा हो जाता है। वह मेरे साथ होटलमें खाया। हो सकता है कि अब तक फाका ही कर रहा हो। बुद्धि ठिकाने रही तो लिखता अद्भुत है। अुसका हमारे समाजमें कोअी स्थान नहीं। क्यों ? क्या सोच रहे हो ?

ब्रह्मा —कितना ब्रिलियेंट था कालेजमें। बेचारेपर तरस आता है। अुसका भूखा रहना मुझसे नहीं देखा जाता। जानते हो अब कहाँ होगा ?

सत्य —निश्चित रूपसे नहीं, क्यों ?

ब्रह्मा —मेरा होटल जाना अच्छा न होगा। अुसको यहाँ ले आओगे तो अेक दिन हमारे साथ रहेगा। पेटभर खा पी लेगा। मुझे भी अेक तरहका सन्तोष होगा ?

सत्य —मैं कोशिश करूँगा (अुठकर) लेकिन तुम्हारी पत्नी क्या कहेगी। यह भी सोचा है ? मेरी माँ अपनी बहूसे कहा करती है कि तुम्हारी स्त्री बड़ी पतिव्रता है। अैसे लफंगेको घरमें देखकर न जाने वह क्या कह बैठे। और तो और सारा अपराध मेरे सिर पड़ेगा।

ब्रह्मा —कोअी डर नहीं। मेरी अिच्छा ही अुसकी अिच्छा है।

सत्य — (हँसता और कुछ गुनगुनाता है।) यद्यपि दो हैं तन तो भी मन अेक है मन— अच्छा भाअी अब जाता हूँ।

ब्रह्मा — हाँ भाअी। अुसको लिवा लाना भूलना नहीं।

सत्य —अच्छा। (जाता है।)

ब्रह्मा —(चुपचाप कुछ सोचता रहता है।)

(प्रभाका प्रवेश। ब्रह्मानन्दकी पत्नीका पूरा नाम प्रभावती है। गहुँआ रंग अुमर बीस वर्षकी है लेकिन प्रौढ़ा-सी दीखती है। बड़ी-बड़ी आँखें जिनमें बड़ी गम्भीरता है जिसको अुसका पति भी नहीं देख सकता। पतिसे—)

प्रभा —क्या सोच रहे हो ?

ब्रह्मा —क्या ? तुम्हारे ही बारेमें ?

---

* वंश या घरका नाम है जिससे किसी परिवारकी पहिचान होती है।

प्रभा —(हँसकर) सच ? मुझे मालूम नहीं था कि आप मेरे बारेमें सोचेंगे। बीमारीके समयके सिवाय..

ब्रह्मा —मतलब ।

प्रभा —कुछ नहीं । आश्चर्यकी कोओी बात नहीं। रोज हम जिस खाटपर सोते हैं, अुसके बारेमें कभी सोचते हैं, क्या ? जब अुसकी मरम्मतकी जरूरत पड़ती है तभी हम अुसके सम्बन्धमें सोचते हैं न । (प्रभा बातें करती हुओी कोओी न कोओी काम करती रहती है। मेजपर चीजें ठीक करती है। कैलेण्डरमें तारीख बदलती है और रद्दी कागज टोकरीमें डालती है।)

ब्रह्मा —तुम भूलती हो । तुम्हारे ही सम्बन्धमें मैं सोच रहा हूं ।

प्रभा —मेरा हृदय घबड़ाता है । कहिये न क्या है ।

ब्रह्मा —मेरे सहपाठी मोहनरावको जानती हो ? तुम्हारेही गाँवका है ।

प्रभा —(चौंकती है, फिर सम्भल जाती है।)हाँ।

ब्रह्मा —बड़ा बुद्धिमान है । कला-प्रेमी और कवि भी ।

प्रभा —पत्रिकाओंमें कभी-कभी अुसकी कविता देखा करती हूं । लेकिन आप किसलिओ पूछ रहे हैं ?

ब्रह्मा —अुसके जीवनकी सारी कहानी क्या तुम जानती हो ? पत्नीको त्याग देना, किसीके साथ भाग जाना, मधुपान और भ्रमण अिस प्रकार अुसका सारा जीवन विचित्र और निकम्मा बन गया है । कैसा होनहार था परन्तु कैसा गुण्डा-सा बनकर बदनाम हो गया है वह बचारा—(अकदम रुककर) प्रभा ! क्या तुम डरती हो कि मैं भी अैसा ही बन जाअूँगा ?

प्रभा —नहीं ।

ब्रह्मा —क्यों ?

प्रभा —(जरा हैरानीसे) बदनाम होना भी क्या सबके लिओ आसान है ?

ब्रह्मा —(तमाचा लगा-सा तड़पड़ाता है । फिर सम्भल जाता है ।) मोहन अब अिसी शहरमें है ।

प्रभा —(गुस्सेसे) जाने भी दीजिये अिस पचड़को । (जरा शान्तिसे) यही आप मेरे बारेमें सोच रहे थे ?

ब्रह्मा —अितनी जल्दी क्यों ?

प्रभा —अच्छा । माफ कीजिये ।

ब्रह्मा —मोहनको लिवा लानेके लिओ सत्यको भेजा है कुछ खिलाने-पिलानेके विचारसे । अब सोचमें हूँ कि तुम हँसी अुड़ाओगी । सत्यने कहा शायद तुम्हारी स्त्री आपत्ति करे, अिसपर मैंने कह दिया कोओी डर नहीं, मेरी अिच्छाही अुसकी अिच्छा है । अब देखें देवीजीकी क्या आज्ञा है ।

प्रभा —आपने कह दिया न, अब मुझसे क्यों पूछते हैं । आप अपने मित्रोंके साथ खा-पीकर सुखसे रहें तो मुझे क्या आपत्ति होगी ?

ब्रह्मा —अच्छा, अब तो जान बची । (थोड़ी देर शान्ति रहती है।) प्रभा । मोहन मछलीपट्टणम्में भी पीता था ना । अब तो और अधिक पीता होगा । बहुत बुरी आदत है ।

प्रभा —(चुप रहती है ।)

ब्रह्मा—निरसावालोंकी लड़कीको तुम जानती हो ना । अनेक कष्टोंके बाद बेचारीने जान दे दी । तबसे लेकर यह बहुत वेश्यालोलुप हो गया है । अुसका पिता कितना कट्टर सनातनी था । कितना धर्मपरायण था । अैसे पिताका बेटा न जाने अैसा क्या निकला ?

प्रभा—(अस्पष्ट रूपसे) शायद अिसीलिओ अच्छा अब अन्दर जाती है, बहुत काम पड़ा है। (जाती है।) (ब्रह्मानन्द अुठकर टहलने लगता है। अंदर जाकर अेक नया टेबिल-क्लाथ लाकर मेजपर बिछाता है । अुसके चारों ओर तीन कुर्सियाँ रखकर अेक और कुर्सी जरा दूर रखता है । फिर न जाने क्या सोचकर अुसे भी मेजके पास रखता है ।)

(सत्यका प्रवेश)

ब्रह्मा—अरे ! अकेले क्यों आये ? क्या मोहन लापता हो गया ?

सत्य —(चिन्तित स्वरसे) नहीं। अिसी शहरमें है। लेकिन वह यहांतक आनेकी परिस्थितिमें नहीं है।

ब्रह्मा —क्या बीमार है ?

सत्य —हां बीमारी ही है। बेहद तकलीफ है। अब वह अितना बेहोश है कि किसीको पहचान भी नहीं सकता। या तो शून्य दृष्टिसे देखता है या आंखें बंद कर लेता है। सारा शरीर अितना गर्म है मानो बुखार चढ़ा हो। मेरी समझमें नहीं आता कि क्या किया जाअे। यहीं अुस होटलमें पड़ा है।

ब्रह्मा —यह सब कैसे हुआ ?

सत्य —तुम बिल्कुल भोले हो, ब्रह्मानंद ! अैसे लोगोंकी हरकतें तुम नहीं समझ सकते। किसी पत्रिका-वालेने पैसा भेजा होगा। बस ! और क्या ? पैसा खतम होनेतक पिया होगा।

ब्रह्मा —तो फिर क्या किया जाअे ?

सत्य —डाक्टरको दिखाना चाहिये। किसी अच्छे स्थानमें सुरक्षित रूपसे रखनेका प्रबन्ध करना चाहिये बेचारेको देखने दया आती है। हमारा गांव होता तो सीधे अपने ही घर ले जाता। लेकिन वह रेल-पर सफर करनेकी हालतमें नहीं है।

ब्रह्मा —यदि यहीं ले आअें तो ?

सत्य —अिससे और क्या अच्छा होगा ?

ब्रह्मा —गाड़ीमें ले आओ।

सत्य —नहीं क्या तो कन्धेपर ले आना होगा पलंग तैयार रखो।

ब्रह्मा —हां, हां। (जोरसे) प्रभा ! ओ प्रभा !

(सत्य चला जाता है। प्रभाका प्रवेश कालिख लगे हाथोंसे)

प्रभा —चाय लाअूं ? (और किसीको न पाकर) अकेले अकेले ही पिअेंगे ना ?

ब्रह्मा —देखो प्रभा ! सत्य कहता है कि मोहन बड़े संकटमें है। बुखारसे बेहोश हो गया है। बड़ी बुरी आदत है।

प्रभा —शराब पीनेकी ?

ब्रह्मा —हां। मुझे दया आती है, प्रभा, अिस शहरमें अुसका अपना कोअी नहीं।

प्रभा —तो ठीक है। जाकर देखिये। चाय पीकर जाअिये। लाअूं ?

ब्रह्मा —मेरे देखनेकी क्या जरूरत ? अपने घरमें ही बुला लें, ठीक हो जानेके बाद चला जाअेगा।

प्रभा :—(कठोरतासे) हरगिज नहीं।

ब्रह्मा :—(आश्चर्यसे) क्यों ?

प्रभा —अस्पतालमें भर्ती करवा दीजिये; नहीं तो और कहीं रखिये।

ब्रह्मा :—प्रभा ! तुम यह क्या कह रही हो ? आज नौकरानीको यहीं रखो। यदि तुम नहीं चाहती तो कल ठीक हो जानेके बाद भेज दूंगा।

प्रभा —(कठोरताकी जगह कातरतासे) नहीं जी ! मैं प्रार्थना करती हूं। नहीं। मेरी बात मानिये। आप जाकर देख आअिये। चाहें तो कुछ रुपये दे दीजिये। सत्यनारायणजी भी हैं। अुनको लौकिक व्यवहार अच्छी तरह मालूम हैं।

ब्रह्मा —(गुस्सेसे) मुझे भी मालूम है। मैं निरा भोंदू नहीं हूं। क्या समझती हो तुम ? स्कूलका मास्टर हूं तो भी अपने घरका मालिक मैं भी हूं। यह मेरा घर है। मेरा आंगन है। क्या अपने घरमें अपने दोस्तको अेक दिन रखनेका भी मुझे अधिकार नहीं ? तुम तो पतिव्रता होकर मेरे अधिकारकी अवहेलना करती हो।

प्रभा —(बहुत कातरतासे) राम ! राम ! अपनी जबानपर अैसी बात ला सकती हूं ? मैंने तो प्रार्थना की। क्या पतिसे प्रार्थना करनेका भी पत्नीको अधिकार नहीं ? फिर प्रार्थना करती हूं यह विचार छोड़ दीजिये ?

ब्रह्मा —नहीं छोड़ूंगा। नहीं छोड़ूंगा। तुम जो कुछ भी कहो, कितनी ही प्रार्थना करो, नहीं मानूंगा।

प्रभा :—(निराशासे) तो ठीक है। जहांतक हो सका, कोशिश की। मेरी बात नहीं मानते, अब मैं क्या करूं। समझूंगी दुर्भाग्य है।

ब्रह्मा —कुछ भी समझो। ले आनेको सत्यको गया है। डाक्टर भी आअगा। प्रभा! अरुचिकर काम समझकर आनाकानी तो नहीं करोगी?

प्रभा —क्या मुझपर अितना विश्वास नहीं।

ब्रह्मा —(कंधेपर हाथ रखकर) क्या नहीं मैंने तो यही कहा था। तो फिर देखो अुसी पलंगपर लिटाअेंगे।

प्रभा —अच्छा। (अन्दर जाकर तकिये, चादर वगैरह लाकर शैय्या तैयार करती है) (ब्रह्मानन्द मेजको अेक ओर सरकाकर पलंगके पास दो कुर्सियाँ डालता है।)

(सत्य और गाडीवान दोनों तरफसे पकडकर मोहनरावको अन्दर लाते हैं। मोहनकी आँखें मुँदी हुअी हैं। लम्बे लम्बे काले बाल भालपर बिखरे हुअे हैं। लम्बा चेहरा और नुकीली नाक, घनी भौंहें पतले और रूख कपोल। होठ बार-बार टेढा हिलता है। कुछ मैला महीन कुर्ता और पाजामा पहने हैं।)

सत्य —ब्रह्मानन्द! क्या अुसी पलंगपर?

ब्रह्मा —(आश्चर्यसे देखता हुआ) हाँ। (सिर हिलाता है)

(सत्य और गाडीवान दोनों मोहनको पलंगपर लिटाते हैं। प्रभा अन्दरसे अेक शाल लाकर ओढाती है)

गाडीवान —सरकार। मैं जाअूँ?

सत्य —(पैसे देकर) हाँ जाओ। जाते समय अेक बार डाक्टर साहबको याद दिला दो।

गाडी० —जी हाँ! (जाता है।)

(सत्य और ब्रह्मानन्द बिना कुछ बोले अेक-दूसरेको देखते हैं। बादमें दोनों पलंगकी ओर देखते हैं। प्रभा, मोहनके सिरपर बाल ठीक करती है।)

प्रभा —(माथेपर हाथ रखकर) बापरे! कितना गरम है! बहुत बुखार है। युडकलोनमें भिगोकर रूमाल मस्तकपर रखूँ?

(कोअी जवाब नहीं देता। प्रभा अन्दर जाकर अेक रूमाल युडकुलोनमें भिगोकर मोहनके मस्तकपर रखती है। अितनेमें डाक्टर आता है।)

कृष्णराव —हलो ब्रह्मानन्द! गुडओविनिंग सब!

ब्रह्मा —डाक्टर! (पलंगकी ओर दिखाते हुअे) मोहनराव हमारा मित्र है। सत्य अिस हालतमें देखकर अुसे यहाँ ले आया है।

(डाक्टर पलंगके पास जाकर मोहनकी परीक्षा करता है। थर्मामीटरसे देखकर)

डाक्टर —कोअी खास बीमारी नहीं। बुखार तो है, लेकिन वह भी अेक लक्षण है। आँल्कोहॉल ज्यादा पी जानेसे कभी-कभी सन्निपात भी हो जाता है। रातभर पानीके सिवाय और कुछ भी खानेको मत दीजिये। सत्यम्! मेरे साथ आओ। दवा दूँगा। अेक डोज अभी देना और अेक डोज सुबह देना। यदि ज्यादा बकबक हो तो नींदके लिअे स्लीपिंग ड्राफ्ट भेजूँगा सो देना, कलतक बिल्कुल ठीक हो जाअेगा। गुडनाअिट।

(डाक्टर और सत्य जाते हैं।)

(प्रभा पलंगके पासवाली कुर्सीपर बैठती है।)

ब्रह्मा —(धीरेसे) प्रभा!

प्रभा —क्या?

ब्रह्मा —जा गैंवसे भार जान! बडी दयाके साथ घरमें रखनेको कह दिया। लेकिन तकलीफ भुगतनेवाली तुम हो। मैंने सोचा नहीं! मुझे क्षमा करो प्रभा!

प्रभा —नहीं-नहीं, आप भूलते हैं! कामकी वजहसे मैंने नहीं मना किया था। यह भी कोअी काम है, मेरे लिअे? जब आपका टाअिफाअिड हो गया था तो चौदह दिन तक नर्सके समान काम किया था— याद नहीं है? (जब ये बातें हो रही थीं अुसी बीच मोहन करवट लेता हुआ कुछ बडबडाता हुआ हाथ हिलाता है। बातें करती हुअी प्रभा मोहनका हाथ दबाती है।)

ब्रह्मा ---कुछ ठीक होनेपर किसी तरह भेज दूंगा।

प्रभा ---वे भी क्या रहेंगे जी ?

ब्रह्मा ---(श्रुत्तर जँचा नहीं। लेकिन कुछ भी नहीं कह पाता)

प्रभा ---अन्धेरा हो रहा है। जरा दीपक जलाअिये।

ब्रह्मा ---(दीपक जलाता है) प्रभा! तुम मोहनको अच्छी तरह जानती हो ?

प्रभा :---मतलब ?

ब्रह्मा ---तुम्हारे ही गाँवका है न। जानती भर हो या कुछ परिचय भी है।

प्रभा ---कभी कभी हमारे घर आया करते थे। मेरे पिताजी अिनसे कविता पढनेको कहा करते थे।

ब्रह्मा ---हाँ। अच्छा पढता था। होस्टलमें---- (कुछ सोचता है, चुप रहता है) तुमको पहचानता है।

प्रभा ---(सूखी हँसी हँसकर) अिस प्रश्नका जवाब मैं कैसे दे सकती हूँ।

ब्रह्मा ---हाँ ठीक है।

(बातचीत रुक जाती है। ब्रह्मानन्द टहलता रहता है। अितनेमें सत्य दवाकी शीशियाँ लेकर आता है। शीशियाँ मेजपर रखते हुअे।)

सत्य ---देखो, अिस शीशीकी दवा अेक डोज अभी देनेको कहा। दूसरा डोज कल सुबह दे सकते हैं। अिस शीशीमें अेक डोज है। सो जागे तो देनेकी जरूरत नहीं। नहीं तो बकझक करनेपर देनेको कहा है। (प्रभा अुठकर पहली शीशी लेकर अेक ग्लासमें दवा अुडेलती और पिलाती है।)

सत्य ---अव्वल दर्जेकी नर्स है!

ब्रह्मा ---देर हो गयी। सत्य! अब तुम जाओ।

सत्य ---कल सुबहकी गाडीसे मुझे जाना है। विदा। मोहनकी हालत लिखिअेगा।

ब्रह्मा ---हाँ, जरूर।

(सत्य जाता है)

प्रभा ---जाकर भोजन कर आअिये।

ब्रह्मा ---और तुम ?

प्रभा ---अुपवास तो नहीं करूँगी। मैं बादमें पाअूँगी।

ब्रह्मा ---ठीक है। (अंदर जाता है।)

प्रभा ---(सदर दरवाजा बन्द कर आती है)

(मंचपर दीपक बुझाकर फिर जलाअें कुछ व्यवधानकी सूचना देनेके लिअे)

\+ + +

(आधी रातका समय। मोहन पलंगपर सोया हुआ है। और कोअी नहीं है। पहले अस्पष्ट रूपसे बातें सुन पडती हैं और बादमें स्पष्ट हो जाती हैं।)

मोहन ---ओह! प्यास! ज्वाला, रक्त ज्वाला, रक्तकी धारा, होम-कुण्डमें रक्तधाराअें। लाल लाल जीभोंके समान लपटें। खून। ओह! दर्द! (आँखें खोलकर देखता है।)

(प्रभाका प्रवेश जो मोहनकी आवाज सुनकर आयी है। वह पलंगके पास खडी हो जाती है)

मोहन ---(आँखें बन्दकर) देखो प्रभा! राक्षसोंने क्या किया है ?

प्रभा :---(चौंक पडती है।)

मोहन :---मेरे सीनेमें बर्छी मार दी, प्रभा। मेरी हृदयेश्वरी! अब मेरे हृदयमें खून नहीं। अुसे कुअेंमें अुडेल दिया गया है। लो देखो! अुनको भगा दो। अपने हाथोंसे वह खून मेरे हृदयमें भर दो। (आँखें खोलता है। अेक टकटकी प्रभापर दृष्टि गडाकर देखता है।) कौन हो तुम ?

प्रभा ---प्रभा। आपकी हृदयेश्वरी!

मोहन ---(पागलके समान देखते और हँसते हुअे) राक्षसी! तुम्हें मालूम नहीं, मेरी प्रभा मर गयी। मुझे मालूम है, तुम्हींने मार डाला। देखो मैं पुलिसमें रिपोर्ट करता हूँ। (अुठना चाहता है।)

प्रभा ---(फिरसे लिटाकर) प्रभा मर नहीं गयी। आप सो जाअिये।

मोहन —(बात सुननेकी हालत नहीं है।) प्यास, प्यास, दावाग्निकी ज्वालाअें, लपटें !!!

प्रभा —(पानी पिलाती है।)

मोहन —आओी हो। फिर आओी हो? अच्छी तरह देख लेने दो। (आँखें बंद कर लेता है।) दो-अेक चुम्बन। (होठोंसे चूमनेकी आवाज करता है।) ओह! कितनी मधुरता! सुधा मधुर है, मधु मधुर है, दधि मधुर है, तुम्हारे होठ मधुरातिमधुर हैं। (जोरसे) हाय! मेरी प्रभाको वह राक्षस बलात्कारसे......ओह! कितना घाव किया है। (हाथोंसे अपनी छाती पकड़ लेता है।)

प्रभा —(हाथ खोलकर भुजाअें पकड़ती है) कोअी नहीं है। आप डरिये नहीं। मैं जाअिये।

मोहन —(आँखें खोलकर) राक्षसी! अब भी है। मुझपर नजर लगी है? मेरी प्रभाका खून करके मुझसे शादी करेगी? जा-जा। (आँखें बंद कर लेता है।)

प्रभा —(कुछ स्मरण करके अुठकर दूसरी शीशीकी दवा पिलाती है।)

मोहन —विष, विष हलाहल है। नीलकंठके गलेका हलाहल। तुमको कैसे मिला डाक्टर! (आँखें खोलकर) मुझे मालूम है, डाक्टर! शिवको मारकर अुनका विष लाये हो? अब तो शिव ताण्डव नृत्य नहीं करेगा? (पागलके समान हँसता हुआ) हिः! हमारा मुन्नू भी शिवका ताण्डव-नृत्य करता है, तमिल गानेके साथ। गाऊँ? "काल् अिन निरादुम् देव मे" बाकी शेष गाना नहीं आता। क्यों हँसता है बे? तेरा सिर फोड़कर टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा। पेट चीर डालूँगा। (जम्हाअी लेता है।) क्यों प्रिये! मेरीोपर क्या चली जाती हो? धूमज्योति सलिल मरुता— (फिर जम्हाअी। आँखें झपक जाती हैं।)

प्रभा —(मास्टर बिखरे बाल ठीक करती है। थोड़ी देर देखकर धीरे धीरे द्रुतम हो चुमती है और अहिस्ता-अहिस्ता चली जाती है।)

(फिर मकरर भर्दका)

(दूसरे दिन सुबह लगभग साढ़े नौ बजेका समय। मोहन अभी सोया हुआ है।)

प्रभा —(प्रवेश करके पलंगके पास खड़ी होकर अुसके मालपर हाथ रखकर देखती है। गरमी नहीं है।)

मोहन :—(जागता है) कौन है? कहाँ हूँ मैं?

प्रभा :—यहीं। धीरे-धीरे सब कहेंगी। जी कैसा है?

मोहन —कुछ नहीं, ठीक है (सिर हिलाकर) सिरमें थोड़ा सा दर्द है। क्या यह अस्पताल है और तुम नर्स हो?

प्रभा —(हँसकर) अेक तरहसे नर्स ही हूँ। यह, आपके बचपनके मित्र ब्रह्मानन्दजी रावका मकान है।

मोहन —(अेकटक देखता है अुसकी ओर। झट कुछ याद आता है।) देखो! तुम वेंकटशास्त्रीजीकी बेटी प्रभा हो न?

प्रभा —हाँ! अब अिनकी पत्नी हूँ।

मोहन —हाँ! ब्रह्मासे शादी की है न। कहाँ है ब्रह्मानन्द?

प्रभा —स्कूलका समय हो गया है। भोजन करके कपड़े पहन रहे हैं। अभी आअेंगे।

मोहन —मास्टर है? कालेजके दिनोंमें ही हम लोग अुनको मास्टर साहब कहते थे। बहुत अच्छा है।

प्रभा :—(मुस्कराती हुअी) खूब! पत्नीसे पतिका सर्टिफिकेट स्वीकृत कराना चाहते हैं?

मोहन —अब भी अुतनी ही नटखट हो (अेकटक देखता हुआ) बचपनसे अब अधिक सुन्दर दीखती हो।

प्रभा —मैं कैसे जानूँ?

मोहन —क्या ब्रह्मानन्द नहीं कहता।

प्रभा —स्कूलके मास्टर क्या हर रोज अपनी पत्नियोंका वर्णन करते हैं?

मोहन —(अच्छा धीरे-धीरे अुठकर दीवारके सहारे बैठता है।) मैंने रातमें बड़ा घृणित बर्ताव किया होगा। लेकिन मैं अिस दुनियामें था ही नहीं। माफ करो। शराब बहुत बुरी चीज है।

प्रभा —हाथ मुँह धोकर काफी पीजिये। बेसिनमें पानी लाती हूँ।

मोहन :—ना मैं ही आ जाऊँगा। (अुठनेका प्रयत्न करता है।)

प्रभा —नहीं! आप बहुत कमजोर हैं। (मोहनकी भुजाअें पकड़कर बैठाती है। मोहन झट प्रभाके हाथ पकड़कर अपने नजदीक खींचकर चूम लेता है।)

मोहन —पाप किया है। क्षमा करो, प्रभा!

प्रभा —(सब कुछ भूल जाती है।) नहीं-नहीं। (मोहनका सिर पकड़कर चूम लेती है। अुसी समय ब्रह्मानंद प्रवेश करता है। जो कुछ हुआ है वह सब देखा तो नहीं लेकिन कोअी सन्देह हृदयमें अुथल अुथल मचाने लगता है जिसे प्रकट नहीं होने देता।)

ब्रह्मा —क्या मोहन जगा है? कैसा है।

प्रभा —(अपनी घबराहट छुपाती हुअी) हाँ! अभी जागे हैं। सिरमें दर्द बताते हैं। अुठते गिर पड़े।

ब्रह्मा —मोहन! आज कुछ आरामकी जरूरत है। लेटे ही रहो।

मोहन —ब्रह्मानन्द! मेरे और आरामके बीचमें काफी दूरी है। बहुत धन्यवाद अनाथकी रक्षा की जो तुमने!

ब्रह्मा —सत्यन बताया तुम बड़ी बुरी हालतमें हो, अिसलिअे झट यहाँ लानेको कहा।

मोहन —क्या अब सत्य यहाँ आअेगा?

ब्रह्मा —नहीं! वह सुबह ही चला गया।

मोहन —धन्यवाद। लेकिन मुझे बिदा दो भाअी। काफी पीकर चला जाअूँगा।

ब्रह्मा —नो, नो। (कुछ सोचकर) खैर, मेरे स्कूलसे लौटनेके बाद देखा जाअेगा। अच्छा मैं जाता हूँ। तुम प्रभाको नहीं जानते?

मोहन —हाँ, बचपनका थोड़ा परिचय है। हम दोनों मछलीपट्टणमके हैं।

ब्रह्मा —हाँ, वही तो। मेरा समय हो गया है, मैं जाता हूँ। (जाता है।)

प्रभा —मैं पानी, पेस्ट आदि लाती हूँ। (जाती है।)

मोहन —(दोनों हाथोंसे सिर पकड़कर आँखें बंद कर लेता है।)

(पर्दा गिरता है)

\+ \+ \+

(पर्दा अुठता है शामके चार बजेका समय। प्रभा पलंगपर बैठी है। मोहन अिधर-अुधर टहलता है।)

मोहन —हो गया! चाहसे ज्यादा भी हो गया। स्वप्नलोकसे अब यथार्थकी दुनियामें अुतरना चाहिये। प्रभा! अब अेक घंटेमें जा रहा हूँ।

प्रभा —हाँ, घंटेमें जा रहे हैं?

मोहन —(पहले नहीं समझता लेकिन बादमें समझकर झट) क्या कहा?

प्रभा —यही कि अेक घंटेमें जा रहे हैं।

मोहन —मतलब?

प्रभा —कवियोंकी सीधी-सादी भाषा मालूम नहीं होती। अेक घंटेमें हम तुम दोनों जा रहे हैं, यही मेरे कहनेका मतलब है।

मोहन —प्रभा! पगली-सी बात करती हो। तुम स्वप्न संसारसे अभी बाहर नहीं आयी?

प्रभा —स्वप्नलोक और यथार्थ संसारका निर्णय करनेकी मुझे जरूरत नहीं। मैं आपके साथ-साथ चल रही हूँ। मैंने अपना सब सामान ठीक कर लिया है। अुनके बनवाये जो गहने हैं यहीं, छोड़ दिये हैं। क्या यह सब सपना है?

मोहन :—नहीं, प्रभा नहीं!

प्रभा —क्या? पापका काम समझकर?

मोहन —नहीं!

प्रभा —समाजके डरसे?

मोहन —नहीं!

प्रभा —मित्र-द्रोहके डरसे?

मोहन —नहीं!

प्रभा —तो क्या यह समझकर कि मुझे तकलीफ होगी? क्या यह समझकर कि बिना घर बारके कभी-कभी खाने पीनेकी भी मुझे तकलीफ अुठानी पड़ेगी? मुझे अिसका डर नहीं।

मोहन —नहीं।

प्रभा —क्या यह समझकर कि आपकी आजादीमें बाधा डालूंगी?

मोहन :—नहीं, प्रभा, नहीं।

प्रभा —(तीखेसे) तो मालूम हो गया। मुझसे प्रेम नहीं। (खड़ी हो जाती है।)

मोहन —हाय! कितना भूलती हो? प्रेमके कारण ही मैं प्रार्थना करता हूँ कि अैसा न करो।

प्रभा —(सूखी हँसी हँसकर) प्रेमके कारण?

मोहन :—(जल्दीमें प्रभाके नजदीक आकर) हाँ, प्रेमके कारण ही। वह प्रेम असाधारण है, अपूर्व है, पवित्र है। कृष्णसे राधाका-सा प्रेम है। प्रभा! मोह और वासनामें पड़कर अुस प्रेमको मलिन न होने दें? मोह क्षणिक है। प्रेम अमर है।

प्रभा —प्रेमके कारण ही मैं आपके साथ आ रही हूँ। मोहके कारण नहीं।

मोहन —मैं नहीं मानता। क्योंकि मोह फल चाहता है। प्रेम फलातीत है। सफलतामें मोह नष्ट होता है। प्रेमके अनुभवके लिअे सफलता है ही नहीं। अिसलिअे अुसका नाश कभी नहीं होता।

प्रभा —निराकवालोंकी परवाह न करके आपके साथ आकर क्या आनन्दका अनुभव नहीं किया?

मोहन —नहीं! मोहकी आगमें भस्म हो गयी। थोड़ेसे सुखका अनुभव किया होगा लेकिन आनन्दका अनुभव नहीं किया। आनन्दकी सीमा नहीं है। अुसमें न थूँचाअी है और न निचाअी।

प्रभा —अपने प्रेमीको देह और आत्माका समर्पण करनेसे अधिक क्या कोअी आनन्द स्त्रीके लिअे है?

मोहन —फिर भूलती हो। आत्मार्पण करो। मैं मना नहीं करता। जिस क्षण तुम देहको भी अर्पित करोगी अुसी क्षण अुसका मूल्य कम हो जाअेगा। प्रभा, तुम मेरी देवी हो। अपनी देह मुझे अर्पित करके साधारण स्त्री बन जाओगी?

प्रभा —तो अिस प्रेमका अनुभव कैसे किया जाअे?

मोहन —प्रेमका अनुभव निष्काम कार्य है। प्रेम अिच्छा नहीं, जो पूरी हो। प्रेम और भक्तिके लिअे तृप्ति नहीं है। अनुभव करनेसे अुनमें वृद्धि होती है। यही अिसका रहस्य है।

प्रभा —मुझे कुछ नहीं मालूम। बड़ी व्यथा हो रही है।

मोहन —मुझे मालूम है। किसीको मारनेके समय दर्द जरूर होता है। तुम मोहनको मारनेका प्रयत्न करती हो, अिसलिअे तुमको व्यथा होती है।

प्रभा —(आवाज सुनकर) वे आ रहे हैं।

(ब्रह्मानन्दका प्रवेश)

ब्रह्मा —(दोनोंका रंग-ढंग देखकर घबराता है।) मोहन! . . . कैसे हो?

मोहन —देखते हो ना! बिल्कुल अैसे के अब तक तुम्हारी स्त्रीको अपने लेक्चरसे हैरान करता रहा। अब विदा दो। मुझे समझमें नहीं आता कि तुम दोनोंको धन्यवाद कैसे दिया जाअे?

ब्रह्मा —अरे! बस अिसीके लिअे . . . तो आओगे?

मोहन —तुम्हारे स्कूलसे लौटनेतक मैंने रहनेको कहा न। अिसलिअे अबतक रहा।

ब्रह्मा —तब तो ठीक है। (जेबसे बटुआ निकालकर अेक दस रुपयेका नोट देता है।)

मोहन —नहीं! माफ़ करो।

ब्रह्मा —तुम्हारी मर्जी। (नोट जेबमें रख लेता है।)

मोहन —(प्रभासे) अब विदा दीजिये। आपकी दया और प्रेम नहीं भूल सकता। ब्रह्मानन्द! विदा। फिर न जाने कब मिलेंगे?

ब्रह्मा —(प्रभासे) दरवाजेतक पहुँचा आता हूँ।

(मोहन और ब्रह्मानन्द जाते हैं।)

प्रभा —(पहले निश्चेष्ट होकर खड़ी रहती है। बादमें पलंगपर बैठकर हाथोंसे अपना मुँह ढँक लेती है।)

(ब्रह्मानन्दका प्रवेश)

ब्रह्मा —(प्रभाके पास आकर पलंगपर बैठता है और अुसके कंधेपर हाथ रखकर) प्रभा, तुम्हारी बात नहीं मानी। तुमको बहुत तकलीफ़ दी।

प्रभा —(फूट-फूटकर रोनेकी आवाज सुन पड़ती है। सब निस्तब्ध।)

[पटाक्षेप]

(तेलुगुसे अनुवादक — श्री चा. सूर्यनारायण मूर्ति, बी. अे., साहित्यरत्न)

सन्यासी कवि लोष्ठक भट्ट

श्री प्रभात शास्त्री साहित्याचार्य, साहित्यरत्न

महाकवि मन्खक[1] ने श्रीकण्ठचरित नामका अेक महाकाव्य लिखा था। अिस काव्यका पच्चीसवाँ सर्ग अैतिहासिक दृष्टिसे बडा महत्वपूर्ण है। अिस सर्गमें कविने अपने भाअी लंकककी सभाको सुशोभित करनेवाले विभिन्न शास्त्रोंके प्रकाण्ड पण्डितोंका वर्णन बड मनोरंजक ढंगसे किया है। लंकक काश्मीरके तत्कालीन राजा जयसिंहके सान्धिविग्रहिक मन्त्री थे। कालके दुष्प्रभावसे अिस काव्यमें वर्णित नन्दन रम्यदेव रुय्यक श्रीगर्भ मण्डन श्रीकण्ठ गर्ग देवधर नाग त्रैलोक्य दामोदर जिन्दुक जल्हण श्रीगोविन्द कल्याण भट्ट श्रीवत्स स्यानन्द पद्मराज श्रीगुण लक्ष्मीदेव जनकराज प्रकट गुप्त आनन्द सुहल महाकवि शम्भु गोविन्दचन्द्र, जोगराज अपरादित्य आदिमेंसे कुछ ही ग्रन्थकारोंके नाम और कृतियोंसे हम अिस समय परिचित हैं।

मन्खकने अिसी परम्परामें कविवर लोष्ठक देवका वर्णन किया है। अिन्हींका दूसरा नाम लोष्टक भट्ट है। अिनके सम्बन्धमें अिन्होंने केवल तीन अनुष्टुप लिखे हैं जिससे पता चलता है कि[2] लोष्टक संस्कृतके सिद्धहस्त कवि और छह भाषाओंके अधिकारी विद्वान थे। अिन्होंने संस्कृतमें व्युत्पत्तिपूर्ण कअी ग्रन्थोंकी रचना की थी। समयके कुचक्रसे वीणापाणि वाणीके अिस वरद पुत्र कविके सारे ग्रन्थ लुप्त हो गये। अिस समय अेकमात्र कृति[3] दीनाक्रन्दनस्तोत्र प्राप्य है।

कविकी जन्मभूमि प्रकृतिकी विलासस्थली काश्मीर थी। अिनके पिताका नाम रम्यदेव अथवा देवरम्य था। अपने पिताकी चर्चा अिन्होंने दीनाक्रन्दन स्तोत्रमें की है। अेक रम्यदेवका अुल्लेख श्रीकण्ठ चरितके पच्चीसवें[4] सर्गमें है। ये ही रम्यदेव अिनके पिता थे अथवा अिससे भिन्न कोअी रम्यदेव थे यह निर्णय करना कठिन है। अिनके नामके साथ भट्ट लगा रहनेसे प्रतीत होता है कि ये जातिके ब्राह्मण थे। दीनाक्रन्दन स्तोत्र शिवजीके सम्बन्धमें लिखा गया है। अिससे यह सिद्ध होता है कि ये शैव मतके अनुयायी थे। अपनी तरुणाअी काश्मीरकी सुरम्य भूमिमें बिताकर अन्तिम समयमें संन्यासी होकर काशीवासी हो गये थे। लंकके सभापण्डितोंमें अिनका नाम चर्चित होनेके कारण अिस कविका जन्मकाल १०८० अी० के आसपास सिद्ध होता है क्योंकि लंकक काश्मीरके राजा सुस्सलदेव तथा अुनके पुत्र जयसिंहके सान्धि

---

1 निर्णयसागर प्रेस बम्बअीसे मुद्रित

2 देखिये—

> शान्दवतालिनीलोलाभूतपवषतिचातुरीम ।
> वदनाम्बुरुहे यस्य वअिभाषाऽधिशेरते ॥
> खलानां धूप्रबन्धेषु बुद्धयुत्पत्तिवमसु ।
> प्रोद्यच्चोद्यमया दूरे कुण्ठिता अिव पत्त्रिण ।
> कतिचिल्लोष्टदेवस्य तस्यतिसुखतोऽश्रणोत ।
> श्लोकक प्रतिप्रोतपादचाटरसा गिर ॥
>
> श्रीकण्ठचरित २५ सर्ग

3 निर्णय सागर प्रेस बम्बअीसे काव्यमाला गुच्छकके छठवें भागमें प्रकाशित।

4 देखिये—

> निस्तुषीकृतवस्तुष्य स्नयमासयसहृते ।
> घत प्रणयिपारम्य रम्यदेव समभ्यत ॥
>
> श्रीकण्ठचरित २५ सर्ग

5—देखिये—

> निवेशिने सुस्सलभूविडौजसा
> स्वयं गरीयस्यपि सान्धिविग्रहे ।
> विधाय चक्रे स्वयशोमयीं लिपिं
> ■ लेखवर्गस्य विमुद्रमाननम ॥
>
> श्रीकण्ठचरित ३ सर्ग

विग्रहिक मत्री थे। अितिहासकार जयसिंहका शासन-काल ११२९ औ से ५० तक मानते हैं।

अिन्हें अपनी कृतिपर अत्यधिक आत्मविश्वास था। अिनकी रचनाअें अत्यधिक दुरूह होती थी। मट् खकने अिनका परिचय देते हुअे अिनके ग्रन्थोंके सबन्धमें 'यत्प्रबन्धेषु दृढव्युत्पत्तिवर्मसु' लिखा है—अर्थात् जिनके ग्रन्थ सुदृढ ज्ञानरूपी कवचके समान हैं। बडे दुर्भाग्यकी बात है कि अिनके वे सब ग्रन्थ अिस समय नहीं मिलते, जिनके सहारे साहित्य-जगत् अिनके पाण्डित्य और प्रतिभासे पूर्णरूपेण परिचित होता। अिनका शास्त्रीय ज्ञान बडा व्यापक था। [1] महान् सभ्रान्त परिवारमें जन्म लेकर अिन्होंने भी वाङ्मय रूपी विशाल पारावारका हनुमान्के समान सतरण किया था। अिसीसे अिन्हें कुछ लोग लोष्ट सर्वज्ञ कहते थे। 'सूक्तिमुक्तावली' प्रणेता-दाक्षिणात्य जल्हणने तो 'लोष्टक भट्टकी अपेक्षा 'लोष्ट सर्वज्ञ'के नामसे ही कवि-काव्य-प्रशसा प्रकरणमें अिनके दो श्लोक अुद्धृत किये हैं, अुनमेंसे अेक अिनकी दर्पोक्ति है—

प्रकृत्यैवातिवक्रेण, गुणवैध्यं वितन्वता।
मया शरासनेनेव, बाणो दूरं निरस्यते॥

स्वभावसे ही टेढे और डोरीको फैलाये हुअे धनुष द्वारा जैसे बाण दूर फेंक दिया जाता है, अुसी तरह प्रकृतिसे ही वक्रोक्तिपूर्ण रचनाका अभ्यासी तथा काव्यमें गुणके महत्त्वका विशेषरूपसे विस्तारक मैंने भी (अपनी कृतियोंके महत्त्वसे), बाणको दूर फेंक दिया है।

अिससे प्रतीत होता है, कि कविवर बाणके समान लोष्टक ओज, माधुर्य और प्रसाद अिन तीनों गुणकी अभिव्यक्ति-पूर्ण रचनामें अत्यधिक दक्ष थे। सम्भवत बाणकी कादम्बरीके समान अिन्होंने कोअी गद्य काव्य लिखा हो।

१— अभवो जन्मवशो सुमहति विहितो
वाङ्मयाम्बुधी हनुम—
त्सतरणो......................।

दीनाक्रन्दनसे

सूक्तिमुक्तावलीके अुसी प्रकरणमें अरसिक श्रोताओंसे सबन्धित अिनकी व्यथाभरी दूसरी रचना देखिये—

केचिद्गर्वगलग्रहेण विषमद्वेषज्वरेणापरे,
केचिन्मौर्ख्यमलेन सततममीलन्ति शान्तोलरा।
तद्भो! मन्दिरभित्तयो, भवत नस्सूक्तेषु सभ्या पुनः
तत्पाठे वरमस्तिवो 'घम्' 'घम्' प्राय किमप्युत्तरम्॥

कुछ श्रोतागण गर्वरूपी गलग्रहसे ग्रसित हैं और कुछ भीषण विद्वेष-ज्वरसे प्रपीडित हैं, दूसरे अपनी निन्दनीय मूर्खताके कारण विवश हैं। अिसीसे ये लोग (सूक्ति सुननेके बाद) सदा मौन रहते हैं और अुत्तर देनेमें अिन्हें सकोच होता है। अत मदिरके दीवालो; मेरी सूक्तियोंके श्रोता तुम्हीं हो जाओ। फिर तो सूक्ति-पाठके समय तुम्हारा (प्रतिध्वन्यात्मक) घम्, घम् जैसा कुछ अुत्तर तो (मौनावलम्बनकी अपेक्षा) अच्छा रहेगा।

अपनी कृतियोंकी विडम्बना करनेवाले अिन व्यक्तियोंके प्रति अिन्होंने कितना तीखा और मीठा व्यग्य किया है। जान पडता है कि अिस कविको अपने जीवन-कालमें तत्कालीन विद्वत्समाज द्वारा अच्छा सम्मान नहीं मिला।

लोष्टकका व्यक्तिगत जीवन भी दुःख दर्द भरी कहानीसे ओत प्रोत है। अिन्होंने 'दीनाक्रन्दन स्तोत्र'की रचना यद्यपि भगवान् शकरकी स्तुतिमें की है, किन्तु अिसे अिनकी आत्मकथा कहें तो अत्युक्ति न होगी। [illegible] जहाँपर कवि अपने व्यक्तिगत जीवनके सबन्धमें कुछ कहने लगता है—

मोहात्कृत परिणयोऽप्यनयो महीयान्,
मूल समस्तभवबन्धनदुर्नयानाम्।
यस्मादुदेत्य दुरपत्यजननेन सृष्ट.
स्नेहोऽस्मि वेष्टित अिवोल्कटनागपाशैः॥
तत्पोषणाय विदुषापि मया समस्तमौ-
चित्यमुज्झितवताऽस्तवता कुकृत्यम्।
द्वारि द्ववल्लोहितमेव कदीश्वराणाम्।
सोढोवमानशनविक्लवमानसेन॥

'दीनाक्रन्दन' से

मैंने मोहवश सामाजिक मार्ग बन्धन और दुर्गतिका प्रधान कारण अनीतिपूर्ण विवाह भी कर लिया, जिससे उत्पन्न हुये दुष्ट पुत्रोंके स्नेह जालने मुझे भयंकर नागपाशकी तरह घेर लिया है।

उन दुष्ट (पुत्रों) के पालन-पोषणके लिये विद्वान् होते हुये भी मैंने उचित और अनुचितका परित्याग करके तथा निन्दनीय कृत्योंका सहारा लेकर सैकड़ों अपमानोंसे विक्षुब्ध हृदय होनेपर भी बुरे राजाओंके दरवाजोंपर कुत्तेकी तरह पूछ हिलायी है।

कविने इन इलोकोंमें कष्टपूर्ण अपने घरेलू जीवनके सम्बन्धमें संकेत मात्र किया है। सोड्ढलने अपने विवाहको 'अनीतिपूर्ण' बतलाया है। इससे आभास होता है, कि इन्होंने किसी तरुणीके प्रेमपाशमें फँसकर अन्तर्जातीय अथवा पारिवारिक अभिभावकोंकी इच्छाके विरुद्ध प्रेम विवाह कर लिया हो। मेरी समझमें अनीतिपूर्ण विवाहका यही अभिप्राय हो सकता है। यह बात सत्य है कि कवि* की पत्नी प्रेमिकायें थी। उन्हींके चक्करमें इनका कुछ समय व्यतीत हुआ। इनके लड़के भी अयोग्य थे, जिनके भरण-पोषणके लिये इन्हें बुरे राजाओंके राजदरबारकी शरण लेनी पड़ी। 'कदीश्वराणाम्' से किस राजाकी ओर इनका इशारा है, इसका निर्णय करना कठिन है। 'कदीश्वराणाम्' के बहुवचनसे यह भी ध्वनित होता है, कि इस स्वाभिमानी कविको अपने परिवारके पालन-पोषणके लिये एक हो नहीं, कई राजाओंके यहाँ जाकर दरबारदारी करनी पड़ी और अन्तमें इनकी किसीसे नहीं बनी। यह तो निश्चित है, कि ये मङ्खकके साथी लङ्ककी सभामें जाते थे। लङ्क राजा तो नहीं किन्तु राजमंत्री थे। इन्होंने लङ्ककी चाटुकारीमें कुछ श्लोक लिखे हैं, जिनकी संख्या ग्यारह है। उन श्लोकोंको 'श्रीकण्ठ चरित' काव्यके पच्चीसवें सर्गमें मङ्खकने उद्धृत किया है। उदाहरणार्थ—

मार्गे परस्य पवि वाक्यकथाप्रधानाम्,
मानस्य वर्त्मनि च कन्दलितानिवेक।
राज्ञेव मन्त्रिवर लङ्क! भुवितदेव्या
सर्वाधिपत्यपदवीमधिरोपितोऽसि॥

दीनाक्रन्दन'से

व्याकरणमें न्यायशास्त्रकी सम्पूर्ण वाक्यावलीमें तथा सम्मानके क्षेत्रमें हे मंत्रिवर लङ्क! देवी सरस्वती द्वारा राजाके समान अभिषिक्त होकर (आप) प्रत्येक क्षेत्रमें अधिकारपूर्ण स्थानपर बैठा दिये गये हैं।

कविको किस प्रकार कुछ अर्थलाभके लिये अपने स्वाभिमानको तिलाञ्जलि देकर 'लङ्क सब शास्त्रोंके पण्डित हैं" इसकी घोषणा कर देनी पड़ी। हालांकि संस्कृत साहित्यमें इनका बनाया हुआ एक अनुष्टुप् भी नहीं पाया जाता। जिनकी अवस्था इनके साथीकी गणना संस्कृतके अच्छे कवियोंमें होती है।

पद मानवको मदोन्मत्त बना देता है। लङ्क मंत्री थे। मंत्रीभी प्राचीनकालमें एक छोटा-मोटा राजा होता था। संस्कृतकी एक कहावतके अनुसार 'स्तुतिप्रिया सन्ति च मन्त्रिलोकाः' अर्थात् मंत्री लोग खुशामद पसन्द होते हैं। इस परिस्थितिमें सङ्खकके स्तुतिवादी सभा सोचकोंने जिस बाणभट्टके सम्बन्धमें[1] "कुछ लोग श्लेषात्मक रचनामें, कुछ शब्दोंके गुम्फनमें, कुछ इसकी अभिव्यक्तिमें, कुछ अलंकारकी भरमारमें, कुछ सुन्दर अर्थके प्रकटीकरणमें तथा कुछ कथाके वर्णनमें कुशल होते हैं, किन्तु बड़े आश्चर्यकी बात है कि महाकवि बाणभट्ट तो गम्भीर कवितारूपी विन्ध्य-वनमें चतुरताके साथ भ्रमण करनेवाले तथा महान्‌कवि कुंजरोंके मस्तकको विदीर्णकर्ता, वज्ररूपी सिंहके समान हैं" लिखकर बाणको कविकुंजरोंके पराजेता बताया— उसी बाणको अपने आगे कुछ न समझनेवाले तथा छह छह

*— देखिये—

'सैकस्मात्स्लुठित चिर चरणयो स्त्रीणां गुरूणां न तु।
'दीनाक्रन्दन' से

1-इलेषेकेचन शब्द गुम्फ विषये केचिद्रसे चापरेऽ—
लङ्कारे कतिचित् सदर्थं विषये चान्ये क्थावर्णने।
आ! सर्वत्रगभीरधीरकविताविन्ध्याटवी चातुरी—
सञ्चारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चानन॥

भाषाओंके प्रकाण्ड पण्डित लोष्टककी लक्ष्से अन्तमें अनशन हो गयी। जो कुछ भी हो इस कविका जीवन महान् संघर्षात्मक था, इसमें अणुमात्र भी संदेह नहीं। सम्भवतः जीवनके इन्हीं संघर्षोंने इन्हें अपनी जन्मभूमि काश्मीर छोडकर काशीमें सन्यासीका जीवन व्यतीत करनेके लिये विवश किया हो।

मेरी तो धारणा है, कि यदि ये काशी न आये होते तो साहित्य-क्षेत्रमें इनके अस्तित्वकी पूर्णरूपेण समाप्ति थी। इन्होंने काश्मीरमें जितने ग्रंथ लिखे, उनमेंसे इस समय एक भी नहीं मिलता। काश्मीर सदियोंसे राजनीतिक उथल-पुथलका मुख्य केन्द्र रहा। असम्भव नहीं, कि वहाँकी वसुन्धराने इनके रत्नग्रंथोंको भी अपने अन्दर धारणकर लिया हो। 'दीनाक्रन्दन स्तोत्र' की रचना तो इन्होंने काशीमें रहकर की थी। इसीसे यह ग्रंथ बच भी गया।

अब इस कविकी कुछ रचनाओंका आनन्द लें। कवि आशुतोष शंकरसे निवेदन कर रहा है—

दुर्वारसंसृतिरुजा भृशकादिशीक—
स्त्वामोषधिपतिभृत सुकृतैरवाप्य।
आवेदयामि यदहं तदवेत्य निदान
तत्रावधेहि कृपया कुरु मय्यवज्ञाम्॥
'दीनाक्रन्दन' स्तोत्रसे

कठिन सांसारिक रोगोंसे (अत्यधिक परेशान होकर) भयके साथ तेजीसे भगा हुआ मैं औषधिपति ('चन्द्रमा') धारी तुमको पूर्वजन्मके पुण्य प्रभावसे प्राप्त करके (तुमसे) जो निवेदन कर रहा हूँ, तुम्हारा उसके निदान (मूलकारण) की ओर ध्यान जाना चाहिये। हे भगवान् (शरणागत) इस (जन) का तिरस्कार न करें।

इस श्लोकमें 'औषधिपति' शब्दमें अत्यधिक चमत्कार है। संस्कृतमें औषधिपति वैद्यको भी कहते हैं। रोगी परेशान होकर वैद्यके पास रोगके निदानके लिये जाता है और आशा करता है कि वह उसे रोगसे मुक्त कर दे। इसी प्रकार यदि सांसारिक रोगोंसे परेशान होकर स्पष्टक भट्ट औषधिपतिधारी शंकरसे मुक्ति प्राप्ति करनेकी इच्छा करता है तो यह अनुचित माँग नहीं।

एक श्लोकका और रस लें। सारी तरुणाई तरुणियोंके कोमल भुजपाशकी छायामें व्यतीत करनेवाला अतएव नैतिक दृष्टिसे समाजके सामने महान् अपराधी यह कवि सच्चाईके साथ अपने इस अपराधको स्वीकार करता हुआ शंकरसे सहायताकी याचना कर रहा है —

भ्रष्टोऽस्मि यद्यपि सतां चरितात्तथापि।
मां त्रातुमर्हसि कृतान्तभिया श्रयन्तम्।
नो साधवो विदधते सदसद्विवेकम्,
प्रह्वेषु विह्वलतया शरणागतेषु॥
'दीनाक्रन्दन' स्तोत्रसे

हे भगवन् यद्यपि मैं साधुजनोंके चरित्रसे गिर गया हूँ इसपर भी यमराजके भयसे आपकी शरणमें मैं आया हूँ। आप मेरी रक्षा करनेमें समर्थ हैं, क्योंकि परेशान होकर आये हुये विनम्र शरणागतके विषयमें बड़े लोग सज्जन और दुर्जनका विचार नहीं करते।

कवि कितनी सीधी-सीधी भाषाके सहारे तर्कपूर्ण शैलीमें अपनी सहायताके लिये भगवान् शंकरसे हठ कर रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि कोई वकील जजके समक्ष अपने अभियुक्तको छुड़ानेके लिये वकालत कर रहा हो।

राजदरबारोंकी चमक दमक, साहित्यिक-साधना तथा घरेलू अन्य समस्याओंमें सर्वदा व्यस्त रहनेके कारण कविको कभी भी भगवान् शिवकी सेवाका सुअवसर तो मिला नहीं। इस दशामें क्षणिक सेवाके बलपर किसीसे कुछ पानेकी आशा करना कहाँ तक युक्तिसंगत है-इसे कवि अपनी आलंकारिक शैलीमें दृष्टान्त देकर युक्तिपूर्ण सिद्ध करनेका प्रयत्न कर रहा है—

पूर्वं न चेद्विरचिता तव देव! सेवा,
तेनैव नेश इयता क्षपणो मनागिम्।
किं प्रागसस्तुत इति प्रतिपन्नमूल-
च्छायं गतश्रमरुजं न तरुः करोति॥
'दीनाक्रन्दन' स्तोत्रसे।

हे देव मैंने (जिसके) पूर्व तुम्हारी सेवा नहीं की। सम्भवत जिसीसे सकटमें पडे हुअे जिस व्यक्तिकी (तुम) रक्षा नहीं करते (यह अुचित नहीं है)। क्या वृक्ष, पहलेसे स्तुति न किये जानेपर अपने तले छायाके लिअे आये हुअे (बटोही) जनोंकी थकावटको दूर नहीं करता?

जिस श्लोकमें भट्टजीने अेक वृक्षका दृष्टान्त अधिक विचारके पश्चात् दिया है। यदि चेतनाहीन तरु पहलेसे अपरिचित पथिकाको शीतल छाया प्रदान करके अुसकी सहायता करता है, तो भगवान्! आप तो तरुकी अपेक्षा चेतनाशील हैं और आपका नाम आशुतोष (शीघ्र सन्तुष्ट होनेवाला) भी है– अत यातनामय जीवनयापन करनेवाले जिस दीनहीन जनकी प्रार्थना सुनकर जिसके कष्टको अवश्य दूर करें।

कवि भगवान् शकरके प्रेममें अपने सुध-बुधको भूलकर कितना तन्मय हो जाता है और अुसके मनकी क्या स्थिति है?

> द्वारे लुठामि करुणं प्रलपामि शम्भो!
> याचामि चुम्बितमथो परिरम्भणत्वाम्।
> वातूलतामुपगतोऽस्मि तवानुरागात्,
> हा दु सहस्त्वयि ममैष दृढोऽनुरागः॥
>
> 'दीनाक्रन्दन' स्तोत्रसे।

हे भगवन्! मैं (तुम्हारे) दरवाजेपर लोट रहा हूँ, (बड़ी) कारुणिक स्थितिमें विलख रहा हूँ और अुसके बाद तुम्हें पकडकर चूमनेकी अिच्छा करता हूँ। (अिस तरह) तुम्हारे प्रेममें मैं बातूनी-सा हो गया हूँ। क्या करूँ तुममें मेरा यह घनिष्ठ प्रेम तो अधिक असह्य होता जा रहा है। अैसा आभास होता है, कि कवि अपने आराध्य देव भगवान् शकरके प्रेममें अर्ध विक्षिप्त-सा हो गया है। अिष्टदेवके घनिष्ठ प्रेममें विक्षिप्त होना सच्चे भक्तका लक्षण है। अिस दशामें कविका बातूनी हो जाना स्वाभाविक ही है।

राजसी शान शौकतसे रहनेवाले भगवान् विष्णुकी अुपासनाको छोडकर यह राजदरबारी कवि दिगम्बर शकरका अनन्य भक्त क्यों हो गया—जिसे पढ़िये —

> दिव्योत्तरीयभृति कौस्तुभरत्नभाजि,
> देवेऽपरे दधतु लुब्धधियोऽनुबन्धम्।
> रूप दिगम्बर मखण्डनृमुण्डचूड
> भावत्कमेव तु यतेश मम स्पृहायै॥
>
> 'दीनाक्रन्दन' स्तोत्रसे।

सुन्दर दुपट्टा और कौस्तुभमणिकी मालाधारी भगवान् विष्णुका (कुछ प्राप्तिकी आशासे) अन्य लोभी जन (भले ही) अनुसरण करे, (पर) दिगम्बर आपका रूप जो अखण्डित नरमुण्डकी मालासे सुशोभित है—बड़ी प्रसन्नताके साथ मैं अुसीकी अिच्छा करता हूँ।

भट्टजीका यह स्तोत्र शिवजीके प्रति अिनकी अिसी प्रकारकी असीम-भक्ति और अटूट भाव धाराके द्योतक भावनाओंसे ओतप्रोत है। सस्कृतमें स्तोत्रका भी विशाल साहित्य है। अिस कविके प्रदेशके निवासी जगद्धर भट्ट केवल "स्तुति कुसुमाञ्जलि" लिखकर सस्कृतके महा-कवियोंमें[१] परिगणित किये जाते हैं। लोष्टकका यह स्तोत्र भी अपने सफल शब्द विन्यास तथा हृदयस्पर्शी, स्वाभाविक अर्थगरिमाके बलपर सस्कृत-साहित्यका अमूल्य रत्न है।

अिनकी कुछ फुटकल रचनाअें भी सुभाषित ग्रन्थोंमें पायी जाती हैं। काश्मीरी विद्वान् वल्लभदेव द्वारा सकलित[२] 'सुभाषितावली' में अुपर्युक्त स्तोत्रसे अेक श्लोक[३] 'कस्यापि' करके अुद्धृत है। बगाली पडित श्रीधरदासके[४] सदुक्तिकर्णामृतम् नामक सग्रहात्मक सुभा-षित पुस्तकमें भी अिनका अेक श्लोक मिलता है। साहित्यिक दृष्टिसे सदुक्तिकर्णामृतम्में सग्रहीत अिनके अेक ही श्लोकका अत्यधिक महत्व है। श्रीधरदास बगालके विद्याप्रेमी राजा लक्ष्मण सेनके दरबारसे

---

१ निर्णय सागर प्रेस बम्बअीसे प्रकाशित।

२ अेजुकेशन सोसायटी प्रेस बाकुला बम्बअीसे प्रकाशित।

३—देखिये—

सुभाषितावलीका तीन हजार पाँच सौ छब्बीसवाँ श्लोक तथा दीनाक्रन्दनस्तोत्रका बाअीसवाँ।

४ मोतीलाल बनारसीदास (काशी) के यहाँसे प्रकाशित।

सबधित थे। 'सदुक्तिकर्णामृतम्'का[5] रचनाकाल १२०५ ओी है। अिस ग्रन्थमें अिनकी कृति आ जानेसे यह सिद्ध होता है कि भट्टजी अपने जीवनमें ही अखिल भारतीय ख्यातिके कवि हो गये थे। यदि यह बात न होती तो १०८० ओी के आस-पास समुत्पन्न अिस कविकी कृति वैज्ञानिक यातायात तथा मुद्रणालय सबधी सुविधाओंसे रहित प्राचीन कालमें कश्मीरसे वगाल अितनी जल्दी कैसे पहुँच गयी? सदुक्तिकर्णामृतम् सग्रहीत अिनका श्लोक अिसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। किन्तु अिस कर्णामृतमकी अग्रेजी भूमिकामें अिसके विद्वान् सपादक डा० हरदत्त शर्मा अेम अे, पी-अेच डी. द्वारा अिस कविके बारेमें "नो अिन्फारमेशन" लिखा हुआ देखकर मुझे महान् आश्चर्य हुआ।

डा महोदयकी अिस प्रकारकी विज्ञाप्तिको अिस प्रेस-युगमे देखकर अुनकी परिश्रमशीलतापर तरस आता है। यदि अुन्होंने तनिक भी श्रम किया होता तो अिस प्रकारकी प्रमादपूर्ण बात न कहते।

लेख समाप्ति करनेके पूर्व पाठकगण कश्मीरसे बगालकी शस्यश्यामला भूमिमें पहुँची हुअी वर्षा वर्णन विषयक अुस कृतिको पढनेका कष्ट करे।

> व्याप्यान्तरीक्षककुभावनुभूभृदग्र,
> सान्द्रान्धकारगहनासु निशासु गर्जन्।
> संधीवयते विरहिण क अिह म्रियन्ते
> वर्षासु विद्युदुरुदीपिकयेव मेघ ॥
>
> 'सदुक्तिकर्णामृतम्' से।

वर्षाकी ऋतुमें पहाडकी चोटियोंके पास आकाश और दिशाओंको घेरकर घने अन्धकारसे भरी हुअी रातमें गरजते हुअे मेघ अुस प्रदेशमें दीपकके समान चमकती हुअी बिजुलीके सहारे दिखलायी पड रहे है। अैसे समयमें (शायद ही) कोअी वियोगी जीवित रह सकता।

---

५ शाकेऽब्द सप्तविंशत्यधिकशतोपेतदशशते शरदाम्।
श्रीमल्लक्ष्मणसेनक्षितिपस्य रसैकविंशेऽब्दे ॥
सवितुर्गत्या फाल्गुनविंशेषु परार्थहेतवेऽकुतुकात्।
श्रीधरदासेन 'सदुक्तिकर्णामृतम्' चक्रे ॥
—सदुक्तिकर्णामृतम्; ३२८ पृष्ठ।



प्रेमका भूत

श्री प्रो हरिमोहन झा अेम अे

अुस दिन पडित गोनौर झाको अस दशाम देखकर म आश्चयचकित रह गया। यही वे पडितजी ह जो सदा शानसे लाल धोतीपर रेशमी चादर और महम पानका बीडा रख चलते थ। वही आज फटी धोतीपर मला कुचला गमछा रख हुअ ह ओठ सूख हुअ ह। जिन बालाम चमेलीका तेल चपचप करता रहता था अुहीसे अभी धूल अुड रही है।

मन पूछा—पन्तिजी आप तो बहुआअिन-साहिबाकी डयोढीम रहते ह न ?

पडितजी बोले—रहना था। पर तु अब नही।

मन पूछा—सो क्यो ?

वे बोले—भाग्य !

मन कहा—आपकी तो खूब चलती थी। बल्कि अुस जगहके कर्ता धर्ता विधाता सब कुछ आप ही थ। फिर असी हालत क्यो ?

पडितजी बोले—यह सब ठीक है। बहुआअिन साहिबाकी मुझपर असीम कृपा रहती थी। वहातक कि स्टटकी तरफस लाखराज ब्रह्मोत्तर भी मिला था। मेरे रहने और भी कितन लोगोको वत्ति मिला करती थी। परन्तु अब कुछ नही —

बहिर्भाति यदा लक्ष्मी
गजभुक्त कपित्थवत।

मन पूछा—सो क्यो पडितजी ? कुछ न कुछ कारण तो अव य होगा।

पडितजी बोले—कारण सोचिय तो कुछ नही और नही तो है बहुत कुछ। परन्तु अिस जगह बाते करना ठीक नही होगा ! अुस घाटपर चलिय।

हम लोग गगाजीके अका त घाटपर आय। पडित जीन गमछसे चबूतरा साफ किया। फिर मुझ नजदीक बिठाकर कहने लग—बात यह हुअी कि बहुआअिन साहिबाको अपनी वशावली छपानेकी अिच्छा हुअी। यह काम मुझ सौंपा गया। मन अपन जानते जहाँतक हो सका खूब बढा चढाकर अुनकी प्रशसा लिखी। अुनके कुल परिवारम जो जो हो गय ह सबका गुणानुवाद किया। पढकर सुनाया तो बहुत प्रसन्न हुअी। आशा थी कि ग्रथ छप जानपर दरबारसे अितना पुरस्कार मिलेगा कि ज म भरके लिअ सारा दु ख दारिद्र्य मिट जाअगा। परन्तु हुआ ठीक अिसके विपरीत !

मेरी अुत्सुकता और बढ गयी।

पूछा—सो कसे ?

पडितजी बोले—मन वह सब अक प्रसमें छापनेके लिअ दिया। आप तो जानते ही ह कि हम लोग पडित आदमी ह। कल-पुजकी बात विशष समझते नही। अुसन कहा कि—अक महीनम छापकर भिजवा दूगा। ५००) रुपय लगग।

रुपय दरबारसे मिले ही थ। मन अिस ख्यालसे कि अच्छी तरहसे छाप देगा रुपय अग्रिम ही दे दिय।

सोचा कि जबतक यह छपता है तबतक जरा व दावनकी ओर घूम आअू। झूलनका समय था। मनम हुआ जरा कृष्णका रास देख आअू। परन्तु भाअी ! वही मरा काल बन गया !

मन पूछा—क्या पडितजी ! क्या प्रसन धोखा दिया ? समयपर नही छापा ? पडितजी बोले—आह ! यह बात होती तो क्या था ! परन्तु म जबतक व दावनसे लौटकर आअू-आअू तबतक पुस्तक छपकर दरबारमें पहुच गयी।

मन कहा—तब कसी चिन्ता ? पन्तिजी बोले—अरे बाप ! सुनिय भी तब न ? म दरबारमें पहुँचा नही कि अ दर हवेलीम बुलाया गया। अक ओर बहुआअिन साहिबा बठी थीं दूसरी तरफ अुनकी माँ। दोनोका चेहरा क्रोधसे तमतमाया हुआ ! यह दृश्य देखते ही मेरा तो प्राण सूख गया !

बहुआिन कडककर बोली—आप जिस पत्तेमें खाते हैं बुसीमें छेद करते हैं ? जिसीलिअे दरबारसे वृत्ति मिलती थी ?

मैंने हाथ जोडकर कहा—सरकार, मुझसे कौनसा अपराध हुआ है ?

वे डॉटकर बोली—हम लोगोंके बारेमें जैसी-तैसी बातें छपवा आये और अब अनजान बन रहे हैं ?

मैंने भयका भाव बतलाते हुअे पूछा—कौनसी बात सरकार ? वे बोली—मेरे नामके पहले "वारागना" शब्द जोडते हुअे आपको शर्म नहीं आयी ?

तबतक अनकी माँ डाँट-फटकार करने लगी—क्यों जी ! मेरे पिताजी 'बहलमान' (गाडीवान) थे ?

बहुआिन चमकती हुअी बोली—और मेरे पिताजी मुर्गाके प्रेमी थे ? रण्डीकी अपासना करते थे ?

अितनेमें न जाने किधरसे मैनेजर साहब फट पडे—क्यों जी ! मैं स्टेटको "लाहेब" (सत्यानाश) करता हूँ ? आपपर मुकदमा क्यों नहीं चलाया जाअे ?

मेरी तो सिट्टी-पिट्टी गुम ! मुँहसे आवाज ही न निकली।

बहुआिन बोली—अितने दिनोंसे जिस दरबारका नमक खाते रहे, अुसके प्रति यह कर्त्तव्य अदा किया ? जाअिये, आजसे आप बरखास्त !

मैनेजर बोले—और अूपरसे मानहानिका दावा भी आपपर किया जाअेगा। हर्जानाकी नालिश भी !

मैं बहुत रोया-धोया। परन्तु सब व्यर्थ। बहुआिन साहिबाने मेरे आगे किताब पटक दी और कहा—देखिये तो, ड्योढीके बारेमें आपने क्या लिखा है ? जिसे जो भी पढेगा क्या कहेगा ?

जो कुछ छपा था वह देखकर मैं भी काँप अुठा !

मैंने पूछा—क्या सब छप गया ?

पंडितजी बोले—क्या कहूँ ? अैसा बेवकूफ छापाखाना था, कि पंक्ति-पंक्ति अशुद्ध छाप दी। "वीरांगना" को 'वारागना', 'पहलवान'को 'बहलमान', 'दुर्गा'को 'मुर्गा', 'चंडी' को 'रंडी' ! मैंने लिखा था—"स्टेटकी तरक्की मैनेजर साहेब करते हैं।" सो "साहेब" को "लाहेब" कर दिया। बुच्चीकी प्रशंसामें लिखा था कि "ड्योढीमें बुच्चीकी शोभा देखकर लोग मुग्ध हो जाते हैं।" अुस जगह अैसी कवीकी बात छप गयी कि क्या कहूँ ?

मेरे भाग्यका ही दोष !

मैंने पूछा—तब क्या हुआ ?

पंडितजी बोले—मैंने कहा कि मैं अपने खर्चसे शुद्धि-पत्र लगा देता हूँ। परन्तु यह अुन लोगोंको मंजूर नहीं हुआ। क्योंकि अनेक स्थानोंपर अत्यन्त अश्लील बातें छप गयी थीं।

मैंने पूछा—वह क्या ?

पंडितजी बोले—सभी बातें बोलने योग्य नहीं। मैंने अेक जगह लिखा था पंडित-गुणीको 'डेरा' मिलता है। सो 'केरा' (केला) छप गया। अेक जगह था कि मैनेजर साहेब महिला विद्यालयके लिअे चन्दा जमा कर रहे हैं। परन्तु मेरे फूटे भाग्यसे छप गया 'फंदा', जिसने अनर्थ कर दिया।

मैंने पूछा—तब अन्तमें क्या हुआ ?

पंडितजी बोले—होगा क्या ? विधवाका दरबार ! लोगोंने बता-चटा दिया। मुझे जो कुछ मिला था सब छीन लिया गया। बहुत हाथ-पैर पटकनेपर मुकदमा वापिस ले लिया गया।

मैंने पूछा—तो अब क्या कर रहे हैं ?

पंडित गोनौर झा नस्य लेने हुअे सिर पीटकर बोले—करूँगा क्या ? अेक प्रेसमें प्रूफ संशोधकका काम मिल रहा है, सो करूँ या नहीं यही सोच रहा हूँ। आपकी क्या राय है ?

मैंने कहा—पंडितजी, और जो चाहे कुछ कीजिये, परन्तु यह काम तो नहीं कीजिये। नहीं तो आपकी कृपासे कितने 'साहेब' 'लाहेब' हो जाअेंगे, 'पंडित' 'लंडित' हो जाअेंगे, 'अबला' 'प्रबला' हो जाअेंगी, 'असूता' 'प्रसूता' बन जाअेंगी। 'वैश्य' को 'वेश्या' और 'वर-वधू' को 'वार-वधू' होने क्या देर लगेगी ? कितनी 'सुन्दरी' 'छुछुंदरी' बन जाअेंगी। यदि आपको दया हो तो यह काम न कीजिये।

पंडितजी बोले—ठीक कहते हैं। जहाँ जरा भी आँखें चूकीं कि 'सूत्र' से 'मूत्र' हो जाअेगा। यह काम हम लोगोंके लायक नहीं। जिसको चावलका कण चुननेका अभ्यास हो वही प्रूफ-रीडरी करे।

मैंने कहा—अच्छा तो अब आज्ञा मिले। मेरी भी अेक पुस्तक प्रेसमें छप रही है, श्रीमान बाटू साहबकी प्रशंसामें लेख है। कहीं आपकी कथावालीवाली गति हो गयी तो अनर्थ ही हो जाअेगा।

[मैथिलीसे अनुवादिका—श्रीमती सीता सिन्हा]

अीश्वर

बंगला : श्री काजी नजरुल अिस्लाम :

के तुमि खुँजिछ जगदीशे भाअि आकाश पाताल जूडे
के तुमि फिरिछ बने जगले, के तुमि पाहाड चूडे ?
हायऋषि-दरवेश,

बूकेर मानिक बूके धरे तुमि खोज तारे देश-देश।
सृष्टि रयेछे तोमा पाने चेये तुमि आछ चोख बूजे,
स्रष्टार खोंजो—आपनारे तुमि आपनि फिरिछ खुँजे,
अिच्छा-अन्ध ! आँखि खोलो, देख दर्पणे निज काया,
देखिबे, तोमारि सब अवयवे पडे छे ताँहार छाया।
शिहरि अुठोना, शास्त्रविदेर करोनाक बीर, भय—
ताहारा खोदार खोद् "प्राअिभेट सेक्रेटारी" तनय !
सकलेर माँझे प्रकाश ताँहार, सकलेर माँझे तिनि !
आमारे देखिया आमार अदेखा जन्मदाताारे चिनि !
रत्न लअिया बेचा केना करे वणिक सिन्धु कूले—
रत्नाकरेर खबर ता बले पूछो ना ओदेर भूले
अुहारा रत्न बेने,
रत्न चिनिया मने करे ओरा रत्ना करे ओ चेने !
डूबे नाअि तारा अतल गभीर रत्नसिन्धुतले,
शास्त्रना घेँटे डूब दाओ सखा, सत्यसिन्धु-जले।

हिन्दी : श्री कैलासविहारी सहाय :

कौन खोजते तुम अीश्वरको भटक-भटक अम्बर-पाताल ?
ढूँढ ढूँढ जगल-पर्वतमें, सखे, हुअे तुम व्यर्थ बेहाल।
हाय ऋषि दरवेश !

अुरका मानिक अुरमें ही था खोज रहे थे देश-विदेश।
सृष्टि तुम्हारी ओर देखती, आँख मूँद तुम करते ध्यान।
स्रष्टाका कर खोज, हाय, तुम निजका ही करते सधान।
अिच्छा-अन्ध ! आँख तो खोलो, देखो दर्पणमें काया,
देखोगे अपने सर्वांगोंपर पडती अुसकी छाया।
सिहरो मत, मत डरो देख शास्त्रज्ञोंका दुर्जेय प्रभाव,
अरे, खुदाके 'प्राअिवेट सेक्रेट्री' हैं क्या ये महानुभाव !
सबमें है आलोक अुसीका, सबमें वह सत्ता है व्याप्त
मुझे देख मेरे स्रष्टाका परिचय प्राप्त करो पर्याप्त।
सिन्धु किनारे रत्न वणिक रत्नोंका करते क्रय विक्रय
किन्तु भूलकर भी मत पूछो रत्नाकरका तुम परिचय।
रत्न बेचते हैं ये सब—बस रत्नोंकी करते पहचान,
और समझते हैं वे मनमें, रत्नाकरका हमको ज्ञान।
डूबे हैं वे नहीं कभी रे अतल रत्न-सागर तलमें,
शास्त्रोंको मत मथो, सखे, डुबकी लो सत्यसिन्धु-जलमें।

गीत

: श्री गिरधर गोपाल, अेम. अे. :

तुमने मुझको देखा मेरा भाग खिल गया।
मेघ फटे सूरज निकला हिल अुठीं दिशाअें,
दूर हुअीं पथसे बाधा मनसे चिन्ताअें,
तुमने अंक लगाया मेरा शाप धुल गया।
केंचुल छूटी आज नया मैं रूप रहा धर
ज्योति हृदयके भीतर ज्योति हृदयके बाहर,
तुम मुस्काअे सपनोंको आकार मिल गया।
धरतीके नूपुर नभकी बाँसुरिया बाजे,
मेरे आगे खुलतेसे जाते दरवाजे,
तुम कुछ बोले मुझको जीवन सार मिल गया।

गीत

: श्री 'नीरज', अेम. अे. :

परस तुम्हारा प्राण बन गया, दरस तुम्हारा श्वास बन गया।

युग-युगसे निर्जीव शिला बन लेटी थी मिट्टीकी काया,
पथराभी सी चपल पुतलियाँ, ओठों पर हिम था जम आया,
फिर भी अुस दिन धड़कन बन छू गया हृदय जब प्यार तुम्हारा
विरह विखरकर अश्रु बन गया, मिलन विहँसकर हास बन गया।
परस तुम्हारा प्राण बन गया, दरस तुम्हारा श्वास बन गया॥

मुर्दा था साहित्य, कलाओं पर थी मौन अुदासी छायी,
जब तक ओ! मेरे करुणाकर! तुमको याद न मेरी आयी,
आधीरात मगर जिस दिन तुम मेरे लिअे सिसककर रोये
सब कवियोंका काव्य रच गया, सब जगका अितिहास बन गया।
तुम सोये सो गयी निशा तब, तुम जागे तो हुआ सवेरा,
सूरज भाल-सिन्दूर बन गया, अंजन-बन हो गया अंधेरा,
अधरों पर जो काल-फूल था खिला, वही जीवन-अुपवनमें—
झरझर कर पतझार बन गया, खिल-खिलकर मधुमास बन गया।
परस तुम्हारा प्राण बन गया, दरस तुम्हारा श्वास बन गया॥

अेक वायुके झोंके सा बन भटक रहा जग-जीवन सारा,
कहीं न कोअी नीड़ मिला विश्राम, न कोअी संग-सहारा,
पर जिस दिन अतृप्त संसृतिकी सूनी प्यासी युग-बाहोंमें—
सिमट गये तुम धरा बन गयी, बिखर गये आकाश बन गया।
परस तुम्हारा प्राण बन गया, दरस तुम्हारा श्वास बन गया॥

तुमने क्या कर दिया कि गाने लगा आज मिट्टीका ढेला,
लगा दिया क्यों अिस नदिया पर अितनी नौकाओंका मेला,
तुम क्या हो, कैसे हो—है कुछ ज्ञात नहीं, बस यही पता है—
जन्म दे गया मोह तुम्हारा, और मरण सन्यास बन गया।
परस तुम्हारा प्राण बन गया, दरस तुम्हारा श्वास बन गया॥



मोहिनी अवतार

श्री लहरी, अेम अे

चिर अुदयके भोरसे
अमित आभाका सरल
नित्य नूतन, प्रति निमिष धुलता हुआ—
रूप लेकर, वर्ण लेकर
सुधा लेकर, स्वर्ण लेकर
सृष्टिके प्रति प्राणमें घुलता हुआ—
अेक निर्मल सत्य लेकर,
चिर अपावन, नित्य पावनके महकते—
दो चरण धर—
आ गयी तुम छोरसे;
मर्त्यके वैषम्यमें रमती हुअी, थमती हुअी,
अधरपर टुक हँसीके छन्द-सी
अरुणिमामें झूमती, गोधूलिमें जमती हुअी,
टहलती आयी अमावस मन्द-सी,
सरसरित, अुफनते, फेनिल, घुमड़ते,
ज्वार पूरित, अचल, अस्थिर, गहन-स्वरमें अुमड़ते,
निस्सीम लहरोंकी हिलोरोंमें, थपेड़ोंमें,
अुतरती आयी विहँसती-सी, विलसती-सी,
री चिरन्तन, कैशिमयि!
गरजते जीवन अुदधिके तीरपर
आयें चिर-अकल्पित प्रेयसी!
नृत्यमें डूबी, ठुमुकती-सी,
कटि किंकिणीमें गमकती-सी,
नूपुरोंमें घुँघुरुओंमें छमकती सी
कौन? हो तुम देवि, दानवि, रूपसी, रमणी,
विधात्री, धारणी, वेश्या कि दुर्गा हो?
कि निपट निर्लज्जा, कुलाकुल राक्षसी,
कुछके सौन्दर्यकी साकार प्रतिमा?
ओ! अपरिचिते! कुछ तो कहो!
हास-रोदनके बदलते रागमें,
प्रीति, मिलनेके, विरहकी आगमें,

नैराश्यके नीरव तमावृत विजनमें,
चोटकी चीत्कारपर स्वप्निल, सजल
मदिर आशाके महकते बागमें,
कौन हो? कविते, कलामयि! नर्तकी?
शिवा? अबला? विध्वंसनी प्रलयकारी हो?
आज वाणीका हुआ है रुद्ध स्वर!
कहती नहीं क्यों? बोल दो!
प्रभंजनके अूर्ध्वगामी वेगमें
अघके विकराल ताण्डवमें,
ज्वारमें, ज्वरमें, निपट भूचालमें,
गाज-सी गिरती सतीकी लाजमें,
ठिठुरी, बुभुक्षित, दलित, घूर्णित
अस्थिकी मुसकाती, भभकी हुअी आवाजमें
कौन हो? मंगलमयी! लाञ्छना जननी!
सुन्दरी, कल्याणि, कल्पना-सरसी!
सहज सरला हो कि क्या हो—
कहो तो—
तुम्हारा ध्यान मैं कैसे करूँ?
अिधर जीवन है, अुधर वह मरण भी,
दुख भरा है—
लहरता है यह—
कि जीवन घुल रहा है।
घहरता है यह—
कि जीवन धुल रहा है।
ठहरता है यह—
कि जीवन तुल रहा है।
फहरता है यह—
कि जीवन खुल रहा है।
साँस आती है—
कि जिसका दर्श आता है।
साँस जाती है—

कि जिसका वश होता है।
साँसके आयातमें निर्यातमें
मैं तुम्हारी चरण मुद्राका,
चरण मुद्राका
करुण मुद्राका
तुम्हारी मटकती-सी भंगिमाका,
तुम्हारी चटकती-सी रंगिमाका,
कुतूहल-पूर्ण कौतुकका
अनाहत शरद् चितवनका
अमृत पीता हूँ,
विष नहीं पीता! कहूँ?
जब अभावोंमें निरञ्जन भाव जीता हूँ।
कभी सहसा परस पाकर
सिमट जाता हूँ—
सिमटा दुखसे कि जो भरपूर है।
दूर है सुखका—
कि सुख, दुखसे हरा है—
छलकता है ये—
कि जीवन चल रहा है।
ढलकता है ये—
कि जीवन ढल रहा है।
खलकता है ये—
कि जीवन खल रहा है।
झलकता है ये—
कि जीवन जल रहा है।
साँझके टुक तानपूरेपर
नृत्यकी हर झलकका, हर तालका,
हर नादके मँझरे, मजे
थिरके, थमे, गूँजे, बजे,
झनझनाते—
बोलते—
हर ख्यालका,
प्रतिघात पाता हूँ कि गाता, गुनगुनाता-सा,
नृत्यके अतर-अतलमें,
ठहरने भरनेकी संवेदनाका
राग करता है कि नूपुरके स्वरोंमें—
मैं तुम्हारे नृत्यके शुभचरण-सा,
झनकता हूँ नित्य तेरे चरण-सा।

गीत जयके!

: श्री भवानीप्रसाद तिवारी, अेम. अे.

डूबकर मैंने लिखे हैं गीत जयके।
समय असमयके, प्रणयके, लय प्रलयके!

* * *

चल पड़ी पतवार तट छूटा सुहावन
अेक सुधि-सम्बल सहेजे परस पावन
कर नहीं पाये लगन-बन्धन हृदयके
डूबकर मैंने लिखे हैं गीत जयके

* * *

लहर पर डाली तरी, पथ है अजाना
पवनके झोंके चले तो चल जाना
चल गया संघर्ष दो पलमें विनयके
डूबकर मैंने लिखे हैं गीत जयके

* * *

दुख दिखाये ढूँढने जीवन-सहारे
नहीं मिल पाये मनोहर वे किनारे
सुन पड़े मझधारमें जब स्वर अभयके
डूबकर मैंने लिखे हैं गीत जयके।

* * *

समय असमयके, प्रणयके लय प्रलयके
डूबकर मैंने लिखे हैं गीत जयके!

सीढ़ीका पत्थर

: श्री रामकृष्ण श्रीवास्तव, अेम. अे :

जिस पत्थरसे देव बने तुम
उस पत्थरका मैं टुकड़ा हूँ !

मेरी छातीपर चढ़कर दुनियाँ पैरोंकी धूल आदमी,
छोट तुम्हारे चरणोंमें आँसू से भीगे पुष्प चढ़ाती
आँख मूँदकर मानवकी परवशता गीत तुम्हारे गाती,
मन्दिरके आगे मेरी ममता अपना मुँह खोल न पाती !
कंधोंपर वैभवकी सत्ता लेकर
मैं चुपचाप खड़ा हूँ !

जिस दिनसे मानवने मानवका शासन स्वीकार किया है,
पत्थरने पत्थरसे निर्मित अपना कारागार किया है !
जिस दिनसे मानवने अपनी जड़ताको आकार किया है,
पत्थरने पत्थरपर चढ़कर मन्दिरमें अवतार लिया है !
अंधकारमें पड़कर तुम कुछ बने
और कुछ मैं बिगड़ा हूँ !

मानव मनमाना है चाहे जिसको वह भगवान बनाये,
वह शरीर केवल पत्थर है जिसके घरमें प्राण न आये !
मैंने अपने जीवनमें तुमसे कोअी वरदान न पाये,
पत्थर होकर भी तुम अपने पत्थरको पहचान न पाये !
टूट फूटकर किसी लिये
लज्जामें अपनी स्वयं गड़ा हूँ !

त्याग असुन्दरता-अपनापन तुम चाहे जितने सुन्दर हो,
अरे अनश्वरता-अभिनेता, आखिर तो तुम भी नश्वर हो !
बाहरसे मैं जो कुछ हूँ तुम छिपे हुअे मेरे भीतर हो,
मैं पत्थरका पत्थर हूँ, पर तुम पत्थरके आडम्बर हो !
विद्रोही बनकर मैं कितनी बार
सीढ़ियोंसे उखड़ा हूँ !

पहाड़ी नदी

: श्री आरिफ :

१. नेरे पोशन द्युय छलित, सुलि आजे दुरदानिये,
विगनी वनवुन साज, यन्द्राउन छक्ते वायानिये।
२. तार कोज़मह छह रावथि, ज़ूनि नॉविथ यान मैंज़,
मौरकन मैंज़ चूनि, ज़िर-ज़िर आग्री-ख मस्तानिये।
३. बोलि रग-२ छय कनस, मैंज सोज़ नौ-२ मैंज़ मनम,
मैंज़ बनस हैरि शबनमम, सपय ज़ाम्री-खै पद्मानिये।
४. रेश त शुपने विरह क्यम, मुन्ज़ बेराह वानिये हरि वीठ,
मीयठ करि करि नियेठ नरि वोला डियड्ये तम्बलानिये।
५. सोत कद्म गुल, कोत गछुन छुग्री, वोज़खे बनै फेर ख़ुय,
गयमम घुग्री सद्रस ज़ु छख, दोनवन छहन दीवानिये।
६. माज़नीनी दीन कम छुक, कीन रोम छुग्री सीन माफ़,
छुक वेयन हुन्द मल छलान, छुग्री दाग मा बारानिये।
७. तह दी हेयम आवम, ममर वॅनी खोत मल्र क्यिरम मन्द्र,
रावह रावख क्याज़ी वैंछ, आसुन पनुनु ज़ानानिये।

अनुवाद :—

[ऐ प्रियतमा, तुम जंगली फूलोंका मुंह धोकर सबेर-सबेर ही आ गयी हो। तुम अप्सराओंके गीत गाती हो और झिंद्रका स्वर्गीय संगीत हो।

तारोंने अपनी किरणोंसे चन्द्रमाको स्नान कराया और तू नाचती-गाती पृथ्वीपर प्रकट हुयी।

भिन्न भिन्न बोलियोंकी गूंज तेरे कानोंमें गूंज रही है और हृदयमें नित नयी पीडाओंको समोये हुये तू बहती रहती है। तूने शबनमके साथ ही बीच जंगलमें जन्म लिया।

ऋषि और ग्वालने क्यों अभीतक तेरे ऊपरी किनारा पर मौजूद है? मैदानी प्रदेशोंमें तुमने पुन्यआत्मा व्यक्तियोंको अपने पानीको चूमने दिया और तुम्हारा संयम टूट गया।

धीरेसे पग बढ़ाओ, तुम्हें जाना कहां है? अच्छा तो यह है कि तुम लौट आओ। समुद्र दो भागोंमें बंट गया है, और दोनों भागोंपर मस्ती छायी हुयी है।

तुम्हारे विचार कितने निर्मल हैं? डाह और द्वेषसे रहित तुम्हारा हृदय कितना सुकोमल है! तुम औरोंकी मलिनता दूर करती हो, किन्तु तुम्हारे आंचल पर कोयी धब्बा नहीं है।

पानीको तहमें बैठ लेने दो। अभी उसमें बड़ी तीव्रता है। उन भंवरोंमें क्यों पड़ना चाहती हो? ऐ प्रियतमा, तुम अपना व्यक्तित्व क्यों मिटाना चाहती हो?]

अनुवादक — घनश्याम सेठी

(शेषांश पृष्ठ ७९६ के आगे)

त्रिपदी नामक छन्दमे नीति धर्मकी अनूठी बाते सुनाकर क नड़ साहित्यका भण्डार अलकृत किया। सर्वज्ञ आशु कवि थ और अुनकी अुक्तियाँ लोकोक्तियोकी भाति आजकल भी जनताकी जीभपर नाचती रहती ह।

कर्नाटकका लोकजीवन कितना सुसस्कृत और मधर है अिसका परिचय क नडके ग्राम गीतोके द्वारा मिलता है। यद्यपि रचयिताओके नाम धाम आदिका पता नही चलता तो भी ग्रामगीत बडी ही प्रचर मात्राम मिलते ह। भाषाकी सरसता रचना चातुय विषयकी विवि धताकी दृष्टिसे कन्नडके ग्राम्यगीत अत्तम साहित्यके अतगत आ जाते ह। अिन गीतोकी महत्ताको समझकर अब कओी लेखकोन अिस दिशाम काम करना आरम्भ किया है और जिस लोक साहित्यकी आलोचना और मू याकनके लिअ सामग्री जुटानेका बीडा अठाया है।

कर्नाटकके राजाओके दरबारोम क नडके कवियो का सदा आदर रहा और प्रो साहन भी मिलता रहा। मान्यखेटके राष्ट्रकूट राजा व विजयनगरके राजा कन्नडकी श्रीवृद्धिमें भरपूर योग देते रहे। राष्ट्रकूट राजा नृपतुग स्वय कवि थ। तलप और अरिकेसरी प्रभृति कवियोको प्रो साहन देकर काव्य रचनाकी परम्परा चलायी। चामुण्डराय जसे सेनापतियोने भी ग्रथ रचकर साहि य प्रेमका परिचय दिया। बसव भी कुछ समयतक बिज्जळ नामक राजाके यहाँ सेनापति थ—असी जनश्रुति है। विजयनगरके राजाओने अपने शासन कालम ललित कलाओकी वृद्धिके लिअ कसा प्रो साहन दिया था यह बात अितिहास प्रसिद्ध है ही तिम्मणने विजयनगरके दरबारम रहकर ही भारत जसे अति लोकप्रिय काव्यकी रचना की। किन्तु जसे ही विजयनगरका वभव सूय डूब गया वसे ही बहुत से छोट मोट राजा जहाँ-तहाँ सिर अुठाने लगे और कन्नड देश छिन्न भि न होकर बट गया तथा देशम सवत्र अशाति बढ़ी जो साहि यके विकासम बाधक सिद्ध हुअी।

मसूरके नरेशोके अभ्युदयके साथ साथ फिरसे कन्नड साहित्यका अपवन हराभरा होने लगा। मसूरके चिक्कदेवराय स्वय कवि थ और अ होने गीत गोपाल नामक भक्ति रसपूण ग्रथ रचकर कर्नाटकम भक्ति साहित्यकी परम्परा फिरसे चलायी चिक्कदेवरायके दरबारी कवियोम तिरुमालाय प्रमुख थ जि होने चिक्कदेवरायकी वंशावली नामक अक ग्रथ गद्यमें और अप्रतिमवीर चरिते नामक अलकार ग्रथ पद्यम रचकर अपनी बहुमुखी प्रतिभाका परिचय दिया। अिनके अतिरिक्त अिस कालके कवियोम सिगराय और चिक्कुपाध्यायके नाम अुल्लेखनीय ह। सिगरायका लिखा हुआ मित्रविंदगोविंद अपने ही ढगकी अेक सुन्दर कलाकृति है। चिक्कुपाध्यायकी प्रतिभा बडी ही प्रखर थी। अु होने जितने ग्रथ लिखे ह अुतने शायद ही अबतक और किसी कन्नडके कविने लिखे हों। अिनके सभी ग्रथोम वष्णव सम्प्रदायोके तत्वोका प्रतिपादन हुआ है। विष्णु पुराण दिव्य सूरि चरिते अिनके रचे हुअ ग्रथोम अति मुख्य ह। चिक्कदेव रायके अन्त पुरमें होनम्मा नामक अक दासी थी जो महलके साहित्यिक वातावरणम रहनेके कारण स्वय बडी भावुक बन गयी थी। असने हृदिबन्धेय धम नामक अक रसपूण काव्य सागत्य छन्दम रचा जिसम स्त्री पुरुषके सम्बन्धका अनूठे ढगसे निरूपण किया गया है। अिस प्रकार चिक्कदेव रायके कालमें कन्नड साहित्यको अक नयी स्फूर्ति मिली। अिस कालकी अक विशेषता यह थी कि या तो अधिकाश कवि ब्राह्मण थ या ब्राह्मण धमसे प्रभावित थ। अिस लिअ सन १६०० से सन १९०० तकका काल ब्राह्मण कालके नामसे प्रख्यात हुआ। चिक्कदेव ओडेयरके अुप रात मुम्मडि कृष्णराज वडेयर गद्दीपर बठ। अिनके समयम पूववत ही कन्नडके लिअ प्रो साहन मिलता रहा। स्वय कृष्णराजवडेयरने श्रीकृष्ण वाणी विलास भारत नामक अक बृहत काव्यका निर्माण किया। अिसी राजाके दर बारम केम्पुनारायण नामक अक कवि थ जि होने अन प्रिय मुद्राराक्षस का कन्नडम अनुवाद किया। चाम राज ओडयरके प्रो साहनसे फलस्वरूप कअी सस्कृत नाटकोका अनुवाद हुआ। बसवशाली जो चामराज ओडयरके दरबारी कवि थ सस्कृत नाटकोका अनुवाद करनेके कारण अभिनव कालिदासके नामसे मशहूर हुअ। अिनका अनूदित शाकुतल नाटक अति लोक प्रिय है। अिनकी देखा देखी कअियोने सस्कृत नाटकोका कन्नडम अनुवाद करनेका काय शुरू किया।

अुन्नीसवी शताब्दीके अतम कन्नडका आधुनिक काल शुरू होता है। अग्रेजी भाषा और साहित्यके सम्पकम आनेके कारण कन्नड साहित्यकी सवतोमुखी अभिवृद्धि हुअी। आधुनिक कन्नड साहित्यके विकासकी गतिविधिका अितिहास काफी रोचक और बडा है।

कन्नडसे अनुवादक—श्री प्रो हिरण्मय अेम अे सा र.



सिन्धी लघुकथा :

देशभक्त मारवी

: श्री दौलतराम शर्मा :

भारतवर्षने अैसे-अैसे अनोखे रत्न पैदा किये हैं जिनकी मिसाल संसारमें ढूंढनेसे बहुत कम मिलती है। मारवी भी अुन रत्नोंमेंसे अेक थी। जिसकी गाथा प्रेम, तप, त्याग, रूप-लावण्य और शील आदि सद्गुणोंसे पूर्ण है। हम भारतवासी अुपरोक्त गुणोंके लिअे स्त्री जातिकी शिरोमणि सीताका स्मरण करते हैं। मारवी भी पुण्य-स्मरण योग्य है। दोनोंमें अन्तर जितना ही है कि अेक राजा मिथिलेशकी राजकन्या, दशरथकी राजवधू और राजा रामचन्द्रकी राजरानी, तो दूसरी अेक गरीब किसानकी बेटी, गरीबकी मँगेतर और अेक अत्याचारी नवाब द्वारा कुअेंपर पानी भरते समय अपहरण की हुअी अबला थी। दोनोंको बन्दी जीवन बिताना पड़ा। रावणकी अशोक वाटिकामें अेकको, तो दूसरीको जालिम नवाबकी कैदमें। अेकको मुक्ति मिली असंख्य वानरोंकी सेनाके सरदारों हनुमान, सुग्रीव, अंगद आदि द्वारा तो दूसरीको बन्दी जीवनसे छुटकारा मिला अपने त्याग, तप और शान्तिसे।

विजय पा लेनेके बाद, जहाँ राजा रामचन्द्रने सीताको अेक धोबीके वचन मात्रसे त्याग दिया था, तब रावण जीवित न था, जो अुस धोबीके गालपर जोरका थप्पड़ जमाता और बताता कि सीता सती है, निर्दोष है, वहाँ मारवीके पतिने अुसपर शंका की और जब यह बात नवाबके कानोंतक पहुँची तो, वह सेनाको लेकर पहुँचा और मारने सबके सामने अुसको अपनी पूज्य बहन बनाया।

रमणी रत्न मारवीके चरित्रको सिंधके अनेक कवियों और लेखकोंने गद्य-पद्यबद्ध किया है। मीर जाहिर मुहम्मदने भी जिसने सिंधका अितिहास १६२१ में लिखा, जिस घटनाका अुल्लेख किया है। बादके लेखकोंने, जो कुछ लिखा, जान पड़ता है, अिसी अितिहासका आधार लेकर लिखा। यह बात भी प्रसिद्ध है कि नवाब खान-खानान जब सिन्धके अेक मुख्य नगर ठट्ठाको अपने अधिकारमें कर लिया, तो वह वहाँ सरदारोंको लेकर अकबरके दरबारमें पहुँचा। वहाँ मारवीका जिक्र आया। तब खानखानाने अेक कविसे कहा कि बादशाहको मारवीका चरित्र सुनाओ। कविने बादशाहको खुश करनेके लिअे कुछ मनगढ़न्त बातें शुरू कीं, जिसपर अकबर सख्त नाराज हुआ। तब आये हुअे सरदारोंमेंसे मिरजा जानीबेग नामक सरदारने बादशाहको सारी सच्ची घटना कह सुनायी, जिसे सुनकर अुसकी आँखोंमें आँसू भर आये।

कहते हैं कि शाह अिनायत पहले कवि थे, जिन्होंने अिस घटनाको सिन्धीमें अवतरित किया और शाह अबदुल लतीफको सुनाकर अुनमें प्रेरणा भरी कि वे 'मारवीके गीत' कहें। ये गीत आज समूचे सिन्धमें बड़े प्रेम और दर्द भरे दिलके साथ गाये जाते हैं। अुनकी वह रचना 'शाजो रसालो' के नामसे प्रख्यात है और जिसमें "सुर मारवी" नामक अेक बाब (अध्याय) है, जिसमें सारी घटना बड़े ही मार्मिक ढंगसे वर्णित है। घटना अिस प्रकार है —

अुमर सूमरो नामका अेक नवाब अमरकोटमें राज्य करता था। अुसके राज्यके मलीर नामक अेक गाँवमें पालन नामका अेक पनिहार रहता था। माँडवी नामकी अुसकी स्त्री थी। दोनों पति-पत्नी पशुपालनका काम करते थे। आज भी प्राय: अुस जिलेके बाशिन्दोंका धन्धा पशुपालन ही है। भाग्यसे अुनके अेक पुत्री हुअी, जो कविके शब्दोंमें अितनी सुन्दर थी कि अुसका वर्णन असम्भव है। पद्मिनीके समान शरीरका रंग, बिजलीकी तरह प्रकाश सूर्य जैसा, अैसी परम सुंदर लड़की पाकर माता पिता प्रसन्न थे और अुस बालिकासे प्रेम करने लगे, जिसलिअे अुसका नाम मारवी पड़ गया। वह सयानी हुअी।

पालनका नौकर मारवीपर मोहित हो गया। वह चाहता था कि मारवीकी शादी अुससे कर दी जाअ। मगर पालनको यह मंजूर न था और लडकीकी मँगनी अपने अक स्वजातीय नौजवानके साथ कर दी। फोग असिसे नाराज होकर अमरकोटके अुमर सूमरोके दरबारमें पहुँचा और प्रार्थना की कि वह अुमरसे अकांतमें कुछ अर्ज करना चाहता है। दरबार बरखास्त किया गया और फोगने अुमरके आगे मारवीकी अपूर्व सुंदरताका वर्णन किया और अुसे अिस बातके लिअ तैयार किया कि वह मारवीको भगा लाअ। अुमर जो प्रजाका रक्षक बना हुआ था भक्षक बन गया। वह अपने साथियों और फोगको साथ लेकर डाकू लुटेरोंकी तरह अुस किसान सुन्दरीका अपहरण करने चल पडा।

+ + + +

प्रातःकालका समय था। शीतल हवा बह रही थी। सूरज आसमानकी सीढियोंपर चढनेको अभी अंगडाअियाँ ले रहा था। मलीर गाँवके किसान अभी जागे न थे। अुस समय दो औरतें कुअेपर पानी भर रही थीं। अुनमेंसे अक परम सुन्दरी मारवी थी। अितनेमें कुछ दूरसे कुछ औठी (राहगीर) अुस तरफ आते दिखायी दिये।

मारवी कुछ डरी तो सहेलीने ढाढस बँधाया कि डरती क्यों हो ज्यादासे ज्यादा वे लोग हमसे पानी माँगेंगे। हम अुनसे देश देशांतरके समाचार पूछेंगे। अितनेमें वे लोग कुअेके पास आ पहुँचे। फोग बडा कमीना था। औरतोंको अकेला पाकर अुसने नवाबको अिशारा किया। नवाबने अैसा सुंदर रूप यौवन कभी जीवनमें देखा न था। कुछ क्षण तक वह अकटक मारवीके रूपरसका पान करता रहा। फिर अुसने अपनेको सँभाला। मारवीसे पानी माँगा और पानी पीनेके लिअ अपने अूँटको जमीनपर बैठाया। ज्यों ही मारवी पानी पिलाने पास आयी कि नवाबने अपनी बाजुओंमें पकडकर अूँटपर बैठा लिया और अमरकोट लाकर अपने राजमहलोंमें बन्द कर दिया।

+ + +

अिधर जब यह मारुओंने सुना कि अुनकी अिज्जत आबरूपर अिस प्रकार हमला हो रहा है तो वे दर्दसे चीख अुठे, कोअी बराबरीका होता तो दो दो हाथ निपट लेते पर जब बाड ही खेतीको खाना शुरू कर दे तो बेचारी खेती क्या करे। प्रजाका रक्षक ही भक्षक भस्मासुर बन गया! गरीब किसान लाचार पस्त हिम्मत होकर घर पर बैठ गये। लाज भी गयी और लोकहँसी भी हुअी।

अुधर मारवी जब राजमहलमें बंद हुअी तो अुसने सत्याग्रह किया। अुमर रोज समझाता लालच दिखाता पर अुस लडकीपर कुछ भी प्रभाव न पडा। वह हर वक्त घरकी मिट्टी घरके पशु घरके लोग सखी-साथिनोंको यादकर-करके रोती रहती। कअी दिन कअी महीने गुजर गये। दशा बहुत बुरी होती गयी। बालोंमें कभी नहीं की नहाया नहीं। कपडे फट चिथडे हो रहे हैं। कपडे बदलनेको कहा जाता है तो अुसका अक ही जवाब होता है कि जो कपडे अुसके देशमें नहीं बने अुन्हें पहनना तो दूर वह हाथ भी न लगाअेगी।

खान पीनेकी बढिया चीजें चाँदी सोनेके थालमें सजाकर अुसे ललचाया जाता है मगर वह अुन मीठे मिष्टान्नसे जहरको लाख अच्छा समझती है और रोकर कहती—मेरे माता पिताका घोर अपमान हुआ है। मैं मर गयी होती तो अनकी अिज्जत नहीं होता।

+ + +

वह मेघोंकी बौछार द्वारा पक्षियों द्वारा और हवाओं द्वारा अपने मारुओंको संदेशा भेजती है। पर अुसकी हाय पुकार कोअी नहीं सुनता।

अुमर मारवीको महलसे जलील डाल देता है। कारांकी नाना यातनाअें सहती है आशाअें टूट जाती हैं। अुसे आशा थी वह दिन आअेगा। अुमर अपनी करनीपर पछताअेगा तब मैं अपनी अिन आँखोंसे अपना गाँव घर कुटुंब-कबीला और प्यारी सहेलियोंको देखूँगी। अुसने अन्न जल तक छोड दिया और अुसका चाँद सा मुखडा पीला पड गया। अिस तरह मृत्यु शय्यापर पडी मारवीको देखकर अुमरका हृदय पिघल अुठा। अुसका जी भर आया। वह पश्चाताप करने लगा कि मैंने कैसा नीच काम किया—अक बेगुनाह औरतको सताया। अुस नीच फोगके कहे में आकर अपनी प्रजा अबलाको सताया।

अक दिनकी भी देर न कर नवाब अुमर ने मारवीको अुसके मँगेतरको खुशी खुशी सौंप दिया और अुसने अुन दोनोंसे माफी माँगी।

अुत्कलका—'यात्रा, पाला, गोटिपुआ और दासकाठिया'

: श्री अनुसूयाप्रसाद पाठक :

यह देखा जाता है कि आनन्दका अुपभोग करना संसारमें जीव मात्रके लिअे अेक जरूरी वस्तु बन गयी है। यहाँ तक कि पेड़ पौधोंतकमें भी अिस विषयके रसको रसास्वादन करनेकी क्षमता है। सुख दुख व्यक्त करनेके भाव हैं—और अुनकी भाषा भी है। रात और दिनके प्रकृति परिचालित कार्य-कलापके अन्दर, कौन किससे प्रेम करता है, कौन किसे देखकर खुश होता है और किसे देखकर दुखी—यह कमल और कुमुदिनीके भावोंसे जाना जा सकता है। अेक सूर्यको देखकर हँसता है, खुश होता है तो दूसरा दुखी होता है। जो दिनमें सूर्यको देखकर दुखी होता है वही रातको चन्द्रमाको देखकर खुश भी होता है। अुस समय सूर्य प्रेमी अपना मुख लटका लेता है। चकौड़े आदिके पत्ते शाम होते ही मुरझा जाते हैं। तरोअी आदिके फूल शामको ही खिलते हैं, मुस्काते हैं। अुसकी "वह चितवन कुछ और है जेहि बस होत सुजान"—अिस प्रकारके आनन्द और शान्ति-पूर्ण वायुमण्डलमें नीरव-रव करते जो अपना जीवन बिताते हैं, अुनका भी समाज है और साहित्य है। शाम-सवेरे चिड़ियोंकी चहक और झींगुरोंकी झंकार, अुनके कार्य कलापका निदर्शन नहीं तो और क्या है? और व्यक्ति तथा समाजके कार्य कलापका चित्रण ही तो साहित्य है।

साहित्यिक जीवन बितानेके लिअे यही जरूरी नहीं, कि जो साक्षर हों, साहित्यिक रसका रसास्वादन करनेके वे ही अधिकारी हों। अिसके लिअे दिल, दिमाग और अनुभूतिकी भी आवश्यकता है।

जब पेड़-पौधों तकमें अिस प्रकार साहित्य चर्चा होती है, तो नरोंमें और भी अधिक क्यों न होगी?

अिस प्रकारका लोक-साहित्य भारतके प्रत्येक प्रान्तमें, गाँव तथा नगरोंमें है। गाँवोंमें रामायण, महाभारत, भागवत तथा सत्यनारायणकी कथा, देवी-देवोंका पूजन-गायन तथा अुनके कार्योंकी चर्चा और आलोचना अेक प्रकारकी साहित्य-चर्चा है।

अुत्कल प्रान्त अन्य प्रान्तोंकी अपेक्षा अिस कलामें अत्यन्त निपुण अुतरेगा, कम नहीं। कारण, भजन-पूजन, संगीत-वाद्य और पुराण पाठ आदिके अलावा यहाँ साहित्य-चर्चा करनेके अनेक साधन गाँव-गाँवमें हैं। और फिर अैसी चर्चाअें अैसे व्यक्तियोंके जरिये की जाती हैं जिनको मामूली अक्षर-ज्ञान है, अधिकांशोंको तो वह भी नहीं। "यात्रा, पाला, गोटिपुआ और दास काठिया" अुत्कलकी अपनी विशेषताअें हैं। यात्राको हम रामलीलाके साथ जोड़ सकते हैं। लेकिन साधारणतः यह भिन्न है। किसी अेक राजाके चरित्रको लेकर अुसके जीवनकी घटनाओंको, अुसकी भाषामें व्यक्त किया जाता है। यह रातके ९–१० बजेसे शुरू होती है, तो सवेरे ४ से ७ तक खतम होती है। ग्रीष्म-ऋतु अिसका समय है। अिसके लिअे खास किसी मंचकी आवश्यकता नहीं होती यह तो आकाश-वितान-तले, प्रकृतिकी गोदमें हुआ करता है। कभी-कभी चन्द्रमा अिस अुत्सवको देखकर हँसता है तो कभी घनान्धकार। अुस समय आकाशमें चमकनेवाले असंख्य तारा-गणोंको देखकर तम और अिन्द्र तथा गौतममुनिके सम्वादकी साहित्यिक या पौराणिक कथाकी कल्पना की जा सकती है। लेकिन जब यात्राकारियोंकी ढोलकी और मृदंग बजते हैं, तो दर्शकोंकी कल्पना अुधर थोड़े ही जाती है। वह तो निस्तब्ध अँधेरी निशाके शान्त वातावरणमें निकलने हुअे अनतिदूर विपत्तिसे टकराकर सभा जाती है—अेक क्षीण गमक गमका कर।

यात्राके कलाकार अधिकांश 'बाअुरी' होते हैं, जो हरिजनोंकी जातियोंमें अेक है। बालकसे बूढ़े तक अिसमें भाग लेते हैं। ये लोग स्त्री-पुरुषोंका अभिनय बड़े ही सुन्दर ढंगसे करते हैं। ये लोग अपने कार्यमें अैसे दक्ष होते हैं कि अुसीमें तल्लीन हो जाते हैं। नारीका अभिनय करते-करते नारीमय बन जाते हैं। और अुन्हें साधारण कालमें भी किसी औरतके साथ बातचीत करते

देखेंगे, तो देखते ही पहचानेंगे कि स्त्री है या पुरुष। यह व्यवहार, चालढाल और भाव-भंगीसे कभी भाँप न सकेंगे—कि यह कौन है।

काल-गतिके शिकार बनकर बेचारे कुछ नारीवेश धारण कर कलकत्ते आदि नगरोंमें ढोलकी बजाकर नाचने, गाने और अपनी जीविका अुपार्जन करते हैं।

पाला—यात्रासे भिन्न है। अिसमें ५-७ आदमी होते हैं, जिनके वेश भी विचित्र होते हैं। अेक मुखिया (गायक) होता है, जो काव्य छन्दोंका नाना प्रकारसे अर्थ करता और अुन्हें गाता है। बाकी अुसके सहायक होते हैं। कुछ बाजा बजाने और कोरस कन्धासवर बनाकर अुस गायनमें मधुर ध्वनि तथा मुखियाके अर्थमें हुँकारी भरते हैं। यात्राकी अपेक्षा अिसमें साहित्यिक आलोचनाकी आवश्यकता अधिक होती है। अर्थकी व्यंजना, शब्दाडम्बर, कलात्मक अुक्ति-चातुर्य मुख्यतर होता है। ये छन्दोंके अर्थ करनेमें निपुण होते हैं। अिसका यह अर्थ नहीं, कि अिनकी आलोचना साहित्य-भण्डारकी चिरस्थायी प्रामाणिक वस्तु समझी जाती है, फिर भी अुनकी मजेदार हास्य रसात्मक काव्य चर्चा सुननेके लिअे अच्छे-अच्छे साहित्यिक लालायित रहते हैं। समय समयपर अिस कलाके लिअे अिनकी कद्र भी होती है।

अिस कलका महत्त्व और धंधा कुछ नहीं है। जगह-जगह बुलाये जाते हैं और धन पानेपर जाते हैं। धर्म और त्यागका अुपदेश अिनके सामने जीविका-निर्वाहका प्रश्न होता है। अिनका कार्य ८-९ घंटेसे अधिक नहीं होता।

आरम्भिक अुपासना अिनकी अपनी कला है। संगीतज्ञ जिस प्रकार तमूरा और तबला मिलाते-मिलाते श्रोताओं, दर्शकोंके मन ठीक करता है ठीक अुसी प्रकार अिनकी आरम्भिक प्रार्थनाका हाल है। प्रार्थनाके अन्तमें झट मुखिया आ जाता है और वहींसे भाषाके पदको पकड़कर अर्थ गान शुरू कर देता है।

गोटिपुआ—'गोटिपुअ' अेक प्रकारका बालकोंका संगीतमय नाच है। अुसमें बालक नाना प्रकारके नृत्य करते हुअे जनताका मनोरंजन करते हैं। दिन भरके थके माँदे कर्म-क्लान्त व्यक्ति खिन्न मन लिये जीवन-यापन किया करते हैं और कभी-कभी मनोरंजनार्थ "गोटिपुआ" नाचका आयोजन करते हैं। जिसमें संगीत-कला, वाद्यकला तथा नृत्यकला प्रधान वस्तु मानी जाती है। अिसकी मूर्च्छनाअें दिलको हरा करती हैं। थोड़ी देरके लिअे क्लान्ति दूर होकर मनमें हरियाली लहराने लगती है। आनन्द मग्न दर्शक वृंद अपने-अपने घर लौटते हैं। अिसे हम ललित कलात्मक साहित्य कहाँ कह सकते हैं।

दासकाठिआ—ये अेक प्रकारके कथा वाचक हैं। पात्र दो होते हैं। अेक गायक दूसरा अुसका सहायक। ओड़िआ सारला महाभारतके १६ अुपाख्यान जो, संस्कृत महा-भारतमें नहीं हैं, अिनकी गायनकी मुख्य वस्तु है। आख्यानोंको रोचक बनानेके लिअे अन्यान्य कवियोंकी सुन्दर कवितायें भी अिसमें जोड़ी जाती हैं। महा-भारतकी अेक विशेषता है, कि अुसमें अनेक सुन्दर मौलिक कहानियाँ हैं। दासकाठिआ दल अिन्हें तिरौड़े बाजा बजाकर रोचक ढंगसे गाता है। अिनके ताल, राग और साज बाज आकर्षक होते हैं। बीच-बीचमें विश्राम हास्योत्पादक सामाजिक कथा भी कहते जाते हैं। जब केवल गायक सुस्तानेका अिशारा करता है, तब अुसका सहायक खोल बजा बजाकर—'जै हरि हरि राम नर्तन सुन्दर श्याम'—भजन गाकर जनता तथा भक्त-मण्डलीका मनोरंजन करता है।

अिनका सम्मान सभी श्रेणीके लोगोंमें होता है, लेकिन अुत्कलके ग्रामोंमें ये बहुत सम्मान और धन पाते हैं।

अूपर यात्रा, पाला, गोटिपुआ और दासकाठिआका जो अति संक्षिप्त परिचय दिया गया है वह अुत्कलके ग्रामोंकी देन है। यात्रा और बालकोंका नाच तो मेलोंमें भी हुआ करता है लेकिन अिसे भी अुत्कलकी देन मान लेना अुदारता और सभ्यता सम्मान ही समझा जायेगा।

मेरा तो विचार है—अिन चार प्रकारके मनोरंजन साधनोंका भारतके सभी प्रान्तोंमें प्रचार होना चाहिये।



तुच्छ !

: श्री प्रबोध सान्याल :

[बंगला]

मासराबे दिदिमार माझा पाओआ याय।
तारं घुम नेइ, घुम तार आसे ना।
तिनि डाकेन, जेगे आछो मा, विमु ?
ओदिक थेके उत्तर आसे केन, मा ?
तोमार मने आछे ओ महलेर कोनेर घरे सेइ
वोष्टमदेर ? की गानइ गाइतो तारा।
ऐखनो काने शुनछि।
मा बलेन, सब मने आछे।
दिदिमा बलेन सेइ मेयेटाके कोत्थेके येन धरे
ऐनेछिल। की मारधरइ करतो।
मेयेटार आचार व्यामार किन्तु भालोइ छिल।
मा बलेन पोड़ारमुखिर ज्ञानबुद्धि छिलना किछु।

ओइ पर्यन्तइ। दिदिमाओ चुप, मायेर ओ आर कोनो साड़ा नेइ। पोड़ारमुखिर कथाटा आमिओ किन्तु भुलिनि। मेयेटार नाके तिलक, हाते अल्किर लेखा हरे कृष्ण, माथार खोंपाय बेलफुलेर माला, चोख दुटोय येन घुमेर भाव, परने थान कापड़, मेयेटार माझा-मोड़ा गा, सेइ गा थेके चन्दनेर गन्ध पेतुम। कीर्तनेर कलि थाकतो तार मुखे दिनरात, आर ते नान गाइन्ते आमादेर ओदिके मजनेर हात थेके बाज पड़े येतो। ऐकदिन बाड़ी छेड़े तारा चले गेल, किन्तु तार माधुरेर गान सेइ थेके ओइ बाड़ीर बुकेर तलाटाके टनटनिये तुलतो। कीर्तनेर सेइ कान्ना रेखे गेछे ओइ कोनेर घरेर हाओ-याय।

ओरइ पाशेर घरेर सेइ वेगुन कलेजे पड़ा फ्रनी मेये दुटोके मने पड़े। तारा वयसे अनेक बड़। तादेर बापेर नाम रमाकान्त करकाटिया। तारा आसामेर लोक, ऐखाने ऐसेछिल लेखापड़ार सुविधेर जन्य। मने पड़छे कोनो दिन कथा बलेनि तारा। तारा सम्भ्रान्त तारा शिक्षित, तादेर पोषाकेर आभिजात्य। काछा-काछि गिये दाड़ियेछि दुयार चोखे देखे सरे गेछे निजेदेर मध्ये विद्रुपेर हासि हेसेछे निजेदेर भाषाय, किन्तु सम्भ्रमेर चक्षे ओदेर देखेछि। बुझते पारतुम की घृणाकी कृपा आमादेर ओपर। की कठिन हासि माखानो थाकतो ओदेर मुखे। गोलाप फुलेर मतन चेहारा, किन्तु येन शुकनो रङीन कागजेर फुल। ओदेर चोख दिये आमरा निजेदेरइ देखतुम, आमरा की काङाल, की अकिंचन, की निर्बोध। यतदिन तारा छिल ओइ बड़ घरे, ततदिन ओदेर घृणा बये बेड़ियेछि।

[हिन्दी]

अनुवादक : श्री मन्मथनाथ गुप्त

[श्री प्रबोध सान्याल बंगलाके प्रसिद्ध उपन्यास-कार हैं। उन्होंने बहुतसे उपन्यास लिखे हैं। कथीके

फिल्म भी बन चुके हैं। नीचकी पंक्तियाँ तुच्छ नामके अेक संग्रहमें हैं, जिनमें दो किरायेदारोंका वर्णन है।]

आधी रातके समय नानीकी आहट मिलती थी। अुनको नींद नहीं नींद नहीं आती थी वह पुकारती थी—बेटी बिन्नु जाग रही हो?

अिधरसे अुत्तर जाता था—क्या माँ बात क्या है?

—तुम्हें याद है अुस हिस्सेके कोनेके कमरेमें जो वैष्णव रहते थे? क्या खूब गाने गाते थे। अब भी जैसे सुन रही हूँ।

माँ कहती थी—मुझे याद है।

नानी कहती थी—न जाने कहाँसे अुस लड़कीको पकड़ लाये थे। और अुस पर कितनी मारपीट करते थे। पर लड़कीकी चालचलन अच्छी ही थी।

माँ कहती थी—जलमुँहीमें ज्ञानबुद्धिका अभाव था।

यहीं तक (बात होकर रह जाती थी)। नानी भी चुप हो जाती थी, और माँ की भी कोअी आहट नहीं मिलती थी। (कथित) जलमुँहीकी बात मैं भी नहीं भूल सका था। अुस स्त्रीकी नाकपर तिलक बना रहता था, हाथ पर हरेकृष्ण गुदना गुदा था, जूड़ेमें बेलाकी माला लटकती रहती थी। अुसकी आँखोंमें जैसे (हर समय) नींद बनी रहती थी, बिना किनारेकी सफेद साड़ी पहनती थी। अुसका बदन साधा-साधा (लावण्य युक्त) था और अुसमें चन्दनकी (भीनी-भीनी) गंध आती रहती थी। अुसकी जीभपर हर समय कीर्तनकी अेक कड़ी बनी रहती थी और वह जब गा अुठती थी तो हमारे अिधरके लोग काम छोड़ कर खड़े हो जाते थे। अेक दिन वे मकान छोड़कर चले गये पर (अिससे क्या) अुनके गाने तबसे अिस मकानके अन्तस्थलमें बराबर अेक हूक सी पैदा करते हैं। कोनेके कमरेकी हवामें वे मानो कीर्तनकी अुस टीसको छोड़ गये हैं।

अुसीके बगलके कमरेमें रहनेवाली बेथून कालेजकी छात्रा—दो गोरी लड़कियाँ भी याद आतीं। अुनकी अुम्र बहुत काफी थी। अुनके पिताका नाम रमाकान्तका काटिया था। वे आसाम की थीं और यहाँ पढ़ने-लिखने की सुविधाके लिअे आयी थीं। स्मरण आ रहा है कि किसी भी दिन अुन लोगोंने हमसे बातचीत नहीं की। वे सम्भ्रान्त और शिक्षिता थीं, (तिसपर) कपड़े लत्तोंका आभिजात्य था। कभी कभी मैं पास जाकर खड़ा हुआ, तो वे अनुकम्पाकी दृष्टिसे देखकर दूर हट जाती थीं। वे आपसमें अपनी भाषामें विद्रूपकी हँसी हँसती थीं, फिर भी हम अुन्हें अचरजकी निगाहसे देखते थे। हम समझ पाते थे कि हमारे प्रति कितनी घृणा और कितनी कृपा रखती थीं। अुनके चेहरेपर कैसी कठोर हँसी रहती थी! गुलाबके फूलकी तरह चेहरे थे पर (जैसे बनाअे रहती थीं कि) सूखे रंगीन कागजके फूल मालूम होते थे। अुनकी आँखोंमें हम अपनेको ही देखते थे हम कितने कंगाल कितने अकिंचन कितने निर्बोध थे। जबतक वे अुस बड़े कमरेमें थीं, तबतक हम अुनकी घृणाके वाहन बने रहे।





संपादकीय

अिस अंकके सम्बन्धमें :

'राष्ट्रभारती'का यह "सम्मेलन विशेषांक" हम अपने प्रेमी पाठकोंकी सेवामें अत्यन्त विनय और आदर पुरस्सर अुपस्थित करते हैं। अिस अंकमें जो कुछ भी अच्छाअी आ सकी है, वह 'राष्ट्रभारती' के शुभेच्छु सहृदय-समर्थ लेखकों अेवं सुरुचि-सम्पन्न पाठकोंकी सद्भिलाषा और हार्दिक सहयोगका फल है। सन्त तुलसीके शब्दोंमें कहें—'राम निकाअी रावरी है सब ही को नीक'। जो कुछ त्रुटियाँ रह गयी हैं वे हमारी अयोग्यताके ही कारण रह गयी। हम जैसा विशेषांक निकालना चाहते थे, हमें खेद है, वैसा नहीं निकाल सके। क्षमध्वम्! 'राष्ट्रभारती' लोकप्रिय अन्तरप्रान्तीय समग्र भारतीय साहित्यका प्रतिनिधित्व करनेवाली पत्रिका है। प्रत्येक सुरुचिके शिष्ट पाठकको अुसकी अपनी सुरुचिकी सामग्री अिसमें पढ़नेको मिलती है।

'राष्ट्रभारती' को पढ़नेसे पाठक अन्दाज लगा सकते हैं कि किस नीति-रीतिसे, किस भावनासे, हम भारतकी राष्ट्रभाषा, राजभाषा, हिन्दीकी सेवा करना चाहते हैं। जिस हिन्दीको अमीर खुसरो, कबीर, तुलसी, सूर, नानक, रहीम और रसखानकी अमृतमयी वाणीका बल मिला हो; और जिसे भारतेन्दु, हरिश्चन्द्र, दयानन्द, गान्धी, महावीर प्रसाद और प्रेमचन्दकी समस्त चेतना और जीवन-साधनाकी शक्ति मिली हो—अुस हिन्दीमें हम कविकुलगुरु रवीन्द्र गुरुदेव, वल्लात्तोल, सुब्रह्मण्य भारती, खाडेकर, विश्वनाथ सत्यनारायण, कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी, मेघाणी, बेन्द्रे, जोश मलीहाबादी, अमृताप्रीतम, बरुआ, अुड़ियाके अपने कुञ्जविहारीदास आदि-आदि महानुभाव, जो शब्दों और अर्थोंमें युगकी चेतना व्यक्त करते हैं; जिन-जिन भाषाओंका प्रतिनिधित्व करते हैं, भारतके जन-जनकी बोली बँगला, मराठी, गुजराती, असमिया, अुड़िया, अुर्दू, काश्मीरी, पंजाबी, तेलुगु, तमिल, कन्नड, मलयालम आदि भारतीय भाषाओंका सम्पूर्ण नवल लेकर समूचे सम्पन्न राष्ट्रकी अेक भाषाका रूप देना चाहते हैं। 'राष्ट्रभारती' को राष्ट्रका हम अैसा स्वच्छ सुन्दर दर्पण बनाना चाहते हैं, जिसमें राष्ट्रभाषा अपना स्वस्थ अेवं सुन्दर मुखबिम्ब निहार सके।

हमारा विश्वास है, अेक राष्ट्र-भाषाके बिना, सारे राष्ट्रकी अेकता हो नहीं सकती, भारत अुन्नत राष्ट्र बन नहीं सकता, सुख, शान्ति और शोभा राष्ट्रमें नहीं आ सकती।

अिस अंकमें, श्री बाबूराव विष्णु पराड़करजीका, काका साहब गाडगीलजीका संक्षिप्त परिचय हम दे सके हैं, जो भारतकी विभूतियोंमेंसे हैं। अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनके अधिवेशनमें श्रद्धेय पराड़करजीका सम्मान और माननीय काका साहब गाडगीलजीकी अध्यक्षता,

–दोनों बातें, देशका और हिन्दीका, महान् सम्मान करना है। राष्ट्रभक्त बाबू श्रीप्रकाशजी और डॉ पट्टाभि सीतारामय्या अिस आयोजन, राष्ट्रीय-यज्ञ समारम्भके अुद्घाटक, अुद्घोषक हैं। समस्त हिन्दी जगत् अुनपर अपना स्नेहादर सिंचन करता है।

जिस महात्माने, जिस राष्ट्रपिताने हमें यह धन्य-दिवस दिया, हमें दृष्टि दी, हमारी आँखें खोली हम अुनके ऋणसे अुऋण कदापि नहीं हो सकते।

चर्चाका स्वागत :

गत सितम्बरकी 'राष्ट्रभारती' के अंकमें भाषा विज्ञानाचार्य डॉ० सिद्धेश्वर वर्माजीका अेक पत्र हमने प्रकाशित किया था। वह पत्र "साहित्यावलोकन" (साहित्य भवन लिमिटेड प्रयाग द्वारा प्रकाशित पुस्तक) के लेखक श्री विनयमोहन शर्माको लिखा गया था। वह पत्र हमारे पास श्री सिद्धेश्वरजी द्वारा दिल्लीसे सीधे ही प्रकाशनार्थ प्राप्त हुआ था। अुसमें साहित्य सम्बन्धी कुछ प्रश्न अुठाये गये हैं, जिनपर पाठकोंके मतका हम सहर्ष स्वागत करेंगे।

स्पष्टीकरण :

श्री अनिलकुमार 'साहित्य रत्न' ने अुक्त अंकमें प्रकाशित सम्पादकीयमें ऋषि दयानन्द सरस्वतीके सम्बन्धमें लिखी हुआी पंक्तिकी ओर हमारा ध्यान खींचा है। स्पष्टीकरण यही, कि ऋषिका जन्म गुजरात सौराष्ट्रके अेक छोटेसे देहात टंकारा नामक गांवमें हुआ था। अिसलिअे वे जन्मना गुजराती, मातृभाषा अुनकी गुजराती, देश गुजरात, कर्मभूमि थी अुनकी सारा भारत ही, किन्तु पंजाब और अुत्तर प्रदेश तो विशेष रूप से।

हृ० शु०

अँग्रेजीका मोह :

अभी पटनामें भारतीय हिन्दी-परिषद्के अधिवेशनमें दिये गये अपने अध्यक्षीय भाषणमें अुत्तर प्रदेशके राज्यपाल साहित्य वाचस्पति श्री कन्हैयालाल मा मुन्शीने अँग्रेजीको अति शीघ्रतासे दूर करनेकी प्रवृत्तिके विरुद्ध चेतावनी दी है। अुनका कहना है कि अिससे भाषा सम्बन्धी प्रान्तीय भावनाओंको अुत्तेजन मिलेगा, हमारी राष्ट्रीय भावनाअें दुर्बल होंगी और विज्ञान आदि विषयोंका शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त करनेमें असुविधाअें तथा अडचनें पैदा होंगी। अिसका अर्थ यह नहीं कि वे हिन्दीका प्रचार नहीं चाहते। वे कहते हैं कि हिन्दीका प्रचार अुत्साहपूर्वक किया जाअे, साहित्य तथा अुसकी शास्त्रीय ग्रंथ समृद्धि बढायी जाअे और अिसके लिअे जितना भी बन पडे, प्रयत्न किया जाअ, परन्तु अँग्रेजीको निकाल बाहर करनेकी बात करना अुपयुक्त नहीं।

अंग्रेजीके पक्षमें श्री मुन्शीजीका अिस तरहका कथन कोअी नयी बात नहीं है, परन्तु अिस समय अुन्होंने जिन जोरदार शब्दोंमें यह कहा है, अुससे अुनका यह विचार बडी चर्चाका विषय बन गया है। यह स्वाभाविक है कि अुनका अिस तरह अँग्रेजीका पक्ष लेना, किसी भी राष्ट्रभाषा-हिन्दीके प्रेमीको अखरेगा। यह नहीं, कि अुनकी दलीलोंमें कुछ तथ्य नहीं, बहुत कुछ तथ्य है। अंग्रेजी ब्रिटिश साम्राज्यकी भाषा थी और वह साम्राज्यकी भाषाके रूपमें ही हिन्दपर लादी गयी थी। अिसलिअे जब हम यह कहते हैं कि भारतके स्वतन्त्र हो जानेके बाद, अब जहाँ पहले अँग्रेजी चलती थी, वहाँ राष्ट्रभाषा हिन्दी चलनी चाहिये, पहले हाअीस्कूल तथा कालेजोंमें अंग्रेजीमें पढ़ाअी होती थी, तो अब हिन्दीमें होनी चाहिये,

अदालत तथा कचहरियोंमे भी अंग्रेजीका स्थान हिन्दीको मिले, तो अिसका परिणाम यह होता है कि लोग अंग्रेजीके साथ जिस प्रकार साम्राज्यवादका सम्बन्ध जोडा करते थे, असी प्रकार हिन्दीके साथ भी साम्राज्यवादका सम्बन्ध जोडने लगते है। अिससे हिन्दीको हानि पहुँचनेकी सम्भावना है।

प्रान्तीय भाषाओंके साहित्यिको तथा राजनीतिक पुरुषोको अपनी-अपनी भाषाओंको समृद्ध बनानेका और अुन्हे अूंचा-से-अूंचे पद दिलानेका मोह हो, तो अुसे हम अनुचित नही कहेगे। जिन लोगोको भय है कि यदि सब स्थानोपर हिन्दी ही का अुपयोग होने लगा तो अुनकी मातृभाषाको अुचित स्थान नही प्राप्त हो सकेगा और वह समृद्ध न बन सकेगी। अिस भयके कारण भाषाकीय प्रान्तीय भावनाअें जोर पकडती जा रही है, जो हमारी अेक राष्ट्रीयताके लिअे बडी ही खतरनाक चीज है, अिसमें सदेह नही।

हिन्दी अंग्रेजीकी तरह अितनी समृद्ध भी नही कि अुसके द्वारा सभी प्रकारके विषयोका सम्पूर्ण अध्ययन किया या कराया जा सके। अिसके लिअे हमें किसी विदेशी भाषाकी सहायता लेनी ही पडेगी और क्योकि हमारे शिक्षित वर्गकी शिक्षा अबतक अंग्रेजीमें हुअी है, अिसलिअे अंग्रेजी ही हमारे लिअे विशेष अुपयोगी हो सकती है—यह बात भी निर्विवाद मानी जाअेगी।

हमें यह भी नही भूलना चाहिये कि हम अेक सक्रान्तिकालमें है। सक्रान्तिकालमें अैसी अनेक कठिनाअियाँ और समस्याअें अुपस्थित होती हैं, जिनका सुलझाना कठिन ही नही, असम्भव प्रतीत होता है। कभी तो अैसा लगता है कि अुन्हे जितना सुलझानेका प्रयत्न किया जाअेगा, वे अुतनी ही अधिक अुलझने पैदा करेंगी। श्री मुन्शीजीका यह सुझाव अवश्य स्वागत करने योग्य है कि हमें हिन्दीके प्रचारपर, अुसको समृद्ध बनानेपर ही अधिक जोर देना चाहिये। किसी भी रचनात्मक कार्य प्रवृत्तिमें 'यह नही करना चाहिये' कहनेके बदले 'यह करना चाहिये', कहना ही अधिक अुपयोगी होता है। अुससे कार्य करनेकी प्रेरणा मिलती है और नाहक विरोध नही पैदा होता।

परन्तु आजकल बार-बार अंग्रेजीकी प्रशसा सुननेको मिलती है और मनमें सदेह होता है। श्री मुन्शीजीके भाषणने भी अिसी प्रकारका सदेह पैदा किया है। अंग्रेजीकी अितनी प्रशसा और अुसको रखनेके आग्रहके पीछे क्या भावनाअें कामकर रही है—अिसका अनुमान किया जा सकता है। अंग्रेजी भारतकी राष्ट्रभाषा, आतरप्रान्तीय व्यवहारकी भाषा नही बन सकती—अिसे स्वीकार कर लेनेके बाद भी जब बार-बार अंग्रेजीके महत्वकी बात कही जाती है, अुसे बनाये रखनेकी चर्चा भी कुछ लोग करते है, तब यही शका होती है कि वे केवल अपना या अपने स्तरके लोगोका ही विचार करते है, राष्ट्र या राष्ट्रकी जनताका वे विचार नहीं करते। जनता, जनताकी शिक्षा, जनताके हृदयके भाव—अिन सबका यदि विचार किया जाअे, तो अंग्रेजीकी प्रशसा और अुसके बनाये रखनेकी दलीलें केवल सारहीन ही नही, विकृत दृष्टिकी भी प्रतीत होगी।

भारतीय संघके राज्योंका पुनर्विभाजन :

मद्रासमें भाषानुसार प्रान्त रचनाके प्रश्नपर भारतके प्रधान-मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरूने अपने विचार बडी स्पष्टता पूर्वक प्रजाके समक्ष रख दिये। कांग्रेसने कअी वर्षोसे भाषानुसार प्रान्त रचनाके सिद्धान्तको स्वीकार किया

हुआ हैं। परन्तु आज अिसके लिअे जिस प्रकार आन्दोलन चलाया जा रहा है और अैसी पुनर्रचना बहुत जल्दी करनेपर जो जोर दिया जा रहा है, वह अवश्य चिन्ताका विषय है। श्री नेहरूने स्पष्ट कहा है—'मैं केवल भाषानुवृत्त प्रान्तोंका ही विचार करनेके लिअे तैयार नहीं हूँ। लेकिन मैं अिसी वक्त सारे भारतका विचार करनेके लिअे तैयार हूँ— सारी बातोंको ध्यानमें रखकर और भाषा सम्बन्धी सांस्कृतिक और अन्य बातोंको दृष्टिमें रखकर विभिन्न राज्योंका पुनर्गठन कैसे किया जाअे—यह सोचना है, जिससे कमीशन भारतके लोगोंके सामने पूरी तसवीर पेश कर सके।"

'भाषानुसार प्रान्तरचनाका सिद्धान्त हमारी दृष्टिको संकुचित बना देता है और हमें भारतके प्रति कम तथा अपने राज्यों या प्रान्तोंके प्रति अधिक सजग बनाता है। अगर अिसका यही नतीजा हो, तो यह बुरा नतीजा है। हम सबसे पहले और सबसे ज्यादा ध्यान सम्पूर्ण राष्ट्रका होना चाहिये। अिसे ही राष्ट्रीय चेतना कहते हैं, वरना आम लोग संकुचित और प्रान्तीय दृष्टिवाले बन जाते हैं। भले हम भारतके किसी भी हिस्सेसे क्यों न हों, जब हम भारतके बाहर जाते हैं, तब हममें भारतका खयाल ही ज्यादा मजबूत होता है। लेकिन अगर आप अपने राज्य, जिले या शहरका विचार करते रहे तो देशकी भावना अितनी मजबूत नहीं हो सकती। मैंने हमेशा यह महसूस किया है कि भारतकी स्वतंत्रता प्राप्त करनेके बाद दूसरी मंजिल-भावना और मनोवैज्ञानिक आधारपर अिस अेकताकी सिद्धि होगी।

"मैं भारतके लोगोंको अुनके दिमागों, आदतों या विचारोंको अेक साँचेमें ढालनेकी जरा भी अिच्छा नहीं रखता। अैसा करना घातक होगा। मैं चाहता हूँ कि भारतकी समृद्ध-विविधता कायम रहे और भारतका हर हिस्सा अपनी आदतों और जीवन तथा विचारोंकी विविध पद्धतियोंके अनुसार अपना विकास करे। लेकिन अुसे भारतीय अेकताके नकशेका जरूर खयाल रखना चाहिये। अगर हम अिस दृष्टिसे अिस महत्वपूर्ण समस्यापर विचार नहीं करेंगे, तो अेक मजबूत राष्ट्रके रूपमें आगे नहीं बढ़ सकेंगे। अिसके फलस्वरूप अतीतमें हमने जो बुरे दिन देखे हैं, वैसे ही फिर देखने पड़ सकते हैं।

अेक से अधिक लिपि सीखो :

बम्बअीमें हिन्दुस्तानी प्रचार सभाके अुत्सवमें भाषण करते हुअे राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादने कहा कि भारतीय संविधानमें अेक लिपि-नागरी लिपिको स्वीकार किया है, फिर भी अुर्दू लिपि सीख ली जाअे, तो अच्छा है और दक्षिण भारतकी भी कोअी अेक लिपि सीख लेनी चाहिये।

आज हमारे यहाँ अनेक लिपियाँ प्रचलित हैं, अिसको स्वीकार करना होगा। बलपूर्वक हम किसी लिपिको हटा भी नहीं सकते हैं। अैसी परिस्थितिमें जो लोग जनतामें काम करना चाहते हैं, अुन्हें नागरीके अलावा दूसरी लिपियाँ भी सीखनी पड़ेंगी और जो लोग स्वेच्छासे अैसा करेंगे, वे धन्यवादके पात्र होंगे। परन्तु प्रश्न यह है कि संविधानमें केवल नागरी लिपि स्वीकार की गयी है तो अुसीका सर्वत्र प्रचार क्यों न किया जाअे? कुछ समय पहले पं० जवाहरलाल नेहरूने भी, आसाममें अुन्हें जो अनुभव हुआ, अुसपरसे यह कहा था कि भाषाअें विभिन्न प्रदेशोंकी विभिन्न रहनेपर भी, यदि अुन सबकी अेक लिपि हो, वे अेक नागरी लिपिमें लिखी जाअें, तो बहुत

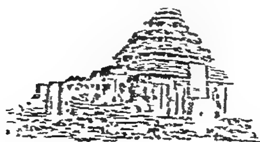
सुविधा होगी। यदि अैसा हो तो अिसका अेक परिणाम यह भी होगा कि विभिन्न भाषा भाषी जनताका अेक दूसरेसे सम्पर्क बढ़ेगा और वह अेक दूसरेके अति निकट आ सकेगी। अिस दिशामें कुछ प्रयत्न भी हो रहे हैं, लेकिन ये प्रयत्न बहुत ही नगण्य हैं। अिनके लिअे संगठित और बड़े पैमानेपर प्रयत्न करनेकी आवश्यकता है। परन्तु जबतक सभी प्रान्तके लोग अपनी-अपनी लिपिका मोह छोड़कर केवल नागरी लिपिको अपनानेके लिअे तैयार नहीं होते, तबतक हमें दूसरी लिपियोंके सीखनेका कुछ-न-कुछ प्रयत्न करना ही होगा—अिसमें सन्देह नहीं।

हिन्दी-भवन-दिल्ली :

यह हर्षका विषय है कि दिल्लीमें हिन्दी-भवनकी स्थापना हो गयी। हम अुसका स्वागत करते हैं। कभी दिनोंसे अिसकी चर्चा हो रही थी, परन्तु अब अुसकी नींव पड़ गयी और वह नींव डाली गयी है भारतके केन्द्रीय-नगर दिल्लीमें। दिल्लीमें हिन्दीके विद्वानों तथा प्रेमियोंकी कमी नहीं और जिन दिनों पार्लामेंट या विधान-सभाकी बैठक होती है, अुस समय वहाँ भारतके अच्छे-से-अच्छे हिन्दीके विद्वान तथा हिन्दी प्रेमियोंकी अुपस्थिति रहती है। हिन्दीका प्रचार और अुसको समृद्ध बनानेके लिअे साहित्य-निर्माण-कार्य दोनों प्रकारके कार्य आज अत्यन्त आवश्यक है। हिन्दी-भवन द्वारा ये दोनों कुचारु रूपसे सम्पादित हो सकेंगे। हम आशा करते हैं कि हिन्दी-भवन अिन दोनों प्रकारके कार्योंमें मार्गदर्शकका काम करेगा। प्रचारका कार्य तो कुछ संस्थाअें अच्छी तरहसे कर ही रही हैं। परन्तु सबकी अपनी-अपनी मर्यादा होती है। प्रचार-कार्य अैसा कार्य है, जिसमें छोटे-बड़े सब योग दे सकते हैं, परन्तु अुनमें काम लेनेवाला कोअी हो। १५ वर्षमें केन्द्रीय सरकारके सब विभागोंमें हिन्दीको अुसका अुचित स्थान दिलाना हो, तो दिल्लीमें ही बहुत काम है। ३५००० से अधिक भारत सरकारके हिन्दीतर-भाषी कर्मचारी हैं, जिन्हें हिन्दी सिखानेकी आवश्यकता है। हिन्दी-भवन अिस दिशामें बहुत कुछ कर सकता है।

परन्तु प्रचार कार्यसे कहीं अधिक महत्वका कार्य है 'साहित्य-निर्माणका' और यह कार्य अैसा है कि अुसे सब लोग कर भी नहीं सकते। अिस कार्यको तो हिन्दीके गण्यमान्य साहित्यिक ही कर सकते हैं और हिन्दी-भवनको तो अैसे ही लोगोंका विशेष सहयोग मिलेगा। यह भी कह सकते हैं कि यह संस्था अैसे लोगोंकी ही होगी। यदि वे सब राष्ट्रके नामपर, हिन्दी तथा हिन्द के समृद्धिके नामपर कुछ अपने श्रमका तथा प्रतिभा का दान करें, तो यह संस्था बड़ी आशाओंसे सफल हो सकता है।

—मो० म०



'मेघदूत' के महत्वपूर्ण प्रकाशनके बाद "प्रेरणा" का छठा-सातवाँ अंक

:प्रेमचन्दके पात्र:

विशेषांक होगा

★ अिस अंकमें प्रेमचन्दके अुपन्यासों और कहानियोंके सभी महत्वपूर्ण पात्रोंपर अधिकारपूर्ण लेख होंगे। ★ विशेषांकका मूल्य लगभग ४) होगा।

★ प्रेरणाके स्थायी ग्राहकोंके लिअे यही मूल्य रहेगा। अग्रिम आर्डर भेजिये।

शीघ्र ही वार्षिक ग्राहक बनकर अिस सुविधाका लाभ अुठावें। वा. १४) रु.

सम्पादक : कोमल कोठारी,
सोजतीगेट, जोधपुर (राजस्थान)

पुस्तक-परिचय

अुत्कल साहित्य और साहित्यिकोंसे परिचय प्राप्त करना चाहते हैं तो निम्नलिखित पुस्तकें पढ़िये—

१—**प्रतिभा**—लेखक डा. श्री हरेकृष्ण महताब। प्रतिभा जो अुत्कल विश्वविद्यालयकी बी. अे परीक्षाके पाठ्यक्रममें है, अुसीका यह हिन्दी अनुवाद है।

२—**अुत्कल मणि पं० गोपबन्धु दास**—पं० गोपबन्धु दासकी जीवनी है। मूल अुत्कल भाषाके लेखक पं. लिंगराज मिश्र अेम पी. हैं।

३—**धर्मपद**—पं. अुत्कलमणि गोपबंधु दासका लिखित अुत्कल भाषाका खण्ड काव्य है।

४—**अुत्कल साहित्यकी श्रेष्ठ कहानियाँ**—अिसमें अुत्कल भाषाके प्रसिद्ध आठ लेखकोंकी कहानियाँ संग्रहीत हैं।

५—**राष्ट्रभाषा बन्धु और राष्ट्रभाषा सुबोधिनी**—
अुत्कल भाषा सीखनेमें सहायक

६—**क्या यह सुनी कहानी**—लेखक पं० रामेश्वर दयालजी दुबे हैं।

प्रकाशक—अुत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, कटक-१

वार्षिक चन्दा ६) मनीआर्डरसे   अर्धवार्षिक ३॥)   अेक अंकका मूल्य १० आना

पता:—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दीनगर, वर्धा (म० प्र०)

हम आपसे कुछ कहना चाहते हैं!

'राष्ट्रभारती' का तीसरा वर्ष जनवरी ५३ से ही शुरू हो चुका है। तीसरे वर्षका यह ग्यारहवाँ (नवम्बर मासका) अंक आपके हाथमें है।

'राष्ट्रभारती' के जिन प्रेमी ग्राहकोंका वार्षिक चन्दा अिस अंकके साथ पूरा हो जाता है अुनसे हमारा नम्र निवेदन है कि वे अपना अगले वर्षका चंदा ६ रु० मनीआर्डर द्वारा तुरन्त भेजनेकी कृपा करें। वार्षिक या छहमाही चंदा हर हालतमें मनीआर्डर द्वारा भेजना ही ठीक होगा। अिससे हमको और आपको सुविधा होगी। आपको अंक समयपर मिलेगा। वी०पी० और रजिस्ट्री चार्जकी झंझटसे आप और हम दोनों बचेंगे। आशा है, आप हमारी अिस प्रार्थनापर जरूर ध्यान देंगे।

दूसरा निवेदन यह भी है कि कमसे-कम अपने किसी अेक-दो पड़ोसी मित्रोंको भी ग्राहक अवश्य बना दें और अुनका सालाना चंदा मनीआर्डरसे भिजवा दें। यह 'राष्ट्रभारती' सबसे सस्ती सुन्दर साहित्यिक, सांस्कृतिक पत्रिका है, जो ठीक समयपर हर १ ली ता० को निकलती है।

अिस पत्रिकाके प्रचारमें आप अवश्य अपना सहयोग बटावें।

मनीआर्डरसे वार्षिक चंदा ६ रु० और छहमाही चंदा ३ रु० ८ आ०

नमूना अंकके लिये दस आना मात्र।

पता :— व्यवस्थापक—'राष्ट्रभारती', पो०—हिन्दीनगर (वर्धा, म० प्र०)

राष्ट्रभारतीके लेखकोंसे निवेदन!

(१) 'राष्ट्रभारती' में प्रकाशनार्थ रचना आदि सामग्री स्वच्छ सुवाच्य लिखावटमें अथवा अच्छी टाअिप की हुअी भेजनी चाहिये। प्रकाशन योग्य सामग्री जो कुछ भी आप भेजें वह बहुत भारी-बोझिल और खूब लंबी चौड़ी नहीं होनी चाहिये, इसका खास खयाल रखें। आपके हार्दिक सहयोगके लिये राष्ट्रभारती बहुत आभारी होगी।

(२) यह अच्छी तरह ध्यानमें रहे कि राष्ट्रभारतीमें प्रकाशनार्थ भेजी हुअी आपकी रचना अिसके पूर्व किसी हिन्दी पत्र-पत्रिकामें प्रकाशित न हो चुकी हो, और जो कुछ सामग्री भेजें वह 'राष्ट्रभारती' के लिये ही भेजें।

(३) अनुवादक महाशय किसी अनूदित रचनाको भेजनेसे पूर्व अुनके मूल-लेखकसे पत्रद्वारा अनुमति अवश्य प्राप्त कर लें; तभी अनूदित रचना हमारे यहाँ भेजें।

(४) आपकी स्वीकृत रचना संबंधी सूचना संपादक द्वारा आपको दी जायेगी और तबतक आपको प्रतीक्षा करनी होगी।

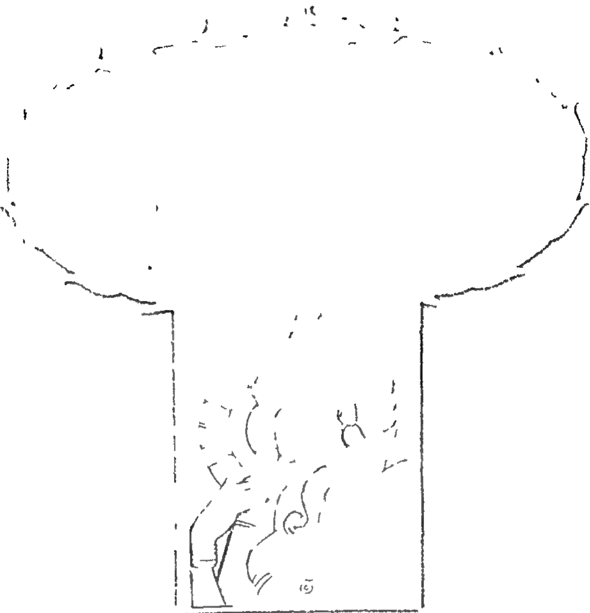
(५) अपनी अस्वीकृत रचनाको वापस मंगानेके लिये टाक-टिकट अवश्य भेजें अथवा आप अुसकी प्रतिलिपि अपने पास सुरक्षित रखें।

(६) लेख, रचना आदि प्रकाशन योग्य सामग्रीका सारा व्यवहार अिस पतेपर करें —

संपादक : 'राष्ट्रभारती'

पोस्ट—हिन्दीनगर (वर्धा, मध्यप्रदेश)

मुद्रक तथा प्रकाशकः— मोहनलाल भट्ट, राष्ट्रभाषा प्रेस,— राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा।



दिसम्बर, १९५३

[illegible]

'राष्ट्रभारती बिहार, राजस्थान मध्यभारत हैदराबाद और भोपाल राज्यके शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों, कालेजों और वाचनालयोंके लिये स्वीकृत हो चुकी है।

[सूचना — राष्ट्रभारतीमें सर्वश्री डा बाबूराम सकसेना आचार्य काका कालेलकर, महामहोपाध्याय दत्तो वामन पोतदार स्वर्गीय किशोरीलाल मशरूवाला और उत्तर प्रदेशके वर्तमान राज्यपाल श्री क०मा०मुन्शीजी आदि विशेषज्ञोंकी अेक समिति द्वारा १९३६में निर्णीत नागरी लिपिका प्रयोग होता है —अि आ अु अू अ, अै (इ ई उ ऊ ए और ऐ की जगह) और च ण और क्ष (ञ ण और क्ष अक्षरोंके स्थानपर) —सं०]

—ःविषय-सूचीः—

वार्षिक चन्दा ६) मनीआर्डरसे अर्धवार्षिक ३॥) अेक अंकका मूल्य १० आना

पता:— प्रचार ... हिन्दीनगर वर्धा (म० प्र०)

राष्ट्र भारती

[भारतीय साहित्य और संस्कृतिकी मासिक पत्रिका]

—: सम्पादक :—

मोहनलाल भट्ट : हृषीकेश शर्मा

* वर्ष ३ * वर्धा, दिसम्बर १९५३ * अंक १२ *

राष्ट्रभाषा हिन्दी : "वहता नीर"

: डॉ बलदेवप्रसाद मिश्र, डी. लिट. :

अबसे हिन्दी राजभाषा घोषित हो चुकी है, तबसे विचारकोंका ध्यान अिसपर और अधिक केन्द्रित हो गया है। वस्तुतः यह राष्ट्रभाषा तो थी ही, भले ही राज्यकी ओरसे अुसकी अधिकृत घोषणा न हुअी हो। परन्तु घोषणा हो जानेके बाद अब अुसकी ओर प्रत्येक प्रान्तके विचारकोंका ध्यान विशेष आकर्षित हो गया है।

पहिले तो हिन्दी और अुर्दूकी खींचतान थी और भारतीय राष्ट्रभाषाके अिन दो रूपोंको अेकमें मिलानेके लिअे हिन्दुस्तानीके सृजनकी ओर विचारकोंका ध्यान गया था। परन्तु वह बात कुछ चल न पायी। बात यह है कि लोकभाषा कोअी "कूप जल" तो है नहीं, वह तो "बहता नीर" है। अिसलिअे वह तो नैसर्गिक गति ही से आगे बढ़ेगी। जन-साधारण जिसे चला दे, वही भाषा है। लोकभाषा कहीं किसी विशेषज्ञोंकी समितिमें गढ़ी नहीं जाती। यदि कुछ लोगोंने भगीरथ प्रयत्न करके अुसे गढ़ लिया, तो जन साधारणपर अुसका मढ़ना और भी कठिन व्यापार समझिअे। गढ़ी हुअी भाषा शब्द कोशोंमें अपनी बहार भलेही दिखाती फिरे, परन्तु कोअी विधान, कोअी व्याकरण, कोअी कोश, अुसे जन-साधारणपर मढ़ नहीं सकता, जबतक कि जन-साधारणकी रुचि स्वतः अुस ओर प्रवृत्त न हो जाअे। अुर्दूकी शब्दावलीके बहुतसे विदेशी शब्द अैसे थे, जो अपने साथ विदेशी संस्कार भी लिये हुअे थे, अतअेव "हिन्दुस्तानी" के नामसे अुन शब्दोंको ग्रहण कर लेना, अर्थकी जगह अनर्थ पैदा कर सकता था। गुरु वशिष्ठ कभी अुस्ताद वशिष्ठ नहीं हो सकते और न महारानी सीता कभी बेगम सीता हो सकती है। विचारकोंने यह बात समझी, अिसीलिअे अुन्होंने अपना वह हठ छोड़ दिया और यह निश्चय कर दिया कि हिन्दीका वही रूप राज-भाषा और राष्ट्रभाषाके रूपमें मान्य होगा जो अुसका परम्परागत रूप है और अुसकी खास प्रकृति तथा प्रवृत्तिके अनुकूल है।

अिस निर्णयकी अेक प्रतिक्रिया भी हुअी। कुछ लोगोंने अिसीलिअे अब संस्कृत निष्ठतापर जरूरतसे ज्यादा जोर देना शुरू किया और संस्कृतके आधारपर अनेकानेक अप्रचलित नये-नये शब्द गढ़ने प्रारम्भ किये। हिन्दी केवल संस्कृतके व्याकरण अथवा संस्कृतके कोशका ही आधार लेकर नहीं चली है। वह देशज बोलियों

और द्रविड भाषाओंमें भी तो प्रभावित है। वह वास्तविक अर्थमें राष्ट्रभाषा है। अतअेव जिस प्रकारके अेकांगी गढे हुअे शब्द भी जन-साधारणपर पूरी तरह मढे नहीं जा सकेंगे। नये-नये भाव, नये-नये सूक्ष्म विचार, नयी-नयी परिस्थितियोंके अनुकूल नये-नये व्यक्तीकरण, नये-नये शब्दोंकी अपेक्षा अवश्य रखते हैं। अतअेव अिनके लिअे नये-नये शब्द अवश्य गढे जायें, परन्तु अिस प्रकारकी गढनके लिअे हिन्दीकी प्रकृति और प्रवृत्तिका ध्यान अवश्य रखा जाअे तभी वे शब्द जनता द्वारा ग्राह्य होंगे। अिस प्रकृति और प्रवृत्तिका असली निर्णय होता है जनता जनार्दन द्वारा, न कि कोशकारों, वैय्याकरणों अथवा शब्द-निर्माताओं द्वारा। ये लोग नये-नये शब्द बनाकर जन-साधारणके सम्मुख रख दें, जनता अुस शब्दावलीमेंसे लोक-भाषाके अनुकूल शब्दोंको आप ही ग्रहण कर लेगी और शेषको विस्मृतिके गर्भमें ढकेल देगी।

प्रत्येक प्रान्तवासी राष्ट्रभाषामें अपनी-अपनी भाषाओंका योगदान देनेको अुत्सुक हो रहे हैं। यह भी स्वाभाविक ही है। राष्ट्रभाषा सभीकी भाषा है, अिसलिअे प्रान्त-भाषाअें अपनी-अपनी अभिव्यंजनाके सुंदरसे सुन्दर शब्द और प्रयोग क्यों न अिस भाषाको अर्पित करें। हमारा तो अनुमान है कि अिसमें किसी प्रकारके डरकी कोअी बात नहीं। भगवती भारतीके मंदिरमें प्रत्येक भारतीय अपनी श्रद्धाके पुष्प अर्पित करनेको स्वतंत्र है। देवताको जो फूल ग्राह्य होंगे, वे ही वहाँ टिके रहेंगे, शेष कुम्हलाकर अलग हो जाअेंगे। बरसाती बाढमें सभी दिशाओंसे सभी तरहकी चीजें प्रवाहमें बहकर आती हैं। परन्तु कुछ दिनोंके बाद "बहता नीर" आवश्यक सुरसको आत्मसात करता हुआ अपनी नैसर्गिक निर्मलता फिर धारण कर लेता है और बाढकी अनावश्यक वस्तुअें आप-ही-आप अिधर-अुधर विलीन हो जाती हैं।

कबीरका दोहा अिस मौकेपर कितना चुस्त बैठ रहा है। वे कहते हैं—

> "भक्ति भाव भादों नदी सबै चलीं घहराय,
> सरिता सोअि सराहिये जो जेठ मास ठहराय।"

हिन्दीमें भी अिस समय विदेशी शब्दोंकी, संस्कृत कोश और संस्कृत व्याकरण द्वारा गढे हुअे शब्दोंकी, प्रादेशिक शब्दों तथा प्रयोगोंकी बाढ आ रही है। यह स्वाभाविक ही है। अिससे घबरानेकी कोअी जरूरत नहीं। यह तो समयका तकाजा है। परन्तु आगामी कलके अिसके स्वरूपमें अिस मटैले बाढका गंदलापन आप-ही-आप दूर हो जाअेगा और अुस बाढके स्वस्थ तत्वोंको आत्मसात करते हुअे यह अपनी स्वाभाविक प्रकृति और स्वाभाविक प्रवृत्तिके अनुसार जेठमासकी सरिताकी तरह निर्मल कल्याणकारी रूप प्रदर्शित करेगी, अिसमें कोअी संदेह नहीं।

बहते नीरकी धाराको अेकदम अुलटना असंभव कार्य है। अुसकी विशिष्ट प्रकृति अुसीकी होकर रहेगी। अुसके बहावकी प्रवृत्तिको भी न पहचानना, अुसके वास्तविक लाभसे अपनेको वंचित रखनाही है। चतुर किसान वही है जो अुसकी विशिष्ट शक्ति और अुसके बहावका विचार रखता हुआ, अुसमें यत्र-तत्र संशोधन करता जाता है, जिससे वह देशके विविध-क्षेत्रोंको और अच्छी तरह हरा-भरा करती चले। जो लोग राज-भाषाके विषयमें परिवर्तन और संशोधनकी अिच्छा रखते हैं, अुन्हें अिस सिद्धान्तका ध्यान अवश्य रखना चाहिअे। राजभाषा हिन्दी जीवनी शक्तिसे ओत-प्रोत है। वह निस्संदेह अेकदम जीवित भाषा है। जीवनका अर्थही है कि अनुकूल शब्दावलीका संग्रह किया जाअे और अनुपयुक्त शब्दावलीका त्याग किया जाअे। जीवित शरीर अपने पोषणके लिअे अनुकूल खाद्य लेताही रहता है और अनुपयुक्त वस्तुअें त्यागता ही रहता है। हिन्दी भाषा नूतन शब्दावलीकी विरोधिनी न होगी; चाहे वे देशज हों या विदेशज। यही तो अुसके जीवटके लक्षण हैं। परन्तु अितना अवश्य ध्यान रखा जाअे कि अुसकी प्रकृति और प्रवृत्तिके विरुद्ध नयी नयी गढी हुअी या खींच-खाँचकर अेकत्र की हुअी शब्दावलियोंका बोझ अुसपर लादा न जाअे। यदि कहीं कोअी अैसी चेष्टा की गयी, जिसके कारण अुसका स्वरूप ही बदल जानेकी संभावना हो, तो निश्चय है कि अैसी शब्दावली अथवा प्रयोगावलीका बोझ शीघ्र ही बरसाती कूडे-कचरेकी तरह कुछ ही दिनोंमें आप-ही-आप अदृश्य हो जाअेगा।

[राजनादगाँव।

―○○○―

कूर्पासक

आचार्य चन्द्रबली पाण्डे, अम अ

अतीतके अध्ययनका जिह चसका है मुझे जिस बातका पता है कि कूर्पासक का ठीक ठीक रूप अभी हमारी आँखके सामने न आ सका और आया भी तो यह कहना अत्यन्त कठिन हो गया कि वास्तवमें वही असका वास्तविक रूप है। विचारके लिअ नीजिअ डा मोतीचन्द्रजी जसे वेश ममज्ञकी यह वाणी—

अमरकोश और अनुसहारमें तो यह शब्द स्त्रियोकी चालीके लिअ आया है, पर यहा तो असे योद्धा पहनते थ। लगता है कूर्पासक आध बाँहवाली मिरजअी अथवा कोअी गजीनुमा वस्त्र रहा हो। अजताके भित्ति चित्रोमें बहुधा सिपाही अैसा वस्त्र पहने दिखाय गय हु। ❀

स २००७ विक्रमकी यह मीमासा अपने विषयमे बहुत कुछ आप ही बोल रही है। 'कूर्पासक' का ठीक पता नहीं अनुमानसे जो सिद्ध होता है वह सामने है। असको दृष्टिमें रखकर देखें यह कि अतीतके दूसरे विचारक डा वासुदेवशरण अग्रवालका विचार क्या है। आप बडी खोजके बाद लिखते हु—

कूर्पासकका पहनावा गुप्त कालमें खूब प्रचलित रहा होगा। अमरकोशने कूर्पासकका अर्थ चोल किया है। कूर्पासक थोड भेदसे स्त्री और पुरुष दोनोका पहनावा था। स्त्रियोके लिअ यह चोल के ढगका था और पुरुषोके लिअ फतुअी या मिरजअीके ढगका। असकी दो विशेषताअें थी—अक तो यह कटिसे अूचा रहता था और दूसरे प्राय बिना आस्तीनका होता था। वस्तुत कूर्पासक नाम असीलिअ पडा क्योकि असमे आस्तीन कोहनियोसे अूपर ही रहती थी। मूलमें कूर्पासक भी चीनचोलकका तरह मध्य-अेशियाकी वेशभूषामें ही प्रचलित था और वहीसे अिस देशमें आया। कूर्पासकके जोडकी आधुनिक पोशाक वास्कट है। अेशियाके शिष्टाचारके अनुसार वास्कट सबसे अूपर पहननेका वस्त्र माना जाता है जब कि पश्चिमी नियममें वास्कट भीतर पहननेका वस्त्र है। समस्त मगोलिया प्रदेश चीनी तुर्किस्तान और पामीर प्रदेशोमें भी फतुअी पहननेका रिवाज सार्वदेशिक था और वह अपने आपमें पूर्ण और सम्मानित पहनावा माना जाता था। फतुअी या फितूरी जद या कब्जा अब चारी अक ही मूल पहनावेके नाम और भेद हु। वही पहनावा गुप्तकालमें कूर्पासक नामसे प्रसिद्ध था। ❀

कूर्पासक के प्रसगमें डा अग्रवालने बहुत कुछ कह दिया। क्या कुछ कह दिया ? जिसका समाधान ठीक ठीक कर पाना सरल नहीं। आपहीका कथन अिसी प्रसगमें यह भी है—

'जसा कहा जा चुका है कूर्पासक स्त्री और पुरुष दोनोका पहनावा था। अजतामें लगभग आधे दजन चित्रोमें स्त्रिया बिना आस्तीनकी या आधी बाँहकी चालिया पहने हु जिनमें कअी रगोका मेल दिखाया गया है। अक ही चोलीमें पीठका रग कुछ और है और सामनेका कुछ और। अौध-नरेशकृत अजता पुस्तकके फलक ७२ में यशोधरा बिना आस्तीनका कूर्पासक पहने हु जिसपर बाँकनकी बुदकियाँ पडी हु। फलक ७७ में रानी और कअी अन्य स्त्रियाँ कूर्पासक पहने हु। अक चित्रमें पाठकी ओर कथओ और सामने लाल रगमें कूर्पासक रगा गया है और असपर भी बडी बुदकियाँ डाली गयी हु। फलक ७५ (गुफा १)के चित्रमें नर्तकी पूरी बाहका दुरगा कूर्पासक पहने है। फलक ७७ (गुफा १७ दर्पणीका मधुपान दृश्य) में क्षारी लिय हुअ यवन स्त्री आधी बाँहका मखूर कूर्पासक पहने है। (पृष्ठ ३२७)। अब समझ तो लें कि कूर्पासक वस्तुत है क्या। वास्तवमें वह बिना बाँह का पहनावा है या 'पूरा बाँह

❀ (प्राचीन भारतीय वेशभूषा पृ १६१)

❀ (नागरी प्रचारिणी पत्रिका स २००० वि पृष्ठ ३२६–७)

अथवा 'आधी बाँह' का ? डा अग्रवाल तो तीनोंको ही 'कूर्पासक' कहते हैं न ? अुनका मुख्य कथन है—

"अेक तो यह कमरसे अूँचा रहता था और दूसरे प्राय बिना आस्तीनका होता था।"

और अिसीके साथ है टिप्पणी भी—

"'चोली दामनका साथ है' अिस मुहावरेका तात्पर्य यही है कि कटिभागमें जहाँसे नीचे दामन या लहँगा शुरू होता है, वहींसे अूपर चोली प्रारंभ होती है। चोली और दामन दोनो मिलकर पूरा वेश बनता है, अत दोनोका साथ अनिवार्य है।"

स्थिति कुछ भी हो। डा अग्रवालका यह कथन मननीय है—

"वस्तुत कूर्पासक नाम अिसीलिअे पड़ा, क्योंकि अिसमें आस्तीन कोहनियोंसे अूपर ही रहती थी।"

तो फिर 'कूर्पासक' के विवेचन और प्रयोगमें अिसकी अुपेक्षा क्यों की जाअे ? स्मरण रहे। अुदीच्य कवि आर्यश्यामिलकका कथन है—

> कर्णद्वयावनतकाञ्चनतालपत्रा
> वेश्यन्तलग्नमणिमौक्तिकहेमगुच्छा।
> कूर्पासकोत्कचितस्तनबाहुमूला
> लाटी नितम्बपरिवृत्तदशान्तनीवि ॥ १०२ ॥

—(पादताडितक भाण, सन् १९२२ औ)

जी। 'कूर्पासकोत्कचितस्तनबाहुमूला' से स्वय स्फुट है कि 'कूर्पासक' वस्तुत है क्या वस्त्र जो अुसकी खोजमें अितनी मनमानी व्याख्या हो रही है। 'स्तन-बाहुमूला' से स्पष्ट ही है कि वह यथार्थमें अिसी प्रदेशका आच्छादन है। अुसे संक्षेपमें वक्षस्थलका वस्त्र कह सकते हैं। नाभिप्रदेश तक अुसकी गति नहीं। कवि-कुलगुरु कालिदास कहते हैं—

> मनोज्ञकूर्पासकपीडितस्तना
> सरागकौशेयकभूषितोरव।
> निवेशितान्त कुसुमै शिरोरुहै
> विभूषयन्तीव हिमागम स्त्रिय ॥८॥

—(अृतुसहार, पचम सर्ग)। अर्थात् —

श्री सीताराम चतुर्वेदीजीका अिसका 'नागरी' अनुवाद है—

"सुन्दर चोलियोंसे अपने स्तन कसे हुअे, जाँघोंपर रेशमी कपड़े पहने हुअे और बालोंमें फूल गूँथे हुअे स्त्रियाँ अैसी लग रही हैं, मानो जाड़ेके स्वागतका अुत्सव मनानेके लिअे सिंगार कर रही हों ॥८॥" (कालिदास ग्रन्थावली)।

आर्यश्यामिलकने 'कूर्पासकोत्कचितस्तन-बाहुमूला' में 'कूर्पासक' का जो अुपयोग किया है वह सर्वथा कविकुलगुरुके 'मनोज्ञकूर्पासकपीडितस्तना' के साथ है और खुलकर बता रहा है कि यह कसा-कमाया परिधान है कुछ ढीलाढाला पहनावा नहीं। कविकुलगुरुने पहले भी कहा था—

कूर्पासक परिदधाति नखक्षताङ्गी व्यालम्बिनी-लललितालककुञ्चिताक्षी। अुनका पूरा श्लोक है—

> अन्या प्रियेण परिभुक्तमवेक्ष्य गात्रं
> हर्षान्विता विरचिताधरचारुशोभा।
> कूर्पासकं परिदधाति नखक्षताङ्गी
> व्यालम्बिनीलललितालककुञ्चिताक्षी ॥

यह 'हेमन्त' की स्थिति है। अिसका अर्थ है—

"नखोंके घावोंसे भरे हुअे अंगवाली और लटकती हुअी सुन्दर अलकोंसे ढकी हुअी आँखोंवाली अेक दूसरी स्त्री, अपने प्यारेसे अुपभोग किये हुअे शरीरको देख देखकर बड़ी मगन होती हुअी अपने अधरोंको फिर पहलेकी भाँति सुन्दर बनाकर अपनी चोली पहनने लगी है ॥१७॥" (वही)।

ध्यान देनेकी बात है कि कालिदासने 'हेमन्त' और 'शिशिर' अर्थात् जाड़ेके दिनोंमें ही 'कूर्पासक' का व्यवहार किया है। अन्यथा 'वसन्त' की स्थिति तो अुनके यहाँ यह है—

> कुसुम्भरागारुणितैर्दुकूलै
> नितम्बबिम्बानि विलासिनीनाम्।
> तन्वंशुकै कुङ्कुमरागगौरै
> रलंक्रियन्ते स्तनमण्डलानि ॥५॥

"कामिनियोंने अपने गोल-गोल नितम्बोंपर कुसुमके लाल-लाल फूलोंसे रंगी रेशमी साड़ी पहन ली है और स्तनोंपर केशरमें रंगी हुई महीन कपड़ेकी चोली पहन ली है ॥५॥"

किन्तु यह आवश्यक नहीं कि 'अमुक का अर्थ 'चोली' ही किया जाये। वह केवल वक्षस्थल मात्र भी हो सकता है। 'कूर्पासक' की भाँति वह 'अुत्तप्तघन-स्तनबाहुमूला' का रूप किसी रमणीको नहीं दे सकता। नहीं 'कूर्पासक' कवच' का काम करता और 'रतिरण' में योग्य ठहरता है। यही कारण है कि अिसे रणवीर भी धारण करते हैं। डा. मोतीचन्द्रजीका यह भी कथन है—

"अजंताके सिंहल युद्ध नामक चित्रमें घुड़सवार आधी बाहोंवाले कूर्पासक और जांघिया पहने हैं। अिस कूर्पासकके गले और मुहरियोंपर गोटें लगी मालूम पड़ती हैं (आ ३१२)।" (वही, पृष्ठ १९१)।

और सच तो यह है कि डा. वासुदेवशरण अग्रवालकी खोजका विषय ही है यही पुरुषधारी 'कूर्पासक'। आप लिखते हैं—

"राजाओंका अेक वर्ग नाना रंगोंसे रंग हुअे चितकबरे कूर्पासक पहने हुअे था (नानाकषायकर्बुरैः कूर्पासकैः, २०६)।" (वही, पृष्ठ ३२६)।

अिससे आगे अुन्होंने जो कुछ कहा है अुसका बहुत कुछ अंश पहले आ गया है। अुससे 'कूर्पासक' की स्थिति वहाँ तक स्पष्ट होती है, जिसे पाठक स्वयं देख सकते हैं। हमारी समझमें तो 'कूर्पासक' का सच्चा संकेत वही है, जिसका पता आचार्यामिलकने अपने 'भाष्य' में दिया है। अुसे आज 'अँगिया' कहना कहाँतक ठीक होगा कह नहीं सकता। हाँ जितना विदित अवश्य है कि अुसका अुपयोग है 'स्तनबाहुमूल' को 'कवचित' करनेमें, फिर वह चाहे स्त्रीका यह प्रदेश हो, चाहे पुरुषका।

[काशी।

सहनशीलता

"सहनशीलता अुच्च स्वभावका भूषण है। सहनशक्ति सबको नहीं मिलती। 'कुशब्द' को केवल सहनशील सत्पुरुष ही सहन कर सकते हैं। दूसरे नहीं सहन कर सकते। सहनशीलता अहंकारको त्यागने और दीनताको ग्रहण करनेसे प्राप्त होती है। जो दंभ और अहंकारका त्यागकर दीन तथा सहनशील बन जाता है, अुसीको भगवान सफलता देते हैं। जिस प्रकार अुत्तम पुरुष विनीत होते हैं, अुसी प्रकार दुष्टजन अुद्धत दुर्विनीत होते हैं। अच्छे लोग खलके वचनोंको अैसे निर्विकार भावसे सहते रहते हैं, जैसे पर्वत वर्षाकी बूंदोंके आघात सहते रहते हैं। क्षमा जो सबसे अच्छा धर्म है, सहनशीलताकी सहचरी है। सत्पुरुष सहनशीलता और क्षमाको कभी नहीं छोड़ते और निन्दासे हर हालतमें भी विचलित नहीं होते।"

—"संतवाणी"

सत्य और रीति-रिवाज

: महात्मा भगवानदीन :

बिल्कुल छोटे बच्चेका पता नहीं, पर बड़े बच्चेसे लेकर वृद्ध तक अेक खास कमजोरी लिये हुअे हैं। यह कमजोरी सत्यको सहन नहीं। यह कमजोरी अितनी फैल गयी है कि सत्यकी लाख महनत करनेपर भी कम नहीं हो पाती। रिजका नामकी अेक घास होती है। जानवरोंके लिअे अुसे बोते हैं। अुसे अेक तरफसे काटें तो दूसरी तरफसे बढ़ने लगती है। यह कमजोरी अैसी घासकी तरह अेक तरफ कटती और दूसरी तरफ अुग आती है। अिस कमजोरीका नाम है सहज विश्वास। रीति रिवाज अिस सहज विश्वासकी सन्तान है।

न कभी सहज विश्वास आदमीको छोड़ सकेगा और न रीति-रिवाज। सत्यकी यह कोशिश नहीं कि रीति रिवाज खतम हो। रीति रिवाजके बढ़नेसे सत्यका कोअी नुकसान नहीं। सत्यको धक्का पहुँचता है अुस समय, जब रीति-रिवाजको यह कहकर अपनाया जाता है कि अगर ये न किये जाअें तो कोअी अैसी आफत कुटुम्ब या समाजपर आ जायगी जो हटाये न हट सकेगी। सत्य अिस वहमको दूर कर देना चाहता है। वहम अंधेरा है सत्य प्रकाश है। ये दोनों अेक जगह नहीं रह सकते। सत्य जीवनमें प्रसन्नता लाता है वहम अुस प्रसन्नताका रस चूस लेता है फिर जो कुछ आदमीके हाथ पड़ता है, वह छूंछ होती है। गन्नेकी खाँड और बादामकी तरह अुस छूंछमें मिठास और चिकनाअी रहती तो है पर अितनी नहीं जिससे आदमी पूरा पूरा लाभ अुठा सके। अगर अुसको वह खाँड और खल बिल्कुल न मिली तो कुछ बुरा तो होगा, पर अितना बुरा न होगा जितना खाँड और खल मिल जानेसे होता है। क्योंकि अुनके मिलनेसे अुन मिठास और चिकनाअीका स्वाद आता है तबीयत नहीं भरती तृष्णा जाग अुठती है। वह अुसे पहलेसे ज्यादा दुबला कर देती है। सत्यकी कोशिश है अुसके सहज विश्वासको ठीक करे और रीति रिवाजोंका पूरा मिठास और पूरी चिकनाअी आदमीको मिलने दे।

जब रीति शुरू होती है तब अुसे रीति नहीं कहा जाता। वह किसी रीतिकी जगह लेती है, अिसलिअे रीति कहा जाता है। रीतिके माने हैं किसी कामके ढंगको बहुतोंका अपना लेना और बहुत दिनोंतक अपनाये रखना। जो ढंग आज निकला है अुसे रीति रिवाज कैसे कहा जा सकता है? नये ढंगको अेकदम रीति-रिवाज नाम क्यों दिया जाने लगा? अिस सवालका जवाब सीधा है। संगठित समाजमें कोअी ढंग कानूनके जरिये अेक दिनमें जारी किया जा सकता है। जिस तरह आमतौरसे लम्बे लिफाफे चलते थे, अेकदम चौकोर चल पड़े तब चौकोर लिफाफोंके बारेमें यह कह देना बेजा नहीं कि आजसे चौकोर लिफाफोंका रिवाज हो गया। रीति-रिवाजके माने बदल गये। रीति रिवाज जिस वक्त शुरू हुअे थे, अुस वक्त समाज संगठित न था, या था तो अितना संगठित न था कि अपने हुक्मसे काम करनेके किसी ढंगको अेकदम बदल सके। होता यह था कि किसीने अेक ढंग अपनाया, अुसका समाजमें फैलनेमें समय लगता था, तिसपर ढंग रीति रिवाज नाम पाता था।

किसी देशका समाज आजकल कुछ बातोंको छोड़ — जिनका सरकारी कानूनसे सम्बन्ध है, किसी बातमें साराका सारा अेक रीति रिवाजमें बंधा मिलेगा। हर देशका समाज अनेक टुकड़ोंमें बँटा हुआ है।

चार वर्णोंकी बात पहलेसे चली आ रही है, अुनमें तो समाज बँटा है ही, पर अुन चारोंमेंसे हर अेक चार-चार और आठ आठमें बँटा हुआ है। आज जितनी जातियाँ हैं सबके अलग-अलग रिवाज हैं। यानी सबके रहन सहनके अलग-अलग ढंग हैं। समाजी मामलोंको छोड़ दिया जाअे, सिर्फ सरकारी मामलोंको लिया जाअे, अुनके भी ढंग सब जगह अेक-से नहीं हैं। हर प्रान्त अपने ढंगोंके

लिअे स्वाधीन है। कुछ बातोंमें अेक ही प्रान्तका हरअेक जिला अपने ढंगसे लिअे स्वाधीन है। यही हाल तहसील तालुके, परगना और गांवोंका है।

सामाजी और सरकारी कामोंका अलग-अलग ढंग यह साबित करता है कि हर जगहके रीति रिवाज अलग-अलग हैं। अलग अलग यों हैं कि हर जगहका हवा-पानी अलग-अलग है। अेक ढंग दूसरी जगह नहीं बैठ सकता। राजपूतानेमें जहां रेतके टीले हैं और दूर दूरतक रेत फैला हुआ है, काम करनेके जो ढंग सोचे जाअेंगे वे पंजाबमें नहीं सोचे जा सकते। पंजाबमें बड़ी और छोटी छोटी नदियाँ बहती हैं। यही हाल अुत्तरप्रदेशका है। वहाँ भी नदियोंकी कमी नहीं। पंजाब और अुत्तरप्रदेशमें काम करनेके ढंग बिलकुल अलग रहेंगे। अब राजपूतानेके ढंग, पंजाब या अुत्तरप्रदेशके ढंगोंसे मेल न खाअें और राजपूतानाके आदमी अपने सहज विश्वासको लेकर पंजाब और अुत्तरप्रदेशवालोंसे झगड़ बैठें या समझें कि वे अुनके विपरीत ढंगोंको अपनाकर कोअी अनीति कर रहे हैं तो यह कितनी बुरी बात होगी? किन्तु हो रहा है अैसा ही। सत्य अिस आपसी झगड़ेको मिटा देना चाहता है। झगड़ा मिटानेका नुस्खा बड़ा अच्छा आता है पर लोग अुस नुस्खेके अिस्तेमालमें यहीं गड़बड़ी कर जाते हैं। नुस्खा अुस कागजको कहा जाता है जिसपर कोअी हकीम कुछ दवाअी लिख देता है और यह भी लिख देता है कि यह दवा किस तरह तैयार की जाअेगी और किस तरह काममें लायी जाअेगी। अब अगर कोअी आदमी नुस्खेके अुस कागजको ही दवा समझकर खा ले तो अिसमें हकीमका क्या दोष? ठीक अिसी तरह सत्य भी रिवाजके ढंगको बदलता है और अुसकी असलियत समझा देता है पर लोग अुस ढंगको अपना लेते हैं और अपने सहज विश्वासको अुसके साथ नत्थी कर देते हैं। यही ढंग नया होनेपर पुराने ढंगकी तरह मिठास और चिकनाअी खो बैठता है।

सत्य अिस बातपर जोर नहीं देता कि रीति-रिवाज बदल डालो। अुसका जोर अिस बातपर है कि रीति रिवाजकी असलियत जान लो। यह ठीक है जैसे ही आदमीको किसी रिवाजकी असलियतका पता चला वैसे ही वह अुसे छोड़ बैठेगा। क्योंकि बहुत कम रिवाज अैसे हैं जिनकी असलियत आज कायम रह गयी है। अुदाहरणके लिअे अगर कोअी रिवाज अुस वक्त बना था जिस वक्त हमारे देशमें रेल न थी तो वह रिवाज आज कैसे रह सकेगा अगर अुसकी असलियतको लोग समझ जाअें। सत्य जबरदस्ती नहीं करता। सत्य हमें बल देता है हमें जगाता है हमारे मस्तकको विचारकी आजादी देता है हमारे ज्ञानको साफ करता है और हम सच्चा ढंग सोचने, अुसपर अमल करनेकी हिम्मत देता है।

सारे रीति रिवाज जन्म, विवाह और मौतके चारों तरफ घूमते हैं। अगर अिन तीनोंको ठीक ठीक समझ लिया जाअे तो रीतिरिवाजोंके पीछे रहनेवाले जिस सहज विश्वासने मिथ्या और अन्धविश्वासका रूप ले लिया है वह ठीक हो जाअे और फिर ये रीतिरिवाज, जो आदमीपर सवारी गांठे हुअे हैं, आदमीकी सवारीमें आ जाअें, और जीवन-यात्रामें गति और प्रसन्नता आ जाअे।

जन्म अिससे ज्यादा कुछ नहीं कि वह आदमी जो अेक बीजकी तरह जमीनके अन्दरसे बाहर निकलनेके लिअे जोर लगा रहा था अंकुरके रूपमें बाहर निकल आया। पेड़का जमीनसे रिश्ता बना रहता है। यानी अुसकी जड़ अंकुर निकलनेके बादसे बड़े होने तक जमीनके अन्दर रहती है। आदमीके मामलेमें अैसा नहीं होता। आदमी या अुसी जैसे प्राणी अपनी मांसे अेकदम सम्बन्ध छोड़ देते हैं पर अुनको भी आगे बढ़नेके लिअे भोजन पानेकी खातिर मांसे सम्बन्ध जोड़ना पड़ता है। अिसलिअे किसी अंशमें आदमी पेड़से मिलता है। बहुत पेड़ अैसे हैं जो अपने फूल और फल गिरा देते हैं पर अुनके फल-फूल गिरानेको जन्म नाम नहीं दिया जाता, क्योंकि वह गिरकर बढ़ते नहीं। पेड़के अंकुरको जन्म नाम दिया जाता है क्योंकि वह बढ़ता है। पेड़से लेकर आदमीतक सबके जन्मपर नजर डाली जाअे तो अैसा मालूम होगा, प्रकृतिने अुनकी कोमलताको ध्यानमें रखकर अुनको बचाये रखनेके लिअे काफी प्रबन्ध किया

है, बाहरी आफतोंसे बचानेके लिअे सब प्राणियोंमें अैसी भावना पैदा कर दी है जिसकी वजहसे वह अुन कोमल देहधारियोंको कमसे कम सतानेकी सोचते हैं। सत्य चाहता है, प्रकृतिके अुन कोमल देहधारियोंकी रक्षा करनेमें मदद की जाअे, और आदमी जिस बारेमें अपने सहज विश्वासको मैला न होने दे। जन्मके कोमल-पनको ध्यानमें रखकर जो कुछ किया जाअे, ठीक है; और जो किया जाअेगा वह सत्य होगा।

विवाह अिसके सिवाय और कुछ नहीं कि प्राणोंके अन्दर जो अेक विशेषता है कि वह अपने पीछे अपने जैसे प्राणी छोड जाता है, अुस विशेषताको बनाये रखे, सृष्टि रचनाको सुखसे चलनेमें प्रकृतिकी मदद करे। विवाह अेक अैसी रस्म है जो आदमीकी अपनी सूझ है, क्योंकि और प्राणियोंमें विवाह जैसी रस्म नहीं पायी जाती। आदमी पशुओंको पालता है और जो पशु पूरी तरह आजाद नहीं हैं अुनके गर्भाधानका प्रबन्ध करता है। अुस गर्भाधानको विवाह नाम दिया जा सकता है। वैदिक कालके शुरू-शुरूमें या मानव समाजके बालपनमें विवाह नामकी कोअी चीज न थी। विवाहका सम्बन्ध गुलामीसे है। विवाह आदमीकी दासताकी निशानी है, आदमीके पशुपनका चिन्ह है। जैसे-जैसे आदमी समाजके बन्धनोंमें ज्यादह ज्यादह जकडता गया, वैसे वैसे विवाहके कायदे सख्त होते गये और वैसे वैसे आदमीका वासनापरसे काबू हटता गया। आज भी जिन्हें-जंगली जाति नामसे पुकारा जाता है, वह वासनाके लिहाजसे शहरी जातियोंसे अकुल अच्छे हैं। मनुष्य अपनी आजादी खोकर जब सामाजिक बन्धनमें फँसा तब वह अितना आजाद था कि अुसे किसी तरहके विवाहकी जरूरत न थी, अुसकी वासनाअें काबूमें थी पर समाजके साथ रहकर खाने पीनेका सुभीता हो जानेसे वह अपनी वासनाका सतुलन खो बैठा।

समाजको अुसके बन्धन सख्त करने पडे। सबसे पहले समाजने आदमीका बाँधनेके लिअे अुसने यह आजादी छीनी कि वह गर्भाधानके मामलेमें पूरा स्वाधीन न होगा। आजके पालतू पशु भी कहाँ आजाद हैं? गर्भाधानका रिवाज बदलकर विवाह नाम ले बैठा। यह है विवाहकी असलियत।

गर्भाधान नामी विवाह आज सुहाग-रात नामसे मौजूद है। गर्भाधानके शुभ वक्तके रिवाज जब असका संस्कार नाम था, कभीके नष्ट हो गये। सुहाग-रातकी रीतियाँ अब वे नहीं रहीं। सुहाग-रात खतम हो रही है। यह खतम हुअी कि गर्भाधान नामी विवाह अेकदम खतम। गर्भाधान संस्कार अुन दिनों ज्यादा जोर पकड गया था। जब दो-दो तीन-तीन बरसकी लडकियोंकी शादी चल पडी थी। अुस वक्त अिसकी जरूरत थी, अब नहीं। सौ, दो सौ, पाँच सौ बरसमें, अगर मनुष्य समाज अितना समझदार हो गया कि वह अपनी वासना-ओंपर काबू रख सके और अितना आजाद हो गया कि वह दुनियाभरसे अपना नाता जोड ले और मेल मुहब्बतसे रहने लगे, तो विवाहकी रस्म खतम हो जाअे। हमारा खयाल है, मनुष्य समाज जिस जंगलीपनसे निकलकर आजकी सभ्यता तक पहुँचा है, अेक दिन पूरा सभ्य होकर अुसी जंगलीपनको अपना लेगा जहाँसे वह चला था। यह अेक अलग विषय है, पर यहाँ अितना साफ कर देना जरूरी है कि मनुष्य जब फिर जंगली बनेगा तब वह जंगली न होगा। बहुत सस्कृत और सभ्य होगा, अुसका आत्मा समझकर साफ हो चुका होगा। वह जिस जंगलीपनको मूर्खतावश अपनाये था, नुकसान कर रहा था, आगे बढनेसे रुका हुआ था, अब अुसी जंगलीपनको सोच-समझकर अपनाअेगा और मेल मोहब्बतके साथ दूसरे चक्रकी तैयारी करेगा। अुस चक्रकी अगली मंजिल क्या होगी, अुसके बारेमें कुछ कहना बेकार है। हमारे कामकी अितनी बात है कि विवाहकी असलियत सिर्फ अितनी है कि मनुष्य जैसा प्राणी अपने पीछे, अपने जैसे और अपनेसे अुन्नत प्राणी छोड सके। बस, अितनी बातको ध्यानमें रखकर हमें विवाह करनेके ढंग अपनाने चाहिअें।

मौतका मतलब है, शरीरका बेकार हो जाना। मनुष्य समाज जब बालक था, तब किसीके मर जानेपर न रोता था, न अुस मरे हुअे आदमीके बारेमें कुछ सोचता था। बदरमें अपने छोटे बच्चेके लिअे मोह है, मादा अपने मरे बच्चेके सम्लडको छह-छह महीने गलेसे लगाअे फिरती है, पर बडे बन्दरोंकी मौत हो जानेपर बन्दर समाज मरे बन्दरके लिअे न रोता है, न कुछ और

करनेकी सोचता है। अैसी किताबोंमें हमने पढा है कि कहीं-कहीं कुछ खास तरहके बन्दर किसीके मर जानेका शोक मनाते हैं। हो सकता है यह बात ठीक हो, पर शोक मनानेवाले बन्दर अुस मरे हुअे बन्दरके बारेमें और ज्यादह नहीं सोच सकते।

मनुष्य समाजमें मुर्दोंको दफन करने जलानेका रिवाज बहुत पीछे चला। कुछ रिवाज अैसे हैं जो पहले थे, पीछे बन्द हो गये फिर चल पड़े फिर बन्द हो गये। कुछ रिवाज अैसे हैं जो कहीं कहीं बन्द हो गये कहीं कहीं जारी हैं। वे रिवाज ये हैं — मुर्दोंको बहा देना, मुर्दोंको जलाकर बहा देना, मुर्दोंको जानवरोंको खिला देना। बहा देनेका रिवाज जलाने और दफन करनेके पहलेका है। जिसको आदमीने प्रकृतिसे सीखा। डूबनेपर आदमी मरकर अूपर तैरने लगता था। अुसको जानवर खा जाते थे। बहा देनेका रिवाज मुर्देके प्रति मोह होनेमें अूंचा नहीं। अुसे दफन करने और जलानेका रिवाज अपना लिया गया। जलानेके रिवाजके बाद और नये तजुर्बे हुअे। और अुन तजुर्बोंके बलपर अुसने गर्भवती औरतों, जहर खाये हुओं, सांपके काटेओंको जलानेकी जगह बहानेका रिवाज शुरू किया। जानवरोंको खिलानेका रिवाज पारसियोंको छोड़ और कहीं नहीं रह गया। अुनमें यह रिवाज किन मनोभावोंको लेकर मौजूद है अुनको हम यहाँ नहीं लिखना चाहते। यहाँ सिर्फ अितना कहना चाहते हैं कि मरनेके बाद आदमीका जिस्म मिट्टी हो जाता है, अुस जिस्ममें और मिट्टीमें कोअी अन्तर नहीं करना चाहिअे। यह अन्तर रहेगा ही कि आदमीके देहकी मिट्टी सड़ने लगती है, आदमियोंमें बीमारी पैदा करती है पर यह बात तो गाय भैंस, कुत्ते बिल्लीकी देहके साथ भी है। आदमी जिस तरह कुत्ते बिल्लियोंकी देहके लिअे सोचता है वैसे ही आदमीकी देहके लिअे सोचे। सत्य चाहता है आदमी मुर्देकी देहको मिट्टी समझे। अैसा समझकर अुसको फेंकने या ठिकाने लगानेके तरीके सोचे। अुसके साथ बेमतलबकी भावना जोड़कर तरह-तरहकी बेतुकी बातें सोचकर, अपना मन गदला न करे। सहज विश्वासको अन्धविश्वास और मिथ्या विश्वासके जालमें न फंसाओ।

"सत्य और सुख दुख" अध्यायमें कहा जा चुका है कि दुख कोअी बुरी चीज नहीं। दुनियाके कम दुख दर्द अैसे हैं जिनमें बचनेकी जरूरत है। बहुत तो आदमीको सुख पहुँचानेके लिअे हैं। बच्चा पैदा होनेसे पहले जो दर्द माँको होता है वह अुसीको ज्यादा तकलीफ देता है जो तन्दुरुस्त नहीं होती। जिनका जीवन प्राकृतिक होता है अुनको बहुत मामूली तकलीफ होती है। अिस मामूली और प्राकृतिक तकलीफको लेकर समाजमें सैकड़ों वहम खड़े हो गये हैं। जहां जरा तकलीफ हुअी कि घर वाले दौड़े किसी ओझाके पास और लगे अुससे झाड़ फूंककी प्रार्थना करने। अगर वह सामने प्यारी हुअी तो वह भी अुतारा अुतारती है देवताओंके नामपर अठावा अुठाकर रखती है और अगर कहीं वह पहलौटी गर्भवाली हुअी तब तो न जाने क्या क्या तूफान खड़े हो जाते हैं। बहुत तकलीफ होनेपर दवा दारू कम चलते हैं मन्तर जन्तर ज्यादा। हम जब छोटे थे तब मोहल्लेमें आये दिन झाड़ फूंकका तमाशा देखनेको मिलता था। अेक बार अेक औरतको बहुत तकलीफ थी अुसके लिअे अेक पंडितने यह किया—

अेक कांसेकी थाली मंगायी थोड़ा गेरू मंगाया, अुस गेरूको पानीमें घोला। गेरूके रंगसे थालीमें अेक चक्रव्यूह बनाया और थालीमें थोड़ा पानी डालकर अुस औरतको पिला दिया जिसको दर्द हो रहा था। पीनेके कुछ देर बाद दर्द कम हुआ और थोड़ी देरमें अुसे बच्चा हो गया।

चक्रव्यूह बनाना हमने सीख लिया। और अेकसे ज्यादा बार हम भी अिस कामके लिअे बुलाये गये और सफलता मिली। जब हम कुछ बड़े हुअे और ज्ञान मिलनेसे हमारा विश्वास अुठ गया तब हमने अुस कामको छोड़ दिया। तीस बरसकी अुमरमें हमें किसी वैद्यककी किताबमें यह लिखा मिला कि कांसेकी थालीमें गेरू पिला देनेसे दर्द कम हो जाते हैं और बच्चा पैदा होनेमें आसानी होती है। रहा चक्रव्यूह, अुसके बारेमें समाजने यह विश्वास फैला रखा कि अुसके देखनेसे बच्चा पैदा होनेमें आसानी होती है। यह मिथ्या विश्वास और दवा मिलकर कभी कभी कुछ काम कर जाते हैं, कभी-कभी बिलकुल नहीं।

चक्रव्यूहके मिथ्या विश्वासने समाजको यह नुकसान हुआ कि गाढ़, जो दवा थी, अुसकी तरफसे लोगोंकी नजर हटकर चक्रव्यूहकी तरफ चली गयी। और गेरूकी शोध अेकदम पीछे पड़ गयी। अगर चक्रव्यूहका मिथ्या विश्वास न होता तो गाढ़पर वैज्ञानिक खोजबीन की जाती और अुन खोजबीनसे हो सकता है समाजको लाभ पहुँचा होता।

अिसी सिलसिलेमें यह लिख देना ठीक होगा कि मलेरिया बुखारमें पीपलके पत्तेपर राम कोअी जन्तर लिखकर बुखार अुतारनेका रिवाज आजतक मौजूद है। कोअी-कोअी नासमझ जन्तरको महत्व देकर दवाके बजाय केवल जन्तर लिख देते हैं। अगर मिथ्या विश्वासको महत्व न मिला होता तो अिस तरहकी भूल कभी न होती।

मिथ्या विश्वासकी मदद अैसे मौकेपर दाअियाँ खूब फायदा अुठाती हैं, और अैसे मौकेपर घरके सभी लोग घबराये हुअे होते हैं और वह सब करनेके लिअे तैयार होते हैं, जो अुन्हें करनेके लिअे कहा जाअे। दाअी जो बच्चा जनानेके कामकी मुखिया होती है, अुसकी बात कैसे टाली जा सकती है। अुस वक्त जो अुतारा, अुतारा बनाया जाता है किया जाता है।

बच्चा पैदा करनेका काम औरत करती है, अैसा नहीं मादा पशु करते हैं। पशुओंके बच्चे जंगलमें होते हैं और आदमीके बच्चोंसे कभी गुना तन्दुरुस्त होते हैं। कभी जंगली जातियाँ अैसी हैं जिनके बच्चे जंगलमें पैदा होते हैं वे भी शहरी बच्चोंसे ज्यादह तन्दुरुस्त होते हैं।

जनमके रीतिरिवाजोंके बारेमें अब ज्यादा कहनेकी जरूरत नहीं, सिर्फ अितना समझ लेना काफी है कि हर अेक-अेक पीछे कोअी-न-कोअी विश्वासकी कहानी छिपी रहता है। जितना सचाअी होती है अुतना फायदा होता है, जितना अुसके साथ मिथ्या विश्वास रहता है अुतना नुकसान होता है। अुस नुकसानसे न व्यक्ति बचता है न समाज। अिसी सिल-सिलेमें अेक घटनाका जिक्र—

सन १९२३ में नागपुरमें झंडा-सत्याग्रह जारीसे चल रहा था। स्वयंसेवकोंका अेक शिविर खुला हुआ था। वहाँ किसी स्वयंसेवकको बिच्छूने डंक मार दिया। किसीने कह दिया, हम बिच्छूका मंत्र जानते हैं। हमारे पास खबर पहुँची। हम मंत्र नहीं जानते थे,—पर स्वयंसेवकोंके सरदार होनेके नाते हम अुनके साथ चल दिये, जो हमें बुलाने आया था। डेरामें पहुँचकर हम बिच्छूके काटे स्वयंसेवककी अुसी तरह झाड़-फूँक करने लगे जैसे मंत्रवादी करते हैं। हमने कभी बार बिच्छूका जहर अुतारते मंत्रवादियोंको देखा था। हमें अभी आधा मिनिट न हुआ था कि अेक मंत्रवादी आ पहुँचे। जैसे ही लोगोंने अुनके आनेकी खबर दी हमने छुट्टी ली। वह काम नये आये हुअेको सुपुर्द कर दिया। जब हम जाने लगे तो नये सज्जन बोले, आप ठीक कर रहे थे, मेरी क्या जरूरत थी। हम हैरान हुअे क्योंकि हम मंत्र जानते न थे। हमने जब यह किया कि झाड़-फूँकका काम नये आदमीके सुपुर्द किया और हम खड़े-खड़े देखने लगे। थोड़ी देरमें जहर अुतर गया। हम नये मंत्रवादीके साथ-साथ बाहर आये, बोले, हम मंत्र नहीं जानते, आपने कैसे कहा ठीक कर रहे थे। वह भले आदमी थे। बोले, मंत्र कुछ नहीं होता, बात यह है कि जब बिच्छू डंक मारता है तब अुसके जहर चढ़नेको, कोअी दवा भले रोक सके मंत्र हर्गिज नहीं रोक सकता। मंत्र जहर अुतार सकता है। जहरको पूरी तरह चढ़ने देना ही होगा। मंत्रवादी अपनी अिस करामातोंसे बचनेके लिअे किसी-न-किसी तरह अितनी देर जरूर कर देते हैं कि वह अुस वक्त पहुँचे जब जहर पूरा चढ़ चुका हो। अुनके लिअे अुतारनेका काम रह जाता है। अुतारनेके लिअे यह करना पड़ता है कि पहले अुस आदमीका ध्यान अपनी तरफ करे जिसे बिच्छूने काटा हो। फिर अपने मनमें कुछ गुनगुनाकर अुससे कहना होता है, जिस जगह काटा है अुसको दिलके खिलाफ पटका दो जिससे दिलका खून जोर मारकर नीचेकी तरफ जानेकी जल्दी करे। अुस पटकेका नतीजा यह होता है कि तकलीफ या जहर नीचे अुतरना शुरू हो जाता है। दस-बीस बार अिस तरह करनेसे तकलीफ अुस जगह तक आ जाती है जहाँ बिच्छूने डंक मारा होता है। अुस तकलीफको मिटानेके लिअे मंत्रवादी

गरम नमकसे सेंकनेकी सलाह दे देता है। बताअिये मंत्र क्या रहा? मंत्रवादी जहर न अुतारता तो जहर अपने आप नीचे अुतरता, हाँ, थोड़ी देर लगती। प्रकृतिने हर प्राणीमें दिल्के खिलाफ हाथ-पाँव झटकनेका प्रबन्ध कर रखा है। आप देख सकते हैं। जैसेही बच्चेके हाथमें कोअी भिण्ड डंक मार दे वैसेही वह बच्चा अेकदम हाथ झटकना शुरू कर देता है। यही है बच्चेका अपना अिलाज आप करना।

मंत्रवादी पैसे कमानेकी खातिर लोगोंमें मंत्रकी श्रद्धा जगाते रहते हैं, अुनकी वैज्ञानिकताको छिपाये रखते हैं। यह बात आपसे छिपी हुअी नहीं कि हर मंत्रवादी जब किसीको मंत्र सिखाता है तब अुसकी शर्त होती है कि वह अुस मंत्रको किसीको न बताये। अिस सिलसिलेमें अेक और गुन लीजिये।

फीरोजाबादमें अेक आदमी था। वह हमपर बड़ी श्रद्धा रखता था, हमको गुरु मानता था। अेक दिन हम मंत्रोंके खिलाफ बोल रहे थे। वह आदमी मौजूद था। जब हम अपनी कह चुके और सब चले गये, वह बड़ी श्रद्धाके साथ बोला, महाराज, आपकी बात मैंने सुन ली, पर मैं खुद अेक मंत्र जानता हूँ अुसका चमत्कार मैं आपको दिखा सकता हूँ। हमने कहा, दिखाओ। अुसने मंत्र पढ़ना शुरू किया और अपनी आँखमें अेक जगह सुअी खोंप दी। बोला, देखिये, यह है कि नहीं मंत्रका चमत्कार, मेरे खून नहीं निकला। हम बोले, क्या तुम हमारे कहनेसे मंत्र पढ़े बिना सुअी खोंप सकते हो? वह बोला जरूर, हमने कहा खोंपो। अुसने वैसा ही किया और खून नहीं निकला। यह तमाशा देखकर वह अेकदम भक्तिमें आकर हमारे पाँवपर गिर पड़ा। बोला, ठीक है मंत्र कुछ नहीं होते और पूछ बैठा फिर यह मामला क्या है? खून क्यों नहीं निकलता? हमने अुसे बताया जब तुम अपने हाथसे खालको खींच लेते हो तो खूनकी नसें नीचे रह जाती हैं और सुअी अुस जगह जाती है जहाँ नस नहीं हैं, फिर खून कहाँसे निकलेगा?

यह बात हमने अिसलिअे लिख दी कि हर रीति-रिवाज और मंत्रके पीछे श्रद्धाके घटाटोपमें विज्ञानका अंश छिप जाता है और अुससे बहुत नुकसान होता है। अिसमें बचना टेढ़ेका काम है।

विवाहकी रस्में अिसी तरहकी हैं। किसी रस्ममें कोअी जरूरत छिपी हुअी है किसीमें कोअी वैज्ञानिकता और कुछ अैसी रस्में हैं जिनमें दोनोंमेंसे अेक नहीं। वह लोगोंने पैसा कमानेके लिअे गढ़ ली हैं। आदमीके विश्वासकी कमजोरीसे आदमी खूब फायदा अुठा रहा है।

विवाहमें आरतीकी रस्मको ले लीजिये। यह रस्म मंदिरोंमें खूब चलती है। अिसमें होता यह है कि थालीमें और चीजोंके साथ साथ अेक जलता दीपक रहता है। अुसको थाली समेत दो तीन बार' अुस आदमीके दायें-बायें करते हैं जिसका आरता करना होता है। अिस रस्मकी तहमें जरूरत छिपी हुअी है। अब यह रस्म बिलकुल बेकार है। जरूरत यह है कि जितने पुराने मंदिर हैं, अुनकी वेदियाँ अैसी जगह बनी हुअी हैं जहाँ करीब-करीब चौबीसों घंटे अंधेरा रहता है पुजारी दियेकी रोशनीमें मूर्तिका शृंगार करता है। अुसे कभी-कभी अपने शृंगारको जाँचनेके लिअे दीपकको आँखके सामनेसे हटाकर दायें-बायें करना होता है। अैसा किये बगैर वह मूर्तिके दोनों तरफके शृंगारकी पूरी जाँच नहीं कर सकता। विवाह शादियाँमें आम तौरसे रस्में रातको होती हैं और दुल्हे-दुल्हनको सजानेका काम भी अुसी वक्त होता है। आरतेकी रस्म हमेशा सजानेके बाद की जाती है जब यह रस्म चली थी तब यह रस्म न थी, कलाकारकी जरूरत थी। अब यह रस्म है और सिवाय नुकसानके कोअी फायदा नहीं। अब दिनमें खुले मैदानमें आरता किया जाता है और अुसी तरह दिया जलाकर किया जाता है जिस तरह अंधेरेमें या रातमें।

रस्मोंके सिलसिलेका सिलसिला अैसा है कि अुसके लिअे अेक अलग किताबकी जरूरत है। पर दो-अेक रस्मोंका जिक्र करके हम पढ़नेवालोंमें अैसी भावना जगा देना चाहते हैं कि वे अपने आप ही रस्मोंकी परख कर सकें।

विवाहके अवसरपर कूड़ी यानी घूरा पूजनेका रिवाज है। वह भी अेक जरूरत है। गाँवमें शायद

आज भी अुसकी जरूरत हो। शहरोंमें वह बिलकुल बेकार चीज है। कूडी या घूरा अुस जगहका नाम है, जहां मुहल्लेभरका कूडा जमा रहता है। अुसको पूजनेका रिवाज है। पूजाके और काम छोडकर असली काम यह होता है, वहां अेक जलता हुआ दिया रखा जाता है। यह दिया ही असली जरूरत है। यह अिसलिअे होता है कि रातके वक्त बाहरसे आये बराती यह जान लें कि यहां कूडा पडा है और भूलसे अपने पांव अुसपर न रखें। दिनमें दियेकी जरूरत नहीं, पर, अगर घूरेकी पूजा दिनमें हुअी, तब भी दिया रखा जायेगा। दिया रखना कभी जरूरी और अकलमंदीका काम था, आज गैरजरूरी और बेवकूफीका काम है।

यों तो शृंगार रोज ही सब करते हैं, पर विवाहके अवसरपर वह रस्मके तौरपर किया जाता है और आजकल वह अितना भद्दा मालूम होता है कि शहरमें रहनेवालोंकी आंखें अुसे देखना पसन्द नहीं करतीं। जिस तरह मेंहदी रचाना, काजल लगाना, रालीसे चेहरेको रंगना, हाथमें कलावा बांधना अित्यादि कुछ रस्में जरूरतसे हैं, कुछमें वैज्ञानिकता छिपी है, कुछ लोभकी अीजाद हैं, कुछमें ये तीनों मौजूद हैं। काजलको ले लीजिअे, अुसमें वैज्ञानिकता ना यह है कि वह दवा है, आंखोंको रोशनी देता है। अुसके लगानेकी बात वैद्यकके हर ग्रंथमें मिल सकती है। जरूरत यह है कि वह शृंगारका अंग बन गया है और काली आंखें खूबसूरतीको और बढा देती हैं। यह दूसरी बात है कि काजल बेवकूफीसे लगाकर खूबसूरतीको बढानेकी जगह घटा दिया जाअे। काजलकी बजाय सुरमा ज्यादा ठीक रहेगा। क्योंकि वह सलाअीसे लगाया जाता है। वह अुतना ही लगता है जितना जरूरी होता है। लोभकी अीजाद यों है कि काजल लगानेवालोंको कुछ पैसे मिलते हैं। अिसलिअे वह दिनमें लगाया जाने लगा। जरूरतके लिअे दवाके तौरपर काजल रातको लगाया जाता है। काजल लगाकर सो जाना जरूरी है, तभी वह फायदा करता है। पर रस्मसे और फायदेसे क्या लेना-देना? रस्मके माने हैं अैसे काम जहां अक्लको दखल न हो। अब रह गया अिस रस्मका धोखा, काली आंखें तन्दुरुस्तीकी पहचान हैं। पूरे तन्दुरुस्त आदमीकी आंखें कम काली होंगी। बीमार आदमीकी आंखें अपना कालापन अेकदम खो बैठती हैं। काजल अिसलिअे भी लगाया जाता है कि लोगोंको धोखा दिया जा सके। और बीमार आंखोंको तन्दुरुस्त आंखोंका रूप दिया जा सके। अिस सिलसिलेमें पढनेवालोंके मनमें कुछ और सवालात अुठ सकते हैं। पर अगर वे जरा कोशिश करें तो अपने सवालका जवाब खुद सोच सकते हैं। अुदाहरणके लिअे कुछ आंखें नीली होती हैं, कुछ पीली। पर हिन्दुस्तानमें वैसी आंखें बहुत कम मिलती हैं। अुन आंखोंके पलक काले होते हैं। वह भी काली अच्छी लगती हैं। हिन्दुस्तानी आंखोंकी वैसी आदत है, अिसलिअे अुन आंखोंको काजल सुन्दर बना देता है।

रीति रिवाजोंने हमारी अकलको अेकदम पीछे डाल दिया है। कुछ नासमझ आदमियोंके हाथोंमें अैसी सत्ता दे दी है कि वह समझदारोंपर शासन करने लगते हैं। रीति-रिवाजके मामलेमें बिरादरीके अनपढ और मूर्ख लोग रस्मोंकी याददाश्तके बलपर किसीपर रोब जमा बैठते हैं। कभी-कभी अिन रस्मोंको लेकर तरह-तरहके झगडे खडे हो जाते हैं। कअी रस्में अैसी हैं जो घर-घरमें अलग-अलग तरह मनायी जाती हैं। अुस वक्त तो बडी मुश्किल हो जाती है, जब किसी विवाहमें अेक ही रस्म लडकेवालेके यहां अेक तरह मनायी जाती हो और लडकीवालेके यहां दूसरी तरह। दोनोंमें, जो जोरदार होता है, अुसीकी रस्म चलती है। अगर दोनों बराबरके हुअे तो या तो दोनों रस्में होती हैं या दोनोंकी कोअी खिचडी तैयार कर ली जाती है।

विवाहकी अनगिनत रस्में हैं। अुन सबपर यहां लिखा जा सकता, पर अितना ही याद रखना काफी है कि रस्में हमारे अूपर अधिकार न जमा पायें, अुलटे हमारा अधिकार रहे। वे जरूरत लिहाजसे बदलती रहें। अिसमें शक नहीं कि रस्में बदलती रहती हैं, बदली रही हैं, और बदलती रहेंगी। पर क्या ही अच्छा हो अगर अुन रस्मोंको हम सोच-समझकर बदलें। सोच-समझकर बदलनेसे रस्में हमारे कामकी चीज बन सकेंगी, अपने आप बदली हुअी रस्में हमारे काममें अडचन बनी रहेंगी।

सन् १९०३ का जिक्र है। हमारे अेक दोस्तके बूढ़े बापकी मौत हुअी। अुसका बाप अितना बूढ़ा था कि शोक मनानेकी जरूरत न थी। अुधर हमारा दोस्त रस्मोंके मामलेमें अितना अुदार था कि किसी रस्मको अपनानेके लिअे तैयार। ये दो बातें मिलकर अेक अजब रूप ले बैठीं। मुर्देकी रथी बनानेसे जलानेतक कदम कदम रस्मोंका सवाल अुठा। हमारे पढ़नेवाले अेक बात और नोट कर लें कि हमारे दोस्तके बापकी रथी ले जानेमें जितने आदमी शामिल थे उनमें अेक भी अैसा न था जिसकी अुमर ३०-३५ से अूपर हो। हमारे दोस्तके घरमें कोअी बुढ़िया न थी। कोअी अैसा न था जो किसी खास रस्मपर जोर देता। नतीजा यह हुआ कि जो रस्म जिसने बतायी हमारे दोस्तने की और करीब करीब सब निभ गयीं। अब मुर्देको चितापर रखनेकी घड़ी आयी। यहाँ मुश्किल पड़ी। हमने कहा, हमारे यहाँ मुर्देको चितापर लिटाया जाता है यानी पेटके बल। कुछ लोग बोले नहीं चित लिटानेकी रस्म है। यह सुनकर हमारा दोस्त हँस पड़ा और बोला, भाअी अब मेरे बाप तुम सबके बाप, तुम जैसा चाहो करो। रस्मपर चल पड़ी बहस, हमारी दलील थी कि पेटके बल लिटानेमें बुद्धिमानी है, सूझ-बूझ है, वैज्ञानिकता है और शिष्टता, चित लिटानेमें हमें कोअी अैसी बात नजर नहीं आती। पटके बल लिटानेमें सूझ बूझ यह है कि पेटकी तरफका हिस्सा मुलायम है, जल्दी आग पकड़ेगा और आदमीका चेहरा जो आग जलनेसे बुरा रूप लेगा वह लोगोंकी नजरोंमें न आ सकेगा। शिष्टता यह है कि वह अंग नीचे रहते हैं जिनको आम तौरसे छिपाये रखनेका रिवाज है। वैज्ञानिकता यह है कि मुर्दा आग लगनेपर जो अूपरकी तरफ उठता है, अब नीचेकी तरफ आअेगा। और चिताके बिगड़नेका डर न रहेगा। टाँगोंका घुटनेसे नीचेका भाग अूपरको अुठेगा और वह अपने आप आगमें जा पड़ेगा। अिसलिअे यह रस्म ठीक है। पर अिस रस्मवाले हम अकेले थे और बाकी सब थे चित लिटानेकी रस्मवाले। हम हार गये। आखिर यह तय हुआ कि पहले पट लिटाया जाअे और फिर चित, वैसा ही किया गया।

मुर्देकी मिट्टीको ठिकाने लगानेकी रस्में अनगिनत हैं। नयी-नयी रस्में भी चल पड़ी हैं। कलकत्तेमें अिञ्जनमें जलानेकी रस्म है। कहीं-कहीं बिजलीसे जलानेकी रस्म है, पर अभीतक मुर्देसे अितना मोह नहीं छूटा कि अुसका कुछ अुपयोग कर लिया जाअे, जिस तरह गाय-भैंसोंका। अिस मामलेमें सुधार होनेमें सैंकड़ों बरस लगेंगे। जो सुधार अबतक हुअे हैं अुन सबमें जरूरतके लिहाजसे लोग काफी आगे बढ़े हैं पर मोहके लिहाजसे वहीं के वहीं हैं। सुना था, लड़ाअीके मौकेपर किसी डॉक्टरको मुर्दोंके अुपयोगकी बात सूझी थी, अुपरसे वैसा करनेसे रोक दिया गया। अुसे यह डर दिखाया गया कि अगर अैसा किया गया तो अिस अुपयोगकी खातिर आदमी अैसे ही मारे जाने लगेंगे जैसे पशु पक्षी। मुर्दोंका अुपयोग न हो सका।

अिसी सिलसिलेमें कपाल क्रिया नामकी रस्मका थोड़ा जिक्र कर देना ठीक होगा। अिस रस्ममें यह होता है कि जब मुर्दा काफी जल चुका होता है तब बाँससे अुसकी खोपड़ी फोड़ देते हैं। अिसकी तहमें सूझ बूझ है, जरूरत भी है। अुस वक्त अिसकी बहुत ज्यादा जरूरत है जब चिताके आसपास औरतें या बच्चे हों। गर्भवती औरतको जलानेका रिवाज नहीं है। वजह यह है कि कभी-कभी गर्मी पाकर पटमेंसे बच्चा निकलकर चितासे दूर जा पड़ता है। अुससे लोगोंके घबरा जानेका डर रहता है। ठीक अिसी तरह आदमीके खोपड़ीका अंदरका भेजा कभी कभी अितना गर्म हो जाता है कि वह खोपड़ीको आवाजके साथ तोड़ता है और अुसके टुकड़ोंको दूरतक फेंकता है, अिसलिअे खोपड़ीको जान बूझकर तोड़ दिया जाता है ताकि भाप निकलनेके लिअे रास्ता बन जाअे और खोपड़ी अिधर-अुधर छिटकनेका डर न रहे। अिसीका नाम कपाल क्रिया है।

रस्म रिवाजोंको अपनी सीमासे बाहर नहीं जाने देना चाहिअे। चाहिअे यह कि समय समयपर रस्म रिवाजोंकी जाँच पड़ताल होती रहे, अुनमें कमी बेशी होती रहे और वे कभी अैसी न बन पाअें जो हमारे विश्वासपर अन्धविश्वास बनकर जमी रहें।

[नागपुर।

स्व० सुब्रह्मण्य भारतीके कान्हा-गीत

•प्रो के अेस. चिदम्बरम, अेम. अे, 'भारद्वाजन'•

६. कान्हा मेरे सद्गुरु

पुन्नाग-वराळि रागम (तिस्रजाति अेकताल)

गय अिस गीतमें, राष्ट्रके महाकवि भारतीने अदभुत तथा भक्ति रसका आश्रय लेकर अपने आराध्य कृष्णका वर्णन, सदगुरुके रूपमें किया है। अुनका कहना है—

शात्तिरगळ् पल तेडिनेन् अंगु
शर्कंयिल्लादन शर्त्याम् पल
गोत्तिरगळ् शोल्लु मूडरुतम्-पोय्मं-
क्कूडयिल् अुण्मै किडैक्कुमा ?—नेञ्जिल्
मात्तिर अन्द वर्हैयिलु-ज्ञा
माय अुरुन्दिडल् वेण्डुमे-अेनु
आत्तिर निन्ऱुदनिडै-नित्त
आयिर तोल्लैहळ् शून्दन ॥ १ ॥

'मैंने सभी शास्त्रोंकी खोज कर डाली। अुनमें अैसी कोअी बात नहीं दिखायी दी, जो शंकास्पद न हो। निःशंक निवारण कर सकनेकी कोअी बात अुनमें हो—अिसीमें शक है। आखिर वे हैं क्या? प्राचीन गोत्रोंकी गाथा बघारनेवाले मूढोंकी झूठ-मूठकी बातों रूपी कूड़े करकटका टोकरी ही तो हैं! अुनके जरिये सत्यकी प्राप्ति कैसे संभव है? अिस अुधेड़बुनमें लगे रहते हुअे भी मेरे हृदयमें हमेशा यह जिज्ञासा प्रबल हो रहा है कि येनकेन प्रकारेण,जगकी मायाकी पहचान पा लेनी चाहिअे। अिस प्रयत्नमें व्यग्र हो मुझ निम्न हजारों मुसीबतोंने आ घेरा।"

नाडु मुळुदिलु चुट्रि नान्-पल
नाट्कळ् अलैन्दिडु पोदिनिल्-निरं-
न्दोडु यमुनैक्करैयिल्-तडि
यून्डिच्चेन्ड्रार् आर् कियवनार् ओळ
र्डु मुहम् तडिप्पुनान्-मुडि
कोण्ड विडियु वडिवळ्-वेल्क
ताडियु कण्डु वणङ्गियेै-पल
समति पेशि वरहैयिल्, . ॥ २ ॥

दुनिया भरका चक्कर लगाते हुअे, कअी दिन भटकते बीते। अेकबार देखा, जल प्रवाह-शोभित यमुनाके किनारे-किनारे, अेक बूढ़े सज्जन, लाठी टेकते हुअे चले आ रहे थे। मैं अुनके पास गया। अुनका अुज्ज्वल मुख, स्वच्छताके आगार रूपी नयन, शुभ्र जटा-जूट तथा सफेद दाढ़ी आदि देख, अुन्हें प्रणाम किया। मैं फिर, अुनसे कअी बातें कहता चला। अितने ही में, . . "

अेन्नुळत्तासै आरिन्दवर्-मिह
अिन्बुट्रु रैत्तिडलायिनर्-"तम्बि,
निन्नुळत्तिलुंसह दवन् चुडर्
निन्तिय मोनत्तिरुप्पवन् अुयर्
मन्नर् कुलत्तिल् पिरन्दवन्-वड
मामदुरैप्पति आळ्हिन्ड्रान् कण्णन्
तन्नैत्तरणेन्ड्र पोट्रिनेल् अवन्
सत्तिय कूरुवन्' अन्ड्रनर् ॥ ३ ॥

"अुन्होंने मेरे मनकी चाह भांप ली और प्रेमपूर्ण स्वरमें कहा—'रे भाअी अुत्तरमें, महान् मथुरापुरीका शासन कर रहा है अेक 'कान्हा'—नामधारी राजा। वह बालक, तुम्हारे विचारोंके अनुकूल है। वह अूँचे राजकुलमें पैदा हुआ था पर अब वह अुज्ज्वल नित्य समाधिमें लीन है। तुम अुसकी शरणमें जाओ तो वह तुम्हें सत्यका परिचय करा देगा।'

मा मथुरैप्पदि शेन्ड्रु नान् अंगु
वाय्न्दिडु कण्णनैप्पोट्रिय पोन्ड्रन्
नामम् मुदल् करतुमे शोल्लि
नन्मै तरहेन वेण्डिनन्-अवन्

कामनंप्पोन्ड वडिवम् अिळ
काळैयर् नट्पु पयक्कम् केट्ट
भूमियैक्कावकु तोषिलिले अेद-
प्पोवु शेलुत्तिडु चिंतैयु ॥ ४ ॥

'मैं तुरन्त अुस सबसे बडी मथुरापुरीमें जा पहुँचा। कान्हाके दर्शन किये। अपना नाम धाम बताकर मनोरथ व्यक्त किया और कुशल प्रदान करनेकी प्रार्थना की। पर कामदेव जैसा अुसका सुन्दर रूप नवयुवकोंके साथ अुसकी मैत्री और चाल चलन बिगड़ी हुअी भूमिके शासन करनेका अुसका काम, अुसकी चिन्ताशीलता

आडलु पाडलु कण्डु नान्- मुन्नर्
आट्करयिनिल कण्डदोर् मुनि
वेड धारित्त किषवरैक् कोल्ल
वेण्डु अन्ड्रुळत्तिल् अेण्णिनेन्- विद
नाडु पुरिन्दिडु मन्नवन् कण्णन्
नाळु कवलैयिल् मूषहिनोन् तवप्-
पाडु पट्टोक्कुं विळंगिडा अुण्मै
पाथिवन अेड्डुन कूरवान् ?'' ॥ ५ ॥

(तथा) नाचने गानेमें कौशल देखते ही मेरे मनमें हुआ कि यमुनाके किनारे मुनि वेषधारी जो बूढ़े मिले अुन्हें मार ही डालना चाहिये- मैंने मन-ही-मन सोचा 'अिस छोटेसे देशका शासक यह कान्हा, जो कि हमेशा चिन्ता मग्न ही सोचता है कैसे मुझे सत्यका परिचय दे सकेगा? जो बड़े बड़े तपस्वियों तकके लिअे अज्ञात है तत्सबंधी बातें यह पार्थिव कैसे बता पायेगा?

अेन्ड्रु करुदि अिरुन्दिट्टन् पिन्नर्
अन्नंतनि अिड कोण्डु पोय्-' निनै
नन्ड्रु मरुवुह! मेन्दन! -पर
ज्ञान अुरैत्तिडक्केट्पनी नेञ्जिल्
ओन्ड्रु कवलै अिल्लामले चित्तै
अून्ड्र निरुत्तिक्कळिपुटे तन्नै
वे ड्रु मरन्दिड् पोधुदिनिल अगु
विण्णै अळक्कु अरिवु तान्! ॥६॥

'मैं यह सोचता ही रहा कि वे मुझे कहीं अकान्तमें ले चले और कहने लगे— बेटा तेरा कुशल हो! अुस परम ज्ञानकी बात सुनो। हृदयको चिन्तासे अछूता रखकर बिल्कुल निश्चिन्त हो। बडी अेकाग्रतासे मनको स्थापित कर आनन्द मग्न हो अपने आपको जीतकर, जब तुम सुध बुध भूल जाओ, तन्मय हो जाओ तभी अुधर विस्तृत आकाश भरको नापनेवाली बुद्धि हो जाती है।

"चन्दिरन् ओळि अुडैयदाम अदु
सत्तिय नित्तिय वस्तुवाम्-अदैच्
चिन्तिक्कु पोदिनिलवन्दु तान्-निन्नैच्
चेर्न्दु तषुवि अरुळ् शेयु-अदन्
मन्तिरत्ताल् अिव् अुलहेल्ला-वन
मायक्कळिप्पेन कूवक्काण- अिदैच्
चन्तत पोय्-अेन्ड्रैसिडु-मडमै
शात्तिर पोय्' अेन्ड्रु तळळडा! ॥ ७ ॥

'चन्द्र ज्योतिष्मान है। वह सत्य है अेक नित्य वस्तु है। अभी तुम अुसका सोचो तत्क्षण वह तुम्हारे पास आ जाता और तुम्हें गले लगाकर कृपाकी वर्षा कर देता है। अिस विश्वमंत्रमें अुसकी मन्त्र शक्तिसे दृश्यमान मायाके रंगतमाशे देखो। जो अज्ञानमय शास्त्र कहते हैं कि यह दुनिया सतत मिथ्या है वे शास्त्र ही सचमुच असत्य हैं, अुन्हें तुम दुत्कार दो।

आदिमत्तिप्पोरुळ आहु ओर-कडल्
आद कुमिषि अुयिहळाम्-अन्ध
चोदियरिवेनुं ञायिद-तन्नैच्
चूळ्न्द कदिरहळ् अुयिहळाम्-अिगु
मीदिप्पोरुळ्हळ् अेवैयुमे—अदन्
मेनियिल् तोन्ड्डु वण्णमळ्—वण्ण
नीति अरिन्दि अम् अेंद्रियै—ओर
नेर्मैतोषिलिल् अियक्कुवार् ॥ ८ ॥

आदिम श्रेष्ठ वस्तु जो समुद्र है अुसमें अुमड़ते हुअे बुद बुद भी जीव हैं। ज्योतिकी खान अुस सूर्यके चारों ओरसे बिखर पड़नेवाली किरण भी तो जीव हैं। अितर दूसरी जो जो चीजें विद्यमान हैं अुनकी आकृति पर चमकनेवाले रंगविधान कओ प्रकारके हैं। अुनको

रीति-नीति समझकर आनन्दित हो, किसी सोचे-माहे काममें लगकर जो प्रयत्नशील होते हैं .. "

"चित्तत्तिले शिव नाड्वार—अिगु
शन्दु कळित्तुलहाळुवार्—नल्ल
मत्त मदवेकळिर पोल्—नडं
वाग्दिरमान्दु तिरिहुवार्—अिगु
नित्त निहप्पवनंतमे—अेन्ते
नीण्ड तिरवरुळाल् वरु—अिन्व
शुद्ध सुख तनि आनन्दम्'—अेनत्
धन्दु कवलैहळ् तळ्ळिये .. ॥ ९ ॥

'(वे ही) अपने चित्तमें शिवको पाते हैं। अिधर वे मिलजुलकर सानन्द विश्वभरका शासन करते हैं। मदमस्त हाथीकी-सी चाल अपनाकर वे गर्वसे घूमते फिरते हैं। वे समझते हैं—'अिधर विश्वमें दिन-ब दिन जो कुछ होता है, वह सब कुछ हमारे परम पिताकी अनन्त कृपाके फलस्वरूप, मधुर शुद्ध सुख व श्रेष्ठ आनन्द मात्र है। अिसलिअे वे दूसरी समग्र चिन्ताओंको दूर कर डालते हैं।"

'जोति अरिविल् विळगवु—अुयर्
शूट्चिच मतियिल् विळगवु—अर
नीति मुरै वधुवामले—अेन्द
नरम् भूमित्तोयिल् शेय्दु—नलं
ओदिप्पोरळियल् कण्डु ताम—पिरर्
शूट्दिडु तोल्लैहळ् माट्रिये—अिन्व
मोदि विधिदकु विधियिनार्—पेण्म
मोहत्तिन्, शल्वत्तिल्, कीर्तियिल् ..॥१०॥

"तब अुनकी बुद्धि बड़ी अुज्ज्वल हो जाती है। नयतत्त्वयुक्त मतिमान हो जाते हैं वे। धर्म-नीतिकी रीतिसे अविचल वे हर हलका लौकिक कामोंमें लगे रहते हुअे भी वस्तुओंका अध्ययनकर, स्वयं अर्थशास्त्र-विचक्षण हो दूसरोंकी समग्र दुख बाधाओंको दूर करनेमें लग जाते हैं। कामको लहर मारनेवाली दृष्टि युक्त हो, वे स्त्री, मोह सम्पत्ति, कीर्ति... .."

"आड्दल् पाड्दल् चित्तिर—कवि
आदि अिनैय कलैहळिल्—अुळ्ळ
ओड्पट्टेन्ड्रु नडप्पवर्—पिरर
अीन निलै कण्डु तुळ्ळुवार्—अवर्
नाडु पोरुळहळ् अनैत्तैयुं—चिल
नाळिनिल् अेय्दप्पेरहुवार्—अवर्
काडु पुदरिल् वळरिनु—देय्वक्
कावनमेन्ड्रदप्पोट्रलाम.. ... ॥ ११ ॥

"नृत्य, गीत, चित्रकला, कविता आदि अितरेतर कलाओंमें मन लगाये रहते हैं। दूसरोंकी हीन दशा देख तड़प अुठते और अुनकी चाहकी समग्र सम्पत्तिकी प्राप्ति कुछही दिनोंमें करा देनेके अुपाय कर देते हैं। चाहे वे किसी जंगल या झाड़ीमें गुजरते हों, वे प्रदश दैवी नन्दन-वन जैसे आदरणीय हो जाते हैं। "

"ज्ञानियर् तम् अियल् कूरिनेन्—अन्द
ज्ञान विरैविनिल् अेय्दुवाय्"—अेन
तेनिलिनिय कुरलिले—कण्णन्
शेप्पवु अुणर्म निलै कण्डेन्—पण्डै
अीनमनिदक्क नवेलाम्—अेड्ड्म्
अेहि मरैन्दतु कण्डिलेन्—अदि
वान तनिच्चुडर् मान् कण्डेन्!—अदन्
आडल् अुलहेन नान् कण्डेन्! ॥ १२ ॥

"मैंने ज्ञानियोंके स्वभावकी बातें कहीं। अुनका वही ज्ञान तुम्हें शीघ्र अुपलब्ध हो जाअे!" कान्हाने, मधु मधुर स्वरमें जो कुछ कहा, अुनके सुनने मात्रसे मैं सत्यकी असली स्थिति समझ गया। पुराने हीन मनुष्योंके स्वप्नका जो कुछ प्रभाव मेरे मनपर पड़ा हुआ था, वह अब जाने क्या हुआ, कहाँ गया! बुद्धिका श्रेष्ठ प्रकाश मात्र मैंने अब देखा। और दया विश्व भरमें अुसने नृत्य किया।'

नीमाड़ी सन्त सिंगाजी और अुनका साहित्य

ः श्री कृष्णलाल 'हंस', अेम अे, साहित्यरत्न ः

सन्त सिंगाका जन्म १५७४ वि. स. में खजूरी नामक ग्राममें हुआ था, जो मध्यभारतीय नीमाड़ जिलेमें है। अिनके पिताका नाम भीमा तथा माताका नाम गौरीबाअी था। ये जातिके गौली थे। कुछ दिनोंके पश्चात् अिनके पिता पश्चिमीय नीमाड़के हरसूद नामक ग्राममें बसे। अेक दिन जब ये अपने किसी सम्बन्धीके निमन्त्रणपर जा रहे थे तब मार्गमें अिनकी सन्त मनरंगीरसे भेंट हो गयी और अुनकी वाणीसे प्रभावित होकर अिन्होंने अुनसे दीक्षा देनेका आग्रह किया। पर अुन्होंने अुस समय दीक्षा देना स्वीकार न किया। अन्तमें रामनगर जाकर अिन्होंने अुनका शिष्यत्व स्वीकार किया। ये अपने गुरुके बड़े आज्ञाकारी थे। बिना अुनकी आज्ञाके कोअी कार्य न करते थे। आरम्भमें अिन्होंने संन्यास लेनेका हठ किया, पर गुरु मनरंगीरने कहा कि "अेक सच्चे भक्तको संन्यास लेनेकी आवश्यकता नहीं वह अपने घर, अपने परिवारके साथ रहकर भी अीश्वरको पा सकता है। तुम गृहस्थ रहते हुअे भी अपनेको संसारसे विरक्त समझो और घर, स्त्री, पुत्रादिको अीश्वरकी वस्तु समझते हुअे आत्मदेवका ध्यान करो।" सिंगाजी अपने घर आ गये, और अुसी दिनसे संसारसे विरक्त होकर आत्मामें निवास करनेवाले प्रभुके ध्यानमें मग्न हो गये।

सन्त सिंगाके जीवनसे सम्बन्धित अनेक चमत्कार-पूर्ण घटनाअें सुनी जाती हैं। खेमदासने 'सिंगाजीकी परचुरी' में लिखा है कि अेकबार अिनकी भैंसें चोर चुरा ले गये। घरभरने अिन्हें अुनका पता लगानेको कहा, पर अिन्होंने कोअी ध्यान न दिया। अन्तमें माताके नाराज होनेपर ये चुरायी गयी भैंसोंके बेंडे और बेड़िया (भैंसके बच्चे) लेकर जंगलकी ओर चले गये और कुछ ही समयके पश्चात् भैंसोंके साथ घर लौट आये।

अेक बार अिनके परिवारने अिन्हें मान्धाताकी यात्रा करनेके लिअे अपने साथ चलनेको कहा। अिन्होंने अुत्तर दिया कि 'आदि ओंकार' तो हमारे घटमें ही निवास करते हैं अुनके दर्शनको मान्धाता जानेकी आवश्यकता नहीं। अन्तमें अिनका परिवार अिनसे नाराज होकर मान्धाता चला गया और तीसरे दिन वहाँ पहुँचा। वहाँ पहुँचनेपर परिवारवालोंने देखा कि सिंगाजी अेक नावमें बैठे नर्मदामें विहार कर रहे हैं। खेमदासने अिसी प्रकारकी और भी कुछ घटनाअें अुनकी 'परचुरी' में लिखी हैं।

बहुत दिनोंतक हरसूदमें रहनेके पश्चात् सिंगाजी पीपल्या ग्रामको चले गये। वहाँ ठाकुर हरजू नामक अेक पटेलने अिनके निवासकी व्यवस्था कर दी। खेमदासने लिखा है कि यहीं भगवानने अिन्हें अेक संन्यासीके रूपमें दर्शन दिये और सिंगाजीने अुनसे पुनः जन्म ग्रहण न करनेका वरदान प्राप्त किया। यह पीपल्या ग्राम वाणगंगाके तटपर बसा बतलाया गया है। आजकल अिस ग्रामके समीप जो वेण नदी बहती है, वही अुस समय वाणगंगा कही जाती थी।

'परचुरी' में लिखा है कि अेक दिन अिनके पास कुछ संन्यासी आये और अिनसे दूध पिलानेको कहनेपर अिन्होंने कहा कि स्त्री दूध दुहकर लानेके लिअे गयी है, आप कुछ समयतक बैठें। पर संन्यासी बहुत भूखे थे, वे वहीं चले गये, जहाँ अिनकी स्त्री दूध दुह रही थी। अिन्होंने दुहा हुआ सब दूध पी लिया और सिंगाजीकी स्त्री जसोदा रीता बर्तन लिये घर आ गयी, पर अुसने जैसे ही रीता बर्तन अपने सिरसे अुतारकर नीचे रखा, दूधसे भरा पाया।

सन्त सिंगाने अपने जीवनके अन्तिम दिन पीपल्यामें ही बिताये। जब अिनका मृत्युकाल समीप आया, तब अिन्होंने अेक शिष्यको रामनगर भेजकर गुरु मनरंगीरसे

शरीर त्याग परमधाम जानकी आज्ञा मागी। आज्ञा प्राप्त होते ही अिन्होंने अपने परिवार और शिष्य मंडलको सूचना दे दी। अिन्होंने स्नान किया और अपने मस्तकपर चन्दनका तिलक लगा ध्यानस्थ हो गये और अिस प्रकार अपनी आत्मामें स्थित निराकार ब्रह्मका ध्यान करते हुअे श्रावण शुक्ल ९ को परमधाम सिधारे।

खेमदासने संवत् १७८८ वि. में लुह सिंगाजी द्वारा दान देने तथा अपना सब चरित्र सुनानेका अुल्लेख किया है। तदनुसार खेमदास लिखित "सिंगाजीकी परचुरी" सिंगाजी द्वारा बतलायी गयी बातोंपर आधारित कही गयी है।

सिंगाजीका साहित्य

काव्य रचनाकी दृष्टिसे संत सिंगा नीमाड़ी लोकसाहित्यके अेक सर्वश्रेष्ठ लोककवि हैं। ये वास्तवमें 'लोककवि' हैं। अिनके पद नीमाड़ी भाषी प्रदेशके अतिरिक्त मध्य प्रदेशके होशंगाबाद, बैतूल, छिंदवाड़ा जिलों और मध्यभारतके भी कुछ मालवी भाषा प्रदेशमें सुन जाते हैं। संत सिंगा और अुनके पदोंके प्रति अिस प्रदेशकी ग्रामीण जनताकी अटूट श्रद्धा है। वे प्रत्येक अुप धाम व्रत और त्योहारोंके अवसरपर गाये जानेवाले भजनोंमें अिनके पदोंको प्रमुख स्थान देते और झूम झूम कर गाते हुअे भक्ति विभोर हो जाते हैं। हम संत सिंगाके पदोंको विषयकी दृष्टिसे निर्गुण स्वरूप-वर्णन, ब्रह्म और जीवकी अेकता, पाखंड-खंडन, अुलटबानी, रहस्यवादी रूपक, विरक्त भावना, सतगुरु महिमा तथा विनयके पदोंमें विभाजित कर सकते हैं। अुदाहरणार्थ प्रत्येक विषयसे संबंधित अेक-अेक पद देखिये —

निर्गुण ब्रह्म —

निरगुन ब्रह्म है न्यारा, कोअी समझो समझन हारा ॥
खोजत ब्रह्म जलमें१ सिरानो२, मुनिजन पार न पावे।
खोजत-खोजत शिवजी थाके अैसो अपरम्पारा ॥१॥
वेद कहे अरु अगम बानी मुरता३ करो विचारा।
काम क्रोध मद, मत्सर व्यापे, झूठा रूप४ पसारा ॥२॥
त्रिकुटी महल५ में अनहद६ बाजे होत सबद झनकारा।
सुकमन७ सेज सुन्न८ में झूले,
सोहम्९ पुरुष हमारा ॥३॥
सहसभी१० निसदिन रटे, रैन दिवस जिक सारा।
रिखि-मुनि और सिद्ध चौरासी
तैंतिस कोटि पचिहारा ॥४॥
अेक ब्रह्मकी रचना सारी जाका सकल पसारा।
सिंगाजी भर नजरों देखें, वो ही गुरु हमारा ॥५॥"

अिस पदकी विचार धारा हिन्दीके संत-साहित्यकी ही विचारधारा है। कबीरकी त्रिकुटी महल, अनहद सुकमन सेज आदिकी कल्पना हमें सिंगाजीके अिस पदमें भी अुसी रूपमें मिलती है। भाषा-साम्य भी स्पष्ट है।

ब्रह्म-जीवकी अेकता

'मैं तो जानू साअीं दूर है, मुझे पाया हो नेड़ा११।
रैनो रही सामरत१२ भअी, मुझ आसरा तेरा ॥
तुम तो सोना हम गहना मुझ लगा है हाका।
तुम बोले हम देह धरी, बोले कभी रंग भाका१३ ॥
तुम चंदा हम चांदनी१४, रैनी१५ अुजियाला।
तुम सूरज हम घामला१६, साअीं चौमुग१७ पुरिया ॥
तुम तरवर हम पंछिड़ा१८, बैठे अकड़ो डाला।
चोंच मार फलभाजिया१९, फल अमृतसारा ॥
तुम दरियाव हम माछली बिस्वास२०का रहना।
देह गली मट्टी भअी, तेरा तुज-में२१ समाना ॥
तुम बिरछ२२ हम बेल है, झूलते लपटाना।
कहे सिंगा पहिचान ले, दरियाव ठिकाना२३ ॥'

यही भाव व्यक्त करनेवाला संत कबीरका अेक पद देखिये—

---

१ जन्म २ बीत गया ३ मनमें रख, ४ संसार।

५ दोनों भौंहोंके बीचका स्थान (आज्ञाचक्रका मध्य भाग) ६ ब्रह्मांडमें होनेवाला शब्द, ७ सुषुम्ना, ८ शून्य (ब्रह्मांड), ९ जो हमारी आत्मामें है, १० नाग-नाग ११ समीप १२ सामर्थ्य १३ माया १४ चांदनी, १५ रात्रि १६ धूप १७ चारों युग १८ पक्षी १९ फोड़ा २० हमेशा २१ तुझमें, २२ वृक्ष, २३ मझार रूपी समुद्रमें रहनेका स्थान।

'माधव जलकी पियास न जाअि।
जल महि अगनि अुठी अधिकाअि॥
तू जलनिधि हमु[1] जलका मीनु।
जल महि रहअु जलहिबिनु खीनु[2]॥
तू पिंजर हअु सुअटा तोर।
जमु मजार[3] कहा कर मोर॥
तू तरवर हअु पखी आहि।
मद भागी तेरो दरसन नाहि॥
तू सतगुरु हअु नअुतनु चेला[4]।
कहि कबीर मिलु अंतकी बेला।

दोनों संत कवियोंकी अपने आराध्यके प्रति अनन्यता प्रशंसनीय है। भक्त और भगवानकी यह अकरूपता हिंदीके अन्य भक्त कवियोंके काव्यमें भी विद्यमान है।

पाखंड खंडन

कबीरकी तरह संत सिंगाने भी अुपासना और भक्तिके नामपर किये जानेवाले आडम्बरोंको पाखंडकी संज्ञा दी है।

संत सिंगाजीने कीर्तन देव-पूजा तुलादान शिवलिंगपूजा आदि सनातन धर्मकांडोंका ही नहीं पर नाथपंथियोंकी धार्मिक क्रियाओंकी भी निंदा कर अुन्हें पाखंड बतलाया है। सिंगाकी दृष्टिमें अपनी आत्मामें निवास करनेवाले 'बिनादेहीके साहब' को पहिचाननेका प्रयत्न ही मुक्तिका साधन है।

अुलटवासी —

कबीरकी तरह सिंगाने भी कुछ अुलटवासी पद रचे हैं। अुनका निराकार ब्रह्मपर रचित अेक पद जिस प्रकारका है—

'फूल नजदीक नजर नहिं आवे
सतगुरु बिन कौन बतावे॥
बिना पाल[5] को सरवर कहिये
लहरों मुजरा आवे।
बिना चोंचको हंसा कहिये
मोती चुग चुग खावे॥
बिना बीजको बीरछा[1] कहिये
डाल भयो नयी[2] आवे।
बिना पंखको पछी कहिये
अुड़ि अकासको जावे॥
बिना पत्रकी बेली कहिये
छाव नजर नहीं आवे।
बिना फूल फल लागा अुनको
कोअी साधुजन पावे॥
अुलट ज्ञान कोअी बिरला बूझे
और न बूझे कोअी॥
कहे जन सिंगा सुन भाअी साधू,
चौरासी छुट जावे॥

अिस अेकही पदमें अिस लोकगायक संत कविने कितनी सरलतासे अदृश्य अरूपी और निराकार ब्रह्म तथा अुसकी आश्चर्यमयी विविध लीलाअें अुपस्थित कर दी हैं।

रहस्यवाद —

कबीर हिन्दी काव्य जगत्में रहस्यवादके प्रथम स्रष्टाके रूपमें प्रसिद्ध हैं। अुन्होंने निर्गुण ब्रह्मोपासनाके विस्तारके साथ जिस रहस्यवादको जन्म दिया अुसके प्रभावस्वरूप तत्कालीन अनेक संत कवियोंका आविर्भाव हुआ। अुन सभीने निर्गुण काव्य धाराको मूल्यवान योग प्रदान किया पर अुनमेंसे अधिकांश कबीरकी तरह अपने काव्यमें रहस्यवादको स्थान देनेमें पूर्ण सफल न हो सके। मध्यप्रदेशके अेक अनुतम कोनेमें निर्गुण भक्तिकी मस्तीमें मस्त संत सिंगाके अनेक असे पद प्राप्त हैं जिनमें कबीरकालीन अनेक कवियोंसे कहीं अधिक स्पष्ट और प्रौढ़रूपमें रहस्यवादके दर्शन होते हैं। अुदाहरणार्थ अुनका अेक पद देखिअे—

कोअी देखो दरियावकी लहरी
सतगुरु सौदा हेरो[3]॥

---

१ मैं २ अुदास ३ बिल्ली (नीमाडीमें माजर मराठीमें माजर और संस्कृतमें मार्जार कहते हैं।), ४ नया शिष्य ५ तट।

१ वृक्ष, २ नयी ३ ढूंढना।

अिस दरियावमें सात समुन्दर[१],
बीच गयेब[२]को डेरो[३] ।
डेरी अन्दर अलख[४] विराजे,
जहाँ सुरत[५] लाग रही मेरी ॥
अिस दरियावमें बाजा[६] बाजें,
बाजे आठों पहरी ।
ताल पखावज बाजे झाजरी,
बसो बाजे गयरी[७] ॥
बिना पेडको[८] वृक्ष कहिये,
डाल पत्त ना फेरी ।
रूप रेख वाको कछु नाहीं,
फिरी रह्यो चहुफेरो ॥
अगम अगोचर पद पाया भाओ,
क्या पूछोरे मेरी ।
कहे जन सिंगा सुनो भाओ साधू,
निरभय माला[९] फेरी ॥

रूपकः—

सत सिंगाके पदोंमें कुछ बडे सुन्दर रूपक भी मिलते हैं। कबीर तथा तत्कालीन सन्त कवियाने भी कुछ रूपकोंकी रचना की है। सत सिंगाका अेक खेती विषयक रूपक देखिअे—

" खेती खेडो[१०] हरिनामकी
जा में[११] घासे[१२] लाभ ॥
पापका पालवा काटजे,
काडो बाहेर राल ।
कर्मंकी कासीयें चाडजो[१३]
खेती चोखी थाय ।[१४]
मन पवन दोअी बलदिया[१५]
सुरती[१६] रास लगाय
प्रेम पिराणो[१७] कर धरचो,
ज्ञान आर लगाय ॥
ओटग[१८] बरबर जूपजो,[१९]
सोहंग[२०] सरतो[२१] लगाय ।
मूल मत्र[२२] बीज बोवजो[२३]
लड झूमड[२४] थाय ॥
सतको माल्यो[२५] रोपजो,
धरम पेंडी[२६] लगाय ।
ज्ञान गोला चलावजो,
सूवा अुडि जाय ॥
दयाकी दावण रालजे,
भवरी[२७] फेरा[२८] न होय ।
मुगता[२९] बिचारो सिंगा आपणी,
आवागमन नो होय ॥

अिस पदमें सन्त सिंगाने खेतीके रूपक द्वारा मुक्तिकी साधना बतलायी है। वे कहते हैं "हरि-नामकी खेती करनेमे ही लाभ होगा। सिंगाकी यह खेती बडी विचित्र है। अच्छी फसल होनेके लिअे खेतमें अुगा-नीदा पहिले साफ कर देना पडता है। बिना अुसे अुखाडकर बाहर फेंके खेत बोने योग्य नही होता। सिंगाजी कहते हैं—"पापरूपी घास-पात अुखाडकर बाहर फेंक दो।" घास-पातके सिवाय खेतमें काँस नामक अेक गहरी जडावाली घास भी होती है। कर्मकाडको ही सिंगा काँस कहते है। वे कहते हैं "कर्मकाड रूपी काँस भी जडसे अुखाडकर निकाल दो, तब वही अच्छी खेती हो सकेगी। मन और श्वास हीं दोनो बैल है, जिन्हे आत्माकी रस्सीसे बांधकर प्रेमके पिरानेसे हाको। लेकिन प्रेमका पिराना अैसा वैसा न हो; अुसमें ज्ञानकी आर (लोहकी पतली नुकीली कील) लगी हो।" कितनी सुन्दर है अिस अपढ लोक-कविकी कल्पना। अुसकी अिस कल्पनामें जो महान अध्यात्म भरा हुआ है, बडे-बडे दर्शन शास्त्रियोंके लिअे भी दुर्लभ है।

---

१ समुद्र, २ अदृश्य ब्रह्म, ३ निवास, ४ न दिखलायी देनेवाला, ५ ध्यान, ६ अनहद नाद, ७ गहरी, ८ पीड, ९ ब्रह्मकी माला जिसे फेरनेपर कोअी भय नहीं रहता, १० करो, ११ जिसमें, १२ होगा, १३ निकाल दो, १४ होना, १५ बैल, १६ ध्यान।

१७ बैल हाकनेकी लकडी (पिराना), १८ निर-हवार, १९ जोतना, २० ब्रह्ममय आत्मा, २१ सरता (खेतीके काममें आनेवाला अेक औजार), २२ बीज मत्र (ओम्), २३ बोओ, २४ हरी भरी घासें, २५ मल्ला (क्यारियाँ), २६ मेड २७ संसार, २८ आवागमन, २९ मुक्ति, मोक्ष।

नागपुर]

गद्दार

: श्री रामराजसिंह :

गद्दारके असली माने होते हैं—भेदिया, घात करनेवाला अथवा समयपर खिसकनेवाला। लेकिन जहाँ तक गद्दारके अपने काम गद्दारीसे तात्पर्य है वहाँ द्रोहात्मक और हिंसात्मक नहीं और क्रोधात्मकभी नहीं, बल्कि वहाँ गद्दारकी कायरता, काहिली और अक्षमता है। गद्दार अिसलिअे गद्दारी नहीं करता कि अुसे मजा मिलता है, या कोअी विशेष लाभ होता है, वरन् वह गद्दारी अिसलिअे करता है कि वह अक्षम है, अुसमें दृढ़प्रतिज्ञता नहीं, वह कष्ट सहन नहीं कर सकता, अतः अुसकी आत्मा गवाही दे देती है। जब कभी अेक विश्वसनीय व्यक्ति गद्दारी करते देखा या पाया जाता है, तो अुसके अन्यान्य बन्धु-बान्धवों और स्वजनों तथा प्रिय जनोंको अेक अप्रत्याशित धक्का-सा लगता है। लेकिन कभी-कभी तो अैसा देखनेमें आया है कि स्वयं गद्दारभी अपनी करतूतसे अनभिज्ञ और अपरिचित रहता है, यहाँ तक कि गद्दारी करनेके पहले तक वह नहीं जानता कि वह क्या करने जा रहा है। किन्तु करनीके पश्चात् अुसे कम दुख, संवेदना और पश्चात्ताप नहीं होता।

मनुष्य अन्यान्य प्राणियोंसे जिस प्रकार अधिक विवेकी और चिन्तनशील है, अुसी प्रकार वह घोर पापी, अन्यायी और क्रोधीभी है। 'क्रोध पाप कर मूल' का मन्त्र जाननेवाले अिन्सानने क्रोधकी सीमाभी पार कर दी है। कहनेको तो पशुओंमें हिंसकता और बर्बरताका दुर्गुण प्रचुर मात्रामें है, लेकिन अहिंसाके पुजारी बननेवाले मानवने और सहिष्णुताका आडम्बर दिखलानेवाले अिन मर्मज्ञ नरोंने अपनी सारी कलअी खोल कर रख दी है। जब जब अितिहास बदलता है वह अपने पीछेकी तरहही बिना किसी प्रकारके रद्दोबदलके अेक नये रूपमें मार्ग प्रशस्त करता हुआ आगे बढ़ता है। (History repeats itself) और किस राजा (क्योंकि अितिहासमें राजा अथवा राज्यसम्बन्धी वर्णन रहता है) ने किस अवसरपर कैसे धोखा खाया था, अुसने दूसरेको अपने जालमें किन किन अुपायोंसे फँसाया आदिको जानते और अुससे शिक्षा प्राप्त करते अथवा लाभ या हानिकी जानकारी रखते हुअेभी मनुष्य धोखा खाता, असफल होता है और मुँहकी खाता है। क्या अेक पक्षके लोग दूसरेके किसी विशेष व्यक्तिको फोड़ लेते हैं और किस प्रकारसे अुसका अुचित अनुचित लाभ अुठाते हैं। कोअी कहता है कि अमुकने गद्दारी की, लेकिन गद्दार अपनी स्थितिको अवश्य समझनेकी कोशिश करता है।

गद्दारके समय समयपर अनेक माने होते हैं। अुसे चुगलखोर, द्रोही, भेदिया कान भरनेवाला और हाँ हुजूरी करनेवालाभी कह सकते हैं। दासी मन्थरा गद्दारिन कुटनी थी, विभीषण गद्दार अपने पक्षका भेदिया था, मानसिंह अपनी जातिका गद्दार (द्रोही) था और ध्रुवका पिता अुत्तानपाद भी गद्दार (विवश) था। अिस तरह विभिन्न स्थलोंपर अिनके नाना रूप मिलते हैं। गद्दारी करनेसे कुछ लाभ तो जरूरही होता है। लेकिन अिस कारण वैयक्तिक जितना सुख मिलता है, प्रायः अुससे कअी गुना सामूहिक रूपसे विनष्ट होता है। और अक्सर यह होता है कि गद्दार किसी अेक दो को नहीं ले बैठता बल्कि समूचे का समूचा दल और जातिही वह विनष्ट करके छोड़ता है। यह कितना संभव है यह तो गद्दारकी अुग्र हिंसक भावनाओंपर आधारित है। जितनीही अुसकी बदलेकी भावना तीव्रतर होगी, अुतनाही अधिक सफाया वह कर सकता है। गद्दार निम्नलिखित कारणोंसे प्रेरित होता है।

मानसिक दुर्बलता

कहीं कहीं यह देखनेमें आता है कि किसी पुरुष या दल विशेषमेंसे कोअी अेक अिसलिअे अलग हो जाता है कि अुसका मानस स्थिर नहीं रह पाता। अपने दलकी

गुप्त बातोका रहस्यभी विपक्षवालोंके सामने प्रकट करनेमें वह कुछ हानि नही समझता। वैसा कर देनेके बाद वह भलेही पश्चात्ताप करे, लेकिन अस्थिर बुद्धिके कारण अुत्पन्न होनेवाली आपदाओंसे वह लाख चेष्टा करनेपरभी नही बच पाता। वह अपनी अेक मानसिक कमजोरीको छिपानेके लिअे नाना प्रकारका मिथ्या प्रयास करता है।

प्रलोभन

रुपये-पैसे, जमीन-जायदाद और पदका प्रलोभन पानेसे भी अेक पक्षका कोअी मनुष्य किसी समय गद्दारी कर सकता है। अुस समय अपनी स्वार्थ-सिद्धिके आगे अुसको अपनी संस्था, जाति, अपने देश या अपने राष्ट्रके हितका ध्यानभी नहीं रहता। और वह यह भी नही समझता कि अिस प्रलोभनसे वह कितने लोगोंके हितोंका गला घोंट रहा है। अिस आर्थिक-युगमें साधारणतया अिसी किस्मके गद्दार पाये जाते हैं, जो बहुजनहितायको तिलांजलि देकर और दूसरोंके हितोंका गला घोंटकर अपने सुखके लिअे, स्वार्थके लिअे, सबकुछ करनेके निमित्त अपना नैतिक स्तर पतित करनेमें नहीं झिझकते। प्रलोभनकी बात विश्लेषणद्वारा पहले अुठायी गयी, यह तो गद्दार और विपक्षवालोंके मनकी अवस्थितिपर निर्भर है। किन्तु गद्दारकी मन स्थिति तो अुसी समय विचलित हो जाती है, जब अिस किस्मकी कोअी बात अुठ भर जाती है।

प्रताड़ना

यों तो चोर पकडे जाने और पुलिसके हवालातमें कोडे-पर-कोडे खानेपरभी अपने हमराहियोंका भेद और नाम नहीं बताता, किन्तु यहभी सत्य है कि मारके आगे भूतभी भागता है। अत यह निर्विवाद है कि प्राणोंकी परवाह करनेवाले जिन गद्दारोंकी बातको ध्यानमें भी नही लाते। प्राणका सौदा जितना सस्ता नहीं है! बेंत-पर-बेंत कसकर जमा देने और खरचारियोंके खींचे जानेकी पीडा पक्के चोरोंका भी मुँह खोलवा देती है। कहनेका तात्पर्य यह है कि वह व्यक्ति नहीं बोलता, वरन् शारीरिक पीडा और यातनाओंसे वह बोलनेपर बाध्य किया जाता है। किन्तु साथ-ही-साथ, जिसमें कुछ सन्देह नहीं, कुछ अैसेभी जीव हैं, जो अपनी गुरुता और महानताको अपने प्राणोंसे अधिक मूल्यवान समझते हैं।

अनबन

कभी-कभी किसी दलमेंसे कोअी अेक व्यक्ति न पटनेके कारण अलग हो जाता है अथवा दलके अन्य व्यक्ति अुसको किसी कमजोरीसे अुसको निकाल देते हैं। जिसका प्रभाव अुसके मानसपर बहुत बुरा होता है; वह बदला लेनेको सोचता है। अतः स्वभावतया वह अपने विपक्षियोंकी शरण जाता और अपनी पोल-पट्टी खोल देता है। अिस प्रकारकी घटनामें अधिक बाँट-बँटावको खींचातानीसे ही अधिक होती हैं। बडे-बड़े डाकुओंका दल अिसी कारण पकड़में आ जाता है।

सहानुभूति

विद्रोहियों और ध्वंसक-क्रान्तिकारियोंमेंसे अपने विपक्षोंके किसी अेकके प्रति जब सहानुभूतिकी भावना घर कर लेती है, तो वह अुसको रकरार्थ पत्र या अन्य किसी साधनसे सूचना दे देता है। फिर क्या पूछना, सहानुभूतिका पात्र वह व्यक्ति अपने दलों या अपने पक्षमें अिसकी जानकारी करा देता है। परिणाम-स्वरूप अुसके प्रतिपक्षियोंकी सारी योजनायें निष्फल हो जाती है और वे पकड़में भी आ जाते है। अिंग्लैंडके कैथोलिकोंका १६०५ अी० के 'गन प्लाट'का भेद अैसेही खुला और वे विफल तो हुअे ही; पकड़कर मारभी डाले गये।

अिसके अतिरिक्त कुछ गद्दार स्वभावतया क्षुद्र प्रकृतिके होते है। जिनने तो अपना हित हो, या न हो दूसरोंका अहित करनेके लिअेही गद्दारी करते हैं। मंथरा वैसीही थी। कुछ नेकनाम गद्दार अपने पक्षकी कुरीतियों-दुर्नीतियों और अत्याचारोंको पसन्द न कर विपक्षियोंको अपने सारे भट्ठे बता देते हैं। विभीषण अिसी प्रकारके भेदिये थे।

कहनेका मतलब यह है कि वास्तविक गद्दारभी वही है जो अपने राष्ट्र, जाति, और समाज-देशके हितोंका गला घोंट दे, जो अपना अुल्लू सीधा करनेके लिअे अपने स्वजन-प्रियजनोंको धोखा दे, और जो केवल मजा लेनेके लिअे दो पक्षोंको भिडा दे।

[कलकत्ता।

जुम्मा भिश्ती

श्री 'धूमकेतु'

['धूमकेतु' गुजरातके श्रेष्ठ कहानीकार — कहानी संसारके स्रष्टा हैं। भावात्मक मर्मस्पर्शी शैलीमें आधुनिक कहानियोंका सूत्रपात अिन्होंने किया — राजनैतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक सभी प्रकारकी कहानियोंका। अुनकी दर्जनों कहानियोंके अनेक भाषाओंमें अनुवाद हुअे। अुनकी 'पोस्ट ऑफिस' कहानी बड़ी ही हृदयस्पर्शी मानी गयी है। अेक सिद्धहस्त सफल अुपन्यासकार हैं वे और निबंधकार भी। धूमकेतुकी 'जुम्मा भिश्ती' अेक दर्दभरी छोटी-सी कहानी है। कलाकारने अपने भिश्ती और अुसके जीवन साथी प्यारे भैंसेके सच्चे प्रेमको बड़े मार्मिक तथा कलात्मक ढंगसे सभी देशों और सभी कालोंके लिअे अमर बना दिया है। — सं]

आनन्दपुर गाँवके अुस छोरपर अेक कोनेमें नान झोपड़ियाँ चलते फिरते राहगीरोंका ध्यान अपनी ओर खींचती थीं। पुराने अूँचे-अूँचे घने अिमलीके वृक्षोंकी झुरमुट छाया अुनपर पड़ती थी। पासहीमें गन्दी गटर दुर्गंधको चारों ओर फैलाती और कभी कभी तेज हवा धूलके गुब्बारे अुड़ाती। बरसोंसे बमरम्मत झोपड़ियोंकी खिड़कियाँ हवाके थपेड़े खातीं — जो फटे पुराने टाटके टुकड़ों और पुराने बाँसकी खपच्चियोंसे बनी हुअी हमेशा खुली रहतीं।

अन्दर अेक टूटी हुअी पुरानी चारपाईपर बैठा हुआ जुम्मा भिश्ती अपना हुक्का गुड़गुड़ाया करता। दुनियाके बदलते रंग देखे थे अुसने। सोने चाँदीके बरतनोंसे लेकर टूटी फूटी हँडिया तकके दिन देखे थे। अपनी बचपनकी यादके घनी माता पिताके लाड़-प्यारके वे दिन अुसे याद थे। हुक्का गुड़गुड़ाते वह सोच रहा था अुन दिनोंकी बातें जब वह झूमते हाथीपर बैठकर शादीमें दुलहिन लेने ससुराल गया था। और आज?

शौकके लिअे अुभरती जवानीमें जुम्माने अेक भैंसा पाला था। दहेजमें मिली हुअी वस्तुओंमेंसे वह अेक था। वह अुसे वेणु कहकर पुकारता था।

दुनिया कितनी अूँची चढ़ी और कितनी नीचे गिरी, आज सिर्फ दो जीव ही बचे थे — जुम्मा और वेणु, दो जीवन-साथी — पक्की दोस्तीके नमूने। हाँ, वेणुका नाम कुछ विचित्र जरूर लगता, पर जब लक्ष्मी और यौवन जुम्मापर प्रसन्न थे, कभी दोस्त थे अुसके। दोस्तोंमें अेक साहित्य रसिक हिन्दू मित्रने भैंसेका नाम 'वेणु' रख दिया था और जुम्माने अुसे अपना लिया था।

जुम्मा आज गरीब है। अुसके पास सिर्फ बचे हैं ये खाट और अुसका हमसाया साथी वेणु।

अेक खाँपड़ेमें वेणु बाँधा जाता। बीचके द्वारसे जुम्मा अपने वेणुसे बात करता और हुक्का गुड़गुड़ाया करता। तीसरे झाँपड़ेमें घास भरी रहती।

अुसके अनेक मित्र, संगी-साथी आये और गये, पर अिन दोनोंकी दोस्ती अखण्डित बनी रही।

* * *

रोजका कार्यक्रम। दिन निकलते ही जुम्मा वेणुकी पीठपर मशक रखकर अपने गाहकोंके घरोंमें पानी भरने चल देता। भैंसेके गलेमें बँधी हुअी घण्टी बजने लगती। जुम्मा पीछे पीछे अलाप भरते, गजल गीत गाता हुआ चलता। दोपहर तक वह अपने झाँपड़ेमें लौट आता। लौटते समय वह अेक-दो पैसेका गाजर मूलीका साग अपने लिअे और घासका भारी गट्ठा अपने वेणुके लिअे बाजारसे ले आता। यही था अुसका रोजका काम और यही था रोजका बाजार।

दोपहरसे शामतक वह अपने झोंपड़ेमें बैठा हुक्का गुड़गुड़ाया करता और हुक्केके संगीतमें लीन वेणु अपने कर्ण-संचालनसे ताल दिया करता और आँखें

मूदे या खोले पडा रहता। दोनों अेक दूसरेसे, मानो मूक भाषामें बातें किया करते।

सध्या होते ही दोनों दोस्त नदीके किनारे घूमने जाते। कभी-कभी अिच्छा हुअी तो भिनसारे ही हवा-खोरीको चल निकलते।

अेक दिन बहुत सबेरे, पाँच बजे दोनों घूमनेके लिअे चल निकले। जुम्माने सोचा, अिस ठडी वेलामें, वेणु कुछ चरकर पट भर ले तो अच्छा। पर यह बात वेणुको पसद न आयी। घूमने जाते समय राहमें कुछ खाना भले मानुसोंका लक्षण थोडे ही है! अत वेणुने स्पष्ट अिनकार कर दिया।

थोडी देर बाद जुम्मा वेणुसे बोला-'चल भैया' अब तो घूम लिये घर जाकर, कुछ खा-पीकर, अपने कामपर चले।

अुसकी अिस विनयपर खुश होकर वेणुने हुकार किया, अपनी पूँछ पीठपर पछाडी, और जुम्माके सामने देख, कान फटकार, आनन्दसे दौडने लगा।

"अरे कहाँ दौडा जा रहा है? दौडनेकी क्या जरूरत है?" जुम्माने कहा, पर वेणुने अुसकी न सुनी। वह दौडा चला जा रहा था। सामने ही बी बी अेण्ड सी आअी रेल्वेकी लाअिन थी। वह रेलकी पातोंके अूपर दौड रहा था कि अगली लाअिनके जोडके बीच अुसका पैर फँस गया और वह ठोकर खाकर वहीं गिर पडा। फिर वह फँसे पैरको निकालनेकी कोशिश करने लगा। पर ज्यों-ज्यों वह पैर निकालनेकी कोशिश करता था, त्यों त्यों अुसका पैर ज्यादा फँसता जाता था। जुम्माने दूरसे यह देखा और वह पागलकी भाँति दौडा। 'या खुदा! यह क्या हो गया!!' वह बोला और वेणुके पास बैठकर अुसका पैर खींच अुसे रेल-पातोंमेंसे निकालनेकी कोशिश करने लगा।

कुछ-कुछ अुजेला होने लगा था। सामनेसे सैर-सपाटेके शौकीन दो नौजवान घूमते आ रहे थे, जिनके अेक हाथमें छडी थी जिसे वे घुमा रहे थे। दूसरेमें थी टोपी, जो सिरपरसे अुतारकर हाथमें रख ली थी, ताकि ठडी हवा खोपडीको लगे और दिमाग तक पहुँच जाअे। जुम्मा दौडा अुनके पास। बोला—

"सुनिअे, भाअी साहब! मेरा, मेरा, वेणु.. फँस गया है, रेलमें कट जाअेगा। देखिअे, देखिअे।"

दोनोंने अुस ओर दृष्टिदान करनेकी कृपा की। देखा, कोअी काली-काली चीज तडप रही है।

"पर है क्या?"

"मेरा वेण—मेरा पाडा"

"ओह! दौड, दौड, फाटकवालेके पास। यहाँ क्या खडा है?"

"भैया। कुछ मदद करो, हाथका सहारा दो तो अुसे निकाल लूँ। वह बच जाअेगा।"

"मदद? हम? अरे बेवकूफ दौडकर फाटक-वालेके पास जा। दौड, दौड।" और यों परअुपकारका अुपदेश देकर वे आगे हवाखोरीको चल दिये।

जुम्मा फाटकवालेकी ओर दौडा। घरके अंदर चक्की चल रही थी, अुसकी घरघर ध्वनिमें किसीने अुत्तर नहीं दिया। दूरसे गाडीकी व्हिसिल सुनायी दी। निराशाभरी दृष्टिसे जुम्माने चारों ओर देखा। कोअी दिखायी नहीं दिया। वह सिगनलकी ओर दौडा। वह साँकल खोलने लगा और जोरोंसे चिल्लाने लगा। पर चक्कीकी घरघराहटने अुसकी आवाज ही दबा दी। कोअी न आया। वह फिरसे किवाडकी ओर लपका और लातें लगाकर कहने लगा।

"अरे बहन, देखो, सुनो, सिगनल अूँचा करो, मेरा वेणु कट जाअेगा।"

"घरपर कोअी मरद नहीं है," लापरवाही भरा अुत्तर मिला, और फिर चाकी चलने लगी।

अब गाडी बहुत नजदीक आ चुकी थी। अेक बार वह फिर चीख मारकर पुकार अुठा—

"अरे कोअी दौडो, दौडो मेरा वेणु कट जाअेगा। अरे बचाओ, बचाओ।" पर अुसकी आवाज, अुसीकी प्रतिध्वनिमें डूब गयी।

जुम्मान आकाशकी ओर देखा। आकाशका अनिम तारा डूबनेको था। तारा और जुम्मा [illegible] था। [illegible] नज़दीक आ रही थी। जुम्मान [illegible] और [illegible] और चिल्लाया या परवरदिगार

फिर वह बछड़ेकी ओर [illegible]।

बछड़ा पहाड़ [illegible] थक गया था [illegible] था। जुम्मा उसके पास जाकर [illegible] गया, उसका [illegible] लगा और बोला—

[illegible] भैया मेरे बछड़े! हम [illegible] हैं और [illegible] और जुम्मा [illegible] भी [illegible] गया।

[illegible] आया। मौत नज़दीक आ रही थी। जुम्मान [illegible] था। [illegible] भी मौतका [illegible]। [illegible] अपनी [illegible] लाया [illegible] और [illegible] जुम्माको [illegible] पानीने [illegible] लिया। दूसरे क्षण [illegible] बछड़ेपर गिर गया। [illegible] और [illegible] जुम्माने अपनाका [illegible] लिया।

जब जुम्मा होशमें आया तो [illegible] बछड़ा [illegible] हैं। उसका कहीं नामोनिशान न था।

आज भी [illegible] जुम्मा [illegible] और [illegible] हालतमें [illegible] आता है और [illegible] बिलखकर चिल्लाता है—

या अल्लाह! बछड़े बछड़े बछड़े! और फिर [illegible] आता है।

(गुजरातीसे अनुवादक: श्री [illegible])

मैं पागल, प्राण लुटा आया

श्री विद्याधर द्विवेदी 'विज'

दुनियाने केवल प्यार माँगा
मैं पागल प्राण लुटा आया ॥
मनका था सूना सूना था,
सपनोंमें सौरभ सजा था
प्राणोंकी [illegible]
[illegible] यौवन भूला था,
तब ठेस लगी मनमें [illegible]
भर गये सुरभित [illegible]
[illegible] आँखोंमें
दुनियाँका गान लुटा आया ॥
दुनियाने केवल प्यार माँगा,
मैं पागल प्राण लुटा आया।
फिर [illegible] आये
पग थके [illegible]
मन [illegible] गया [illegible]

आँखोंमें [illegible] भर आये
तब मैंने मन पहचान लिया
[illegible] दुखमें डूबा भी
दुनियाका गान लुटा आया ॥
दुनियाने केवल प्यार माँगा
मैं पागल, प्राण लुटा आया।
मुझसे [illegible] माँग लिया
[illegible] मान लिया
फिर भी जब दुनियावालोंने
[illegible] माँग लिया
तब [illegible] बेचारा मैं
अपनी मंजिलमें हारा मैं
असहाय पड़े [illegible]
पथका आह्वान लुटा आया ॥

[गोरखपुर]

तक्कयागप्परणी

: श्री ति. शेषाद्रि, अेम. अे. :

तमिल भाषाके साहित्यका वह भागभी काफी लंबा है जो अनुमानका विषय न रहकर प्रत्यक्ष अुपलब्ध है। लगभग ढाओी–तीन हजार सालोंका साहित्य है वह।

अिस साहित्यमें आरम्भसे ही अेक प्रवृत्ति साफ दृष्टिगोचर हो रही है। वह है सामञ्जस्यकी प्रवृत्ति, विषयके लिअे गंभीर तथा सनातन सत्य चुननेकी प्रवृत्ति; भावोंमें विशालता तथा विराटता लानेकी प्रवृत्ति, जिससे भारतीय विचारोंकी वह सबपन विलक्षणता अक्षुण्ण रहे। स्पष्ट रूपसे कहें तो तमिलके साहित्य-स्रष्टाओंने लगातार यही कोशिश की कि साहित्यमें वह सर्वग्राही विशालता बनी रहे, ताकि देशवासी अुसे अपना सकें। शायद अुन्होंने सनातन सत्यमें विभिन्नता नहीं देखी। सत्यका अेक ही रूप हो सकता था।

शुरूमें शायद तमिल साहित्य अपनी विशिष्टता तथा विलक्षणता अधिक लिये हुअे था। लेकिन धीरे-धीरे दसवीं सदीतक–जिस कालको मैं काव्यकाल कहना चाहूँगा–साहित्य सिर्फ तमिलनाडका न रहकर भारतीय बन गया। मतलब यह कि अुनका बाहरी रूप तथा वेशभूषा तमिलका अपना रहा, अुसकी आत्मा पूर्ण भारतीय हो गयी।

कम्बनकी रामायण अेक अैसी कृति है। अगर अुत्तर भारतके लोग नाम सुनकर समझ लें कि रामायण अुत्तर भारतकी कहानी है, कम्बनकी रामायण अुसका अनुवाद होगा, तो यह भ्रम है। कम्बनकी रामायण पढ़िअे तो पता चलेगा कि रामकथाने तमिल भाषाका आवरण तथा तमिलनाडका वास पाकर कितना सुन्दर रूप धारण कर लिया है। यह तमिलवासियोंकी विशेषता थी कि वे तोता कहींसे पकड़ लाये लेकिन अुसके लिअे अपना पिंजरा अपने ढंगसे तैयार किया तथा अुसे अपनी बोली सिखा दी। सरयूने कावेरीका रूप धारण कर लिया, राम ठेठ तमिलवाले बन गये, स्वयं अयोध्या नगरीभी चोळ राजाकी कोओी सुन्दर पुरी बन गयी। काव्य-शैली तमिलकी परिपाटीमें सांचेमें ढल गयी।

यह प्रयास स्तुत्य है। लेकिन अगर अुत्तरभारत-वाले यह समझते हैं कि देखो तमिल भाषामें मौलिकता नहीं रही तो दक्षिण भारतवाले अपनी परंपराको खोते लगते हैं और अपनी अलग खड़े होनेकी क्षमताके प्रद-र्शनके लिअे छटपटाते हैं। अिसीलिअे तमिलनाडके विद्वान दूरदर्शी लोग चाहते हैं कि यह परंपरा जारी रखनेका प्रयास दोनों ओरसे सक्रिय रहे।

खैर, अुसी परंपरा लड़ीकी अेक सुंदर मणिसे परि-चय करानेका ही मेरा अिस लेखसे अुद्देश्य है। पाठकोंको अेक नवीन चीज मिलेगी, जो नवीन होते हुअे भी बिल्कुल अपरिचित नहीं रहेगी यानी "अेक परिचित नवीनता" का रसास्वाद मिलेगा।

अिस ग्रंथका नाम "तक्कयागप्परणी" है। नाममेंही आप अिस विचित्र सामञ्जस्यका अुदाहरण लीजिअे। यह शुद्ध संस्कृतके 'दक्षयज्ञ भरणी' का साफ तमिल रूप है (विकृत रूप नहीं)। जी हाँ, यह दक्षयज्ञकीही कहानी है जिसे स्वयं तुलसीदासजीने बड़े चावके साथ रामचरित-मानसमें बखाना है। लेकिन अिस ग्रंथमें वह कहानी अिस ढंगसे कही गयी है अुसमें कलासौष्ठव है; और अुस कहानीकी पेटीके अंदर जितनेही भावमणि बटोरकर रखे गये हैं, अुनीमें चम-त्कार है।

कवि

अिसके प्रणेता कवि ओट्टक्कूत्तर है। 'कूत्तर' नटराजका तमिल नाम है, कूत्तर कम्बनके समकालीन

कवि माने जाते हैं। कूत्तर मुदलियार जातिके थे। अुनमें तथा तत्कालीन प्रसिद्ध कवियोंमें बड़ी भयंकर होड़ थी। वे बड़े साहसी कवि थे तथा वीर हृदय रखते थे। असमर्थ कवि अुनके सामने टिकही नहीं सकते थे। अलंकारिक अर्थमें ही नहीं, बल्कि यथार्थमें ही अुनके प्रतिद्वन्द्वीका नाश निश्चित था, अगर वह कम प्रतिभावाला तथा कमजोर रहकर भी होड़ लगानेका दुस्साहस करे। वे तीन चोळ (Chola) राजाओंके आश्रयमें रहे।

अिस कविके बारेमें यह जनश्रुति प्रसिद्ध है। चोळ राजाका विवाह पाड्य राजकुमारीसे हुआ था। अेक दिन किसी कारणवश पति-पत्नीमें मनमुटाव हो गया। रानी अपने कमरेके अंदर गयी और किवाड़की चटखनी अंदरसे चढ़ा ली। राजाने कूत्तरको रानीके पास अुन्हें शांत करनेके लिअे भेजा। कूत्तरने जाकर अेक पद्य सुनाया। लेकिन रानीने अुसे सुनातक नहीं, ओट्टक्कूत्तन पाट्टुक्कु रेट्टै ताप्पाळ (ओट्टक्कूत्तनके पद्यके जवाबमें दो चटखनियाँ) कहकर दूसरी चटखनी भी चढ़ा ली।

रानी जब पतिगृह आयी थी तब पाड्यराजाने अपने दरबारी कवि पुगऴेंदिको, जो प्रसिद्ध 'नळवेण्बा' (नलदमयन्तीकी कहानी) के प्रणेता हैं, अपनी पुत्रीको साथ कर दिया था। तब वे वहीं थे। चोळराजाने अुन पुगऴेंदिको अपनी रानीके क्रोधको शांत करनेके लिअे भेजा। पुगऴेंदिने जाकर अेक पद्य सुनाया तो रानी किवाड़ खोलकर बाहर आ गयी। पुगऴेंदि तथा ओट्टक्कूत्तरमें पहले ही हुअी होड़की भावनामें अिस घटनाने आगमें घीका काम कर दिया। तो भी अेक दूसरेकी प्रशंसा अुनके कालासे दूर रहकर दोनोंने की।

कूत्तर तमिल तथा संस्कृत दोनों भाषाओंके प्रकांड पंडित थे। अुनके काव्योंके अध्ययनसे पता चलता है कि अुनका साहित्य तथा शास्त्रज्ञान कितना गहरा था। संस्कृतके शब्दोंके तद्भव तथा तत्सम दोनों रूपोंके प्रयोगको वे कभी तमिलके हितका बाधक नहीं मानते थे।

मालूम पड़ता है कि वे "श्यामलाकी अुपासना" के शास्त्रके भी ज्ञाता थे, और देवीके अुपासक थे। अुनको "कवि राक्षसकी अुपाधि" अिसलिअे मिली कि वे देवीके साहसपूर्ण अुपासक थे। अब भी यहाँ जिनको यक्षिणी या दुर्गा आदि देवियाँ अिष्ट हैं, वे भयमिश्रित सम्मानके साथ देखे जाते हैं।

जहाँ कूत्तरके प्रेमियोंने कविराक्षसका संबोधन कर अुनकी साहसपूर्ण प्रकृति तथा कविताके क्षेत्रमें अुनकी निःसंकोच तथा निडर गतिका सम्मान किया, वहाँ कविचक्रवर्ती या सिर्फ चक्रवर्तीकी अुपाधिसे भूषित कर अुनके साहित्यके पसन्द करनेवालोंने अुनकी अद्वितीयताका अभिनन्दन किया।

अुनका काव्य सचमुच अेक सुन्दर साहसपूर्ण कला-योजना है। अुनकी कल्पना कल्पनातीत लोकोंकी नाप जाती है, अैसी कल्पनाअें जो कमजोर दिलोंको अेकदम कँपा देगी। रातके वक्त कोअी अुनके भूतगणोंसे परिचय प्राप्त कर ले तो अुस रातको अुसकी नींद हराम हो जाअे।

वर्णनोंमें आपको लोकोत्तर विचित्र वातावरण बनानेमें प्रशंसनीय दक्षता प्राप्त है। अिस वजहसे अुनको "कौडप्पुलवर" (शायद गूढ कविका रूप हो) की अुपाधि अुपलब्ध थी।

राजाने जिनको "कालम"* आदि भेंजकर सम्मानित किया था, अतः अुनको "कालप्पुलवर" भी कहा जाता है।

ओट्टक्कूत्तरके काव्यको समझनेके लिअे आपको शास्त्रका गहरा ज्ञान, तीक्ष्ण बुद्धि, निरलस मन तथा कविका साथ न छोड़नेवाली कल्पना शक्ति अिन सबकी आवश्यकता पड़ेगी। अुसका अध्ययन कर लीजिअे। आप भी अेक प्रकांड पंडित बन जाअें।

भरणी

जैसे नामसे जाना जा सकता है, अिस काव्य-ग्रंथमें दक्षयज्ञकी कथा भरणी रीतिसे रची गयी है। तमिल साहित्यके लक्षण ग्रंथोंमें प्रबंध रचनाकी ९६ रीतियाँ प्रचलित हैं। जिनमें भरणी विधि भी अेक है। अुस

*(शहनाअीके समान अेक बाजा जो समाधारीके भ्रमणपर निकलनेके समय बजाया जाता है।)

रीतिकी रचनाकी विशेषतायें मुख्यतः ये हैं— अिसमें किसी प्रसिद्ध युद्धका वर्णन किया जाता है। युद्धके विजयी वीरको नायक बनाकर यह रचा जाता है। कभी-कभी आचार्य या कोअी देवता भी काव्यनायक बनाये जा सकते हैं।

अिस काव्यमें प्रधानतया, औीश्वर-वन्दना, कडै-तिरप्पु (द्वार खोलना), दुर्गाको भेंट चढाना आदि अंग होते हैं। (अिनका सविस्तर वर्णन आगे किया जाअेगा)।

यह क्यों भरणी कही गयी? अिसके भी विशेष कारण है। भरणी नामक नक्षत्रके बाद ही अिसका नामकरण हुआ है।

भरणीके दिनमें ही भूतगण भोजन बनाकर काली देवीका भाग लगाते हैं। भरणी दुर्गा-देवीका नक्षत्र है तथा यमराजका भी। अिस तरहके काव्यमें दुर्गादेवीका वर्णन, दुर्गादेवीके भोजनका वर्णन तथा यमराजके कार्य विस्तारका वर्णन अवश्य रहता है। अिस कारण अिस प्रबंधका नाम भरणी पडा।

भरणी नक्षत्र विजयका सूचक भी है। तमिलमें यह मसल मशहूर है भरणीका जात-धरणीका राजा। किसी वीर विजयीकी यह कथा है, अतः अिसका नाम भरणी हुआ है।

दक्ष-यज्ञ भरणी

अिस रीतिकी और अेक विशेषता है कि अिस प्रबंधके शीर्षमें हारे हुअेका नाम जुडा रहता है। कथाके अनुसार दक्षप्रजापतिके मन्त्राजनित घमंडको तोडकर, अुनकी अनधिकार चेष्टा, अनीति सम्मत कार्य तथा अुद्दंडताकी सजा दी जाती है। अतः दक्षका नाम ही शीर्षक है। असलमें वीरभद्रदेवने दक्षका ही नहीं दक्षके सहायक देवोंका भी गर्व जरूर तोडा था, बल्कि अुनका नाश भी कर दिया था। तो भी अिनका नाम 'वीरभद्र भरणी' नहीं रखा गया।

अन्य प्रसिद्ध भरणियोंमें कलिंगत्तुभरणी, हिरण्य-वदैप्परणी, मोहवदैप्परणी आदि अुल्लेखनीय हैं। अब अिस काव्य विषयका अध्यायवार मर्मरूपमें देखिये —

१ औीश्वर वन्दना। अिसमें क्रमशः अुमापति, गणनायक (विघ्नहर) मुरुगन (सुब्रह्मण्य) आदि देवों की वन्दनाके साथ श्री ज्ञानसंबंधकी भी महिमा गायी गयी है। ज्ञानसंबंध शैव भक्तोंमें प्रसिद्ध चार सन्तोंमें बहुत प्रसिद्ध बाल सन्त हैं। अुनका नाम अिसलिअे चिर-स्मरणीय है कि अुन्होंने शैवमतकी स्थापनाकर, अुसे दृढ किया। अुनके तेवारम (औीश्वर-भजन) तमिलनाडके शैवोंके कण्ठाभरण हैं और मन्दिरोंमें श्रद्धाके साथ पूजा-अर्चनाके समय गाये जाते हैं। अुनकी जैनोंके साथ जो मुठभेड हुअी अुसका वर्णन अिसी भरणीके अंतर्गत किया जाता है।

अिस अध्यायका आखिरी पद्य है:—

"अिरै वाळि तरैवाळि, अियल वाळि, अिशै वाळिअे।

मरै वाळि, मनु वाळि, मदि वाळि, रवि वाळि, मळै वाळिअे।"

क्रमशः औीश्वर, भूमि, रचयाशक्ति, चरित्र, यश, वेद, मनु नायक, चोळ राजा, चंद्र, सूर्य, वर्षा सब चिर-जीवी हों।

२. अिसके बाद दूसरा अध्याय "कडैतिरप्पु" है। अिसमें कअी देवियोंसे द्वार खोलनेकी प्रार्थना की जाती है। यह भाग अिस ग्रंथका विशिष्ट भाग है तथा कोमल भावोंसे पुष्ट होनेके कारण सबसे रसवान् भी। शायद *अिसका आशय है कि देवियोंकी कृपासे कविताका द्वार खुलेगा।*

यह भाग सरस्वतीदेवी तथा लक्ष्मीदेवीसे की गयी प्रार्थनाके साथ शुरू होता है। क्रमशः सुर स्त्रियाँ, जलदेवियाँ, पर्वतकुमारियाँ, वनदेवियाँ तथा नगरवासिनी-देवियाँ संबोधित की जाती हैं। अुनमेंसे दो-अेक पद्य देखिये —

> मुरहु मुरुरियरुण्डन अुण्युण्डन योयुग।
> निरहु कुळलर मेंगयर तिरमिन् कडै तिरमिन।

अिसमें अुन सुरबालाओंको संबोधित किया जाता है, जो स्नान करनेके बाद अपनी केश राशिको अुमेंठकर अुनसे पानी निकाल रही हैं। बेचारियोंका पता नहीं

कि जिन वेशोंको श्रेठ रहा है, अुनके अन्दर सिर्फ पानी नहीं है, बल्कि देव युवकोंकी जानें तथा स्मृतिया भी है। अुनके वेशोंने देखनेवाले युवकोंकी जान तथा सुख समेट रखी थी। अब वह भी श्रेठन सा रही है।

दूसरा अेक पद्य लीजिअे —

अरनुमेनें अमिय बरु मुण्डरन
अजि नजु - अमुदमु मुडन् ।
तिरै महोदधियै बिड विरुन्देय
दैव मादर् वडे तिरमिनो ।

समुद्रमें विष तथा अमृत छिपे रूपमें विद्यमान हैं। यह सबको मालूम है। पौराणिक कथाअें बताती हैं कि विषके मरदार शिवजी हैं तथा अमृतके देव। अपने दुश्मनोंसे डरकर अमृत तथा विष अिन सुन्दरियोंमें शरण पा गये हैं। अुनसे पद्यकहता है— "अैसी सुन्दरियो, खिवाड खोलो।"

टीकाकारने समझनेमें सहायता देनेके लिअे विषको अुनकी आंखोंमें तथा अमृतको कुचोंमें छिपा हुआ बतलाया है। विज्ञ तथा रसिक पाठकगण कल्पना तथा अपने-अपने अनुभवके आधारपर अिसका अर्थ-गांभीर्य समझ लें।

तदनन्तर (३) दुर्गापरमेश्वरीका वासस्थान-श्मशानका भयंकर वर्णन होता है। वहां कालमुख भैरव आदि घूमते हैं। पिशाचगण भूतगण आदि भी अपने भयंकर रूप लिये विचर रहे हैं। रविके घोडे भी अुस ओरसे जाते डरते हैं। फिर मयावा क्या पूछना। कटीले झाडोंको छोडकर वहां कोअी और चीज नहीं अुगती। "Ancient Mariner" पुरातन समुद्र-यात्रीके जहाजोंके समान रेखा रूपोंमें भूत दिखायी देते हैं। भूतोंका शोर तथा मृतकोंके साथ बजते आनेवाले भयंकर बाजोंकी आवाजें अितनी तुमुल हैं कि दवोंके कान भी फट जाते हैं।

जिस पृष्ठ भूमिमें (४) दुर्गादेवीका वर्णन होता है। मरकत-वर्णा देवीका वर्णन आपादमस्तक किया गया है। अुनकी सन्निधिमें बहुत अुपासक हैं जो होम आदि विधिसे अुस देवीका प्रसाद पानेके लिअे सतत अुद्यत हैं।

जिस भागमें श्यामला देवीकी अुपासनाके शास्त्रका सम्यक् ज्ञान मिलता है। जिस भागका आखिरी पद्य यह है —

अडिच्चूट्टु नूपुरमो ? वारणमलर्नतुमे
मुडिच्चूट्टु मुल्लैयो ? मुकुन्दु मुल्लैये ।

पादवल्य वे क्या नूपुर हैं ? नहीं, वे अनन्त वेदोंके सहस्रों मन्त्र हैं। शिरहार क्या वह चमेली लता है ? नहीं, सतीत्वकी लता है। चमेलीकी लता सतीत्वका प्रतीक मानी जाती है। और अुमादेवी सतियोंकी सिर ताज हैं। देवीका श्रद्धाके साथ वर्णन पूरा करनेके बाद (५) पिशाचगणमें परिचय दिया जाता है। जिसमें पिशाचोंके रूप और अुनकी सर्वभक्षिणी तथा भद्दय भूखका वर्णन मिलता है।

आकाशके छू जानेसे तथा आकाशमें और भी अूंचा होनेकी शक्तिके न होनेकी वजहसे नाटे हुअे पिशाच, तथा दिगन्तकी तगीकी वजहसे पतले हुअे पिशाचके दांत अगर किवाडका काम नहीं करते तो शायद पेटकी भूख मुखके द्वारसे बाहर निकलकर सारे विश्वको निगल जाती। अुनके हाथ अितने लम्बे हैं कि सारे समुद्रोंकी चौडाअी तक पहुंच जाते, तथा अितने बडे कि सारे अिक्षुसमुद्र तथा मधुसमुद्रको अेक ही चुल्लूमें लेकर पी जाते। अिनकी भूखको क्या कहा जाअे! (६) अिनकी अधिनायकी देवीके मंदिरका वर्णन बादको होता है।

यह अंश बहुत ही श्रेष्ठ है, क्योंकि जिसमें ज्ञान-स्वरूपी धर्म विजयकी कहानी सरस्वती देवीके मुखसे कहलायी गयी है। वस्तुतः, देवीकी मैरवोंका सर्ग, अुनके पद्यायुधके वर्णनके बाद देवीके दरबारका वर्णन होता है। देवी नारायणकी बहन समझी जाती है तथा मूल देवी। शिवजीकी पत्नी तथा नारायणकी पत्नी भी अिनके ही अंश हैं। श्यामला शास्त्रमें यही सबमें अुच्च-परब्रह्म समझी जाती हैं।

अुनकी सेवामें सप्तमाताअें, स्वयं लक्ष्मी देवी, भूदेवी तथा सरस्वती देवी विद्यमान हैं। देवीकी कृपा दृष्टि सरस्वती देवीपर पड जाती है और देवी कहती

है—वल्लीके (Valli) प्रेमी, मेरे पुत्रकी वह कथा गाओ जिसमें अुसने अपने प्रतिस्पर्धियोंपर विजय पायी थी।

तिरुज्ञानसंबध मुरुगनके अवतार माने जाते हैं। सरस्वती देवीने कथा सुनायी, जिसका सार यों हैः—

ज्ञानसंबध मधुरा नगरीकी दयनीय स्थितिका पता पाकर मधुरा जाये। नगरकी चहारदीवारीके बाहर अेक मठमें विराज रहे थे। विरोधियोंको जिसका ज्ञान मिला तो अुन्होंने अुसमें आग लगा दी। ज्ञानसंबधने अपनी योग-शक्तिसे अुस आगको आज्ञा दी कि तुम पाड्य राजाके शरीरको ताप बन जाओ। पाड्य राजा, जो कून पाड्यनो कहलाता था (अपनी कुब्जता के कारण) ज्वरसे पीड़ित हो गया। बहुत अुपचार किये, पर कोअी लाभ नहीं हुआ। तब मन्त्री कुल्घिरैयार तथा रानी मंगैयर्करशी (नारीमें रानी) ने राजासे प्रार्थना की कि ज्ञानसंबध बुलाये जायें। ज्ञानसंबध आये तथा अुनको अुच्चपीठपर बिठाया गया। अुनके विरोधियोंने अीर्ष्यावश आरोप लगाया—"यह पाड्य राजा विरोधी चोळराजाके राज्यका बाल्क है; वह भी शैव बालक। जिसका यहाँ आनाही दुस्साहस है। और राजाके ज्वरको दूर करनेका प्रयास वृथा है।" लेकिन मन्त्रीने अुनको चुप कराया। तथा बालमन ज्ञानसंबधसे प्रार्थना की कि आप राजाको ज्वरपीड़ासे मुक्त कीजिये। ज्ञानसंबधने राजाके शरीरपर विभूति लगायी और राजा स्वस्थ हो गया। राजाने अुठकर बालकका स्वागत किया। विरोधियोंका मन अीर्ष्यासे राख हो रहा था। विरोधियोंने वेमतलबकी बातें कहीं। राजाने कहा, जिस ज्वरकी चिकित्सा आप नहीं कर सके वह ज्वर अिनकी विभूतिके कारण दूर हो गया। तब मैं क्यों न अिनकी वन्दना करूँ?

तब विरोधियोंने शर्त लगायी कि हम दोनों अपने-अपने मन्त्र ताड़के पत्तोंपर लिखेंगे। जिसका पत्र आगमें नहीं जलेगा तथा वैगै नदीमें पानीकी धाराके विपरीत दिशामें बहेगा वे विजयी माने जायें। हारे हुअे स्वयं शूलीपर चढ़ेंगे। तथास्तु कहा गया। रानी बालक ज्ञानसंबधके मुखको देखकर शंकाकुल हुअी। तब बालसन्तने कहा, देवी चिन्ता मत कीजिये:—

"अग्नि हमारी है। अुसी अग्निकी शक्तिसे पानी बरसता है। वर्षासे ही नदी अुत्पन्न होती है। अतः नदी भी हमारी है। फिर क्या अग्नि हमारे मन्त्रको जलायेगी? नदी ताड़पत्रको बहा ले जायेगी?"

मतलब, अग्नि तथा वरुण हमारे शिवके अधीन हैं। हमारे ही अधीन हैं। जिस तरह वीर-वचन बोलनेवाले बालकका चित्र भी देख लीजिये, लगे हाथों—

कादिर्कनगक्कुळं तिनिरलाड्
कमपं कुरुळ्मुन्दु कलन्दशैपद्
चोदित्तिरत्न नेरियलिल् नीरिलङ्ग
चुट्टिक्कलन् मीदु तुलगवुने।

कानोंमें कुंडल झूल रहे हैं। घुंघराली अलकें मुखसे मिलकर हिल रही हैं। ज्योतिर्मय ललाटपर भभूत देदीप्यमान है। अुसके अूपर "चुट्टी"* सुशोभित हो रही है।

क्या यह चित्र देखकर आपका मातृ या पितृहृदय अुस बच्चेको गोदमें अुठानेके लिअे मचल नहीं अुठता? साथ-साथ ज्योतिर्मय ललाटकी भभूतको देखकर आपका भक्त-हृदय श्रद्धासे झुक नहीं जाता? खैर, यथा-विधि स्पर्धा शुरू हुअी। ज्ञानसंबधकी जीत हुअी तथा विरोधियोंकी हार। विरोधी स्वयं शूलीपर चढ़ गये।

जिस कथाका संकेत "ओीदवरवन्दना" के अंतमें है। वहाँ ज्ञानसंबधको "स्वयं शूलीपर चढ़कर प्राण खोये विरोधियोंके समूल अुन्मूलनकी विजयी" के नामसे संबोधित किया गया है।

जिस कथा-श्रवणसे आनंदित होकर देवीने सरस्वतीको अपने सामने स्थान देकर सम्मानित किया।

तभी [७] पिताव आकर अपनी सुतका विह्वल वर्णन करने लगते हैं। कितने ही दिन हुअे

---

*"चुट्टी" झूमर-सा अेक 'आभरण' है जो बच्चोंके सिरपर अग्रभागमें लटकता रहता है।

अुनको कुछ खाये हुअे। भूख नही गही जाती। जब यह अर्ज की जा रही है तभी अेक पिशाच आता है जो दक्षयज्ञ तथा युद्ध देखकर आया हुआ है।

वह पिशाच [८] देवीसे सारी कहानी कहता है। "कालिकु कूरि कूरियदु" वे सभमें सारी कहानी विस्तारके साथ कही जाती है।

दक्षने यज्ञ शुरू किया, अन्य सभी देवताओंको निमन्त्रित किया। लेकिन पुराने विद्वेषके कारण अेक शिवजीको नहीं बुलाया। पार्वती देवीने देखा कि सभी देव जा रहे हैं। जानेकी अिच्छा जाग्रत हुअी तो अुन्होंने पतिसे अनुमति मांगी। शिवजीने कुछ आक्षेप किया तो देवीने पिताकी भूलके लिअे माफी मांगी। भविष्यद्रष्टा महेशने अनुमति दे दी।

देवी गयीं, पर स्वागत किसीकी ओरसे न हुआ। स्वयं माताने भी अनदेखी कर दी। शिवा कुपित होकर लौटीं। अुनकी परिचारिकाओंने कोप शमन करनेका प्रयास किया लेकिन कुछ लाभ नहीं हुआ। वे सीधे पतिके पास गयी और प्रार्थना करने लगीं कि पिताको अिस बेअदबीकी अुचित सजा दी जाअे। अीश्वरने सोचा, आखिर पिताकी पुत्री है क्या पता कि सजा देनेपर शिकायत करने लग जाअे। वे चुप्पी साध गये।

देवीके गुस्सेका पारा और भी चढ गया। वे पतिसे अलग हो गयी और कहीं दूर जाकर बैठ गयी। शिवजीको भी गुस्सा आ गया। अुन्होंने वीरबाहुको बुलाया और आज्ञा दी *कि जाओ यज्ञसहित दक्षका नाश कर दो और अुनके सहायक देव भी छूट न जाअें।*

वीरभद्रदेव भूतगणोंको लेकर युद्धमें गये। दक्षके दलमें विष्णु, ब्रह्मा, अिन्द्र, द्वादशादित्य, अेकादश मरुद्गण थे, समुद्र था, पर्वत थे, वायु थे।

बारी-बारीसे सबका नाश होता गया। लेकिन ब्रह्माने सबकी पुन सृष्टि कर दी। अिस युद्धके विशद तथा सजीव वर्णनके बाद हम देखते हैं कि वीरभद्रदेवने भद्रकालीकी सहायता लेकर सबका नाश कर दिया। विष्णु, दस ब्रह्मादेव आदि सब मरकर भूत बन गये।

यह प्रकरण लंबा प्रकरण है। अिसमें हमको कअी बातोंका ज्ञान होता है। हमारे आजतकके देव अिति-हासमें कितने देव हैं, अेक-अेक देवके कितने अंश हैं, अिन सबका ज्ञान अुपलब्ध होता है। अेक तरहसे देव-वंशका अितिहास पूर्णरूपेण बताया जाता है। अुनके नाम, अुनके गुण,अुनके काम,अुनकी प्रकृति सबसे हम परिचित हो जाते हैं।

दूसरी भद्रकालीके गणामें जो योगिनियाँ, डाकि-नियाँ, मोहिनियाँ आदि हैं अुनका भी परिचय हमको दिया जाता है। वीरभद्रके गणोंमें कुछ पक्षी रूपी भूत हैं। अुनके वर्णनके मिस पक्षियोंके गुणोंका भी वर्णन मिल जाता है, जैसे —

चकोरोंने चन्द्रकी अल्पवया किरणोंको चुग लिया। कबूतरोंने पवनोंको चुग लिया। कबूतर छोटे-छोटे कंकड निगल लेनेके आदी हैं। अिस स्वभावका यहाँ प्रयोग करके कविने पर्वतोंको कपोलकवलित बताया है।

मोरोंने सर्पोंको निगल लिया आदि। यह कहानी सुनकर काली पिशाचोंको लेकर युद्धके मैदानमें आती है, जहाँ—

(९) कूळ्ळुदलुम् उदुदनु (भोजन बनाकर कालीको भेंट करना)की क्रिया संपन्न होती है। वह भोजन क्या है– देवमांस हड्डियाँ तथा अन्य सामग्रियोंका पडा हुआ माड है। अिसमें बीभत्स रसका पक्का पकवान तैयार हुआ है। पिशाच भर पेट खा खा करके राजाकी जय मनाते है। जिसकी अिच्छासे यह काव्य प्रणयन हुआ। यह ओट्टक्कूत्तरके साहसका और अेक अुदाहरण है कि पिशाचगण जहाँ अुनको काव्य नायककी जय मनानी चाहिअे थी वहाँ काव्य-सहायक राजाकी जय गा दी।

यहाँ कहानीको समाप्त हो जाना चाहिअे। लेकिन यहाँ कहानी समाप्त नहीं होती।

(१०) कळ गाट्टल (मैदान दिखाना) में शिवजी पार्वती देवीको ले आकर समर-भूमि दिखाते हैं।

समर भूमिमें सभी शत्रु भूत रूपमें खडे हैं। विष्णुका भूत अुस दिनकी अुनकी छायाके समान लंबा

खडा है जिस दिन अुन्होंने त्रिविक्रमावतार लेकर ब्रह्माड को नापा था।

भूत गणोपर राज्य करनेवाला देवराजका भूत, पेटके अन्दर आग रखनेवाला वरुणका भूत, निर्जीव धूमाकार अग्निका भूत, दूसरे भूतपर सवार निर्ऋतिका भूत (निर्ऋति भूतवाहन है), यमका भूत, कहाँ तक कहे सब देव भूत विचर रहे हैं।

यह सब देखकर देवीका दुहरा कोप हवा हो गया। व अपने पतिदेवसे प्रार्थना करती हैं कि अिनको माफ कर दें तथा पूर्ववत् रूप तथा पद दिला दें।

शिवजी, अपनी पत्नीका मन रख लेते हैं। सभी देव पूर्ववत होकर शिव पार्वतीका मगल गाते हुअे चले जाते हैं। दक्ष ही अैसे थे जिनको पूर्वरूप नही मिल सका। अुनका शिरम्बर अजका सा हो जाता है। आखिरी (११) प्रकरणमें जयगान होता है। यहाँ भी राजाका ही जयगान है।

अुपसंहार

पाठकोने स्थालीपुलाक न्यायसे देखा होगा कि अिस काव्यसे कविका विविध शास्त्र-ज्ञान, साहित्याध्ययन, कवित्व-शक्ति, मौलिक प्रतिभा, अद्भुत-कल्पना अिनका पूरा ज्ञान मिलता है।

अिनके साथ-साथ कुछ विशिष्टताअें भी है, जिनकी ओर ध्यान दिये बगैर मन नही भरता। कवि अेकके बाद अेक, तीन चोळ राजाओंके आश्रयमें रह चुके है। यह बडे राज भक्त थे तथा कृतज्ञतासे भरे कवि थे। अत, अुन तीनों राजाओंपर पृथक्-पृथक् अेक "अुला" गाया है। अुला अुस रचनाका नाम है जिसमें किसी वीरका वर्णन अुनकी महिमाके साथ किया जाता है। अुसके अलावा मूवर् तुगन् पिळ्ळैत्तमिल (बाल काव्य गीत) लिखकर कुलोत्तुग राजाका सम्मान किया है। अिस भरणीमें विक्रमचोळनकी जय गायी गयी है। राजराजनका भी जय-गान यत्र-तत्र अिसीमें पाया जाता है। अिसी कृतज्ञतासे प्रेरित होकर नियमके प्रतिकूल जाते हुअे भी अुन्होंने पिशाचोके मुखसे विक्रमका ही जय-गान करवाया है। आखिरमें भी कविने स्वय अुनका ही जय गान किया है।

दूसरे, अुनकी ज्ञानसबधके प्रति अगाध श्रद्धा थी। अिसी कारण अुन्होंने सरस्वती देवीके मुखसे ज्ञान सबधकी महिमा गवायी। अिस सारी पुस्तकका नाश हो जाअे, तथा यही अेक अश बच जाअे, तो भी यही अिसकी महिमाके परिचयके लिअे पर्याप्त होगा।

अिन दोनो भावनाओंके मूलमें शिव-भक्तिका स्रोत नि सृत हो रहा है। वे कट्टर शिव-भक्त थे। अिसी कारण अुनको यह कथा पसद आयी। क्योंकि अिसमें शिवजीकी शक्तिके सामने अन्य देव नहीं ठहर सके। अिसी शिव-भक्तिके फलस्वरूप विरोधी हारकर म्रियमाण हुअे। शैवमतको पुन स्थापित करनेवाले ज्ञानसबधके प्रति अपनी श्रद्धाको तथा शैव राजा चोलनके प्रति अपनी कृतज्ञताको प्रकट करनेमें वे अितने आतुर थे कि कहीं-कहीं काव्य-लक्षणके अुल्लघनकी भी परवाह नही की।

तमिल भाषाकी प्रकृतिजन्य विशेषताओंको छोड दें तो भी अिस काव्यका हिन्दी ही नहीं, किसी भी भाषामें अनुवाद हो जाअे तो अुसके रसिक मुग्ध हुअे बिना नहीं रहेंगे—खासकर भारतके किसी भी कोनेका निवासी जो अपने पुराणोंमें आस्था रखता है अपनी धर्म मूलक देवप्रधान परपरापर सहानुभूति (कमसे कम सहानुभूति ही) रखता है, अिसे पढकर अिसीमें खो जाअेगा, अिसमें सदेह नहीं है।

यह काव्य अपनी विषयआभाकी परिचितताके कारण आकर्षक तथा अपनी नवीनताकी वजहसे रोचक सिद्ध होकर किसीको भी मोह लेगा।

[मदुरा।

जनश्रुति—असत्यपर सत्य

: श्री ब्रह्मानन्द श्रीवास्तव, अेम अे :

संभव तो नहीं है पर मान लिया जाय कि यदि अवकाशका अनंत आकाश न होता तो मनुष्य अपना मस्तक कहां रखता ?

अिस कठिन प्रश्नका सरल उत्तर यह है कि मनुष्य अपना मस्तक भी भूमिपर रखता और सब पर चलनेके अतिरिक्त ऐंठकर चलता।

आकाश क्या है ? कुछ नहीं। पर यह कुछ नहीं सबके सर चलनेके लिअे आवश्यक है।

जितना अव्यक्त और रहस्यमय है वह आकाशमें ही है। आकाश स्वयं अव्यक्त है। पर सत्यासी नीला सत्यही तो है।

हमारे जीवनके चारों ओर अैसी "कुछ नहीं" वस्तुअें घेरा डाले पड़ी हैं कि अुस घेरेके बाहर जानेसे जीवनके बाहर जाना पड़ता है।

यदि कोअी आधुनिक मनुष्य जोश और सत्यावर कहे कि पुराणकी कहानियां गलत हैं तो हिन्दू चाणक्य चुटिया हिलाकर कहेगा 'तू नास्तिक है, भ्रष्ट है, तू अधर्मी है।'

धर्म ग्रन्थोंमें कभी अैसे स्थल हैं जहां भगवानने स्वयं कुछ कहा है। जो कहा है वह जान लेनेके बाद पहली बात जो मनमें आती वह यह है कि भगवान अमुक व्यक्तिके पास गये होंगे और अपनी बात कहने लगे होंगे। अमुक व्यक्ति अुसे नोट करता गया होगा। यदि नोट न करता तो आजकी जनता क्या जानती कि भगवानने क्या कहा था।

यदि कहा जाय कि जैसे आजके कहानीकार अपने पात्रोंसे ज्ञान और दर्शनकी व्याख्या करवाते हैं, वैसे अुस समयके काव्यकारों या कहानीकारोंने भगवानसे जीवन और धर्मकी व्याख्या करवा दी तो यह निबन्ध लेखक यहां नास्तिक माना जायेगा। धर्मकी अण्डीके नीचेसे भागा हुआ आधुनिक व्यक्ति 'लाल अण्डी' का समर्थक माना जाता है। अतीतके अैसे ही व्यक्ति असुर थे।

पर यह दावेके साथ कहा जा सकता है कि अुन पुरानी बातोंसे अधिक पुराने काव्यकारोंकी कल्पनायें हैं जो साहित्य, धर्म और समाजमें घुस आयी हैं। ये केवल जनश्रुति हैं। धर्म-ग्रन्थोंमेंसे यदि दर्शन और ठोस अैतिहासिक घटनायें निकाल दी जायें तो जनश्रुति ही बचेगी।

पर अितना याद रखिअे कि ये जनश्रुतियां अुतनी दुर्बल चीज़ नहीं हैं। वे असत्य हैं पर जीवनमें सत्य बनकर आ पड़ी हैं। धर्मकी धरतीपर चलनेवाले प्रगतिका मस्तक अुसी जनश्रुति आकाशमें ही है, जो वस्तुतः है कुछ नहीं, पर अुस 'कुछ नहीं' का रहना आवश्यक है। भूगोल चन्द्रकी काली छायाको चाहे जैसा हुआ समझे माने चाहे पढ़ाअे पर धार्मिक लोग विश्वासके साथ कहते हैं कि जब चन्द्रमा मुर्गा बनकर गौतमकी पत्नी अहल्याको छलनेमें अिन्द्रकी सहायता करने गया था तब गौतमने मृग चर्मसे मुर्गारूपी चन्द्रको मारकर दागसे काला कर दिया। तभीसे मृग लाञ्छन वहां लटका है। कथाकी सत्यताका निर्णय विद्वान पाठक करें, पर सत्य अितना अवश्य है कि किसीकी पत्नीको छलनेवालेका मुंह काला होता है।

लोगोंको अतीत जितना अच्छा लगता है, वर्तमान अुतना अच्छा नहीं। अलंकार सदा अतीत सत्य बन गया और अुसी अलंकारसे मुक्त वर्तमान बुरा ही रह गया।

तुलसीदासजीने कुंभकरणके विषयमें लिखा है, "भूधराकार शरीरा।" माननेवाले आंखें मूंदकर मानते हैं कि कुंभकरणकी अूंचाअी यदि हिमालयके बराबर न रही होगी तो विन्ध्याचलके बराबर अवश्य रही होगी। और यदि आज कोअी कवि किसीको

'भूधराकार शरीर' कह दे, तो वह अधिकसे अधिक छह या सात फीट अूँचा समझा जाअेगा।

धीवरकी पुत्री मत्स्य-गन्धाकी सुगन्ध दूर तक जाती थी। अुसे योजन गन्धा भी कहा गया है। अिसका विरोध करनेवाला प्राचीन सभ्यता विरोधी और महाभारत अविश्वासी माना जाअेगा पर "जानत औप सुजाम" वाले बिहारीके अिस दोहेमें अतिशयोक्ति है।

शकुन्तलाके लाल अधरको फल समझकर पक्षी अवश्य चोंच मार सकता है पर आजकी 'चन्द्रमा' कही जानेवाली नायिका केवल 'गोरी' मानी जाअेगी।

जनश्रुतिका जन्म बेमतलबकी गप्पों और मतलबके तर्कोंसे होता है। कुछ बातें चल पड़ती हैं कुछ चला दी जाती हैं। चल पड़ती हैं किसी अनुमानके आधारपर, और चला दी जाती हैं किसी कार्य-सिद्धिके लिअे। ये न पूर्णतः सत्य होती हैं, न असत्य। सत्य अिसलिये होती हैं कि अिनका आधार शून्य नहीं होता और असत्य अिसलिअे होती हैं कि चल पड़ती हैं या चला दी जाती हैं।

वस्तु या व्यक्ति जो किसी भाँति हमारे जीवनमें आ जाते हैं अुनके जीवनका वह आवश्यक अंश जो खो गया है या छिप गया है वहाँ अुनके जीवनके किसी विशेष अंशका आधार लेकर या कोरी कल्पनाकर कुछ अनुमान कर लिया जाता है। वस्तु या व्यक्तिकी महत्ताके अनुसार अनुमान भी होता है। कभी-कभी व्यक्ति और व्यक्तित्वके अनुसार बहुत सी भ्रामक और अनर्गल बातें चल पड़ती हैं। अुन बातोंके लिअे व्यक्तित्व चाहिअे। सुन्दर व्यक्तित्व सुन्दर बात, असुन्दर व्यक्तित्व असुन्दर बात।

जनश्रुतिसे कोअी भी समाज, सम्प्रदाय, धर्म और साहित्य वंचित नहीं है। कहीं कहीं वे आत्माकी भाँति जीवन शक्ति प्रदान कर रही हैं, आत्मा अुड़ी कि शरीर निर्जीव होकर गिरा।

जनश्रुतिके आधारपर यदि सृष्टिका रचना-काल मान लें, तो यह मानना ही पड़ेगा कि अुस सृष्टिमें निर्मित धार्मिक और सामाजिक व्यवहार स्तम्भोंकी नींव बाँधनेके लिअे जनश्रुतिका मसाला जमाया गया होगा।

धर्मकी कल्पना हुअी अुसकी सीमामें सृष्टिको रखा और बिन्दुमें ब्रह्मको। ब्रह्मकी व्यापकता और अुसकी शक्तिको व्यक्त करनेके लिअे कुछ बातें चलीं। अुन बातोंका आधार वही बिन्दु है। अुस अव्यक्त शक्तिको व्यक्त करनेके लिअे कुछ अनुमान हुआ और अनुमान सत्य होते होते आगे बढ़ गया। विकसित बुद्धिने तर्कहीन समझकर अुसे गलत कहा, पर वे गलत अब भी सत्य हैं।

गौतमकी पत्नी अहल्याको ही लीजिअे। वह पतिके शापसे पाषाण हो गयी थी और रामके चरण-रज-स्पर्श मात्रसे अपना वास्तविक स्वरूप पा गयी। पाषाणको जीवित स्त्री बना देना, बुद्धि अिसे कैसे ग्रहण करे? शायद कोअी पाषाण हृदया अहल्या रही हो, जो अपने स्वभावके कारण पति-वंचिता हो गयी हो और मर्यादा पुरुषोत्तम रामके प्रभावसे सुधर गयी हो। किसीको सुधार देना ही रामको भगवान बनानेमें योग नहीं दे सकता, पर ज्यों-ज्यों राम भगवान होते गये, पाषाण-अहल्या पाषाण होती गयी।

अहल्याकी कथाको हम सादर ग्रहण करते ही हैं, क्योंकि वही भक्तोंकी शक्ति है।

जब अन्धभक्ति सत्ताकी नींव पड़ती है तब अुसके प्रचारके लिअे जनश्रुतियों द्वारा अुसका समर्थन कराया जाता है। अैसी जनश्रुतियोंका जन्म भावावेशके कारण हुआ होगा।

रावण प्रतापी था, विद्वान था और शैव था। अन्य राजाओंकी भाँति अुसमें अेक बड़ा दोष था वह कामी था। वह रामका विरोधी था और शैव था। शायद अिसलिअे वह वैष्णवोंके लिअे राक्षस था। देवताओंके शत्रु राक्षस होते ही। जिस युगमें मैसा खानेवाले राक्षस नहीं हो पाये और मनुष्योंका मांस खानेवाले कतिपय जंगली जंगली ही रह गये। दुःशासनका रक्त पीनेवाला भीम महा पराक्रमी भीम हुआ। वैष्णवोंने रावणकी किसी दुर्बलताको व्याख्या करके अुसे राक्षस करार दिया हो। वह आर्यों अथवा देवताओंका ही सम्बन्धी, शत्रु था फिर अैसे शैवको रामभक्त वैष्णव राक्षस न कहकर देवता कहते!

नारी, गौ और ब्राह्मणकी रक्षा करनेवाले रामके सामने सूपणखाकी नाक कट गयी। केवल अुसने प्रेम निवेदन किया था अिसालिअे। भगवान चाल चलायी वह राक्षसी थी सीताको मारने दौड़ी या भगवानने माया की। कैसी माया? लछिमनहू यह मरम न जाना। बात आगे न बढ़ पायी मायामें सिमिटकर घट गयी। न मालूम कितनी धार्मिक जनश्रुतियाँ मायाके पर्देमें छिपी हुअी हैं अुन्हें छुड़ा नहीं कि नास्तिककी अुपाधि मिली।

जनश्रुति चली आ रही है कि रावणने दण्डकारण्य रक्तका टैक्स लिया था और अुसी रक्तसे सीताका जन्म हुआ। पर रक्तकी होली खेलनेवाली और मस्तकका टैक्स लेनेवाली आजकी सरकार धन्य है।

राम और रावणके जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाली प्रचलित जनश्रुतियाँ यदि निकाल दी जायें तो राम अेक विजयी राजा हों और रावण राक्षस न होकर मनुष्य हो जाअे।

जनश्रुति यहाँ मापक यन्त्र बन जाती है। अच्छा कितना अच्छा हो और बुरा कितने नीचे गिराया जाअे।

कामदेवको भस्म करके भगवान शंकरने रतिको अमर सुहागका वरदान दिया। 'काम' यहाँ अेक भाव है और रति है अुस भावका कारण और निदान। यहाँ भाव और कारणका मानवीकरण किया गया है। अिसी भाँति भगवान शंकरको अिन्द्रियोंका दमन करनेवाला योगी कहा गया है।

भावोंका मानवीकरण अब प्रचुर मात्रामें होता है।

अिन्द्रके कोपसे ब्रजकी रक्षा करनेवाले भगवान श्रीकृष्णने पर्वत अुठा लिया था।

वर्षा अधिक होनेके कारण शायद बाढ़ आ गयी हो और भगवान कृष्णने सबकी रक्षा की हो। लोग काम भारके कारण अब भी कहते फिरते हैं कि सिरपर पहाड़ धरा है। किन्हीं और आलसियोंका दिन पहाड़-सा होना ही है।

[बस्ती।

कविता

शिशिरकी रात

(श्री प्रो० महेन्द्र भटनागर)

शिशिर ऋतु रात, राका रश्मियाँ चंचल!
कि फैला दिग्दिगन्तोंमें सघन कुहरा,
सजल कण कण कि मानो प्यार का सुनरा,
प्रकृति संगीत स्वर बस गूँजता अविरल!
शिशिर ऋतु रात राका रश्मियाँ चंचल!
शिथिल तरु डाल सम्पुट फूल पाँखुड़ियाँ,
रहीं चुपचाप गिर से ओसकी लड़ियाँ,
धवल हैं सब दिशाअें अमनी सुअुज्ज्वल!
शिशिर-ऋतु रात, राका रश्मियाँ चंचल!
गगनके वक्षपर कुछ टिमटिमाते हैं
सितारे जो नहीं फूले समाते हैं,
सुखद प्रत्येक अुर है नृत्यमय झलमल!
शिशिर ऋतु रात, राका रश्मियाँ चंचल!

धरा-आकाश अेकाकार आलिंगन,
प्रणयके तारपर यौवन भरा गायन,
फिसलता नीलवर्णी शून्यमें आँचल!
शिशिर ऋतु रात, राका रश्मियाँ चंचल!
विहग तरुपर अकेला मूक बैठा है,
किसीकी याद में बस हूक लेता है,
नयन प्रिय पथपर प्रतिपल बिछे निर्मल!
शिशिर ऋतु रात, राका रश्मियाँ चंचल!
सवेरा है कहाँ? संसार सब सोया,
पवन सुनसानमें बहता हुआ खोया,
अभी हैं रातके पल शेष कुछ कोमल!
शिशिर ऋतु रात, राका रश्मियाँ चंचल!

[धार।

लघुकथा

निराश्रयकी जीत

श्री राजी

समुद्रके बीच बसा हुआ अेक छोटा सा द्वीप था। कभी कभी पाससे निकलनेवाले जहाज कुछ समयके लिअे अुसके तट पर लंगर डाले रहते थे। अन जहाजोंके द्वारा अुस द्वीपके भी कुछ निवासी दूसरे द्वीपों और महाद्वीपोंमें जाकर बस गये थे और अुनमेंसे कुछ कभी कभी अिस द्वीपमें भी आकर कुछ समय रह जाते थे।

अेक बार अुस द्वीपमें असा अकाल पड़ा कि लोगोंके भूखों मरनेकी नौबत आ गयी। बाहरका जहाज भी बहुत दिनोंसे कोअी नहीं आया था। बाहरसे खाद्य सामग्री प्राप्त करने या द्वीप छोड़कर अन्यत्र जा बसनेका अुनके पास कोअी अुपाय नहीं था। अुनके पास जो छोटी छोटी नौकाअें थीं वे समुद्र पार करनेके लिअे बिलकुल बेकार थीं।

द्वीपके मुखिया लोग अिसी चिंतामें अेकत्र होकर सोच विचार कर रहे थे कि अचानक अेक युवकने अुनकी सभामें आकर कहा —

समुद्रके पार महाद्वीपमें पहुँचनेका प्रबंध मैंने कर लिया है। आप सब द्वीपके सभी निवासियों सहित मेरे साथ चलनेको तैयार हो जाअें।

अिस प्राण रक्षक समाचारके लिअे हम हृदयसे तुम्हारे कृतज्ञ हैं। क्या तुम अुसी महाद्वीपसे आये हो? तुम्हारे साथ कोअी बड़ा जहाज आया है? या तुम अनेक अधिक जहाज ला सके हो? वह महाद्वीप किस दिशामें कितना दूर है? आदि प्रश्नोंकी झड़ी अुस युवकपर बरस पड़ी।

'मेरे पास कोअी भी बड़ा जहाज नहीं है। मैं अिसी द्वीपका रहनेवाला हूँ। मैंने समुद्र पारके महाद्वीपकी कभी भी यात्रा नहीं की। मैं केवल अितना जानता हूँ कि वह अुत्तरकी ओर है फिर भी वह महाद्वीप कितना भी दूर हो मैंने अुस तक पहुँचनेका प्रबंध कर लिया है और आप सबको अपने साथ चलनेका निमंत्रण देता हूँ।' युवकने अुत्तर दिया।

जिसके पास कोअी बड़ा जल पोत नहीं, जिसने महाद्वीपकी यात्रा नहीं की और जो अुसकी दिशा भी नहीं जानता अुसके साथ लेकर हम अपनी मानी हुअी मृत्युको बुलानेमें कुछ गाफिल हो कर सकते हैं।' अुन्होंने बदले हुअे स्वरमें युवकको अुत्तर दिया और अपनी चिंतामें लग गये।

फिर भी अगले दिन जब अुस युवकने द्वीपके अुत्तरी समुद्रमें अपनी नाव खोली तब लोगोंने देखा कुछ और भी युवक अपनी अपनी नाव लेकर अुसके साथ हो गये थे। वे सभी नावें पारस्परिक समीपता और बातालापकी सुविधाके विचारसे अेक दूसरेके साथ रस्सियोंसे बंधी हुअी थीं।

तट छोड़ते ही बगबा अेक तूफान समुद्रमें अुठ खड़ा हुआ और द्वीप तटपर खड़े देखनेवालोंने अपने दूर बीक्षण यंत्रोंसे देखा कि वे नावें अेक दूसरेसे टकराकर और चपत विकल होकर समुद्रमें डूबने लगीं और कुछ ही क्षणोंमें अुत्ताल तरंगोंमें विलीन हो गयीं।

अिस भयंकर दुर्भाग्य कांडको देखकर द्वीपके लोग भरे हृदयसे अपने घरोंको लौटे।

अुस समय अुनके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही जब अुन्होंने कुछ युवकोंको अपने सामने अुपस्थित देखा। ये अुन्हींमेंसे कुछ थे जो प्रातःकाल अपनी नाव लेकर समुद्रमें अुतर गये थे और जिन्हें नौकाओंसमेत डूबते हुअे वे अपनी आँखोंसे देख चुके थे।

'समुद्रको सकुशल और निर्भयतासे पार करनेका रहस्य हमने जान लिया है। हमारी नावें जब छिन्न-भिन्न होकर डूबने लगीं तब हमारे साथीने हमें समुद्रकी अधिक-से-अधिक गहराअीमें अुतर जानेका संकेत किया। हमने तत्काल प्रयत्न किया लेकिन अधिक नावें नहीं अुतर सकीं और नावें जानेके प्रत्येक प्रयत्नमें हमें अ…

ही वपण पानीके अूपर आ फका। हमारा अनुभव है कि मनुष्य पानीमें डूबकर तभी मरता है जब वह अुसकी गहराअीमें जानसे बचना चाहता है अथवा समुद्रको मनुष्यका शरीर अपन भीतर रखना सवथा अरुचिकर है। हमारे अधिकाश साथी निश्चिन्त जलविहार पूरक अुत्तरको ओर बढ चले आ रहे ह और हम कुछ लोग बीचसे ही अिसलिअ लौट आय ह कि और भी जो लोग यहाँसे चलनका तैयार हो सकें व हमारे साथ चल। अुन युवकोंमस अकन कहा।

\+ + + + +

आगरा]

अिस कथाऽर मेरे कथागुरुकी टिप्पणी है कि ससारकी बडीसे बडी विपत्तियाँ भी मनुष्यको अपन भीतर रखना अरुचिकर समझती ह और अुनमें फसकर मनुष्य तभी अपनी कमर तोड लेता है जब अुनसे बचनके लिअ व तहाशा भाग दौड करता है। अुनका यह भी सकेत है कि छोटी बडी लौकिक विप त्तियोंस लेकर विश्वकी महामायात्मक बचनके लिअ वास्तवमें मनुष्यको किसी समथ, जानकार मुक्त या सिद्ध गुरु के सहारे और पथ प्रदशनकी अनिवाय आवश्य कता नहीं है। वह अकेला और निराश्रय होकर ही अिसपर अन्तिम विजय पा सकता है।

चार चतुष्पदियाँ

श्री अजितकुमार

अेक विधान

प्यास तो अैसी लगी थी
क्या समन्दर, क्या सितारे
सभीको पी लूँ,
कामना अैसी जगी थी
क्या तुम्हारे, क्या हमारे
सभी स्वप्न जी लूँ,
किन्तु विधिके अुन निषेधों,
अुन विरोधोंको कहूँ क्या
जो यही बोले,
प्रीत जो मनमें रँगी थी
तोड डालूँ बिन विचारे,
होंठको भी सीं लूँ।

दो श्रम विभाजन

दो आँखें हैं अिसलिअ कि हम देखें ज्यादा
दो कान कि सुन लें जितना भी होअ सभव
लेकिन अीश्वरने अक जबान हमें क्यों दी?
अिसलिअ कि देखें सुन अधिक बोलें कुछ कम।

तीन : आशीर्वाद

वे जो आँसूके बीज आज बोते ह
कल खुशियोंके अंकुर अुगत देखेंगे,
परसों प्रसन्नताकी फसलें काटेंगे' —
अैसी है अेक कहावत अंग्रेजीमें।

चार आकाश स्थिर

और सब अस्थिर
मगर आकाश स्थिर है,
अथिर सब है
शून्यका पर भाव यह चिर है,
नभ असीम, अपारका
वैभव अदृष्ट अमाप
मनुज है अूँचा बहुत, पर यहाँ—
नतशिर है।

[अुन्नाव।

आलोचना :

'दिनकर'जीका 'कुरुक्षेत्र'

: श्री गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' :

हमारे दैनिक जीवनमें जब सत्यका कोअी स्वरूप नीरस प्राणशून्य रूढ़िका रूप धारण कर लेता है और हम स्वयं अनुभव करने लगते हैं कि हम किसी बंधनमें कारागारमें पड़ गये हैं, तब कविही स्वस्थ सुंदर कल्याणकर तथा जीवनसे अधिक घनिष्ठता रखनेवाला सरस सत्य लेकर हमारे सामने अुपस्थित होता है और अुसे ही स्वीकारकर अुसमें ही अपनी चित्त वृत्तियोंको रमाकर हम तदनुरूप अपनेको ढालने लगते हैं। भारतीय राजनीतिक क्षेत्रमें महात्मा गांधी-द्वारा प्रवर्तित अहिंसा अुनके कुछ ही अनुयायियोंको छोड़कर शेष अधिकांश लोगोंको प्रिय नहीं हुअी। अहिंसाकी निर्विवाद अुपयोगिता होनेपर भी लोगोंने अुसके प्रति सौहार्दका भाव नहीं बढ़ाया। अैसी अवस्थामें अुसके प्रति भक्तिके अभावका स्थान विवश मान्यताके भावने ले लिया। क्रमशः लोगोंमें यह विचार बल-संग्रह करने लगा कि अन्याय और अत्याचारके प्रतिकारके लिअे हिंसात्मक अस्त्रोंका अुपयोग अनुचित नहीं है अिसी विचार धाराको वाणी प्रदान करनेके लिअे 'दिनकर'जीने 'कुरुक्षेत्र' नामक काव्यकी रचना की है। अिस दृष्टिसे 'दिनकर'जीके अिस काव्यका अैतिहासिक महत्त्व है। अुसने अेक निर्जीव सत्यके स्थानमें अेक सजीव सत्यकी स्थापनाका प्रयत्न करके हिन्दी भाषी समाजकी विचार शक्तिको प्रेरणा देनेके रूपमें अुसकी प्रशंसनीय सेवा की है। अपने अिस अुद्योगमें वे कहांतक सफल हुअे हैं, यही यहां विचारणीय है।

अपने नवीन सत्यकी प्रतिष्ठापनाके लिअे कविको महाभारत संग्राम द्वारा प्रस्तुत परिस्थितियां स्वभावतः बड़ी अुपयुक्त और सहायक प्रतीत हुअीं। अुसमें विजय प्राप्त करके भी युधिष्ठिर अुत्साह और अुल्लाससे युक्त न हो सके। अनुताप और ग्लानिने अुन्हें घेर लिया। वे सोचने लगे कि अिस विजयसे अच्छा तो यही होता कि हमने त्याग मात्र स्वीकार किया होता। अपनी शंकाओंको लेकर वे भीष्मपितामहके पास पहुँचते हैं, और भीष्मपितामह अुनका समाधान करनेका प्रयत्न करते हैं। महाभारतके अिसी प्रसंगको लेकर दिनकरजीने अपने कुरुक्षेत्रकी वस्तु-रचना की है। अुन्होंने अपने सदेशका अुपयुक्त वाहक बनानेके अुद्देश्यसे भीष्मपितामहके *चित्रणमें कुछ मौलिकतासे काम लिया है। अुनका* यह चित्रण कैसा है अिसके सम्बन्धमें आगे लिखा जायगा, यहां पहले अितना जान लेना आवश्यक है कि प्रत्यक्ष अवस्थामें त्याग और अहिंसाका पक्ष लेनेके लिअे अिस काव्यमें अेक ओर युधिष्ठिर प्रस्तुत हैं, तो दूसरी ओर अन्यायके निराकरण अुद्देश्यको लेकर की जानेवाली हिंसाका समर्थन करनेके लिअे भीष्मपितामह अुपस्थित हैं। किसकी वाणीमें कविकी निश्चयात्मक वाणी अपनी गूंज पा रही है, यह पहिचानना कठिन नहीं है। यह स्पष्ट ही है कि सन्देहकी स्थितिमें युधिष्ठिर हैं और व्याख्याताका पद भीष्मपितामहका है। अैसी अवस्थामें अिस बातमें कोअी दुविधा नहीं रह जाती कि भीष्मपितामहकी विचार धारा स्वयं कविकी विचार-धारा है।

भीष्मपितामहके अपार त्याग और प्रायः असामान्य ब्रह्मचर्य सकल्पके कारण मानव मात्रकी श्रद्धा अुनकी ओर सहज ही अुमड़ती है, तथापि दुर्योधनके प्रति अनुचित पक्षपात और द्रौपदीके महान् सकट-कालमें भी सहज कर्तव्य-पालनसम्बन्धी अुदासीनताने अुनके चरित्रपर कलंककी अेक रेखा खींच दी है। 'दिनकर'जीने अुनके व्यक्तित्वके भीतर छिपे हुअे अनेक मार्मिक स्थलोंका अुद्घाटन किया है, जिनसे पाठकके सामने अुनका अेक पूर्ण स्वरूप अुपस्थित होता है और वह अुनके प्रति सहानुभूतिसे प्रेरित हो जाता है। भीष्म-

पितामहकी वाणीका प्रभाव जानने के लिये अनुका यह कवि कौशल सराहनीय हुआ है।

अपनेको धिक्कारते हुये भीष्मपितामह कहते हैं —
'धिक् धिक् मुझे हुआ अपीडित सम्मुख राजवधूटी

+ + +

"और रहा जीवित मैं धरणी फटी न दिग्गज डोला
गिरा न कोई वज्र, न अम्बर गरज क्रोधमें बोला।'
वे अपना पतन स्वयं स्वीकार करते हैं—

सदा सुयोधनके कुकर्मोंसे मेरा क्षुब्ध हृदय था,
पर क्या करता? वहाँ सबलकी नीति अबाध्य अभय था।
अनुशासनका स्वत्व मौनकर स्वयं नीतिके करमें।
पराधीन सेवक बन बैठा मैं अपने ही घरमें।
वीरताका पतन किस प्रकार होता है अिसका वर्णन भी भीष्मपितामहने बड़ी ही सच्चाईके साथ किया है —
'यौवन चलता सदा गर्वसे सिर ताने शर खींचे।
झुकने लगता किन्तु क्षयोवल यह विवेकके नीचे।
किन्तु बुद्धि नित खड़ी ताकमें रहती घात लगाये।
कब जीवनका ज्वार शिथिल हो कब यह अुसे दबाये।

+ + +

"जीवनकी है भ्रान्ति घोर हम जिसको वय कहते हैं।
थके सिंह आदर्श ढूँढते व्यथित बाण सहते हैं।'

० ० ०

"बात पूछनेको विवेकसे जभी वीरता जाती।
पी जाती अपमान पतित हो अपना तेज गँवाती।"

भीष्मपितामहका कहना है कि विवाह न करनेके कारण अुन्होंने दुर्योधनको अपना स्नेह दिया और अुसी स्नेहके प्रकाशमें अपना यौवन काल व्यतीत कर दिया। वृद्धावस्थाने अुनके और अुनकी वीरताके बिचमें हटाके करके अुनकी कार्यकारिणी शक्ति नष्ट कर डाली। अिन स्वीकारोक्तियोंके द्वारा अुनका चरित्र तप हुअे सोनेकी तरह खरा अुतर आया है।

धर्मराज युधिष्ठिरके सम्बन्धमें भी लोग प्राय कहा करते हैं कि युद्धमें भाग लेना अुचित नहीं था। शायद अैसे ही शंकाओंका समाधान करनेके लिये कविने अुनकी स्वीकारोक्तियोंकी भी नियोजना की है। धर्मराज अपनी विजयको सम्बोधित करते हुअे कहते हैं—

"अयि विजय, रुधिरसे सिक्त वसन है तेरा
यम दंष्ट्रासे क्या भिन्न दशन है तेरा?'

× ×

ओ कुरुक्षेत्रकी सर्वग्रासिनी व्याली!
मुखपरसे तो ले पोंछ रुधिरकी लाली')

+ +

'धनकी परिणाम है युद्धका अन्तिम
तात अिसे यदि जानता मैं—

× ×

फिरसे कहता हूँ पितामह! तो
यह युद्ध कभी नहीं ठानता मैं'।

युधिष्ठिर अिस बातको स्वीकार करते हैं कि राजसिंहासनके लोभहीसे पाण्डव अिस युद्धमें सम्मिलित हुअे। अुनका कहना है कि जबतक अुनमें यह लोभ प्रबल रूपसे विद्यमान है, तबतक संग्राममें विजेता होकर भी व वास्तवमें विजेता नहीं है, अतअेव व निर्णय करते हैं कि अिस लोभको जीतनेके लिये अेक और रण करना अुनके लिये आवश्यक है—

'यह होगा महारण रागके साथ
युधिष्ठिर हो विजयी निकलेगा।
नर संस्कृतिकी रण छिन्न लतापर
शान्ति सुधाफल दिव्य फलेगा।'॥

फिरभी युधिष्ठिरकी स्वीकारोक्तियोंमें अेक कसर है। अुन्होंने यह कहीं नहीं स्वीकार किया कि अनर्थका बहुत कुछ अुत्तरदायित्व अुनकी जुआ खेलनेकी दूषित प्रवृत्तिपर था। अस्तु।

हमारे जीवनमें देवपक्षके साथ-साथ दानव पक्ष सदैव क्रियाशील रहा है। देवपक्षका प्रतिनिधित्व करनेवाले अनिवार्य होनेपर ही युद्ध करते हैं और युद्धमें विजयी होनेपर भी अिस बातके लिये खेद करते हैं कि अुनके द्वारा हिंसात्मक कार्य होनेके कारण समाजमें कष्टका संचार हुआ। युधिष्ठिर अिसी पक्षके प्रतिनिधि हैं।'

दानव पक्षक प्रतिनिधिगण आवश्यकता न होने पर भी युद्ध करनेके लिअ बहाने ढूँढा करते हैं। वे अस्त्र-शस्त्रकी भाषा ही समझ सकते हैं। अतः अैसे लोगोंको जीवन सत्य समझानेके लिअ युद्धकी भाषाका ही प्रयोग करना पड़ता है। दुर्योधन अिसी पक्षके प्रतिनिधि थे और भीष्मपितामह अेसे ही विपथगामी दुर्योधनके पृष्ठपोषक थे।

युधिष्ठिर और भीष्मपितामहके संवादमें दोनोंकी सत्यनिष्ठा सराहनीय है। युधिष्ठिर युद्धकी निंदा करते हैं और भीष्मपितामह युधिष्ठिरके युद्धको उत्कृष्ट प्रतिरोध पर आधृत होनेके कारण सर्वथा अुचित ठहराते हैं। यही नहीं वे तो यह कहते हैं कि जब तुम्हारे स्वत्वका हरण हो रहा है तब त्याग और तपसे काम लेनाही पाप है। भीष्मपितामहको लेकर कवि और भी बहुत सी बातें स्पष्ट रूपसे कही हैं— (१) अहिंसा अवलम्बन लेना अुस व्यक्तिके लिअ विचारणीय हो सकता है जो वृद्ध खिन्न और साधनहीन है, भुजाओंमें शक्ति रखनेवालेको तो लज्जा ही होगी। (२) धर्म तप करुणा क्षमा आदि व्यक्तिकी शोभा है। किन्तु समुदायका प्रश्न खड़ा होनेपर हम अुन्हें भूलनेके लिअ विवश हो जाते हैं। (३) मनोबल देहका शास्त्र नहीं हो सकता। अुसका क्षेत्र वह मनोमय भूमि है जहां मनुष्य अपने अन्तरके विकार से लड़ता है। (४) वरन प्राप्त करनेका साधन बनाकर अगर त्याग रहे तो संग्राममें विजयी नहीं हो सकता क्योंकि

पाशविकता खड्ग जब लेती अुठा
आत्मबलका अेक वश चलता नहीं।

(५) तप और त्यागकी शक्तिका प्रभाव व्यक्तिके मनपर तो पड़ सकता है किन्तु जहां समुदायका सम्बन्ध आ जाअगा वहाँ त्यागियोंकी शक्ति वह कभी पराजित नहीं हो सकता।

अुक्त समस्त स्थापनाओंपर विचार करनेपर हम अिस परिणामपर पहुँचते हैं कि हिंसाके द्वारा ही हिंसाका अुत्तर सहजतापूर्वक दिया जा सकता है। जिसमें कवि आक्रमक हिंसाका पक्ष समर्थन नहीं किया है— वह हिंसा जो आक्रमणकारी दानव पक्ष-समर्थक दुर्योधनकी है अुसे न मानकर केवल अुस हिंसाका आवाहन अुचित माना है जो देवपक्ष-पोषक आत्मरक्षक युधिष्ठिरकी है। कविका कथन वहांतक सर्वथा अुचित है जहांतक आक्रामक और आत्मरक्षक दोनोंही स्वार्थ साधनमें भौतिक दृष्टिकोणको ही महत्त्व देते हैं। दुर्योधन अपने अधिकारके बाहर भी राज्य चाहता है जिसने कुछ अंतरकर युधिष्ठिर अपने अधिकारसे वही राज्य चाहते हैं। अिसमें सन्देह नहीं कि सांसारिक सुखोपभोगके लिअ प्रचुर भौतिक साधनोंसे सम्पन्न होनेकी कामना दोनोंहीमें है। अतअव अधिकार किसे मिले और किसे न मिले अिसका निर्णय रक्तपातपूर्ण संग्रामके द्वारा ही हो सकता है। अैसे अवसरपर यदि कोअी अहिंसा सिद्धांतके पालनका आग्रह करे तो यह मानना पड़ेगा कि अुसमें बहुत अधिक भोलापन है। सांसारिक विलासिताकी सामग्री अेकत्र करनेके लिअ अहिंसाका अुपयोग निरर्थक है भले ही किसीको अुसका न्यायोचित अधिकार प्राप्त हो।

सच बात यह है कि महाभारत कालमें संग्रामके हिंसात्मक साधनोंकी अितनी प्रचुरता हो गयी थी कि अहिंसात्मक संघर्षकी कल्पना ही नहीं की जा सकती थी। किन्तु यदि अुसकी सम्भावना होती तो क्या अहिंसात्मक युद्धका यह रूप होता कि अेक ओर कौरवों सेना खड़ी होती और दूसरी ओर अहिंसक पाण्डव खड़े होते? नहीं, अहिंसात्मक संग्रामका संचालन अिस प्रकार नहीं होता।

यदि युधिष्ठिर अहिंसात्मक संघर्षमें रत होते तो सबसे पहले आत्मशुद्धिके रूपमें वे जुआ खेलना बंद करते, अुसके अनंतर अुन्हें राज्य प्राप्तिकी कामनाका त्यागकर साधारण श्रमिकका जीवन स्वीकार करना पड़ता, साथही दुर्योधनके प्रति वे सच्चा स्नेह रखते और अपने स्नेहके लिअ कोअी बदला न माँगते। त्यागके अिस वातावरणमें यह पूर्ण सम्भव है कि दुर्योधनका दुराग्रह शिथिल पड़ता और वह प्रसन्नतापूर्वक अुनके सुख मय जीवन निर्वाहका कुछ प्रबंध कर देता। सामान्य श्रमिकका जीवन हम स्वीकार नहीं करेंगे, हम राजा ही होकर रहेंगे—अहिंसाका पुजारी अिस प्रकारका आग्रह नहीं करता।

व्यक्ति हो अथवा समुदाय वासनामय जीवनके साधन सग्रह निमित्त अथवा जीवनके प्रति मोहमय दृष्टिकोण निर्वाहके उद्देश्यसे वह अहिंसात्मक साधनोंका अवलम्ब लेकर लाभ नहीं उठा सकता। व्यक्ति और समुदाय दोनोंहीको यह स्मरण रखनेकी आवश्यकता है कि अहिंसात्मक संग्रामकी नीति और उसके साधन हिंसात्मक संग्रामकी नीति और उसके साधनोंसे सर्वथा भिन्न हैं और अहिंसात्मक संग्रामकी सफलताके लिए भी उसी प्रकार तैयारी करनी पड़ती है जिस प्रकार हिंसात्मक संग्रामके लिए। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि पाण्डवोंमें अहिंसात्मक संघर्षकी क्षमता नहीं थी और आवश्यक क्षमता प्राप्तिके लिए कुछ साधना करनी पड़ती। इसके विपरीत हिंसात्मक रणके लिए धनुष बाणसे वे सदैव सज्जित रहते थे। उनकी इसी तैयारीके कारण परिस्थितियाँ जिस प्रकार विकसित हुईं कि उन्हें हिंसात्मक संग्राममें भाग लेनेके लिए बाध्य होना पड़ा। ये परिस्थितियाँ अनिवार्य नहीं थीं। साधनाके अभावहीमें उन्होंने भयानक रूप धारण किया। आखिर अयोध्याकी राजगद्दीपर रामचन्द्रका भी तो अधिकार था। यदि लक्ष्मण जैसा समर्थक पाकर उन्होंने कैकयीकी इच्छा पूर्तिके विरुद्ध युद्ध ठान दिया होता तो क्या उन्हें कोई दोषी ठहराता? और इसमें भी सन्देह नहीं कि विजय उन्हींकी होती। किन्तु रामचन्द्रने अपने अधिकारका त्याग किया और इस त्यागके द्वारा और अधिक महान होकर वे जनताके हृदय सम्राट बने। उन्होंने राज्यको लात मारकर वनवासीका जीवन स्वीकार किया। उनके उच्चकोटिके त्यागने राजलक्ष्मी को उनका चरण चूमनेके लिए बाध्य कर दिया। यहीं हमारे सामने प्रश्न यह खड़ा होता है कि जिस मार्गपर रामचन्द्र चल सके उसपर युधिष्ठिर और उनके भाइयोंके पाँव क्या गतिशील नहीं हो सके? इसका असंदिग्ध उत्तर यही है कि पाण्डवोंमें अहिंसात्मक संघर्ष चला सकनेकी क्षमता नहीं थी। उसके लिए आवश्यक मात्रामें उदारता और त्याग भावनाका उनमें अभाव था। युधिष्ठिरने बात आरम्भमें नहीं समझी किन्तु युद्धका कुपरिणाम देखकर उन्हें असह्य आघात लगा और उन्हें सन्देह हुआ कि उनसे कहीं भूल हो गयी है। वे भीष्म पितामहसे कहते हैं—

कुलके अपमानके साथ पितामह
विश्व विनाशक युद्धको तोलिए।
इनमेंसे विधातक पातक कौन—
बड़ा है? रहस्य विचारके खोलिए।'

किन्तु कुरुपक्षके भी प्रपितामहके पास युधिष्ठिरके युद्धको उचित ठहरानेके अतिरिक्त और कोई उत्तर नहीं है। सातवें सर्गमें उन्होंने श्रमके महत्वकी स्थापना की है किन्तु इस सर्गमें कहीं एक बार भी नहीं कहा है कि राज्य लोभसे विरत रहकर श्रमिक जीवन यापन स्वीकार करना भ्रातिगण भाइयोंके प्रति युद्धकी नीति न ग्रहण कर प्रेमका व्यवहार करना युधिष्ठिरके लिए अधिक ऊँचा और श्रेयस्कर आदर्श होता।

युधिष्ठिर अपने प्रश्नको और भी सरल बनाते हुए कहते हैं कि जिस ध्वंसके द्वारा हम जिस सुखको प्राप्त कर रहे हैं वह उचित है या शांतिके मार्गपर चलते हुए आँसूका उपहार लेकर प्रस्तुत होनेवाला दुःख सहन करना उचित होता? किन्तु कवि प्रश्नको यह रूप देकर ऐसे विकृत कर दिया है। यह क्यों मान लिया जाय कि राज्यके न मिलनेपर युधिष्ठिर उसके लिए जीवनभर रोते ही रहते? बिना सतोषके शान्तिका मिलना सभव ही नहीं हो सकता था। जीवनभर राज्यके मोहमें मग्न होकर रोते रहनेकी तुलनामें तो युद्धहीका मार्ग उचित था। किन्तु यदि युधिष्ठिरका उद्देश्य यह मान लिया जाय कि वे सतोष और परिश्रमपूर्ण जीवनसे अधिकार प्राप्त युद्धकी तुलना करना चाहते हैं तो स्पष्ट रूपसे यह कहना होगा कि महाभारत-संग्रामके एक पक्षका नेतृत्व करके उन्होंने उचित नहीं किया—भले ही वह संग्राम उन्होंने अपने स्वत्वोंकी रक्षाके लिए किया हो। और भीष्मपितामहको भी यह स्वीकार करनेमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए थी कि शांतिका उक्त मार्ग मानव सभ्यताको विकासकी ओर ले चलता है। इस प्रकार यह देखा जाएगा कि जीवनमें सतोष अहिंसा प्रेम आदि आधारोंका विरोध करनेकी धुनमें कविने भीष्मपितामहको उस योग्यतासे वंचित कर दिया जो युधिष्ठिरको किसी ऊँचे लक्ष्यकी ओर ले चलती। अपने प्रस्तुत रूपमें भीष्मपितामह

युद्ध-भावनासे अभिभूत जान पडते हैं और युद्ध-कालमें वे युधिष्ठिर-पक्षके जितने ही बड़े विरोधी थे युद्धके अनन्तर युधिष्ठिर-पक्षके अुतने ही बड़े समर्थक हो गये। खेद है, भीष्मपितामहका यह चित्रण संतोषजनक नहीं है। अेक बहुत बड़े सिद्धांतपर आक्रमण करनेके लिअे सन्नद्ध होनेपर कविके लिअे युधिष्ठिरके पक्षको जितने सरल रूपमें अुपस्थित करना आवश्यक था अुसका भी अभाव दिखायी पड़ता है। अतअेव यह कहना पड़ता है कि अपने दृष्टिकोणको सबल अभिव्यक्ति प्रदान करनेकी अुमगमें कविने युधिष्ठिर-पक्षके साथ पूर्ण न्याय नहीं किया और युधिष्ठिरका अेक धुंधला व्यक्तित्व ही हमारे सामने खड़ा होता है।

हमारे पास अिस बातका कोअी प्रमाण नहीं है कि कविने अिस काव्यमें महात्मा गांधीके अहिंसात्मक संघर्ष-सम्बन्धी सिद्धान्तका विरोध करना चाहा है। किन्तु मनोबल और आत्मबलकी अुपयोगितापर जिस प्रकार आक्रमण किया गया है और काव्यके निर्माणका जिस कालसे सम्बन्ध रहा है, अुसे ध्यानमें रखकर विचार करनेपर अिस बातमें कोअी संदेह नहीं रह जाता कि अहिंसाके राजनैतिक प्रयोगोंमें अस्वाभाविकता देखकर अुसके विरुद्ध प्रतिक्रियाको काव्यात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करना अुनका अुद्देश्य रहा है। किन्तु भीष्मपितामह और युधिष्ठिर दोनोंहीके चित्रणमें कहीं न कहीं त्रुटि होनेके कारण हम अिस सम्बन्धमें किसी परिणामपर पहुँच नहीं पाते, हमें किसी प्रकारका नेतृत्व नहीं प्राप्त होता। हम यह नहीं समझ पाते कि आखिर हम क्या करें? अेक ओर तो हमें बताया जाता है कि मनोबल, आत्मबल आदिसे कुछ नहीं होनेका, दूसरी ओर हमसे यह कहा जाता है कि हम विज्ञानकी सहायता लेकर नये-नये शास्त्रोंका आविष्करण न करें। यदि यह सच है कि युद्ध अनिवार्य है तो यहभी सच है कि नये अस्त्रोंके अनुसन्धानमें विज्ञानका अुपयोग निरंतर जारी रहेगा। यदि कोअी चाहता है कि नर-संहारकारी आविष्कारोंका अन्त हो तो अुसे अुन साधनोंकी खोज करनी पड़ेगी, जो युद्धकी आवश्यकताको कम करें। मनोबल और आत्मबलके प्रयोगद्वारा हम अपने मन-भेद और वैमनस्यको समस्याको, जितना कविने समझा है अुससे कहीं अधिक दूरतक, हल कर सकते हैं। किन्तु जैसा कि मैं कह आया हूँ, यह कदापि सम्भव नहीं कि भौतिक वासनाओंकी समस्त मांगोंकी पूर्तिके लिअे अुस मतके माननेवाले हिंसात्मक संग्रामकी सेनाओंके सामने कुरुक्षेत्रके मैदानमें खड़े किये जा सकें। देह और आत्मामें जितना अंतर है, अुतनाही अंतर हिंसात्मक और अहिंसात्मक-रणकी शैलियोंमें भी रहेगा।

छठे सर्गमें मनुष्यकी नीचताका वर्णन दिया गया है। कतिपय पंक्तियां अवलोकनार्थ प्रस्तुत की जाती हैं—

> " अेक छोटी, अेक सीधी बात ।
> विश्वमें छायी हुअी है वासनाकी रात।
> बुद्धिमें नभकी सुरभि, तनमें रुधिरकी कीच ।
> यह वचनसे देवता पर कर्मसे पशु नीच।"

जीवनमें यदि मनोबल और आत्मबलका अुपयोग घटाया जाअेगा तो मनुष्यकी यह नीचता घटेगी नहीं, बढ़तीही जाअेगी।

यहाँ मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि आत्मरक्षा का कोअी साधन शेष न रह जानेपर सीमित मात्रामें हिंसात्मक संग्रामकी अुपयोगिता सदैव बनी रहेगी। अुसे कोअी अस्वीकार नहीं कर सकेगा। सच पूछिअे तो हिंसा और अहिंसामें किसी अेकके बहिष्कारकी नहीं, दोनोंहीके समन्वयकी आवश्यकता है। साथही हिंसाके स्थानमें अहिंसापर बल देना अधिक हितकर होगा।

देशके लिअे यह बड़े दुर्भाग्यकी बात है कि महात्मा गांधीके सिद्धान्तोंको काव्यात्मक अभिव्यक्ति न प्राप्त होनेके कारण जनताका अुनके प्रति सौहार्द न बढ़ सका और अुस दिशामें कोअी प्रयत्न आरंभ होनेके पहलेही अुनके विरोधमें प्रतिक्रिया शुरू हो गयी। काव्यमें अिस प्रतिक्रियाका नेतृत्व 'दिनकरजी' ने किया है, किन्तु अहिंसा और आत्मबलपर अपना मार्ग प्रशस्त करनेके लिअे जैसा आघात अुन्हें करना चाहिअे था वैसा वे नहीं कर सके हैं।

अिस काव्यमें ओज, प्रवाह, सद्विचार-संग्रह आदिकी कमी नहीं है। भाषा सरल और प्रभावशालिनी है, सन्यासके विरोधमें समाज-सेवाका संदेश, श्रम सिद्धान्त, जीवन-साधनोंका सम-वितरण आदि विचारोंकी सजावट सुन्दर है, किन्तु अपनी मूल स्थापनाको सबल न बना सकनेके कारण वह साहित्यके अितिहासमें किसी प्रकारकी क्रान्ति करनेमें असमर्थ रहेगा।

अनुभूतिका आलोक

: श्री रतनलाल बंसल :

कन्धारके बाजारोंमें पूरे तीन महीनोंतक कड़ीसे कड़ी मेहनत-मजदूरी करनेके बाद जब करीम अपने गाँव हालिमजओी चलनेको तैयार हुआ, तो अुसने देखा कि हालाँकि अुसने कभी पेट भरकर खाना नहीं खाया, फिर भी अिस बीच वह केवल सत्रह रुपये बचा सका है।

‘ अिन सत्रह रुपयोंमें भला मैं क्या-क्या कर लूँगा ? अिसमेंसे सात रुपये तो सरदारको ही देने होंगे, जिसके सख्त तकाजोंके डरसे मैं गाँव छोड़कर यहाँ आनेके लिअे मजबूर हुआ। बचे दस, जिनसे गल्ला खरीदना है, कुछ कपड़े भी लेने हैं और हाँ, अेक मोटा-सा कम्बल भी तो चाहिअे। पिछली सर्दियाँ तो मैंने और अस्मतने सिर्फ आगके सहारे काट दी थीं, लेकिन अब यह कैसे हो सकता है। अस्मत अब अेक बच्चेकी माँ जो हो गयी है। कमबख्त अब तो मुस्कुराने लगा होगा।” बच्चेका ध्यान आते ही करीमकी मनोदशा बदल गयी और अुन चिन्ताभरे क्षणोंमें भी अुसकी कल्पना कुछ जगमगा अुठी। किन्तु कुछ ही क्षणोंके पश्चात् अुसकी विचारधारा फिर अुन सत्रह रुपयोंपर आकर अटक गयी और वह सरदारके सात रुपयोंको निकालकर शेष रहे, दस रुपयोंमें कम-से कम तीस रुपयेके व्ययका व्यर्थ ही जोड़-तोड़ बैठाने लगा। अन्तमें जब अुसे अपने अिस प्रयासमें किसी प्रकार भी सफलता नहीं मिली, तो अुसने न जाने किस अेक गन्दी-सी गाली दी और रुपयोंकी मैली थैली अपनी सलवारकी अन्टीमें ठूँस, लाठी अुठा, गाँवकी ओर चल पड़ा।

“ अगर अिसी बीच सरदार साला मर गया हो, तो यह सात रुपये भी बच जाअेंगे,” रास्ता चलते-चलते अेक बार करीमने सोचा और दूसरे ही क्षण अुसे स्वयं ही अपनी अिस व्यर्थकी कल्पनापर हँसी आ गयी।

“ भला ये सूदखोर अितनी आसानीसे मरा करते हैं,” करीमने बड़बड़ाते हुअे कहा, “ मुल्ला लोग फजूल बका करते हैं कि सूद लेनेसे दोजख मिलता है। मरनेके बाद दोजख मिले या कुछ और, लेकिन जिन्दगीमें तो ये खूब आराम अुठा ही लेते हैं।”

“ और यह मुल्ला-मौलवी,” करीमकी विचारधारा अब अिन लोगोंकी तरफ मुड़ी, “ ये लोग हमेशा दौलतकी बुराअी करते हैं, अुससे अलग रहनेका अुपदेश देते हैं लेकिन येही लोग दौलतमंदोंकी जूतियाँ चाटते और गरीबोंको कुत्तोंकी तरह दुतकारते हैं।” करीमको स्मरण हो आया कि जब अुसके घरमें पुत्र जन्म हुआ था और वह गाँवके मुल्लाको बुलाने गया था, तब मुल्लाजीने कितनी घृणाके साथ मुँह बिचकाकर कहा था, ‘ आज मुझे सरदारके यहाँ दावतमें जाना है। जो कुछ लाये हो, यहीं दे जाओ, मैं शामकी नमाजमें तुम्हारे बच्चेके लिअे भी दुआ माँगकर आअूँगा।” अुस समय करीमको गुस्सा तो अैसा आया था कि मुल्लाकी गर्दनको अुमेठता ही चला जाअे, लेकिन वह अपने आनन्दमें विघ्न नहीं डालना चाहता था और दो पैसे मुल्लाकी तरफ फेंककर चुपचाप घर चला आया था।

अिसी तरह न जाने क्या-क्या सोचते— विचारते करीमने अपने गाँवका कठिन रास्ता पार कर लिया और जब गाँवकी बुर्जी अुसे दिखायी देने लगी, तब थकावटसे चूर-चूर होनेपर भी अुसके पैर अधिक तेजीसे अुठने लगे।

आखिर गाँव भी आ गया। अस्मत और बच्चेकी सूरतको आँखोंमें बसाये करीम घरकी ओर लपका चला जा रहा था कि अुसके कानोंसे अेक घिनौनी, कड़वी आवाज आकर टकरायी, “ अबे करीमा है क्या ?

लो करीमा ! आ गया तू। न जाने कितना माल मारकर लाया होगा शहरसे ? ला, हमारे रुपये तो दे जा।" यह सरदारकी आवाज थी।

करीमके पैर जैसे जमीनसे चिपककर रह गये और अेक सुपरिचित आतंकसे प्रेरित होकर असुका हाथ अपने आप सलवारकी अण्टीमें खुँसी हुअी रुपयोंकी थैलीपर पहुँच गया। थैली खोलते हुअे असुने सहमे और बेबस स्वरमें कहा, "हाँ, हाँ सरदार! तुम भी अपना हिसाब कर लो। कितने रुपये निकलते मेरे अूपर ?"

"आठ रुपये पाँच आने।" सरदारको अपने सैकड़ों कर्जदारोंका हिसाब जबानी याद रहता था।

'हैं, सातके अब आठ रुपये पाँच आने हो गये। सरदार! कम-से-कम अितना जुल्म तो मत करो।" करीमने झुंझलाहट-भरे स्वरमें कहा। शायद सरदारसे अैसे स्वरमें वह आजतक नहीं बोला था। "बदमाशोंकी बातें मत करो," " सरदारने डपटकर कहा, "अपना रुपया माँगना भी जुल्म है। जब गया था, तब सात रुपये बताये थे, अिधरका सूद नहीं देगा। लाओ, अिधर बढ़ाओ आठ रुपये पाँच आने।"

करीमने अनुभव किया कि गलती असुकी ही थी। असुने दो-अेक क्षण कुछ सोचा और फिर सात रुपये थैलीमेंसे निकालकर सरदारकी ओर बढ़ाते हुअे अत्यन्त खुशामदभरे स्वरमें बोला, "माफ करना सरदार! आप जानते हैं, हिसाब-किताब मुझे नहीं आता। अभी अितना ले लो, बाकी फिर दे दूँगा।"

सरदारको यह सुनकर प्रसन्नता हुअी, क्योंकि अेक रुपया पाँच आना शेष रह जानेका अर्थ था, शीघ्र ही पुनः अितनी रकम हो जाना। अतः असुने दबी-सी मुस्कराहटके साथ कहा, "हिसाब किताब नहीं आता, दूसरेपर ही भरोसा किया कर। हम बेअीमानीका अेक पैसा भी हराम समझते हैं। चल अब घर जा, हारा-थका होगा।" करीम अेक ठंडी साँस लेकर आगे बढ़ गया।

"आ गये तुम ?" करीमके दहलीजमें घुसते ही असुकी बीवी अस्मतने कहा और दो बूँद आँसू असुकी आँखोंसे बहकर मुन्नाके गालोंको चूमने लगे।

"हाँ, आ गया। जिस दिन तेरी खबर फजलसे मिली थी, असुके दूसरे दिन ही मैं चल दिया। फिर तबीयत ही नहीं लगी। तू अच्छी तो है!" करीमने हाथकी लाठी जमीनपर फेंक अस्मतकी गोदसे बच्चेको लेते हुअे कहा और फिर बच्चेको अुछाल-अुछालकर खिलाने लगा। अस्मत खाने-पीनेका चिन्तवाम करने घरके भीतर चली गयी।

× ×

करीमको घर आये पूरे आठ महीने बीत गये। अब वह फिर अेक-अेक पैसेको तंग है। सरदारके दस-बारह रुपये असुके सर चढ़ गये हैं और असुके तकाजोंके मारे करीमका नाकमें दम आ गया है। अुधर कम्पाके बाजारमें भी मजदूरी बेहद मुश्किल हो गयी है। गाँवके कअी आदमी वहाँसे निराश होकर लौट आते हैं। अब अस्मत और करीममें प्रायः झगड़ा हो जाता है।

अकस्मात् अेक दिन करीमको असुका पुराना साथी बशीर मिला। नयी सलवार, कीमती कुर्ता और मखमली जाकेटमें वह बिलकुल दूल्हा मालूम होता था। करीमने असुके अैसे ठाट-बाट देखे तो औत्सुक्यसे असुका दिल बुढ़कर रह गया। फिर भी अूपरसे असुने बशीरसे बड़ी मुहब्बत भरी बातें कीं, यहाँतक कि बशीरने असे अपने अिस ठाटबाटका रहस्य भी बता दिया। करीमको मालूम हुआ कि बशीर दो साल पहिले अिससे भी बुरी हालतमें हिन्दुस्तान गया था और आज असुका हजारों रुपया वहाँके आसामियोंपर फैला हुआ है। यहाँतक नहीं, बल्कि बशीरने यह भी कह दिया कि अगर करीम असुके साथ चलना चाहे, तो वह अपने खर्चेपर असे हिन्दुस्तान ले जा सकता है। करीम जैसे अेक दुर्दैव तथा विश्वस्त आदमीकी असे जरूरत भी है।

करीमने बड़ी प्रसन्नता और कृतज्ञतासे बशीरका यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, किन्तु अस्मतको समझाने-बुझानेमें असे लोहेके चने चबाने पड़े। जो अस्मत अिधर असुसे दिन-रात लड़ा करती थी, वही असुके जानेकी बात सुनतेही अितनी बुरी तरह रोने लगी कि कभी-कभी करीमका निश्चय भी डगमगा जाता। आखिर

बहुत समझाने-बुझानेके बाद जुम्मनने अपनी स्वीकृति दी। उस स्वीकृतिमें सिर्फ उसकी ही विवशता थी।

× × ×

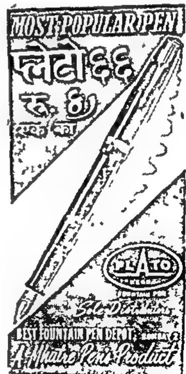
करीम अब पूरब जानेके लिये आ पहुँचा। करीमको तो उसकी अनदेखी सातों में हो गया क्योंकि वह सिर्फ गिन गिन पैसोंपर ही उस रखना चाहता था। लेकिन करीम अब उसके रोजगारके तमाम दाँवपेंच समझ गया है। जब वह लाहौरसे दिल्ली चला तो उसके पास सिर्फ पचास रुपये थे लेकिन अब उसके सत्तर रुपये तो उधार में हैं, जो प्रति दिन बढ़ते जाते हैं। जिसके अलावा अब वह रुपयेका मनाफा वह थोड़ा-सा सौदा बचाकर जमा करता है। परिश्रम करनेमें तो वह भूत जैसा है।

करीमका कायदा है कि आधी रातको वह अपने तमाम कर्जदारोंके घरोंपर चक्कर लगाता और उनसे अपना सूद रोजका रोज वसूल कर लेता। उस समय ज्यादातर कर्जदार अपने घरपर ही मिल जाते और दूसरी सुविधा यह होती है कि उस समय कर्जदारको दुकान-धमकान मारने-पीटनेमें काफी बाधा नहीं डालना। वह कभी कभी सूरतास अपना सूद वसूल करता और कभी कभी पाँच सात रुपये उनके पास सिर्फ सूदके ही आ जाते हैं। जिनमेंसे कुछ वह नये कर्जमें लगा देता है और कुछका सामान बिक्रीके लिये खरीद लाता। भले तन्दूरपर तन्दूरवाले * आकर सस्ते पैसा खा जाता और एक तानपर अब मस्जिदमें कुछ देरके लिये कमर सीधी कर लेता। हाँ, कभी-कभी अम्मन और अपने बच्चे वाजिदकी याद उसके दिलको जरूर कचोटने लगती लेकिन तभी करीम अपना डण्डा उठा सीधे कर्जदारके घरकी ओर चल देता और उससे लड़-झगड़कर अपने दिलका बुखार निकाल आता। जिसके अलावा वह करे भी क्या?

जिस तरह लगातार छह साल बिताकर जब एक दिन उसने अपनी पूँजी गिनी तो नकद तेरह सौ रुपये उसके पास थे। जिसके अलावा पाँच छह सौ रुपये कर्जदारोंपर भी बाकी थे। करीमको उस दिन न जाने क्या सूझा, कि बाजार पहुँचकर उसने थोड़ा सा सामान खरीदा और सीधा अपने वतनके लिये चल दिया। अम्मन और वाजिदको याद उस वक्त कर दिया था।

× × ×

करीम हिन्दुस्तानसे लिये दूसरी बार चला, तो अम्मनको आने तो किंचित भी बाधा उपस्थित नहीं हुआी किन्तु करीम स्वयं बड़ा कठिनाईसे या कहना चाहिये कि जबरन पेट हुए कर्जको वसूल करनेके माहौल हो यहाँतक आ सका। वाजिदके कारण उसका दिल घरसे जितना दूर रहनेसे घबड़ाता सा है। वह जबतक घरपर रहा, चौबीसों घण्टे वाजिदमें ही उलझा रहा। जिसलिये रास्तेमें भी उसके पैर बार बार घरकी ओर मुड़ने लगे किन्तु कर्जके आकर्षण उसे दिल्ली पहुँचाकर ही छोड़ा।



---

* तन्दूर वह भट्टा जहाँ मिट्टीके बने गोल बर्तनपर मोटी मोटी रोटियाँ पकती हैं। —सम्पादक

दिल्ली आकर दो-तीन दिन करीम गुम सुम मस्जिदमें पडा रहा। जिसके बाद अुसने दिल कडा करके कर्जदारोंके घरोंपर चक्कर लगाना शुरू किये।

आखिर कर्ज तो वसूल करना ही है। अक दिन वह जिसी प्रकार कर्ज वसूल करने चला तो सबके पहले मजूके घर पहुँचा जिसपर अुसकी सबसे ज्यादा रकम थी। करीमने मजूके दरवाजे तक पहुँचते पहुँचते हिसाब लगा लिया कि आजकी तारीख तक ठीक तिहत्तर रुपये अुसकी तरफ निकलते हैं। तिहत्तर रुपये यानी सत्तर और तीन करीमने मन ही मन सोचा 'अगर मजू चाहे तो जितने रुपये देना अुसके लिये कोअी मुश्किलकी बात नहीं। दस बीस रुपयेके गहने अुसकी औरतके पास जरूर होंगे जिसके अलावा कपडे लत्ते बरतन भांडे। ये हिन्दुस्तानी भी अजीब होते हैं, कर्ज लेते हैं और गहने बनवाते हैं। साला औरतका गुलाम। करीमको रास्ता चलते गालियाँ बड-बडानेकी आदत पड गयी थी।

'मजू हय? मज ओ मजू!' करीमने हाथकी लाठीसे मजूके किवाडोंको ठोकते हुअे पठानी हिन्दीमें आवाज दी, किन्तु भीतरसे कोअी आवाज नहीं आयी।

बोलता नहीं साला! हम तुम्हारा बाप खडा है। करीमने क्रोधसे चीखते हुअे पुनः आवाज दी किन्तु अुत्तर फिर भी नहीं मिला।

करीमने अब दो क्षण कुछ सोचा और फिर किवाडोंमें अक लात जमाकर बोला— हम दरवाजा तोडकर भीतर आ जायगा, वरना चला बाहर।'

जिस बार करीमने अनुभव किया कि देहलीजमें कोअी आ रहा है। कुछ ही देरमें किवाड खुले और दीनताकी मूर्ति बने हुअे मजूने करीमके पैरोंको पकड कर कहा खान! आज बत्तीस तारीख है परसों तनखा होगी। दस दो दिनकी मुहलत दे दो। जिस महीनेकी पूरी तनख्वाह तुम्हें ही दे दूँगा।

करीमने मजूकी पीठपर तीन चार घूँसे जमाकर कहा बदमाश! जब माँगता है दस दो दिनकी मुहलतका बहाना कर देता है। हमको अपना बापका नौकर समझता है!

मजू घूसोंकी चोटसे बिलबिलाकर बोला— चाहे मार डालो खान लेकिन रुपया तीसकी शामको ही मिलेगा। अुस दिन न दूँ तो जान निकाल लेना।'

दो दिन! अच्छा दो दिनकी मोहलत दिया। लेकिन फिर बहाना किया तो मालूम होगा" करीमने मजूके अक लात जमाते हुअे कहा और आगे चल दिया। कुछ कदम चलनेपर करीमको अनुभव हुआ कि अुसने मजूको जितना नहीं पीटा, जितना पीटना चाहिये था। परिणाम यह हुआ कि जिस अगले कर्जदारके पास करीम पहुँचा अुसपर सिर्फ सात आने ही अुधार थे फिर भी अुसे जितना पीटा कि अुसकी नाकसे खून बहने लगा। करीम कर्जदारोंको पीटनेमें कुछ तृप्ति-सी अनुभव करने लगा था।

जिस प्रकार अुस रातको करीम जिस कर्जदारके पास पहुँचा अुसकी जैसे शामत आ गयी। किन्तु अुस दिन वसूली भी अच्छी हुअी। करीम जब लौटकर आया तो अुसने मस्जिदके मुल्लाको अेक रुपया दिया कि वह अुसके वाजिदके लिये पाँचों वक्तकी नमाजमें दुआ माँगे।

किसी तरह दो दिन भी बीत गये। करीम आज सुबहसे ही सोचने लगा कि अगर मजूने आज भी टालमटूल की तो अुसे वह जितना मारेगा कि बच्चूको छठीका दूध याद आ जायगा।

शाम हुअी और करीम लाठी लेकर मजूके द्वारपर आ पहुँचा। 'मजू हय!' अुसने अपने स्वभावानुसार आवाज लगायी और दूसरे ही क्षण अक आदमीने किवाड खोलकर अुससे पूछा 'क्या है?'

'तुम कौन है? अुसी मजूको भेजो।' करीमने घुडककर कहा। "मैं जिसी घरमें किरायेदार हूँ। मजूका बहनोई मजू, वह तो मर गया।

'हमारा बिना जिजाजत वह नहीं मर सकता। देखो वह कहाँ जाता है।' करीमने दरवाजेकी ओर

पैर बढ़ाते हुअे कहा। अुसे मालूम हो रहा था कि अुसके साथ चाल खेली जा रही है।

करीम घरकी चौखटपर खड़ा ही था कि अेक राहगीरने किंचित् व्यंग्य कसा, 'खान! मजूको तलाश करता है क्या? अुससे मिलनेके लिये तो अब तुम्हें दूसरी दुनियामें जाना पड़ेगा।' यह कहकर अुसने आसमानकी तरफ अुंगली अुठा दी।

करीमको अब मजूके मरनेका विश्वास आया। वह फिर चौखटसे अुतरकर सड़कपर आ गया और झुंझलाहट भरे स्वरमें अुस किरायेदारसे पूछा—

"तुम मजूका कौन हय?"

'कोअी नहीं। मैं ठाकुर हूँ, मजू बामन था।'

"अुसका औरत है?"

"है पर अिस वक्त नदीपर गयी है, मजूके फूल धुलने।"

"कब आअेगा?"

"क्या मालूम?"

"जब आये, तो अुससे बोलना कि खान आया था। बीबी मर जाअेगा, तो अमारा रुपया नहीं छूटेगा। अुसे रुपया देना पड़ेगा, वरना हम बेअिज्जत करेगा।'

"कह दूँगा," अुस आदमीने सहमकर कहा, फिर खुशामद भरे स्वरमें बोला 'वह कहाँसे देगी खान! कफन तो चन्देका पड़ा। अुस बेचारीको माफ करो।"

"अम किसीको माफ नहीं करता," करीमने तमककर कहा, "चन्दा कौन है? अुसने कफन दिया था, अमारा रुपया नअी दे सकता?"

आदमी समझ गया कि यह राक्षस है। अिसकी खुशामद करनेसे कोअी लाभ नहीं होगा। कुछ देर खड़ा रहकर वह घरके भीतर चला गया।

करीम वहाँसे चला, तो सोचने लगा कि अब रुपया कैसे वसूल होगा। अुसे याद आया कि मजूने तनख्वाह मिलनेकी बात कही थी। तो फिर तनख्वाहका रुपया तो मजूको कहींसे मिला ही होगा। वह यह सोचकर झुंझला अुठा कि अगर मजू सिर्फ कुछ घंटे और जिन्दा बना रहता, तो कमसे कम अुसका रुपया तो वसूल हो जाता।

करीम जब मस्जिदमें लौटा, तो अुसने अपने बिस्तरेके अूपर अेक कार्ड पड़ा देखा। कार्ड घरका है, अितना वह अुसकी शक्ल-सूरत देखकर ही समझ गया। *जिस समय अुसे बड़ी भूख प्यास लगी थी* लेकिन कार्डको देख सब भूख प्यास भूल गया और सीधा मुल्लाजीके पास पहुँचकर बोला "मौलवी! अमारा खत सुना दो।"

मुल्लाजीने खत लिया। अुसमें सिर्फ दो लाअिनें थीं, फिर भी कुछ देर वे खामोशीके साथ कार्डपर नजर जमाये रहे। अिसके बाद बोले, 'क्या पूछना है खान?''

'खतमें क्या लिखा है, यह सुनाओ।"

"*क्या सुनाअूँ? तुम्हारा लड़का था, वह जाता* रहा। तुम्हें फौरन बुलाया है।"

करीमको अनुभव हुआ, जैसे जमीन आसमानकी तरफ अुड़ी जा रही है। गिरनेसे बचनेके लिअे अुसे दीवालका सहारा लेना पड़ा।

"रंज करनेसे क्या फायदा? खुदासे दुआ माँगो कि मरनेवालेको नजात (मुक्ति) दे।" मौलवीने कहा और मस्जिदसे बाहर चला गया।

करीमने वह रात अैसे काटी, जैसे अुसके दिलपर आरा चलता रहा हो।

× × ×

'मजूकी औरत! चलो बाहर।" करीमके स्वरमें यद्यपि नरमी थी, फिर भी देहलीजमें बैठी हुअी मजूकी औरतका दिल यह आवाज सुनते ही काँप गया। करीम पहले दिन जो कुछ कह गया था, अुसे वह अगल-बगल पड़ोसियोंसे सुन चुकी थी।

"कोअी नअी आता हय। फिर अम भीतर आकर लेगा।' करीमने धमकी भरे स्वरसे कहा।

'अरी मजूकी बहू! जो कुछ कहना है, कह दे। अपनी मिट्टी क्यों पलीद करा रही है? यह खान बड़ा जालिम है, भीतर आकर न जाने क्या करने लगे?"

किसी पड़ोसकी स्त्रीने मञ्जूकी बहूसे कहा, तो करीमने भी यह बात सुनी। अिससे पहले वह जब किसीको अपने सम्बन्धमें 'जालिम' कहते सुनता था, तो कुछ गर्व-सा अनुभव करता था किन्तु आज अिस शब्दने अुसपर दूसरा ही प्रभाव डाला। वह अिस सम्बन्धमें कुछ सोचने लगा और तभी मञ्जूकी बहू अपने छोटे-से बच्चेको गोदीमें लेकर किवाड़की ओटमें आ खड़ी हुअी।

"अम अपना रुपया चाहता है। अबी चाहता है, बिल्कुल अबी।" करीमने तकाजेके जोरमें कहा, लेकिन तभी अुसकी निगाह मञ्जूकी बहूकी गोदमें चढ़े हुअे अुसके बच्चेपर पड़ी, तो वहींकी वहीं जमी रह गयी।

"वह तो चले गये सरकार! अब ।" मञ्जूकी बहूने भयसे काँपते हुअे कुछ कहनेका प्रयास किया ही था कि करीमने बिलकुल दूसरे ही स्वरमें बच्चेकी ओर संकेत करते हुअे पूछा, "यह कौन है? तुम्हारा बेटा है? तुम्हारा वाजिद है?"

मञ्जूकी बहू कुछ समझी, कुछ नहीं समझी। आज अुसे पहली बार मालूम हुआ कि खूंखार दीख पड़नेवाला यह खान अितनी मीठी बोली भी बोल सकता है।

"यह वाजिद तुम अमको दे दो। अम तुमको बौत रुपया देगा।" यह कहकर खानने पागलकी भाँति अपने हाथ फैला दिये।

मञ्जूकी बहू खानका यह अद्भुत व्यवहार देखकर डर-सी गयी। वह कअी कदम पीछे हटकर खड़ी हो गयी और तभी न जाने क्यों अुसकी गोदका बच्चा भी रोने लगा।

"ओह! यह रोता हय! अम अपने वाजिदके लिअे रोता है और यह अपने वालिदके लिअे रोता हय। अिसे तुम चुप कर लो।" कहते-कहते खानकी दाढ़ी आँसुओंसे तर होने लगी। मञ्जूकी बहूने समझा कि खान पागल हो गया है। वह सहमकर भीतर भाग गयी।

"ओह, तुम भी भागता हय। अमारा वाजिद भी भाग गया और यह वाजिद भी भागता हय। अमसे सब नाराज हय। अम जाता हय। तुम, अपने वाजिदको अिसका मिठाअी खिलाना।" अितना कहकर खानने अपनी जाकेटकी जेबसे कुछ नोट निकाल दहलीजमें फेंक दिये और रोता हुआ वहाँसे चला गया। अिसके बाद फिर कभी किसीने खानको अुस नगरमें नहीं देखा।

[फीरोजाबाद।



अश्कके नाटकोंमें युग सत्य

• श्री गोपालकृष्ण कौल, श्री रामगोपालसिंह चौहान :

समाजके द्वन्द्वात्मक विकाससे साहित्यका अटूट संबंध है। जब लोग कबीलोंमें रहते थे और वर्गों की सृष्टि नहीं हुआी थी, अुस समय मानवको प्रकृतिसे संघर्ष करना पड़ता था। और जब अुत्पादन और अुत्तराधिकारसे क्रमसे होनेवाले परिवर्तनोंके कारण वर्ग-समाजका विकास होने लगा तो मानवका संघर्ष प्रकृति और मानवकृत शोषण दोनोंके विरुद्ध शुरू हुआ। जिस संघर्षकी प्रगतिके साथ-साथ वर्ग-स्वार्थ भी स्पष्ट होते गये। मानव समाजकी अिस संघर्षशील, द्वन्द्वात्मक-प्रगतिका प्रभाव साहित्यमें किसी न किसी रूपमें सदा प्रतिबिम्बित हुआ है। अिस संघर्षके क्रममें ही धर्म अधर्म, नीति-अनीति, दास मालिक, अूँच नीच और पाप-पुण्यकी विविध धार्मिक सामाजिक तथा राजनैतिक आदि मान्यताओं रीति रूढ़ियों, मिथ्या विश्वासोंका जन्म हुआ जो देश कालके प्रभावोंसे वर्ग-समाजमें होनेवाले परिवर्तनोंसे प्रभावित होकर भिन्न भिन्न युगोंमें भिन्न रूप धारण करते गये। सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म और रीति-रिवाज आदिका अुदय और प्रचलन वर्ग-शासनों और वर्ग प्रभुताओंसे अनुशासित होता रहा। अिस प्रकार प्रभुताधारी और शासित, शोषक और शोषित धनी और निर्धन अेक श्रमिक और अवकाशभोगीके वर्ग संघर्ष भी जीवनके विविध क्षेत्रोंमें अपने विविध रूपोंमें चलते रहते हैं। अिस मानव संघर्षका अन्त होता है वर्गहीन-समाजके निर्माणसे।

साहित्य मानव संघर्षकी कलात्मक अभिव्यक्ति है। यह संघर्ष चाहे आन्तरिक हो या बाह्य। अिस संघर्षका अेक मनोवैज्ञानिक परिणाम और लक्ष्य है— स्वार्थ आधारित अवकाशभोगी मानव सत्ताओं और व्यवस्थाओंका अन्त और मानवश्रमको महत्व देनेवाले समता-आधारित, रचनात्मक वर्गहीन समाजका निर्माण। अिस संघर्षमें रचनात्मक श्रमशील मानव समुदाय अेक ओर है और अवकाशभोगी सत्तासम्पन्न सीमित वर्ग दूसरी ओर। अेक शोषित है, दूसरा शोषक। मानव संघर्षके अितिहासमें सदा दो पक्ष रहे हैं। चाहे अुनके वर्ग रूप देश कालके अनुसार बदलते रहे हों। आज भी अिस संघर्षके दो पक्ष हैं— अेक अुनका जो अवकाशभोगी शोषक हैं और सत्ताको जैसे भी हो अपने हाथोंमें बनाये रखना चाहते हैं जो जीवनके विविध क्षेत्रोंमें अपने अुच्च वर्गके पुरखोंकी परम्पराका अिन्द्रजालिक विस्तार किये हुअे हैं व आज साम्राज्यवाद और पूंजीवादके पक्षधर हैं और अपनी अस्तित्व-रक्षामें बड़े बड़े युद्धोंकी तैयारी करते हैं। दूसरा पक्ष अुनका है जो अिस शोषण चक्रमें पिसते हुअे भी सब जीवन-रक्षाके लिअे श्रम करते हैं और संसारकी शान्ति और रचनामें विश्वास रखनेवाले अधिकांश मानवजातिके प्रतीक हैं। सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक भेद अिस वर्ग स्वार्थकी शोषण परम्परासे निकली है। प्रत्येक युगके साहित्यमें अिस संघर्षका प्रतिबिम्ब किसी न किसी रूपमें दिखायी पड़ता है। हमें देखना होता है कि किस साहित्यमें, किन अैतिहासिक परिस्थितियोंके कारण तमाम अन्तर्विरोधोंके साथ, किस पक्षका अधिक समर्थन किया गया है। जिस साहित्यमें मानव संघर्षके रचनात्मक जन-कल्याणकारी पक्षका समर्थन जितना अधिक होता है वह अुतना ही अपने युग सत्यकी यथार्थ अभिव्यक्ति प्रदान करता है। यह अभिव्यक्ति दो प्रकारकी होती है। अेकमें जन कल्याणकारी शोषित वर्गकी क्रान्तिकारी शक्तियोंका सीधा समर्थन किया जाता है और दूसरेमें शोषक वर्गके जन विरोधी तत्वोंका अुद्घाटन।

युग सत्यकी जिन यथार्थ अभिव्यक्तियोंके अतिरिक्त लेखकके वर्गीय जीवनके अन्तर्विरोध भी अुसके साहित्यमें प्रकट होते रहते हैं। वह जिन सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक परिस्थितियोंके वातावरणमें अपने

साहित्यकी रचना करता है, उसके अन्तर प्रभाव भी उसकी रचनाओंपर अपनी छाप डालते हैं। साथ ही जन विरोधी-शक्तियाँ अथ और संस्कृतिके माध्यमसे अनेक परिस्थितियाँ उत्पन्न करती हैं जिनसे जनवादी शक्तियोंके साहित्यिक और सांस्कृतिक पक्ष दुर्बल हो जायँ। वे उदार मानवतावाद, व्यक्तिवाद, प्रजातंत्र, धर्म और दर्शन आदिके नामपर अनेक ऐसे सिद्धान्त गढ़ती हैं जो साहित्यके जनवादी स्वरूपको कुण्ठित करनेके प्रच्छन्न प्रयत्न होते हैं। जो लेखक इन सिद्धान्तोंके कृत्रिम मानववादी रूपके आकर्षणमें फँस जाते हैं वे साहित्यमें कलावादी, रूपवादी और समाजविरोधी व्यक्तिवादी प्रतिक्रियावादके चतुर शिल्पी बन जाते हैं। उनके शिल्पमें इन्द्रजालिक चमत्कार तो होता है किन्तु वस्तुमें युग सत्यकी सच्ची अभिव्यक्ति नहीं होती। क्योंकि उनके प्रतिगामी संस्कार उन्हें जन जीवनके सम्पर्कमें नहीं आने देते।

मानव संघर्ष और साहित्यके इस अन्तःसम्बन्धको देखते हुए आजके युग-सत्यको साहित्यमें परखनेका एक ही माध्यम है— हम देखें कि साहित्यमें जन पक्षका कितना समर्थन है और जन विरोधी ताकतोंके मन्सूबोंका पर्दाफाश कितना हुआ है— इसके अतिरिक्त जो लेखक इस वर्ग-समाजमें तटस्थ-वायवीय-मानववादी अभिव्यक्तिका दावा करते हैं वे वर्ग संघर्ष युग-सत्यसे मुँह मोड़कर कृत्रिम मानवतावादियों (साम्राज्यवादियों और पूँजीवादियों) के स्वार्थका उत्थान स्वयं समर्थन करते हैं, चाहे सचेतन रूपसे उन लेखकोंका यह ध्येय न भी हो।

इस दृष्टिसे अश्कके नाटकोंमें हमें उनके मध्य वर्गीय अन्तर्विरोधोंकी अभिव्यक्ति तो मिलती ही है साथ ही उनमें उन विरोधी शक्तियोंका पर्दाफाश भी मिलता है। अश्कने मध्य वर्गीय जीवनकी विभिन्न समस्याओंका विश्लेषण करते हुए इस वर्गके सामाजिक अन्तर्विरोधों और उनके प्रतिगामी तत्त्वोंका यथार्थ उद्घाटन किया है। वे समस्याओं और पात्रोंको बदल बदल कर उपस्थित नहीं करते। न शिल्प चमत्कारको स्वयं अपने में साध्य या उद्देश्य समझा करते हैं जो पाठकों और दर्शकोंके लिए केवल एक रहस्यमय चमत्कार बन जाय और उससे किसी प्रकारकी सामाजिक चेतना न प्राप्त हो। बल्कि, उसके विपरीत अश्क रूप विधान और शैलीको भी वस्तुगत सत्यकी सरल अभिव्यक्तिका कलात्मक माध्यम बनाते हैं।

अश्कने विवाह और प्रेमकी समस्याको लेकर कई नाटक लिखे हैं जिनमें इन समस्याके विभिन्न पहलुओंको यथार्थवादी दृष्टिसे उपस्थित किया गया है। 'स्वर्गकी झलक' में आधुनिकाओंकी पारिवारिक दायित्वहीन बुर्जुआ फैशनपरस्तीकी खिल्ली उड़ायी है और ऐसी नारियोंसे अभिभूत होनेवाले पतियों और घर जानेवाले मध्यवर्गीय नौजवानोंपर व्यंग्य भी किया गया है। 'बहनें' नामक एकांकी भी वर-निर्वाचनके नामपर आधुनिकाओंके उन्मुक्त प्रेमके स्वांगका अच्छा व्यंग्य चित्र है। 'कैद' नाटकमें निष्क्रिय, पुराने संस्कारोंके प्रभावमें जकड़ी एक नारीका करुण चित्र अंकित है जो अनचाहे पतिकी पारिवारिक कैद में घुटी जा रही है। किन्तु 'अलग अलग रास्ते' में कैदके उस विवश नारी जीवनका असमर्पणके प्रति घोर विद्रोहका स्वर है। 'अलग अलग रास्ते' में रानीका अपने पतिके विरुद्ध यह कथन—"जिस व्यक्तिके समान चन्द हजारके एक मकानका मूल्य मेरे मानसे कहीं अधिक है, जो मुझे नहीं मकानको चाहता है मैं उस राक्षसकी शक्ल तक नहीं देखना चाहती"— उस विद्रोहका प्रमाण देता है। जब रानीका पिता ताराचन्द गरजकर पूछता है—'तू अपने पतिसे घृणा करती है?' तो रानी निर्भीकतासे उत्तर देती है—'मैं राम राम उसपर थूकना चाहती हूँ।' वह अपने पितासे कहती है—'आपका धर्म भी पुरुषोंका धर्म है।' और इस प्रकार वह धन-लोलुप पतिका त्याग कर देती है।

'अंजो दीदी' नाटककी नायिका अंजनाके चरित्रमें बुर्जुआ-संस्कृतिका प्रतिनिधि आधुनिक-नारीके अन्तर-विरोधोंका मनोवैज्ञानिक उद्घाटन होता है। इसी प्रकार 'अंजो दीदी' में बुर्जुआ नारीके एक दूसरे पहलूका चित्रण है और 'भंवर' में अभिजात वर्गीय बौद्धिक नारियोंकी अतृप्त आकांक्षाओंका यथार्थ रूप है। इसी भाँति दूसरे नाटकोंमें भी विवाह और प्रेमकी समस्याओंका स्वरूप तथा उसके अनेक पहलुओंपर प्रकाश डाला गया है।

देवताकी छायामें अेकांकीमें भरोसा यह कहना— 'हम लड़कियाँ हैं। हम अपनी भिच्छासे हँस नहीं सकती बोल नहीं सकती, हिल डुल नहीं सकती चाहे घुट घुटकर मर जायँ।' भारतीय नारी जीवनके रूढ़िग्रस्त बन्धनोंसे घुटनभरी करुण पुकार है।

अश्कके असे सभी नाटकोंमें ज्ञात अज्ञात रूपमें सामाजिक व्यक्तिकी हैसियतसे नारीको सामन्ती और पूँजीवादी बन्धनोंसे मुक्त करनेकी भावना विद्यमान दिखायी देती है।

'अुड़ान' में अिन बन्धनोंकी तमाम समस्याओंका निदान है। अिसमें मायाके चरित्रके माध्यमसे नारीके अुस रूपको अुपस्थित किया गया है जो पुरुषकी दासताकी भाँति दासी, पूज्या या भोग्या बनकर ही स्वीकार नहीं करना चाहती, बल्कि वह अेक सामाजिक अिकाअी बनकर पुरुष सगिनी बनना चाहती है।

अश्ककी महानुभूति श्रमिक वर्गके साथ है। यद्यपि अुन्होंने मजदूरोंके जीवनपर कोअी नाटक नहीं लिखा फिर भी अुनके नाटकोंमें यत्र तत्र श्रमका शोषण करनेवाली पूँजीवादी मनोवृत्तिका पर्दाफाश किया गया है। 'देवताओंकी छायामें' में शोषणग्रस्त मजदूर जीवनकी अेक छोटी सी झाँकी अुन्होंने प्रस्तुत की है। अिस नाटकके पहले दृश्य विधानमें ही अेक दृश्यका संकेत देते हुअे अपनी अिस भावनाको भी प्रकट करते हैं। वे लिखते हैं—

> काबुलके असी ही अेक नयी आबादीके पास दो अढ़ाअी सौ कच्चे घरोंका अेक गाँव है। अेक व्यवसायी सोसाअिटीने (जो भिष्ट व्यवसायकी कलामें निपुण है) अिसके पास तीन चार सौ अेकड़ भूसर धरती सस्ते दामोंमें मोल ले ली है। और फिर अिस अपीलपर कि अुस धरतीपर अेक नये समाजकी नींव रखी जायगी जो सम्प्रदायके स्थानपर मानवको अपने प्रेमका भाजन बनायेगा और देशके दीन हीन कृषकोंका सुधार करेगा, महँगे दामों प्लाट देकर 'देवनगर' के नामसे अेक नयी बस्तीका सूत्रपात कर दिया है। निकट वर्ती गाँवोंके श्रमी वहाँ सुबह सात आठ बजेसे शामके सात आठ बजे तक सख्त सर्दी अथवा सख्त गर्मीमें काम करते हैं और पौने छह आने दैनिक मजदूरी पाते हैं और वे लोग पत्र पत्रिकाओंमें बड़े बड़े सफेदपोश स्वयं घोषणा करते हैं कि अुन्होंने लाखों रुपये देहातमें वितरण कर दिये हैं और अुनके नगरके निकटवर्ती गाँव सम्पन्न हो रहे हैं।

यह दृश्य विधान लेखककी वर्ग भेदको पहचाननेवाली सजग प्रगतिशील दृष्टिका ही परिचायक है। नाटकका दृश्य विधान अिस टिप्पणीके बिना भी पूरा हो सकता था किन्तु शायद अेक तरफ पाठकोंके सम्मुख श्रमिकोंका शोषण करनेवाले पूँजीवादी मानवतावादका पर्दाफाश न होता। अिस टिप्पणीकी पृष्ठभूमिमें नाटकमें दिखायी गयी गरीबोंका चित्र वर्ग भेदकी यथार्थताको और भी अधिक स्पष्ट कर देता है।

'अधिकारका रक्षक' अेकांकीमें पूँजीवादी सरकारोंपर कठोर व्यंग्य किया गया है, साथ ही आजके अवसरवादी नेताओंकी पोल खोली गयी है। अिस नाटकके प्रमुख पात्र मि. सेठ चुनावके लिअे जिस प्रकार ढोंग रचते हैं (जिसकी करनी कुछ और कथनी कुछ) वह आधुनिक नेताशाहीके ढोंगका रूपका ही अेक चित्र है। अेक ओर तो वे हरिजन-सभाके मंचसे बात करते हुअे पीड़ितों और पददलितोंका अूपर अुठानेका दम भरते हैं, दूसरी ओर अपने नौकरको बुरी तरह गालियाँ देते और अपनी मेहतरानीको महीनेकी पगार माँगनेपर डाँटते हैं। सार्वजनिक रूपमें वे अेक ओर तो बच्चोंको शारीरिक रूपसे दण्ड देनेका शाब्दिक विरोध करते हैं, दूसरी ओर अपने बच्चेको बेतहाशा पीटते हैं। बाहर मालिकोंके अत्याचारोंके विरोधका ढोंग रचते हैं और घरमें अपने नौकरको तनख्वाह माँगनेपर कहते हैं 'जा अेक कौड़ी भी नहीं देते, निकल जा यहाँसे, जा जाकर पुलिसमें रिपोर्ट कर दे। पाजी हरामखोर सूअर! आजतक मैंने जीमें शाम सौन्ने मुफ्तमें यहाँतक कि बाजारसे आनेवाली हर अेक चीजमें पैसे रखता रहा। तूमने कभी कुछ न कहा

और अब या चकड़ता है। और जब अिसपर नौकर यह कहता है कि सच है बाबू! जो गरीब लाख ओमान दार हो तो भी चार है शक है। अमीर यदि आत्रोंमें धूल यावकर हजारोंपर हाथ साफ कर जाअ चन्देके नामपर नन्त्रा भूमि द तो भि सेठ अिस यथार्थको सुनकर अक्क अ ह और अपने नौकरको पीटने गते ह। जितना सब द्वारा ग्बनके बाद भी वे होजरी उनियनके मन्त्रीसे कहते ह 'म अुन लोगोंमेंसे नहीं जो कहन कुछ ह और करन कुछ ह। मैं जो कहता हूँ वही करता ह और जो करता ह वही कहता हूँ।' व स्वय पूजीवादी मनोवृत्तिके गुलाम होकर भी मज-दूरोंको बहकानेके लिअ, दिखावके रूपमें पूजीपतियोंकी निन्दा करते ह— य पूजीपति गरीब मजदूरके बओ बओ महीनोंका वेतन रोककर भूखे मरनेपर विवश कर देते ह स्वय मोटरम सर करते ह शानदार होटलोंमे खाना खाते ह और जब दिन-रात परिश्रम करनेके बाद य गरीब थोड़ा पाना अवकाश देनेके बाद अपनी मजदूरी मांगते ह तब हाय धन हानि कारो बारमें हानि होने अथवा कोओ अन्य ही दूसरा बहाना बनाकर टाल देते ह।' अिस प्रकार मजदूरोंके पक्षका ढोंग भरनेवाले नेता (श्री सेठ) के पास अनके अखबारके सम्पादक जब स्वास्थ्यकी खराबी और कामके आधिक्यके कारण अक सहायककी मांग करते ह तो व अन्हें अक नहीं दस आदमी मिल जानेकी धमकी देते ह। जिसी तरह यह नेता विद्यार्थियोंको धोखा देता है। मजिस्ट्रेसाहब नारी मुक्तिकी बात कह कर अपने घरमें अपनी पत्नीको सताता है। और या अतिथिका स्वागत' आधुनिक नेताओंके ढोंग भावनापर अक करारा व्यंग्य बन जाता है। जिससे दिखावापरस्त न्यायकी पोल खुल जाती है।

विज्ञान और कलाके क्षेत्रोंमें पूजीवादी व्यवस्था विस्तार दुष्प्रभावके अनेक यथार्थ चित्र भी अन्तर नाटकोंमें मिलते ह। आजकल किस प्रकार डाक्टरोंका पेशा रोग-मुक्ति नहीं बल्कि पैसा कमाना बन गया है अिसका अक चित्र आपसका समझौता अकांकीमें है। जिसमें दो डाक्टर कमीशनके आधारपर अक दूसरेके पास मरीज भेजनेका समझौता करते ह। जिसके प्रधान पात्र डाक्टर वर्मा अपनी पत्नीसे फर्माते हैं— 'और तुम नहीं जानती बाहरके रोगियोंसे कितना लाभ होता है। काम खराब हो जाअ तो डर नहीं बिगड़ जाय तो डर नहीं और यदि ठीक हो जाअ तो बाहरसे और भी रोगी आने लगते हैं। और फिर सबसे बड़ी बात यह है कि अनसे फीस अधिक ली जा सकती है।' विज्ञानके साथ कलाके क्षेत्रमें भी पूजीवादी मनोवृत्तियोंका कैसा दुष्प्रभाव पड़ गया है, जिसके भी कओ चित्र मस्कै-बाजोंका स्वर्ग पतरे और पक्का गाना नामक नाटकोंमें मिलते ह। मस्कैबाजोंका स्वर्ग" फिल्मी कलाकारोंपर लिखा गया अेक प्रहसन है जिसमें अक फिल्मी अभिनेता परेश कहता है, 'यहाँ किसी साहि-त्यिकके लिअ कोओ जगह नहीं।' अिसके अुत्तरमें सुमका, दूसरा स्वाभिमानी कथाकार मित्र हरीश कहता है— 'अच्छे साहित्यिकके लिअ अभी कहीं भी जगह नहीं!' अिस नाटकके अन्तमें खुशामदपरस्त फिल्मी दुनियापर हरीशका यह अन्तिम वाक्य बिलकुल फिट बैठता है— यह फिल्मी दुनिया है—यह मस्कैबाजोंका स्वर्ग!

'पैतरे' में भी अिसी तरह बम्बअीके फिल्मी क्षेत्रमें काम करनेवाले निर्देशकों और कलाकारोंकी पतनोन्मुखी प्रवृत्तियोंका बड़ा यथार्थ और सुन्दर खाका खींचा गया है जो पूजीवादी प्रभावका भी अुद्घाटन करता है।

पक्का गाना अकांकीमें फिल्म कलाके क्षेत्रमें पूजीपतियोंकी धाधलीके विषयमें दीपक कहता है 'पूजीपति अिस मैदानमें जो कुछ पैदा करना चाहता है, वह यह आर्ट नहीं बल्कि रुपया है। अुसे गालियाँ खाकर भी रुपया मिल जाअ तो अुसे अिससे भी विषाद न होगा। वह धड़ाधड़ अैसी फिल्में बनाअेगा जिनमें सरमाअेदारोंको गालियाँ मिलें और अुनकी जब भर हो। लेकिन ज्यों ही पब्लिक अनसे अुकतायी कि अुसने फिर स्टाअिक मुरू की। सरमायेका अधिकार अिसलिये हुआ तो कुछ हो। य स्थल कलाके क्षेत्रमें पूजीके सम्बन्धोंका विरोध करते ह और कलाके

परिवेशको गन्दा करनेवाले पूंजीके प्रभावकी यथार्थताका उद्घाटित करते हैं।

'धनमिया' नाटकमें समाजकी पूंजीवादी जहनियत और आजके न्यायकी परिचय लुकमनके अिस कथनसे होता है — "यह हिन्दुस्तान है। यहां काबलियतकी कदर नहीं दिखावेकी कदर है। जो साधु गाली दे वह सिद्ध, जो डाक्टर मरीजोंसे साथ सीधेपनसे पेश आय वह धनवन्तरीका बाप और जो वकील जितना ही झूठा हो अुतना ही सफल। वकालत आखिर रह ही क्या गयी। सचका सच और झूठको झूठ साबित कर दिखाना वकालत नहीं, बल्कि हर तरीकेसे झूठका सच साबित कर देना वकालत है।"

अश्कने अपने नाटक "अुड़ान" में मायाके चरित्र-पर युद्धकी विभीषिकाके बुरे प्रभाव दिखाकर संकेत रूपमें युद्धका विरोध करते हुअे शान्तिका पक्ष ग्रहण किया है। माया कहती है "बमबारीने जहां मकानोंके परखचे अुड़ा दिये, जहां अुनके वासियोंकी लज्जाको भी तार-तारकर दिया। जिनकी शर्म अुन्हें शरीरोंसे झांकने तककी आज्ञा न देती थी। अुन्हें मैंने नंगे मुंह नंगे मुंह क्या, नंगे शरीर सड़कोंपर भागते देखा है।" युद्धकी विभीषिकाका नग्न रूप देखनेवाली माया अेक गीतके सहारे युद्धके आघातोंको भूलकर बड़े बड़े जंगल और पहाड़ पार करती रहा। मायाका यह गीत मानवकी शान्ति भावनाका प्रतीक है जो युद्ध नहीं चाहता।

अश्कने धर्मके नामपर साम्प्रदायिकताको अुभाडनवाली पूंजीवादी मनोवृत्ति और अुसके पीछे साम्राजी साजिशका भण्डा-फोड़ "तूफानसे पहले" नामक अपने अेकांकीमें किया है। अिसमें मुसलमानोंकी रक्षा करते हुअे हिन्दू गुण्डेसे मारा जानेवाला प्रधान पात्र घीसू मरते समय दांत पीसकर कहता है — अेक तूफान आ रहा है। जिसमें ये सब दाग, ये गुण्डे ये धर्म और जाति-पांतिके दर्द, गरीबोंका लोहू पीनेवाले पूंजीपति, ये भोले-भाले लोगोंको लड़वाकर अपना अुल्लू सीधा करनेवाले नेता—सब मिट जाअेंगे। नयी दुनिया बनेगी जिसमें गरीबोंका, मजदूरोंका राज होगा जहां हिन्दू-मुसलमान न होंगे काले-गोरे न होंगे। सब अिन्सान भाअी-भाअी होंगे!" यह कथन अश्कके प्रगतिशील जनवादी दृष्टिकोणका अुद्घाटक है। अिससे यह प्रतीत होता है कि समाजकी प्रतिक्रियावादी, जन-विरोधी शक्तियोंकी मिटती हुअी सत्ता और वर्गहीन समाजके निर्माणके भविष्यके प्रति लेखक कितना जागरूक है।

अश्कने अपने नाटकोंमें मध्यवर्गीय जीवनमें पूंजीवादी प्रभावोंसे अुत्पन्न विशृंखलताओं और अुच्छृं-खलताओं तथा अुनके जीवनके अन्तर्विरोधोंके व्यंगात्मक चित्र अुपस्थित करनेके साथ साथ जीवनके अुदात्त मानवीय भावोंका चित्र भी प्रस्तुत किया है जो मानव विकासका आशावादी प्रतीक है।

अिस प्रकार वर्ग समाजके युग-सत्यको विभिन्न रूपोंमें अश्कने अपने नाटकोंमें यथार्थवादी ढंगसे अभिव्यक्त किया है।



कविता :

स्वप्न-सत्य साकार करो तुम!

श्री प्रभुदयालु अग्निहोत्री, अेम. अे. :

सहज सुभग शृंगार करो तुम।
नील निलयकी नील निवासिनि, भूतलपर अभिसार करो तुम।

द्वार द्वारके दीप निवापित और तमोरेखाअें गहरी,
यौवनके सपनोंसे अस्थिर किन्तु सजग अम्बरके प्रहरी,
मन्द चरण छिप-छिप पलकोंपर अुतर सकल श्रमताप हरो तुम।

बिखरीं खण्ड-खण्ड प्रतिमाअें मन्दिर आज बना खण्डहर है,
जीवन जलता पृष्ठ कि जिसका, ध्वस्त-ध्वस्त अक्षर-अक्षर है,
पटाक्षेप कर दे रसरंगिणि, नव वितान-विस्तार करो तुम।

लघु सर अेक, अनन्त लहरियाँ, क्षुब्ध-क्षुब्ध सर अन्तर्मन,
लघु सुर अेक अनन्त विकल स्मृतियोंका पल-पलमें आवर्तन,
अपने शीतल मदिर स्पर्शसे चेतनताका भार हरो तुम।

आज प्रभंजनसे कम्पित हैं स्नेह-समर्पणकी दीवारें,
और अमर विश्वास हिला है, सूख चलीं मधुरसकी धारें,
अब नीरस आख्यान हो चला जिसका अुपसंहार करो तुम।

कबतक ठहरे ज्योतिस्नेह जल चुका और धूमित है बाती,
घूम रही है सूनेपनमें अेक करुण-ध्वनि-सी टकराती,
युगयुगसे रीते अन्तरमें आज हृदयभर प्यार भरो तुम।

कैसा शीतल अंक कि जिसमें तम-प्रकाश शिशुसम पलते हैं!
औ, वट जिसकी डाल-डालपर जन्म-मरण समरस फलते हैं!
आज हिरण्मय पात्र हटाकर स्वप्न-सत्य साकार करो तुम।

[अकोला।



ओड़िया

समग्र भारतरे प्राय आठ शह भाषा प्रचलित, तन्मध्यरु अधिकाश साहित्य विवर्जित केवल कथ्य भाषा। हिन्दी, बगला, तेलुगु, तामिल, कानारिज (कन्नड), मलयालम, मरहट्टी, गुजराती, गुरुमुखी, नेपाली, अुर्दू ओ आमभानक ओडिया प्रभृति अत्यल्प भाषा प्राचीन ओ आधुनिक साहित्य विभवरे प्रकृत भाषा नामरे अभिहित हुअे। वर्तमान युगरे ओडिआ भाषा अेहि सबु परवर्ती भाषा समाजरे समान आसनर अधिकारी न हेले हे–प्राचीन विभवरे अे जे शीर्ष स्थान अधिकार करीब, अेहा अनेक भाषाविद् स्पष्टरूपे स्वीकार करि अछन्ति।

हिन्दी

समग्र भारतमें प्राय आठ सौ प्रकारकी भाषाअे प्रचलित हैं। अुनके मध्यमेंसे अधिकाश साहित्य-विवर्जित केवल बोलचालकी (कथ्य) भाषाअे हैं। हिन्दी, बगला, तेलुगु, तामिल, मलयाल्म, कन्नड, मराठी, गुजराती, गुरुमुखी, नेपाली अुर्दू और हम लोगोंकी ओडिया प्रभृति अत्यल्प भाषाअे प्राचीन तथा आधुनिक साहित्य वैभवमें प्रकृत (वास्तव) भाषाओंके नामसे अभिहित होती हैं। वर्तमान युगमें ओडिया भाषा अिन सब परवर्ती भाषा-समाजमें समान आसनकी अधिकारी न होनेपर भी प्राचीन वैभवमें यह अवश्य शीर्ष स्थानपर अधिकार करेगी, यह अनेक भाषाविद स्पष्ट रूपसे स्वीकार कर चुके हैं।

मराठी

राष्ट्रोन्नतीचे नियम

१. "जे पोटी तेच ओठी" ही हृदयशुद्धीची परीक्षा आहे
२ "चित्त शुद्ध जरी शत्रु मित्र होती" हेच सत्य आहे
३ वाअीटाला चागल्याच्या नावाखाली सपू देणे तर धोक्याचे आहेच, पण चागल्या माणसाना निष्कारण बदनाम करणे हे अधिकच हानिकारक आहे
४ दुसरा वाअीट ठरला ह्मणजे तुह्मी चागले ठरणार नाही
५ कर्तव्य–पथावर सोवती मिळण्याची वाट पाहू नका
६ स्वत पेक्षा अधिक शाहण्यापासून शिका व कमी शाहण्यास शिकवा, सपूर्ण समाजाम वर ओढण्याचे यापेक्षा दुसरे हमखास साधन

हिन्दी

राष्ट्रोन्नतिके नियम

१ 'जो मनमें वही मुँहमें' यही हृदय-शुद्धिकी परीक्षा है।
२ 'हृदय शुद्ध हो तो शत्रु मित्र बन जाअे।' यही सत्य है।
३ बुराअीको अच्छाअीका बुरका पहननेकी अिजाजत देना तो सङ्कटकारक हैही, किन्तु भलाअीकी बदनामी करना अुससे भी अधिक हानिकारक है।
४ दूसरेको बुरा कह देनेसे आप अच्छे नही सिद्ध होंगे।
५ कर्तव्य पथपर साथीकी राह देखनेमें समय मत खोअिअे।
६ अपनेसे अधिक बुद्धिमानोंसे पढिअे, कम बुद्धिमानोको पढाअिअे। पूरे समाजको अूपर अुठानेका अिससे अधिक सच्चा साधन सम्भव नही।



[सूचना—'राष्ट्रभारती' में समालोचनार्थ पुस्तकोंकी दो-दो प्रतियाँ ही सम्पादकके पास आनी चाहिये।]

राधा और राजन (अुपन्यास) लेखक—श्री बल्लभद्र ठाकुर पृष्ठ संख्या—२७६, मूल्य साढ़े पाँच रु० पैसे, सोलह पन्नी। प्रकाशक ग्रामोत्थान विद्यापीठ संगरिया (राजस्थान)।

लेखकके शब्दोंमें यह अुपन्यास शहीदोंकी कहानी है। और शहीदके रूपमें अुसका नायक राजन है। राजन गम्भीर प्रतिभाशाली युवक है, अुसके हृदयमें अुत्कट राष्ट्रप्रेम है और जिसीलिअ वह प्रतिभाशाली होते हुअ भी कालेज छोड़ देता है तथा गांधी सा बनने की अभिलाषा थी। वह चरित्रवान भी है। नारी जातिके प्रति श्रद्धा रखता है अैसी हालतमें दूसरे शालूके साथ जो व्योहार करता है वह अुचित नहीं प्रतीत होता। लेखकका कहना है कि जिस अुपन्यासमें शहीद पात्रोंको मानव रूपमें ही अुपस्थित किया गया है।" शहीद पात्र तो केवल राजन ही है, और यह घटना राजनके स्वभावके प्रतिकूल जान पड़ती है। राजन स्वयं ही शालीन रहता स्वाभाविक वातावरणमें अनाचार भी मदद रहता है जब कि कृत्रिम मनोहर मोहक अैसे भंवर वहीं अनाचार वात्सल्य हो अुठता है। लीलाके पिता पण्डित रमाशंकरका अुसपर आतंक होना भी विचित्र बात है।

कर्म युग और प्रगतिवाद प्रवाहमें बहनेवाला नवयुवक है। यही हाल राधाका भी है परन्तु अुसको शिक्षा दीक्षा राजनके द्वारा हुआ। जिसलिअ दोनोंमें सम्बन्ध जाता है और देश-प्रेमिकाके रूपमें सामने आती है। मानो हरिऔधके 'प्रिय प्रवास' की राधा हो। काफी भी सफलता है परन्तु तब जब राजन राजद्रोहके अपराधमें फांसीके तख्तेपर चढ़कर हंसते हंसते मृत्युका आलिंगन कर लेता है। जिसके पहले लन्दन लौटनेके बादसे तो वह पूरा बैरिस्टर ही था साहब था।

लीलाका चरित्र तो प्रारम्भसे अन्ततक रहस्यमय है, परन्तु अुसमें नम्रता और पतिके प्रति आस्था रखना अवश्य है। अपने पिता पण्डित रामशंकरकी बातमान बचनके लिअ लाला राजनके साथ बातचीत करने आयी थी। अुस समय अुसने कहा था 'अुस पिताकी सामाजिक स्थितिको सुरक्षाके लिअ ही तो मान चली हूं। पिताका यह रूप तो बीभत्स और असा बरबर है। बादमें पण्डित रामशंकरको भी अपनी हरकतोंपर पश्चात्ताप हुआ और वे लालाकी शरणमें जा गये। महन्त प्रेमाकीर्तिका समावेश अुपन्यासमें बिल्कुल अनावश्यक प्रतीत होता है। राधाका माँ 'चाचा' पूरी नाटकीय भी है कविवर मैथिलीशरण गुप्तकी भांति 'आंचलमें दूध और आंखोंमें पानी' दिखाई।

अुपन्यासमें रजिया रहीमखान और बनारसी न भी होते तो भी काम चल जाता परन्तु अुन चरित्रोंने तत्कालीन अुपन्यासकी मार्मिकताको या प्रदान की है। अिनके चरित्रका विकास भी सुन्दर है। हरिऔधके

चरित्रका स्फुरित होनेका मौका ही नहीं मिला। वे अत्र धूमिल छाया-सी रह गया।

मानव— (उत्थान स्थिति और विकास) लेखक, श्री बलभद्र ठाकुर पृष्ठसंख्या २८० स्वरूपानुसार सोलह पन्ने। प्रकाशक ग्रामोत्थान विद्यापीठ संगरिया (राजस्थान)।

लेखकके शब्दोंमें 'अिस छोटी सी पुस्तकमें मानव समाजके लाखों वर्षोंके परिवर्तन और निर्माणकी कहानी है।' पुस्तकका आरम्भ 'पृथ्वी और अुसके मूल तत्त्वसे होता है" फिर पृथ्वीपर मनुष्यके आगमनकी चर्चा करती है। और फिर विभिन्न अध्यायोंमें अुसके सांस्कृतिक एवं सामाजिक विकासपर प्रकाश डाला जाता है। लेखकका मत है कि 'भारतीय समाज अबतक विकासकी चार अवस्थाओंको देख चुका है।' अुनका यह भी मत है कि ५ हजार वर्ष पूर्व समाजका रूप आदि साम्यवादी था यह हो सकता है, परन्तु वह साम्यवाद आजके साम्यवादसे भिन्न था। वर्ग-चेतना तो थी, परन्तु वर्ग-संघर्षकी भावनाका अभाव था। पुस्तकमें विद्यार्थियों तथा साधारण ज्ञान बढ़ानेकी अिच्छा रखनेवालोंको पर्याप्त सामग्री मिल सकती है।

रावीका तट [लेखक—श्री राधेश्याम द्विवेदी, प्रकाशक केशव-साहित्य-कुटीर, करेरा (मध्यभारत) पृष्ठ संख्या ७२, मूल्य १।।।)] बहुत अधिक मूल्य है केवल ७२ पृष्ठोंवाली पुस्तिकाका।

अिस नवोदित कविने अपनी अिस छोटी सी काव्य पुस्तिकाको, सन् १८५७के सिपाही विद्रोहसे लेकर २६ जनवरी १९५०की गणतान्त्रिक स्वाधीनताकी घोषणा तककी आन्दोलन पृष्ठभूमिपर खड़ा करनेका रूप देनेका प्रथम प्रयास किया है। विषयसे संबंधित जिन तिथियोंका लेखकने सूचीपत्रमें घटनाक्रमके अनुसार अुल्लेख किया है, अुन विस्तृत क्षणोंमें तो प्रतिभासम्पन्न हाथोंकी समर्थ लेखनी ही विचरण कर सकती थी। नवकविने घटनाओंका नीरस तुकबन्दीमें अुल्लेख मात्र कर दिया है।

पुस्तक रावीके अुस तटसे आरम्भ होती है जहाँ लाला लाजपतरायके बलिदानसे शोक-छाया मँडरा रही है और अन्तमें भारतमें स्वतन्त्रता देवीके आनेपर भी रावीके तटपर वही शोक-छाया मँडराती रहती है। रावी जिसके तटपर पंजाब-केसरी लाला लाजपतरायका अंतिम संस्कार हुआ, जिसके तटपर ३१ दिसम्बर १९२९को अर्धरात्रिको पूर्ण स्वाधीनताका प्रस्ताव पास हुआ और २६ जनवरी सन् ३०को राष्ट्रके कर्णधारोंने स्वाधीनताकी प्रतिज्ञा दुहरायी, जिसके तटपर क्रान्तिकारी भगतसिंहको कारामुक्त करानेके हेतु बम परीक्षण करते हुअे साथी भगवतीचरण शहीद हुअे, वही रावी स्वतन्त्रताके अवसरपर भारतीय द्वारके बाहर निष्कासित कर दी गयी, यह भावना अपने-आपमें जितनी नाटकीय और प्रभावशाली है कविने अपनी रचनामें अुसका अुपयोग नहीं किया।

दुर्बल अभिव्यक्ति और अनुभूतिकी शिथिलताने पुस्तकको नीरस बना दिया है। कहीं भी पाठकको रसमग्न कर देनेवाली काव्यशक्तिके दर्शन नहीं होते। अिस कच्चे प्रयासमें अैसे अनेक स्थल हैं जहाँ भाषाके कदम बुरी तरह लड़खड़ाये हैं और विचित्र प्रयोगोंमें कविता लुप्तप्राय हो गयी है। अेक अुदाहरण देखिअे—

> और अहिंसात्मक आन्दोलन
> से घबड़ा जाता है शासन।
> हिलने लगती हैं यह जड़ें
> वर्षोंकी तिष्ठित, दृढ़ आसन।।

गार्हस्थ्य जीवन और ग्राम सेवा (लेखक—श्री परशुराम चतुर्वेदी, प्रकाशक—साहित्य भवन लिमिटेड, अिलाहाबाद, पृष्ठ संख्या ७२, मूल्य बारह आना)

गार्हस्थ्य जीवन और ग्राम सेवा दो विभिन्न क्षेत्र और विषय हैं। प्रत्येक विषयपर प्रतिपादन अेवं समस्याओंको सुलझानेकी दृष्टिसे वास्तवमें बृहत् ग्रन्थ लिखा जाना चाहिअे था जिसमें गृह जीवनकी समस्याओंका समग्र विवेचन प्रस्तुत हो। यही बात ग्राम सेवाके सम्बन्धमें कही जा सकती है। परन्तु प्रस्तुत पुस्तिका किसी बड़े ग्रन्थकी रूपरेखा अथवा सार-संकलन मात्र प्रतीत होती है।

प्रकाशकने अपने वक्तव्यमें स्वीकार किया है कि 'गार्हस्थ्य जीवन और ग्राम सेवाके व्यवहारिक पक्षकी

ओर जितना कम ध्यान दिया जाता है अुतना कम ध्यान शायद ही अन्य किसी ओर दिया जाता हो।" किन्तु प्रकाशकके शब्दोंमें अुसके 'जागरूक लेखक' ने भी अिस विषयकी ओर वास्तवमें जितना ध्यान देना चाहिअे, नहीं दिया।

पुस्तिकाके गार्हस्थ्य जीवनवाले अंशमें पाँच परिच्छेद हैं और प्रत्येक परिच्छेद चारसे पाँच पृष्ठकी परिमित सीमामें समाप्त किया गया है। फुटनोटकी तरह लिखे गये अिन पाँचों परिच्छेदोंका क्रम अिस प्रकार है ...गार्हस्थ्य-जीवन, गृहवस्तु-व्यवस्था, आय-व्यय, वेशभूषा और बातचीत। केवल तीस पृष्ठोंमें लेखकने गार्हस्थ्य जीवन सम्बन्धी अपने व्यवहारिक सुझाव देकर प्रथम अंश समाप्त कर दिया है। अिन तीस पृष्ठोंमें थ्योरी अंश ही अधिक है, दृष्टान्तोंका समावेश नहींके बराबर है जिससे पुस्तककी अुपादेयता घट गयी है। परन्तु खूबी यही है कि संक्षेपमें सांकेतिक ढंगसे सब कुछ कह दिया गया है। ग्राम-सेवा सम्बन्धी दूसरे अंशमें यह खूबी नहीं है। ग्राम-सेवाके लिअे शहरोंसे गाँवोंमें जानेवाले युवक या अन्य सेवापरायण व्यक्तियोंके सम्मुख आनेवाली समस्याअें भी यथार्थ रूपमें लेखक द्वारा नहीं अुठायी गयीं। शहरों अेवं राजनैतिक आन्दोलनोंके प्रभाववश हमारे गाँवोंका स्वरूप वह नहीं रहा जैसा लेखकने बार-बार दुहराया है। न ही ग्रामीणोंकी कट्टरपंथी वृत्ति अुतनी तीव्र रह गयी है। गाँवोंकी स्थिति पहलेसे बहुत परिवर्तित हुअे हैं और अुनकी समस्याओंके रूप अब कुछ दूसरे ही हैं जिनसे आजके ग्राम-सेवकोंको संघर्ष करना पड़ता है। "ग्राम सेवाके सूत्र" महत्वपूर्ण अध्याय है परन्तु अुसका संक्षिप्त रूप अुसके महत्वको घटाना ही है। जिन सूत्रोंके प्रकाशमें कुछ तथ्योंकी चर्चा अपेक्षित है। फिर भी पुस्तिका कार्यव्यस्त जीवनमें अवकाशके समय देख लेने योग्य है। छपाओी गेट-अप तथा मूल्य यथायोग्य है।

—अनिलकुमार, सा. र.

महात्मा गान्धी—जीवन कथा:—ले०—ना. सी फड़के, प्रका०—अंजलि प्रकाशन लिमि०, फरोजशाह मेहता रोड, बम्बअी १। पृष्ठ सं १६२ मूल्य १॥)

मराठीके ख्यातनामा ललित साहित्य स्रष्टा श्री प्रो० ना सी फड़के द्वारा मूल मराठीमें लिखित पुस्तकका यह हिन्दी-रूपान्तर है। अनुवादक हैं श्री प माणिकलाल परदेशी।

अिसमें जैसा कि पुस्तकका नाम है, महात्मा गांधीजीकी जीवन कथा है किन्तु यह आत्मकथापरक नहीं है, न संस्मरणात्मक, न कथात्मक है। अिसे अुपन्यासपरक कह सकते हैं। यही कारण है कि अिसकी रोचकता बढ़ गयी है। विषय अति परिचित, जाना-समझा हुआ होते हुअे भी पढ़ते ही बनता है। अिसके लिअे भारतके ही नहीं, संसारके सरताज महान् पुरुष भारतके प्रधान मंत्री श्री प जवाहरलाल नेहरूकी भूमिकाने चार चाँद लगा दिये हैं। और भी अिस पुस्तकपर कअी सम्माननीय व्यक्तियोंकी सम्मतियाँ हैं। प नेहरूके शब्दोंमें अिसका हर कोअी समर्थन करेगा कि—"महात्मा गांधीके जीवनका संदेश प्रो. फड़केने अपनी अिस सुंदर पुस्तकमें अत्यंत प्रभावपूर्ण ढंगसे विशद किया है। मेरी हार्दिक कामना है कि यह चरित्र सब लोग पढ़ें और अिसपर मनन करें।"

अिस दिशामें लेखनी चलानेके लिअे प्रो फड़केजी बधाअीके पात्र हैं। प्रस्तुत पुस्तकमें गांधीजीकी अुपदेश-वाणी, विशिष्ट घटनाओंका निर्विवार विवरण और अभ्यासके लिअे प्रश्न भी दिये गये हैं। पुस्तक हाअीस्कूल कक्षाओंमें तथा राष्ट्रभाषाकी परीक्षाओंमें स्थान देने योग्य है। भाषा दोषरहित, सरल, स्वाभाविक है।

पुस्तककी छपाअी-सफाअी अच्छी है।

लड़खड़ाते कदम—ले० प्रोफेसर महेन्द्र भटनागर, प्रकाशक—स्वरूप ब्रदर्स, मजूरी बाजार, अिन्दौर। पृष्ठ स ७८। मूल्य अेक रुपया।

आज पाठक-वर्ग कहानी द्वारा मनोरंजन मात्र नहीं चाहता, अपनी व्यथाकी कथाको वह अुसमें ढूँढ़ता है। यहाँ 'अपनी व्यथा' से मतलब व्यक्तिकी, समाजकी राष्ट्रकी और अिनसे भी अूपर अुठकर मानवकी व्यथा-मजबूरीसे है। सुमधुरी ही अपना दुख दर्द सुनकर-सुना

कर इलना कर सकते हैं। जिससे अुनके हृदयका अंधकार प्रच्छन्न हो, हृदयमें नव प्रकाश और प्रेरणाकी शक्तिका संचार होता है। ठीक असी दिशामें प्रस्तुत कहानी संग्रहकी प्रत्येक रचना सन्नद्ध है।

यद्यपि कहीं कहीं कथानकके बीचकी घटनाओंमें अेकदम अेक परिवर्तन सी जान पड़ती है तथापि पाँच सात मिनटमें पढ़ी जा सकनेवाली छोटी रचनाओंका होना विशेष आकर्षक जान पड़ता है। प्रथम कहानीमें चपरासी परमाका पार्वतीसे यह कहना कि कित्ती खूबसूरत लग है तू पारवती! भाषाकी दृष्टिसे स्वाभाविक और सुंदर प्रयोगका बताना है।

तरुण भटनागरजी कवि कहानीकार और आलोचकके रूपमें साधना कर रहे हैं। यदि वे बढ़ते ही चले कदम बढ़ाकर तो हिंदीको अुनसे बहुत कुछ आशा है।

अिसमें संदेह नहीं कि पाठकों द्वारा अिसका अच्छा स्वागत होगा।

—अभिराम, सा र

शकुन्तला दर्शन — लेखक सिद्धान्तवाचस्पति मूलाराम त्रिपाठी साहित्यरत्न शिक्षा विशारद प्रकाशक —भारतीय साहित्य मंदिर, गोरखपुर हवाबाग जबलपुर। पृष्ठसंख्या १२८ मूल्य १।)

महाकवि कालिदासका अभिज्ञान शाकुंतल संस्कृत साहित्यका अेक विश्वविख्यात नाटक है। संसारकी प्रमुख भाषाओंमें अुसके अनुवाद भी हो चुके हैं। हिंदामें राजा लक्ष्मणसिंहने अिसका सुंदर अनुवाद किया है। प्रस्तुत पुस्तक मूल संस्कृत नाटक और अुसके अिसी हिंदी अनुवादकी सर्वांगीण समीक्षा है। अिसमें लेखकने शाकुंतलके सम्पूर्ण विषयपर, अुसके केन्द्र बिंदु कथा भाग, नाटकीय तत्व दिव्य-तत्वोंका समावेश चरित्र चित्रण रस विचार अैतिहासिकता भौगोलिक तथ्य सांस्कृतिक परम्परा विश्वव्यापी प्रभाव श्रेष्ठ अनुवाद अित्यादि पंद्रह अध्यायों द्वारा अुत्कृष्ट प्रकाश डाला है।

पात्रोंके चरित्र लेखनमें सबसे अधिक जागरूकता अेवं निपुणतासे प्रस्तुत किये हैं—विशेषतः शकुन्तलाके चरित्र चित्रणका तो नारी जीवनके गंभीर मनोवैज्ञानिक निरीक्षणके पश्चात् ही खींचा गया प्रतीत होता है।

पुस्तक छोटी होते हुअे भी समीक्षा जगत्में अवश्य ही अेक नया और अूँचा स्तर स्थापित करती है। यथासंभव सभी दृष्टियोंसे लेखकने शकुन्तलाके नाटकत्व और स्थायित्वकी परीक्षा की है। भारतीय नाट्यशास्त्रकी दृष्टिसे तो लेखकने नाटककी परीक्षा की ही है साथ ही शेक्सपियरके कुछ नाटकोंसे भी अुसकी तुलना की गयी है अतः पुस्तक जहाँ अेक ओर परीक्षार्थियोंके विशद अध्ययनके अुपयोगकी वस्तु है तो दूसरी ओर साहित्य मर्मज्ञोंके लिअे भी चिन्तन सामग्री प्रस्तुत करती है। पुस्तककी छपाअी सफाअी अच्छी ही है।

—मूलशंकर त्रिपाठी



अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन पाँचवाँ अधिवेशन, नागपुर :

अ. भा. राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका पाँचवाँ अधिवेशन जो नागपुरमें हुआ बडे महत्वका था। श्री काकासाहब गाडगील अुसके अध्यक्ष थे और मद्रासके राज्यपाल श्री श्रीप्रकाश-जीने अुसका अुद्घाटन किया। श्री गाडगीलजीने अपने अध्यक्षीय भाषणमें राष्ट्रभाषा हिन्दीके सम्बन्धमें दो-तीन बडे महत्वके प्रश्नोंकी चर्चा की और श्री श्रीप्रकाशजीने भी कुछ नये प्रश्न अुप-स्थित किये। सम्मेलनमें कोअी ६०० के लगभग भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें राष्ट्रभाषा प्रचारका कार्य करनेवाले प्रचारक-प्रतिनिधि अिकट्ठे हुअे थे। मणिपुर, आसाम, बंगाल, अुत्कल, कच्छ, सौराष्ट्र, गुजरात, बम्बअी, महाराष्ट्र, कर्नाटक, हैदराबाद, आंध्र, राजस्थान, मध्यभारत, मध्यप्रदेशसे प्रतिनिधि आये और अुनमें ९० प्रतिशत हिन्दीतर भाषी थे।

अिन प्रचारकोंका प्रचार-कार्य मुख्यतः हिन्दीतर भाषी लोगोंमें ही हो रहा है। प्रचार-सम्मेलनका अुद्देश्य यही तो है कि भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके प्रचारक आपसमें अेक दूसरेसे मिलें, अपने कार्यका लेखा-जोखा करें, प्रचार-कार्यकी समस्याअें और अुनके हलपर विचार करें, और यदि हो सके, तो अपने कार्यमें बडे नेताओंसे मार्ग-निर्देशन भी प्राप्त करें।

श्री श्रीप्रकाशजीने सम्मेलनका अुद्घाटन करना स्वीकार किया, यह वास्तवमें बडी आशाजनक बात थी। अुन्होंने ४५ मिनटका लम्बा भाषण दिया, परन्तु सुननेवालोंको, जो अधिकतर हिन्दीतर भाषी थे, अिस बातका आश्चर्य हुआ कि अुन्होंने जो बातें कहीं वे अधिक-तर हिन्दी-भाषी-जनोंके लिअे थीं। सम्भवतः अुद्घाटनकर्ता स्वयं हिन्दी भाषी थे, अतः अुन्होंने अिस अवसरका अुपयोग अपने हिन्दी-भाषी बन्धुओंको जाग्रत करनेके लिये करना ही अच्छा समझा।

डंडेके बल प्रचार !

यह बार-बार सुननेमें आता है कि राष्ट्र-भाषाका प्रचार जोर-जबरदस्तीसे नहीं होना चाहिअे, डंडेके बलसे अुसका प्रचार नहीं किया जा सकेगा। श्री जवाहरलाल नेहरूने भी यह बात अेक-दो बार कही है और नागपुर-सम्मेलनके अुद्घाटक महोदयने भी अिस बातको अपने भाषणमें दोहराया। सम्मेलनमें अेकत्र हुअे प्रचारक अिस बातको सुनकर हैरान दिखाअी देते थे। यह बात ही अुनकी समझमें न आ सकी कि हिन्दीका प्रचार जबरदस्ती कहाँ किया जा रहा है, कौन कर रहा है ? और जबरदस्तीसे हिन्दीका प्रचार किस प्रकार किया जा सकता है ? ये सब जानते हैं कि हिन्दीका प्रचार किस प्रकार किया गया है और आज भी किस प्रकारसे

हो रहा है। हिन्दी-भाषी प्रान्तोंमें तो हिन्दीके प्रचारका प्रश्न ही नहीं है। हिन्दीतर भाषी प्रान्तोंमें जहाँ हिन्दीका प्रचार किया जा रहा है, वहाँ स्वराज्य मिलनेसे पहले तो सरकारके विरोधके होते हुअे भी, जनताकी मीठी नजर प्राप्त कर ही अुसका प्रचार बढाया गया और स्वराज्य मिलनेके बाद तो प्रान्तोंमें प्रान्तीय भावनाअें प्रबल होनेके कारण विरोध बढा ही है, घटा नहीं। जो राज्य-सरकारें हिन्दीके काममें सहायता करना चाहती हैं, वे भी यदि डर-डरकर कदम रखनेको बाध्य हो रही हैं तो प्रचारकगण तथा प्रचार-संस्थाअें किसके बलपर जोर-जबरदस्ती कर सकती हैं, यह समझना अुनके लिअे कठिन था। जो लोग जोर जबरदस्ती-की बातें करते हैं वे शायद वस्तुस्थितिको जानते ही नहीं, अथवा यों ही कुछ कहनेके लिअे अैसी बातें कह देते हैं। शायद कुछ लोगोंको अैसी बातें सुननेमें यह अच्छी भी लगती होगी, अिसलिअे भी सम्भव है कि कही जाती हों।

संतोंकी वाणीसे प्रभावित भाषा :

अुद्घाटक महोदयने अेक बात यह भी कही कि हिन्दीमें गाली गलौजकी क्षमता अधिक है और अुसमें अपशब्द बहुत भरे हैं। अिसे सुनकर भी सम्मेलनके प्रतिनिधियोंको बडा आश्चर्य हुआ था। और क्यों न होता? आजतक तो वे यह मानते आये थे कि हिन्दीपर सन्तोंकी वाणीका ही अधिक प्रभाव है। हिन्दी राष्ट्रभाषा बनी अुसके पहले साधुओं और सन्तों द्वारा ही अुसका सारे भारतवर्षमें प्रचार हुआ। तुलसी, सूर, कबीर, मीरा, दादू, नानक आदि सन्तोंकी वाणीसे हिन्दी समृद्ध है। कअी स्थानोंपर तो राष्ट्रभाषा-प्रचारका आरम्भ अिन सन्तोंका तथा अुनकी वाणीका प्रचार करनेसे किया गया। गुजरातमें भी अिसी प्रकार अिस कार्यका आरम्भ किया था। अिसलिअे आज तक प्रचारकोंकी जो भावना बनी हुअी थी अुसपर आघात करने-वाला मन्तव्य सुननेसे अुन्हें खेदसहित आश्चर्य होना स्वाभाविक ही है। कअी लोग गुस्सा होनेपर अंग्रेजीमें गालियाँ देने लगते हैं अिसलिअे अंग्रेजी गालियाँ देनेकी क्षमता रखनेवाली भाषा नहीं कही जा सकती, अुसी प्रकार यदि गुस्सेमें कोअी हिन्दी या अुर्दूमें गाली देने लगे तो अुसमें अुस भाषाका दोष नहीं। गाली देना कोअी अच्छी बात नहीं, अिसलिअे जब मनुष्यका अन्तर-मन अुसे अन्दरसे टोकता है तब वह दूसरी भाषाका प्रयोग करने लगता है, और समझता है कि अिस तरहसे अुसने अुसपर अेक बारीक सा परदा डाल दिया है। यही अिसका मनोवैज्ञानिक रहस्य है। अिसलिअे किसी भाषापर अिसका दोष मढना किसी प्रकार अुपयुक्त नहीं माना जा सकता।

भाषा कैसी हो ?

राष्ट्रभाषा कैसी हो अिसके सम्बन्धमें अब विवादकी आवश्यकता नहीं। प्रचलित अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओंके शब्दोंको निकालकर अुनके स्थानपर संस्कृतके भारी-भरकम शब्दोंका अुपयोग किसी प्रकार भी वांछनीय नहीं। श्री श्रीप्रकाशजीका अिस सम्बन्धमें जो मन्तव्य है वह हिन्दीके अधिकतर विद्वानोंको भी मान्य है। प्रान्तीय भाषाओं तथा हिन्दीमें परस्पर लेन-देन हो, और हिन्दी-भाषी भी अकाध दूसरी भारतीय भाषा सीखें, अुनका यह सुझाव भी अच्छा था। राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति अिसके लिअे प्रयत्न भी कर रही है।

सचमुच ही यदि हिन्दीको राष्ट्रभाषा बनना है तो अुसमें सभी प्रान्तीय भाषाओंके अुपयोगी शब्दोंको आत्मसात करनेकी क्षमता होनी चाहिये और भावना तथा विचारोंमें सारे भारतका प्रतिनिधित्व करनेकी भी शक्ति आनी चाहिये।

गाडगीलजीकी योजना :

श्री गाडगीलजीने अपने भाषणमें कुछ महत्त्वके प्रश्नोंकी चर्चा ही नहीं की, अुन्होंने हिन्दी-प्रचारकी अेक योजना भी दी। यह योजना नयी नहीं। अपने दिल्लीके अेक भाषणमें अुन्होंने यह योजना सर्वप्रथम रखी थी। योजना अच्छी है परन्तु सरकारी सहायताके बिना सफल नहीं हो सकती यही अुसकी सबसे बड़ी त्रुटि है। सरकारकी ओरसे अिस कार्यमें सहायता मिलेगी, अैसी आशा करके बैठे रहना कार्यको बड़ी हानि पहुँचाना है। सार्वजनिक संस्थाअें जो अिस कार्यमें लगी हुआी हैं, वे सब मिलकर यदि कोअी योजनाबद्ध कार्य आरम्भ करें, तो बहुत कुछ काम हो सकता है। परन्तु यह कैसे सम्भव होगा, यह प्रश्न है जिसका अुत्तर अभी तक हमें नहीं मिला।

अंग्रेजीके सम्बन्धमें :

श्री गाडगीलजीने अंग्रेजीको अेकदम न हटानेकी चेतावनी भी अपने भाषणमें दी है। विधानमें अंग्रेजीके लिअे १५ वर्ष दिये गये हैं और आज भी केन्द्र तथा राज्य सरकारोंका अधिकांश कार्य अंग्रेजीमें ही चल रहा है। अितना ही नहीं, बड़ौदा, ग्वालियर आदि स्थानोंमें, जहाँ गुजराती या हिन्दीमें काम होता था, वहाँ फिरसे अंग्रेजीको स्थान दिया गया है। अैसी स्थितिमें अंग्रेजीको अेकदम हटानेका प्रश्न अुपस्थित ही नहीं होता। प्रश्न तो यह है कि अंग्रेजी हटेगी भी, और कब हटेगी? श्री गाडगीलजीने श्री राजाजीके अेक अवतरणको देकर, अंग्रेजी भारतके लिये सरस्वती देवीकी सब देन है अिस ओर हमारा ध्यान खींचा। सरस्वती देवीकी अिस देनको हम स्वीकार कर सकते हैं परन्तु देनका मूल्यांकन भी तो सरस्वतीके पुत्र ही कर सकेंगे। साधारण जनता तो शायद अुसका मूल्य समझ भी न सकेगी। अैतिहासिक दृष्टिसे यदि देखा जाअे तो कुछ लोगोंके मतसे भारतमें अंग्रेजी राज्य भी विधाताका अेक विधान था— अर्थात् ईश्वरकी देन थी। अुसके लाभ भी गिनाये जा सकते हैं, परन्तु अिसी कारण अुसके गुलामीके तौकको तो हम सदा गलेमें लटकाये नहीं रख सकते थे। अिसी प्रकार सरस्वती देवीकी देन अंग्रेजीको भी, हमारे अूपर सदा प्रभुत्व करने नहीं दिया जा सकता। जनताके हितके लिअे राष्ट्रभाषा हिन्दीको अपना स्थान तथा प्रान्तोंमें प्रान्तीय भाषाओंको अपना स्थान देना ही होगा और वह भी यथासम्भव शीघ्रही। अिसका यह अर्थ नहीं कि अंग्रेजीका बहिष्कार किया जाअेगा। अेक वर्ग तो अंग्रेजीका अध्ययन करता ही रहेगा और अुसके द्वारा प्राप्त ज्ञानसे भारतकी सेवा भी करेगा। परन्तु अंग्रेजी पढ़ा-लिखा वर्ग आज शासनमें तथा अन्य महत्त्वके स्थानोंपर अधिकार कर बैठा है और साधारण जनतासे अलग रहकर अपनेको धन्य मानता है। अिस स्थितिमें आमूल परिवर्तन तभी होगा जब हिन्दी तथा प्रान्तीय भाषाअें, जिनको साधारण जनता भी समझती है अपना अुपयुक्त स्थान प्राप्त करेंगी और पढ़े-लिखों तथा साधारण जनतामें आज जो दूरका सम्बन्ध है वह निकटका तथा निजी सम्पर्क बन जाअेगा।

भारतकी मांगें :

श्री काकासाहब गाडगील तो जाने और माने हुअे साहित्यिक हैं। स्वाभाविक है कि वे

राष्ट्रभाषाको अुपमा देनेका मोह संवरण न कर सके । अुन्होंने अस पनिगृह जानेवाली शकुन्तलासे अुपमा दी है । अुन्हें शकुन्तला ही क्या याद आयी ? क्या अिसीलिअे कि वह भरत जिसके प्रभाव तथा गौरवके कारण अिस देशका नाम भारत पड़ा है अुसकी वह माता थी ? परन्तु यदि राष्ट्रभाषा हिन्दी हमारी राष्ट्रवाणीका रूप लेनेवाली हो तो हमारी पुरानी परम्पराके अनुसार अुसे भारती-सरस्वतीकी अुपमा देनी चाहिअे, जिसकी राष्ट्रकी पीठिकापर प्रतिष्ठा की गयी है और जिसकी पूजामें भारतकी समस्त प्रजा अुत्तमसे अुत्तम भेंट चढ़ानेको अुत्सुक है ।

श्री पराड़करजीकी हिन्दीको देन :

नागपुरमें राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनमें हिन्दीके सुप्रसिद्ध पत्रकार आजके सम्पादक श्री बाबूराव पराड़करजीको १५०१) का 'महात्मा गांधी पुरस्कार' देकर जो सम्मान दिया गया वह अपना अलग ही महत्त्व रखता है । अुनके जीवन तथा कार्यके सम्बन्धमें नवम्बरके अंकमें जो दो लेख छपे हैं, अुससे पाठकोंको पर्याप्त जानकारी मिल गयी होगी । परन्तु राष्ट्रभाषा हिन्दीके विकासकी दृष्टिसे अुन्होंने जो कार्य किया है, वह अनुपम है । राष्ट्रभाषा प्रचार समितिमें जब वे गत १३ नवम्बरको पधारे, तो अुन्होंने समितिके कार्यकर्ताओंके समक्ष हिन्दी भाषाके रूपके सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट करते हुअे कहा कि अुन्होंने हिन्दीमें अपनी लेखनी द्वारा कोअी २०० अैसे शब्दोंको हिन्दीमें टकसाली बना दिया, जो मराठी, बंगाली आदि भाषाओंसे लिये गये थे । आज वे अुस रूपमें पहचाने नहीं जाते और हिन्दीके ही बन गये हैं । अेक पत्रकार तथा लेखक अपनी लेखनी द्वारा क्या कर सकता है, अिसका यह बड़ा अच्छा अुदाहरण है । परन्तु अिसके लिअे अुसके पास विशाल हृदय, राष्ट्रीय भावना तथा समन्वय-दृष्टिका होना आवश्यक है । हमारी दृष्टिमें राष्ट्रभाषाके विकासकी दृष्टिसे श्री पराड़करजीका यह कार्य सदा अनुकरणीय रहेगा । समितिने अुनका सम्मानकर स्वयं अपना गौरव बढ़ाया है ।

सरकार सहानुभूति तथा सहयोग दे :

नागपुरके प्रचार सम्मेलनके अवसरपर अिस वर्ष राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके स्नातकोंको मध्यप्रदेशके मुख्य मन्त्री श्री रविशंकर शुक्लजी के शुभ हाथोंसे प्रमाण पत्र तथा अुपाधि-शाल दिये गये । श्री शुक्लजी कुछ अस्वस्थ होनेपर भी आये और अुन्होंने अुस समय जो दीक्षान्त भाषण दिया अुसमें अेक बड़े महत्त्वके प्रश्नकी चर्चा की । अुन्होंने राष्ट्रभाषाके प्रचारकोंसे अपने ही बलपर अिस कार्यको आगे बढ़ानेका अनुरोध किया । अुन्होंने कहा सरकार भी कुछ करती है, परन्तु वह जो करती है, वह अुस कार्यके प्रति सहानुभूति तथा सहयोग देनेकी दृष्टिसे करती है । अर्थात् मुख्य कार्य तो सार्वजनिक संस्था तथा प्रचारकोंको ही करना होगा ।

सार्वजनिक संस्थाअें तथा प्रचारक भी तो यही चाहते हैं । वे राज्य सरकारों तथा केन्द्रीय सरकारसे अनेक कार्यमें सहानुभूति तक सहयोग चाहते हैं और यही कारण है कि आज प्रचार-सम्मेलनों तथा अैसे ही दूसरे मन्चोंपर राजकीय नेताओंको लानेका प्रयास किया जाता है । स्वराज्य मिलनेसे पहले अिन संस्थाओंमें तथा सरकारी तन्त्रोंमें जो विरोध रहता था वह आज नहीं रहा अिसका निश्चित ज्ञान भी कार्यकर्ताओंका अुत्साह बढ़ानेके लिअे पर्याप्त है । परन्तु राजकीय नेतागण कभी-कभी अैसे मन्चोंपर

आतर रचनात्मक कार्यकी दृष्टिको गौण बनाकर राजनैतिक दृष्टिको ही प्रधानता देने लगते है, तव वडी विषम परिस्थिति अुपस्थित होती है। परन्तु आजके क्रांति-काल मे यह सब होगा ही। अिसे सहन करनेके सिवा दूसरा कोअी चारा नही। परन्तु हम यह आशा अवश्य करे कि राजनैतिक पक्षके नेता भी यह शीघ्र ही समझ जायगे कि अिन कार्योंसे अन्ततोगत्वा अुन्हीको बल मिलनेवाला है। रचनात्मक कार्यके द्वारा ही प्रजामें भावनाका, सगठनका तथा कार्यका बल आअेगा और बलवान प्रजाका नेतृत्व ही अुनके नेताको गौरव प्रदान करेगा।

लिपि सुधारका महत्व :

निकट भविष्यमें ही लखनअूमें अुत्तर प्रदेशके मुख्य मत्री श्री पतजीके द्वारा निमत्रित लिपि-परिषद होने जा रही है। हम अिस परिषदका स्वागत करते है। नागरी लिपिमें जो कुछ सुधार करना आवश्यक हो अुसका अव निर्णय हो जाना चाहिअे। वर्षोंसे अिस सम्बन्धमें चर्चा होती आयी है विचार-विनिमय तथा विवाद भी हुअे हैं, परन्तु अभीतक अतिम निर्णय नही हो सका। अिस अनिश्चित दशाका अत होना चाहिअे।

अिस परिषदका ध्यान हम अक विशेष बातपर दिलाना चाहते है। 'अ' की बारहखडी तथा अन्य कुछ सुधारोका प्रचलन देशमें हो चुका है। हिन्दीतर भाषी प्रातोमे राष्ट्रभाषा प्रचार समिति आदि जो सस्थाअें काम कर रही है अुनमे अधिकाशने लिखनेमें 'अ' की बाराखडीको स्वीकार किया है। आज लाखो लोग अिस तरहकी लिपि लिखने तथा पढनेके आदी हो गये है। अनेक सस्थाओका सारा प्रकाशन भी अिसी लिपिमें होता है।

अिन सुधारोको जनताने अपनाया है। अत परिषद यदि अिन प्रचलित सुधारोके पक्षमें अपना निर्णय दे तो वह हितकर ही होगा।

शास्त्रीय या विज्ञानिक दृष्टिसे हम यहाँ अिसपर किसी प्रकारकी चर्चा करना नही चाहते। सुविधाकी दृष्टिसे अिसे हिन्दीतर भाषी प्रातोमें स्वीकार किया गया है और 'अि, अु' आदिको भी अिन स्वरोका चिन्ह मानकर चलानेसे अुसमें फिरसे कोअी आपत्ति नही रहनी चाहिअे। परिषद यदि विकल्प रूपसे भी अिस पद्धतिका स्वीकार कर लेगी तो भी विरोधका कारण टल जाअेगा और सबको सन्तोष होगा।

आशा है, परिषद अिसपर अवश्य सहानुभूतिपूर्वक विचार करेगी और हिन्दीतर भाषी प्रातोके निवासियोकी कठिनाअियोको ध्यानमें रखकर, अिस सुझावको मान्य करनेमें किसी प्रकारका विवाद न खडा करेगी।

प्राच्य विद्या परिषद :

प्राच्य विद्या परिषदका अहमदाबादका अधिवेशन आतर-राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान श्री सुनीतिकुमार चाटुर्ज्याकी अध्यक्षतामें सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। देशके कोने कोनेसे प्राच्य विद्यामें दिलचस्पी रखनेवाले प्रथम पक्तिके विद्वान अुसमें अेकत्रित हुअे थे। अुसके साथ प्राचीन हस्तलिखित ग्रथोकी अेक प्रदर्शनी भी की गयी थी। प्रदर्शनीमें अधिकाश तो जैन ग्रथोकी पाण्डुलिपियाँ थी। फिर भी प्रदर्शनी दर्शनीय ही नही, अुपयोगी भी थी। परिषदके विभिन्न विभागोमें जो निबन्ध वाचन हुआ, वे भी अुस-अुस विभागके भारतीय विद्वानोके अध्ययन तथा योग्यताके परिचायक थे। गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी ओरसे परिषदके विद्वान प्रतिनिधियोका अेक प्रीति-

सम्मेलन आयोजित किया गया था। अिसमें राष्ट्रभाषाके सम्बन्धमें जो विचार भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी विद्वानों द्वारा व्यक्त किये गये वे सचमुच ही अुत्साहवर्धक थे। अेक दोको छोडकर सभी वक्ताओंने हिन्दीमें ही अपने विचार प्रगट किये। अुनका यह प्रयत्न अवश्य अभिनन्दनीय था।

परिषदके बारेमें अेक बात अवश्य खटकती रहेगी। परिषदने निबन्धोंके लिअे तो हिन्दी भाषाको स्वीकार कर लिया, परन्तु प्रयाग विश्वविद्यालयके सुप्रसिद्ध विद्वान डा० बाबूराम सक्सेनाका 'हिन्दी' को परिषदका अेक स्थायी-विभाग बनानेका प्रस्ताव कार्यसमिति की बैठकमें बहुमतसे अस्वीकृत रहा। अिस प्रस्तावका विरोध करनेवालोंका तर्क था, कि हिन्दी अभी राष्ट्रभाषा बनी नहीं, जब वह राष्ट्रभाषा बन जाअेगी तब अुसपर विचार करेंगे। अिस प्रकार तर्क करना क्या ठीक है? अिसका जनता ही विचार करेगी। विधानमें तो हिंदीको सघीय भाषाका महत्व दिया जा चुका है। जनता भी अुसको अपनाती जा रही है और अनेक वर्षोंसे राष्ट्रभाषाके रूपमें हजारों प्रचारक अुसका प्रचार करते आ रहे हैं। अैसी स्थितिमें यदि प्राच्य विद्या परिषद् श्री सक्सेनाजीका प्रस्ताव स्वीकार कर लेती, तो अुससे राष्ट्रभाषाके कार्यको बहुत बल मिलता। परन्तु यह प्रस्ताव वहाँ स्वीकार नहीं कराया जा सका, अुसका कारण हिन्दीके विद्वानोंकी अुदासीनता है। प्रतीत होता है कि वे प्राच्य विद्याके क्षेत्रमें भी जैसी चाहिअे वैसी दिलचस्पी नहीं लेते। यदि वे यह अुदासीनता दूर कर सके, तो आगामी अधिवेशनमें अिस प्रश्नको फिरसे लाया जा सकता है। परन्तु यह तभी हो सकेगा जब हिन्दीके विद्वानोंपर जो अेक बहुत बडी जवाबदेही है, अुसे वे समझें।

—मो० भ०

'राष्ट्रभारती' पर कृपा करनेवालोंसे निवेदन

'राष्ट्रभारती' राष्ट्रभाषामें अपने ढगकी निराली लोकप्रिय भारतीय साहित्यकी मासिक पत्रिका है, जिसपर कलोपासक श्रेष्ठ लेखकों, कहानीकारों और कवियोंकी विशेष ममत्व-भरी कृपा रही है और अुनके सहयोगका हमें आश्वासन रूपी सम्बल मिला है। दिसम्बरका यह अंक तीसरे वर्षका अन्तिम अंक है। अिस वर्ष (१९५३) में जिन सहृदय श्रमजीवी, अुदारमना महानुभावोंने अपनी कृतियोंसे राष्ट्रभारतीको अलकृत किया, कृपादृष्टि रखकर हमें अुत्साहित करते हुअे अपना आदर और प्यार दिया, हम अुनके अत्यन्त आभारी हैं। हमारा हाथजोड निहोरा है अुनके प्रति कि 'राष्ट्रभारती' पर वे सदैव पूर्ववत् कृपा रखें।

हम कृतज्ञता पूर्वक अिस वर्षके अपने प्यारे सहयोगी लेखक-बन्धुजनोंके नाम यहाँ प्रकाशित करते हैं —

सर्वश्री प माखनलालजी चतुर्वेदी, क्षितिमोहन सेन, मौ अ कलाम आजाद, डॉ वियोगी हरिजी, डॉ अमरनाथ झा, आचार्य सिद्धेश्वर वर्मा, आचार्य चन्द्रबली पाडे, व्रिजलाल

वियाणी, मामा वरेरकर, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, मन्मथनाथ गुप्त, महाराजकुमार डॉ रघुवीर सिह, डॉ रामकुमार वर्मा, जगदीशचंद्र माथुर आओ सी ओस, रमाप्रसन्न नायक आओ सी ओस, महात्मा भगवानदीन, प्रो विनयमोहन शर्मा, प्रो मोहनलाल वाजपेयी, प्रो प्रभाकर माचवे ओम ओ, अुदयशंकर भट्ट, भवानीप्रसाद तिवारी ओम ओ, नीरज' ओम ओ, किशोरीदास वाजपेयी, भदन्त शान्ति भिक्षु, शिवनाथ ओम ओ, प्रो रामपूजन तिवारी ओम ओ, मोहनसिंह सेंगर, अुमाशंकर जोशी, राजेन्द्र यादव ओम ओ, गंगाप्रसाद पाडेय ओम ओ, प्रो अचल, प्रो राममूर्ति रेणु ओम ओ, शंकरदेव विद्यालंकार, श्रीमती शान्ति ओम ओ, श्रीमती विद्यावती मिश्र, प्रो रंजन ओम ओ, जगदीशचन्द्र, कि रा, पितरस, नज्मुन्निसा बेगम, कु मुबारकजहाँ, अध्यापक जहूरबख्श, ओमप्रकाश आर्य, श्रीमती कमल आर्य बी ओ, मुमताज अशरफ कादरी ओम ओ, 'लहरी' ओम ओ, प्रो कन्हैयालाल सहल ओम ओ, प्रो रामचरण महेन्द्र ओम ओ, प्रो शंभुप्रसाद बहुगुणा ओम ओ, अमिताभ ओम ओ, रा वीलिनायन, वीरेन्द्र त्रिपाठी, प्रो जगदीशप्रसाद व्यास ओम ओ, प्रो म ना अदवन्त ओम ओ, प्रो म श गोडबोले, यशपालजी, डॉ धर्मवीर भारती, हकीम अबदुलबाकी, प रामनरेशजी त्रिपाठी, विष्णु प्रभाकर, लक्ष्मीशंकर व्यास ओम ओ, पा म पेंडापाडे, श्रीमती कमला चौधरी, रा कृष्णमूर्ति, रामरत्न वशोला ओम ओ, मुनि श्रीकान्तिसागरजी, आचार्य स ज भागवत, डॉ हरदेव बाहरी ओम ओ, प्रो हरिमोहन झा ओम ओ, श्रीमती सीता सिन्हा, नावन शरण अुपाध्याय ओम ओ, प्राचार्य डॉ सोमनाथ गुप्त, केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', लक्ष्मीकान्त वर्मा, रंगलाल बसन्त देसाणी, गौरीशंकर जोशी, न म मारवाड, गुरुनाथ जोशी, 'भिक्षु', सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ओम ओ, गिरिधर गोपाल ओम ओ, गोपाल शर्मा ओम ओ, हर्षनाथ, कु लक्ष्मी कृष्णन, ललित सहगल, गंगाधर गाडगील अनिलकुमार सा र, वैकुंठनाथ मेहरोत्रा ओम ओ, श्रीपरशुराम, महेशकुमार मूंधडा, श्रीमती गुहप्रियं, श्रीमती सरस्वती रामनायन, लोकबन्धु, डॉ अ स अल्तेकर, प्रेमकपूर कंचन, सुजानसिंह, अ न कृष्णराव, राजकुमारसिंह कुमार, श्रीमती माया गुप्त, देवराज दिनेश, जनार्दन मुक्तिदूत, प्रभातशास्त्री साहित्याचार्य, वृन्दावन नामदेव, बालमुकुन्द मिश्र, कृष्णलाल टी जेतली, प्रो महेन्द्र भटनागर, नीलमणि फूकन, प्रा विश्वनाथ सत्यनारायण, श्रीनाडोडो, अमरेन्द्र, चावलि सूना मूर्ति बी ओ सा र, देवदत्त विद्यार्थी, राजेन्द्रप्रसाद भट्ट बी ओ ओलओल बी, कु मोहिनी शर्मा ओम ओ सा र, महेन्द्रराज ओम ओ सा र, प्रताप विद्यालंकार, प्रो आवेकर, प्रो न चि जोगलेकर, जगदीशचन्द्र सिन्हा, नन्दकुमार पाठक, गोपालकृष्ण कौल, रामगोपालसिंह चौहान, कुसुमाकर दीक्षित, परदेशी सा र, आत्माराम वर्मा सा र, 'सोमु', प्रो कृष्णचन्द्र गुप्त, प्रो हिरण्मय ओम ओ सा र, आनन्दचन्द्र, वसु ब्यान 'अनल', रायप्रोलु सुब्बराव, मधुनाथ थत्ते, घनश्याम सेठी, श्रीराम शर्मा 'राम', मो र करंदीकर, आरसीप्रसाद सिंह, रतनलाल कमल, प्रो के ओस चिदम्बरम भारद्वाज ओम ओ, सत्यव्रत अवस्थी, अरविन्द जोशी, मनोहर देशपाडे, अनुसूयाप्रसाद पाठक, जिनेन्द्रचन्द्र चौधुरी, रंजन परमार, पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' ओम ओ सा र, प्रो वेंकटरामप्पा, श्रीमती राजलक्ष्मी राघवन, अहमदयूसुफ बद्र, जिब्राईल अली वदवी, औशनारायण जोशी, प्रो हरिमोहन झा ।

—ह० ग०

श्रद्धेय टंडनजीको थैली

अ भा राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनके पाँचवें अधिवेशन नागपुरमें निम्नलिखित प्रस्ताव पास हुआ है —

"यह सम्मेलन निश्चय करता है कि हिन्दीके प्राण श्रद्धेय श्री पुरुषोत्तमदासजी टण्डनको अनकी हिन्दीकी अमूल्य सेवाओंके प्रति श्रद्धा व्यक्त करनेके लिये अक अच्छी निधि अकत्रित की जाये, और अुचित समयपर अुन्हें वह समर्पित की जाये।"

प्रचारक तथा केन्द्र-व्यवस्थापकोंने मिलकर जो यह प्रस्ताव किया है अुसकी जवाबदेही वे समझते ही होंगे। अुनका अब यह कर्तव्य है कि अिस थैलीके लिये जितना भी हो सके, धन शीघ्र अिकट्ठा करें। यह कोअी कठिन बात भी नहीं है। पुराने तथा नये परीक्षार्थियोंतक पहुँचनेका ही सवाल है। राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी परीक्षाओंमें लाभ अुठानेवालोंकी संख्या लाखोंकी है। यदि वे आठ आना मात्र भी अिस थैलीके लिये दें, तो भी लाखोंकी रकम अिकट्ठी हो जायेगी। प्रचारक केन्द्र व्यवस्थापक तथा अन्य राष्ट्रभाषा-प्रेमियोंका भी तो कुछ हिस्सा अिस रकममें रहेगा। अिस प्रकार यह थैली अच्छी खासी बड़ी हो सकती है।

श्री टण्डनजीके सम्बन्धमें यहाँ कुछ कहना मुझे आवश्यक प्रतीत नहीं होता। राष्ट्रभाषा हिन्दीका विकास, प्रचार आदि प्रवृत्तियोंके वे प्राण हैं और भारतीय संविधानमें हिन्दीको राजभाषाका जो स्थान प्राप्त हुआ है, वह भी अधिकांशमें आपहीके प्रयत्नोंका परिणाम है। श्री टण्डनजी हिन्दीके कार्यको अपना जीवन-कार्य मानते हैं और राजनैतिक क्षेत्रमें अुनका बहुत अूँचा स्थान होनेपर भी, वे अपने राजनैतिक कार्यको हिन्दीके कार्यकी तुलनामें गौण स्थान देते हैं। गत चुनावके समय अुन्होंने 'पार्लामेण्ट' (संसद) में जानेका निश्चय किया, अुस समय भी हिन्दीका कार्य ही अुनकी दृष्टिके समक्ष मुख्य कार्य था। श्री टण्डनजीको थैली अर्पण करनेसे राष्ट्रभाषा हिन्दीके कार्यकी ही सेवा होगी। सब केन्द्र-व्यवस्थापक तथा प्रचारकोंसे हम अिस कार्यमें सम्पूर्ण सहयोग तथा प्रयत्नकी आशा रखते हैं। अिस थैलीके लिये हम धनिकोंके पास जाना पसंद नहीं करेंगे। हमारे प्रचारक, केन्द्रव्यवस्थापक तथा परीक्षार्थियों द्वारा श्रद्धापूर्वक जो भी दिया जाये अुसीको हम श्री टण्डनजीकी सेवामें अर्पण करेंगे। अिसलिये जो रकम वे अेकत्र कर सकें, मन्त्री, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाके पास "टण्डनजीकी थैलीके लिये" अिस प्रकार लिखकर मनिआर्डर या चेकके द्वारा भेज दें। जो प्रचारक तथा केन्द्र-व्यवस्थापक विशेष रूपसे प्रयत्न करके अिस थैलीके लिये धन अेकत्र करना चाहेंगे अुन्हें लिखनेपर यहाँसे रसीद बुकें भेज दी जायेंगी। अिस थैलीके लिये जो धन प्राप्त होगा वह 'राष्ट्रभाषा' पत्रमें क्रमशः प्रकाशित किया जायेगा।

मोहनलाल भट्ट,
मंत्री,
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा.

राष्ट्रभारती-विज्ञापन दर

साधारण पृष्ठ	पूरा —	४०)	प्रतिवार
"	आधा —	२५)	"
द्वितीय कवर पृष्ठ	पूरा —	१००)	"
"	आधा —	५५)	"
तृतीय कवर पृष्ठ	पूरा —	८०)	"
	आधा —	४५)	"
चतुर्थ कवर पृष्ठ	पूरा —	१२०)	"
	आधा —	७०)	

राष्ट्रभारतीकी माअिज— ९½"×७"
छप पृष्ठकी माअिज— ८"×५½"

तीनसे अधिक बार विज्ञापन देनेवालोंको सुविधा दी जाअेगी।

'राष्ट्रभारती' मे अपने व्यापारका विज्ञापन देकर लाभ
अुठाअिअे। क्योंकि यह कश्मीरसे लेकर रामेश्वरतक
और जगन्नाथपुरीसे द्वारकापुरीतक
हजारों पाठकोंके हाथोंमें पहुँचती है।

★

राष्ट्रभारती-अेजेन्सी

१ कमसे कम पांच प्रतियां लेनपर ही अेजेन्सी दी जाअेगी।
२ पांच प्रतियां लेनपर २०) प्रतिशत कमीशन दिया जाअेगा।
३ छहसे अधिक प्रतियां लेनपर २५) प्रतिशत कमीशन दिया जाअेगा।
४ पांचसे अधिक ग्राहक बना देनेवालोंको भी विशेष सुविधा दी जाअेगी।

विशेष जानकारीके लिअे आज ही लिखिअे —

श्री प्रबन्धक, "राष्ट्रभारती" पो० हिन्दीनगर (वर्धा, म. प्र.)

राष्ट्र भारती



जनवरी १९५४

[सूचनाः— राष्ट्रभारती राज्योंके शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कालेजों और वाचनालयोंके लिअे स्वीकृत हैं। अिस अंकके साथ 'राष्ट्रभारती' का चौथा वर्ष आरंभ हो रहा है। राष्ट्रभारती समग्र भारतीय— अन्तर-प्रान्तीय साहित्यका प्रतिनिधित्व करती है। अिसने हिन्दीकी मासिक पत्रिकाओंमें अपना अेक प्रतिष्ठित और महत्वका स्थान बना लिया है। प्रेमी पाठकोंसे हमारा निवेदन है कि आप अेक नया ग्राहक बनाकर अिस पत्रिकाकी ग्राहक संख्यामें वृद्धि करें और अपनी राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके अुत्साहको और भी बढाअें। 'विशारद' और राष्ट्रभाषा-रत्न परीक्षोपयोगी अुच्च आलोचनात्मक–परिचयात्मक लेख भी प्रतिमास अिसमें छपेंगे। कृपया राष्ट्रभाषा-प्रसारमें समितिका हाथ बँटाअिये। —मो० भ०, प्रधान-मंत्री रा. भा. प्र. स. वर्धा]

—ःविषय-सूचीः—

वार्षिक चन्दा ६) मनीआर्डरसे : अर्धवार्षिक ३॥) : : अेक अंकका मूल्य १० आना

पताः—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दीनगर, वर्धा (म० प्र०)

राष्ट्र भारती

[भारतीय साहित्य और संस्कृतिकी मासिक पत्रिका]

— सम्पादक —

मोहनलाल भट्ट हृषीकेश शर्मा



* वर्ष ४ * वर्धा, जनवरी १९५४ * अंक १ *

सन्त-वाणी

दादू' ये सब किसके पन्थमें धरती अरु आसमान,
पानी पवन दिन रातका चन्द सूर रहिमान।
ब्रह्मा विष्णु महेशको कौन पन्थ गुरुदेव
साँअी सिरजनहार तूँ कहिअे अलख अभेव।
महमद किसके दीनमें, जबराअिल किस राह ?
अिनके मुर्शद पीरको कहिअे अेक अलाह।
'दादू' ये सब किसके ह्वै रहे यहु मेरे मन माहिं,
अलख अिलाही जगद्‌गुरु दूजा कोअी नाहिं।

हे दयामय, तुम्हीं बताओ यह धरती और यह आकाश, यह हवा और यह पानी, ये दिन और ये रातें, यह चाँद और यह सूरज ये सब किस पन्थ, किस सम्प्रदायके माननेवाले हैं ? ब्रह्मा विष्णु और शिवके नामसे अगर पन्थ खड़े हो सकते हों, तो बताओ गुरुदेव ! ये खुद किस पन्थके माननेवाले हैं ? तुम स्वामी हो। तुम सृजनकर्ता हो। तुम अलख हो। तुम भेद और ज्ञानके अतीत हो, तुम्हीं अिसका अुत्तर दे सकते हो। हे अेक अल्लाह तुम्हींसे पूछता हूँ बताओ तो भला मुहम्मदका मज़हब क्या था ? जिब्राअिलका पन्थ कौनसा था, अिनके मुर्शिद और पीर कौन थे ? ये सब किसके सम्प्रदायमें थे, किसकी सम्पत्ति थे ? यह प्रश्न निरन्तर मेरे मनमें अुठता रहता है वह अलख अिलाही ही अेकमात्र जगद्‌गुरु है संसारमें दूसरा कोअी नहीं।

———

भारती

: श्री माखनलाल चतुर्वेदी :

रविकी प्रथम किरण शिर धरकर निमितिके अभिषेक !
हिम शिखरो अूंचा अुठनेको ओ चमकीली साध !
धोते चरण, निछावर होते तृपिलोको सुन टेक,
अुतर अुतर गगा जमुना बनते मीठे अपराध !

धूल-कणोसे अुठनी है तू हरित प्राणकी सेज,
वृनपोसे विद्रोही अुठते धूल-कणोके तेज !

पग-पग, मग-मग डोल रही तू, तुझपर शत शिर डोल,
माँग रहा भू-दान, मुसाफिर लाँघ रहा भूगोल !

चरण चल रहे भूमिपृष्ठपर रच दो शिथिला रेखा,
नियति लिख रही अुस रेखापर कोटि भाग्यका लेखा !

ओ वन्या, ओ प्रतिभा धन्या, विधि कन्या री अल्प,
दिल्लीके सिंहासनपर शोभित तेरा सकल्प !

देवि, वगके शूलीपर चढते शीशोके दान,
सिद्ध करो स्वातन्त्र्य आ गया वन प्रभुका वरदान !

हिमका मुकुट पहिन लो, लो गगा जमुनाका हार,
करनफूल काश्मीर और नेपाल प्रलय शृगार !

तेरे तार-तारपर गूंजे वह निनाद वह बोल,
करनफूल हिल अुठे न जानें पर मोतीका मोल !

अुत्तरका वासी दक्षिणपर दक्षिण अुत्तर-वासी,
मीनाक्षी पडरपुर त्र्यवक चल अुठ पूजें काशी !

जो कुछ पाया अुसपर गर्वित है न तरुणकी साँस,
ठडे जीनेपर न भरोसा करता है विश्वास !

कोटि-कोटि हृदयोमें धमनी धडक रही है जानो,
धमनीमें युग प्रलय गल रहे है अिसको पहचानो !

अेक हाथ अपनी धड़कनपर, अेक हाथ युगकी छातीपर,
कल्याणी, रखकर देखो अगुली जलती दीपक बातीपर !

फिर बोलो, क्या अिस जमीनपर मंडराता आदित्य वही है ?
जग-जगमें जो व्याप रहा है क्या तेरा साहित्य वही है ?

फिर क्यों झिझक रही हो अंगुलि निर्देशों फौलाद गलाते !
फिर क्यों विता रही हो जीवन गीत वदनाओंके गाते !

कृष्ण, बुद्ध, ओसा, गान्धीको तुमने पृथ्वीका वर गाया ।
जो विद्रोही हुआ अुसीको तुमने भी ओश्वर बतलाया !

फिर क्यों चाहे, आश्रय नत हो कविता बनी सिसक निकली ?
फिर क्यों वीणा हुओ कुंठिता फिर क्यों वाणी बिकने निकली ?

'वर'-सी अुठी, हिमाचल शिखरों चमकी, देवोंने यश गाया,
बनी 'महावर'-सी चरणोंम, गंगा बन भू-तल हरियाया !

हृदय-हृदयमें अुतर न पाओ, अिस विहारको हार कहूँ क्या ?
सृजनहीन कोमलताको कोमलताका सहार कहूँ क्या ?

भावोंका जिनको अजीर्ण है अुनमें खेल न खेलो रानी !
भावोंके भूखे शत-शत हैं, अुन्हें न दूर ढकेलो रानी !

जलकी हो श्रमजलकी हो, शिव तो है जिसके सिर गंगा,
काली गौरी शिवा पार्वती अुसकी है जो है अधनंगा ।

महलोंम भर स्वाँग नृत्यकी ध्वनियाँ भर मत गूँथो बानी,
टिमकीपर डफपर, ताडवपर, चरण जमाओ लिखो कहानी !

तरलोन्मादमयी, मनमोहिनि विश्वभरी मनोरथधामा,
वंशी, वीणा, धन्य प्रवीणा नृत्य गान वादन अभिरामा !

पानीपर मत खींचो रेखा, खिंच खिंच वे ढहती जाअेंगी !
हिम शैलोंपर गीत न लिक्खो नश्वर वे बहती जाअेंगी !

अमर रहे युग मस्तक डोलें, तो समझो मेरी कल्याणी,
चट्टानोंमें फौलादोंको तोड-मरोडकर लिखो कहानी !

बादलमें, गगा जमुनामें सागरमें रहने दो पानी,
पर तलवारोंके पानीको भूलो नहीं वेदकी वाणी—

जिनने रसकस तुझको सौंपा, जिनका कौशल तुझको भाया,
नर्तक, गायक, चित्रक, मूर्तिक, चिंतक—यह सब तेरी माया !

जिनने श्रमकण सौंप भारती भारतनन्दनको लहराया,
प्राणोंपर दे प्राण कि जिसने सिपहगिरीको धन्य बनाया !

क्यो तेरी रगोमें रंगिणी अुनका रक्त नही भर आता ?
क्यो तेरी वीणापर मानिनि अुनके राग न कोअी गाता ?

तरलाअीका परम देवता जल है, मधुर अश्रु प्यारे है !
पर मिठासमें रक्तदान क्यो वहती हो जिनसे न्यारे है ?

चली योजनो डग-डग, पग-पग पागल भूमिदानकी तोली,
करुणामयी न तूने अुनपर अभीतलक वाचा भी खोली !

रथ दौडे, जलस्थ दौडे, ले देख हवापर भी रथ दौडे !
वाल्मीकि, तुलसी, मोरेश्वर सब पुष्पक वर्णनको दौडे !

निज ढीली चरणावलियोपर मत भूलो चमकीली चूली !
मत कहलाओ सिन्धु चीरते नभ कंपित करतोको भूली !

तुलसी रंगे रामके रंगसे, सूर श्याममे रिस-हँस बोले !
खुद अपने ही को दुलराकर हम जैसे कोअी कब बोले ?

नारी गयी कि प्राण चल दिये, माना किन्तु रसोकी रामा—
माता वहिन वेटियाँ भी तो नारी ही होगी अभिरामा !

वेणी खोल अेंदियाकी सब भूमि भाग वालायें धायीं,
तेरा माखन-चोर जगा दे री भारती जसोदा माअी !

वलिपर, कृतिपर, रसपर, छविपर जितनी दूर नजर जाअेगी
चारण-युग अुच्चारण युगको सिंहासन दे पछताअेगी !

वशीको ओठो रख, स्वरको जीवरसे भूपर आने दो !
हे प्रकाशमुखि, छाया पीछे-पीछे ही शोभा पाअेगी !

सजग विश्व जनगण सुनता है, जगके स्वरपर स्वर दो रानी !
छा जाओ भारती जगतपर, प्रतिभामयी देशकी वाणी !

अुठो देवि, कल्याणवन्दिता शस्त्रशास्त्र पूजिता अुठो तुम !
गिरिवन निर्जन प्रलय प्रभंजन रसवती जूझिता अुठो तुम !
चढा कुमारीके तूंबेपर तार खूंटियाँ हिमगिरिपर दे,
गाओ भैरव राग सृजनकी विश्ववन्द्य पूजिता अुठो तुम !

खंडवा] (कविके सौजन्यसे)

आचार्य शान्तिदेवके स्वार्थ और परमार्थपर विचार*

श्री शान्ति भिक्षु :

अेक बात मेरे मनमें घूमा करती है, वह यह कि आदिम मानवसे लेकर आजतकका सुसंस्कृत मानव अेक ओर स्वार्थसिद्धिके लिअे अुचित अेक अनुचित सब कुछ करता है और दूसरी ओर वह परमार्थकी बात ही नहीं करता, पर परमार्थके नामपर दुनियाको अेक पोथीखाना ही बना डालना चाहता है। कभी-कभी वह परमार्थके नामपर कुछ भी कर डालता है या करता अथवा करवाना चाहता है, जो परमार्थकी परिभाषासे कोसों दूर होता है।

अेक दिन अेक धार्मिक-ग्रंथ पढ़ रहा था। ग्रन्थके रचयिता अेक महान् आचार्यने अेक जगह अेक महापुरुषको बहुत बड़ी बातें कह डाली थी। मैंने अपनेको खूब सम्भालनेका जतन किया नहीं तो गुस्सेमें आकर श्रीटका जवाब पत्थरसे देना चाहा था। अुस भावुकताके आवेशमें मुझे बोधिसत्त्व शान्तिदेवने बचा लिया। अुनकी अेक सूक्ति मेरे मनमें आयी और अुसने मेरे मनको खराब होनेसे बचा लिया। अुन्होंने कहा है कि धर्मकी यदि कोअी बुराअी कर रहा हो, मूर्तियोंको यदि कोअी तोड़ रहा हो और स्तूपोंको यदि कोअी बिगाड़ रहा हो तो हमें नाराज होनेकी जरूरत नहीं, क्यों कि अिससे बुद्ध और बोधिसत्त्वोंका मन नहीं दुखता—

> "प्रतिमा स्तूप सद्धर्मनाश का क्रोश वेषु च।
> न युज्यते मम क्रोधो बुद्धादीना नहि व्यथा॥"
>
> –(बोधिचर्यावतार)

मेरे मनमें गान्धीजीका वह चरित्र चित्रलिखित-सा घूम गया। जब वे दिल्लीमें बैठे हिंदुओंके समाचारोंसे बिना कुपित हुअे ही मुसलमानोंकी कुशलताकी निरन्तर कामना करते रहे, रात भरको अुनके कोमकी आगसे वे अुदासीन न हुअे, और अेक दिन वह आया जब स्वयं अपना बलिदान कर दिया। अपनी जाति, अपने धर्म, अेक अपने आपके अूपर आये संकटके समय कुपित होनेका अर्थ तो समझमें आ जाता है क्योंकि वह दुनियाकी रीति-नीति है, पर अैसे अवसरपर शान्त रहनेमें क्या रहस्य है? तथागतने कहा है– फूटे कांसेका घटा कितना ही क्यों न पीटा जाये, बजता नहीं। अुसी तरह यदि तुम अपने आपको गम्भीर बना लो तो समझो कि तुमने निर्वाण पा लिया। तुम्हारे लिअे अशान्ति नहीं रही।

> "स चे नेरेसि अत्तानं कंसो अुपहतो यथा।
> अेस पत्तो सि निब्बानं सारम्भो ते न विज्जति॥"
>
> –(धम्मपद)

पर बात-बातमें कलह करनेवाली दुनिया क्या अिस प्रकारके निर्वाणको चाहती है? शायद नहीं। क्योंकि अिस प्रकारके निर्वाणके लिअे जिस क्षमताकी आवश्यकता है, अुसका दर्शन दुनियामें विरल है।

मनकी वह स्थिति जिसे निर्वाण कहा गया है कैसे प्राप्त की जा सकती है? अुत्तर सीधा है कि दुनियाके स्वार्थोंको छोड़ देनेसे। किन्तु स्वार्थ कैसे छोड़ा जाये? अुसका अुपाय क्या है? शान्तिदेवने अुसका अुपाय बताया है कि यदि हमारा मन निर्वाणके लिअे अिच्छुक है, तब हमें सभी कुछ छोड़ना होगा क्योंकि सर्वत्यागका नाम ही निर्वाण है। पर सब कुछ योंही छोड़ देना ठीक नहीं, प्रत्युत अुसे सत्त्वार्थ-प्राणियोंके हितके लिअे छोड़ना होगा यदि हमने अैसा नहीं किया तो दुनियामें जो होना है वह तो होगा ही। अेक दिन अैसा आअेगा जब न तो हमारे प्रियजन बचेंगे, न हमारे अप्रियजन ही, न मैं ही रहूँगा और न यह सब कुछ।

---

* आचार्य शान्तिदेव सातवीं सदीमें नालन्दामें थे। अिनकी प्रसिद्ध कृति "बोधिचर्यावतार" का तिब्बतमें गीताकी तरह पाठ होता है। —लेखक।

"सर्वत्यागश्च निर्वाणं निर्वाणार्थि च मे मन ।
त्यक्तव्य चेन्मया सर्वं वर सत्वेषु दीयता ॥
अप्रिया न भविष्यन्ति प्रियो मे न भविष्यति ।
अह च न भविष्यामि सर्वं च न भविष्यति ॥"
—(बोधिचर्यावतार)

प्राणियोंके हितके लिअे किये गये अिस त्यागको आचार्य शान्तिदेव स्वार्थका परित्याग नहीं कहत, प्रत्युत स्वार्थका साधन कहते हैं, क्यो कि अुनके विचारसे जो स्वार्थ है वही परमार्थ है और जो परमार्थ है वही स्वार्थ है। स्वार्थ और परमार्थके बीचमें रेखा खींचकर परमार्थको व्यवहारसे सर्वथा मनुष्यके प्रवहमान जीवनसे अलग कर देना तार्किकोंकी करतूत है, जिसका साधनाके मार्गसे कोअी सम्बन्ध नहीं। परन्तु यदि परमार्थ जैसी कोअी वस्तु है—परमार्थ जैसा कोअी पुरुषार्थ है और यदि परमार्थ सभी पुरुषार्थोंमें श्रेष्ठ है तो जीवनके अन्य मूल्योंको जीवनसे अन्य पुरुषार्थोंको, अुसका अग होकर चलना होगा। मनुष्यका अिससे बढकर स्वार्थ या परमार्थ क्या हो सकता है कि वह स्वय सुख और शान्तिका अनुभव करे तथा दूसरोंको सुख और शान्तिका अनुभव करने दे। पर मनुष्य अैसा नहीं करता।

सत्वार्थ अिस त्यागको ही तथागतकी आराधना कहते हैं। आज तथागतकी आराधना स्तूप और प्रतिमाकी आराधनामें बदल गयी है। यद्यपि पुराने आचार्य अिस बातको ठीक-ठीक समझते थे कि बुद्ध पूजा अेव सत्कार ग्रहण नहीं करत। कोअी अुन्हें पूजे या कोअी न पूजे, वे अेक रस ही रहते हैं। पूजा पूज्यके लिअे नहीं वह तो पूजकके लिअे है। पूजकमें पूजाके द्वारा जो क्षणभर चित्तकी प्रसन्नता अुत्पन्न होती है, वही पूजाका परम अेव चरम फल है। बुद्धकी जीवनवेलामें जो पूजा करता था तथा अुनके परिनिर्वाणके बाद जो अुनकी पूजा करता है, अुन दोनोंमें चित्तकी निर्मलता अेक ही प्रकारकी होती है। अत, दोनोंमें अेक ही प्रकारका सुकृत है। पर प्रश्न यह है कि पूजाके वास्तविक प्रतीक कौन हैं ? स्तूप और प्रतिमाअें या सत्वगण (प्राणि-समूह) ? स्तूप और प्रतिमाओंको देखकर अैतिहासिक महापुरुषका स्मरण होता है, अत अुनके प्रत्याख्यान करनेकी बात तो सोची ही नहीं जा सकती। पर वास्तविक पूजा अिनसे नहीं होती। वास्तविक पूजाके आश्रय वस्तुत सत्वगण ही है। अिसलिअे आचार्य शान्तिदेवका कथन है कि अुन कारुणिक तथागतोंने सारी दुनियाको आत्मसात् कर रखा है, प्राणियोंके रूपमें तथागत ही तो हमारे प्रभु हैं, फिर अुनके प्रति आदर न हो यह कैसी बात ? —

आत्मीकृतं सर्वमिदं जगत्तैः
कृपात्मभिर्नैव हि संशयोऽस्ति ।
दृश्यन्त अेते ननु सत्वरूपा—
स्त अेव नाथाः किमनादरोऽत्र ॥
—(बोधिचर्यावतार)

सत्वाराधनके रूपमें बुद्ध-पूजा कैसे की जाअे ? आचार्य शान्तिदेवने अत्यन्त रमणीय काव्यभाषामें जिसका वर्णन किया है।

येषां सुखे यान्ति मुदं मुनीन्द्रा
येषां व्यथायां प्रविशन्तिमन्युं ।
तत्तोषणात्सर्वं मुनीन्द्र तुष्टि-
स्तत्रापकारेऽपकृत मुनीनाम् ॥

सुखी हो हि जिनके सुख माहीं।
जिनकी व्यथा देखि पछिताहीं ॥
तिनके सुख सब सुगत सुखारी।
तिन्हें कृन-अहित सुगत-अपकारी ॥

आदीप्तकायस्य यथा समन्ताद्
न सर्वं कामैरपि सौमनस्यं ।
सत्वव्यथायामपि तद्वदेव
न प्रीत्युपायोऽस्ति दयामयानां ॥

सुखी न मन जद्यपि सब कामा।
लगी आगि सर्वस्व जब जामा ॥
तिमि जन-व्यथा जये मुनिरायां।
होअि न मन-सन्तोष अुपाया ॥

स्वयं मम स्वामिन अेव तावद्
यदर्थमात्मन्यपि निर्व्यपेक्षा ।
अह कथ स्वामिषु तेषु तेषु
करोमि मानं न तु दास भाव ॥

जिनके हित तृण सम मम स्वामी।
तजहिं देह (जनके अनुगामी) ॥
तिन प्रभु प्रति हौं किमि अभिमानी।
करहुँ न दासभाव का जानी ॥

तस्मान्मया यज्जन दुःखदेन
दुःख कृत सर्वमहाकृपाणाम् ।
तदद्य पाप प्रतिदेशयामि
यत्खेदितास्तन्मुनय क्षमन्तां ॥

सकल जतन कहँ जो दुख दीन्हें।
महाकृपालु दुखी सब कीन्हे ॥
आजु सो सब प्रतिदेसहुँ पापा।
छमहु मुनीन्द्र खेद जो व्यापा ॥

तथागताराधनमेतदेव
स्वार्थस्य संसाधनमेतदेव ।
लोकस्य दुःखापहमेतदेव
तस्मान्ममास्तु व्रतमेतदेव ॥

यहि तथागत परमाराधन ।
यहि मनुष्य स्वार्थ संसाधन ॥
यहि सकल जन दुःख विदारन ।
यहि हमार होउ व्रतधारन ॥

दुनियामें जिस प्रकारकी स्वार्थसाधना ही साधकका परमार्थ है। जो साधक नहीं, अथवा जो सिद्ध हो चुका है वह भी जिसका अभिनन्दन किये बिना नहीं रह सकता। जिस प्रकारकी साधनामें लगा मनुष्य परमार्थके नामपर धर्मके नामपर, ईश्वरके नामपर, ऐसा कोई भी कार्य नहीं करता जो मानवताके विरुद्ध हो या मनुष्यकी किसी प्रकारकी संकीर्णतामें साधक हो।

[शांतिनिकेतन

भू-दान यज्ञ आन्दोलन, शान्तिकारी आन्दोलन है। वह शोषित और दलित वर्गका उत्साह और वीरता बढ़ानेवाला है। वह शान्तिका विरोधी नहीं है, विरोधी है रक्तपात, क्रूरता और हृदयहीनताका। भावना जितनी शुद्ध और उदात्त होगी, शान्तिके सैनिककी शक्ति भी उतनी ही अधिक अमोघ होगी।

—आचार्य दादा धर्माधिकारी

कहानी :

ज्वार भाटेके खिंचावमें

: श्री प्रबोधकुमार मजुमदार :

गाँवके अनादि चाचा खबर पाकर सहानुभूति जताने आये। पर जिस शंकरपर अितने बडे दुर्भाग्यका वार हुआ था, अुसकी बातचीतमें किसी प्रकारकी निराशा न पाकर, वे आश्चर्यसे अवाक् रह गये।

'जी हां, चाचा, मकान मैंने छोड दिया। सब तरहसे सोचकर देखा, लेकिन लगा कि अिससे अच्छी बात और कुछ हो नहीं सकती।' शंकरने यह बात अैसे लहजेमें कही, मानो कारोबारमें कोअी बहुत बडी रकम अुसके हाथ लगी हो।

'तुम कह क्या रहे हो, शंकर? पैतृक मकान, बाप-दादोंकी निशानी, अुसे बेच डालनेमें ही तुमने भलाअी देखी?'

क्षण भरके लिअे शंकरके चेहरेपर विषादकी छाया आ पडी।

'हां. .तो.. तो . जी हां, पैतृक सम्पत्तिको बेच डालना तो...' पर दूसरे ही क्षण अेकाअेक अुत्साहित होकर कहा—'लेकिन ज्यादा दिनोंकी बात थोडे ही है। साहुजीने मुझसे वादा किया है कि ..'

'कौन? वह भुवन साहु न? जब तुमने अुस हत्यारे सूमसे रुपये अुधार लेने शुरू किये थे, तभी मैं जान गया था कि अब सब सत्यानाश होकर ही रहेगा!.. तो भुवन साहुने क्या कहा?'

'कहा कि मेरा मकान ज्योंका त्यों बना रहेगा। वह अुसमें कोअी परिवर्तन नहीं करेगा। फिर जिस दिन मैं अुनके रुपये सूद-सहित लौटा दूंगा, अुसी दिन वह मेरा मकान लौटा देंगे।'

'अच्छा। बडे दयावान हैं। तुम किस तरह अुनके कर्जको चुका पाओगे, अिस सम्बन्धमें भी कुछ सोचा है?'

'जी हां। क्यों नहीं? यदि अीश्वरने कृपा की, और जिस नये काममें मैंने हाथ लगाया है, वह सफल रहा, तो फिर अिस कर्जको तो चुटकी बजाते चुका दूंगा।'

अनादि चाचा घरसे यही सोचकर चले थे, कि वह तसल्ली देते हुअे येही सब बातें कहेंगे। अुन्होंने सोचा था कि शंकरको परेशान तथा अुसके चेहरेको अुतरा हुआ पाअेंगे, तो आशा दिलाअेंगे, जिससे कि विपत्तिका बोझ हल्का हो जाअे। पर यहां तो वे ही सब बातें शंकरके मुंहसे निकलीं। अिसलिअे मजबूरन अुन्हींको जब अुल्टा राग अलापना पडा—'अरे, भैया, रुपये कमाना क्या अितना आसान है?...अच्छा, जाने दो ये सब बातें। शायद भुवन साहुने ही तुमको ये सब बातें समझायी हैं!'

'हां, अुन्होंने भी कहा, और मैंने भी सोचकर देखा। बात यह है कि हर महीना सूद बढता चला जा रहा था। कर्ज चुकता हो जाअे, तो कम-से-कम सूदसे तो रिहाअी मिले। अिसके अलावा अुनसे नकद भी ३५० रु० लिये हैं।'

'कर्ज कुछ दिन और रहता, तो क्या बिगड जाता? अिस बीचमें कोशिश कर-कराकर ..'

'पर साहुजी रुकनेके लिअे तैयार नहीं हुअे। अुन्होंने कहा, कि अगर मैं कर्ज न चुकाअूंगा, तो मजबूरन नालिश करेंगे।'

'और, बस, अितनेहीसे तुम्हारा दम निकल गया। जानते हो, डिग्री, अपील, नीलाम, दखल करने-कराने दो साल जाते। और अिस बीचमें जिलेकी अदालतसे लेकर हाअीकोर्ट तक अुसको सात 'समुन्दर' का पानी पिला दिया जाता।'

'फिर भी, चाचाजी, अन्तको मकान तो हाथसे निकल ही जाता ? फिजूलका खर्च बढ़ानेमें क्या फायदा था ?'

'तो भी अिसीलिअे, भैया, कोअी बाप दादाकी निशानी अैसे नहीं छोड़ देता। यह कोअी अैसी-वैसी जायदाद तो है नहीं, बाप दादाकी निशानी है। खैर, अब तो गया ही। जिसकी जैसी समझ। . . तो, भैया, मकान तो गया, अब रहोगे कहाँ ?'

'अुसकी कोअी चिन्ता नहीं। कहीं-न-कहीं गुजारा हो ही जायेगा। साहूजीने अेक महीनेका समय दिया है। जिस बीचमें कहीं न कहीं ढूँढ़ ही लूँगा। हम शहरी आदमियोंको सिर रखनेके लिअे जगहकी क्या चिन्ता ? गाँवमें कोअी-न-कोअी जगह मिल ही जायेगी।'

असल बात यह थी कि अगर कोअी अुसकी गरीबीपर अुसके साथ सहानुभूति दिखाने आता था, तो शंकरके आत्म-सम्मानको ठेस लगती। अुसके पिता धनी न होनेपर अच्छे खासे तगड़े आसामी थे। शंकर बचपनसे ही आराममें रहनेका आदी था। गरीबीके कीचड़का तिलक लगाना अुसके लिअे न केवल कष्टदायक था, बल्कि लज्जाकी बात भी थी।

नदी-प्रवाहके वेगसे जीर्ण, शिथिल तट-भूमि जैसे रसातलमें जानेके पहले कुछ समय तक हरियाली धारण किये रहती है, अुसी प्रकार शंकरने प्रफुल्लताकी आड़में अपने दुर्भाग्यको छिपा रखना चाहा।

अिसके अतिरिक्त शंकरमें कल्पनाके दिवा स्वप्नमें डूबे रहनेकी अद्भुत शक्ति थी। जो भविष्यकी मादक, मधुर कल्पनामें विभोर रह सकता है अुसे विषादमय वर्तमान कैसे स्पर्श करेगा ?

पिताके जीवित रहते कभी अुसे खाने-पहननेका अभाव नहीं हुआ। अैसा कभी हो सकता है, अिसकी वह भी कल्पना नहीं कर सकता था। अिसलिअे वह जब अेक बार मैट्रिकमें फेल हो गया तो अुसने तीन मीलकी दूरीपर स्थित स्कूलमें भरती होनेका कष्ट करना व्यर्थ समझा। और मजेमें ताश खेलकर और बाँसुरी बजाकर दिन काटने लगा। यथा समय पिताने अुसकी शादी भी कर दी, पर पोतेका मुँह देखनेके पहले ही वे परलोक सिधार गये। मरनेके पहले ही जमीन तथा लेन देनका सारा हिसाब पुत्रको समझा गये।

लेन-देन चलानेकी मनोवृत्ति शंकरमें नहीं थी। जिस कारण तथा नये-नये कानूनोंके पेंचमें पड़कर शीघ्र ही अुसका यह काम खतम हो गया। बाकी रही जमीन। जिस बीचमें चीजोंका भाव बढ़ रहा था। गृहस्थी किसी प्रकार न चलती देखकर, शंकरने कहा कि अब वह व्यापार करेगा।

स्त्री सरसी बहुत खुश थी कि व्यापार होगा। अुसने सुन रखा था, 'वाणिज्ये वसति लक्ष्मी।' फलस्वरूप व्यापारकी बदौलत मामूली आदमीसे बढ़कर राजाओंकी तरह अैश्वर्यशाली हो गये, अैसे दृष्टान्तोंका भी अभाव न था।

अुत्साहकी अधिकताके कारण अुस रातको किसीको नींद नहीं आयी। व्यापारसे रुपये मिलनेपर क्या-क्या होगा शंकर अिसका अेक बहुत लम्बा-चौड़ा चित्र खींच गया और सरसी मुग्ध होकर सब सुनती रही। शंकरमें वर्णनकी अच्छी क्षमता थी। सुनते सुनते सरसीकी कल्पना भी अुत्तेजित हो गयी। अुसने भी शंकरके चित्रपर अपनी तूलिका चलायी।

अिसी विषयपर दोनोंमें अेक छोटा मोटा परन्तु मीठा झगड़ा भी हो गया। सरसी कहती कि मकानके भीतर आँगनके अेक किनारे अेक अमरूदका पेड़ रहेगा। अुसका बच्चा बड़ा होनेपर अमरूद तोड़कर खायेगा। (बच्चेकी अुम्र अिस समय सात महीनेकी है।) शंकरको अमरूदोंसे नफरत है। वह कहता था कि अनारका पेड़ रहेगा। अिसपर सिर हिलाते हुअे सरसीने चटपट कहा— 'अरे बाबा, नहीं नहीं। अनारकी डाल बहुत कमजोर होती है। कहीं हमारा मुन्नू गिर पड़े, और अुसके हाथ पैर टूट जायें तो ?' कहकर मुन्नूकी काल्पनिक विपत्तिकी आशंकाको पोंछ डालनेके लिअे अुसने पास लेटे हुअे मुन्नूका मुँह चूम लिया।

जो हो, कुछ देर तर्क वितर्कके बाद यह निश्चित हुआ कि मकानके अन्दर अमरूदका पेड़ ही रहेगा, और

मकानके बाहर अनारका, पर असके आसपास सावधानीसे अैसा घेरा तैयार कर दिया जाअेगा कि मुन्नू असुपर न चढ सके।

व्यापार शुरू हो गया। पहले गुडसे शुरू हुआ। पर व्यापार कल्पनाके घोडेपर तो चलता नहीं। असुके लिअे जिस तजुर्बे तथा जानकारीकी आवश्यकता थी, वह असुमें न होनेके कारण वह तरह-तरहसे ठगा गया। कारोबार तो गया ही, मामला अितनेसे ही खत्म नहीं हुआ। पत्नीकी ढाअी बीघा जमीन भी दे देनी पडी। अिस प्रकार कडुवेपनसे गुडके कारोबारका अन्त हुआ।

शकरने सरसीको समझाया कि कारोबारका यही नियम है। कभी मुनाफा होता है, कभी घाटा। जो कुछ घाटेमें गया है, अगली बार असुके बीस गुना मिल जाअेगा। बल्कि शुरूमें घाटा होना ही अच्छा होता है। तजुर्बा हो जाता है। अतअेव कमर कसकर फिरसे व्यापारमें लग जाना चाहिअे।

अबकी बार असुने तम्बाकूका कारोबार शुरू किया। चिलममें भरकर हुक्केमें पी जानेवाली तम्बाकूका नहीं, तम्बाकूके पत्तोंका। आय-व्ययका लेखा दिखाकर शकरने यह बता दिया कि अिसमें कितना जबर्दस्त मुनाफा रहेगा। अिसपर फिर दोनोंके हृदयोंमें आशा हिलोरें लेने लगी। कारोबार शुरू हुआ। पर बाजारकी जादूगरीको शकर बेचारा क्या जाने? नतीजा यह हुआ, कि तम्बाकूका कारोबार भी गुडके व्यापारकी तरह चौपट हो गया।

सरसीको अबतक अपने पतिकी योग्यतामें सन्देह करनेका कोअी कारण नहीं मिला था। पहले-पहल जब असुने शकरको पति रूपमें पाया था, तो वह असु ग्रामीण बालाको अेक अभिनव आनंद जान पडा था। अिसके अतिरिक्त गाँवके लोगोंपर जब कोअी विपत्ति आ पडती थी, तो शकर जी खोलकर असुकी सहायताके लिअे दौड पडता था। अिसने सब लोग असुकी तारीफ ही करते थे। बाँसुरी बजानेमें असुके मुकाबलेमें कोअी नहीं था। फिर जब गाँवमें कोअी 'ठेटर' (थियेटर यानी नाटक) या नौटंकी होती, तो शकरकी शिरकत* के बिना सफल नहीं होती। असु जमानेमें भोली भाली सरसी क्या जानती थी कि अेक दिन शकरको भी कठोर जीवन-संग्रामका सामना करना पडेगा, और असुके ये गुण काम न देंगे।

अब तम्बाकूका कारोबार भी गुडकी ही गतिको प्राप्त हुआ, तो हितैषियोंने सलाह दी कि अब काफी प्रयोग हो चुके, अब शकर कोअी नौकरी कर ले। पर गाँवमें जो मामूली नौकरी मिल सकती थी, असुे शकर नहीं करना चाहता था। रहा परदेश जाकर नौकरी-चाकरी तलाश करना, सो भी शकरकी दृष्टिमें अनुचित था, क्योंकि घर-द्वार छोडकर वह कहीं कैसे जाता। अिसके अतिरिक्त नौकरीके सीमित वेतनसे धन-दौलत, आगन-महल, कुअें-पोखरेका स्वप्न कैसे पूर्ण होता?

शकरने हिम्मत बाँधकर फिर व्यापार शुरू किया परन्तु परिस्थिति यह हो गयी थी, कि पैतृक मकान बेचे बिना काम नहीं चल सकता था।

× × ×

साहुजीने कृपा करके अेक महीनेका जो समय दिया था, असुके खतम होनेके पहले ही असुने अेक आश्रय खोज लिया। निकुंज असुका दूरका फूफाजाद-भाअी है। वह असुमें असुसे बडा है। गाँवके हाटमें असुकी अेक दूकान है। अिस दूकानमें चावल-दाल मसाले, टीम-टाम, छोटी-मोटी अन्य चीजें और मिट्टीके बर्तन मिलते हैं। दूकानके पीछेकी ओर बाँससे घिरा हुआ आँगन है। घरमें तीन कमरे। पत्नी कामिनी तथा बच्चोंकी गृहस्थी। यही निकुंज कुछ दिनोंके लिअे शकरको आश्रय देनेके लिअे तैयार हो गया।

कामिनीने पहले पहल यह कहकर आपत्ति की थी, कि यदि तीनमेंसे अेक कमरा छोड दिया गया, तो सामान रखनेमें असुविधा होगी। पर बादमें राजी हो गयी। अिस प्रकार रहनेकी चिन्तासे छुट्टी पाकर, शकरने अपने पास बचे हुअे तीन सौ साठ रुपये लेकर फिर कारोबार शुरू किया।

अब असुकी कल्पनाकी दौड बहुत घट गयी थी। घरको महाजनसे छुडा पाना ही अिस समय असुका

---

* सहयोग।

अेक मात्र ध्येय था। जब कैसे २५००) रु हाथ लगे कि मकान छुड़ा लिया जाअे, बस पति-पत्नीकी कल्पनाका केन्द्र-बिन्दु यही था। असिसे आगे सोचनेकी हिम्मत नहीं थी।

कल्पनाकी दौड़में सरसी शंकरको पार कर जाती थी। महाजनके लिअे मकान छोड़ देनेके पहलेही वह अुसमें अमरूदका अेक नन्हा-सा पौधा लगा आयी थी। मुन्नू और वह पौधा होड़ करके बढ़ने लगे। जब तक पेड़में फल आने शुरू होंगे तब तक तो मुन्नूभी पेड़पर चढ़नेके काबिल हो जाअेगा। अुस समय सरसी पेड़के नीचे खड़ी होकर कहेगी—'मुन्नू अेक अमरूद देगा?' और मुन्नू सारा पेड़ खोजकर, अुसमेंसे कुछ अच्छी तरह पके हुअे अमरूद मांके पसारे आंचलमें डाल देगा।

तब मां कहेगी 'काफी है, बेटा, अब अुतर आओ।'

तब मुन्नू जल्दीसे अुतरकर मांकी गोदमें छिप जाअेगा।

व्यापारमें शंकरको जो कुछ मुनाफा होता, अुतनेसे गृहस्थी नहीं चलती। असिलिअे पूंजीपर हाथ लगाना पड़ता। बीच-बीचमें घाटा भी होता। शंकरने हिसाब लगाकर देखा तो जान पड़ा कि पूंजीका तो कहीं पता नहीं, अुल्टे वह कुछ कर्जदार हो गया है।

ज्यों ज्यों शंकरकी आर्थिक अवस्था बिगड़ती गयी, त्यों-त्यों सरसीके प्रति कामिनीका दुर्व्यवहार भी बढ़ता गया। खानेके खर्चके लिअे शंकरसे कुछ लेते निकुंजको शर्म आती थी, पर शंकर कुछ-न-कुछ खरीद कर हमेशा निकुंजकी गृहस्थीमें योग देता। असि तरह निकुंजको कुछ फायदा ही था, नुकसान नहीं।

कामिनीके कभी बच्चे-कच्चे थे। अकेली वह अुनकी देख-भाल किया करती। पर जबसे सरसी आयी, वह अिस कार्यमें हाथ बंटाने लगी। कामिनी कभी बीमार पड़ती, तो वही खाना पकाकर सबको खिलाती।

× × ×

जब शंकरकी हालत अैसी हुअी कि वह निकुंजकी गृहस्थीमें कुछ मदद देनेके योग्य नहीं रहा, तो कामिनी अक्सर बीमार रहने लगी। सरसी बेचारी क्या करती? जिनके आश्रयमें थी, सब तरहसे अुन्हें संतुष्ट करने लगी। अिस प्रकार जब शंकरकी निजी आमदनी कुछ नहीं रही, तो सरसीका चूल्हे चौकेसे पक्का सम्बन्ध जुड़ गया।

दोनों जून रसोअी, चौका-बर्तन और अूपरसे पग पगपर कामिनीकी डांट डपट, सरसीको यह सब कष्ट मंजूर था, पर अुसका लड़का लापरवाही और अनुपयुक्त आहारके कारण सूखकर कांटा होता जा रहा था, जिससे अुसे बहुत अधिक मानसिक कष्ट था। सरसी चुपचाप सब सहती कभी प्रतिवाद नहीं करती। अक्सर कामिनीकी निरंकुश जीभ अुसपर अैसी चोट करती कि अुसका कलेजा टूक-टूक हो जाता।

जब वह किसी प्रकार कहीं भी आशाकी क्षीण रेखाभी नहीं देख पाती, तो शंकर अुसे तसल्ली देता। अिस प्रकार सरसी अपने दुर्भाग्यको सहनेके लिअे फिर कमर कस लेती।

पर मुन्नूकी सहन शक्ति सीमित थी। वह कुछ दिनों तक बीमार रहा फिर मांकी गोद खाली करके चल बसा।

सरसी कअी दिन बेहोश पड़ी रही। पर जो खिला रहे थे, वे छोड़ते क्यों? कामिनीने कअी दिन तक रसोअी सभाली, फिर सरसीको सुना-सुनाकर कहने लगी कि-'मेरा शरीर अितना कमजोर है। दोनों जून चूल्हेके सामने बैठूं, तो जी चुर्के।

अिसपर भी जब कोअी नतीजा नहीं हुआ, तो अुसने साफ-साफ कहा, विपदा किसपर नहीं पड़ती? पर अिसी कारण कोअी गृहस्थी थोड़े ही छोड़ देता है। अजीब ढकोसले हैं।

अिसके बाद न मालूम और सुननेकी बारी आये अिसलिअे सरसी अुठी, और अुसी रोग तथा शोककी अवस्थामें सवेरेसे शामतक पिसने लगी।

असी बीचमें निकुंजने शंकरसे कहा—' भअी, जानते तो हो मेरी हालत। अब अैसे कबतक काम

चलेगा? हाँ, अगर तुम दूकानका हिसाब लिखा करो तो मुनीमको जवाब दे दूँ।

+ + +

अगले दिनसे दाकर दूकानका हिसाब-किताब लिखने लगा। अिस प्रकार पति और पत्नी दोनों निकुंजके पूर्णतया आश्रित हो गये।

अिसी तरह चला जा रहा था। पर अेक दिन दाकरने आकर, अुत्साहसे अुत्फुल्ल होकर सरसीसे कहा, 'अब कोअी चिन्ताकी बात नहीं। बहुत बढ़िया रोजगारका पता लगा है। मालामाल हो जाअूँगा।' अुत्साहके मारे वह ठीक तरह बोल नहीं पा रहा था।

संक्षेपमें मामला यों था। अुसी गाँवका निखिल कलकत्ताकी अेक कटपीसकी दूकानमें नौकरी करता था। वह आज किसी कामसे गाँवमें आया था। दाकरने अुसके मुँहसे सुना कि कलकत्तेके रास्तामें पैसे बिखरे पड़े रहते हैं, मुठा भर ले। वहाँ जानेपर अुन्हें खानेकी कोअी कमी नहीं रहनेकी। वहाँ भाग्य चमक गया, तो पौ-बारह रहेगा। व्यापार भी करे तो कलकत्तामें करे। वहाँपर कुछ लोग अेक सालमें ही लखपति हो चुके हैं। निखिलने जो कुछ अुसे बताया था, वही अतिरंजित वर्णन अुसने सरसीको सुनाया।

अुस दिन दोनों रातको बड़ी देरतक जागकर कल्पनाकी बे-लगाम दौड़ाते रहे। गाँवके लोग अेक दिन आश्चर्यचकित होकर देखेंगे कि अुसके मकानके सामने अीटें पड़ी हैं, और राज काम कर रहे हैं। देखते-देखते सुन्दर, आलीशान मकान तैयार हो जायेगा। गृह-प्रवेशके दिन सारे गाँवका न्योता होगा। सब लोग आकर घूम-घूमकर देख रहे हैं, और सोच रहे हैं कि मकान हो तो अैसा हो। जहाँ जो चाहिये, वहाँ वही है। सारा ओर लक्ष्मीका राज्य है। गोशालामें गाय-बैल बँधे हैं। आगनके अेक तरफ तुलसीथान है, और अेक कोनेमें बड़ी अमरूदका पौधा रहेगा। और पोखर......यहाँतक आकर सरसीकी कल्पना कुण्ठ हो जाती। वह लम्बी साँस खींचकर, दूसरी बात सोचने लगती।

अिसके बाद अच्छा दिन देखकर, अेक दिन दाकर सरसीको लेकर कलकत्तेके लिअे रवाना हो गया। निखिल पहले ही चला गया था। यह तय था कि वहाँ अिन लोगोंके लिअे रहनेकी जगह ठीक कर रखेगा। रास्तेके खर्च और कलकत्तेमें कुछ दिन रहनेके लिअे सरसीके कानकी बालियाको बेचकर पचीस रुपये अिकट्ठे किये गये।

गाँवसे स्टेशन सात मील है। शामकी गाड़ी पकड़नेके लिअे दस बजे दिनसे ही रवाना हो जाना पड़ेगा। सरसीने जल्दी-जल्दी खाना पकाकर पतिको खिलाया, और खुद भी खाया। आज अुसकी खुशीका कोअी पारावार नहीं। बच्चोंकी तरह वह खुशीसे अुछल रही है। चिरपरिचित गाँवको छोड़कर, वह दूर देश जा रही है, अिसकी अुसे जरा भी चिन्ता नहीं। निकुंजके मकानवाले दो सालके विभीषिका-पूर्ण अध्यायका यह सुखद अन्त! अिसको वह गनीमत समझ रही थी। अुनकी छोटी-सी गृहस्थीकी आवश्यक चीजें अेक छोटे बक्स और बिस्तरमें लपेटकर बैलगाड़ीमें लाद दी गयी हैं।

यात्राके लिअे तैयार होकर सरसीने कामिनीके पैर छुअे। अबसे दोनों जून रसोअी करनी पड़ेगी, यह सोचकर कामिनी नाराज थी। जरा खीजकर बोली—'देवरजीके भी अजीब ख्याल हैं। कहते हैं न कि मुखसे बैर है। यहाँ कितने मजेमें थे। सो नहीं रुचा, तैयारी कर दी कलकत्तेकी। कोअी कलकत्ता जानेसे चतुर्भुज थोड़े ही हो जाता।'

सरसीने आजतक जिस प्रकार अुसकी सब बातोंको चुपचाप सहन किया था, वैसे ही आज भी वह कड़ुआ घूँट पी गयी। केवल बोली—'किसी प्रकार तकदीर नहीं लौटी। अब जरा देखा जाअे कि कल-कत्तेमें......'

कामिनी कुछ पिघली। बोली—'खैर, जा रही हो, तो जाओ। पर यदि कभी विपत्तिमें पड़ो, तो यहीं चली आना। हम लोग तो हैं ही।'

सुनकर सरसीका हृदय काँप अुठा। मन ही मन अीश्वरसे प्रार्थना की--'भले ही धन न देना प्रभु, पर यहाँ अन्न दाना होकर न लौटना पड़े।'

फिर पतिके साथ गाड़ीपर बैठ गयी। रास्ता पहलेके अपने मकानके सामनेसे पड़ता था। दोनोंने जी भरकर अुसे देखा। सरसीने कहा—'चलो, जरा मकानको भीतरसे देखा जाये।'

पर शंकरने कहा--'रहने दो, अिस मकानमें जो किरायेदार है, न मालूम क्या समझ बैठें।'

मकानके किरायेदारका अेक छह सात वर्षका लड़का सामने खड़ा अुंगली चूस रहा था। सरसीने अुसे पास बुलाकर जिरह की, 'तुलसीका क्या हाल है? अमरूदका पौधा कितना बड़ा हुआ है?' पर वह कोअी सन्तोषजनक अुत्तर न दे सका।

सरसी फिर गाड़ीपर चढ़ गयी। सोचने लगी, 'न मालूम कब किस हालतमें यहाँ लौटना हो? सम्भव है, यह मकान भी लौट आये। पर अुसके जिगरका टुकड़ा मुनु कभी नहीं लौटेगा। कितनी अवहेलना सहकर बेचारा मरा।'

बचपनमें सरसी अपने चाचाके साथ अेक बार कलकत्ता गयी थी। पर अुस समयकी स्मृतियाँ धुंधली हो चुकी थीं। वह रास्तेमें कोअी नअी चीज देखती, तो विस्मयसे अवाक् होकर, टकटकी बाँधकर देखती, और सोचती 'हाय, यदि मुनू आज यह देखता तो कितना खुश होता।'

हावड़ा स्टेशनपर अुतरकर, दोनों अेक रिक्शापर सवार होकर चले। हावड़ा पुलपर सरसीने गंगाजीको प्रणाम किया। फिर पतिसे बोली—अेक दिन मुझे गंगा स्नान करनेके लिअे ले चलना।'

शंकरने कहा-- जरूर। अब तो यहीं रहोगी, न मालूम कितनी बार आना होगा।'

× × ×

निखिलके निवास-स्थानपर वे पहुँचे। अुसने छह आने रोजपर अिनके लिअे वहीं अेक कमरा ठीक कर रखा था। वहीं दोनों पहुँचे। सरसीने बक्स, बिस्तरा खोलकर देखते-देखते गृहस्थी सजा दी। न मालूम कितने दिनोंसे अैसी स्वतन्त्र गृहस्थीके लिअे अुनके मन तरस रहे थे।

निखिलके साथ सलाह करके यह तय हुआ कि पहले व्यापारके चक्करमें न पड़ा जाये। नौकरीकी तलाश होने लगी। निखिल भी अिस तलाशमें मदद देने लगा। पर अव्वल तो नौकरी मिलती नहीं थी और मिलती भी थी, तो पन्द्रह-बीसकी जिसमें मकानका किराया देकर कलकत्तेमें रोटी दाल खाना भी मुश्किल था। सरसी रोज व्यग्रतासे प्रतीक्षा करती, और रोज निराश होती। अिस प्रकार कानकी बालियोंके रुपये खतम होनेको आये। सरसीका मुंह सूख गया। अेक दिन जब काम खोजनेके लिअे शंकर जा रहा था, तो पीछेसे सरसी बोली—क्यों जी, कोअी नौकरी क्या नहीं कर लेते?'

शंकर बोला--'कोशिश तो हूँ पर कोअी बीस रुपयेसे अूपर बढ़ता ही नहीं। और अुस दिन हमने हिसाब लगाके देखा था कि पैंतीस रुपयेसे कममें काम नहीं चलेगा।'

'सो तो है पर मैं क्यों न कहीं रसोअी बनानेका काम कर लूं?'

शंकर स्तब्ध रह गया। फिर वेदना भरी आवाजमें बोला--सरसी, तुमने आज कैसी बात कह दी? क्या मैं अैसा अभागा हूँ कि अपनी स्त्रीसे काम करवाअूँ?'

अिसमें नाराज होनेकी क्या बात है? अकेले तुम्हारी आमदनीसे काम नहीं चलेगा अिसीसे मैंने यह बात कही।'

'यह बात फिर कभी जबानपर न लाना। गरीब हूँ तो क्या? अिज्जतदार तो हूँ।'

सरसी यह समझती थी, पर वह परिस्थितियोंको भी जानती थी। वह मृदु स्वरमें बोली—'वहाँ भी तो मैं रसोअी बनाती थी।'

'वहाँकी बात और थी। हजार हो, वे रिश्तेदार तो थे। यहाँ अगर तुम महाराजिन हो जाओ, और गाँवके लोग जान जायें, तो बस नाक कट जाय। दो-

चार दिनमें ढगको कोओी-न-कोओी नौकरी मिल ही जाओगी।'

पर दो-चारकी जगह दस दिन बीत गये, कुछ न हुआ। सारी पूंजी खतम हो गयी। मकानवालेके तकाजेसे परेशान होकर सरसीकी चूड़ियां भी बेच देनी पड़ीं।

अन्तमें शकरने भी हार मान ली। अेक दिन अुसने आकर सरसीसे कहा—'अब कोओी अुम्मीद नहीं। गांवको लौटना ही पड़ेगा। केवल रेलका किराया बाकी है।'

सरसीको कओी दिनसे अिसीकी आशंका थी। वह गुमसुम बैठ गयी।

दूसरे दिन दोनों गांव लौटनेको तैयार हुअे। सरसी अेक अेक करके बिखरी चीजोंको बटोरती, और अुसकी आंखें सजल हो अुठतीं।

शकर आखिरी बार बाजार घूमने गया। तय यह था कि वह घंटे भरमें लौटेगा, पर अेक बजे लौटा। बहुत खुश था अुस समय वह। बतलाया कि निखिलके यहां अेक व्यक्तिसे अुसकी भेंट हुओी, जिसने अुसे रुपया पैदा करनेका गुर बता दिया। अुस व्यक्तिने कहा था—'वाह! आप नौकरी क्यों करते? बस, देहातसे हैमरको रुओी बटोरकर भेजिअे। मैं खरीद लिया करूंगा।'

× × ×

सरसीने अिसपर कोओी अुत्साह नहीं दिखलाया। दोनों स्टेशनकी ओर फिर अुसी प्रकार रिक्शेमें चले। पर यह जाना दूसरे ढंगका था। छुट्टीका दिन था। सिनेमाका मैटिनी शो होनेवाला था। लाअुडस्पीकरपर अेक गाना बज रहा था, जिसका अर्थ यह था, कि जो भाटेके मुंहमें जाते हैं वे फिरकर ताकते भी नहीं। सरसी सोचने लगी—सच तो है। फिर अुसी कामिनीके 'अन्न दासत्व'में लौटना पड़ रहा है। क्या अुसके जीवनमें अब भाटा ही रहेगा? ससुरजीकी मृत्युके बादसे आरंभ हुआ यह भाटा कब तक चलेगा। क्या कभी ज्वार आअेगा?

अुधर शकर रास्ते भर प्रबल अुत्साहसे अपने नये व्यापारकी सम्भावनाओंके सम्बन्धमें बात करता रहा। परन्तु अुसने जो कुछ कहा, अुसका अेक भी शब्द सरसीके कानोंमें नहीं गया।

अुनका रिक्शा जिस समय हावड़ाके पुलपर जा रहा था, अुस समय अेक तीखी मोटरमें अुनका ध्यान अपने चारों ओरके वातावरणकी ओर फेरा। सरसीने सामने दृष्टि डाली। गंगाजी लहरा रही थीं। सूर्य-किरणोंसे तरंगें झिलमिला रही थीं। शकरने कहा—'ओह, खूब याद आया। तुमने गंगा किनारे नहलानेके लिअे कहा था, पर मौका नहीं मिला। अभी गाड़ीमें देर है। चलो, दो-चार डुबकी लगा लें।'

रिक्शेवालेसे ठहरनेके लिअे कहा गया, तो वह राजी नहीं हुआ। अन्तमें अुसे पूरा किराया देकर विदा कर दिया। किसी प्रकार घाटके किनारे अेक दूकानपर सामान रखकर वे नहाने चले। अुस समय घाटपर स्नानार्थियोंकी भीड़ नहीं थी। अैसे समय कौन नहाता?

नदीमें अुस समय पूरे ज्वारके बाद भाटेका खिचाव आ रहा था। वर्षाके अन्तकी नदी थी। घाटकी प्राय सब सीढ़ियां डूबी हुओी थीं। जल प्रवाह तीव्र था। घाटके दोनों सिरोंपर असंख्य नौकाअें, बजरे, डोंगियां लगी थीं। प्रवाहके तालपर नाव नाच रही थीं। अुनकी रस्सियोंपर खिचाव पड़ रहा था। अेकदम किनारे, जहां प्रवाहकी गति बहुत मन्द थी, नावकी आड़में खड़े होकर शकरने अंगोछेसे शरीर रगड़नेकी तैयारी की। अकस्मात अुसने चौंककर देखा, सरसी अुससे भी कओी हाथ आगे थी। वहां पानी अुसकी कमर तक था।

शकरने परेशान होकर कहा—'सरसी अुतने गहरेमें मत जाओ। पानीमें तेजी बहुत है।'

सरसीने कुछ नहीं कहा, और और भी आगे बढ़ गयी।

'अरे, यह क्या, सरो? सुनती क्यों नहीं? अितनी दूर मत जाओ। तुम तैरना नहीं जानतीं। जल्दी लौटो।'

सरसीने कुछ नहीं कहा। मुंह फेरकर देखा भी नहीं। फिर रुंधी हुओी आवाजमें सिर्फ कहा—'नहीं।'

'नहीं क्या, जी ? पानीमें कितनी तेजी है नहीं देखती ? सम्हल नहीं पाओगी। यहाँ पानी कम है। अिधर आओ।'

अबकी बार सरसीने मुँह फेरा। अुसके चेहरेपर आँसूकी धारें बह रही थी। अपनी बड़ी बड़ी सजल आँखोंको शंकरके मुँहपर जमाकर वह मर्मभेदी रुदनके साथ बोली—'नहीं जी। मैं अब वहाँ लौटकर नहीं आअूँगी।'

दूसरे ही क्षण जाह्नवीकी जलराशिने अुसे ग्रस लिया।

शंकर कभी क्षण तक अुस तरफ विह्वल, विमूढ़ दृष्टिसे देखता रहा। सरसी फिर अूपर नहीं आयी। जहाँपर सरसी डूबी थी, वहाँपर कुछ देरके लिअे अेक भँवर-सा दिखायी पड़ा। फिर जल ज्यों-का-त्यों हो गया।

क्षण भर बाद अुससे कोअी बीस हाथकी दूरीपर, जहाँ अेक मालसे लदी नाव थी, बिखरे हुअे कुछ बाल दिखायी पड़े। किसी अज्ञात जलचरकी तरह अेक बार दिखकर वे नावके नीचे अदृश्य हो गये।

मर्मभेदी चीत्कारके स्वरमें शंकरने कहा—'सब सत्यानाश कर दिया तूने सरसी!' और वह अुन बालोंका निशाना बनाकर पानीमें कूद पड़ा। वह जितने जोरसे कूदा और साथ ही पानीका बहाव जितना तेज था कि शंकर अेक क्षणमें ही अुस नावके पास पहुँच गया। अपनेको सम्हाल न पानेके कारण अुसका सिर जोरसे नावसे टकरा गया और वह बेहोश हो गया।

सरसीको किसीने डूबते हुअे नहीं देखा था, पर शंकरके घोर मर्मान्तक सभीकी दृष्टि अुस ओर गयी। फौरन सब दौड़ पड़े, 'गया, गया।' 'बचाओ, बचाओ।' चिल्लाते हुअे।

पल भरमें पासकी नावोंसे चार-पाँच व्यक्ति कूद पड़े, और शंकरको पकड़ लिया।

शंकरको होश आया, तो वह पागलोंकी तरह अिन लोगोंसे कहने लगा—'छोड़ो, छोड़ो। मुझे छोड़ दो। जहाँ वह गयी है वहीं मुझे भी जाने दो।'

अुसने अुन लोगोंसे हाथ छुड़ानेके लिअे खींचा-तानी भी करनी चाही थी। पर अकेला चार पाँच आदमियोंसे कैसे पार पाता। वे अुसे बचाकर ही माने।

देखते-देखते शंकरके चारों तरफ अच्छी खासी भीड़ जमा हो गयी। सब जानना चाहते थे कि मामला क्या है।

घाटके किनारे बैठे-बैठे अेक बूढ़ा भिखमंगा लाअी चबा रहा था। अुसने घटनाका अन्तिम दृश्य देखा था। अुसने सबको बतलाया कि 'अिन बाबूकी स्त्री डूब गयी है, अिसलिअे ये भी डूबने जा रहे थे।'

किसीने सहानुभूति दिखायी, किसीने कर्म-फलकी महिमाका बखान किया, किसीने अिस बातपर अपनी राय दी, कि लाश कितने घंटोंमें अूपर अुठेगी और कितने मीलके अन्दर रहेगी।

धीरे धीरे भीड़ घट गयी। घाट करीब-करीब जन शून्य हो गया। भीगे कपड़ोंमें गंगाकी ओर दृष्टि स्थिर किये शंकर बैठा रहा।

नदीके पानीमें गला हुआ सोना ढालकर, अुस पारकी हवेलियाँकी आड़में सूर्य अस्त हो गये।

बाह्य ज्ञान शून्य-सा शंकर फिर भी बैठा ही रहा। जीवनके सैकड़ों दुर्भाग्योंमें भी जितने दिनोंतक कल्पनाने अुसे आशाकी वाणी सुनायी थी, पर आज तो कहीं आशाकी अेक रेखा भी नहीं दीख पड़ती थी।

अुसके समस्त आकाश-कुसुमोंकी सरसनामें जिनने दिन जो बिना विचारे विश्वास करती थी, अुस सुख-दुखकी जीवन सहचरीके अिस परम विश्वासघातसे अुसकी कल्पनाका सोना सूख चुका था।

(बंगलासे अनुवादिका— श्रीमती माया गुप्त)

[दिल्ली

———ooooo———

मौपासाँ

: श्री परदेशी, साहित्यरत्न :

फ्रान्सीसी भाषाका यह स्वनामधन्य कलाकार मौपासाँ विश्वकथाकारोंकी अग्रगण्य पंक्तिमें है। कथासाहित्यके अक्षय कोषका वह कुबेर था। मौपासाँकी कहानियोंने पाठकोंको जितना प्रभावित किया अुतना १९ वीं सदीके अन्य किसी कथाकारकी रचनाओंने नहीं।

यदि शरद्बाबू फ्रान्समें जन्मे होते तो शरद् और मौपासाँ मिलकर फ्रेंच नारी जीवनको पूर्णता प्रदान करते। शरद्बाबू भारतीय नारीकी निष्काम प्रणति और सर्वस्व समर्पणके गायक थे। नारी-जीवनकी व्याकुल विदग्धता, पवित्रता और प्रमदाकी मर्यादाओं और सामाजिक कठोरताको शरद्बाबूने खूब समझा है। मौपासाँ शरद्के ठीक विपरीत है। यदि शरद्ने समाज-पीड़ित भारतीय नारीके मौन आँसू देखे हैं तो मौपासाँने पतनोन्मुख फ्रेंच समाजके घेरेमें पड़ी विकृत रूप और विपथगामिनी फ्रेंच नारीका दर्शन किया है। जो लोग यह कहते हैं कि मौपासाँ साधारण नारीके प्रति अत्यन्त दुर्भावनापूर्ण (प्रेज्युडिस्ड) और कुटिल-कठोर था, वे अपराधी हैं। निजी जीवनमें मौपासाँ नारीके चरणोंका सेवक रहा है। साहित्यमें अुसने जिस नारीका चित्रण किया, वह दुर्दशाग्रस्त समाजकी देन है। यदि अुसने 'हिपोलितका दावा' कहानीकी नायिका मदाम ल्यूनी और 'कमरा नं ११'की मदाम अमन्दीन जैसे चरित्रोंकी रचना की है तो दूसरी ओर अपनी श्रेष्ठ रचना 'बाल और फेट' में वेश्या नारीका चरित्र अिस प्रकार अुठा दिया कि पाठक अुस तिरस्कृता नारीकी अुदारता और सरलता देखकर रो पड़ता है। अिसलिये मौपासाँको नारी जीवनकी विकृतिका कथाकार कहना, कहनेवालोंपर कलंक है। अुसने जिन विकृत और शोषित जीवनकी ओर ध्यान आकर्षित किया, अुसके मूलभूत कारणों और अुन धनी व्यक्तियों, वर्गों और शोषकोंपर जबरदस्त प्रहार भी किये हैं, जो अिन कारणोंको बढ़ानेमें स्वयं अेक कारण रहे हैं। "लिटल् लूनी रोक" कहानी हमारे अिस कथनका ज्वलन्त प्रमाण है। जमींदार रेनार्ड और पोस्टमैन मेडेरिक रॉबिल, दो भिन्न वर्गोंके प्रतिनिधि हैं। परन्तु रेनार्डके वर्गपर अपनी अनन्त कहानियोंमें मौपासाँने परशुरामकी तरह बढ़-चढ़कर कुठाराघात किये हैं!

गाय द मौपासाँका जन्म साधारण फ्रेंच परिवारमें हुआ था। वह पेमाअिन्के महकमेमें अेक क्लर्क था। अेक ओर अुसने पेमाअिशी दफ्तरमें प्रकृत चरित्रोंका सान्निध्य पाया, दूसरी ओर कथाकारके रूपमें अुसे विकृत नारीका नैकट्य मिला। बहरहाल, नारी अुसके अन्दर और बहिर्जगतकी प्रेरणा रही।

मौपासाँने अपने गुरु गस्तेव फ्लाबर्टसे कथाकला सीखी। फ्लाबर्ट नारी-जीवन-जलनिधिकी गहनतम गहराअियोंमें तैरनेवाला तैराक था। मदाम बावेरीका अमर प्रणेता फ्लाबर्ट तत्कालीन फ्रेंच साहित्यका निर्माता था। कहना चाहिये कि यद्यपि मौपासाँ अपने गुरुसे पूर्णतया प्रभावित था तथापि वह फ्लाबर्टसे कहीं आगे निकल गया।

मौपासाँकी कथाका विषय प्रकट रूपमें फ्रेंच नारी और अप्रकट रूपमें फ्रेंच समाज है। अिस नारीका सृजनकर लेखकने अिसके प्रति पर्याप्त मानवता और अुदारताका परिचय दिया है। अुसकी पार्श्वभूमिमें लेखकने समाजके औपचारिक विषवृक्षोंपर तीक्ष्णतम प्रहार किये हैं। कुल मिलाकर मौपासाँ 'फ्रेंच' था। नारीके जीवनसे बाहर अुसकी दृष्टि नहीं गयी। यों, अेक कहानी 'नागे' में अुसने मध्यकालीन ठाकुरके स्वेच्छाचारका अद्भुत दर्शन किया है। और ६ से ९ वर्षके बच्चों-के दास-जीवनका रोमांचक दर्शन कराया है। केवल अिस कथामें लेखककी नजर फ्रान्ससे बाहर गयी। यों मानवीय भावनाओंकी अुसमें कमी नहीं और वे

भावनाओं समारके सभी देशोंमें, सभी कालोंमें वर्तमान रहती है। यदि मोपासां अपनी कथावस्तुका दायरा बहुत बड़ा देता तो संभव था कि अुसको फ्रेंच नारी जीवनके चित्रणकी विशेषता समाप्त हो जाती।

मोपासांकी कहानियोंमें (तत्कालीन कथा विकासकी दृष्टिसे) कहीं कोअी खामी नहीं। अेक-अेक शब्द नगीनेकी तरह जड़ा है। हर अेक शब्दमें काट चमक और नुकीलापन है। अुनके कथानक अत्यंत रोमांचक, कुतूहलवर्द्धक और स्वाभाविक हैं। कथावस्तुके आधार पेरिसकी साधारण और अमीर औरतें हैं — वेश्याअें, अभिनेत्रियां, गुलाबी गालोंवाली ग्राम्य कन्याअें, सामन्तों और ठाकुरोंकी ठकुरानियां आदि। अिन सबके साथ शोषण, धोखा, झूठ, संघर्ष, अनुदारता, अुदारता, दुखकी कटुता, सुखका सन्तोष, पराजितोंकी मनःस्थिति आदि अनेक भाव-भावनाअें गुम्फित हैं। मोपासांने अपनी कथाओंका सृजन अत्यन्त कौशल और चपल धैर्यके साथ किया है।

अुन समयके साहित्यकार अपनी रचनाओंको पॉलिश किया करते थे। अुर्दूमें शेर लिखनेवाले शायरों की तरह तत्कालीन कथाकार भी कभी बार अपनी कहानियोंको काटने-छांटने कराते थे। अिससे यह स्पष्ट होता है कि वस्तुस्थितिसे अधिक अुनका ध्यान बाह्य आवरण और चित्रणकी ओर था। मनोरंजन, रोमांस और रोमांस अुनके प्रथम लक्ष्य थे। मोपासां अिनमें भी आगे था। अुसकी छोटीसे छोटी कहानी भी पूर्ण मनोयोगपूर्वक अेक कलामय ढंगसे लिखी गयी है। वह कहानीके बाह्य स्वरूपका शिल्पी और आन्तरिक भावोंका स्रष्टा था। फिर भी, यह तो कभी-कभी महसूस होता ही है कि पूरी कहानीमें केवल शब्दाडम्बर और अेक ट्रिक है, अेक चमत्कार मात्र है जैसा कि हमारे रीतिकालीन शृंगारी कवियोंके वर्णनात्मक छंदोंमें मिलता है। 'अर्दली', 'चांदनी रात', 'कचहरीका कमरा', 'कब्रस्तानकी रानी' आदि कहानियां अिसी कोटिकी हैं।

अैसा लगता है कि लिखते समय, मोपासां अपनी कथाओंमें तन्मय हो जाता था। अभिव्यक्तिका क्षेत्र अत्यन्त दुर्गम है। यहां तलवारकी धारपर चलना होता है। लेखक अपने पात्रोंके तन, मन, जीवनको अभिव्यक्त करते समय बहुत ज्यादा लिख जाता है विशेषकर अुन विषयोंसे, जो अुसकी विशेषताके अन्तर्गत आते हैं, जो अुसे अधिक प्रिय हैं, लेखकका तटस्थ रह जाना, बड़े संयमका काम है। अैसे समय लेखक अपनी समस्त अनुभूतियोंको मूर्त रूप देनेका लोभ संवरण नहीं कर पाता। किन्तु भावोन्मेष, अभिव्यक्ति-आविष्कार, और अनुभूति अुद्रेककी सीमाको पहचाननेवाले कलाकार तटस्थ रहकर अुतनाही रस, रूप आकार और माधुर्य देते हैं, जितना पात्रों और पाठकोंके लिअे आवश्यक है। मोपासां अपने पात्रोंमें अभिव्यक्त है।

भावानुभूति और अभिव्यक्तिमें अति अतिरेकसे रचनाके सौंदर्यकी मर्यादा भंग होती है। काव्य या कथाके समस्त बाह्य अुपकरणों और आकांक्षित मूर्ति आन्तरिक मनोप्रदेशमें अेक समस्वरता होनी चाहिअे। मोपासां अिसीका अुस्ताद है। वह अपने अभिष्टको शनैः शनैः परन्तु दृढ़तापूर्वक अूंचाअीकी ओर ले जाता है, भाव कलशको कहीं छलकने नहीं देता। अनिच्छित, अनिष्टको, विरोधी पक्षको अिस कठोर धैर्यके साथ धीरे-धीरे काटता है कि ब्रह्मा भी चाहे तो अुसे पुनः जीवन नहीं दे सकते। अिसी कारण, मोपासांमें जितनी कसक, वेदना, तीव्रता, सचाअी और स्पष्टवादिता है।

मोपासांके पात्रोंमें दो अद्भुत विशेषताअें हैं। वे 'कु' और 'सु' की दोनों धुरियोंपर स्थित हैं। यदि पात्र बुराअीमें जीता है तो समस्त बुराअीके श्मशानपर भूतनाथ शिवकी तरह शासन करता है। अैसे पात्रोंका प्रायः ही बुराअी है। यदि पात्र सच्चरित्र है तो अितना कि कभी हारता नहीं। जीवनका कोअी लोभ, मोह सत्यसे च्युत नहीं कर सकता। अिस कथनपर हमें प्रेमचंदके 'होरी' की याद आती है। साधारण और निम्न वर्गके पात्रोंके लिअे मोपासां और प्रेमचंदने समान रूपसे लड़ाअियां लड़ी हैं। पोस्टमैन मेदेरिक रॉगिल, साअिमनका पापा, रस्सीका टुकड़ा और कठहार अिसके प्रमाण हैं। कोरी-भूआ नैतिकतासे मोपासां खूब खुलकर खेला है। 'बॉल ऑफ

फेट' पढ लीजिअे— काअुन्त ह्युवर्त्त, कार्नूदे, केरे लेम्दां और अुनकी वीवियां, आभिजात्यमें रहनेवाली पाशविकताकी प्रतिमाअें हे । अिस वर्गके सदस्योंको— अनैतिक असामाजिकताके विरुद्ध मोपासांने अपने समयकी अगतिशील व्यवस्था और समाजके बीच रहकर भी बडी वीरतापूर्वक जंग लडा है। 'बॉल ऑफ फेट'—'चर्बीका गोला' समालोचकोंकी दृष्टिमें पिछली अेक शताब्दीकी श्रेष्ठतम कहानियोंमें है। पचपन वर्ष पूर्व, श्री सेटबरी— जिसे मोपासांकी कहानियां खास तौरपर पसन्द और नापसन्द नही थी,—लिखता है— "बॉल ऑफ फेट'— ट्रेजिक कॉमिडीकी अत्यन्त परिष्कृत अेव रोमांचकारी रचना है। हमारे युगमें अैसी कहानी कभी नहीं लिखी गयी।"

सचमुच, अिस कहानीमें मोपासांने कल्पनाकी अुत्तम श्रेणियों और यथार्थकी गहन गहराअियोंको बांध लिया है। वॉलिम ब्रॉक्वेका कथन है— 'अिस कथा-द्वारा मोपासां अितना अूंचा अुठ गया है कि अुसने कहानीकी श्रेष्ठताका परीक्षण करनेवाले अूंचेसे अूंचे मापदण्डको भी छोटा प्रमाणित कर दिया है।' वास्तवमें, 'बॉल आफ फेट' अैसी ही कला-कृति है । अुसमें जो गहरा, पैना और भारी व्यंग्य है, वह अुस वर्गको शताब्दियों तक काटता रहेगा, जिसपर वह किया गया है।

शोषक-वर्गका यह प्रमुख लक्षण रहा है कि अपनी स्वार्थपूर्तिके लिअे वह किसीकी कुछ भी बलि देनेमें नहीं हिचकता । नीति और चरित्र, शास्त्र और शास्ताकी दुहाअियां देनेवाला अिसका व्यक्ति अपने परित्राणके लिअे, वेश्याके चरणोंमें लोट-लोटकर भीख मांग सकता है और अपनी मुक्तिपर, लोह-कलशीसे निकले नागकी तरह फुफकारकर फन मारता है। अिससे अधिक कृतघ्न और कमीना दूसरा नहीं। 'बॉल आफ फेट'के पात्रों द्वारा मोपासांने अिस सत्यको मूर्तिमत रूपमें रखा है । मोपासांने 'अिन पात्रोंकी नैतिकता' और अुनके असभ्य संस्कारोंने १९ वी सदीके अन्तमें सभी अंग्रेज और अमरीकी आलोचकोंको दुर्दांत बनाया।

यदि अुसकी कहानियोंमें फ्रान्सकी फैशन-परस्त अगतियों और मुर्दरियोंका सबभरा चित्र है (वमरान. ११, खलिहानकी लडकी, मेद्रमेजेल फिफि, वनमें, दानव, ग्राजियाकी अप्सरा, ब्याहकी रात और अन्याय), विविध वर्गोंके विचित्र पीडितों-शोषकोंके स्वरूप हैं (बेल, कलाकार, पगली, शिकार आदि) और शासक वर्गीय सामन्तों, महन्तों, सारे समाजकी अच्छाअियों, सचाअियोंके सौदागरों (मिस हेरियेत, मश्यू पेटेन्ट, मार्किस द फ्युमरोल, साअिमनके पापा, अंग्रेज, वर्षा आदि कहानियां) और नाजिम तथा पेशनसे भरे १९ वीं सदीके सजीव चित्र हैं तो अुनके लिअे मोपासांकी अपनी नैतिकता,अनैतिकता अुत्तरदायी नहीं। साधारण-सी बात है कि अपने जीवनकी प्रबल परिस्थितियोंने अुसे अपने सामयिक समाज और अवस्थाका पर्याप्त अनुभव कराया। जो अुसे सहज सुलभ, अुपलब्ध हुआ, अुसका अध्ययन और प्रभाव अधिक सूक्ष्म रूपसे अुसके मन, मस्तिष्क और कलापर अंकित हुआ। अुस कालके मानव समुदाय और समाज-व्यवस्थाके प्रति अुसका अेक विशेष दृष्टिकोण बना। यदि मोपासांमें नैतिकता ही देखना है तो विलासिनी सामन्त कन्याओंमें क्यों न अुसकी खोज की जावे, बाजारू सेठानियोंके जीवनमें वह सहज-सुलभ न हो सकेगी, अुसे 'कण्ठहार' कहानीकी नायिका मदाम लाअिजेलके चरित्रमें देखना अधिक सुगम होगा। क्योंकि कठोर परिश्रमके अुपरांत भी वह अपनी अूंचाअीसे नहीं डिगती। नैतिकताका अर्थ क्या है? अुसके मूल्य, मान और लक्षण क्या विविध वादोंने अपने विश्वासोंके अनुरूप नहीं बदल लिये?

साहित्यिक जीवनके आरम्भमें ही मोपासांको पर्याप्त पूंजी और प्रसिद्धि प्राप्त हुअी । अिंग्लैंड अमेरिका और योरपके कअी देशोंने अुसकी कहानियोंका अनुवादकर अपने भाषा कोषको समृद्ध बनाया। भारतीय भाषाओंमें भी अुसने अुचित सम्मान पाया। हिन्दीमें अुसकी कहानियोंको ज्योंका त्यों लानेके प्रयत्नका सौभाग्य अिन पंक्तियोंके लेखकको मिला है।

शायद मोपासां ही अैसा लेखक है, जिसकी कहानियोंके कथानकोंके आधारपर संसारके अनगिनती कथाकारोंने अपनी कहानियां लिखीं। 'साहित्यिक चोरी' के साधारण विवादमें न पडकर, हम अिसे मोपासांके लिअे अद्वितीय सम्मान ही कह सकते हैं।

फ्रांसका तो यह हाल था कि मोपासाँ जितना लिखता तुरन्त छप जाता। समाचारपत्रोंमें अुसकी कहानियोंकी जबरदस्त माग रहती। आजकी महगाओको भूलकर ७५ वर्ष पूर्वकी दशापर विचार कीजिअ, जब वस्तुके मूल्यको हिमालयकी चोटीपर चढनेका ख्याल नहीं आया था—सब चीजें सस्ती थी। अुस जमानेमें मोपासाँकी साहित्यिक आय २५०० रु प्रतिमास थी। पेरिसमें अुन दिनों अितनी आय किसी रओीसी शानके लिअ पर्याप्त थी। पारिश्रमिककी अिस आमदनीसे अपनी माँकी वार्षिक सहायताके अलावा मोपासाँ पूरी लक्जरी से रहता। अुसकी आदत अच्छी नहीं थी। अस आवभगतमें खर्च होनेवाली रकमका अन्दाज लगाया जा सकता है। पेरिसमें रहनेवाले तत्कालीन लब्ध प्रतिष्ठित चित्र-कलाकार गागिन पिसारो लावन वानगोक वगरह अुसके मित्र थे। अिन मित्रोंकी मडलीमें सुन्दरियों के लिअ विशेष आसन शासन था। अिनमें भी गागिन (विश्वका महानतम चित्रकार) तो लडकियो के बारेमें पूरा परमहंस था। गागिनने चित्रकार वान गोकका जीवन बरबाद कर दिया यह कहकर भी अक प्रसिद्ध पुरुषके विषयमें असा कहना कहातक अुचित है हम नहीं जानते।

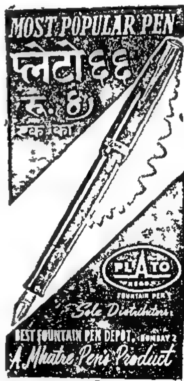
मोपासाँका असामयिक देहान्त हुआ। अुसने आत्महत्या कर ली। रेजर ब्लेडसे अपना गला काट डाला। विश्वका अग्रतम कहानीकार असा करेगा यह कैसे कहा जा सकता था? कथा-लोकमें सर्वथा तटस्थ पर्यवेक्षण दृष्टि सृष्टि रखते हुअ भी क्योंकर मोपासाँ दुनियासे अिस प्रकार निराश हो गया? दुनियाकी सारी बुराअीको अुसने देखा था। देखा ही नहीं सुना समझा पाया और परखा था। यह सब होने हुअ भी असी कौन-सी चीज थी जिसने मोपासाँको अिस प्रकार बलिदान होनेको विवश किया?

मोपासाँकी वह? (He?) और पागलकी डायरी अन्तिम कहानियाँ हैं। जिसके बाद वह पागल हो गया था और अुसने अपना गला काट डाला। कलाकार वानगोकने तो अपनी प्रेमिकाको क्रिसमसके पर्वपर अपना कान काटकर भेंटकर दिया था। 'वह?' कहानी प्रथम पुरुषमें लिखी गयी बडी ही भयानक रचना है। अिसे पढकर कोओी भी पाठक अपने मस्तिष्क और मनको वशमें नहीं रख सकता। हृदयकी धडकन बढ जाती है और मौतकी परछाअियाँ सामने नाचने लगती हैं।

' प्रिय मित्र सभी सम्भव साधनोंके बल भी तुम यह जाननेमें असमर्थ रहोगे। तुम्हारा ख्याल है मैं पागल हो गया हूँ। हो सकता है परन्तु अुस दृष्टिकोणसे नहीं जिससे तुम निर्णय करते हो। हाँ मैं ब्याह करनेवाला हूँ। मेरे विचार और मेरे विश्वास वैसे ही हैं अुनमें कोओी परिवर्तन नहीं आया है।

अब आगे मैं रात्रिमें अकेला रहना नहीं चाहूँगा। मैं यह महसूस करना चाहता हूँ कि कोओी मेरे बिल्कुल करीब है मुझसे सटकर सोयी है। अक आत्मा जो बोल सकती है और कुछ भी कह सकती है परवाह नहीं वह चाहे जो कहे।

मेरी अिच्छा है कि मैं अपने समीप सोयी किसी सुन्दरीको जगाअूँ ताकि मैं अचानक अुससे कोओी प्रश्न



पूछ सकूं और अिन्सानकी आवाज सुन सकूं। मुझे यह भान हो कि मेरे पहलू, मेरे अितना निकट अेक जीती-जागती जिंदगी है। 'कोअी' है—जिसे मैं चाहे जब रोशनी जलाकर देख सकूं क्यों कि यह स्वीकार करनेमें मैं लज्जित हूँ कि अकेला रहनेमें मुझे डर लगता है।'

"तुम मुझे अभी भी न समझ सकोगे भले आदमी, मैं किसी खतरेसे नहीं डरता,-यदि कमरेमें कोअी आदमी आये तो यकीनन बिना हिचके और कांपे, अुसका खात्मा कर दूंगा। मैं भूतोंसे नहीं डरता, और न मुझे प्रेतात्माओंपर विश्वास ही है। मैं मरे लोगोंसे भय नहीं खाता क्योंकि मैं जानता हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति मरनेपर खत्म हो जाता है।

हां, तो हां, कहना ही पड़ेगा, मुझे अपने आपसे भय लगता है, मैं 'भय की सनसनीसे डरता हूँ। मैं बोलता हूँ तो मुझ अैसा लगता है, मैं अपनी ही आवाजसे डर रहा हूँ। यदि चलता हूँ तो लगता है दरवाजेके पीछे, पर्देके पीछे, आलमारीके पीछे और बिछौनेके नीचे कोअी छिपा हुआ है, कोअी है। मैं यह प्रतिपल समझता हूँ कि वहाँ कुछ भी नहीं है, फिर भी, मैं तत्काल सहसा मुड़कर देख लेता हूँ, चूंकि मैं अुससे डरता हूँ जो मेरे पीछे है। अुसका साया मुझपर मंडराया हुआ है, यह कथन मूर्खतापूर्ण है, लेकिन सच है। 'वह' कौन और क्या है? मैं जानता हूँ कि मेरी कायर-कल्पनाके अतिरिक्त अन्य कहीं अुसका निवास नहीं। वह मेरे भय और मेरी पीड़ामें पैठा है। बहुत हो चुका यदि मैं कमरेमें अकेला न होता और हम दो होते तो निश्चय ही वह भाग खड़ा होता, क्योंकि 'वह' कमरेमें अिस लिअे आता है कि मैं अकेला हूँ, साधारण कारण है कि मैं अकेला हूँ, और अकेला हूँ।"

अब 'पागलकी डायरी' के कुछ अवतरण देखिअे—

"जून २०—१८५१. अैसे कुछ लोगोंसे भेंट होती है कि जिन्हें हत्यामें आनन्द आता है। हां, हां, अिसमें मजा आता ही चाहिअे। सबसे ज्यादा मजा कत्लमें है, क्या कत्ल, जीवनके समान नहीं है? निर्माण और नाश! अिन दो लफ्जोंमें दुनियांकी तवारीख छिपी है। तमाम धरतीका अितिहास— बस, यही सब है न? तब मारनेमें मजा क्यों न आये?

"जून २५— यह सोचना कि अेक जीव है जो, सांस ले रहा है, जीवित है, चलता फिरता दौड़ता है, वाह खूब कहा जीव! जीव भला क्या चीज है? जीवन अेक जर्रा जो धरतीपर रेंगता रहता है और मैं नहीं जानता, जीवनका यह नाचीज कचरा कहाँसे आता है, लेकिन कोअी चाहे तो अिसे अपनी मर्जीपर मार सकता है, तब, तब कुछ भी नहीं बचता। यह ओपन हो जाता है, यह खत्म हो जाता है।

'जून २६— तब बताअिअे, हत्याको अपराध क्यों बताया गया? हां, क्यों? बजाय हत्याके, यह तो प्राकृतिक नियम है। हर अेक 'प्राणीका धर्म है— किसीको मारे! हर अेक, जीवित रहनेके लिअे मारता है, मारनेके लिअे जीता है। पशु प्रतिपल मारता रहता है। मनुष्य अपनेको शक्तिमान् बनानेके लिअे निरन्तर हत्याअें करता है। लेकिन, अिसके अलावा,मजेके खातिर भी वह खून करता है, अिसीलिअे तो अुमने कत्लका आविष्कार किया है। बालक दिनभर कीड़ोंको मारता है, नन्हीं चिड़ियां, छोटे जानवर वगैरह जो भी अुसके रास्तेमें आते हैं, मरते हैं। लेकिन, हमें कत्लेआमकी जो अदम्य प्यास और ललक है अुसकी पूर्ति अिससे नहीं होती। पशुओंको मार लेना ही काफी नहीं है। हमें चाहिअे कि आदमीको भी मारें। पूर्वकालमें अिस आवश्यकताका प्रतीक 'बलिदान' था। अब तो समाजमें जीवन व्यतीत करनेकी जरूरतने हत्याको अपराध बना दिया है। हम हत्यारेको सजा देते हैं और धिक्कारते हैं! फिर भी हम अिस नैसर्गिक अेव अनिवार्य अिच्छाका दमन नहीं कर सकते हैं। यह हममें सतत जागृत रहती है। और अिसका शमन करनेके लिअे हम समय २ पर जंग छेड़ते हैं। तब तो मानवका मंगल समारोह आरम्भ होता है। पूरेके पूरे राष्ट्र दूसरे राष्ट्रपर चढ़ दौड़ते हैं और अुसका पूर्ण विध्वंस कर प्रसन्न होते हैं! यह खून और लूट खसोटियोंकी दावत है, अेक अैसी दावत है, जो सेनाओंको विक्षिप्त और नागरिकोंको पागल कर देती है। आदमी-औरत और बच्चे होश हवास खो देते हैं और रातोंमें घोंरे चिराग जला जलाकर अखबारोंमें छपे, हत्याकाण्डोंके बीभत्स वर्णन बड़े समारोहपूर्वक

मिलजुलकर पढते हैं। जवाब दीजिअे, क्या हम अुन लोगोंको धिक्कार सकते हैं जो भिन्सानकी हत्याके कारण हैं जिन्होंने ये कत्ले आम जारी करनेके हुक्म दिये हैं। परन्तु नहीं, हम अुलटे अुनको विविध अुपाधियोंसे विभूषितकर अपना गौरव बढाते हैं। अुन्हें सोने और जरीकी पोशाकें पहनायी जाती हैं, अुनकी टोपियोंपर तुर्रे लगते हैं और अुनके सीनेपर जेवर-जवाहरातके तमगे जगमगाते हैं। अुन्हें क्रॉस और लीजन ऑफ ऑनर मिलते हैं। सलामियाँ दी जाती हैं। घमन्डके ये पुतले अहंकारके मदसे भर जाते हैं। सुन्दरियाँ अुनका प्यार पानेकी प्रतियोगितामें प्राण गंवाती हैं। भीड़की भीड़ अुनका जय जयकार करती हैं। क्यों साहब केवल भिसीलिअे न कि अुनका जीवनोद्देश्य मानवमात्रका रक्त बहाना, हत्याअें और कत्लेआम करना है। जब वे अपने मौतके हथियार थामे गलियोंसे गुजरते हैं तो लोग स्तब्ध रहकर मनही मन अुनकी शानसे भीर्ष्या करते हैं। क्योंकि, हत्या करना प्रकृतिका प्रबल नियम है जिसे अुसने प्रत्येक प्राणीके हृदयमें प्रतिष्ठित किया है। संसारमें हत्या और कत्लसे अधिक सम्मान और आनन्ददायक दूसरा काम नहीं है।

मृत्यु नियम है,—क्योंकि प्रकृति शाश्वत यौवन चाहती है। अैसा लगता है यह अपने प्रत्येक कार्य-कलापमें अनजाने ही पुकार रही है, जल्दी करो, जल्दी करो, जल्दी करो। ज्यों-ज्यों वह विनाश करती है, त्यों-त्यों अुसकी जवानी नया रंग लाती है।

× × ×

परन्तु भिन अुद्धरणोंके आधारपर भी हम यह माननेको तैयार नहीं कि 'यह?' और 'पागलकी डायरी' मौपासाँको विक्षिप्त प्रमाणित करती है। अुपरोक्त अवतरणोंद्वारा विश्वके अपराजित सेनानायकों, पराक्रमियों, सिकन्दर, चंगेज विजेताओं, नादिरशाहों और हिटलरोंपर *व्यंग्यका* जो वज्रपात किया गया है वह विश्व साहित्यमें *सर्वथा* दुर्लभ है। मौपासाँ-जैसा महान् कला प्रभु ही यह कर सकता था। युद्धके विरुद्ध कितनी अटल अपील भिन पंक्तियोंमें है? मौतको जीवनका व्यापार बना देनेवाले वर्गोंके गाले कपालोंपर कैसा करारा चपत भिनमें है?

कौन कह सकता है यह सब लिखनेवाला मौपासाँ लेखन कालमें पागल था। यह 'मानवता' और 'अमर जीवनकी आवाज है, माग है। शांतिद्वारा पेश की गयी न्यायकी पुकार है। अपनी कभी कहानियोंमें मौपासाँने शांति और मानवताका पक्ष लिया है। युद्ध और हत्यासे अुसे अुतनीही घृणा थी जितनी रोम्याँ या गांधीको। 'पगली' नामक कहानीमें युद्ध विरोधी वातावरणके जरिये, अुसने यही शांति-नारा बुलंद किया है —

"तब भेडिये अुसे निगल गये। पंछियोंने अुसके चीथडे और बिछौने काटकर अपने घोंसले बसाये और मैंने अुसकी हड्डियोंको समेटा। मेरी यही प्रार्थना है कि हमारी सन्तान कभी 'युद्ध' के दर्शन न करे।"

—अैसे मौपासाँने आत्महत्या क्यों कर ली? विद्वान कभी अेकमत नहीं हो सके हैं। जिन कारणोंसे मौपासाँ शहीद हुआ, वे कारण साधारण अेवं व्यक्तिगत नहीं हो सकते। व्यक्तिके रूपमें वह भितना समर्थ अवश्य था कि अपनी पीडाको देखता-परखता और बर्दाश्त करता। अवश्य अुसने कानूनी समाज व्यवस्था और शासनमें, पंडितों और अन्य लोगोंमें भिस सीमा तक संहार, शोषण, लूट, हत्या अनाचार, कृतघ्नता, धोखा देखा कि वह अूब अुठा और आत्महत्या कर ली। जैसे मराठीके प्रसिद्ध लेखक साने गुरुजीने अपने जीवनका अंत किया।

भिसके आतिरिक्त, सच बात तो यह है कि मौपासाँ जिस वर्गके लिअे अुठा, अुसकी कमजोरियोंको जानते हुअे भी, अुन कमजोरियोंके कारण और अुन्हें दूर करनेका सही तरीका न खोज सका। अुस वर्गको विरोधी वर्गसे सतत संघर्ष करनेकी क्षमता नहीं दे सका, न अपने लिअे ही वह संघर्षशीलता रख सका। मौपासाँके पात्रोंमें वर्गचेतनाकी अनुपस्थिति है। सम्भवतया यही कारण है कि मौपासाँ अभिजात्यों और शोषणोंके विरुद्ध अपने पात्रोंको मैदानमें लानेमें असमर्थ रहा। सचेतन संघर्षशील व्यक्ति कभी आत्महत्या नहीं करता। कुछभी हो मौपासाँ विश्व यथार्थवादका ज्वलंत ज्वालामुखी है।

मन्मथ।

आधुनिक तेलुगु काव्य-प्रवृत्तियाँ

: श्री वारणासि राममूर्ति 'रेणु', अेम. अे. :

आचार्य श्री रायप्रोलु सुब्बाराव तथा महाकवि गुरजाड अप्पाराव वर्तमान तेलुगु काव्योद्यानके अैसे कोकिल है, जिन्होंने अपनी मधुर काकलीसे कविता-सरस्वतीका आवाहन किया था तथा अुस वीणा-पाणिके चरणोंपर स्वागताञ्जलि, अक्षर-सुमनाञ्जलि चढा दी थी। वह प्रभात सचमुच समूचे आन्ध्र प्रदेशके लिअे नव जागरणका परिचायक सुन्दर सुप्रभात था। स्व श्री महाकवि गुरजाड अप्पारावजीने देश-प्रेमका शङ्ख फूंककर जनताकी दृष्टि अपनी मातृभूमिकी ओर अिन शब्दोंमें, अुन्मुख कर दी कि—

> देशमनियेडि दोड्डवृक्षम्
> प्रेमलनु पूलेत्तवलेनोय्।
> नाकुल्दुन अलति मलती
> कवित कोकिल पलुकवलेनोय्।
> पलुकुलनु विनि देशमदमि
> मानमुलु मोलकेत्तवलेनोय्।

(देशरूपी महान् वृक्षमें प्रेम प्रसून निकल आवें। पल्लवोंका साधारण अवगुण्ठन लिये कविता कोयल कूक अुठे, जिसके श्रवण मात्रसे देशके अणु परमाणुमेंसे आत्माभिमानके अङ्कुर फूट निकले।)

—तो आचार्य श्रीरायप्रोलु सुब्बारावकी हृत्तन्त्री प्रेम-माधुरीकी स्वरलहरियोंसे स्थावर-जङ्गमको भाव विह्वल, आनन्द विभोर बनाती रही। अुन्हें तो दुनिया अेक सुन्दर फुलवारी-सी लगी।

> "तारल्मनु, मणुल्मनु, तरुवुल्मनु
> पुलुगुलनु, गीतमुल्मनु, पूवुल्मनु
> नाम वाचक भेदमुल् नाकुमात्र
> मनिपुनु द्वलुवे यगु नाम दृष्टि।"

तारिकाओं, मणियों, लडके-लडकियों, पक्षीगण, गीत तथा सकल सुमन अिन सबमें नाम मात्रका अंतर है। तत्वत मुझे तो सब फूल ही लगते हैं।

अैसे सुमन-सङ्कुल संसारमें जन्म लेनेवालोंका अेक ही लक्ष्य हो सकता है—प्रेमकी अुपासना। प्रेम पराङ्मुख मानवोंको देखनेपर वे कितने व्यथित हो अुठते हैं।

> सच्चिदानंद कल्याण सदन मैन
> श्री मनोहर जगतिकि नेगुदेंचि
> प्रेम-रूपिन नाराधिंपवेमि यकट!

(हे मित्र! यह कैसी विडंबना है कि) तुम सच्चिदानंद कल्याणके निलय अिस जगतीपर अवतीर्ण होकर भी, प्रेमस्वरूपीकी आराधना नहीं करते?

कुछ-कुछ अिसी तत्वको स्व महाकवि जयशंकर-प्रसादजी भी अपनी जीवन-यात्राका पाथेय बनाकर चले थे।

> यह लीला जिसकी विकस चली
> वह मूल शक्ति थी प्रेम-कला
> अुसका संदेश सुनानेको
> संसृतिमें आयी यह अमला।
>
> —(कामायनी)

अिस प्रकार आधुनिक तेलुगु साहित्यका श्रीगणेश, देशभक्ति, समाजसुधार तथा अमिट प्रेमतत्व अिन तीनोंके साथ संपन्न हुआ था, अिस २० वीं शतीके प्रथम दशक ही में। स्व अप्पारावजी देशभक्त तथा पुरानी रूढियोंके घोर शत्रु सुधारवादी कवि रहे। श्री सुब्बारावजीकी काव्य-दृष्टि तो आरंभसे लेकर आजतक निसर्ग जनित तथा शुद्ध रही। येही दोनों आधुनिक काव्य-गगनके सूर्य अेव शशि सिद्ध हुअे हैं। अिस छोटी-सी भूमिकाके बाद हम समूचे आधुनिक तेलुगु काव्य-साहित्यकी प्रधान प्रवृत्तियोंका अुल्लेख, अुदाहरण सहित करेंगे।

१. प्राचीन संस्कृतिका परिपोषक काव्य विधान :—

२० वीं शतीमें आकर जनताका ध्यान अपने सनातन आर्य-धर्म अेवं प्राचीन संस्कृतिसे खिचकर हेतुवाद तथा नास्तिकताकी ओर अग्रसर होने लगा है। 'काम' तथा 'मिथुन' का अहितकर प्रचार जोर पकडता जा रहा है। अंग्रेजी शिक्षाप्रणाली रही सही कसर पूरी कर रही है। अैसी स्थितिमें धर्म और सदाचारसे दूर जा पडनेवाली जनताके हृदयोंमें अुन विषयोंकी पुन प्रतिष्ठाकर सनातन सांस्कृतिक ध्वजा फहरानेकी सद्-भावनासे प्रेरित होकर कुछ कवियोंने लेखनियाँ अुठायीं। अिस श्रेणीके अग्रणी कवियोंमें श्री विश्वनाथ सत्यनारायण आचार्य, शिवशंकर शास्त्री, कौरि नरसिंह शास्त्री, पुट्टपर्ति नारायणाचार्युलु गुदिमेल्ल रामानुजाचारी, मेंट्-कूरि वेङ्कट नरसय्या वगैरह हैं। पाश्चात्य रंगमें रंगे अपने आलोचकोंकी अुपेक्षा, श्री विश्वनाथ सत्यनारायण किस दृढता अेवं आत्मविश्वासके साथ करते हैं, जरा देख लें —

> लेत बुर्रलु कोयिकरिस्ते
> आतगाळ्ळतो येमिगानी
> तान तातलनाटि कथलू
> त्रव्विपोस्तानोय !

(यदि कच्ची खोपडियाँ मेरी हँसी अुडाती हैं तो अुडाया करें ! मुझे अुनकी कब परवाह है ? मैं तो बाप-दादोंके जमानेकी गाथाअें खोदकर ढेर लगा दूँगा !)

" किन्नेरसानि पाटलु रामायण कल्पवृक्षमु कवि-प्रिया, 'सहजयान पथी', वेनुगोण्ड लक्ष्मी, साक्षात्कारमु, शिवताण्डवमु 'मगुव माचाला', 'माण्डवी' वगैरह अिस ढंगकी कृतियोंमें अुल्लेखनीय हैं।

२. गोचारणवाली (Pastoral) कविता पद्धति :—

गँवअी गाँवोंके स्वस्थ, स्वच्छ अेवं अकपट वातावरणमें रहनेवाले कतिपय कवियोंने ग्रामीण जीवन तथा अुससे संबद्ध दृश्यावनको ही अपने काव्यका विषय बना लिया है। अैसे काव्य-विधानके स्रष्टाके रूपमें स्व० श्री बसवराजु अप्पारावका नाम सादर लिया जा सकता है। अिस रीतिका श्रीगणेश अिन्होंने अपने "निर्झर संगीत" (सेलयेटि गानमु) के साथ किया था। यह प्रणाली काव्यमर्मज्ञों तथा काव्यरसिकोंको अितनी अच्छी लगी कि देखते-देखते अनेक रस-सिद्ध कवि तिलकोंने अुसको अपनाया और तेलुगु साहित्यको 'कृपीवलुडु', 'वनकुमारी', 'वयेंगलक्ष्मी', 'येंकि पाटलु' जैसी सरस रचनाअें प्राप्त हो गयीं। सर्वश्री दुव्वूरि रामिरेड्डी, मेंटुकूरि वेंकटनर-सय्या, नडूरि सुब्बाराव, अडिविबापिराजु विश्वनाथ सत्यनारायण वगैरह अिस श्रेणीके अत्यंत लोकप्रिय कवि हैं। अिस प्रकारकी रचनाअें शिष्ट व्याकरण सम्मत भाषा तथा देहाती बोली दोनोंमें लिखी गयी हैं। नडूरि सुब्बा-राव तथा बापिराजुने बोलचालकी जबानका ही सर्वत्र व्यवहार करके देहाती तेलुगुकी मिठाससे लोगोंको छका दिया। अेक अुदाहरण सुब्बारावकी 'अेंकि पाटलु' से लीजिअे।

'अतिस्नेह पापशंकी' प्रेमकी आत्यंतिकता हमेशा प्रियपात्रोंके शारीरिक-कुशलको लेकर सशंक रहा करती है। गँवअी-गाँवकी प्रोषितपतिका 'येंकी' के दिलकी धडकनें कितनी करुण हैं !

> दूरान नाराजुके रायिडौनो !
> औरोजु मारात लै रालपालो !
> सीम सिर्कम गाले सेदरि योतदि ममु,
> काकम्म सैतम कबुरपडाराजु ! ॥ दूरान०
> कळ्ळ केडो मसक कम्मिनटलुटादि,
> निवरल्ले नावोल्लु नीरसिल्लुताादि ॥ दूरान०
> तुलिसेम्म बोरिगिदि, तोलिपूस पेरिगिदि !
> मनसुलो ना बोम्म मसक मसकेसिदि ! ॥ दूरान०

हाय ! हाय ! दूर देशमें रहनेवाले मेरे राजा (प्राणेश्वर) संकटमें होंगे ! जाने मेरा भविष्य किन लकीरोंसे अंकित हो रहा है ! चींटीके चलनेकी भी आहट पाकर यह मन जाने कैसा हुआ जाता है ! हाय, वह तो अपना संदेश तक कौअेसे नहीं भिजवाते ! आँखोंपर जैसे कोअी पतली बदली-सी छा गयी है, सारी देह किसी तत्काल विवशतामें शिथिल पडती जा रही है ! हाय, हाय ! तुलसी चौतरेका यह पौधा तो

नीचेकी तरफ झुका जाता है। मेरे गलेका हार (टूट) बढ चला है! मन-मन्दिरमें बैठे प्रियकी मूर्ति तो धुधली पड गयी है। जाने मेरे परदेसी प्रियतम किस सकटमें होंगे।

३. प्रेम-प्रधान काव्य-सर्जना :—

आधुनिक तेलुगु कवियोमेंसे प्राय सबके सब न्यूनाधिक मात्रामें प्रेमके विविध रूपोको ही अपने काव्यके विषय बनाकर चले हैं। अंग्रेजी कवि कीट्स, शैली, ब्राउनिङगकी रचनाओके साथ साथ बगलाके कवीन्द्र रवीन्द्रके गूढ-मधुर प्रेम-तत्वसे भी अिनमेंसे अनेक कवि—विशेषकर गीतिकार—प्रभावित हुअे हैं। किन्तु यह प्रेम तो विभिन्न व्यक्तियोमें अनुभूति भेदके कारण विभिन्न नाम धर बैठा है। कही वह रति (दम्पति प्रेम) का रूप लेता है तो कही 'मैत्री' का और कही प्रकृति प्रेम तथा अन्यत्र मातृ-भक्तिका। अिससे स्पष्ट है कि अिस प्रकारकी रचनायें बहुधा आत्माश्रयी (Subjective) हुआ करती हैं। कविता विषय प्रधान न रहकर विषयी प्रधान बन जाती है और सर्वत्र अेक प्रकारकी स्वच्छन्दताकी छाप लिये चलती है। प्रेमको अपने काव्य जीवनका सम्बल बनाकर चलनेवाले कलाकारोमें सर्वश्री सत्लावझल शिवशकर शास्त्री, देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री, नायनि सुब्बाराव, नाळम् कृष्णाराव, अडिवि बापिराजु वेदुल सत्यनारायण शास्त्री आदि प्रधान हैं। अिनमें श्री देवुलपल्लिका काव्य जीवन दुखसे आविल है, अुसका 'कृष्ण पक्ष' ही अधिक चित्ताकर्षक है। आचार्य शिवशकर शास्त्रीकी 'हृदयेश्वरी', कृष्णशास्त्रीकी अुर्वशी' तथा बापिराजुकी 'शशिकला', अिन तीनोकी कल्पना प्राय अेक-सी है। फिर भी अुनपर अपने निर्माताओके सबल व्यक्तित्वकी छाप स्पष्ट गोचर होती है। 'हृदयेश्वरी','वकुलमालिका', 'कविप्रिया', 'पद्मावती', 'अुर्वशी', 'शशिकला गीतमुलु', 'सौभद्रुनि प्रणययात्रा' वगैरह दर्जनो रचनायें रस-प्लुत सुमन चषक हैं जिनकी मिठास अेव सौरभसे तेलुगु काव्योद्यानकी क्यारियाँ महक रही हैं। अेक-दो अुदाहरण देखें—

(अ) श्री देवुलपल्लि कृष्णशास्त्रीकी निम्नलिखित पक्तियोमें, समूचा विश्व किसी विराट् सत्ताके विरहमें, प्रेममें आकुल-व्याकुल होकर, कदम्ब-सा फूलकर मानो, "कस्मैदेवाय हविषाविधेम!" वाली विस्मयकारिणी वैदिक रागिनी, सुनाता नजर आता है, तो कविकी चकित आत्मा अेक बृहत् प्रश्नचिन्ह लगाकर अपनी जिज्ञासा प्रकट करती है।

> सौरभमुलेल चिम्मु पुष्पवजंबु ?
> चन्द्रिकल नेल वेदजल्लु चंदमाम ?
> अेल सलिलबु पारु ? गाड्पेल विसरु ?
> मावि गुबुरु कोम्मनु मधुमास वेळ ?
> वल्लवमु मेसिक कोअिल पाडुटेल ?

अर्थात्—

> सौरभ क्यो बहा देता है, सुमन समूह ?
> चन्द्रिकायें क्यो बिखेरता है चन्द्रमा ?
> यह सलिल बहता क्यों है ? पवनका प्रसार किसलिअे ?
> रसाल पल्लवोका कलेवा करके, अबुआकी डालीसे,
> मधुऋतुमें, मदमाती कोअिल गाती किसलिअे है ?

(आ) मुगल बादशाह शाहजहाँ तथा बेगम मुमताजके प्रेमके अमर प्रतीक ताजने, न जाने कितने कवियोकी कल्पनाको जीवन-दान दिया है। दो शरीर तथा अेक हृदय लिये रहनेवाले अुन प्रेम विहगोकी पवित्र गाथाका गायन 'रसाल तथा माधवीलता'के रूपकके सहारे स्व बसवराजु अप्पारावजीने अिस प्रकार कर दिया है—

> मामिडि चेट्टनु अल्लुकोनदी माधवीलतोकटी,
> अेमा रेंडिटि प्रेम सफरा ! अिंतितनराडु !
> चूडलेनि वापिष्टि तुपानु, अूडबीके लरनू !
> कोडे पोयो मामिडि चेट्टु मोगमु वेलवेसे !
> मुच्चटैन् आकुलु कायलने वेच्चनि कन्नीळोड्चो !
> पच्चनाकुला बोम्मरिटिलो पडोशहटि राल्वो,
> मामिडि चेट्टु माधविलतनो मायलो कलिसिदी !
> कामिन मिच्चे मामिडि पण्डू क्वलकु मिगिलिदी !

सयोगकी बात है—

> किसी रसालसे अेक माधवीलता लिपट गयी।
> दोनोका प्रेम-सौंदर्य तो अवर्णनीय बना रहा।

सहसा पापी तूफान अुठ खड़ा हुआ—

अुसने वह निर्मलप्रेम न देखा गया ! न देखा गया !

हाय ! देखते-देखते माधवी जड़ समेत अुखड़ गयी !

बेचारा रसाल नीरस नीरव ठूँठ बना रहा ! और

नयनाभिराम पत्र पुष्पोंके गर्म आँसू बहा डाले !

अेक सजे-सजाये परीदेसे गिरा दिया अेक फल !

फिर वह रसाल भी माधवी लताके साथ

विलीन हो चला मायामें ! और आज जिस

धरतीपर रह गया कवियोंको काव्य बरसाने-

वाला आम !

४. अतीतके गौरव-गानका विधानः—

भारतका अतीत अत्यंत गरिमामय तथा ज्वलन-शील रहा है। अुसके कितने ही गौरवमय व अुदात्त प्रसङ्ग हैं जिनसे स्पन्दनशील कवि हृदयकी कल्पना प्रेरणा पाकर अमरत्वको प्राप्त करती रही है। 'सौंदरनन्दमु', 'राणा प्रताप चरित्रमु' तथा 'शिव-भारतमु' ये तीनों महाकाव्य आधुनिक काव्य साहित्यके बेजोड़ रत्न हैं, जिससे कि क्रमशः भारतीय अितिहासके बौद्धयुग, राजपूत तथा महाराष्ट्र युगीन भास्वर-वातावरणकी किरणें फूटती रहती हैं। सर्वश्री पिंगलि, काटूरी कविद्वय, राजशेखर शतावधानी तथा गडियारम्म वेंकटशेष शास्त्रीजीने ये तीनों काव्य रचकर तेलुगु साहित्यका मस्तक समुन्नत किया है। अिन अैतिहासिक महाकाव्योंके अतिरिक्त कितनेही कवियोंने खण्डकाव्योंके रूपमें अतीतका गुणगान किया है। स्व० श्री बोड्डालि गुरुजाडकी 'हर्षीवर्धनमु' पुट्टपर्ति नारायणाचार्युलुकी 'पेनुगोंड लक्ष्मी' तथा वेंदूरि वेंकटरत्नय्याजीकी 'गलाटि भारतमु' आदि अिस दिशामें अुल्लेखनीय रचनाअें हैं। गत-विभवा 'पेनुगोंडलक्ष्मी' के बचे खुचे शिल्पसौंदर्यने रससिद्ध कविके हृदयमें भावोंका जो तूफान खड़ा कर दिया है, अुसकी तीव्रताका अनुभव तनिक कर लीजिअे !

स्वर्गकी अप्सराओंको भी मात करनेवाली प्रस्तर-सुन्दरियोंपर दृष्टि पड़ते ही कविकी भावना मानों अुमड़ पड़ी !

कुलुकुन्जूपुल अुचुकुलयदि,

सिग्गुन् जीलिच ओयारु नव्वुलो,

बच्चि विसवु नल्कोपिपि,

यी पूबोडि यॆवानि भावलता स्वर्ण सुमयो !

नेटिकि मपूर्व प्रौढि, वंचिनु मा

सल्पुल, तीक्ष्णमुलैन मन्नमुल

चेतन्वोलि नाडियुवुन् !

नाज-अन्दाज भरी अपनी तिरछी नजरें, लज्जा पटके तार तार करती हुअी, चारों ओर फेंकनेवाली, तथा ओठोंसे फिसल फिसल पड़नेवाली मुस्कानोंमें बच्चा जहर घोलकर पिलानेवाली यह कुसुम-बाला (स्त्री मूर्ति) जाने किस कलाकारकी भावलतापर खिला स्वर्ण सुमन है ! आहा ! (३०० वर्ष बाद) आज भी प्रखर मन्त्रास्त्रोंकी तरह अमोघ शक्ति रखनेवाली, अपनी कुशलतासे यह (प्रतिमा) तो हमारी भावनाओंको चुरा रही है ! हमें कंगाल बनाकर मनमाना नाच नचा रही है ! वाह री कुशलता !

अुलिलो, वैलेल सोनलल जिलिकि, यीयीटपारि,

खिन्नेचु वेळल ना शिल्पिकि यन्नु गोसलनु यारला-

टुनेमो जलबुलु,

चेवोपि तेमर्चियुंडु मनुकोवुन्,

भावनावेश भगुल् पंपे केलरेग,

मुददु गोनियुंडुन्, प्रेम विम्रांडुई !

छेनीमें शहदके फव्वारे छिड़ककर, अिस प्रतिमा को स्वरूपदान देते समय मेरा ख्याल है, अुस (अज्ञात नामा) शिल्पीके नेत्राँचल फर् फर् बरस पड़े होंगे, अुसकी हथेलियोंमें स्वेदकण छलके होंगे ! निश्चयही अुसने भावावेगके अभङ्ग भवरोंके अुफानसे तङ आकर प्रेमके भँवरमें फँसकर (अिसे) लपककर चूम लिया होगा !

कैसी भाव विह्वलता है ! अपने मनकी वृत्तिको भी चक्करमें डालनेवाली कैसी कला-कुशलता है !

५. दलित मानवता तथा राष्ट्रीय भावनाका प्रतिनिधि काव्यः—

अस्पृश्यता तथा अूँच-नीचका भेद भाव हमारे सामाजिक जीवनमें कोढ़की भाँति घुसकर, अुसे जीर्ण-

शीर्ण बनाते आय हैं। अुनसे राष्ट्रको छुटकारा दिलानेके शुभ अनुष्ठानमें राजनैतिक नेताओंके सिंह-गर्जनके साथ-साथ कांता सम्मत कविवाणीभी अपना करुण मधुर तथा मर्मस्पर्शी संगीत सुनाती रही। अिस दिशामें मधुर कवि श्री. गुर्रम जोषुवाकी सुन्दर कृतियाँ 'गब्बिलम्' तथा 'अनाथा' विशेष रूपसे अुल्लेखनीय हैं। अिनमें पहली रचना अेक सुन्दर संदेश काव्य है जिसमें हरिजनोंकी दुर्दशाका अतीव करुण चित्र खींचा गया है। अिसी कविकी अेक और रचना 'फिरदौसी' भी अत्यंत लोकप्रिय है।

भारतीय स्वतंत्रताके साथही, अलग आन्ध्र-प्रदेश निर्माणके लिअे आंदोलन पिछले ४० वर्षोंसे चलता रहा है, जो कि अिसी वर्ष विगत १ अक्टूबरको अस्तित्वमें आया है। अिस आंदोलनमें भी स्वतंत्रताके आंदोलनकी भाँति कवियोंने अपना आंशिक सहयोग प्रस्तुत कर दिया है। स्व श्री गरिमेळ्ळ सत्यनारायण, श्री विश्वनाथ सत्यनारायण, श्री राय प्रोलु सुब्बाराव, श्री दाशरथि तथा श्री तुम्मल सीताराम मूर्ति चौधरीजी की रचनाअें अिस प्रसंगमें सादर स्मरणीय हैं।

कविवर जोषुवाकी 'अनाथा' रचनाका अेक सुंदर प्रसंग लीजिअे। किसी संकटकी शिकार चमारिनको अस्पतालमें चिकित्साके लिअे छोड आनेवाले अपने दयालु पतिको किसी कट्टर ब्राह्मणीने तबतक घरमें पैर रखने नहीं दिया था जबतक अुसने सचैल-स्नान नहीं किया। स्नान और भोजनके अुपरांत जब अेकांतमें दम्पती बैठ गये तो पतिने पत्नीसे मृदु शब्दोंमें प्रश्न किया—

> अलुक दीर्चिनेना जलकमाडिन यंतने ?
> माल्दानि पिल्ल्ल कडगड्लु चूचि बहुळंबुग दप्तम
> नदुना मनोजलजमु मल्बडुददि स्नानमु चेसेने ?
> येरिदान योवेलुपलि शुद्धि ओवुलकु वेट्टुने,
> पोयुने मुक्तिनिच्चुने ?

अरी पगली! वाह्य स्नान करने मात्रसे तुम्हारा क्रोध अुतर गया ? अुस चमारिन तथा अुसके बच्चोंकी दैन्यभरी आँखसे मेरा मानस-कमल मुरझा गया है, अप-वित्र बन चला है, क्या अुमने भी स्नान किया है ? फिर अिस बाह्य निर्मलतासे, भला, कोअी प्रयोजन सिद्ध होगा ? अिससे मुक्ति मिल सकती है ?

करुणासे ओतप्रोत कैसी कान्ता-सम्मित संजीवनी वाणी है!

६. प्रगतिवादकी धारा:—

अिस प्रकार हम देख चुके हैं कि काव्य साहित्यमें राष्ट्रप्रेमके साथ-साथ प्रांतीय भावनाने भी स्थान पा लिया है। समय तथा विज्ञानके प्रगति करनेके साथ ही जनताके दृष्टिकोणमें भी परिवर्तन आ गया है। वर्तमान सामाजिक धार्मिक अेवं नैतिक व्यवस्थाके प्रति कुछ पढे-लिखे व्यक्तियोंका असन्तोष बढ चला है। अति-विकसित आधुनिक विज्ञानने अिनकी दृष्टि अेकदम अपार्थिव और भौतिक बना दी है। अैसे लोगोंके विचारोंका भी प्रतिनिधित्व वर्तमान तेलुगु काव्य कर रहा है। 'प्रगतिवाद' और 'अतिवास्तविकतावाद' अैसी विचार धाराके काव्य गत नाम हैं। अिस क्षेत्रके कवियोंके अगुआ "श्री श्री" (श्रीरंगम् श्रीनिवासरावजी) हैं। अिनके अनुसार कविताके लिअे छंद, सौंदर्य, सद्भाषा, यहाँतक कि भाव भी अुठने जरूरी नहीं हैं। कोअी भी शब्दसमूह काव्य कहला सकता है! अिस प्रकारके काव्यमें मानवताकी स्थाअी समस्याओंकी अुपेक्षा साम-यिक अेवं सामाजिक विषयोंको ही अधिमान्यता दी जाती है। वर्तमान भौतिक प्रभुताकी शिकार दलित जनताका आकुल आक्रोश ही अुसमें मुखरित होता है।

अपनी "भिक्षुवर्षीयसी" रचनामें 'श्री श्री' बुढी हुअी अमोठी-सी किसी पेडके नीचे सिकुडी सिमटी ठिठुरनेवाली भिखारिनका करुण चित्र खींचकर अंतमें लिखते हैं।

> आ अव्वे मरणिस्ते आ पाप मेव्वरिदनि,
> येरिगालि प्रश्निस्तू वेळ्ळिपोयिंदि!
> अेमुक मुक्कु कोक्कुटू अेमो अनलेदु कुरुक!
> ओक ओगनु पडवेसुक तोंदरगा तोलगे तोंड!
> "अिदि मा पापं कादने"
> अेंगिरि वडिग अेंगिलाकु!

पगली हवा प्रश्न करती निकल गयी—
"यदि वह बूढी मर जाअे तो वह पाप किसके सिर लगेगा ?"
पास ही पडी सूखी हड्डी कट-कटानेवाला कुत्ता चुपचाप सुनता रहा !
कहीसे अेक गिरगिट झटसे लपका,
अेक मक्खीका शिकार कर वहाँसे हट चला !
सर्रर्रसे जूठा पत्तल अेक, यह कहता अुड आया—
"यह पाप तो मेरा नहीं है !"

अबतक प्रसगवश अुद्घृत नामोके अतिरिक्त सर्वश्री पळ्ळे पूर्ण प्रज्ञाचार्युलु, स्व० सुरवरम् प्रतापरेड्डी, देवुलपल्लि रामानुजराव, सी० नारायण रेड्डी, कप्पेगटि वीरभद्राचार्युलु जन्ध्याल पापय्यशास्त्री, नारायणबाबू, सपरकुमाराचारी, पालगुम्मि पद्मराजु, मोचर्ल रामकृष्णय्या, अमिसेट्टि, सुब्बाराव शिष्ट्ला, सत्यनारायण राजशेखरम, अेबिकराल कृष्णामाचारी, वाविल्लाल सोमयाजुलु, पिल्ललमर्रि वेंकट हनुमतराव, केशवभट्ल गोपालमूर्ति, जोसफ, कोडवीटि वेंकट कवि आदि कितने ही ख्यातनामा कवितिलक वर्तमान तेलुगु काव्यको अलकृत कर रहे हैं। लेखके कलेवरके बढ जानेके भयसे अुन सबका अुल्लेख सभव नही रहा है।

पुरुषो ही की भाँति महिलाओंकी स्तवनीय सेवाअें भी आधुनिक तेलुगु काव्यको पर्याप्त मानामें प्राप्त हैं। अिनमेंसे सुश्री काचनपल्लि कनकाम्बा, कनुपर्ति वरलक्ष्मम्मा, गुडिपूडि अिंदुमती देवी, चिल्कपाटि सीताम्बा, गण्टि कृष्णवेणम्मा, स्थानापति रुक्मिणम्मा, मदमचि अनन्तम्मा, पुटुपर्ति कनकम्मा, तल्लाप्रगड विश्वसुदरमा, सौदामिनी, वगारम्मा अिल्लिदल सरस्वती देवी, नायनि कृष्णकुमारी, अहिदि राधावसतम्मा, अदुकूरि लक्ष्मीकातम्मा, डॉ० अनसूया देवी वगैरह बीसों माताअें तथा बहनें हैं जिनकी सरस कृतियोपर तेलुगु काव्य जगत सदैव गर्व करता रहेगा। अिन देवियोने पुरुषो ही की भाँति, वर्तमान तेलुगु साहित्यकी सभी दिशाओंको अपनी पारस लेखनियोसे भास्वर बना दिया है।



ध्येयवादी

: श्री ग. त्र्यं. माडखोलकर :

संसारके परिवर्तन-क्रमको विकासवादका स्वरूप देनेका प्रयत्न शास्त्रज्ञ सदैव करता रहा है। परन्तु कुछ परिवर्तन अितने अद्भुत होते हैं कि शास्त्रज्ञोंको अुनकी अुत्पत्तिके विषयमें जानकारी प्राप्त करना दुष्कर हो जाता है। शास्त्रज्ञ होनेपर भी वे अनुभवोंके आधारपर ही तो सिद्धान्तोंका निर्माण करते हैं। लेकिन मनुष्यका अनुभव स्वभावतः अितना संकुचित है कि अुसके आधारपर संसारकी सारी घटनाओंके रहस्यका विश्लेषण करना असंभव होता है। किसी घटनाके पश्चात् अुसके मूल कारणोंका विश्लेषण करना अुतना कठिन नहीं होता। अिसीलिअे संसारमें आजतक जितनी भी क्रान्तियाँ हुअीं, अुनके मूल कारणोंकी परम्परापर अितिहासज्ञोंने सफलतापूर्वक प्रकाश डाला है। विभूतिके निर्माणके पश्चात् अुसे अवतार लेनेके लिअे अनुकूल परिस्थिति पूर्वसे ही प्राप्त थी, यह सिद्ध करना दुष्कर नहीं है। विभूतिका अवतारकार्य विकासका परिणाम है यह मान लेनेपर भी विभूतिके कार्यमें अुसकी अन्तःस्फूर्तिका भी अुतने ही महत्वका स्थान है, यह भुलाया नहीं जा सकता। पुष्पके सौंदर्य और सुगन्धका विकास होनेके लिअे सूर्य-प्रकाशके साथ-साथ वृक्षका स्वभाव-धर्म भी महत्व रखता है। कुछ विभूतियोंके चरित्रमें अैसे चमत्कार दिखाअी देते हैं कि अुनके कर्तृत्वकी कीमत तत्कालीन परिस्थितियोंमें बिलकुल भी नहीं हो पाती। काल विभूतिका निर्माण करता है अिसी सत्यके साथ-साथ यह भी सच है कि विभूति कालका निर्माण करती है। अन्यथा जिनके धर्मको आज आधेसे अधिक संसार मानता है अुस अीसामसीहको सूलीपर चढ़नेका प्रसंग क्यों आता? जिस तरह भगवान बुद्धके धर्मका प्रसार अुनकी जीवितावस्थामें ही सारे भारतमें हुआ, अुसी प्रकार अीसामसीहके धर्मका प्रसार क्यों नहीं हुआ? अिसका मुख्य कारण यह है कि अीसामसीहके लिअे काल अनुकूल नहीं था और अिसीलिअे प्रतिकूल कालके क्रोधका बलिदान बननेका दुर्धर प्रसंग अुनपर आया।

लेकिन कुछ विभूतियोंका काल-निर्माण ही नहीं होता। अनुकूल अथवा प्रतिकूल कालकी चिन्ता अुसे होती है जो यश पानेकी अपेक्षा करता है। किन्तु जो *निराशासे तनिक भी भयभीत नहीं होते,* वे अपने कार्यको पूरा किये बिना नहीं रहते, चाहे परिस्थिति अनुकूल हो अथवा प्रतिकूल। फिर वह कार्य जितना निष्काम होता है अुतना ही निष्फल सिद्ध हुआ, तो भी अुन्हें परवाह नहीं रहती। अैसी ही विभूतियोंको हम "ध्येयवादी" कहते हैं। जिस प्रकार अुनके कार्यको अनुकूल कालकी अपेक्षा नहीं होती, अुसी तरह काल भी अुनके कार्यको सीमित नहीं कर पाता। विनाश कालका नियम है। फिर भी ध्येयवादी विभूतिका-कार्य अविनाशी होता है। अुसे अैतिहासिक स्वरूप प्राप्त नहीं होता। शास्त्रज्ञोंके सिद्धान्त विनाशी होते हैं। संशोधनात्मक प्रगतिके नये सिद्धान्तोंकी प्रस्थापना होते ही प्राचीन सिद्धान्तोंका केवल अैतिहासिक महत्व शेष रह जाता है। शास्त्रज्ञोंके मानवीय अनुभवोंके आधार-पर निर्मित सिद्धान्त मनुष्य शरीरके समान ही मर्त्य होते हैं। मनुष्यकी आत्मा जिस प्रकार बारबार अनेक देह धारण करती है, अुसी प्रकार अिन अनुभवात्मक सिद्धान्तोंको सदा नये रूप धारण करने पड़ते हैं। परन्तु जिस ज्ञानका अुद्गम अन्तःस्फूर्तिसे सम्बन्ध रखता है अुसपर विनाशकारी अथवा विकासात्मक सिद्धान्तोंका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता।

संसारके ज्ञान-भण्डारकी अुत्पत्ति अनुभव अेवं अन्तःस्फूर्तिसे हुअी है। जिस आधारपर हम मानव-जातिके प्रवर्तकोंको दो भागोंमें बाँट सकते हैं। जॉन्सन, रामदास, मोरोपन्त, लॉक, मिल अित्यादि प्रवर्तकोंने अनुभवके आधारपर अुपदेश किये। अुनके साहित्य और

वर्तमानमें अन्तःस्फूर्तिसे सम्बन्धित जीवनका अत्यन्त कम स्थान है। साक्रेटीस, औसामसीह, तुकाराम, मैज़िनी अित्यादि प्रवर्तकोंके सिद्धान्तोंमें हमें अन्तःस्फूर्तिसे प्रेरित जीवनका प्रतिबिंब स्पष्ट दिखायी देता है। अुनके साहित्य अेवं तत्त्वज्ञानसे अखण्ड मानव जातिको स्फूर्ति और अुत्साह मिलता है। चूंकि ध्येयवादी आन्तरिक प्रेरणासे बोलते हैं, अुनका कार्य स्वयंस्फूर्त होता है, समाज अुनके नेतृत्वको शीघ्र मान्यता नहीं देता। कभी भी नये विचार ग्रहण करते समय समाज अुनके विरुद्ध आवाज अुठाता है, मनुष्य स्वभाव जितना दुरा-राध्य अेवं दुरभिमानी होता है कि अुसे अनुभवजनक साहजिक बात समझानेपर भी सहजतासे मान्य नहीं होती। अैसी बात कहनेवाला ही समाजकी दृष्टिमें मूर्ख सिद्ध होता है। जीवनके चार दिन सुखसे बितानेके विचारको स्थानपर विचार करनेकी झंझटमें कौन पड़ेगा। सत्ताधारी अेवं सुखलोलुपताके पीछे दौड़नेवाले लोगोंके विचारकोंके प्रति व्यक्त होनेवाले रुखको शेक्सपियरने अत्यन्त मार्मिक शब्दोंमें व्यक्त किया है "He thinks too much: Such men are dangerous" जिनोवाके गुरुदेवने मैज़िनीके पितासे कहा था कि "तुम्हारा पुत्र शान्त-वैराग्य अकेले विचार करते हुअे भटकता रहता है। ये लक्षण ठीक नहीं। अिस अवस्थामें वह जिस बातका जितना विचार करता है? जवान लड़केका अिस तरह गहन विचारोंमें अुलझे रहना अुचित नहीं।"

ध्येयवादी विभूतियोंके प्रति समाजका दृष्टिकोण सामान्यतः जैसा प्रकारका होता है। आदिकालसे समाजके सत्ताधारी वर्ग और ध्येयवादियोंके बीच संघर्ष रहा है। यद्यपि जिस संघर्षका अन्तर अुत्तरोत्तर कम होता जा रहा है। तथापि औसामसीहको सूलीपर चढ़ानेकी या सुकरातको क्रूरतापूर्ण समाजने दर्शाया वह भाव सर्वथा लुप्त हो गया है अैसा नहीं कहा जा सकता। साम्राज्यवादी राष्ट्रों द्वारा क्रान्तिकारियोंके साथ जो बर्बरतापूर्ण व्यवहार किया जाता है अुसमें क्रूरताकी मात्रा कम है, यह कौन कहेगा? सामान्य क्रान्तिकारीको केवल सत्ताधारी वर्गसे ही लोहा लेना पड़ता है, परन्तु जिस लोगोंके विचारोंमें ही क्रान्ति अुत्पन्न करता है अुसे दबानेके लिअे समाजकी सारी शक्तियाँ प्रतिकार करती हैं।

अिस सामाजिक विरोधसे टक्कर लेनेके लिअे मनकी जिस तैयारीकी आवश्यकता होती है अुसे ही 'वीरवृत्ति' कहते हैं। केवल शौर्य ही वीरवृत्ति नहीं है। समाजमें जितने राज्य संस्थापक अथवा विद्रोही हुअे अुनमें शौर्य अवश्य था, परन्तु केवल अुसीसे अुन्हें 'वीर' (Hero) कौन कहेगा? चोरोंकी अधिकांशमें ही यदि पवित्रता आ जाता तो किसी भी प्रबल अत्या-चारको पवित्र कहा जा सकता था। साहसी वृत्तिका विशुद्ध रूप जिसमें आविर्भूत होता है, अुसीको वीर कहते हैं। यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक वीर ध्येयवादी हो। शिवाजी वीर होते हुअे भी ध्येयवादी नहीं था। लेकिन ध्येयवादीमें वीरवृत्तिके अुत्कर्षकी मात्रा अधिक दिखायी देती है। जितना ही नहीं, अुसमें संत और कविके स्वभाव धर्म अेवं आत्मीय गुणोंका भी समावेश रहता है। संत सत्यका साक्षात्कार पानेके लिअे तपस्या करता है, वीर स्वतन्त्रता प्राप्तिके लिअे मरता है और कविकी प्रतिभाको सौंदर्य दर्शनका भूत सवार रहता है। संतका सत्य गवेषणात्मक प्रेम तथा परिणाम मानव जातिके लिअे भले ही अनुकूल और कल्याणप्रद सिद्ध हो परन्तु अुसमें वह आत्मनिष्ठ हो रहता है। वीरकी स्वतन्त्रता भक्ति अुत्कट होनेपर भी अुसमें सत्यका होना आवश्यक नहीं है। सौंदर्य-संस्कार ग्रहण करनेके लिअे जिस सुषमाभिमुखत्व वृत्तिकी आवश्यकता होती है, प्राय कविमें वह पूर्णरूपेण नहीं पायी जाती। कविपर सौंदर्य-दर्शनका भूत जितना सवार होता है कि वह सत्यासत्यका अन्तर ठीक तरह नहीं परख पाता। बर्नार्ड शॉके मतानुसार कविमें केवल सौंदर्य-सर्जन करने योग्य ही सद्विवेक रहता है। अुनके नाटक "The Doctor's Dilemma' में चित्रकारका चरित्र चित्रण भी कविकी मनोभूमिका प्रकाश डालता है। 'दान्ते'के समान सौंदर्योपासक कवि विरला ही होगा।

जिस प्रकार सत्यनिष्ठा कल्याणप्रद होनेके साथ-साथ कठोर भी होती है, अुसी प्रकार सौंदर्यका भूत भी आनन्ददायक होनेके साथ-साथ अुन्मादक होता है अन्यथा 'गेटे' अेव 'आस्कर वाअिल्ड' जैसे प्रतिभाशाली कवियोंके नैतिक-पतनका क्या कारण था? आस्कर वाअिल्डके मतानुसार "No artist has ethical sympathies" "कलाकारकी नैतिक भावनाअें नहीं होतीं" के सिद्धान्तको सत्य मानना अनुचित नहीं होगा।

लेकिन ध्येयवादी जितना सत्यनिष्ठ, अुतना ही सौंदर्योपासक, अेव जितना सौंदर्योपासक अुतना ही स्वतंत्रता भक्त होता है। ध्येयवादीका यह सिद्धान्त है कि सत्यके बिना सौंदर्य और सौंदर्यके बिना स्वतन्त्रताका मूल्य नहीं आंका जा सकता। स्वतंत्रता साधन मात्र है, साध्य नहीं सत्यका सरक्षण और सौंदर्यका सवर्धन करना स्वतन्त्रताका ध्येय है तथा जबतक व्यक्ति और राष्ट्रको स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं होती तबतक वह अिस ध्येयको प्राप्त नहीं कर सकता। अिसी भावना अेव श्रद्धाके कारण वह स्वतन्त्रता प्राप्तिके लिअे आत्म-समर्पण करता है। राष्ट्रकी स्वतंत्रताके लिअे सघर्ष करनेवाले वीर और ध्येयवादीमें यही मुख्य अन्तर है। मेजिनी और गरिबाल्डीके चरित्रमें यह अन्तर स्पष्ट रूपसे व्यक्त हुआ है। व्यक्ति-स्वार्थ तो अुनमें सर्वथा लुप्त ही रहता है। परन्तु राष्ट्रीय स्वार्थकी भावना भी अुसे सहन नहीं होती, क्योंकि मानवताके व्यापक दृष्टि-कोणसे अुनका ध्येय ओतप्रोत रहता है। अिटलीकी स्वतन्त्रता प्राप्तिके लिअे मेजिनीने जितना सघर्ष किया वह किसलिअे? केवल अिटलीकी स्वतन्त्रता वह नहीं चाहता था, अपितु 'रोम सारे ससारको स्वतन्त्र करेगा" यही अुनकी श्रद्धा थी और अिसी श्रद्धाके आधारपर अुनके विश्वात्मक राष्ट्र धर्मका अधिष्ठान हुआ। लेकिन तत्कालीन देशभक्तोंने मेजिनीके ध्येयवादके प्रति विशेष आदर व्यक्त नहीं किया। लोगोंने अुसे मूर्ख भी कहा। परन्तु अिस कारण मेजिनीकी योग्यताके बारेमें किसे सन्देह होगा? आकाशमें भ्रमण करनेवाला गरुड भव्य होनेपर भी पृथ्वीके लोगोंको छोटा ही दिखायी देता है और आकाशमें भ्रमण करनेके बाद अुसे आश्रय लेनेके लिअे भूतलपर ही आना पडेगा यह भी वह भलीभांति जानता है। लेकिन गरुड आश्रय लेनेके लिअे नीचे अुतरनेपर भी हिमालयके रजत-शिखरोंपर ही आश्रय लेता है। वह पृथ्वीके वृक्षोंकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देता। यह बात दुनियादारों अेव देशभक्तोंमें नहीं पायी जाती, लेकिन ध्येयवादी-व्यवहारी भूतलपर आनेके बाद व्यवहारको भी विशुद्ध स्वरूप प्रदान करता है। अिस दृष्टिसे अिग्लेंडके परम्परागत साम्राज्यकी अपेक्षा रोमकी सत्ताधारी शक्तिसे पतनका अितिहास अधिक महत्व रखता है। अिसका मुख्य कारण है, सम्भवा-सम्भवके विचारोंमें डूबी मानवीय बुद्धिको अैतिहासिक अनुभवोंके आधारपर ही अपने अुद्धारकी आशा रहती है। मेजिनीका ध्येयवाद तत्कालीन समाजको मूर्खपना प्रतीत हुआ, परन्तु अुसका विश्वात्मक राष्ट्र धर्म आज समाजवादके विकसित रूपमें पूरे ससारने मान्य किया है। यह तो ससारका नियम है कि आज हम जिसे असम्भव मानकर अुपहासकी दृष्टिसे देखते हैं कल अुसे ही अभिमानपूर्वक ग्रहण करते हैं। लेकिन यदि ध्येयवादी सम्भवासम्भवके चक्करमें पडकर सशयात्मक परिस्थितिका शिकार हुआ तो मानव-जातिका अुद्धार होना कठिन ही प्रतीत होता है।

सम्भवासम्भवका विचार स्वार्थकी अुपज है। जिसे केवल यश पानेकी लालसा होती है, अुसकी बुद्धि सम्भवासम्भवके विचारोंसे बारम्बार कुठित होती है। लेकिन ध्येयवादीकी अपेक्षाअें कुछ भिन्न प्रकारकी होती हैं। वह अनुकूल कालकी बाट नहीं जोहता। वह अन्त स्फूर्ति अेव आन्तरिक प्रेरणासे कार्य करता है फिर चाहे अुसे यश मिले अथवा न मिले, अुसकी अवज्ञा हो अथवा अनादर हो, वह अपने विचार व्यक्त किये बिना नहीं रहता और अिसीमें अुसकी अलौकिकता निहित है। विचारसमाधिमें बुद्धि नष्ट होनेके पश्चात अुसकी आँखोंके सामने अेक विशेष प्रकारकी स्वप्नसृष्टिका विकास होता है और अिसलिअे अुसे "द्रष्टा" (Seer)

कहते हैं। तत्वज्ञोंकी दृष्टि भूतकालीन अनुभवोंके रहस्यका अनुसन्धान करती है। देशभक्तका दृष्टिकोण वर्तमानके आगेकी बात नहीं सोचता। लेकिन ध्येयवादी सदैव मानवजातिके अुत्कर्षके स्वप्न देखता है और वह अुन स्वप्नोंको व्यक्त करनेका साहसभी करता है। यही कारण है कि लोग अुसे "भविष्यवादी" (Prophet) कहते हैं। परन्तु जिस भविष्य-कथनके लिये अुसे कितनी यातनायें सहनी पडती हैं? लोगोंका अैसा प्राचीन मत है कि यज्ञ किये बिना सामर्थ्य प्राप्त नहीं होती। जिस ध्येयके कारण मानवको पवित्रता अेवं पूर्णता प्राप्त नहीं होती, क्या वहभी यज्ञपरही अवलम्बित है? अन्यथा मेजिनीके समान राष्ट्रधर्मके प्रवर्तकको जन्मभर 'देश-निकाला' क्यों सहना पडा और ओसामसीह जैसे विश्व-धर्मके प्रवर्तकको सूलीपर चढनेकी बारी क्यों आयी? अखिल मानवजातिके अुद्धारके लिअे अकेले ओसामसीहको आत्मयज्ञ करना पडा अिसका क्या अर्थ है? गांधीजीका वर्णन करते समयभी रवीन्द्रनाथको यज्ञकी ही अुपमा सूझी थी। संसारमें आजतक जितनेभी ध्येयवादी हुं अुनके चरित्र अवलोकन करनेपर हमें यही लगता है कि हमने "नरयज्ञका" त्याग नहीं किया है। लेकिन अुसके लिअे दोषी किसे कहा जा सकता है? क्योंकि स्वयं भगवानने कहा है कि यज्ञ किये बिना जग-धारणा निर्माण नहीं हो सकती।

मराठीसे अनुवादकः—श्री वसु व्यास "अनल"

[नागपुर

गीत

: श्री नीरज :

आज न कोअी दूर न कोअी पास है
फिर भी जाने क्यों मन आज अुदास है।

आज न सूनापन भी मुझसे बोलता
पात न पीपल पर भी कोअी डोलता,
ठिठका सा है वायु, थका सा नीर है,
सहमी-सहमी रात, चांद गम्भीर है,
गुपचुप धरती, गुमसुम सब आकाश है।
फिर भी जाने क्यों मन आज अुदास है।।

आज शामको झरी नहीं कोअी कली,
आज अंधेरी नहीं रही कोअी गली,
आज न कोअी पंथी भटका राहमें,
जला पपीहा आज न प्रियकी चाहमें,
आज नहीं पतझार, नहीं मधुमास है।
फिर भी जाने क्यों मन आज अुदास है।।

आज अधूरा गीत न कोअी रह गया,
चुभनेवाली बात न कोअी कह गया,
मिलकर कोअी मीत आज छूटा नहीं
जुडकर कोअी स्वप्न आज टूटा नहीं,
आज न कोअी दर्द न कोअी प्यास है।
फिर भी जाने क्यों मन आज अुदास है।।

आज घुमडकर बादल छाया है कहीं
बिना बुलाये सावन आया है कहीं,
किसी अधजले विकल शलभकी यादमें
आज किसीने दीप जलाया है कहीं
अिसीलिअे शायद मन आज अुदास है।
जब कि न कोअी दूर न कोअी पास है।।

[कानपुर

गोंडोंका अितिहास

: श्री प्रभाकर माचवे, अेम. अे. :

गोंड राजाओंका अितिहास कहीं भी क्रमबद्ध नहीं मिलता। बिशप, चेंटरटन विल्स आदि लोगोंने जनश्रुति और दन्तकथाओंके आधारपर कुछ लिखनेका यत्न किया है। अुन्हींके आधारपर पता चलता है कि गढाके राजघरानेका मूल पुरुष जदुराय था। गोदावरीके किनारे किसी गाँवके पटेलका लडका था। शायद देवगिरीके यादवोंमेंसे यह अेक हो। गढामें राज्यस्थापना होनेसे पहले अिस भागमें कलचुरी नामके राजा हुअे हैं। अुन्हींका जदुराय नौकर था। नागदेव नामके गोंड राजाकी लडकीसे अुसकी शादी हुअी। और बादमें सुरभि पाठक नामके ब्राह्मण मंत्रीकी सहायतासे अुसने गढामें राज्य स्थापित किया। अुसके संबंधमें यह दंतकथा प्रचलित है कि वह अपने स्वामीके साथ अमरकंटकमें देवदर्शनके लिअे जाया करता था। रास्तेमें अेक रातको मालिकके डेरेके बाहर जब पहरा दे रहा था, तब दो गोंड पुरुष और अेक स्त्री और अुनके पीछे अेक बंदर जदुरायके सामनेसे गये। बंदरने जदुरायके मुँहकी ओर देखकर कुछ मोरके पंख वहीं डाले और चला गया। जदुरायका पहरा समाप्त होते ही वह वहीं सो गया। नींदमें नर्मदामाअीने अुसे दर्शन दिये और कहा कि तुमने जिन्हें देखा वे साधारण आदमी नहीं थे। वे राम सीता और लछमन थे। अुनके पीछे हनुमान जा रहे थे। मयूर पंखका अर्थ यह है कि तुम्हें शीघ्र ही राज्यपद मिलनेवाला है। तू अब रामनगरमें जा और वहाँ सुरभी पाठक नामक ब्राह्मणको अपना गुरु बना। जदुरायने वैसा ही किया। नर्मदा नदीमें संकल्प छोडा कि 'मैं राजा बनूंगा तब तुम्हें प्रधान बना दूंगा।' गढाके गोंड राजाके अुस समय पुत्र नहीं था। तब अुसने यह युक्ति की कि नर्मदाके किनारे सब लोगको जमाकर अेक पालतू मैना अिस अुद्देश्यसे अुडा दी कि 'वह जिसके सिरपर जा बैठे वही राजा होगा।' वह मैना जदुरायके सिरपर ही बैठी।

पहले गोंड राजा अपने नामके पीछे राजपूतपन दिखानेके लिअे 'सिंह' पदवी लगाते थे। बादमें मुसलमानोंके प्रभावसे 'शाहा' लगाने लगे। जदुरायके बाद संग्रामशाहा हुआ। अिस राजाने अपना राज्य बहुत बढाया। गढाके पश्चिममें ४०-५० कोसपर अुसने चौरागढ* नामका किला बनाया। दो अूँची मजबूत पहाडियोंपर यह किला है और अुसपर पानीकी बडी रसदका प्रबंध है। अिसके बाद करीब १५०० अीस्वीमें दलपतशाहाने राज किया। यह संग्रामशाहाका लडका था। महोबाके चंदेल राजाकी सुन्दर लडकी दुर्गावतीके लिअे गोंड राजाने माँग की। कहते हैं कि दुर्गावतीने दलपतके पास गुप्त संदेश भेजा और तलवारके जोरपर अुसे जीतनेका प्रस्ताव रखा। दलपतने गोंड फौजके सहारे अपने भावी श्वसुरपर हमला किया और अुन्हे हराया। अिन दोनोंकी शादीके चार बरस बाद ही रानी दुर्गावती विधवा हो गयी। अपने लडके वीरनारायणके भरोसे रानी दुर्गावतीने बडी हिम्मतसे राज चलाया। बहुतसे जनहितके काम किये—तालाब, किले, नहरोंका निर्माण किया। अकबरके सूबेदार आसफखाँने माणिकपुरमें दुर्गावतीकी सुंदरताकी तारीफ सुनी थी। अुसने अिसके राज्यपर हमला किया। सिंगोरगढमें अपनी गोंड सेना जमा करके रानीने आसफखाँका मुकाबला किया, वहाँ अुनकी पराजय हुअी। गढामंडलामें फिर लडाअी हुअी। अेक स्थानपर जब पीछे नदी पूरपर थी और सामने आसफखाँकी सेना थी, तब रानीने विश्वस्त नौकर आधार‡ के हाथों खंजरसे आत्म-घातकर लिया और अपने सतीत्वकी रक्षा की। रानी दुर्गावतीके नामपर "रानी

---

*यह चौरागढ सम्भवतः पचमढ़ीके निकटवाला स्थान होगा। —सं.

‡ आधारसिंह रानी दुर्गावतीके मंत्री थे। अुनके नामका आधार ताल जबलपुरमें है। —सं.

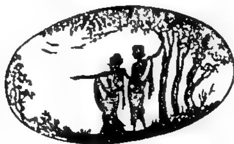
साल' जबलपुर और गढ़ाके बीचमें है।

रानीके पुत्र वीरनारायणको गोंड लोग नरसिंहपुर ले गये। वहां भी आसफखांने पीछा किया। तब अिस बहादुर लड़केने अकेले लड़कर प्राण दिये। चौरागढ़में 'जौहर' हुआ, अुस आगमेंसे रानी दुर्गावतीकी बहिन कमलावती और वीर नारायणकी, भावी वधू पुरागढ़के राजाकी लड़की भाग निकली। गढ़ा और चौरागढ़की लूटमें आसफखांको अेक हजार हाथी और अनगिनती खजाना तथा जवाहिरात मिले। अिनमेंसे सिर्फ २०० हाथी अुसने अकबरको भेजे। बादमें अकबरको जब सच्चा पता चला तब आसफखांपर अुसका विश्वास नहीं रहा। अिसी समय गढ़ामें गोंडोंका घराना प्रायः नष्ट हो गया। वीर नारायणका चाचा चन्द्रशाहा अकबरका मंडलीक बनाया गया। परन्तु भोपालकी ओरका बहुत-सा हिस्सा अुससे छीन लिया गया था। अिससे गढ़ा-मंडलाकी सत्ता बहुत कम हो गयी। चन्द्रशाहाके भाअी मधुकरशहाने अुसे मार डाला और खुद राजगद्दीपर बैठा। परन्तु बादमें मधुकरको भाअीकी हत्याका अितना पछतावा हुआ कि वह अेक सूखे पीपलके पेड़की खोखलमें जाकर बैठा और अपने हाथोंसे अुस पेड़को आग लगा दी। मधुकरका लड़का प्रेमशाहा जो मुगलोंके दरबारमें अपने लड़के हिरदेशाहाके साथ था, अपने बापके राजको सभालने आया। पर वीरसिंहदेव बुन्देलेके लड़के झुंझारसिंहने अुसपर हमला कर दिया। कहीं अैसा भी कहा गया है कि प्रेमशाह मुगल दरबार छोड़कर जो चला तो अुसने वीरसिंहदेवके प्रति आदर व्यक्त नहीं किया। अिसलिअे मरते समय वीरसिंहने अुसपर बदला लेनेके लिअे लड़केसे वचन ले लिया। झुंझारसिंहने प्रेमशाहाके किलेको घेरा डाल दिया। बहुत दिनोंतक जब घेरा नहीं अुठा, तब अुसने कपटसे संधिके लिअे प्रेमशाहाको बुलाकर अुसे और अुसके मंत्री जयदेव वाजपेयीको मार डाला। प्रेमशाहाका लड़का हिरदेशहा दिल्लीमें था, वह गुप्त रूपसे वहां आया। अपनी पुरानी दाअीकी मारफत अुसने छिपा हुआ पिताका खजाना हथियाया और शाहजहांसे भोपालके सूबेदारकी मारफत संबंध जोड़ा। शाहजहांने जुझारके लिअे यह फरमान जारी किया कि अुसके मंडलीक गढ़ाके राजाको अुसने क्यों मारा और राज्य कैसे ले लिया। अिसके बदलेमें वह राज्य और १० लाख रुपये दिल्ली भेजे। जुझारने अपने लड़के विक्रमाजीतको बालाघाटसे बुला लिया। खां जमानके साथ अुसकी बड़ी लड़ाअी हुअी और विक्रमाजीत बड़ी मुश्किलसे आ मिला। बादशाह-नामेमें आगकी बातें यों दी हैं—

शाहजहांने 'सुंदर कविराय' नामका आदमी जुंझारके पास भेजा और अुसे निम्न संधिकी शर्तें बतायीं —(१) झुझार आगराके अिलाकेका अेक हिस्सा बादशाहको दे। (२) अुसके बदलेमें जुझार गोंडोंके राज्यका चौरागढ़ और नीचेका प्रदेश ले। (३) चौरागढ़की लूटमेंसे तीन लाख रुपये बादशाहको दे। (४) जुंझार खुद खांजमानके साथ बहाड़ (बरार-विदर्भ) में सेनासहित जाअे। (५) अुसके पुत्र विक्रमाजीतको मुगल दरबारमें रखा जाअे।'

लेखककी अप्रकाशित पुस्तक 'गोंडोंके देशमें' का अेक अंश।

[नागपुर



"गीता" की वैज्ञानिक दृष्टि और वैज्ञानिक

: श्री प्रो० कन्हैयालाल सहल, अेम. अे. :

गीताके प्रथम अध्यायको पहले मैं अितना महत्व नहीं देता था किन्तु आज मुझे लगता है कि गीताकी मूल समस्याको समझनेके लिअे यह अध्याय अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अर्जुन जैसे प्रसिद्ध योद्धाके हाथसे गाडीव छूट जाता है और अुसका मस्तिष्क चक्कर खाने लगता है। प्रश्न यह है कि क्या अर्जुन कौरवोंकी विशाल वाहिनीको देखकर भयभीत हो गया था? अर्जुन जैसे धनुर्धारीके सम्बन्धमें यह शंका नहीं की जा सकती। अुसने पहले भी बहुत से युद्ध लडे थे, आज वह क्यों युद्धसे पराङ्मुख हो रहा है? आज वह युद्धकी हानियोंका अितना विस्तारपूर्ण वर्णन क्यों कर रहा है? यहाँ यह अुल्लेखनीय है कि गीताके प्रथम अध्यायमें जितने थोडे शब्दोंमें युद्धकी अधिक से-अधिक हानियाँ दिखलायी गयी हैं, वे शायद ही अिस रूपमें अन्यत्र देखनेको मिल सकें। अिसका मुख्य कारण यह है कि अर्जुन अपने सबंधियोंको मारना नहीं चाहता। अपने ही चचा, मामा-भतीजे आदिकी हत्या वह कैसे कर डाले? अुसने अिस बातको साफ स्वीकार किया भी है। "स्वजन हि कथ हत्वा सुखिन स्याम माधव?" यदि अर्जुनको किसी अन्य शत्रुसे मुकाबला करनेके लिअे भेजा जाता तो वह अवश्य बडे हर्षपूर्वक युद्ध करनेके लिअे चला जाता, अुसपर रणोन्माद छा जाता, हर्षसे अुसकी छाती फूल जाती। तब वह युद्धकी बुराअियोंका अुपदेश भी किसीको नहीं देता। वस्तुत हमारा हृदय जो चाहता है, अुसीका समर्थन हम करने लगते हैं। हृदयकी अदम्य अिच्छाके सामने बुद्धिका कुछ बस नहीं चलता, वह हमें हाँ मिलाने लगती है। 'कामायनी'के सुप्रसिद्ध कवि श्री जयशंकरप्रसादने अिस मनोवैज्ञानिक तथ्यको भली भाँति प्रकट किया है—

"बन जाता सिद्धान्त प्रथम फिर,
पुष्टि हुआ करती है।
बुद्धि अुसी ऋणको सबसे ले,
सदा भरा करती है।
मन जब निश्चित सा कर लेता,
कोअी मत है अपना।
बुद्धि-दैव-बलसे प्रमाणका,
सतत निरखता सपना॥"

अर्जुनके मनने निश्चित-सा कर लिया था कि स्वजनोंसे युद्ध नहीं करना चाहिअे। बुद्धिने युद्धके विरुद्ध अनेक प्रमाण अुपस्थितकर युद्धकी सदोषता दिखला दी। हम भी प्रायः यही किया करते हैं। अिस तथ्यकी सम्यक् प्रतीतिके लिअे कुछ अुदाहरण लीजिअे —

१. बनारस विश्व-परिषद्में सम्मिलित होनेके लिअे हम लोग बनारस गये थे। अेक स्टेशनपर मैंने देखा, गाडी आनेमें विशेष देर नहीं थी। यात्री पंक्तिबद्ध खडे थे और प्रतिक्षण खिडकीके खुलनेकी आवाजकी प्रतीक्षा कर रहे थे। खिडकी खुली किन्तु टिकिट बाँटनेवाला बाबू अपने अेक मित्रसे बातचीत करनेमें संलग्न था। मित्रको वह बतला रहा था कि मेरी पत्नीकी बहिन बहुत अच्छा गाती है, रेडियो-वालोंकी ओरसे भी अुसे निमंत्रण मिलते हैं और अुसकी सुमधुर आवाजका तो क्या कहना! अेक यात्री धीरे-धीरे गुर्राया, कहने लगा, अिस स्टेशन मास्टरको गोलीसे अुडा दिया जाअे तो कितना अच्छा रहे। यह नहीं देखता गाडी आनेवाली है, यात्री जाडेसे ठिठुर रहे हैं और अिसे अपनी पत्नीकी बहिन और रेडियोकी पडी है। जहन्नुममें जाअे अुसकी बहिन और अुसका रेडियो!!

संयोगसे अेक क्षणके लिअे आप कल्पना कीजिअे कि यदि यही स्टेशन-मास्टर अपनी वृद्ध माताको लेकर यात्राके लिअे निकले और अुसको भी हड्डियाँ तक को कँपा देनेवाले शीतमें टिकटके लिअे पंक्तिबद्ध खडा होकर प्रतीक्षा करनी पडे और वह टिकट बाबूको अिसी

प्रकारकी घरेलू बातोंमें रस लेता हुआ देखे, तो आपकी सामान्य मुसाफिरकी सी प्रतिक्रिया क्या आपके मनमें नहीं उत्पन्न हो जायेगी? किन्तु ज्योंही वह अपनी कुर्सीपर बैठेगा, सोचने लगेगा, दिनमें न जाने कितनी गाड़ियाँ आती हैं, मैं मुसाफिरोंका कहाँतक ध्यान रखूँ, ऐसा करूँ तो मेरा तो मरण हो जाये।

२ अेक बार अेक सज्जन जो मुझसे बिल्कुल अपरिचित थे, सपत्नीक मेरे यहाँ आये। कहने लगे—देखिये, 'अिनको' पढ़ानेमें मैंने क्या नहीं किया, ट्यूशनोंकी व्यवस्था की, घरका काम छुड़ाया" किन्तु अब नौका मझधारमें है। आप ही अिस नौकाको पार लगा सकते हैं। फिर बोले स्त्री शिक्षाका तो हमारे देशमें वैसे भी अभाव है, आप जैसे विद्वान यदि सहारा नहीं लगायेंगे तो कैसे पार पड़ेगा? वे चाहते थे कि मैं अुन्हींकी अुपस्थितिमें अुस महिलाको अुत्तर पुस्तक निकालकर अुन्हें मुक्तहस्त होकर अंक दे दूँ। मैंने मन ही मन कहा "अब मैं तोहि जान्यो संसार।" "कामी स्वतां पश्यति।" "सर्वं स्वार्थं समीहते।"

३ अेक न्यायाधीश थे जिन्होंने अनेकाधिक बार फाँसीकी सजा सुनायी थी। अेक दिन अुनका लड़का ही अैसा अपराध कर बैठा जिसकी सजा सिवाय फाँसीके और कुछ नहीं हो सकती थी। किन्तु न्यायाधीश सोचने लगे, यह फाँसी कोअी अच्छी चीज नहीं, जिससे न समाजका भला होता है न अपराधीका। फाँसीके बदले कोअी दूसरी सजाका आविर्भाव किया जाना चाहिये। न्यायाधीशकी युक्तियाँ चाहे युक्तियुक्त हों किन्तु अुनके चित्तके मोहाविष्ट हो जानेके कारण अुनकी युक्तियाँ पूर्वाग्रहसे दूषित हो गयी थीं।

लेखकी कलेवर-वृद्धिके भयसे अधिक अुदाहरण नहीं दे रहा हूँ। आज हम वैज्ञानिक युगमें रह रहे हैं किन्तु वैज्ञानिक दृष्टि हमारी नहीं है। जो वैज्ञानिक प्रयोगशालामें बैठकर सत्यका वस्तुगत परीक्षण करते हैं, अुसके साथ प्रयोग करते हैं वे ही वैज्ञानिक लौकिक व्यवहारोंमें अपनी अिस वैज्ञानिक दृष्टिको तिलाञ्जलि दे देते हैं।

व्यावहारिक बुद्धिके पुरुषको अर्जुनका दृष्टिकोण बुरा नहीं लगता, कृष्णको बुरा लगा। अर्जुनको भी कुछ लगा हो किन्तु अुसके मनमें चैन नहीं था। अिसीलिये भगवान व्यासने गीताके अिस प्रथम अध्यायका नाम रखा है "अर्जुन विषाद-योग"।

याज्ञवल्क्य जब अपना घर छोड़कर जाने लगे तो अुन्होंने अपनी दोनों पत्नियोंसे कहा कि मेरे पास जो गोधन आदि है अुसका बँटवारा कर लो। अुनकी अेक स्त्रीने कहा—' किमेन कुर्याम् येना ऽहं नामृता स्याम्" क्या अिस धनसे मैं अमर हो जाअूँगी? याज्ञवल्क्य ने कहा, अैसा तो नहीं हो सकता। तो अुसने कहा कि अुसे लेकर मैं क्या करूँ जिससे अमरता मुझे न मिले। सभी जानते हैं कि यह शरीर तो अमर नहीं रह सकता। किसी दिन मिट्टीमें मिलही जायेगा। 'मृत्युवत् निश्चित' यह तो अंग्रेजी भाषाकी अेक कहावती अुपमा है। वास्तवमें आत्मौपम्य दृष्टिमें अमृतत्व है। सब प्राणियोंको आत्मवत् देखना अथवा साधनाकी अुच्च अवस्थामें आत्माको ही सब प्राणियोंके रूपमें देखना यह दृष्टि कृष्ण अर्जुनको देना चाहते थे। जबतक यह दृष्टि हमें नहीं मिलेगी तबतक न हम सुखसे रह सकेंगे, न हम दूसरोंको सुखसे रहने देंगे।

आजकल "सर्वोदय" जैसा कल्याण-कारी शब्द सुनायी पड़ रहा है। सर्वोदयका सच्चा अर्थ मैं तो यही समझता हूँ कि "आत्म" और "सर्व" अिन दोनोंके बीचमें जो दीवार है अुसे भेद दिया जाये, तोड़ दिया जाये तो "आत्म" और "सर्व" के स्वार्थोंमें अेकरूपता आ जायेगी। हम अपने मोहके कारण ही अिनको अलग अलग समझ बैठे हैं। गीताके अन्तमें चलकर अर्जुनने स्वीकार किया कि मेरा मोह नष्ट हो गया है और अब मुझे चीजें ठीक ठीक दिखलायी पड़ने लगी हैं। हम भगवानसे प्रार्थना करें कि हमें भी गीताकी वैज्ञानिक दृष्टि मिले जो आजके वैज्ञानिकोंको भी प्राप्त नहीं।

विनोबा कहते हैं कि वर्तमान युगमें यदि विज्ञानने हिंसाके साथ अपना गठ बंधन किया तो विश्वमें प्रलय अुपस्थित हो जायेगा किन्तु यदि मानवताके हितको लक्ष्यमें रखकर विज्ञान और अहिंसा दोनों प्रेम-पाशमें

आबद्ध हो गये तो विश्वमें सुख-शान्तिकी स्थापना हो सकती है। पर आज हो क्या रहा है? विश्वके वैज्ञानिक हायड्रोजन बमोंकी संहारक-शक्तिको बढानेमें लगे हैं और अेक देश हायड्रोजनके अुत्पादन और विकासके अर्थ दूसरे देशके साथ प्रतिस्पर्द्धा कर रहा है। यह स्थिति निश्चयही अवाञ्छनीय है, किन्तु प्रश्न यह है कि अिसके लिअे दोषी कौन है? सामान्यत यह कहा जाता है कि अिस विनाशकारी प्रतिस्पर्द्धाके लिअे वैज्ञानिकोंको दोषी नहीं ठहराया जा सकता। दोषी वे हैं जो वैज्ञानिक साधनोंका दुरुपयोग करते हैं। किन्तु थोडा विचार कर देखिअे तो पता चलेगा कि अिसके लिअे स्वयं वैज्ञानिकभी कम दोषी नहीं। वैज्ञानिक आखिर क्यों अिन घातक साधनोंका आविष्कार करते हैं? क्यों नहीं वे दुनियाके दुख दर्दोंको दूर करनेमें अपनी प्रतिभाका सदुपयोग करते? आज अिस बातको समझ लेनेकी सबसे अधिक आवश्यकता है कि वैज्ञानिक भी वैज्ञानिक होनेके पहले मनुष्य है, अिसलिअे अच्छा वैज्ञानिक बननेकी अपेक्षा अेक अच्छा मानव बनना अुसका सबसे बडा कर्त्तव्य है।

यह हमारा दुर्भाग्य है कि बौद्धिकवाद और विज्ञानके अिस युगमें हम मानवताको भूलने लगे हैं। हमारी बुद्धि तो आवश्यकतासे अधिक विकसित हुअी है किन्तु हमारे दिल छोटे पड गये हैं, हृदयका समुचित विकास नहीं हो पा रहा है। यह गहन चिन्ताका विषय है। विज्ञानको आज दर्शनका सहारा लेकर आगे बढना होगा। दर्शनके बिना आज विज्ञान अन्धा हो गया है; मुझे मालूम नहीं, वह मानवताको किस विनाश-पथकी ओर ले जा रहा है!

गीतामें कहा गया है— 'न हि कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति' अर्थात् "जो कल्याणके मार्गपर आरूढ हैं, अुनकी कभी दुर्गति नहीं हो सकती।" वैज्ञानिकोंके लिअे आवश्यक है कि वे आत्म-मन्थन करें, सोचें कि क्या वे कल्याण-मार्गके पथिक हैं? यदि वैज्ञानिकोंने अपने कर्तव्यका पालन नहीं किया तो निश्चयही वे भी मानवताके लिअे अभिशाप सिद्ध होंगे।

भौतिक जगत्की सचाअीका पता वैज्ञानिक लगाता है जब कि अध्यात्मवादी आध्यात्मिक जगत्के रहस्योंका अुद्घाटन करता है। अिस युगके महान् दार्शनिक अरविन्दने कहा था कि केवल भौतिकवादपर ही बल देना अथवा भौतिकवादकी सर्वथा अुपेक्षा कर केवल अध्यात्मवादको ही सर्वस्व मानकर चलना दोनों ही अतिवाद हैं। भूत अध्यात्मकी ओर गतिशील है तो अध्यात्म भूतकी ओर अुन्मुख। आवश्यकता अिस बातकी है कि वैज्ञानिक भी अिस तथ्यको समझें। और अिस तथ्यको वे तभी समझ सकते हैं जब कि मानवताके महत्त्वको वे हृदयंगम करें।

वैज्ञानिकोंका कहना है कि हमारी यह पृथ्वी कभी भयंकर ज्वलत्पिण्डके रूपमें थी, असंख्य वर्षोंके अनन्तर यह ठंडी हुअी, अिसपर वनस्पतियाँ अुगीं। फिर जीव-जन्तुओंका आविर्भाव हुआ। और न जाने प्रकृति द्वारा कितने प्रयोग किये जानेपर अिस धरित्रीपर अुन प्राणीको अवतारणा हुअी जो अपनी मनन-शक्तिके कारण मानव कहलाया। मानव ही अेक अैसा प्राणी है जिसमें विवेक है, संयम है, तपस्या है और जो अपने अकल्पनीय गुणोंके कारण प्रकृतिपर विजयपर विजय प्राप्त करता चला जा रहा है किन्तु आज सबसे बडे आश्चर्यकी बात यह है, मानव ही मानवके लिअे पहेली बन गया है। अिस पहेलीको सुलझाना आजकी बडी भारी समस्या है। समय-समयपर महापुरुष अिस विश्वमें अवतरित होते हैं और अिस गुत्थीको सुलझानेका भरसक प्रयत्न करते हैं। अिस देशमें गांधी जैसे महात्माने अहिंसा और सत्यके साधनों द्वारा अिसी गुत्थीको सुलझानेका प्रयत्न किया था।

क्या विश्वके वैज्ञानिक और राष्ट्रोंके सूत्रधार समय रहते चीत्कार करती हुअी मानवताकी अिस आवाजको सुन सकेंगे?

[पिलानी

धरतीका बेटा

श्री नन्दकुमार पाठक

जिस दिन करनलके सामनके तीन दाँत तोड डाले गये थे अुस दिन भी अुसका दिल नहीं टूटा था। सिर्फ स्वर टूट गया था। दिलमें अेक दरार भर पडकर रह गयी थी। लेकिन जिस दिन अुसका दिल बिल्कुल ही टूट गया और किस्मत भी फूट गयी अुस दिनकी बात कह रहा हूं।

यह करनल आजसे ६ साल पहले तक रावी नदीके किनारे बसे हुअे जडाला नामक गाँवका रहने वाला था। किसान था। अुसने अपने सामनेवाले अूपरके तीन दाँत सोनेसे मढवा लिये थे। जब देशको दो हिस्सोंमें तकसीम दिया गया तो प्राण बचानेके लिअे वह भागकर देशके अेक भागसे दूसरे भागमें आ जानेके लिअे मजबूर हो गया। वह अेक भागसे दूसरे भागमें भाग आया। वहाँ अुसका खेत छूट गया। अुसका घर छूट गया। और सोनेसे मढ़े सामनेके तीन दाँत तोडकर वहीं रह जानेवालोंने रख लिये क्योंकि वह सोना जो अिसके दाँतोंमें चिपका दिया गया था, वह अुसी भागका था और अिसलिअे अुसे वहीं रह जाना चाहिअे था। अुसकी जान बख्श दी गयी। सो वह अपनी जान लेकर चला आया। साथमें अपना आठ सालका लडका ले आया। और साथमें आया अुसका दरार पडा हुआ दिल दिमागमें परेशानी गाँव छूट जानेका दुख था। परेशानीके कारण माथेपर पड गयी सिलवटोंपर अस्तव्यस्त भाल थे और थी नये जीवनको प्रारम्भ करनेकी व्याकुलता साथमें और कुछ नहीं था।

अपनी जान और मालकी सलामतीके लिअे करनैल अिधर आ गया। अुसके बहुतसारे साथी टिहरी गढ़वालके पार्वत्य जिलाकोंमें जा बसे थे। कोअी घोडे खरीदकर टांगा हांकने लगा था और कोअी भैंसे खरीदकर दूधके व्यापारमें कमाअी करने लगा था। करनल यह सब कुछ नहीं कर सकता था। कुछ दिनों तक रेलगाडियोंमें घूम घूमकर अुसके लडकेने संतरेकी गोलियाँ बेचीं। लेकिन करनलको यह गवारा नहीं हुआ और वह हरगाँवके अेक जमींदारसे आरजू मिन्नतकर अुसके घरमें लडकेकी नोकरी लगा दी। वह वहीं परवरिश पाने लगा। और करनलने दूकानसे अुधार माल लेकर रेलगाडियोंमें नीलामकर कुछ पैदा कर लेनेकी तरकीब अपनायी।

जो करनल अपने गाँव जडालाकी चाँदनी रातोंकी दूधिया झिलमिलमें और सितारोंकी छाँहमें अपने खेतोंमें काम करता था वह यहाँ अपने भाग्यके टूटे नक्षत्रोंकी छाँहमें मनुष्योंकी भीडमें अपनी रोजी कमानेका काम करने लगा। जो करनैल अपने खेतोंकी नसोंको टटोलकर अुसकी अुर्वरा शक्ति और आर्द्रताका चतुर अनुभव किया करता था आसमानके और मौसमके बदलते रुखोंकी टोह लिया करता था हल फाल कुदाल बीज और बैलोंकी देख रेख और हिसाबकिताब करता था वह यहाँ आकर अेक व्यापारी आसटककी दृष्टिसे देखनेमें चतुर हो गया। वह अुन भोली भाली सूरतोंको ढूंढा करता जो अिसके व्यापारमें बरकत दे सकती हों। धरतीको कुरेदकर धन पैदा कर लेनेवाला धरतीका वह बेटा धरतीकी सेवाओंके आवरणसे वंचित होते ही अपने जीवनकी नग्नतामें आने लगा और जब अपनी जबानकी चतुर कचौसे नीलाममें भोले भाले अिन्सानोंको जब कतरने लगा अुसे अिन सब बातोंका दुख था और वह यह सब नहीं चाहता था। लेकिन मजबूर था। अुसने योजनाभी बना रखी थी कि वह थोडही दिनों तक अिस मजबूरीको बरदाश्त करेगा, फिर कहीं न कहीं धरतीका काम करने लग जाअेगा।

जिस प्रकार निर्मम और असह्य परिस्थितियोंकी विवशतामें गुनाह कर बैठनेवाला कानूनके चंगुलमें फँस जानेपर मुक्ति पानेके लिअे कानूनकी विविध धाराओं और पैंतरोंमें कुशल बन जाता है, अुसी प्रकार करनैल अपनी निर्मम परिस्थितियोंके गिरफ्तमें आ गया था और अुसके रोजमर्रा जीवनमें आवश्यक प्रवृत्तियोंने अपनी जगह बना ली थी। अेक दिन जब किसान अुस बैल कर हरीवसे लौटने लगा तो अुसी डब्बेमें करनैल भी अपना नीलामी माल लेकर चढ़ गया।

वह नीलामका अभिनय करने लगा। "देखिअे बाबूजी यह 'आल्हा'की पोथी है। यह आयीना है। यह कंघी है। और यह अेक सेट ताश है। अगर अिन्हें बाजारमें लेने जायें तो चार रुपयेसे थोड़ी कम नहीं लगेगा। लेकिन मैं अिन्हें सस्तेमें दे दूंगा। जो बोली ज्यादा बोले। पहला कम बोली होनेपर कमीशन दूंगा। आप औसा न समझें कि यह चोरीका माल है। नहीं। यह लॉटरीका माल है। अिसलिअे सस्ते मूल्यमें दिया जाअेगा। आप भाओ साहबानको, जिसे बोली बोलना हो, बोले। जो बोले, रुपया, दो रुपया।" वह मुस्कराया।

"आठ आने!" मुसाफिरोंकी भीड़मेंसे आवाज आयी।

"यह देखिअे, बाबू साहब चार रुपयेके मालपर आठ आनेकी बोली। अच्छा, आठ आने! चार रुपयेके मालपर बोली आठ आने! आठ आने!!" वह घूम घूमकर बोलने लगा—'आठ आने! आठ आने! आठ आने!' अुनकी आत्मग्लानिके कारण चिन्तित माथेपरके छितराये अस्त-व्यस्त बाल हर बार रह रह जाते थे। चेहरेपर अेक चिन्तातुर कमनीयता आ गयी थी।

"बारह आने!" दूसरे छोरसे आवाज आयी।

वह अुसके स्वरकी टेर पकड़कर बोलने लगा—'बारह आने, भओी बारह आने!"

वह अपने संचालन और स्वरके लोचमें अुन्माद भरकर बोलने लगा।

"अेक रुपया!" आवाज दी गयी।

करनैलने पकड़ लिया—"अेक रुपया! बाबूजी, अेक रुपया!!" टूटे दांतोंके बीचसे अुसके स्वरका स्पष्ट अुच्चारण खिसकने लगा। लेकिन जैसे कोई दूर रेलेपर जैसे ढोनेवाला मुसाफिरसे चलता है, वैसे ही अपने अभिनयके लिअे कृत्रिम प्रसन्नताका दम डाले वह मुसाफिरसे बोल रहा था। माथेपर पसीनेकी बूंदें छलक आयी थीं। 'अेक रुपया। अेक रुपया!"

"सवा रुपया!" अुधरसे आवाज फूटी।

पसीना पोंछते हुअे करनैलने छोर पकड़ ली—"भओी, सवा रुपया। सवा रुपया।" सवा रुपयापर पहुँच बोलोंमें गत्यवरोध हो गया। करनैलके चेहरेपर थकान छा गयी। अुसने लाचारीके स्वरमें कहा—"बाबूजी सवा रुपयामें नहीं पड़ता। यह सोचिअे चार आने कमीशनके।" अुसने पैसे अेक और बढ़ाये कि अुस ओरसे गत्यवरोध हट गया। "डेढ़ रुपया!"

करनैलने टेर बदल दिया— "अच्छा बाबूजी, डेढ़ रुपया।" यह बोली अेक तरुण ग्रामीणकी थी जो लखनअूसे अपने गाँव वापस जा रहा था। अुसके मनमें नयी अुमंगका कोलाहल होने लगा था। और वह सोच रहा था कि अिन सब चीजोंको लेकर वह अपनी नयी पत्नीको भेंट करे तो कैसा अच्छा हो! लेकिन अुसके साथीने अुसका मनसूबा मन ही-मन भाँप लिया और आगे बढ़ गया— "दो रुपये!"

करनैलकी थकान दूर हो गयी। वह अुन्नमें स्वर साधने लगा—"दो रुपये, भओी बाबूजी दो रुपये! —दो रुपये!"

पहला साथी अुतावला होकर बोला-"ढाओी रुपये।"

लेकिन दूसरे साथीने रोक लिया- 'तीन रुपये।" करनैलने तीन रुपयेमें अेक-दो-तीन कर रुपये जेबमें रख लिये। अुसका मन हरा हो गया।

अब करनैलने अेक साड़ी निकाली। ढोंग पोलापनका रच लिया। अुसके चहरोंको टूट जानेके खतरेसे सावधान होते हुअे अुसे अपने हाथोंमें तोला।

"भाओी साहबान, अब आपके सामने अेक साड़ी पेश कर रहा हूँ।"—धीरे-धीरे अुसके स्वरमें

आकर्षक होने लगे। "आप साहबान जानते होंगे, मेनका अैसी ही लजीज साडी पहनकर विश्वामित्रके पास आयी थी, जो हवाके झोकोंसे थुड थुड जाअे, फहरा-फहरा जाअे फिसल-फिसल जाअे।" बडी ही आकर्षक और कोमल अदासे साडीको वह खोलते हुअे बोला—"विश्वामित्रकी आँखें खुलीं कि मेनकाने घूंघट डाल दिया। तब भी आँखें चार! जी हाँ, तब भी आँखें चार।" करनैलने साडीके पर्देको अपने मुँहपर लेकर अुसकी पारदर्शिताका परिचय कराया। "बडी-बडी दूकानोंमें जाअिअे तो अैसी साडियाँ शीशेकी आलमारियोंके तहखानेमें या नफीस बुतोंके बदनपर नुमाअिशकी गयी मिलेंगी। जिसकी कीमत तीस रुपये। जी हाँ। लॉटरीके लाटमें मिली है। बाबूजी जिसे बोलना हो बोली बोले। दस, बीस। जो, जी चाहे।" साडीमें अुसने तहें लगा दीं। कभी-कभी भावी साहबान कमीशनके लालचमें यों भी बोली बोल देते हैं। आपसे मेरा अर्ज है, अैसा न करें। अगर आपके टैंटमें पैसे हों तो बोली बोलें, वरना खामोश ही रहें।"

"पाँच रुपये।" अुधरसे आवाज आयी।

टूटे दाँतोंके झरोखेके अुसपार करनैलकी जुबान हिलने लगी। "पाँच रुपये।" अुसने अफसोस प्रकट करनेके लिअे कहा—"जी हाँ। तीसके मालपर पाँच रुपये।" अुस बोलनेवालेको अेक दूसरा नवयुवक समझाने लगा,—"अरे, क्या सनक सवार हो गयी तुमपर भी यार? देखते नहीं हो? पाटकी है? अेकबार पानी पडेगा तो साडीके रेशे अुसीके साथ धुल जाअेंगे। वह तीन रुपयेमें भी महँगी है, बेवकूफ।"

बगलपरसे आवाज आयी—"आठ रुपये।"

आखिर सत्रहमें जाकर साडीका अेक दो तीन हुआ। अुसके बाद तेलकी शीशियाँ, टार्चलाअिट, कैंचियाँ, धूपके चश्मे आदिका डाक हुआ। आज करनैलको पर्याप्त आमदनी हुअी। और गाडी सीतापुर आ पहुँची।

सन्ध्या समय बारिश सहसा थम गयी थी। *सन्ध्याके झुटपुटेमेंसे अेक मटियाला वुजाला फूटकर* निकल आया था। गढ्ढे जहाँ-तहाँ मँदले पानीकी सनहोंका प्रतिबिम्ब और पश्चिमके आकाशमें थके और निचुडे हुअे बादलोंकी ओटसे निकलकर फैलता हुआ धुन्द आलोकसे सन्ध्याके आनेका मार्ग दिखलायी देने लगा था। हरगाँव लौट जानेवाली गाडीके *मिलनेमें* अभी देर थी। समय वितानेके लिअे करनैल स्टेशनके *गिर्द घूमने लगा। सामनके मैदानमें* किसी आयोजनका शोर-गुल और *चहल पहल था। बैल गाडियोंपर गन्ने* लादे रातभर चलकर सीतापुर चीनीके कारखानेमें बेचनेके लिये आअे हुअे किसान बारिशके कारण जो अिधर-अुधर छिप गये थे, अब *खाने-पकानेका आयोजन* करने लगे। अजीब-सी हरकतें। चूल्हे सुलगे। हाँडियाँ चढीं। सिलोंपर मसाले पिसे। धुअें। लपटें। बर्तन। पत्तल। पानी। हर हरकतमें हिसाब-किताब करते जाते थे। कितनी आमदनी हुअी। कितना खर्च हुआ। किस किस सामानमें कितना कितना खर्च। जोड-घटाव। लकडीका दाम। हाँडीका दाम। मसालोंका दाम। चावल-दालका दाम। कभी किसी गानेकी धुन। कभी हँसी-खिलवाड। कभी अूँचे स्वरकी तीव्र आवाज। चिंतातुर आवाज। परेशान आवाज। करनैल सब देख रहा था। सब सुन रहा था। जमानेकी सडकपर *जीवनकी दौड धूपसे अुडे गर्दो-गुबारसे ढँका अुसकी स्मृतियोंका दोबा, अुभरने लगा।* वह सोचने *लगा,* कभी वह भी धरतीकी पैदावारपर अपनी जिन्दगीकी बातें तोला करता था। लेकिन अब वे दिन बीत गये। नीलाममें बचे मालको अेक ओर रख अेक अधेड अुमरके किसानके निकट बैठकर वह अुनके *हिसाब किताबमें* सहायता देने लगा। लेकिन वह सोचता जाता था, किस तरह और क्यों वह धरतीसे अलग हो गया।

करनैल हरगाँवसे सीतापुर अपनी रोजीके कामको लेकर बराबर ही आया जाया करता। लेकिन जब भी यहाँ ठहरा, तो होटलमें ठहरा। होटलमें खाया-पिया। सिनेमामें वक्त गुजारा। भीडमें वक्त गुजारा। कभी कुछ नहीं सोचा। आज भी वह ग्रामीणोंकी भीडमें ही था। वह अुनके आमद खर्चका हिसाब कर रहा था। लेकिन आज अुसका मन अुसके बीते हुअे

जीवनके धुन्धमें भटकने लगा। खाना तैयार हो जानेपर अुसे ग्रामीणोंने बड़े स्वागत-भावसे भोजन कराया। गाड़ीका समय होते ही वह स्टेशनकी ओर चल पड़ा। गाँववाले अपनी गाड़ियाँ जोतकर अपने गाँवको रवाना हो गये।

जैसे अुसके दिमागपर अेक बोझ लद गया। गाड़ीमें अुसकी आँखें अपने शिकारका निशाना साधनेसे अिन्कार करने लगीं। करनैल सोचने लगा—वह अपने अिस पेशेमें क्यों आ गया? और कैसे आ गया? जहाँ पेट भरनेके लिअे शिकार करना पड़े! बेचारे अिन भोले-भाले किसानोंका, जो धरतीकी सेवाकर अुससे धन पैदा करते हैं! करनैल अपने जीवनकी जिस मंजिलपर अभी आ पहुँचा है, वहाँ तक पहुँचनेकी अेक-अेक गतिविधि सोच गया। आज अुसने अितनी बातें बनाना कैसे सीख लिया। घूम-फिरकर वह अिसी निर्णयपर पहुँचा कि जिस दिनसे वह जमीनकी सेवासे, धरती माताकी खिदमतसे जुदा हुआ, अुसी दिनसे अुसका जीवन नगा होने लगा। बर्बर, आखेटक, नगा। जिनके लिअे अिस पेशाको अुसने अनिवार्य समझकर शुरू किया था, वह अिस समय अेक विवश यन्त्रणा बन गया था।

वह हरगाँव पहुँचा तो रातके दस भी नहीं बज पाये थे। लेकिन निस्तब्ध सन्नाटेने रातको लपेटकर सुला दिया था। अँधियारेने भी रात्रिको अपने आलिंगनमें भरकर आत्म विस्मृतिमें अपनी लम्बी काली पलकें झुका ली थीं। नीरवता गुनगुना गुनगुनाकर हवामें अेक गुदगुदी पैदा कर रही थी। अभिसारिकाअें या विरहिणियाँ अैसी रातोंमें मादकता या अवसादका रूप सुना करती होंगी, किन्तु करनैल अिस अन्धेरी रातमें अपने जीवनके पथकी अेक रेखा ढूँढ़ना चाहता था। अेक सुबहका मुँह देखना चाहता था।

सोचा, क्यों न वह अपने लड़केको भी अपने साथ ही घर ले चले? अितनी अँधेरी रातमें लौटनेमें शायद डर जाअे। वह वैसे ही बोझल मनके साथ अुस मालिकके मकानपर गया जहाँ अुसने अपने लड़केकी नौकरी लगा दी थी। मालिकके यहाँ सो जानेका अुपक्रम किया जाने लगा था।

करनैलने विनीत भावसे पूछा—"मितल चला गया क्या, बाबूजी।"

बाबूजीने अन्यमनस्क भावसे कहा—"हाँ, अेक तरहसे चला गया ही समझो।"

"अेक-तरहसे चला गया कैसा? मैं समझा नहीं, बाबूजी।"

"जाओ, आराम करो। खुद ही मालूम हो जाअेगा तो सब कुछ समझमें आ जाअेगा।"

बाबूजीने आजिज हो अुठनेके भावमें जवाब दिया।

"बाबूजी, जब आप अैसा कहते हैं तो मेरे मनमें कअी तरहका शक होने लगा है। अब तो खुद मालूम हो जाने तकका अिन्तजार मुझसे नहीं सहा जाअेगा। क्या बात हो गयी है, बाबूजी?"—करनैल व्यग्र हो अुठा।

बाबूजीके शरीरकी शिराअें हठात् अुग्र हो अुठीं। वे अूँचे स्वरमें बोल अुठे—"तुम्हारा बेटा शैतान है। और क्या पूछते हो? छोटी बीबीजीके गुसलखानेसे अुसने अुनके डेढ़ रुपये अुठा लिये। मैंने अुसे पुलिसके हवाले कर दिया। हम तुम लोगोंका यह सब फितूर बर्दाश्त नहीं कर सकते। अभी वह बच्चा है। अभीसे अुसे सुधारना चाहिअे। नहीं तो भविष्यमें वह भयंकर बदमाश बन सकता है।"—मालिक चुप हो गये।

मितलका समाचार करनैलने सुन लिया। समझ लिया। अुसकी आँखें अंगारोंकी तरह नहीं चमकीं। अेक लौ की तरह झिलमिला गयी जो अुसके जीवनकी वास्तविकताओंपर सदा ही अेक धुँधला आलोक देती रही है। न मालूम, आज कौन-सा घूँट पीकर वह लौटा था कि जिसने अुसे सुखों और दुखों, दोनों ही के प्रति अुदासीन बना दिया था।

दाँतोंसे ओठ दबा, गलेमें अुमड़ते आँसुओंका घूँट पी गया। अुसपर अेक चुप्पी छा गयी। खामोशी, मुकम्मिल खामोशी। फिर वह रुक-रुक गलेसे बोला—"अच्छा बाबूजी मैं जाता हूँ। आज आपके आशीर्वादसे मुझे कुछ

मिला है। और आपका कुछ नुकसान हो गया। आपने मेरे लड़केको सुधारकर जितने दिनों तक साथ रखा और अब ज्यादा सुधारके लिये जेल भिजवा दिया। आपका अुपकार भूलने लायक नहीं। मैं अपनी ओरसे आपके परिवारके बच्चोंके लिअे कुछ देना चाहता हूं।' अुसने कुछ नोट, कुछ सिक्के और अठन्नियां चवन्नियां और दुअन्नियां चारपाओके पायताने रख दीं। और धीरे धीरे चलने लगा दर्दके विलम्बित राग की तरह।

दरवाजेके अुस पार पहुंचनेके पहले झनकी अेक आवाज हुअी तो अुसने घूमकर देख भर लिया। नोट सिक्के आदि सभी जमीनपर बिखर पड़े थे। और मालिक अपना पांव समेटे रहे थे।

अभी रातकी स्याही सुबहकी सफेदीके साथ ठीकसे घुलने मिलने भी नहीं पायी था। करनलने अपने पड़ोसीसे घुलाकर कहा— जानते हो न? मित्तल जेल भेज दिया गया है। अुसने अपने मालिकके डेढ़ रुपये चुरा लिये थे। गरीबोंका सबसे बड़ा कसूर यही है कि वे अपनी अिच्छाओं पूरी करनेकी कोशिश करें। अमीरोंकी सभी चीजें सुन्दर होती हैं। अुनके पापभी सुन्दर होते हैं। लेकिन अब छोड़ो भाअी क्या क्या कहूं? मन सोच समझ लिया है यह सब क्या हो गया? यह सब अुस दिनसे होना शुरू हुआ जिस दिन मुझसे धरतीकी सेवा छूट गयी। धरतीकी सेवासे दूर रहनेसे ही जिन्दगी हैवानकी जिन्दगी बन जाती है। नंगी बर्बर शिकारी। सो देखो मैं जा रहा हूँ फिरसे खेतीकी सेवामें। और मित्तल जब छूटकर यहां आये तो अुसे कह देना वह टिहरी गढ़वालके अपने रिश्तेदारोंके पास आ जाओ। मैं भी वहीं जा रहा हूं। जानते हो? जहांसे भागकर यहां आना पड़ा है वहांभी अिन्सानही रहते हैं। लेकिन फिरभी अेक अिन्सानको अिन्सानके डरसे भागना पड़ा। अब यहांके अिन्सानोंसे भागकर कहां जाओ? अिन्सान अिन्सानोंसे भागकर कहां जा सकेगा? यहां मेरे दांत तोड़ डाले गये थे। मेरी जिन्दगीका सिलसिला तोड़ डाला गया था। और यहां मेरे बेटेकी जिन्दगीको तोड़ डाला गया। अब मैं नंगा हो गया हूं। फिर जीवनको ढकना होगा।

करनल कटी फसलके खेतोंके मेड़ोंपरसे होता हुआ अुस दिशाकी ओर चल पड़ा जिस दिशासे सुबह चली आ रही थी।

[खड़गपुर



अुपन्यास-सम्राट शरद्‌बाबूके जीवनकी झलक

: स्व० श्री युसुफ मेहरअली :

शरद् बाबूके साथ मेरी अंतिम भेंट अुनके अन्त-कालके थोड़े ही दिन पूर्व हुअी थी। अुस वक्त तो स्वप्नमें भी यह खयाल नही था कि मेरे और अुनके बीच यह आखिरी मिलन साबित होगा। अुन दिनों कलकत्तेमें अेक सम्मेलन था। अुसमें सम्मिलित होनेके लिअे शरद् बाबू भी आये थे। सम्मेलन समाप्त होनेपर हम दोनोंमें बातचीत शुरू हुअी।

अुन दिनों शरद बाबूका स्वास्थ्य कुछ बहुत अच्छा नही रहता था। अिसलिअे वे जमकर कोअी कार्य नही कर सकते थे। डॉक्टरोंकी ओरसे अुन्हें पूर्ण आराम लेनेकी हिदायत भी मिल चुकी थी। लेकिन सतत कार्यमें रत रहनेवाली अुनकी आत्मा भला यह बन्धन कैसे स्वीकार कर सकती थी?

मैंने अुनसे पूछा कि आजकल आप कौनसा साहित्य पढ़ना अधिक पसन्द करते हैं?

"फिलहाल तबीयत ठीक न होनेसे मेरे लिअे लगातार पढ़ना मुश्किल हो गया है।" अुन्होंने जवाब दिया। "फिर भी आजकल मुझे विज्ञान-सम्बन्धी पुस्तकोंमें अधिक आनन्द आता है।"

'विज्ञान सम्बन्धी!" मैं आश्चर्यसे बोल अुठा। अुनका यह जवाब सुनकर मुझे काफी ताज्जुब हुआ। मैंने कहा, "मेरा तो कोअी और ही खयाल था। शायद आप साहित्य-सम्बन्धी बताअेंगे।"

"सच पूछो तो आपको यह सुनकर अजब मालूम होगा कि अुपन्यास तो आजकल मैं किसी भी हालतमें नहीं पढ़ सकता।"

"बहुत खूब!" मैं कह अुठा। शरद् बाबू, कल्पना कीजिअे अेक मनुष्य है, जो असंख्य अुपन्यासोंका लेखक है और हजारों लोग जिसके अुपन्यास दिलचस्पीसे पढ़ते हैं, वह खुद अुपन्यास पढ़ना नापसन्द करता है।"

शरद् बाबूके चेहरेपर अेक हल्की-सी मुसकराहट दौड़ गयी। हमारी बातोंने दूसरा मोड़ लिया। देशकी राजनीतिके बारेमें अुन्होंने मुझसे अनेक सवाल पूछे। अन्तमें मैंने कहा, "शरद् बाबू, मुझे यह जानकर बड़ी खुशी हो रही है कि न केवल अिस देशके, बल्कि विश्वके दूसरे श्रेष्ठ साहित्यकारोंकी भांति आपकी रुचि भी केवल कल्पित विषयों तक ही सीमित नहीं है।"

अुनके मुँहपर सहज अुत्तेजनाका भाव प्रकट हुआ। वे कहने लगे 'मैं तो मानता हूँ कि सच्चा कलाकार कभी सार्वजनिक जीवनसे अलिप्त नही रह सकता। कला-कारकी जिम्मेदारी कुछ कम नही है। हरेक देशके सुन्दर और सुखी भविष्यके निर्माणका कीमती काम तो अुन-अुन देशोंके साहित्यिकों और शिल्पकोंपर ही निर्भर रहता है न? अपनी आँखोंके सामने खड़े कर्तव्यके प्रति अुदासीन रहा जाअे, तो आप कैसे भविष्यकी आशा करेंगे? भारतमाँकी देहपर तो विदेशी शासनकी गुलामीकी बेड़ी पड़ी है। तब क्या हमारे देशके आजादीके आन्दोलनको वेग देना हम सबका कर्तव्य नही है?"

शरद्‌बाबूके साथ बातें करते हुअे मेरे मनमें स्मरण करने लिअे अेक विचार आया। अिस देशकी दुखी प्रजा और अुसकी अभिलाषाओंके साथ तद्रूप हो जानेमें अिस साहित्य-सम्राट्‌की मान-प्रतिष्ठा और गौरवने अुसके मार्गमें कोअी रुकावट नही डाली। अिस देशकी जनताका अेक विशाल समुदाय अुनके प्रति कितने आदर-भावसे देख रहा है। फिर भी अिस कमनसीब देशमें पाश्चात्य संस्कृतिके रंगमें रंगे हुअे कुछ अैसे लोग भी होंगे, जो शायद शरद्‌बाबूसे बिलकुल ही अनभिज्ञ हों। दुनियाकी अनेक भाषाओंमें शरद्‌बाबूकी पुस्तकोंके अनु-वाद निकल चुके हैं। अुनमेंसे कुछकी तो कितनी ही आवृत्तियाँ भी निकल चुकी हैं। अितना ही नही, अिनमेंसे कुछ पुस्तकोंने तो साहित्य-जगत्‌में अद्‌भुत कमाल कर दिखाया है।

व्यक्ति शरद्बाबूका जीवन साहित्यकार शरत्बाबूके जीवनसे जितना ही रसिक और विविधतासे पूर्ण है। शरदबाबूका जीवन यानी सुख दुख और चित्र विचित्र घटनाओंकी अेक अखण्ड परम्परा है।

सत्ताअीस वर्षकी अुमरमें शरदबाबू अपने घरको अंतिम नमस्कार कर चल दिये। घूमते घामते और भटकते भटकते अंतमें वे ब्रह्मदेश पहुंचे। वहां अुनका स्वागत अुनके अेक मौसाने किया। लेकिन शरत्बाबूका भाग्य दो कदम आगे ही रहता था। थोड़े ही दिन बाद अुनके अिस भले मौसाका अवसान हो गया। अिस दारुण परिस्थितिमें अुन्होंने अपनी मौसीका घर त्यागा। फिर वही निरुद्देश्य भटकनेका क्रम शुरू हो गया। भगवान भी अुनको बड़ी कसौटीपर कस रहा था। अिन्हीं दिनों अुन्हें अेक अत्यंत मामूलीसी नौकरी पानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। अिसे पानेमें अुनके अपने मधुर कंठने बड़ी मदद की। शरदबाबू गाने बजानेमें बड़े कुशल थे। कुछ ही दिनोंमें अुन्होंने अेक अच्छे गायकके रूपमें सबके दिल जीत लिये।

श्री अेम के मित्र नामके अेक बंगाली सज्जन तो शरदबाबूपर अितने मुग्ध हो गये कि अुन्होंने अिन्हें अपने पास ही क्लर्कके रूपमें रख लिया। अितने कष्टों और कठिनाअियोंके जीवनके बाद जीवनमें पहली बार अुन्हें यहां गंभीर अध्ययनकी ओर ध्यान देनेका मौका मिला। भीषण दरिद्रताके कारण अुन्हें अपनी कालेजकी पढ़ाओ भरी जवानीमें ही छोड़नी पड़ी थी। अिस सज्जनकी अपनी अेक सुन्दर लायब्रेरी थी। यहींपर शरदबाबूने मिल हर्बर्ट, हेगल, शोपनहोर और दूसरे पाश्चात्य साहित्यिकोंके ग्रंथोंका अध्ययन किया। यहीं अुनकी साहित्य पिपासु आत्मा अपनी प्यास बुझा सकी।

शरदबाबूके पिता भी कोअी कम साहित्य प्रेमिक नहीं थे। अिन्हीं साहित्य प्रेमीके यहां १५ सितम्बर १८७६ को शरद्बाबूका जन्म हुआ था।

शरदबाबूके पिताकी कलमने साहित्यके विविध रूपोंको स्पर्श मात्र किया था। काव्य नाटक छोटी कहानियां और अुपन्यास सभी कुछ अुन्होंने लिखा था। लेकिन सबसे विचित्र बात तो यह थी कि ये सब कृतियां अपूर्ण और साहित्य जगतमें अलभ्य ही था। छात्रावस्थामें बालक शरद अुन सबका पारायण करता। कभी रात वह बिना आंख लगाये बिस्तरेपर पड़ा पड़ा केवल यही बात सोचता रहता कि अिन सब कृतियोंको वह किस तरह पूरा करे। अिस कामसे अुसे अितनी दिलचस्पी हो गयी कि अंतमें वह स्वयं ही लिखने लगा। अुस समय शरदबाबूकी अुम्र केवल सत्रह वर्षकी थी। बंगाल अुन दिनों बाबूवर टागोरके पीछे पागलसा हो रहा था। और यह भावनाशील युवक टागोरकी रचनाओंकी तुलनामें अपनी रचनाओंको थोड़ी भी अुतरती देखता तो तुरन्त अुसे फाड़कर फेंक देता। अुसने लगभग यह निश्चय ही कर लिया था कि जबतक अुसके हाथों टागोरकी सी सुन्दर और कलापूर्ण चीजका सृजन नहीं होगा तबतक वह कुछ भी प्रकाशित नहीं होने देगा। हालांकि वे मित्रोंके सहयोगसे चलनेवाले 'छाया' नामके अेक हस्तलिखित मासिक पत्रमें जरूर लिखते रहे।

शरदबाबूके घरकी भीषण दरिद्रताका और अुनकी करुण स्थितिका अुनके साहित्यिक जीवनपर काफी असर पड़ा था। अेक ओर गरीबी और दूसरी ओर साहित्य सेवा, अिन दोनोंका मेल जीवनमें कैसे साधा जा सकता है! आखिर अेक दिन झगड़ा हुआ और शरदबाबू घरसे निकल भागे। संन्यासीके वेशमें वे गांव-गांव घूमे। अिस घुमक्कड़ जीवनमें अुन्हें अनायास ही समाजके भिन्न भिन्न लोगोंके निकट सम्पर्कमें आनेका लाभ मिला। अुन्हें जनताके गहरे दुख और दैन्यसे पीड़ित हृदयोंको देखने समझने और जानने पहचाननेका सद्भाग्य प्राप्त हुआ। बादमें वे वापस घर तो जरूर आये लेकिन बरसोंतक अुन्होंने हाथमें कलम नहीं ली।

अिन्हीं दिनों अेक असी चमत्कारिक घटना हुअी कि साहित्य जगतमें अकस्मात् शरदबाबूका आविर्भाव हुआ और प्रसिद्धि स्वयं अुनके पीछे दौड़ चली आयी। बात यह हुअी कि रंगूनसे कुछ दिनोंकी छुट्टीपर वे कलकत्ता आये थे। बचपनके साथी अुनसे मिलने आये। अुन मित्रोंने 'यमुना' नामक मासिक पत्रका प्रकाशन शुरू किया था। अिसलिअे अुन्होंने

शरद्‌बाबूसे आग्रह किया कि वे अिस पत्रके लिअे कुछ न कुछ जरूर लिखें। शरद्‌बाबूने तो वर्षोसे हाथमें कलम भी नहीं ली थी। अुन्होंने काफी हीले-हवाले किये। लेकिन सुनता कौन है? अुनकी सारी दलीलें बेकार सिद्ध हुअी। अन्तमें शरद्‌बाबूने अपने वचनके पालनके खयालसे तो नहीं, मगर अिस परेशानीसे बचनेके लिअे अनिच्छासे ही क्यों न हो, अेक कहानी लिख भेजी। यह कहानी 'यमुना' पत्रमें छपी और अुसने बंगलाके साहित्य-जगत्‌में अेक हलचल-सी मचा दी। सभीने यही सोचा कि हो न हो यह कहानी रविबाबूने ही लिखी है। लेकिन जब रविबाबूने स्वयं यह जाहिर कर दिया कि नहीं, यह कहानी मेरी नहीं है, अिसका लेखक कोअी और होना चाहिअे, तब सबको लगा कि बंगलाके साहित्यिकोंमें अेक नये साहित्यकारका जन्म हो चुका है।

अब तो शरद्‌बाबूने अपना ज्यादा-से-ज्यादा समय साहित्य-सर्जनमें ही देना शुरू किया। 'भारती' मासिकमें अुनकी 'बड़ी दीदी' कहानी क्रमशः प्रकाशित हुअी। अुसके सबसे अन्तिम परिच्छेदमें कहानी-लेखकके रूपमें शरद्‌बाबूका नाम प्रकट हुआ। अपने रंगूनके मित्रोंकी ओरसे अिस रहस्यके बारेमें पूछनेपर अुन्होंने यह अुड़ाअू जवाब देकर कि अिस कहानीके लेखक शरद्‌बाबू जरूर हैं, लेकिन वह मैं नहीं, कोअी दूसरे ही हैं, अुन्हें शान्त कर दिया। अैसे थे हमारे शरदबाबू शरमीले और प्रसिद्धिसे कोसों दूर भागनेवाले।

'परिणीता', 'चन्द्रनाथ', 'चरित्रहीन' आदि कृतियाँ अिसी 'यमुना' पत्रमें प्रकाशित हुअी थीं और अितनी लोकप्रियताने साहित्यकार शरद्‌बाबूकी कीर्तिको चार चाँद लगा दिये। सन् १९१३ में अुनका स्वास्थ्य बिलकुल गिर गया और डॉक्टरोंने अुन्हें ब्रह्मदेश छोड़नेकी सलाह दी। अुन दिनों अुनकी मासिक आय सौ रुपये थी। अब अुनके सामने बड़ी कठिन समस्या खड़ी हुअी। अेक ओर भयंकर आर्थिक तंगी और दूसरी ओर डॉक्टरोंकी यह सलाह! स्थायी नौकरीको तिलांजलि देकर वे अनिश्चित भविष्यके गर्भमें कूद पड़े। लेकिन गुरुदासचटर्जी अेण्ड सन्सके प्रकाशकने अिस समय अुनके प्रति बड़ा सौजन्य दिखाया। अुसने अुन्हें प्रतिमास सौ रुपये देनेका वचन दिया। अिस आधारपर शरदबाबू ब्रह्मदेश छोड़कर कलकत्ता आ गये।

कलकत्ता आनेके बाद तो शरदबाबूकी प्रतिष्ठा दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ती गयी। श्री देशबन्धुदासने अुन्हें अपने मासिक पत्र 'नारायण' के लिअे कोअी रचना भेजनेके लिअे लिखा। शरदबाबूने 'स्वामी' नामक कहानी लिख भेजी।

अिस कहानीको पढ़कर देशबन्धुदास अितने खुश हुअे कि अुन्होंने अेक कोरा चेक अपनी सही करके शरदबाबूको भेजते हुअे लिखा कि आपके जैसे अेक अद्वितीय और अप्रतिभ कलाकारकी रचनाकी कीमत आँकनेकी धृष्टता मैं नहीं कर सकता। आप अपनी मर्जीमें आये अुतनी रकम अिस चेकमें भर लीजिअे। दर असल शरद्‌बाबू चाहते तो चाहे जितनी रकम भर सकते थे। लेकिन अुन्होंने केवल सौ रुपये ही लिये। अेक श्रेष्ठ साहित्यकारके नाते अुनकी यह सिद्धि कुछ कम नहीं थी। लोगोंके दिलोंपर अुनकी कहानियोंने कैसा जादू किया था, यह अिस बातका ठोस प्रमाण है।

दो समर्थ साहित्यकारोंकी रचनाओंकी कला, अुनकी शैली और प्रश्नका समग्र दृष्टिसे प्रश्नकरण करनेका तरीका कभी अेक-सा नहीं होता और फिर शरद् बाबूकी शैली तो बिलकुल ही भिन्न प्रकारकी थी। शरद्‌बाबू कहानीका आदि और अन्त कभी पहलेसे निश्चित नहीं करते थे। सबसे पहले वे कहानीकी रूपरेखा तैयार करते। अुसके खास-खास पात्रोंके बारेमें सोचते। और बादमें जीवनका जो रहस्य अुन्हें प्रकट करना होता अुसे प्रकट करते। कभी-कभी तो वे बीचमेंसे ही कहानी शुरू कर देते और कभी कहानीका अन्त पहले लिख डालते। सच तो यह है कि जैसे-जैसे अुनके दिमागमें विचारोंकी तरंग अुठती, वैसे वैसे वे अुसे मूर्त रूप देते जाते। 'चरित्रहीन' अुपन्यास अिसी प्रकार लिखा गया है। अपनी रचनाओंके पीछे शरदबाबू कुछ कम मेहनत नहीं करते थे। शैली तो कहानीकी जान होती है। अपनी शैलीके प्रति वे काफी सावधान रहते थे। लेखन-कार्य अुनके मनसे कोअी सामान्य बात नहीं

थी। अुनकी यह दृढ मान्यता रही कि आत्माको अभिव्यक्त करनेका यदि कोअी सबसे बडा प्रेरक बल है, तो वह है लेखन-कार्य।

अपने जीवनकालमें शरद्बाबूने जितना लिखा है, अुतना शायद बहुत कम लेखकोंने लिखा होगा। यदि अुनके प्रकाशित और अप्रकाशित सभी ग्रंथोंका संग्रह किया जाअे, तो खासा अच्छा संग्रह बन सकता है। बिलकुल सीधे सादे और सामान्य प्रसंगोंको भी अपनी अद्भुत प्रभावशाली शैलीमें पेश करनेका अधिकार तो शरद्बाबूको ही था। अुनके संवादका ढंग सचमुच अनोखा था। व्यंग्य और कटाक्षभी जहां-तहां अुनकी कृतियोंमें बिखरे पड़े हैं।

शरद्बाबूके करीब करीब सारे अुपन्यासोंमें बंगालके सामाजिक जीवनका चित्रण है। बंगाल यानी जमींदारी प्रथाका घर। अुन्होंने अपनी रचनाओंमें बंगालके मध्यम और जमींदारोंके वर्गका ही निरूपण किया है। जमींदारी प्रथाके अनिष्टों, जमींदारोंके जीवनके वैभव-विलासों और छल-प्रपंचोंका चित्रण अुन्होंने अपने विशिष्ट ढंगसे किया है।

विद्वान पुरुषोंकी धुनभी कभी-कभी अुनके जीवनका अेक दिलचस्प विषय बन जाता है। चार्ल्स डिकन्सके बारेमें कहा जाता है कि अुन्ह अपने जीवनके अंतिम वर्षोंमें यह धुन सवार हुअी कि अेक खास कुर्सीपर खास ढंगसे खास टेबलपर जबतक वे नहीं बैठेंगे, तब तक कुछभी नहीं लिख सकेंगे। अेमिल जोलाके बारेमें भी अैसाही कहा जाता है। अमुक आदमीकी तसवीर जब तक अुनकी टेबलपर नहीं होती, तब तक अुनकी कलम नहीं चलती थी। शरद्बाबूके जीवनमें भी कुछ अिसी प्रकारकी विचित्रताअें थीं।

हमेशा लिखनेके लिअे वे सुन्दर और कीमती कागज ही काममें लेते। जाडी, मोटी और तीक्ष्ण धारवाली पेनसे ही वे लिखते। अुनके अक्षर भी बडे सुन्दर थे। हुक्केके बिना तो अुनका काम हो नहीं चलता था। चायके भी व जबरदस्त शौकीन थ। सतान तो अ‍ुन्हें कोअी भी नहीं थी। लेकिन वात्सल्य भावसे पशु-पक्षियोंको पालनेका अुन्हें कुछ कम शौक नहीं रहा।

भारतीय साहित्यमें तो शरद् बाबूका स्थान सर्वश्रेष्ठ साहित्यकारके रूपमें है ही। अितना ही नहीं, विश्व-साहित्यमें भी अुनका स्थान निश्चित हो चुका है। लेकिन भविष्यमें अुनकी कृतियोंका मूल्यांकन कैसा और कितना होगा, यह तो अभी क्या कहा जा सकता है? क्योंकि शरद् बाबूकी आत्मा स्वभावसे क्रांतिकारी नहीं थी। सामाजिक वर्गोंके प्रति अुनका भुकाव अत्यन्त सावधानी भरा है। समाजमें घर कर रहे अनिष्टोंका प्रथक्करण वे अपने ग्रंथोंमें ढंगसे करते हैं। प्रथक्करण करते समय अुनकी कलम भी तेजस्वी बन जाती है। फिर भी प्राचीन कालसे समाजमें रूढ हो गये अिन अनिष्टोंसे आधुनिक युगमें कैसे मुक्त पाया जाअे, अिस बारेमें वे कोअी हल नहीं बतलाते। प्रचलित अनिष्टोंको दूर करनेके लिअे वे भूतकालकी ओर देखते हैं, लेकिन अज्ञान और वहमोंकी जालमें फँसे समाजका जडमूलसे कैसे परिवर्तन हो, अिसका मार्गदर्शन अुनकी कृतियोंमें कहीं भी दिखायी नहीं पड़ता।

बावजूद अिसके शरद्बाबू हमारे देशके गौरव और अेक महान् कलाकार थे। २६ जनवरी, १९३८ को बासठ वर्षकी अुम्रमें अुनका जीवन-दीप सदाके लिअे बुझ गया। अुनके अवसानसे साहित्यके अेक युगका अन्त हो गया।

(अनुवादक : श्री गौरीशंकर जोशी)

[अहमदाबाद

हिन्दी-साहित्यके आदिकालका नामकरण

: श्री महेन्द्र 'राजा', अेम. अे., सा. र. :

स्व. आचार्य रामचन्द्र शुक्लने अपने 'हिन्दी साहित्यके अितिहास'में हिन्दी-साहित्यका आदिकाल सं० १०५० से १३७५ तक माना है और हिन्दी साहित्यके अितिहाससे परिचित जनसामान्य भी यही मानता है। पर पिछले वर्ष प्रकाशित अपने 'हिन्दी-साहित्य' में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीने हिन्दी साहित्यका आदि-काल १००० अि. से १४०० अि. तक माना है। यदि सच पूछा जाये तो अिस कालमें जिन-जिन प्रवृत्तियोंका जन्म हुआ वे विकासको प्राप्त हुअीं अुनका 'बीज-वपन संस्कार' तो अिस कालके पहले ही अर्थात् अपभ्रंश कालमें हो चुका था जैसा कि दसवीं शताब्दीसे पहलेके प्राप्त अनेक अपभ्रंश ग्रंथोंसे पता चलता है। अतः अिस कालको 'आदि काल' कहना भी ठीक नहीं मालूम पड़ता। अिस कालकी प्रवृत्तियाँ तो पूर्व निश्चित योजनाका फल थीं। अंकुर तो कभीका निकल चुका था, साथही पल्लव भी आने लगे थे, अब तो केवल अुसके पुष्पित होने तथा फल लगनेकी देरी थी और यह सब अिस कालमें हुआ। अेक बात हमें नहीं भूलना चाहिअे कि अिस काल तक जो साहित्य हमें मिलता है वह हिन्दीका नहीं अपितु परिनिष्ठित अेवं अुससे कुछ आगेकी अपभ्रंशका है। और अब यह निर्विवाद है कि अिस कालमें जिस साहित्यकी रचना हुअी वह पूर्व निश्चित परम्पराका सुसम्बद्ध रूप है। १० वीं शताब्दीकी भाषाके गद्यमें तत्सम् शब्दोंका व्यवहार बढ़ने लगा था पर पद्यमें तद्भव शब्दोंका ही व्यवहार होता था। अिस कालकी सम्पूर्ण प्रवृत्तियोंमें यह बात विशेष रूपसे लक्षित होती है। अिस कालकी जितनी भी प्रवृत्तियाँ हैं, वे सब प्रत्येक दृष्टिसे पूर्ववर्ती परम्पराका आगेकी ओर बढ़ाव ही हैं, यद्यपि भाषामें नाममात्रका थोड़ा बहुत परिमार्जन आ गया है। अतः अिस कालकी प्रवृत्तियोंको लक्ष्य कर हम अिस कालकी भाषाको परिनिष्ठित अपभ्रंशसे थोड़ा आगे बढ़ी हुअी, परिमार्जित व संस्कारित अपभ्रंश कह सकते हैं, (हिन्दी नहीं।) आगे चलकर अिसी भाषाके क्रमशः विकासने शुद्ध हिन्दीका रूप लिया। हो सकता है कि तत्कालीन भाषाका रूप हिन्दीकी आधुनिक प्रान्तीय बोलियोंमेंसे ही किसीका पूर्व रूप रहा हो।

हिन्दी-साहित्यके आदिकालका अितिहास जाननेके लिअे प्रमुख रूपसे केवल अेक ही अितिहास पुस्तक प्राप्य है और वह है पं० रामचन्द्र शुक्ल लिखित "हिन्दी साहित्यका अितिहास"। पिछले कअी वर्षोंसे स्कूलों, कालेजों अेवं विश्वविद्यालयोंमें यह पुस्तक अेक प्रामाणिक ग्रंथके रूपमें मान्य हुअी है और आगे आनेवाली पीढ़ीने अिसीके आधारपर हिन्दी-साहित्यके अितिहासके विषयमें ज्ञान प्राप्त किया है।

जिस समय शुक्लजीने अितिहास लिखा था, अुस समय नाममात्रके जो थोड़ेसे ग्रंथ प्राप्त थे, अुन्हींको आधार मानकर शुक्लजीने अपने अितिहासका प्रणयन किया था और अुन्हीं ग्रंथोंके आधारपर शुक्लजीने हिन्दी-साहित्यके आदिकालका नाम 'वीरगाथाकाल' रखा था। यद्यपि अुस समय भी कअी अैसे अन्य ग्रंथ प्राप्त थे जो अब काफी प्रामाणिक माने जाने लगे हैं, पर शुक्लजीने अुस समय अुनकी प्रामाणिकतामें सन्देह प्रकट किया था और अिसीलिअे अपने अितिहासके लिखनेमें अुनसे कुछ भी सहायता नहीं ली। तथा कुछ ग्रन्थोंको अुन्होंने साम्प्रदायिक अेवं धर्मप्रचारकका खिताब देकर भी छुट्टी ले ली थी। शेष जिन ग्रन्थोंके आधारपर अुन्होंने अिस कालका अितिहास लिखा था, वे ये हैं— (१) विजयपाल रासो, (२) हमीर रासो, (३) कीर्तिलता, (४) कीर्तिपताका, (५) खुमान रासो, (६) बीसलदेव रासो, (७) पृथ्वीराज रासो, (८) जयचन्द्र प्रकाश, (९) जयमयंक जस चन्द्रिका, (१०) परमाल रासो, (११) खुसरोकी पहेलियाँ और (१२) विद्यापति-पदावली।

अिन ग्रंथोंको आधार माननेमें अेवं अुस समय प्राप्त अन्य ग्रंथोंको छोड़नेका कारण बतलाते हुअे अुन्होंने लिखा था कि केवल अुपरोक्त बारह ग्रंथ ही अैसे हैं जिनसे हमें अपने विवेचनमें सहायता मिल सकती है और हिन्दी-साहित्यके आदिकालका लक्षण-निरूपण अेवं नामकरण हो सकता है। अिन ग्रन्थोंमेंसे अधिकांशको अुन्होंने वीरगाथात्मक बतलाकर अिस कालका नाम 'वीरगाथा-काल' रखा था तथा बाकी ग्रंथोंको अविवेचनीय करार देते हुअे कहा कि अिन पुस्तकोंमेंसे कुछ परवर्ती कालकी रचनाअें हैं कुछ नोटिस मात्र हैं और कुछ धार्मिक अुपदेश विषयक हैं। पर अबतक जो साहित्यिक खोजें हुअी हैं, अुनसे पता चलता है कि शुक्लजीने आदिकालके लिअे विवेचनीय ग्रंथोंके चुनावमें बड़ी भूल की है और जिन ग्रंथोंको अुन्होंने अुस समय प्रामाणिक अेवं असंदिग्ध माना था अुनमेंसे अधिकांश अप्रामाणिक अेवं संदिग्ध होनेसे अविवेचनीय हैं तथा किसी किसीके तो अस्तित्व तकका पता नहीं चलता।

अुपरोक्त बारह ग्रंथोंमेंसे अधिकांशको अविवेचनीय ठहराते हुअे अेवं शुक्लजीकी भूलकी ओर अिंगित करते हुअे आचार्य द्विवेदीजीने बिहार राष्ट्रभाषा परिषद द्वारा आयोजित व्याख्यानमालाके अपने प्रथम व्याख्यानमेंही निर्देश किया था। राजस्थानी साहित्यके अुद्भट विद्वान श्री अगरचंद नाहटा अेवं श्री मोतीलाल मेनारियाके साथही साथ श्री राहुल सांकृत्यायनने भी अुपरोक्त ग्रंथोंमेंसे कुछको अप्रामाणिक अेवं संदिग्ध सिद्ध किया है।

अिस प्रकार वर्तमान खोजोंके अनुसार हम देखते हैं कि मान्य विद्वानोंने यह सिद्ध कर दिया है कि शुक्लजीने हिन्दी-साहित्यके आदि कालके अितिहासके लिअे जिन ग्रंथोंको विवेचनीय माना था अुनमेंसे अधिकांश अविवेचनीय हैं और अुन्हींके शब्दोंमें कहा जाअे तो कुछ पीछेकी रचनाअें हैं, कुछ नोटिस हैं कुछका अस्तित्व तक संदेहजनक है, अेवं कुछ अर्द्ध-प्रामाणिक मानी जाने लगी हैं। केवल पृथ्वीराज रासोकी प्रामाणिकता-अप्रामाणिकताको लेकरही विद्वानोंने जमीन-आसमानके कुलाबे अेक कर डाले थे। जिन धार्मिक अेवं अुपदेशपरक रचनाओंको शुक्लजीने अविवेचनीय मानकर छोड़ दिया था, अुनमेंसे अधिकांश अब विवेचनीय मानी जाने लगी हैं। केवल धर्मोपदेश होने मात्रसेही कोअी रचना साहित्यिक विवेचनके योग्य न समझी जाअे, यह अुचित नहीं जान पड़ता। अन्यथा फिर रामचरित मानस, सूरसागर, रासपंचाध्यायी आदि ग्रंथ भी साहित्यिक विवेचनाके योग्य नहीं रह जाते।

स्व० शुक्लजीके बादकी खोजोंमें अिस 'काल'की विवेचनाके योग्य जो ग्रंथ पाये गये हैं तथा विद्वानोंकी दृष्टिमें जो ग्रंथ विवेचनायोग्य समझे जाने लगे हैं, अुनमेंसे कुछ ये हैं—

सन्देश रासक, भविसयत्त कहा, सणकुमार चरिअु, भावना सार, परमाल प्रकाश, पअुमसिरी चरिअु, तिसट्ठीलक्खण महापुराण, पअुमचरिअु, हरिवंश पुराण, स्वयंभूका रामायण, जसहर चरिअु, णायकुमार चरिअु, प्राकृत पैंगलम्, बौद्धगान ओ दोहा, वर्णरत्नाकर, अुक्ति-व्यक्ति प्रकरण, ढोलामारूरा दूहा, नेमिनाथ फागु आदि ग्रंथोंके अतिरिक्त कुछ पहलेके प्राप्त ग्रंथ भी विवेचनीय हैं।

अुपरोक्त ग्रंथोंके साथही साथ आदिकालके अितिहासपर विचार करते समय आधुनिक लेखकोंके निम्न ग्रंथ सहायक सिद्ध होंगे —मिश्रबन्धु विनोद, हिन्दी साहित्यका अितिहास, काव्य धारा, वीर-काव्य संग्रह, हिन्दी साहित्यका आलोचनात्मक अितिहास, राजस्थानी भाषा और साहित्य, राजस्थानी साहित्यकी रूपरेखा, हिन्दीके विकासमें अपभ्रंशका योग, हिन्दी-साहित्यका आदि काल आदि। अन्तिम दो ग्रंथ काफी महत्त्वके हैं।

अब प्रश्न आता है, अिस कालके नामकरणका। अिस कालके अितिहासके लिअे विवेचनीय जिन ग्रंथोंका अूपर जिक्र आया है अुन्हें देखनेसे पता चलता है कि अिनमें दो प्रकारकी रचनाअें। अेक तो अुपदेशात्मक, धर्म प्रचारक, रहस्यमूलक रचनाअें हैं। दूसरी-चारण कवियोंके-चरित काव्य। अिनके विषयमें आचार्य ह० प्र० द्विवेदीजीने लिखा है कि पहली प्रकारकी रचनाओंमें बौद्ध और नाथ सिद्धोंकी तथा जैन मुनियोंकी रूक्ष तथा अुपदेशमूलक या हठयोग या कर्मयोगकी महिमाका

प्रचार करनेवाली रहस्यमूलक रचनाअें हैं। अिन्हें हम साहित्यके अितिहाससे हटा नहीं सकते। अिन्होंने जितनी दूरतक मनुष्यचित्तको रूढ़िके विचारसे मुक्त करके सहज सत्य तक पहुँचनेमें सहायता की है अुतना दूरतक व सच्चे साहित्यके अन्तर्गत गिने जाने योग्य हैं। दूसरी श्रेणीकी रचनाओंमें राजस्तुति युद्ध और विवाह आदिके वर्णन हैं। अिस श्रेणीकी रचनाओंकी वीर दर्पोक्तियोंमें नवीन काव्य भंगिमाकी ताजगी अनुभूत होती है। हेमचन्द्रके व्याकरणमें ही अिस श्रेणीके वीर दर्पका यह नया स्वर सुनायी देने लगा है। अुसमें नवीन ताजगी ता है ही सहज अकृत्रिम भावनायें अुसमें अपूर्व तेजस्विता भी मिलने लगती है।

यह पहले कहा जा चुका है कि पं. रामचन्द्र शुक्लजीने अुस समय प्राप्त रचनाओंके आधारपर अिस कालका नाम 'वीरगाथा-काल' रखा था। अुनका कहना था कि अुन रचनाओंमेंसे अधिकांश वीरगाथायें हैं। पर अूपर यह बतलाया जा चुका है कि शुक्लजीकी आधारित रचनाओंमेंसे अधिकांश अप्रामाणिक तथा संदिग्ध तथा नोटिस मात्र है, अतः अिस कालका नाम 'वीरगाथाकाल' अुचित नहीं प्रतीत होता। हाँ, यह बात निर्विवाद है कि अिस कालकी रचनाओंमें वीर रसका अपूर्व अेवं नवीन स्वर मिलता है तथा वीर रस प्रधान है, पर दूसरी ओर बौद्ध तथा नाथ सिद्धों तथा जैन मुनियोंकी निर्गुणिया भावापन्न कवितायें भी मिलती हैं। राहुलजीका भी यही मत है और अुपरोक्त दो प्रकारकी (१ सिद्धोंकी वाणी २ सामंतोंकी स्तुति) रचनाओंके आधारपर अुन्होंने अिस कालका नाम 'सिद्ध-सामन्त काल' रखनेका सुझाव दिया। पर यह नाम भी कुछ अधिक अुपयुक्त नहीं मालूम पड़ता। नाम अैसा होना चाहिये कि जिस कालकी सभी प्रवृत्तियोंका अुसमें आभास हो सके। अतः जैबतक आलोचकों, विद्वानों और अिस विषयके अन्वेषकोंकी दृष्टिमें कोअी अन्य अुपयुक्त नाम नहीं आता तबतक हम भी आचार्य ह. प्र. द्विवेदीजीके स्वरमें स्वर मिलाकर यही कहना चाहते कि अिस कालका नाम 'आदिकाल' ही अधिक अुपयुक्त जान पड़ता है।

कुछ विद्वानोंकी दलील है कि यदि कुछ धार्मिक ग्रन्थ प्राचीन कालके मिल गये, तो भी 'वीरगाथा काल' में कोअी आँच नहीं आती। क्या दानवीर, धर्मवीर, दयावीर नहीं होते? पर सच पूछा जाओ तो अुनकी यह दलील थोथी है। माना कि 'दानवीर' आदि भी वीर होते हैं, पर सामान्य व्यवहारमें 'वीर' का अर्थ 'शूरवीर' या युद्धवीर' होता है, अतः "वीरगाथाकाल" यह नाम हमें अुपयुक्त नहीं जँचता।

[बनारस



असम प्रदेश और अुसकी भाषा

:श्री महेशकुमार मूँधड़ा:

भारतके अुत्तरी पूर्वी सीमान्तका प्रदेश आसामके नामसे विख्यात है। तीन तरफ यह पहाड़ोंसे घिरा है– अुत्तरी-पूर्वी भागकी पहाड़ियोंके कारण अुपरी ब्रह्मपुत्रकी घाटी और चीन अेक दूसरेसे अलग होते हैं, पूर्वी दक्षिणी भागकी पहाड़ियाँ अिस प्रदेशको बर्मासे पृथक् करती हैं। अिसके पश्चिममें पड़ता है पूर्वी बंगाल (अर्थात् वर्तमान पूर्वी-पाकिस्तान)। भौगोलिक दृष्टिसे हम वर्तमान आसामके दो भाग कर सकते हैं— ब्रह्मपुत्र या आसाम घाटी अेव सूरमा घाटी। ब्रह्मपुत्र घाटी ही असली आसाम है। यहाँके निवासी खुदको असमिया कहते हैं अेव असमिया भाषा बोलते हैं। देश 'असम' कहलाता है, किन्तु अंग्रेजोंकी कृपासे आसाम हो गया।

विभिन्न अैतिहासिक युगोंमें अिस प्रान्तके नाम अलग अलग रहे हैं। अिसका सबसे पुराना नाम है प्राग् ज्योतिष। रामायण तथा महाभारतमें अिसी नामसे अिस प्रदेशका अुल्लेख किया गया है। रामायणमें लिखा है कि सुग्रीवने सीताको ढूँढनेके लिअे विभिन्न दिशाओंमें बन्दर भेजे थे। कोअी बन्दर यहाँ भी आ पहुँचा। सुग्रीवने अुस समय अिस प्रदेशका परिचय अिस तरह दिया था—

> योजनानि चतुष्षष्टिर्वराहो नाम पर्वतः।
> सुवर्णशृङ्गः सुमहानगाधे वरुणालये॥ ३०
> तत्र प्राग्ज्योतिष नाम जातरूपमयं पुरम्।
> तस्मिन् वसति दुष्टात्मा नरको नाम दानव॥३१
> (किष्किन्धाकाण्ड, ४२ सर्ग।)

महाभारतके सभापर्वमें अर्जुनके दिग्विजयपर अिस प्रदेशके शासक भगदत्तका वर्णन आता है—

> स किरातैश्च चीनैश्च वृत्त प्राग्-ज्योतिषोऽभवत्।
> अन्यैश्च बहुभिर्योध्यैः सागरानूपवासिभिः॥

यहाँ यह कहा जा सकता है कि कुरुक्षेत्रके युद्धके समय अिस राजाने दुर्योधनकी सहायता की थी।

परवर्ती संस्कृत साहित्यमें प्राग-ज्योतिषके अलावा 'कामरूप' शब्दभी अिस प्रदेशके लिअे प्रयुक्त होने लगा। कालिदासने दोनों नाम व्यवहृत किये हैं। प्राचीन कालके अुत्तरी भारतके कितनेही शिलालेखोंमें भी कामरूप शब्दका प्रयोग मिलता है। पुरातत्त्वके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि कामरूप बहुत ही प्राचीन जनपद है। आज तो कामरूप वर्तमान असम प्रदेशका अेक विस्तृत जिला मात्र रह गया है, मगर प्राचीन कालमें अिसका क्षेत्र अिस समयकी अपेक्षा बहुत अधिक विस्तृत था। वर्तमान आसामके अधिकांश भागके अलावा बंगालके जिले कोच बिहार, जलपाअी गोड़ी तथा रंगपुर आदि अुस कालमें कामरूपके अन्तर्गत ही थे। 'कालिकापुराण' (रचनाकाल–सम्भवत दसवी शताब्दी अी) और 'योगिनीतन्त्र' (रचनाकाल–सम्भवतः सोलहवी शताब्दी अी) में प्राचीन कामरूपका भौगोलिक वर्णन मिलता है। अुस वक्त अिसकी पश्चिमी सीमा अुत्तरी बंगालकी करतोया नदी थी।

'कालिका पुराणमें' लिखा है—

> करतोया सदयगङ्गा पूर्वं भागावधिश्रिता।
> यावल्ललितकान्तास्ति तावद्देश पुर तथा॥
> (३८।१२१ अ)

अर्थात् करतोया नामक सदयगंगासे पूर्वकी ओर ललितकान्ता पर्यन्त यह पुर विस्तृत है। (ललितकान्ता दिक्करवासिनीके निकट है।)

'योगिनीतन्त्रमें' प्राचीन कामरूपकी चतुःसीमा अिस तरह दी गयी है—

> "करतोयां समाश्रित्य यावद्दिक्करवासिनी।
> अुत्तरस्यां कञ्जगिरि करतोयास्तु पश्चिमे॥

तीर्थश्रेष्ठा दिक्कुनदी पूर्वस्या गिरिकन्यके ।
दक्षिणे ब्रह्मपुत्रस्य लाक्षाया॰ सगमावधि ॥
कामरूप अिति ख्यात सर्वशास्त्रेषु निश्चित ॥'

"त्रिंशत् योजनविस्तीर्ण दीर्घेण शतयोजनम् ।
कामरूपं विजानीहि त्रिकोणाकार मुत्तमम् ॥
ओशाने चैव केदारो वायव्या गजशामन ।
दक्षिणे सड्गमे देवी लावयाया ब्रह्मरेतस ॥
त्रिकोणमेव जानीहि सुरासुर नमस्कृतम् ।"

अर्थात् कामरूप करतोयासे दिक्करवासिनी तक विस्तृत है। अिसके अुत्तरमें कञ्जगिरि, पश्चिममें करतोया नदी, पूर्वमें तीर्थ श्रेष्ठ दिक्षु नदी और दक्षिणमें ब्रह्मपुत्रा नदी तथा लक्षा नदीका सगम है। अिस सीमाको सभी शास्त्रोंन माना है। अिसका विस्तार तीस योजन और दैर्घ्य अेकसौ योजन है। अिसके औशान कोणमें केदार, वायव्य कोणमें गजशासन और दक्षिणम ब्रह्मरेतस तथा लावधाका सगम है। कामरूप त्रिकोणाकार है।

वर्तमान गौहाटी ही अिस प्रदेशकी राजधानी थी और प्राग-ज्योतिपपुर अिसी गौहाटीका नाम था। मगर तेरहवीं सदीके पिछले भागमें अिस प्रदेशकी राजधानी यहाँसे हटकर आधुनिक कूचविहारसे चौदह मील दक्षिण पूर्वस्थित कामतापुर बना दी गयी। आज कामतापुर अेक ध्वसावशेष मात्र रह गया है। कामरूपमें अुस समय कितने ही भूया सरदाराके दल बहुत शक्तिशाली हो गये थे। व कामतापुरके राजाके अधीन नाममात्रके जैसे ही थे। सोलहवीं सदीमें नर-नारायणने (१५४० औ में गद्दीपर बैठा) कामतापुरसे हटाकर कूचविहारको राजधानी बनाया।

किसी समय कामरूप प्रदेश अिंद्रजालकी विद्याके लिअे विख्यात था। कहा जाता है कि यहाँकी स्त्रियाँ अिन्द्रजाल फैलाकर पुरुषाको वशीभूत कर लेती थीं। कामरूपमें स्त्रियाँ अन्य प्रदेशकी अपेक्षा अधिक स्वतत्र रही हैं। शायद अिसी स्त्री-स्वातन्त्र्यके कारणही यह अन्ध-विश्वास बाहरसे जानेवालोंके दिमागमें पैदा हुआ।

'अिस प्रदेशका आधुनिक नाम यहाँके शान विजेताओंने सम्बोधित बनाया जाता है। सन् १२२८ औ के करीब अुत्तरी पूर्वी सीमा (बर्मा चीन) की तरफसे शान जातिके लोगोने अिस प्रदेशको जीता। कहा जाता है कि अिस प्रदेशपर विजय प्राप्त करनेके बाद अिन लोगोंने 'अहोम' नाम ग्रहण किया और अुसीसे अिस प्रदेशका नाम असम पड़ा। सन् १२२८ औ. से करीब डेढ सौ वर्षोंतक अहोम राजा केवलके पूरबी असममें राज करते रहे। पूरबी असममें जब अिनके पैर जम गये तो अिन्होने पश्चिमकी ओर बढना शुरू किया। अिस देशमें ये लोग वर्तमान बगालकी सीमातक बढ आये। सन् १३७६ औ में पहली बार अिन्हें लखमीपुर और शिवसागरके चुता राजाओंसे घमासान युद्ध करना पडा। कहा जाता है कि यह संघर्ष करीब १२४ वर्षोंतक चलता रहा। १५०० औ के करीब चुता राजाको हराकर अहोमोने शिवसागरमें अपनी राजधानी कायम की। परवर्ती शताब्दियोंके असमका अितिहास काफी हदतक अहोम-शासनकालका ही अितिहास है।

अहोम जिस वक्त आसाममें आये, अुनकी वेश-भूषा, चाल-ढाल और भाषा आदि पराजित प्रदेशके लोगोंसे बिल्कुल जुदा थी। राजनैतिक सत्ता हासिल करनेका जहाँतक सवाल है, अहोम विजयी हुअे। मगर पराजित जनताकी संस्कृति अितनी अुन्नत थी कि विजेताओंको सांस्कृतिक क्षेत्रमें अपनी हार माननी पडी। धीरे-धीरे अहोम भारतीय रगमें रगे जाने लगे और अन्तमें सन् १६५५ औ के करीब अहोम नृपति चुचगफाने हिन्दू धर्म भी स्वीकार कर लिया।

अिस प्रदेशका नाम असम है और अिसी नामसे अुस प्रदेशकी भाषाका नाम असमिया पडा। असमिया मागधी या गौड अपभ्रंशसे सम्भवत निकली है। आधुनिक आर्य भाषाओंमें असमियाका स्थान अेक पूर्ण विकसित भाषाके रूपमें है। मगर अिस भाषाका अपना विशेष रूप किस समयसे शुरू होता है यह कहना बहुत ही कठिन है। तत्सम (सस्कृत) शब्द अिसमें प्रचुर मात्रामें हैं। बगला भाषासे अिसका बहुत अधिक साम्य है। अिन दोनों भाषाओंकी अुत्पत्तिका

योग्य अक होनेक कारण अैसा होना कोअी आश्चर्यकी बात नहीं है।

सातवीं सदीके प्रथमार्धमें कामरूपके राजा भास्करवर्मनके निमन्त्रणसे चीनी पर्यटक हुअनत्साग अुस प्रदेशमें गया था। राजकीय-अतिथिके रूपमें वह कुछ दिन वहाँ रहा। अुसने लिखा है कि कामरूपके लोग अीमानदार नाटे कदके तथा काले रंगके थे। अुनकी भाषा 'मध्य भारत' की भाषासे कुछ भिन्न थी, (The people were of honest ways small of stature and black -looking their speech differd a little from that of Mid India) १

हुअेनत्सागके अिस वर्णन तथा तद्विषयक दूसरी बातोंके आधारपर कुछ विद्वानोंका कहना है कि सातवीं सदी अी में आर्यभाषा अिस प्रदेशमें पहुँच चुकी थी और अुस प्रदेशकी अिस भाषामें तथा तत्कालीन "मध्य भारत" में बोली जानेवाली मैथिली या मागधी भाषामें कुछ फर्क आ चुका था। २

डाक्टर सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या महाशयका मत है कि पन्द्रहवीं सदीके मध्यभाग तककी असमिया तथा तत्कालीन बगला भाषामें नहींके समान फर्क है, दोनों प्राय अक हैं तथा असमियाके विशिष्ट तत्त्व अुस कालकी असमियामें नगण्यसे हैं। अुनके मतानुसार तिब्बती बर्मी अेव शान, प्रभाव तथा दूसरे कतिपय कारणोंसे परवर्ती कालमें असमिया तथा बगलाका पार्थक्य बढा। ३

डाक्टर बाणीकान्त काकतीने कलकत्ता विश्वविद्यालयमें सन १९३५ में पी अेच डी डिग्रीके लिअे असमिया— अुसका निर्माण तथा विकास सम्बन्धी जो निबन्ध (थिसिस) दिया अुसमें असमियाका अन्यान्य भाषाओं भाषाओंसे जो सम्बन्ध है अिसका अच्छी तरह विवेचन किया है। ४ अुनके मतानुसार असमिया बगलासे निकली हुअी नहीं, अेक स्वतंत्र भाषा है जिसका मागधी अपभ्रंशके नाते बगलासे सम्बन्ध है। वर्तमान असमिया दोहाकी भाषाके अधिक निकट है। ('Assamese is not an off shoot or patois of Bengali but an independent speech related to Bengali, both occupying the position of dialects with reference to some standard Magadhan Apabhransa Modern Assamese in certain respects shows a closer approximation to the forms and idioms preserved in the dohas) ५

यहाँ दोहा से मतलब है 'बौद्धगान् ओ दोहा' है। ६ अधिकांश विद्वान अिन बौद्ध दोहोंका रचनाकाल आठवीं से दसवीं शताब्दी मानते हैं।

---

(१) Thomas Watters-On Yuan Chwang s Travels in India (London 1905) Vol II p 186

2 Birinchi Kumar Barua-Assamese Literature. (P E N.) Bombay, 1941 pp 5-6

3 Dr Suniti Kumar Chaterji-The Origin and Development of the Bengali Language. (Calcutta University Press) 1926 Part I p 108-9 (Section. 58)

4 Dr Banikanta Kakati-Assamese, Its Formation and Development (Gauhati 1941) अिस पुस्तकमें देखिअे भूमिका-(B) The Affinities of Assamese Relationship with other Magadhan dialects considered pp. 3-11

5 वही पुस्तक pp 9-10 section 16

६- महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्रीने नेपालमें जाकर बौद्ध गानको दोहाका पता लगाया। अुनके मतानुसार य करीब अेक हजार वर्ष पहलेकी बगला भाषाके नमूने हैं। किन्तु अुनकी भाषा और विषय रूपसे शब्द सगठनको देखकर पूर्वी भारतकी विभिन्न भाषाओंके विद्वान अुन्हें अपनी अपनी भाषाकी रचना बताते हैं

अिस तरह हम देखते हैं कि स्व डॉक्टर काकतीने डॉ सुनीति बाबूके अूपर दिये गये मतको नहीं माना है। डॉक्टर काकतीका कहना है कि बंगला और असमियाका अुद्‌गम अेक है, किन्तु अुनका विकास समानान्तर रूपसे स्वतंत्र पद्धतिमें हुआ। ('. they started on parallel lines with peculiar predisposition and often developed sharply contradictory idiosyncracies ') ७

पहले असमिया कअी लिपियामें लिखी जाती थी। गर्गय, बामुनिया, ल्खारी और कैंथली आदि लिपियाँ प्रचलित थी। बंगालके प्रसिद्ध शहर श्री रामपुरमें छापाखाना खोलनेके बाद असमियामें पुस्तक प्रकाशित होने लगी और तबसे अिस भाषाके लिअे बंगला लिपिमें थोडा संशोधन करके अुसे ही अिस्तेमाल किया जाने लगा।

असमिया साहित्य विशाल है। आधुनिक भारतीय भाषाओंमें अितिहासके ग्रन्थ लिखनेके क्षेत्रमें असमियाकी परम्परा काफी गौरव पूर्ण रही है। कअी शताब्दियोंसे असमियामें बुरुञ्जियाँ (अर्थात् अितिहास) लिखनेकी परम्परा चलती आयी है। ये बुरुञ्जियाँ अभीतक सुरक्षित हैं। अुस प्रदेशका अितिहास जाननेमें अिनसे बहुत सहायता मिलती है।

विभिन्न लेखकोंकी साधनासे असमिया साहित्यकी श्री-वृद्धि हो रही है। हमारे समाजकी प्रगतिके साथ असमिया साहित्यकार भी विकासकी नयी मंजिलें तय करते हुअे निरन्तर प्रगतिकी ओर बढे जा रहे हैं।

[कलकत्ता

७, डाक्टर काकतीकी अूपर लिखित पुस्तक, पृ ७, परिच्छेद १२



बुन्देलखण्डी लोकगीतोंमें शृंगार-सुषमा

: श्री कालिकाप्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर' :

यद्यपि व्रजभाषा और बुन्देलखण्डीमें कोअी विशेष अन्तर नहीं फिर भी कुछ अुच्चारण भेद और शब्दोंके प्रयोगमें कुछ भिन्नता अवश्य पायी जाती है। जिन लोगोंको श्री बनारसीदास चतुर्वेदी और श्री मैथिलीशरण गुप्तसे बातचीत करनेका अवसर मिला है और जिन्होंने बारीकीसे दोनोंकी भाषाओंका अन्तर समझनेका प्रयत्न किया है, वे अिस सूक्ष्म भेदको कुछ-न-कुछ अवश्य समझ गये होंगे। स्वर्गीय कवि मुंशी अजमेरीका कहना था कि बुन्देलखण्डी व्रजभाषासे भी अधिक मधुर है और व्रजभाषाके माधुर्यकी तो चर्चा करना ही व्यर्थ है। व्रजभाषा और बुन्देलखण्डी दोनोंकी अुत्पत्ति शौरसेनीसे हुअी है, जिसे डाक्टर धीरेन्द्र वर्माने शौरसेनी जनपदकी भाषा माना है। केशव और पद्माकरकी कविताओं पर भी बुन्देलखण्डीका प्रभाव पाया जाता है। पद्माकरकी निम्नलिखित सवैया व्रजभाषा और बुन्देलखण्डीकी अेकता समझनेमें सहायक होगी —

जाहिरै जागत सी जमुना, जब बूडै बहै अुमहै वह बेनी।
त्यो 'पद्माकर' हीरके हारन गंगतरंगनको सुख देनी।
पायनके रंगसों रंग जातु है भाँतिहि भाँति सरस्वति सेनी।
पैरे जहाँ ही जहाँ वह बाल तहाँ तहाँ तालमें होत त्रिबेनी।

—जगद्विनोद

व्रजसाहित्य-मंडलके गत मैनपुरी अधिवेशनमें (१० दिसम्बर १९५३) को अपने अध्यक्षीय भाषणमें डाक्टर शर्माने भाषाके अनुसार पाँच जनपदोंका वर्गीकरण बताया था (१) शूरसेन जिसमें व्रज और बुन्देलखण्डी प्रदेश, (२) पांचाल (कन्नौजी भाषाका प्रदेश), (३) कोशल और काशी (भोजपुरी-प्रदेश) और (४) कुरु-जनपद। कुरु-जनपदकी भाषाको छोड़कर प्रायः सभी जनपदोंकी भाषापर व्रजभाषाका प्रभाव अधिक रहा है। अवधी, कन्नौजी और भोजपुरीमें अनेक शब्द और प्रयोग व्रजभाषाके मिल जाते हैं —

भअिअु बिरह अरि कोअिल कागे।
डार डार जो कूकि पुकारी।

—जायसी

डाक्टर वर्माने अपनी पुस्तक 'व्रजभाषाका व्याकरण' में अवधीका वातावरण व्रजभाषासे बहुत भिन्न माना है, परन्तु बात अैसी नहीं है। वे स्वयं अवधीको मध्यवर्ती भाषा मानते हैं और अिस दृष्टिसे देखा जाअे तो व्रजभाषाका प्रभाव अवधीपर किसी न-किसी सीमातक पड़ा ही है। सहायक क्रिया 'ह' को ही लीजिअे व्रजभाषा और अवधी दोनोंमें अिसके समान रूप चलते हैं। अहो, अहै, अित्यादि। संज्ञाके करन धरन, आदि प्रयोग दोनोंमें समान हैं। सर्वनाम भी अेकसे चलते हैं। डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा 'मोर' सर्वनामका प्रयोग व्रजभाषामें नहीं मानते, परन्तु 'मेरे' शब्दका प्रयोग दोनोंमें होता है जैसे —

मेरे बाबुलरे सोनेके दीपककलसा लैहे।
मेरे बाबुलरे नितनितकलसिया फूटती।

(व्रजका अेक लोक गीत)

होतो बिटिया जो मेरे घर केहुराजाघर देति बियाहि।
कुम्भक लौंडी रयहि राजाकी, औ लालनको लेति बचाय।

—आल्हा

आल्हाकी भाषा बैसवाड़ी है, जो अवधीका ही अेक रूप है। 'लौंडा' व्रजभाषामें लावनी' हो जाता है। क्रियार्थक संज्ञा जैसे 'राखब' तथा वर्तमानकालिक कृदन्त, जैसे 'गावत' दोनोंमें अेक से होते हैं। सहायक क्रियाके रूपोंमें भी सादृश्य है। कअी विभक्तियाँ भी अेक-सी हैं। श्री किशोरीदास वाजपेयीने भी अपनी पुस्तक 'व्रजभाषाका व्याकरण' में व्रजभाषाका व्यापक प्रभाव माना है जो अवधीही नहीं कअी अन्य प्रान्तीय भाषाओं पर भी दिखायी देता है। अवधीपर व्रजभाषाका प्रभाव बतलाते हुअे डाक्टर धीरेन्द्र वर्माने व्रजभाषा व्याकरण' में

यह स्वीकार किया है कि "अेक ओर तो अुसम ब्रजभाषाके अनेक रूप मिलते हैं, दूसरी ओर पूर्वी भाषाओंके कुछ चिह्न दिखलायी पड़ने लगते हैं।" वास्तवमें पूर्वी भाषामें जिन्हें डॉक्टर धीरेन्द्र वर्माने ब्रज-साहित्य मंडलके गत मैनपुरी अधिवेशनके अध्यक्षीय भाषणमें कोशल-जनपदके अन्तर्गत माना है, अवधीके द्वारा ब्रजभाषासे भी प्रभावान्वित हैं। भोजपुरीका भी यही हाल है। भोजपुरी 'बाट' धातु अवधीकी ही है। कबीरकी बहुत कविताओंपर भी तो अिस भाषाका प्रभाव भी दिखलायी देता है। अपनी भाषा या बोलीके सम्बन्धमें कबीरका स्वयं कहना है :—

> बोली हमारी पूरबकी हमें लखे नहीं कोय।
> हमको तो सोओ लखे, धुर पूरबको होय।
>
> —हिन्दी कवि और काव्य भाग २

जान बीम्सने रायल अेशियाटीक सोसायटीके भाग ३ सन् १९६२ में लिखा था कि भोजपुरी भोजपुरकी बोली है, जो शाहाबादमें पश्चिमोत्तरमें बसा है। डाक्टर ग्रियर्सनका तो यहाँतक कहना है कि "राजनीतिक दृष्टिसे अिस स्थानका सम्बन्ध संयुक्तप्रान्त (वर्तमान अुत्तरप्रदेश) से होना चाहिअे न कि बिहारसे, यद्यपि आजकल यह बिहारकी सीमाअें है।" (लिंग्विस्टिक सर्वे आफ अिंडिया, भाग ५) अिन अुदाहरणोंसे यह सिद्ध है कि भोजपुरीको भी अवधी और ब्रजभाषाके प्रभावसे मुक्त नहीं रखा जा सकता।

बुन्देलखंडी और ब्रजभाषाके बीचका भेद तो बहुत बारीक है। स्वर्गीय रायबहादुर डाक्टर श्यामसुन्दरदासने अपनी पुस्तक 'भाषाविज्ञान' में लिखा है कि 'यह बुन्देलखंडकी भाषा है और ब्रजभाषा क्षेत्रके दक्षिणमें बोली जाती है। शुद्ध रूपमें यह झाँसी, जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर, ओड़छा, सागर, नरसिंहपुर सिवनी और होशंगाबादमें बोली जाती है। अिसके मिश्रित रूप दतिया, सतना, चरखारी, दमोह, बालाघाट तथा छिन्दवाड़ाके कुछ भागोंमें पाये जाते हैं।' "वास्तवमें सतना और चरखारीकी भाषापर बुन्देलखंडी भाषाका कुछ प्रभाव हो सकता है, परन्तु दतिया, दमोह, बालाघाट जबलपुर आदि तो शुद्ध बुन्देलखंडीके ही क्षेत्र हैं।

ब्रजभाषा-शब्दोंमें पायी जानेवाली ये-औ ध्वनियाँ बुन्देलीमें प्राय ये ओ के रूपमें ही प्रयुक्त होती हैं। शब्दके बीचमें आनेवाला 'ह' बुन्देलखंडीमें अधिकतर लुप्त हो जाता है। कर्मकारकमें ब्रजभाषाका 'को' 'खों' हो जाता है। जैसे 'हम खों'। अनुनासिक शब्दोंका प्रयोग बुन्देलखंडीमें अधिक होता है। अिन्हीं सब कारणोंसे यह अक्सर ब्रजभाषासे भी अधिक श्रुत-मधुर हो जाती है। परन्तु जैसा डाक्टर धीरेन्द्र वर्माने 'ब्रजभाषा' व्याकरणमें लिखा है केवल बुन्देलीमें ही पदों का परो नहीं हो जाता, ब्रजभाषामें भी होता है। हाँ, आपका यह विचार मान्य है कि "दोनोंमें व्याकरण सम्बन्धी अधिक भेद नहीं है केवल दर्शन समूहोंका भेद है।" जो स्वाभाविक भी है।

काव्यमें रस

विभाव आदिके द्वारा पोषित किये मनोमोहक भाव ही रसका रूप धारण करते हैं और विभाव अनुभावके ज्ञानसे ही रसकी अनुभूति अुत्पन्न होती है जिसका सम्बन्ध मानव आत्मासे होता है। अंग्रेजी कवि-कालरिज अिसीलिअे कवि-कल्पनाको आनंदस्वरूप आत्मासे अुत्पन्न मानता था और क्योंकि आत्मा शाश्वत है, अिसीलिअे काव्यकी कल्पनाअें भी शाश्वत सौंदर्यपर निर्भर रहती हैं। यह शाश्वत सौंदर्य ही "चतुर्वर्गप्राप्ति" का साधन बनता है। अिटलीका अभिव्यंजनावादी विचारक क्रोसेने भावों तथा मनोविकारोंको काव्यकी अुक्तिका विधायक नहीं माना, परन्तु अभिव्यंजनाका प्रासाद भावोंकी नींवके बिना नहीं खड़ा हो सकता।

वास्तवमें रूप विधान कल्पनाके द्वारा ही निर्मित होता है अनुभावके व्यापारों तथा चेष्टाओं द्वारा आश्रयको जो रूप प्राप्त होता है, वह कल्पनासे ही मिलता है। अैसी हालतमें काव्यमें कल्पनाका स्थान साधारण नहीं माना जा सकता और काव्यकी अनुभूतिके लिअे कल्पनाका अस्तित्व कवि और श्रोता दोनोंके लिअे अत्यन्त आवश्यक है। प्रत्येक रूप-विधानके आदानसे जिस कल्पनाकी सृष्टि होती है, वह कविके अनुभवोंपर अवलम्बित है।

आधुनिक आलोचक आअी. ओ. रिचर्डसका कहना है कि 'जीवन और कवितामें कोअी भेद नहीं। हमारे प्रतिदिनके भावात्मक जीवन और काव्यमें भी कोअी अन्तर नहीं।" (प्रेक्टिकल क्रिटिसिज्म) काव्यमें प्रयुक्त विभिन्न रस जीवनकी विभिन्न रागात्मक प्रवृत्तियोंके द्योतक हैं, अिसीलिअे काव्यमें अुनकी निष्पत्ति आवश्यक है और अिसीलिअे रस काव्यकी आत्माका काम करते हैं। शृंगार रसका स्थायी भाव रति अथवा प्रेम है, जो संयोग और वियोग दोनों ही अवस्थाओंमें रहता है। वियोगकी अवस्थामें विप्रलम्भ और संयोगकी अवस्थामें संयोग-शृंगार कहते हैं। परन्तु वास्तवमें दोनों अवस्थाओंमें रति या प्रेम स्वयं संयुक्त अनुभूति न होकर अैसा चक्र है, जिसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकारकी अनुभूतियों और भावोंका सम्मिलन होता है। सब प्रकारके भाव वात्सल्य प्रेम और दाम्पत्य प्रेमके अन्तर्गत आजाते हैं और स्थायी भाव आत्मानुरक्तिका साधन है, परन्तु शृंगार रसका स्थायी रति या प्रेम वह वासना नहीं जिसे अिस युगके वैज्ञानिक फ्रायड मानव जीवनमें सबसे अधिक महत्व देते हैं। फ्रायड चेतन मनपर अवचेतनका प्रभाव जबरदस्त मानते हैं, परन्तु भारतीय साहित्यका ध्येय तो अवचेतन मनपर अतिचेतन मनका प्रभाव डालना रहा है और महर्षि अरविन्द तो भविष्यकी कविता से यही आशा रखते थे। परन्तु रीतिकालीन कविताकी भाँति ही शृंगारी लोक-गीतोंमें रस आत्माके चिरन्तन सुखका साधन नहीं बन पाया, यद्यपि अुनमें जीवनका सत्य अवश्य निहित है।

बुन्देलखंडी लोकगीतोंमें शृंगार

संयोग शृंगारमें नायिकाके शृंगारका विशेष महत्व है। अलंकारोंद्वारा सौंदर्यके अुन्हें पक्षीको बाँधकर सोनेके पिंजरेमें रखनेकी कल्पना की जाती है। महाकवि कालिदासकी भाँति 'अियमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी' वल्कलकी तन्वीमें ही शकुन्तलाका रूप लावण्य देखनेकी क्षमता बहुत कम कवियोंमें है। अिसीलिअे सुन्दर कविता और कामिनी दोनोंके लिअे अलंकारोंकी आवश्यकता पड़ी। अेक बुंदेलखंडी गीतमें अैसी शृंगार साधनाका वर्णन करते हुअे लिखा गया है —

अरस (आलों) सेंककअी (कंघी) लअी बेलनमें तेल फुलेल।
पटिया पारीरे माथे पै जैसे नाग लहरिया लेय।
गुथो चुटीला (गुथी चोटी) अैसे रिरकें (खिसके) जैसे कारो
सरक जाय साँप।
माँग भरदअी रे गोरीकी, जैसे मणाका निकर जाय धार।
नाक नथुनियाँ मकबेसर, सोने बेंदा लायो लिलार।
बिंदिया बनारस दमकन लागी, अनवारे लटकरये बार।
सोने सींक सुरमा रचे, जैसे बादर अुठे घन घोर।
पान अंगनिया मुखमें दये कठन हो पीक दिखाय।
दुहरी, तिहरी पचलड़ियाँ, गरेमें परे टकाअुर हार।
का छब बरनो रे गोरीकी गरेमें घूम रही लगवार।

अिसी प्रकार विभिन्न अंगोंके शृंगार वर्णनमें चमत्कार दिखलाया गया, जिसमें काव्यका रूप पक्ष तो है परन्तु आत्मपक्ष नहीं। काव्यकी आत्मा अनुभूति चाहती है जिसका अिस गीतमें अभाव है। परन्तु साज सिंगारका वर्णन गीतमें अवश्य सुन्दर हुआ है और कुछ अुपमाअें तो वैसीही नयी हैं, जैसी आजकलके प्रयोगवादी कवि देते हैं। जैसे —

खिलना खिलनी पिंडरी बनी, जोबनकी शोभा विशाल।
मुदरी कैसी करहा बनी, मानों ढारी चतुर सुनार।

अेक दूसरे गीतमें जिसे होलीके अवसरपर बेड़नियाँ (ग्राम नर्तकियाँ) गाती हैं अिसी प्रकार शृंगारका वर्णन है। अिसमें नायिकाका चित्रण पनिहारिनके रूपमें किया गया है —

चुनरी रंगी रंगरेजने। गगरी गढ़ी कुमार।
बिछिया गढ़ी सुनारने सो दमकत घुंघर बिलार।
बिदुलिया तो लै दअो रसीले छैलने।

अेक नायिका अपने पतिको आँखोंकी ओट नहीं देखना चाहती, अिसलिअे प्रियतमसे कहती है —

प्रीतम प्रीत लगाअिकें चसन दूर नअि जाअु,
बसौ हमारी नागरी, दरसन देदें जाअु
नजर सें टारे टरो नअि मोरे बालमा।

अेक अन्य नायिकाको पति दूर होनेसे अुसके दर्शन ही दुर्लभ हो गये— जिससे वह अपनी देहकी अुपमा पीपरामूलसे देती है, जिसका तात्पर्य यह है कि वह सूखकर दुबली हो गयी है —

सबके सैंयाँ नीरे बसे, मो बोलम (दु खिनो) के दूर।
घरी-घरी पै नाचे हैं, सो है गयी पीपरामूर।

ठाकुर कविने अिसी भावको व्यंजित करते हुअे लिखा कि 'जिन लालन चाहकरी नितहीतिन्है देखिवेके अब लाले परे।" निकटताका अिस प्रकार दूरीमें परिवर्तित हो जाना, वास्तवमें नायिकाके लिअे दुखकी बात है और दुखमें कामिनीका यह अनुराग पूर्व स्मृतियोंके रूपमें छलका पड़ता है।

पारिवारिक जीवनकी छटा

अेक गीतमें पारिवारिक जीवनके दो दृश्य बड़े सुन्दर ढंगसे दिखलाये गये हैं। चार स्त्रियाँ हैं, दो गोरी और दो साँवरी। दो साँवरी परिवारमें तिरस्कृता हैं। अुनका किसीको ख्याल नहीं। गोरी सास और ननद का सुख भोगती हैं। सब शृंगार करती हैं। अुन्हें पतिका प्यार प्राप्त होता है, जब कि साँवरीका पति किवाड़े तक नहीं खोलता और अुसे निराश होकर वापस आना पड़ता है। अुल्लास और निराशाके दो मार्मिक चित्र अिस बुन्देलखंडी गीतमें बड़े सुन्दर बन पड़े हैं। गीत सावनमें ही अधिकतर गाया जाता है —

गुअिया दो गोरी दो सावरी।
गुअियाँ चारअु बजारे जायं, सहेली सावन भरअूलियो।
गुअिया कौने बिसाये कारे कजरवा कौने बिसायेलौजी पान।
गोरी बिसाये कारेकजरवा, संवरी बिसायेलौजी पान।
गुअियाँ दो गोरी, दो सावरी।
गुअिया कौनेखों कजरा खूब लगे, औ कौना खोरचे है तमोर।
गोरीखों कजरा खूब लगे, गुअिया सवरीखों रचे तमोर।
गुअिया दो गोरी, दो सावरी।
पैले औसरे सवरीखो गुअिया, ओरी करत्ने सोरअू सिंगार।
सासो पै मागो करअो री, गुअियाँ ननदी पै माँगो फुलेल।
सासो न दीनो करअो री, गुअिया ननदी न दीनो फुलेल।
गुअियाँ दो गोरी, दो सांवरी।
पिनयाँ लगाय गोरी पटियाँ जोपारी गुमचिनभर लअी माग।
(तेल न मिलनेसे पानीसे पाटीपारी और अँगुरन मिलनेसे लाल-लाल घुघचियोंसे मांगभरी)
अूंची अटरिया चढ़ि गअी गुअियाँ, मोरी लँहै बेला (कटोरा) भरतेल।
खुलोरी किवरियाँ लगलअी गुअियाँ मोरी, जागत सोगये नाथ।
झटक अटरियाँ अुतरी गुअियाँ ठाढे पटक दअो तेल।
गुअियाँ, दो गोरी दो सांवरी।
भोरभये सासे पूछन लागीं, ओरी कसे बितायी सारी रैन।
अिन सिजियन पर्यो पथरारो गुअियाँ, मोरे राजापै पर्यो तुषार।
गुअियाँ दो गोरी दो सांवरी।

यह तो हुअी निराश पत्नीकी बात। अब दूसरी ओर दो गोरियोंके अुल्लास और आनन्दका वातावरण देखिअे —

अिसे औसरे गोरीके गुअियाँ, करलअो सोरह सिंगार।
सासने दीनो करअोरी गुअियाँ, ननदोने दीनी फुलेल।
गुअियाँ दो गोरी दो सावरी।
बेला तेलसे पटिया हो पारी, अीगुर भरलअी माग।
अूँची अटरिया चढ़िगअी गुअियाँ, लयें बेलाभर तेल।
लगी केवरिया खुलगअी गुअियाँ, सोवत जगगे नाथ।
कहाँसो पायेतें गिररअू राजा, कहाँ पलट घर जाअु।
गुअियाँ दो गोरी दो सावरी।
ना तो पायते गिररख धनिया, ना तो पलट घर जाव।
मोरो हमारी पिंडरी री धनिया, बैठो हमारे साथ।
गुअिया दो गोरी दो सांवरी।
भोर भये सासे पूछन लागी। गुअियाँ कैसे बितायी सारी रैन।
अुनसिजिया फुलवा हो बरसे। मोरी राजा पै अुड़िलो गुलाब।
गुअियाँ दो गोरी दो सांवरी।

अेक अन्य गीतमें नायिका पतिसे अपनी ओर अच्छी तरह प्रेमपूर्वक देखनेका आग्रह करती है।

'नजर भर देखना' का अर्थ ही है अच्छी तरह देखना प्रेम पूर्वक देखना है—

नजर भर हेरत काय नजियाँ।
हम तो राजा वनकी हिरनियाँ,
तुम ठाकुरके लरिका।
तुपकनोर मारत काय नजियाँ। नजर भर

संस्कृतके अेक सुप्रसिद्ध आचार्य वामनने रसको गुणका प्रधान लक्षण माना है। अुनके मतानुसार रसकी सहायतासे ही शैलीमें कान्ति प्रकट होती है। यह बात ठीक भी है। कारण शैली, वह परिधान है जो वह शरीर और आत्माके सौन्दर्यपर ही निखरता है। लोक गीतोंमें आत्माका सौंदर्य अधिक व्यापक रूपमें रहता है, अिसीलिअे कभी कभी शैलीमें कोअी विशेष आकर्षण न होते हुअे भी रसका परिपाक शैलीको अुद्भासित कर देता है। अूपर अुल्लिखित अधिकांश गीतोंमें भी शैलीका चमत्कार रसकी स्वाभाविक निष्पत्तिके कारण चटक और चपल दिखलायी पड़ता है।

अेक अन्यगीतमें नायिका नायकको विदेश गमनसे रोकनेके लिअे कितना बनाव तनाव सोचती है। अिस गीतकी नायिका परकीया जान पड़ती है —

जिन जअियो विदेशी दिन थोरो।
दिन थोरोरे। दिन थोरो।
थोरो जियत मुख न मोरो।
अूचे अटा पै पलगा बिछाअभूं।
दुआरे बाँध दो जो घोरो (घोड़ा)
जिन जअियो विदेशी दिन थोरो।

नायिका परकीया सी है ही, कुछ कुछ स्वयं दूतिका सी भी जान पड़ती है। कारण, वह विदेशीको रोकनेके साथ-साथ परिस्थितिको भी समझाती जाती है जिसमें आगन्तुक निश्चित होकर ठहर सके। दरवाजेपर घोड़ा बंधवानेमें भी अिस रसकी परिपुष्टि होती है। क्या कि यदि पति होता तो अुसे घोड़ा बाँधनेका स्थान बतानेकी पत्नीको क्या आवश्यकता पड़ती? अब अेक आगत पतिकी नायिका (जिसका पति आ रहा हो) का अुदाहरण नीचे लिखे गीतमें देखिअे —

रसिया आये गरद अुड़ी गोरी।
जब मोरे रसिया मेड़ पै आये
सूखी दूब हरियानी गोरी,
रसिया आये गरद अुड़ी गोरी।
जब मोरे रसिया कुवना पै आये,
रीते कुअें भरि आये गोरी।
जब मोरे रसिया द्वारे पै आये,
मोतियन चौक पुराये गोरी।
जब मोरे रसिया बखरी (घर) में आये,
सोनके कलश धराये गोरी।

जिस गीतमें नारीके हृदयका अुल्लास बड़े सुन्दर ढंगसे दिखलाया गया है। अुसमें चित्तकी प्रसन्नता चारों ओर स्फुरित है और वह स्वयं स्वागतकी तैयारीमें निमग्न है। सामने अेक चित्र सा खड़ा हो जाता है, जिसे हृदयकी तूलिकासे चित्रितकर जीवनके रंगसे रंगा गया है। असीही अेक आगतपतिकाके हृदयका अुल्लास वर्णन करते हुअे हिन्दीके अेक कविने लिखा है कि 'अँगियाकी तनी खुल जात घनी सो घनी फिर बाँधत है कसिके।' कविकी भावनामें अतिशयोक्ति अवश्य है परन्तु वह नारीके हृदयमें झाँककर अुसके मनकी अुत्फुल्लताको अवश्य सफलताके साथ व्यक्त कर सका है।

अेक अन्य बुंदेलखंडी गीतमें जो ढीमरोंकी तरफ गाया जाता है, नारीकी पतिप्रणयता तथा सतीत्वका सुन्दर ढंगसे प्रकटीकरण हुआ है। नारी कुअेंपर पानी भरने गयी। पतिके विरहके कारण दुबली हो गयी है, अिससे अुसकी चोली ढीली पड़ गयी है और हार भी ढीले पड़ते हैं। अुसे देखकर अेक धोबी प्रलोभनों द्वारा फुसलाना चाहता है परन्तु सतीका सतीत्व जाग्रत हो जाता है, और वह धोबीको अच्छी डाँट बताती है। अुसे देवरके आनेपर बेरीके पेड़से बचानेको कहती है —

अहो रतन कुआं मुख साँकर, अलबेली भरै पनिहार।
अरी अरी कुअनाकी पनिहारी, काहे ठाढी बदन मलीन।
के तेरो हार कुअना गिरो, अरी के तेरो बिछुरी पनिहार।
ना मेरो हार कुअना गिरो अरी न बिछुरी पनिहार।
कहरा तो ल्यावै लरका बरजीवै कहरा लिवावै पनिहार।

[शेषांश पृष्ठ ६२ पर]

सम्पादकके नाम अेक पत्र

[कभी-कभी मेहमान और मेजबान, दोनों आनेवाले और बुलानेवाले, परेशानीका शिकार बनते हैं, हंसी भी आती है और पश्चात्ताप भी होता है। जिनका दर्शन अिस लेखमें कीजिअे। —सं०]

आतिथ्य धर्मकी पराकाष्ठा

मित्रवर श्री पन्नालालजी शर्माका अेक पत्र है। भारतवर्षके अेक बड़े शहरसे, जहां हिन्दी, मराठी, गुजरातीकी त्रिवेणीका संगम है, बंबअी मत समझ लीजिअेगा अिस शहरको, यह मजेदार पत्र आया है। पत्रमें 'राष्ट्रभारती'के पाठकोंको देखने मिलेगा कि किसी लब्धप्रतिष्ठ साहित्यिक व्यक्तिको अपने यहां किसी समारोहमें बुलाते हैं तो कभी-कभी अुत्साहके मारे हम अितने आत्मविभोर, आत्मविस्मृत हो जाते हैं कि हमारा आतिथ्य-धर्म पराकाष्ठाको पहुँच जाता है। 'पराकाष्ठा' का अर्थ होता है चरमसीमा। तो सचमुचमें अैसाही अेक प्रसंग है जब .....में, स्वेच्छासे नहीं किन्तु स्वांतः सुखाय अिसलिअे कि अुसमें बहुजन-सुखायकी भावना निहित है—अिस भावनाको लेकर कोअी ख्यातिप्राप्त साहित्यकार या कलाकार निमंत्रित होकर आया करता है, आगत व्यक्तिकी मेहमानदारीका हमने मूर्धाभिषेक कर डाला। तो पढ़िअे :—

मराठी साहित्य-जगत्में प्रसिद्ध अेवं लब्ध-प्रतिष्ठ विदुषी लेखिका श्रीमती मालती दांडेकरको अबकी बार हमने व्याख्यान देनेके लिअे बुलाया।

"हमारे जीवनकी कुछ समस्याअें"—विषयपर आप बोलने आ रही थीं, सो अेक्सप्रेससे वे यहां आ रही थीं। स्टेशनपर अतिथिकी अगवानीके लिअे जाना पहला धर्म है। मैं स्टेशन पहुँचा। सोच रहा था कि न जाने वे स्वभावसे कैसी होंगी, किस वेश-भूषामें होंगी, क्या खाती-पीती होंगी, कैसे अुन्हें पहचानूंगा, कैसे बातचीतका सिलसिला शुरू करूंगा। अैसे विचार बार-बार मनमें चक्कर काट रहे थे कि गाड़ी दनदनाती आकर प्लेटफार्मपर रुकी। मैं कुली-हमालको लेकर अिधर-अुधर दौड़ने लगा और अिस धक्कापेलमें न जाने कितने अन्य लोगोंसे टकराया और कितनोंके होल्डालोंपर लड़खड़ाकर गिर पड़ा। सचमुच अिस समय मेरी जो स्थिति थी वह बड़ी करुण अेवं मजेदार ही थी। सोच रहा था, कहीं वे प्लेटफार्मसे निकल न जाअें, क्या सोचेंगी कि यहांके व्यवस्थापक कितने व्यवहार-शून्य, असभ्य हैं आदि-आदि......। किसी प्रकार सेकंड क्लासके डिब्बेके पास पहुँचा तो अेक स्वस्थ सुन्दर भद्र महिला अठारह हाथकी महाराष्ट्रीय साड़ी पहिने अपने सामानको डिब्बेसे अुतारती हुअी दिखाअी दी। मेरे मनने कहा, हो न हो यही श्रीमती दांडेकर हैं! किन्तु नाम पूछनेपर तो अजीब-सा लगेगा। क्या सोचेंगी कि मुझे पहचानते भी नहीं! अितनी बड़ी, मराठी साहित्य-मन्दिरकी आराधिकासे कैसे पूछूं कि, क्या आपही मालतीबाअी दांडेकर हैं? लेकिन नहीं पूछता हूं; तो कामही कैसे चलेगा। कुछ सूझताही नहीं कि क्या युक्ति की जाअे, बुद्धि जवाब दे चुकी है। मेरे मनमें अिन सारे विचारोंकी शृंखला अेक मिनटमें जुड़ गअी और बादमें साहस बटोरकर मैंने कह ही तो दिया कि 'क्या आपही श्रीमती मालतीबाअी दांडेकर हैं?' परन्तु न जाने क्यों शब्द अितने धीरे निकले कि मैंने स्वयंही नहीं सुना कि मैंने क्या पूछा है। परन्तु बिल्लीके भाग्यसे छींका टूट गया, अुन्होंने शीघ्रतासे कहा 'जी, मैं मालती दांडेकर हूँ।' अुन्होंने जो अुत्तर दिया अुससे प्रगट था कि केवल मैं ही अुन्हें खोज रहा हूँ सो बात नहीं, वे भी मुझे खोज रही थीं और जो समस्याअें मेरे सामने थीं ठीक वे ही अुनके सामने भी थीं। अस्तु, कुलीने अुनका सामान अुठाया और हमारी मोटरके केरियरमें रख दिया और हम लोग निर्धारित निवास-स्थानपर पहुँचे। अुन्हें जहां ठहराना था वहां अुन्हें छोड़कर हमलोग मोटर लेकर

चले आये और कह दिया अपने अतिथिसे कि हम लोग भाषणके पन्द्रह मिनिट पहले अुन्हे लेने पहुँच जायेंगे।

× × ×

लौटते समय कार्यवश अनेक स्थानोंपर भटकने हुअे तीन घंटे बाद जब कार्यालय पहुँचा तो देखा अेक अजीब-सी हलचल-खलबली सी मची हुअी है मुझे देखतेही लोग मुझपर टूट पडे, जैसे निगल जाना चाहते हो। चिल्लाने लगे, 'सेक्रेटरी बने फिरते हैं यहाँ फोनपर फोन आ रहे है बेचारी ४०० ५०० मीलोंसे सफरसे आयी हैं विदुषी हैं स्त्री है, अरे जब किसीकी योग्य व्यवस्था और सम्मान नही कर सकते थे तो बुलाते क्यो हो इज्जत मारने ? वह अितनी बडी मराठी जगतकी भद्र महिला है कि क्या कहेगी, अेककी गलती होती है लेकिन बदनामी तो सभीकी होती है।'

मै असमंजसमें पड गया कि आखिर हो क्या गया! सही सलामत घंटे दो घंटे पहले मै ही पहुँचाकर आया हूँ, फिर फोनसे अैसी कौनसी दुर्घटना सुनायी जा रही है। मैने तो अैसा कोअी असभ्य व्यवहार नही किया। मराठी भाषा और रीति-नीतिका पूरा मर्मज्ञ न होनेके कारण तो मैने अुनसे पूरी बातचीत भी नही की, फिर यह क्या बला है। मैने अुनसे पूछा— अरे भाअी क्या हो गया, कुछ बोलो तो?'

वे सभी अेक साथ कहने लगे "अरे अिससे बढकर किसी बुलाये हुअे आगत अतिथि सज्जनकी क्या हँसी हो सकती है, तीन घंटेसे बेचारी बैठी हैं परेशानीमें। तुम किसीकी परवाह तो करते नही, अपनेमें फूले फिरते हो? अब तो मै कांप गया, सोचा हो न हो कोअी अप्रत्याशित घटना अवश्य घटी है। लेकिन मै देखता लोग कुछ कह भी नही रहे हैं। मै चिढ-सा गया और पूछा—'क्या हो गया है अैसा, जो घंटे भरसे सारा ऑफिस सरपर अुठा रखा है?' वे सब साश्चर्य कहने लगे 'अरे तुम्हे मालूम नहीं जिस मोटरमें तुम मालती बाअीको स्टेशनसे लाये थे, अुसके कैरियरमें अुनका बिस्तरा और पेटी रखी है, बेचारी बिना नहाये धोये अपने सामानकी प्रतीक्षामें बैठी हैं। फोनपर फोन आ रहे हैं पर तुम्हारा तो पता तक नही, कुओमें बाम डाले गये। सन्देश भी दें तो कहाँ दें! क्या तुमने अुनका सामान अभीतक नही पहुँचाया?'

× × ×

श्रीमती मालतीदेवी दाडकरका भाषण सभा-भवनमें हुआ और शानदार हुआ। सामान घंटे दो घंटे तक खो जानेसे हुअी अनुभूतिसे अुनके 'मूड'को अेक नया कल्ट मिला था जिससे अुन्होने अपने भाषणमें कहा हम कभी-कभी सामयिक छोटी-छोटी चिन्ताओंमें अितने व्यग्र हो जाते है कि हमारे जीवनकी महत्वपूर्ण समस्या छोटी और क्षणिक चिंता ही बन जाती है, परन्तु अैसा होना नहीं चाहिअे। भाषणके बाद श्री॰ग्रन्थुतेताअीसे साहित्यके विषयमें मन खोलकर चर्चा की। अुन्होने लिखी हुअी पचीसों पुस्तके देखी है, जिनमें मराठी लोकगीतो के संग्रह कहानी संग्रह, बालकथाअें और सामाजिक पारिवारिक अुपन्यास थे। मैने पूछा 'आप अपनी सबसे अच्छी रचना कौनसी समझती हैं और वह क्या?'

अुन्होंने कहा मुझे मेरी सबसे अच्छी रचना 'संसारमें पदार्पण' लगती है, जो अेक पारिवारिक अुपन्यास है और अिसलिये अच्छा अुपन्यास है क्योंकि अुसकी नायिका अेक आदर्श नायिका है— जिसकी आवश्यकता आज गृहस्थीके भारसे झुके हुअे और कुरीतियोंसे ग्रसित प्रत्येक भारतीय परिवारको है।' मैने फिर पूछा क्या आपने सिनेरियो लिखनेका प्रयत्न कभी किया है?' वे बोली 'मैंने पचासों कहानियाँ और दर्जनों अुपन्यास लिखे हैं, अुनपर कभी चलचित्र बनाये जा सकते हैं। कुछ फिल्मवालोंने अिस विषयमें मुझसे बातचीत भी की थी लेकिन मेरी अपनी शर्ते है कि, मेरी नायिका भद्दे ढंगसे न नाचेगी, न गायेगी; वैसा आचरण और बातचीत भी नहीं करेगी जो पुस्तकमें न हो या जो मै नहीं चाहती हूँ। यही वजह है और मुझेभी हिचकिचाहट है कि अबतक मेरी किसी भी रचनापर फिल्म नही बन सकी। और हम आये-दिन देखते हैं कि ये फिल्म निर्माता अच्छीसे अच्छी कलाकृतिको बिगाडकर बाजारू चीज बना देते हैं। सच्चे साधक कलाकारको कितनी ठेस लगती है!'

श्रीमती मालतीबाअी दाडेकरजीसे, अन्तमें मैंने क्षमा मांगते हुअे कहा कि आज आपको मैंने बेहद तकलीफ पहुँचायी! भूलसे सामान मोटरमें मेरे साथ चले जानेसे आपको जो घोर असुविधा हुअी, कष्ट हुआ, मैं दुखी हू—शर्मिन्दा हूँ। लेकिन यह आजकी घटना भी अीश्वरेच्छा थी।

'अीश्वरेच्छा' शब्द सुनते ही वे खिलखिलाकर हँस पडी और बोली कि "आप अीश्वरकी वकालत क्या करते है। हमें प्रत्येक और प्रतिक्षण घटनेवाली घटनासे लाभ अुठाना चाहिअे। वैसे मेरे सामने आजकी यह 'सामान्की दुर्घटना" अपने आपमें अेक कहानीका मजेदार प्लॉट है।



सारस्वत धर्म

: श्री अुमाशंकर जोषी :

[गुजराती]

आपणा देशनी जुदी-जुदी भाषाओना साहित्यकारोने मळवानु थाय छे त्यारे अेकमेकना कार्यने भले अोळखता न हता पण बधा जेवा अेक रीते ज आणे अंधकारमा मार्ग (Groping) करी रह्या हता तेनु भान तो तरत थाय छे ज। आपणा देशनी जनतानी अनगंळ सहनशक्तिने अने अेनी मूगी आशा आकांक्षाओने वाचा आपी शके अेवा अुचित साहित्यस्वरूपोनी खोजनो अणसारो पण मळी रहे छे। पण ते छता मुख्यत्वे वातो साहित्यआयोजना (टेकनिक) अंगे घणी चर्चा तो चाले छे। साहित्यना माणसो घणु खरु दुनियानी घटनाओमां सीधा सडोवायेला नथी होता, पण अेनो अर्थ अे नथी के तेओ चंदनमहेल (Ivory tower) मां रहे छे। देशनी अटपटी विटंबनाओनो ख्याल पटुकरण गणाता आ वर्गने बेचेन बनाव्या वगर रहे अे केम बने? जीवन केम वधु अुन्नत बने, वधु समर बने अे माटे अे पण सळगी रह्या होय छे।

सरस्वतीके अुपासकोंका धर्म

: अनुवादक : श्री गौरीशंकर जोशी :

(हिन्दी)

हमारे देशके भिन्न-भिन्न भाषाओंके साहित्यकार जब कभी कहीं मिलते हैं, तब वे भलेही अेक-दूसरेको या अेक-दूसरेके कार्यके बारेमें न जानते हों, फिर भी अिसका तो तुरन्त खयाल हो ही आता है कि सब मानो अन्धेरेमें अेक ही जैसे रास्ता टटोल रहे थे। साथ ही साहित्यके अैसे स्वरूपोंको खोजका संकेत भी मिल जाता है, जो हमारे देशकी जनताकी असीम सहनशक्ति और अुसकी मूक आशा-आकांक्षाओंको वाणी दे सके। बावजूद अिसके यह बात नहीं कि अुनके बीच केवल साहित्यकी आयोजना (टकनिक) या साहित्य-सर्जन सम्बन्धी ही विशेष बातें होती हों। देशके महान प्रश्नों और मानव-जातिकी समस्याओंके बारेमें भी अुनमें काफी चर्चा होती है। अक्सर साहित्यिक लोगोंका दुनियाकी घटनाओंसे कोअी सीधा सम्बन्ध नहीं होता, वे स्वयं अुनमें फँसे हुअे नहीं होते; लेकिन अिसका यह अर्थ नहीं कि वे कहीं दूर किसी अेकान्त चन्दन महल (Ivory tower) में रहते हैं। देशके जटिल प्रश्नों और दुखका खयाल संवेदनशील माने जानेवाले अिस वर्गको बेचैन किये बिना कैसे रह सकता है? -जीवन किस प्रकार अधिक अुन्नत और श्री-सम्पन्न बने अिसके लिअे अुनके मनमें भी आग सुलग रही होती है।

पण साहित्य अने कलाना अुपासकोनी साधना अलग प्रकारनी होय छे। लोकजीवनमां मूळियां नाख्या वगर अे जीवी ज न शके, पण जगतना रागद्वेषो थी पूर्णपण लिप्त थवु अेमन पालवे नहि। दुनियामा क्लेशो तो अुकळता होय छे। क्लेशोने चकरावनाराओनी कमीना होती नथी। सरस्वती के अुपासको तो अे क्ले शोनी अन्दर स्फुरी रहेला मवादिताना बीजने पोषवा मथी रहेला होय। सारस्वतोनी आ सवादितानी साधना घेलछाभरी आदर्शमयता नथी। विश्वप्रेममां, व्यवहारमां अेनो अुपयोग छे। समाजमां अेवी व्यक्तिओ के व्यक्ति मंडळो जोअीअे ज समाजना वारे वारे पलटाता राग द्वेषोने वश न थाय अेटलुज नहि वखत आव्ये समाजनी सामे अूभा रहीने पण अेने अेनो कल्याण-मार्ग चींधी शके। वाल्मीकि न होत तो सीता क्यां जअीने रहेत ? वाल्मीकि न होत तो सीतानो स्वीकार करवा माटे अयोध्याना लोकोने दम भीडीने कोण कहेत ? आपणा देशनो अितिहास जोअीशु तो जणाशे के व्यवहारना राजकारणना माणसोअे देशने घणु छिन्न भिन्न राख्यो, ते छतां दुनियाने अचबो अुपजावे अेवा विरळ आंतरअेक्ता आ देशमां शी रीते घूटाअी अने देशनी पडती वेळा आवी तोये टकी रही ? देशनी आवी अेक्तानी साधनामां सारस्वतोनो मोटो फाळो छे।

अे धर्म बजावनानी जरूर अत्यारे ओछी छे अेम मानवानु नथी। बलके आजनी घडीअे सारस्वतोअे व्यक्ति तरीके तेमज मंडळो तरीके अेकता अने सवा दितानी पोतानी साधना वधु सक्रिय बनाववानी जरूर छे। राजकारणना माणसो आ साधनानु गौरव आपो आप समजी शके अेवी शुद्ध अने असरकारक पण अे होवी जोअीअे। दुश्यन्त कण्वना तपोवनमां 'विनीत वेश' मां जवानु विचारे छे। धनके सत्ताना माणसो सारस्वत मंडळोमां 'विनीत वेशे' आवे अेटलो अे मंडळोअे पोतानो प्रभाव प्रगटाववो जोअीअे। पोते अेमना वर्चस् नीचे तो हरगीज न आवे।

लेकिन साहित्य और कलाके अुपासकोंकी साधना कुछ भिन्न प्रकारकी होती है। लोकजीवनमें जड जमाये बिना तो वे जिन्दा ही नहीं रह सकते लेकिन दुनियाके राग द्वेषामें पूर्णरूपसे लिप्त हो जाना अुन्हे नही पुसा सकता। क्लेशोंका अुफान तो दुनियामें निरन्तर चलता ही रहता है। क्लेशोंको अुभाडने वालोंकी भी कोअी कमी नही होती। सरस्वतीके अुपासक तो अुन दुखोंके भीतर खिल रहे सवादिता (हार्मनी) के बीजके विकासके लिअे प्रयत्नशील होते हैं। सरस्वतीके अुपासकोंकी सवादिताकी यह साधना कोअी पागल आदर्शवादिता नहीं। विश्वप्रेम और व्यवहारमें अुसका अुपयोग है। समाजमें अैसे व्यक्ति या व्यक्तियोंके समुदाय होने चाहिअे, जो समाजमें दिन प्रतिदिन बदलते रहनेवाले राग द्वेषोंके वश न हो। अितना ही नही, बल्कि समय आनेपर वे समाजके खिलाफ खडे होकर अुसे कल्याणमार्ग भी बता सके। वाल्मीकि न होते तो सीता कहां जाकर रहती ? वाल्मीकि न होते तो सीताको स्वीकार करनेके लिअे अयोध्याके लोगोंसे खम ठोककर कौन कहता ? हमारे देशका अितिहास देखेंगे तो पता चलेगा कि व्यावहारिक-राजनैतिक पुरुषोंने देशको बहुत कुछ छिन्न विछिन्न हालतमें रखा, फिर भी दुनियाको अचम्भेमें डाल देने जैसी विरल आंतरिक अेकता अिस देशमें कैसे मजबूत बनी, जो देशके पतनके समय भी टिकी रही ? देशकी अैसी अेकताकी साधनामें सरस्वतीके अुपासकोंका काफी बडा हाथ रहा है।

यह न माना जाअे कि आज अिस धर्मपर चलनेकी कोअी कम जरूरत है। बल्कि आज तो सरस्वतीके अुपासकोंको व्यक्तिगत रूपमें और अिसी प्रकार मण्डलोंके रूपमें अेकता और सवादिताकी अपनी साधनाको और भी अधिक सक्रिय बनानेकी जरूरत है। वह अितनी शुद्ध और असरकारक होनी चाहिअे कि राजनैतिक पुरुष अिस साधनाका गौरव अपने आप समझ सके। दुष्यन्त कण्वके तपोवनमें 'विनीत वेश' में जानकी सोचता है। अिन मण्डलोंको भी अपना अितना प्रभाव दिखाना चाहिअे कि धन और सत्तावाले आदमी सारस्वत मण्डलोंमें 'विनीत वेशे' आअें। वे स्वय अुन धन और सत्तावालोंके वर्चसके नीचे तो कदापि न आअें।

भक्त सोहिरोबानी नीचेनी (मराठी) पंक्तियो मानी भावनामा आ सवादिता अने अेकता स्थापता धर्मनी चावी छे

आम्हो न हो पाचातले, न हो पचवीसातले,
या सर्वांहि वळखुनिया आम्हो आतले आतले हो।
आम्हो न हो लक्षातले न हो पक्षातले,
या सर्वांहि वळखुनिया असू अलक्षातले हो।
आम्हो न हो मंत्रातले, न हो तंत्रातले,
या सर्वांहि वळखुनिया नसू मायेच्या यंत्रातले हो।

—अमे नथी पांचमाना, नथी पचीसमाना अे बधाने ओळखी लअीने अमे अन्दरना छीअे। अमे नथी लाखमाना, नथी पक्षमाना, अे बधाने ओळखी लअीने अलक्ष्यमाना छीअे, नथी मंत्रमाना क तंत्रमाना, अे बधाने ओळखी लअीने मायाना यंत्रमाना रहया नथी।

भक्त सोहिरोबाकी निम्नलिखित मराठी पंक्तियोंमें अिस अेकता और सवादिता स्थापित करनेवाले धर्मकी कुंजी है —

"आह्मी न हो पाचातले, न हो पचवीसातले,
या सर्वांहि वळखुनिया आह्मी आतले आतले हो।
आह्मी न हो लक्षातले, न हो पक्षातले,
या सर्वांहि वळखुनिया असू अलक्षातले हो।
आह्मी न हो मंत्रातले, न हो तंत्रातले,
या सर्वांहि वळखुनिया नसू मायेच्या यंत्रातले हो।"

—हम न पांचमेंसे हैं, न पचीसमेंसे, अिन सबको पहचानकर हम अन्दरके हैं। हम न लाखमेंसे हैं, और न पक्षमेंसे. अिन सबको पहचानकर हम अलक्षमेंसे हैं। हम न मन्त्रमेंसे हैं और न तंत्रमेंसे, अिन सबको पहचानकर हम मायाके यन्त्रमेंसे नहीं रहे।

[पृष्ठ ५७ का शेषांश]

कौनकी चोलिया मसाने (ढोली) भओ, कौनके ढीले भये हार।
तेरे पानको चाबें हैं रसिया चोलीपें परिगओ पीक।
अरे,अरे भजिया धोबियारे मेरी चोलीको दाग छुटाव।
जो तेरी चोलीको दाग छुटै हैं, हमको कहा तुम देउ।
तोरी देहों हाथकी मुंदरी और हियें कौहार।
तिलपर कोरि हैं तोरी मूंदरी, समद (समुद्र) बआलूं तेरो हार।
लेहो ओ लेहो तेरी चोली लेहो मैं पियको सिंगार।
डाढ़ी जारो तेरे बापको तेरी मूंछ नो देअूं अंगार।
जबघर आवे बारे लछमन देवरा तोहें विरियासे देहो बँधाय।

श्री देवेन्द्र सत्यार्थीने अपनी पुस्तक 'बलाकूले आधीरात'की प्रस्तावनामें लिखा है कि 'लोक गीतके स्वर सुदूरसे आते हैं। आते ये स्वर कहाँसे फूट पड़ते हैं। युग-युगकी पीड़ा-वेदना, युग-युगकी हर्ष श्री, रीति नीति, प्रथा गाथा, जचूक सहज रूढ़िबार्ता भौगोलिक अेव वातावरण निर्मित संस्कृत परम्परा ये सभी अिन स्वरोंमें अपने नाम, धाम अथवा वेश आदिका परिचय देती प्रतीत होती हैं।" यही कारण है कि लोक-गीतोंमें हम व्यक्ति और समाजके जीवनका सच्चा चित्र पाते हैं, जो हमको केवल भाव-जगत्में ही परिचित नहीं कराता परन्तु अुस वास्तविक जगतसे परिचित कराता है जो कलामें यथार्थकी अभिव्यंजनाकर आदर्शकी ओर बढ़ता है।

[वर्षा



[सूचना—'राष्ट्रभारती' में समालोचनार्थ पुस्तकोंकी दो-दो प्रतियाँ ही सम्पादकके पास आनी चाहिअे।]

आँखोंमें—[लेखक—हरिकृष्ण 'प्रेमी', प्रकाशक—आत्माराम अेंड सन्स, दिल्ली, पृष्ठ-सख्या ११०, मूल्य २।)]

हृदयकी अनुभूतियाँ जब सरस शब्दावलीका सहारा लेती हैं तब कविता स्वयं अुपस्थित हो जाती है। प्रेमानुभूतिसे प्रेरित काव्यही संसारके साहित्यमें सबसे अधिक है। महाकवि अकबरने ठीक ही लिखा था कि—

> अिश्कको दिलमें जगह दे अकबर
> शायरी इल्म अक्लसे हुआ करती है?

प्रस्तुत पुस्तक "आँखोंमें" अेक 'प्रेमी' के विरह विदग्ध हृदयकी वेदना, प्रेम, कसक, मादकता, करुणा और न जाने अन्य कितनी कोमल भावनाअें अक्षरोंसे पीठ पर्डी होकर पाठकको भाव-विभोर बनाती हैं।

'आँखोंमें' पुस्तकके रचयिता श्री हरिकृष्ण प्रेमी हिन्दीके प्रसिद्ध नाटककार हैं, किन्तु सत्य यह है कि वे नाटककारसे पहले कवि हैं। हिन्दी साहित्यके क्षेत्रमें वे पहिले कवि रूपमें ही प्रकट हुअे थे, बादमें अुन्होंने अनेक सुन्दर नाटक लिखे हैं। अिन नाटकोंमें भी अिनका कवि रूप छिप नहीं सका है।

"आँखोंमें' प्रेमीजीके यौवन-कालकी सरस रचना है, जिसमें अुनके अन्तरका अुच्छ्वासित धुआँ वाष्प बनकर आँखोंसे आँसू बनकर टपकने लगा है। किसी 'प्रेमी' के हृदयको जब कोअी कोमल भावना छू लेती है तब वह प्रमोन्मत्त हो जाता है। भले ही फिर संसार अुसे पागल कहे, मतवाला कहे। वह स्वनिर्मित अपनी सृष्टिमें विचरण करता है। अुस सृष्टिके बाहर और भी कुछ है, कुछ हो सकता है—न वह अिसे जानता है, न अुसे जाननेका प्रयत्न करता है। "आँखोंमें' किसी अैसे ही मनवाले 'प्रेमी' के बिखरे हुअे भाव बिखरे हुअे हैं। न यह प्रबन्ध काव्य है और न मुक्तक-काव्य। हाँ, सरस भावके मोतियोंका अुसे अेक सुन्दर संग्रह कहा जा सकता है।

किसी तरुण कविकी भावनाशील यौवनका अुद्दाम प्रवाह कितना सुन्दर और सरस होता है, "आँखोंमें" सहज देखा जा सकता है।

वन्दनाके बोल—लेखक-हरिकृष्ण "प्रेमी" प्रकाशक—आत्माराम अेन्ड सन्स पृष्ठ १२०, मूल्य २।)

प्रस्तुत पुस्तकमें श्री 'प्रेमी' जीकी ६० कविताअें संग्रहीत हैं। पुस्तकके प्रारम्भमें कविने अेक प्रश्न किया है।

"कविकी बाँसुरीने वन्दनाके बोल क्यों गाये? गान्धीको गये दो वर्ष भी अधिक हो गये और अब कविकी साँसोंमें ये अुच्छ्वास क्यों अुमड़े?"

कविने अिस प्रश्नका अुत्तर भी दिया है—

"बापूके वन्दनीय व्यक्तित्वने स्वयं ही फूंक लगा दी है, कविका अपने गीतोंपर अधिकार नहीं है।"

स्पष्ट है कि प्रस्तुत पुस्तकका सीधा सम्बन्ध राष्ट्रपिता गान्धी और अुनकी विचार-धारासे है। प्राय प्रत्येक गीतमें बापूके प्रति नम्र श्रद्धांजलि कविने चढ़ायी है।

जो जुल्मकी चट्टानके
नीचे दबे नीरव रहे।
अुन मूक पीड़ित प्राणियोंका।
बन गया अुच्छवास तू।
हर सांसकी या सांस तू
विश्वासका विश्वास तू॥

शैलीकी दृष्टिसे 'वन्दनाके बोल' की अेक अपनी विशेषता है। अुर्दूकी गजलके ढंगपर अिन गीतोंकी कुछ-कुछ रचना हुअी है। श्री 'प्रेमी'जी अिस दिशामें प्रयत्नशील हैं और अिधर अुन्होंने अनेक हिन्दीकी अच्छी गजलें भी लिखी हैं।

"वन्दनाके बोल" गाकर कविकी वाणी धन्य हुअी है।

कविके निकट बापूके चरण-चिन्होंका विशेष महत्व है। अुसका विश्वास है—

पातकोंके पंकमें भ्रम-वश
कभी फँसते नहीं वे,
जो तुम्हारी लीकपर रख
पाँव अविचल चल रहे हैं।

कवि हृदयकी कल्पनाकी
ज्योति तुमसे मिल रही है।
स्वप्नके अुसके हृदयमें
खिल विमल शतदल रहे हैं

अिन्ह चरणोंके तुम्हारे
दीपकोंसे जल रहे हैं॥

— रामेश्वर दयाल दुबे, अेम. अे., सा. र.

गौनेकी विदा (बुन्देलखंडकी लोक-कथाअें) :— ले. श्री शिवसहाय चतुर्वेदी। पृष्ठ संख्या १६४ डबल क्राअुन १६ पेजी। मूल्य २) प्रकाशक-अजन्ता प्रेस लि. पटना।

यह प्रसन्नताकी बात है कि भारतीय साहित्य कारों अेवं प्रकाशकोंकी रुचि लोक-साहित्यकी ओर आकर्षित हुअी है। अभीतक अधिकतर लोकगीतोंपर ही ध्यान दिया गया परन्तु ग्रामोंकी जनताका अपना कथा साहित्य भी है, जो सदियोंसे लोगोंकी जबानपर चला आ रहा है। पुस्तककी भूमिकाके लेखक श्री रामनरेश त्रिपाठीके शब्दोंमें कहा जा सकता है कि 'मनुष्य कहानी बनानेके लिअे ही अुत्पन्न हुआ है।' और वह समयके वक्षस्थलपर अपनी कहानी लिखकर अज्ञानलोकको चल देता है। अिसी कहानीको कवि और कथाकार शब्दों द्वारा सामने लाते हैं। अुसे कलाका रूप देते हैं, परन्तु मनुष्य जन्मजात कलाकार है और अुसकी कलाकृतिका प्रतिबिम्ब ही साहित्य-सरिताके नीरमें प्रतिबिम्बित दिखलायी पड़ता है।

लोक-साहित्य आदर्शवाद या यथार्थवादके पचड़ेमें नहीं पड़ता। वह कलाकारोंका विषय भी नहीं। विषय तो समीक्षकोंका है। परंतु अक्सर समीक्षक वादोंके कुचक्रमें पड़कर कलाकी कमनीयता अेवं सजीवताको भूल जाते हैं। अुसके शाश्वत सत्यको पहचाननेमें डग-मगा जाते हैं और तब साहित्य अपना स्वाभाविक प्रवाह छोड़कर लकीरों और मेंड़ोंपर चलने लगता है, जिससे अुसकी स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है। स्वाभाविकता साहित्यका सौंदर्य है और अस्वाभाविकता ही कुरूपता।

"गौनेकी विदा" में लेखकने बुन्देलखण्डकी २० कहानियोंका संग्रह किया है और सभी कहानियाँ मजेदार तथा प्रवाहपूर्ण हैं। अुनमें समाजका चित्र है और साहित्यका प्रकटीकरण। चार कहानियाँ तो सागर जिलेकी बुन्देलखंडी बोलीमें लिखी गयी हैं। वस्तु वर्णन भी स्वाभाविक तथा आकर्षक है। कहीं कहीं तो सामने चित्र या अुपस्थित हो जाता है। कहीं-कहीं भाषाभी बड़ी चुलबुली और मजेदार हो गयी है.—

"जिम्मामें झूठो न बातोंसे मीठो, घड़ीघड़ीका बिसराम जाने सीताराम! नर्बदेवारे खोटोंपै न गुनने वारेको दोष, दोषको असो जीने जिम्मा बनाके खड़ी करी। और दोष आवो सोअी नैया। कामसे अन्न रैनकाटनेके लाने बनायी। चक्करको घोड़ा सवलारेकी लगाम। छोड़ दो दरियाके बीचमें चला जाय छमा छम छमा छम अुसपार घोड़ा अुसपार घास, न घास घोड़ा खो खाय न घोड़ा घास खों खाय।"

यद्यपि सभी कहानियाँ 'रंगकारिणी लाने' बनायी गयी है, फिर भी अुनमें दिलको समझानेकी भी सामग्री है। प्रथम कहानी "सोनेकी मिदा" कोही लीजिये, जिसमें नारीकी बुद्धिमता और मनुष्यके अभिमानका बड़े मार्मिक ढगसे वर्णन किया गया है। 'राजा रघु और ब्राह्मण' कहानी तो जीवनकी गीताके समानही अुपदेश देती है और वह भी असी मधुरताके साथ कि अुपदेश अुपदेश न होकर कहानीके रूपमें मस्तिष्कको प्रेरता है। 'बुन्देला ठाकुर' कहानी भी बड़ी मजेदार है। गोस्वामी तुलसीदासके छन्द 'सपनेहु होअु भिखारि नृप रकनाप पनि होय' याद आते हैं। अिसी प्रकार सभी कहानियाँ कोओ न कोओ अुद्देश्य लेकर चलती हैं, परन्तु अुद्देश्य कथाके आवरणमें अैसा कुछ घिरकर चलता है कि कहानी तत्व अपना रग जमा लेता है। पात्रोंके भितरमें सजीवता देखकर यह कहना पड़ता है कि जन साधारणमें कहानी-कला अपने कितने अवयव लेकर चली और चल रही है। अिसका प्रभाव हमारे कथा साहित्यपर भी पड सकता है।

खोजकी पगडंडियाँ —लेखक श्री मुनि' कान्तिसागर, पृष्ठ २१५, डबल क्राअुन सोलह पेजी, मूल्य ४), प्रकाशक, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।

पुस्तकके लेखक मुनिकान्तिसागर श्वेताम्बर जैन हैं, जो अधिकतर पैदल पर्यटन करते रहते हैं। आपका कहना है कि 'मेरा अनुभव रहा है कि भारतीय सभ्यता और सस्कृतिके मूलरूपको जितना पादविहारी भोली-भाली जनताम बैठकर आत्मसात कर अनेक विलुप्तप्राय सामग्रीको प्रकाशमें ला सकता है, हमारे वाहन-विहारीके लिअे सभव नही।" और फिर 'दृष्टि-सम्पन्न, मानव जहाँ जायगा अुसे अपने विषयकी ठोस सामग्री अुपलब्ध होही जायगी।" लेखकने अिसी दृष्टि सम्पन्नताके फलस्वरूप पहले "खडहरोंका वैभव, नामकी पुस्तक पाठकोंको प्रदान की थी। जिसमें वैभवका विशेषण खडहर बताते हुअे भी 'राजे सजाये मन्दिरोंमें सौन्दर्य सम्पन्न कृतियोका भी अुल्लेख किया है।" वास्तवमें सौन्दर्य तो विश्वकी प्रत्येक कलाकृतिमें देखा जा सकता है', यदि सौन्दर्यानुभवकी दृष्टि हो तो। "साँची और भेड़ाघाटकी चौसठ योगिनियोंकी मूर्तियाँ आजभी तो अपने सौन्दर्यकी आभा विकीर्ण करती हैं, यद्यपि अुनका प्राचीन वैभव लुप्त हो गया है। सौन्दर्यके लिये वैभव आवश्यक नही। कारण, सौन्दर्य स्वय ही वैभवका प्रतीक है और अिसी दृष्टिको ले, मुनी-कान्तिसागरको सम्भवत 'खंडहरों' अेव 'पगडंडियों' में भटकते हैं और 'जिन ढूढा तिन पाअिया' के अनुसार अुन्हे, यहाँ भी सौंदर्यका वैभव मिल जाता है— कलाकी अमरता दिख जाती है। जिसे वे अपनी पुस्तकोंमें रख देते है।

'खोजकी पगडंडियाँ' पुस्तक भी खण्डहरोंके वैभव' की भांति मुनिजीके पुरातत्व तथा कला सम्बन्धी निबन्धोंका सग्रह है, जिसके ललितकला, लिपि और भौगोलिक पाया तीन भाग किये गये हैं। पुस्तकका आरम्भ जैन आश्रित चित्रकला अध्यायसे होता है। जिसमें जैन चित्रकला, भित्ति, पल्लव, ताड तथा वस्त्र चित्र आदिपर विवेचन और प्रमाणके साथ विचार प्रकट किये गये हैं, जिनसे लेखककी प्राचीन तथा अर्वाचीन ग्रथोंकी जानकारी प्रकट होती है। दूसरे प्रकरणमें बौद्ध चित्रकलाका विवेचन है और फिर महाकोशलके जैन भित्त-चित्रोंपर प्रकाश डाला गया है। वास्तवमें यह खेदकी बात है कि मध्यप्रदेशकी पुरातत्व सामग्रीपर जैसा चाहिये अभीतक प्रकाश नही डाला गया, यद्यपि यहा पर्याप्त सामग्री अुपलब्ध है। अिसी प्रान्तमें भारतका सबसे पुराना भुरा रगमच मौजूद है, लेकिन सब छिपा पड़ा है। त्रिपुरीकी खुदाअीका कार्य भी बहुत महत्वपूर्ण है। जबलपुरमें स्वर्गीय रायबहादुर डाक्टर हीरालालकी स्मृतिमें जिस समितिकी स्थापना हुअी है, अुसके प्रयत्नोंको प्रोत्साहन मिले तो भले ही कुछ हो जाय।

लिपि-प्रकरणमें महाराज हस्तीके नवोपलब्ध ताम्र शासन, कलचुरि पृथ्वीराज द्वितीयके ताम्र-शासन और गुप्त लिपिपर विस्तारके साथ लिखा गया है। प्रथम ताम्रपत्र स्व गौरीशकर हीराचद्र ओझाके मतानुसार वि से ५४६ का है। दूसरे ताम्रपत्रकी लिपि तेरहवीं शताब्दी की देवनागरी है, जिससे अितिहासकी अेक नयी जानकारी यह मिलती है कि

थे लिंग नरेश चोडगगको पृथ्वीदेव द्वितीयने हराया था, यद्यपि अभीतक रत्नदेव प्रथम द्वारा चोडगगका पराजित किया जाना प्रसिद्ध था।

भौगोलिक ज्ञान सम्बन्धी लेखोंमें नालदा विद्यालय, कलातीर्थ मैहर तथा पाटलिपुत्रकी पैदल यात्राओंका सुन्दर वर्णन है। जिन यात्राओंमें भी लेखक अपनी पुरातत्त्व दृष्टिसे विलग नहीं हुआ। मैहरकी शारदा देवीका वर्णन करते हुअे लेखक लिखता है कि "शारदाके मुखपर अद्भुत तेजकी चमक है। वीणापर अुंगलियाँ अैसी साधकर रखी गयी है कि अुनकी कल्पना और रचना अेक पहुँचा हुआ कलाकार ही कर सकता है। शरीरके अन्य सभी अंग-प्रत्यंगमें कोमलताकी मार्मिक अभिव्यक्ति है।" पाषाण-प्रतिमामें कोमलताकी अभिव्यक्ति कलाकारके ही समझनेकी चीज है और सचमुच साधारण शिल्प-कला जिस चरम अुत्कर्षको नहीं पहुँच सकती।

जिसी प्रकार पुस्तकके अनेक स्थल मार्मिक और विशद् विवेचनासे भी पूर्ण हैं। पुस्तक-पठनीय तथा अुपयोगी है।

—'अजातशत्रु'

समीक्षार्थ प्राप्त पुस्तकें तथा पत्रिकाअें

नया पथ (मासिक-पत्र) —सपा०— श्री शिव शर्मा। प्रकाशन स्थान–३१४ वल्लभभाअी पटेल रोड, बम्बअी ४। मूल्य ।।)

नवनीत (मासिक-पत्र):—प्रकाशक—नवनीत प्रकाशन, बम्बअी। मूल्य १)

भौतिक समन्वयवाद:—ले०—श्री गोविन्द-प्रसाद त्रिपाठी। प्रकाशक—रा भा. प्रकाशन, मधना, कानपुर। मूल्य १।।।)

रजवाड़ा:—ले०श्री देवेशदास। प्रकाशक—आत्माराम अेण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली। मू० ५)

अभिनय (मासिक पत्र):—प्रका०—फिल्म-वेज कार्पोरेशन, कलकत्ता। मूल्य ।।)

परेड ग्राअुँड:—ले०—श्री हंसराज रहबर। प्रका०—आत्माराम अेण्ड सन्स, दिल्ली। मू० १।।)

गुरु दक्षिणा:—ले०— श्री सन्तराम। प्रका—आत्माराम जेण्ड सन्स, दिल्ली। मूल्य ।।।)

स्तालिन —ले०—श्री राहुल सांकृत्यायन। प्रका०—पीपुल्स पब्लिशिंग हाअुस, बम्बअी। मूल्य ३)

अपना पराया:—श्री राधिकारमण सिंह। प्रका०—राजेश्वरी साहित्य मन्दिर, पटना। मूल्य २)

धर्मकी धुरी:—श्री राधिकारमण सिंह। प्रका०—राजेश्वरी साहित्य मन्दिर, पटना। मू० २)

लाल चीन:- प्रका०—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी। मूल्य ३)

संघर्षके बाद:—ले०—श्री विष्णु प्रभाकर। प्रका०—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी। मूल्य ३)

साहित्य-सुधा:—श्री सत्यपाल। प्रका०—भाषा प्रकाशन, नयी दिल्ली। मूल्य ३)

साहित्यिक जीवनके अनुभव:—लेखक श्री किशोरीदास वाजपेयी। प्रकाशक—हिमालय अेजेन्सी कनखल, अु. प्र.। मूल्य २)

आर्य संस्कृतिके मूलतत्त्व:—लेखक-श्री सत्यव्रत सिद्धांतालंकार। प्रका०—विद्याविहार, बल्वीर अेवेन्यू देहरादून। मूल्य ४)

चारके चार:—ले. श्री कमल जोशी। प्रका०—शुभ्रा प्रकाशन अमरोदपुर। मूल्य २।।)





छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति :

अखिल भारतीय व्रज-साहित्य मण्डलका नवम अधिवेशन प्रयाग-विश्व-विद्यालयके सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री डॉ० धीरेन्द्र वर्माकी अध्यक्षतामें सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। अुत्तर प्रदेशके राज्यपाल श्री कन्हैयालाल मुन्शीका अुस अवसरपर दिया गया अुद्‌घाटन-भाषण भी प्रेरणादायी था। अुन्होंने कहा कि—"अेक समय था जब व्रज-भाषाके साहित्य द्वारा दूसरे प्रान्तोंके साहित्यिकोंको भी प्रेरणा मिलती थी और कभी गुजराती तथा दूसरी भाषाओंके कवियोंने व्रजभाषाकी कविताके अनुकरणपर अपनी भाषामें कविताकी रचना की है। कुछ भिन्न प्रान्तीय कवियोंकी व्रजभाषामें लिखी कविताअें भी मिलती हैं। व्रजभाषाका अुस समय अितना व्यापक प्रभाव था।"

श्री डॉ० धीरेन्द्र वर्मानें अपने अध्यक्षीय-भाषणमें व्रजभूमिकी भाषा, अुसका साहित्य तथा संस्कृतिकी कुछ विशेषताओंको दिखाते हुअे व्रजभाषाका विशेष अध्ययन-अध्यापन, संरक्षण तथा खोजकी ओर अग्रसर होनेके लिअे प्रेरणा दी और अुसे वैज्ञानिक रूप देनेका आग्रह किया। अुसके साथ-साथ अुन्होंने अेक चेतावनी भी दी जो बडे ही महत्व की थी। अुन्होंने कहा —

"व्रज भाषाके कार्यको आप कभी भी हिन्दी भाषा सम्बन्धी कार्यसे भिन्न अथवा प्रतियोगी न समझें। व्रजभाषा हिन्दीका ही अेक अभिन्न अंग है। अतः व्रजभाषाकी सेवा वास्तवमें हिन्दीकी ही अपनी सेवा है। दूसरी बात यह कि व्रजप्रदेशकी भावनाको आप शासन और राजकीयस्तरपर कभी भी न ले जाअें। स्पष्ट शब्दोंमें व्रज प्रदेशका अेक स्वतन्त्र प्रान्त बनाया जाअे, अिस कल्पनाको भी कभी मनमें न आने दीजिअे। अिससे व्रजभाषाका अहित अधिक होगा, हित कम। आज व्रजभाषा समस्त हिन्दी-भाषियोंकी ही नहीं बल्कि समस्त भारतीयोंकी अपनी निधि है। व्रज प्रान्त बन जानेपर व्रजभाषा अुस प्रान्त तक ही सीमित रह जाअेगी। अिसके अतिरिक्त अैसा करनेसे आप आर्यावर्तके मध्यदेशकी लगभग १५ करोड हिन्दी भाषी जनताके सम्मिलित परिवारमें फूटका बीज बोअेंगे। आज भी हिन्दी प्रदेश १०-११ पृथक राज्योंमें विभक्त हैं, किन्तु अिस विभाजनके पीछे कोअी कटुता या अलगावकी भावना नहीं है। हिन्दीकी बोलियोंके आधारपर राज्योंकी माग हिन्दी भाषियोंकी शक्तिको छिन्न-भिन्न कर देगी। हिन्दीके सम्बन्धमें ग्रियर्सन आदि जो फूटका बीज बो गये हैं वह पल्लवित हो जाअेगा।"

अुनकी यह चेतावनी बडी अुपयुक्त चेतावनी थी और बडे अवसरकी चेतावनी थी। फिर भी अधिवेशनमें जो अेक यह प्रस्ताव हुआ कि व्रज साहित्यमें नया साहित्य—नाटक, अुपन्यास आदि लिखनेकी प्रवृत्तिका भी आरम्भ किया

जाअे, अिसे हम बहुत बडी चिन्ताका कारण मानते हैं। हमारी दृष्टिमें, आर्यावर्तके मध्यदेशकी जनतामें आधुनिक हिन्दीको अपनानेके सम्बन्धमें जो अेकमत दिखायी देता है, अुसमें यह प्रस्ताव छोटा-सा भी क्यों न हो, अेक छिद्र अुत्पन्न करनेका प्रयत्न कर रहा है और अेक छोटे-से छिद्रके कारण कैसी अनर्थ-परम्पराका सामना करना पडेगा, अिसकी कल्पना करना भी कठिन है। श्री धीरेंद्र वर्माकी अुपरोक्त अध्यक्षीय चेतावनीके बाद भी यह प्रस्ताव क्यों आया यह समझना हमारे लिअे अेक समस्या ही है। अिस 'प्रस्ताव' के सम्बन्धमें जब चेतावनीके दो शब्द कहे गये तो वर्माजीने विश्वास दिलाया कि वहाँ किसीके मनमें हिन्दीकी प्रतियोगिताका या कोअी दूसरा भाव नहीं है। यह विश्वास दिलानेकी कोअी आवश्यकता तो न थी, क्योंकि जिन्होंने प्रस्तावके सम्बन्धमें चेतावनी दी थी वे भी अिस बातको मानते और जानते थे। परन्तु अिस प्रस्तावका वे विरोध कर रहे थे क्योंकि वे अुसके परिणामसे डरते थे। और दरअसल यह समझना कठिन है कि आज खडीबोली गद्यके विकासमें अितनी दूर तक जानेके बाद अुन्हें ब्रज-भाषाके गद्यको नये सिरेसे पैदा करनेकी कौनसी आवश्यकता जान पडी? ब्रजभाषाको घरेलू व्यवहारमें ही सीमित करके सार्वजनिक क्षेत्रमें जहाँ आधुनिक हिन्दीको सर्व प्रकारसे अपनाया गया है, यहाँ तक कि हिन्दीमें धारावाही भाषण देनेवाले ब्रजभाषाके अिन आग्रहियोंको भी ब्रजभाषामें भाषण देना कठिन मालूम होता था, वहाँ यह नया अुपक्रम किस लिअे? यह प्रश्न होता है, और अुसका अुत्तर और अिन अुपक्रमका परिणाम दोनोंकी कल्पना करनेपर हम चौंक अुठते हैं। अवधी, मैथिली, राजस्थानी, भोजपुरी, बुन्देली, हाडौती आदि भाषाओंके आग्रही भी यदि अिसी प्रकारकी प्रवृत्तिमें जुट जाअें, तो अिसका परिणाम वही होगा जिससे बचनेके लिअे श्री धीरेन्द्र वर्मा चेतावनी देते हैं। अन्तमें शासन और राजकीय स्तरपरही अुन्हें अुतरना पडेगा और परिणाम कैसा होगा यह तो सरल अनुमानकाही विषय है। हम चाहते हैं कि यह प्रस्ताव ब्रज साहित्य मण्डलके कार्यालयमें अैसा खो जाअे कि फिर अुसका किसीको ख्याल भी न आअे। स्वय प्रस्तावक महोदयने बातचीतमें यह स्वीकार किया था कि अुन्होंने अपने प्रस्तावके परिणाम आदिपर किस प्रकार विचार नहीं किया। अैसी स्थितिमें हम मानते हैं कि अुसे भुला देना कठिन न होगा।

आगरा-विश्वविद्यालयका हिन्दी-विद्यापीठ:

अिस विद्यापीठका शिलान्यास अुत्तर प्रदेशके मुख्य मन्त्री श्री गोविन्दवल्लभ पन्तजीके शुभ हाथोंसे ता. १४ दिसम्बरको हुआ। अिसका नाम तो वैसे हिन्दी-अिन्स्टीट्यूट रखा गया है, परन्तु यहाँ सुविधाके लिअे हमने अुसे विद्यापीठ बना लिया है। हम अिस विद्यापीठका स्वागत करते हैं। अेक जमानेसे अधिक हुआ कि अिसके सबधमें विचार हो रहा था। अभी अुसका शिलान्यास हुआ है, और जैसी कि आशा की जाती है अुसका आरम्भ आगामी जुलाअीसे हो सकेगा। अभी अुसके सचालनका भार कौन सम्हालेगा अिसका निर्णय नहीं हुआ है। अच्छी योग्यताके व्यक्तिकी तलाश हो रही है और अिसलिअे अुस पदके लिअे पर्याप्त वेतनकी योजना की गयी है। परन्तु कौन अिस पदको विभूषित करता है यह जबतक मालूम नहीं होता, तबतक भविष्यके सबधमें कुछ भी कहना कठिन प्रतीत होता है।

क्योंकि संस्थाके भविष्य तथा विकासका आधार अुस संचालकके व्यक्तित्वपर ही निर्भर करेगा। फिर भी हम अिस विद्यापीठका हार्दिक स्वागत करते हैं। हम आशा करते हैं कि यह विद्यापीठ आजकी अेक बहुत बडी आवश्यकताकी पूर्ति करेगा। जैसा सुना गया है, अिसके कार्यक्रमके बारेमें अब भी कुछ मतभेद हैं। कुछ लोग अिसे भारतीय भाषाओंके लिअे अेक अनुसन्धान तथा खोज-कार्यका केन्द्र मात्र बनाना चाहते हैं परन्तु आगरा विश्वविद्यालयके कुलपति श्री मुन्शीजीकी कल्पना दूसरी ही है। वे अुसे भारतीय भाषाओंके और खासकर हिन्दीके विशेष अध्ययन और अध्यापनका पीठ बनाना चाहते हैं। यही नहीं, यहाँ अनुसन्धान तथा खोजका काम भी होगा। परन्तु वह भारतीय भाषाओंको परस्पर अेक दूसरेके निकट लानेकी दृष्टिसे, अुनमें जो समान शब्द व्यवहारमें आते हैं अुन्हें ढूँढकर हिन्दीको समृद्ध बनाने और फिर हिन्दी द्वारा भारतीय भाषाओंको समृद्ध बनानेकी दृष्टिसे होगा। अिस संस्थासे अेक और भी महान लाभ होगा और वह यह कि भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके विद्यार्थी-विद्वान् अिस संस्थामें अेक दूसरेके निकट आअेंगे। साहित्यिक तथा सांस्कृतिक-स्तरपर परस्पर सम्पर्क साधेंगे और अिस प्रकार हमारी मूलभूत राष्ट्रीयताको सुदृढ बनाअेंगे। अिस भव्य भावनाको यह संस्था किस प्रकार मूर्तरूप दे सकेगी, यह भविष्यकी बात है। हम आशा करें कि अिस संस्थाके कार्यका आरम्भ शीघ्र ही हो और वह अपने ध्येयके अनुसार कार्य करनेमें सफल हो। जैसा कि सुना गया है अिस संस्थाकी ओरसे भारतीय साहित्यकी अेक त्रैमासिक पत्रिका भी निकालनेका आयोजन हो रहा है, अुसमें सभी प्रधान प्रान्तीय भाषाओंका प्रतिनिधित्व होगा। हम अिस संकल्पका स्वागत करते हैं।

हिन्दी-सहित्य सम्मेलन, प्रयागका अुपाधि वितरण-समारोह :

सम्मेलनके हिन्दी विश्वविद्यालयके साहित्य-रत्न परीक्षोत्तीर्ण स्नातकोंका अुपाधि-वितरण समारोह ता० २० दिसम्बरको सम्मेलनके साहित्य विद्यालय भवनके प्रांगणमें सफलता पूर्वक संपन्न हुआ। सम्मेलनके दीर्घकालीन जीवनमें यह प्रथम ही अवसर है, जबकि अुसने यह समारोह किया है। अिसका अुद्घाटन सम्मेलनके प्राण राजर्षि टण्डनजीने और दीक्षान्त भाषण बिहार राज्यके शिक्षामन्त्री आचार्य श्री बदरीनाथजीने किया। अिससे अिस समारोहकी शोभा और भी बढ गयी। अिसमें श्री डॉक्टर सम्पूर्णानन्दकी अुपस्थिति और अुन्हें मंगलाप्रसाद पारितोषिक दिया जाना, अिस समारोहका विशेष आकर्षण था। सम्मेलनके आदाता श्री जगदीश-स्वरूपजीकी अिस सूझके लिअे तथा अिस समारोहकी सफलतापर हम अुनका हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

सम्मेलनका अधिवेशन नहीं हो रहा है परन्तु सम्मेलनकी परीक्षाओं आदिका कार्य सुचारु रूपसे चल रहा है। यही नहीं अुसने अेक बडे कोशका काम भी शुरू करवा दिया है। यह श्री जगदीशस्वरूपजीकी कार्य-कुशलता तथा हिन्दी-प्रेमको प्रकट करता है। वे कुछ काम कर जाना चाहते हैं और जो कुछ किया जा सकता है वे कर रहे हैं। अिसके लिअे वे धन्यवादके पात्र हैं। यह समारोह भी अुनके अिसी प्रकारके अुत्साहका परिणाम है। और वह खूब सफल रहा। परन्तु अेक बात हमें अवश्य खटकी।

स्नातकोको गाअून देनेका विचार जिस किसीका भी हो, वह हमें अपनी संस्कृतिके अनुकूल नहीं जँचता। वह तो केवल अंग्रेजी परिपाटीका अनुकरण मात्र ही था। अिस गाअूनका हमारे स्नातकोंको कुछ भी अुपयोग न हो सकेगा और न वे कभी अुसका अुपयोग कर सकेंगे। अिससे तो अच्छा यह होता कि अेक अच्छी शाल सम्मेलनके मुद्रालेखोंसे छपी हुअी दी जाती। अुसका स्नातक अुपयोग तो करते। गुजरात-विद्यापीठने वर्षोंसे गाअूनके बदले खादीकी शालका अुपयोग किया है और अुसी परिपाटीके अनुसार राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति भी अपने कोविद तथा राष्ट्रभाषा-रत्नोंको शाल ही देती है।

हमारी अुदासीनता तथा निष्क्रियता :

दूसरा जो विचार अिस समारोहके अवसरपर आया वह यह था कि आज यदि सम्मेलन आदाता द्वारा नहीं, परन्तु अपनी स्थायी समिति द्वारा सार्वजनिक संस्थाके रूपमें कार्य करता होता तो, अिस समारोहकी भव्यता कितनी बढ जाती। हिन्दीका कार्य करनेवाली देशकी सबसे बडी और पुरानी संस्था आज आपसके झगडोंके कारण अैसी परिस्थितिमें पड गयी है कि देशकी हिन्दी सम्बन्धी बहुत बडी आवश्यकताओंको देखते तथा अनुभव करते हुअे भी अुन्हें पूरा करनेमें वह असमर्थ है और हिन्दीपर अभी चारों ओरसे जो व्यर्थका आक्रमण हो रहा है, अुसे अुसके अेक समयके कर्णधार, जिनके नामसे हिन्दीके साहित्यिक तथा कार्यकर्त्ता प्रेरणा पाते थे और हिन्दीके कार्यमें अुत्साहसे लग जाते थे, वे भी आज पुरुषार्थहीन होकर केवल देखते रहनेके सिवा कुछ नहीं कर सकते। अभी-अभी दिल्लीकी संसद तथा राज्यसभामें जो हिन्दीके सम्बन्धमें चर्चाअें हुअी, अुनमें बहुत-सी बातें हमारी आँखें खोल देनेके लिअे पर्याप्त हैं। जामिया मिलिया द्वारा हिन्दीका ज्ञानकोश तैयार करवाया जा रहा है और सरकार अुसे लाखो रुपयोंकी सहायता दे रही है। मैं जामिया मिलिया या सरकारका दोष नहीं निकालता। जामिया मिलियाने तो अेक अच्छा कार्य आरम्भ किया है और वह अपने विचारोंके अनुसार अुसे पूरा करेगी। यह दूसरी बात है कि भाषाके संबंधमें तथा विश्वकोशकी योजनाके संबधमें हमारा अुनसे मतभेद हो। दरअसल ज्ञानकोश तथा दूसरे प्रकाशनोंका काम हाथमें लेना हिन्दीकी गण्यमान संस्थाओंका काम था। अुसमें लगानेके लिअे योग्य पूंजी प्राप्त कर लेना भी अिन संस्थाओंके लिअे कठिन काम नहीं था। परन्तु वे आपसके झगड़ोंमें ही लगी रही और अिस प्रकारके रचनात्मक कार्योंके प्रति अुदासीन बनी रही।

यदि हिन्दीकी संस्थाओंने अलग-अलग अपनी रुचिके अनुसार कार्य-भार अुठाकर हिन्दीकी सेवा करना अुचित न माना तो वे सब मिलकर भी कुछ योजना बनाकर कार्यका आरम्भ कर सकती थीं। अुन्हें अुसके लिअे आवश्यक साधन-सामग्री मिल ही जाती और कार्यका आरम्भ करनेपर सरकार द्वारा भी सहायता मिलती। परन्तु अुन्होंने अैसा कोअी कार्य नहीं अुठाया और सब अपनी-अपनी डफली बजानेमें ही व्यस्त रहे और कभी-कभी सरकारकी या दूसरी संस्थाअें जो अपनी दृष्टिके अनुसार कार्य किये जा रही है, अुनकी टीका-टिप्पणी करके ही संतोष मानते रहे। अिसका परिणाम और क्या हो सकता था? आज फिर अुर्दूका प्रश्न अुठ रहा है। प्रान्तीय भावनाअें प्रबल हो रही है और

हिन्दीको जो स्थान वर्षोके सतत प्रयत्नसे प्राप्त हुआ था अुसका आसन डोलता हुआ नजर आता है। और हम तो निश्चिन्त हो आँखें मूँदकर अपनी छोटी-छोटी प्रवृत्तियोंमें ही अेक दूसरेका विरोध करते हुअे कार्य करनेका वृथा अभिमान करते हुअे दिखायी देते हैं। क्या अब हम अपनी आँखें खोलेंगे और वास्तविक स्थितिका अध्ययन कर हमारा जो कर्तव्य है अुसे करनेके लिअे अग्रसर होंगे ?

— मो० भ०

× × ×

'नागरी-लिपि सुधार परिषद्':

अुत्तर-प्रदेशकी राजधानी लखनअूमें पिछले नवम्बर मासके आखिरी सप्ताहमें अेक नागरी-लिपि सुधार परिषद हुअी। नागरी वर्णमालाके, आजकल व्यहारमें आनेवाली लिखित अंकित, टंकित और मुद्रित प्रणाली या परम्परामें सुधार करनेके अुद्देशसे अुत्तर-प्रदेशके प्रधान मन्त्री पंडित गोविन्दवल्लभ पन्तने अिस परिषदको आमंत्रित किया था। भारतके विभिन्न राज्योंके कुछ राज्यपाल, कुछ प्रधान और शिक्षा-मंत्री, सचिव, संचालक और कुछ विशिष्ट विद्वान् लोग अिस अधिवेशनमें सम्मिलित हुअे थे। भारतके अुपराष्ट्रपति महान दार्शनिक डॉ राधाकृष्णनने अध्यक्षपद ग्रहण किया था। यह सब देखकर अिस परिषदकी श्रेष्ठता, अुपयोगिता व आवश्यकताको कौन समझदार व्यक्ति नकार सकता है। अिसमें जो लोग अिकट्ठे हुअे, चर्चा हुअी, विचार विनिमय हुआ आपसमें, तो हमें १९२२ की गया-कांग्रेसकी याद आ गयी जिसमें नेताओंके दो पक्ष हो गये थे—अेक अपरिवर्तनवादी अर्थात् 'नो चेंज' और दूसरा परिवर्तनवादी। लखनअूकी अिस परिषदमें कुछ कट्टर सनातनी विचारके भी थे जो नागरी लिपिमें किसी प्रकारका परिवर्तन नहीं चाहते। आज नागरीका जो रूप अुत्तर-प्रदेशमें प्रचलित है अुसीको रखनेके पक्षमें है वे। कुछ लोग पूरा और पर्याप्त परिवर्तन करनेकी सिफारिशें लेकर पहुँचे थे अुस परिषदमें।

राष्ट्रभाषाके साथ राष्ट्रलिपि भी जुडी हुअी है। यह हमारा सविधान घोषित कर चुका है। प्रयत्नपर प्रयत्न किये जा रहे हैं कि हिन्दी राष्ट्रभाषाके रूपमें सर्वग्राह्य हो—सर्वमान्य हो। हमारी राष्ट्रभाषा वैज्ञानिक हो। अुसका सुलभ सामान्य रूप देशवासी ग्रहण करें। अुसकी शैली नियमबद्ध हो जिसमें कठिनसे कठिन भाव व्यक्त किये जा सके। राष्ट्रभाषाका व्याकरण प्राणवान हो—लोगोंके जीका जंजाल न हो और अुसका साहित्य अैसा अुन्नतिशील प्रौढ हो कि पढा जाअे। भारतकी अेक राष्ट्रीय लिपिके बारेमें भी यही समस्या है, कि नागरी लिपि सरल अुपयोगी और सारे भारतमें ग्रहण करने योग्य आधुनिक वैज्ञानिक सुधारोंसे सुधार-सवाँरकर रख दी जाअे कि अुसे सभी मानें।

तो यह ध्यानमें रखा जाअे कि वर्णमाला और लिपि अलग-अलग चीजें हैं। भारतका यह दुर्भाग्य या बदनसीबी है कि अेक भाषाके लिअे दो लिपियाँ (नागरी प्लस् (धन) अुर्दू) चलायी गयी और संविधान विरुद्ध होते हुअे भी अुसे चलाये जानेके पक्षमें अब भी अेडी चोटीका पसीना अेक कर रहे हैं। कुछ लोगोंका खुला-छिपा पक्ष भी यहाँ मौजूद है जो अवैज्ञानिक होते हुअे भी व्यावहारिक क्षेत्रमें ज्यादा अुन्नत और अुपयोगी सिद्ध की गयी रोमन-लिपिको अपना लेनेका समर्थन करना

है। हम हजार चिल्लाअें कि 'रोमन वर्णमाला' में, लिपिमें, अपूर्णता है—स्वरो और व्यजनोका अकाल है, लिखेंगे 'पिता' और पढ़ेंगे "पिटा", लिखगे 'दाता' शब्द और पढा जाअेगा—'डाटा" औ र कभी भूले-भटके या अिक्के-दुक्के लिखा गया सम्कृतका 'पिनाकपाणि'—(शिव-शकर जिसका अर्थ है) वहाँ शब्द पीनेका पानी" पटा जाअेगा। हमपर प्रभाव डाला जाता है कि यूरप-अमेरिका आदि पाश्चात्य देशोकी अधिकाश भाषाअें रोमन लिपिमें ही लिखी जाती हैं। तब पाश्चात्योके साथ सास्कृतिक सम्बन्ध बनाये रखनेके लिअे अंग्रेजीके साथ-साथ पन्द्रह वर्षोके लिअे हम अिसीको क्यो न अपना ले। माना कि अुर्दू लिपिमें 'शीघ्र लिपि' के सभी गुण मौजूद हैं। यह अति शीघ्रतासे लिखी जा सकती है। अुर्दू अक्षरोकी रचना सादी है, अुनका आपसमें सयोग भी बडा सरल है फिर, वही क्यो न अपना ली जाअे। भाषाओ और लिपियोके वैज्ञानिक जानते हैं कि अुसमें बिना लेखनी अुठाये अक्षर तथा शब्द लिखनेकी क्षमता अेव रेखाअें सरल होते हुअे भी स्वर और व्यजन बडे गडबड हैं। अुच्चारणमें दिक्कत होती है। जिसकी वर्णमाला अपूर्ण और बेढगी अवैज्ञानिक है, सस्कृत अंग्रेजी आदि भाषाओके शब्द लिखना जिसमें असभव है, जहाँ नुक्तोके हेरफेरके चक्करमें पडा हुआ व्यक्ति अधेरेमें टटोलता फिरता है।

अत हमारे दूरदर्शी नेता लिपिका सुधार अनिवार्य मानते हैं। अेक वैज्ञानिक दृष्टिकोणको सामने रखकर सुधार आवश्यक है। यह बात तो सभीके दिलमें जमकर बैठ गयी है कि नागरीमें जो कुछ लिखा जाता है वही ठीक पढा जाता है। सम्कृत, अंग्रेजी, अरबी, फारसी आदि सभी भाषाओंके शब्द लिखे जा सकते हैं, अुनकी ध्वनियाँ प्रकट की जा सकती हैं। और हूबहू पढे जा सकते हैं। फिर भी सुधारकी आवश्यकता है और शीघ्र अिस दिशामें कुछ सर्वमान्य बात होनी चाहिअे। कुछ आवश्यक बातोको ध्यानमें रखकर सुधरी हुअी हमारी नागरी लिपि अैसी बने जो मोनो, लाअिनो टाअिप, टेली प्रिंटिंग, टक-लेखन, शीघ्र लिपि आदिमे निर्दोष अेव सहल बन जाअे। नागरीका अक्षर परिचय सहज हो जाअे, हस्त-लेखन अितना सधा-सुधरा हुआ हो कि कलम बार-बार न अुठानी पडे। भारतके करोडो निरक्षरोमें जिसके द्वारा साक्षरताका प्रचार सुलभताके साथ किया जा सके। आज 'रवाना हुआ' 'खाना हुआ' बन जाता है, क् + ष का शुद्ध वैज्ञानिक सयुक्त रूप 'क्ष' होनेपर भी अुसे अमान्यकर, अुसी पुराने बाबा आदमके जमानेके 'क्ष' को पकडे हुअे है। "स्टेनोग्राफीके स्टैंडर्डा-अीजेशन' को भी बहुत कालतक अछूता नही रख सकते। टक लेखन (टाअिप राअिटिंग) को भी ठीक सभालना है। अभी तक "की बोर्ड" (key board) बुरी तरह फिसल रहा है। अेक मत नही। भिन्न-भिन्न मत और सुझाव है। सकीर्ण प्रातीयता और प्रादेशिकता भी रुकावट डाल रही है। अभी तक कुछ न हुआ-कुछ न हुआ।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा अुन सभी सर्वसुलभ, नागरी-सुधारोका स्वागत करनको तैयार रहेगी। अिन सुधारोंकी दिशामें अुसने १९३७ में अपना सर्वप्रथम सुधरा हुआ नागरी-रूप देशके सामने रखा था जिस पथपर वह आज भी चल रही है। आचार्य काका कालेलकर, प्रयाग विश्वविद्यालयके प्रसिद्ध भाषा विज्ञानी डॉ बाबूराम सक्सेना आदि सप्त महारथी पडितोंने बडे समझौतेके साथ ध्वनिशास्त्रके आधारपर वर्धा समितिको सुधारी हुअी नागरी लिपि दी थी। लिपिका समानीकरण किया था। आवश्यकता है बहुत सोच विचारपूर्वक निर्णय करनेकी, साहसकी और समझौतेको अमली रूप देनेकी। अभी तो हमें लखनअूकी लिपि सुधार परिषद 'पहाड खोदकर चूहिया निकली' जैसी लगी।

नागरी प्रचारिणी सभाकी हीरक जयन्ती :

आजसे साठ वर्ष छह मास पीछेके युगपर आप दृष्टि डालिये। तब राष्ट्रभाषा हिन्दी, हिन्दी साहित्य, नागरी लिपि, अिनकी चर्चा करना, अिनके प्रचार और प्रसारके लिये प्रयत्न करना तबके सभ्य समाजमें पागलपनका काम समझा जाता था। राज्य अंग्रेजोंका था अपने मध्यान्हपर, सारी शिक्षा अंग्रेजी भाषा द्वारा मिलती थी अंग्रेजी राज्यान्तर्गत बसनेवाले भारतवासियोंको। अंग्रेजी भाषाके साथ अंग्रेजोंकी कृपाके बलपर राजकाज, दरबार और अदालतोंमें क्लिष्ट अरबी-फारसीसे लदी अुर्दू लिपि और अुर्दू जबानका जोर था। अुर्दू सन १८३७में ही भारतमें अदालती भाषा बना दी गयी थी। अंग्रेजीदाँ और अुर्दूदाँ ही तब पढे लिखे सभ्य या शिक्षित लोग माने जाते थे। बेचारे क्या करते? करता क्या न करता? रोटीका-रोजीका सवाल जो था। हिन्दीका अपमान खुल्लमखुल्ला होता था। हिन्दी-नागरीका व्यवहार करनेवालोंकी हँसी अुडायी जाती थी। सारा भारत तबके अंग्रेजोंके राज्यमें अन्धेर नगरी बना हुआ था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रका अुदय हुआ। हिन्दीके अुत्कर्षका वह मंगलमय दिवस था। दबी हुअी जनताकी भाषा जीवित होकर अुठ खडी हुअी। भारतेन्दुके "निज भाषा अुन्नति अहै सब अुन्नतिको मूल" का मंत्रोपदेश ग्रहण कर हिन्दीकी सर्वांगीण अुन्नतिके लिये दो-तीन पागलोंकी आवश्यकता थी जो अेक हृदय होकर, अेक प्राण होकर, हिन्दीकी सेवा करें। वे युवक थे। काशी नगरीके किसी हाअीस्कूलके ही छात्र थे। तीन थे वे तरुण—बाबू श्यामसुन्दरदास, पंडित रामनारायण मिश्र और ठाकुर शिवकुमार सिंह। अिनके भगीरथ प्रयत्नसे, त्याग और तपसे काशीमें नागरी प्रचारिणी सभाकी स्थापना हुअी। सुनकर आपको हँसी आ जायेगी जब शुरू-शुरूमें अिस संस्थाको १ रुपया १४ आना मात्र मासिक चंदा मिलता था। सदस्य ही आपसमें यह चंदा अिकट्ठा कर लेते थे। काशीके धनी-मानी, पढे-लिखे सभ्य अिस संस्थाको निरा बच्चोंका खेल समझते थे। अिन तीनों नौजवानों और अुनके सहयोगियोंके लगातार अुद्योगसे हिन्दीकी अुन्नति बडी ही तीव्र गतिसे होने लगी। हिन्दी और नागरीके प्रचार-कार्यकी बाधाअें क्रमश दूर होने लगीं, ठीक अुसी तरह जैसे सूर्यके अुदय होनेके साथ शीत, जाडा, जडता जनतामेंसे भाग खडे होते हैं। मार्ग स्पष्ट दिखायी पडने लगता है और कमल खिल अुठते हैं जलाशयोंके। किसी भी महान् अुद्देश्यकी सिद्धि आरंभमें अपनी परिमित शक्ति और परिमित साधनोंसे ही होती है। नागरी लिपिके प्रचार तथा हिन्दी साहित्यके अुन्नयनमें सभाका कार्य अुत्तरोत्तर आगे बढा। राजकाजमें, अदालतोंमें, जनताके जीवनमें, शिक्षणमें, साहित्य, संस्कृति और कलाके विविध निर्माणमें जो महत्वपूर्ण स्थान आज हिन्दीको और नागरी लिपिको प्राप्त हुआ है अुसका सारा श्रेय काशीकी नागरी प्रचारिणी सभाको है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग भिसीका स्थापित किया हुआ है। १९१० में जो पहला पहला अधिवेशन हिन्दी साहित्य सम्मेलनका महामना मालवीयजी महाराजके सभापतित्वमें हुआ था, अिन पंक्तियोंके लेखकने अुस प्रभावशाली अधिवेशनको निकटसे देखा था, काशीकी नागरी प्रचारिणी सभा मूलमें अुस छोटेसे वटबीजकी तरह रही और अब वह महान

विशाल वट-वृक्षके रूपमें है जिसकी जड़ें जमीनके अन्दर कओ सौ फीट नीचे जम गयी हैं और जो अपनी शाखा-प्रशाखाओंमें अपनी सार्वदेशिक विपुलता, सृजनता, सघनता और विशालताको फैला चुका है। आज यह सस्था साठ बरसकी हो चुकी है। राष्ट्रभाषा हिन्दी और राष्ट्रलिपि नागरीके अधिकारोंकी रक्षाके लिअे, अुत्थान अेव विकासके लिअे जिस प्राचीन संस्थाने जो सतत संघर्ष किये है, सेवा और संघर्षमें आज भी वह सलग्न है। सबकी आदरणीया हैं, श्रद्धाकी पात्र है।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा आगामी वसत-पचमी (माघ सुदी-पचमी सवत् २०१०) को, अपनी हीरकजयन्ती मना रही हैं। यह हीरक जयन्ती अैसे सक्रान्ति कालमें मनायी जा रही है जब सम्पूर्ण राष्ट्रकी साहित्यिक अेवं सांस्कृतिक आवश्यकताओंको दृष्टिमें रखते हुअे राष्ट्रभाषाके माध्यमसे भारतीय राष्ट्रके नवनिर्माणका कार्य करना है।

हम सब चलें, चलिअे, पवित्र काशीपुरीके अिस भारतीय साहित्य और संस्कृतिके वसंत-हीरक महोत्सवमें सम्मिलित होनें।

अिस महती हीरक जयन्तीकी संपूर्ण सफलताके लिअे शुभ कामना!

—हृ॰ शा॰



हम आपसे कुछ कहना चाहते हैं!

'राष्ट्रभारती' का चौथा वर्ष जनवरी ५४ से ही शुरू होता है। चौथे वर्षका यह प्रथम अंक (जनवरी मासका) आपके हाथमें है।

'राष्ट्रभारती' के जिन प्रेमी ग्राहकोंका वार्षिक चन्दा अिस अंकके साथ पूरा हो जाता है, अुनसे हमारा नम्र निवेदन है कि वे अपना अगले वर्षका चंदा ६ रु मनीआर्डर द्वारा तुरन्त भेजनेकी कृपा करें। वार्षिक या छहमाही चंदा हर हालतमें मनीआर्डर द्वारा भेजना ही ठीक होगा। अिससे हमको और आपको सुविधा होगी। आपको अंक समयपर मिलेगा। वी० पी० और रजिस्ट्री चार्जकी झंझटसे आप और हम दोनों बचेंगे। आशा है, आप हमारी अिस प्रार्थनापर जरूर ध्यान देंगे।

दूसरा निवेदन यह भी है कि कमसे-कम अपने किसी अेक-दो पड़ोसी मित्रोंको भी ग्राहक अवश्य बना दें और अुनका सालाना चंदा मनीआर्डरसे भिजवा दें। यह 'राष्ट्रभारती' सबसे सस्ती, सुन्दर-साहित्यिक, सांस्कृतिक पत्रिका है, जो ठीक समयपर हर १ ली ता० को निकलती है।

अिस पत्रिकाके प्रचारमें आप अपना ज्यादा-से-ज्यादा सहयोग दें और अिस पत्रिकाको स्वावलंबी बनावें।

मनीआर्डरसे वार्षिक चंदा ६ रु० और छहमाही चंदा ३ रु० ८ आ०

नमूना अंकके लिये दस आना मात्र।

पता :— व्यवस्थापक—'राष्ट्रभारती', पो०—हिन्दीनगर (वर्धा, म० प्र०)

राष्ट्रभारतीके लेखकोंसे निवेदन

(१) 'राष्ट्रभारती' में प्रकाशनार्थ रचना आदि सामग्री स्वच्छ सुवाच्य लिखावटमें अथवा अच्छी टाअिप की हुअी कापी भेजनी चाहिये। प्रकाशन योग्य सामग्री जो कुछ भी आप भेजें वह बहुत भारी-बोझिल और खूब लंबी नहीं होनी चाहिये। कृपया अिसका खयाल रखें कि लिखावट स्वच्छ अेवं सुवाच्य होनी चाहिये।

(२) यह अच्छी तरह ध्यानमें रहे कि राष्ट्रभारतीमें प्रकाशनार्थ भेजी हुअी आपकी रचना अिसके पूर्व किसी हिन्दी पत्र-पत्रिकामें प्रकाशित न हो चुकी हो, और जो कुछ सामग्री भेजें वह 'राष्ट्रभारती' के लिये ही भेजें। 'राष्ट्रभारती' अपने लेखकोंको "पत्रपुष्प-पुरस्कार" भी भेंट करती है।

(३) अनुवादक महाशय किसी अनूदित रचनाको भेजनेसे पूर्व अुसके मूल-लेखकसे पत्र द्वारा अनुमति अवश्य प्राप्त कर लें, तभी अनूदित रचना हमारे यहाँ भेजें।

(४) आपकी स्वीकृत रचना संबंधी सूचना संपादक द्वारा आपको दी जायेगी और छपनेतक आपको प्रतीक्षा करनी होगी।

(५) अपनी अस्वीकृत रचनाको वापस मंगानेके लिये डाक-टिकट अवश्य भेजें अथवा आप अुसकी प्रतिलिपि अपने पास सुरक्षित रखें।

(६) लेख, रचना आदि प्रकाशन योग्य सम्पादकीय सारा व्यवहार अिस पतेपर करें —

संपादक : 'राष्ट्रभारती'

पोस्ट—हिन्दीनगर (वर्धा, मध्यप्रदेश)

मुद्रक तथा प्रकाशक— मोहनलाल भट्ट, राष्ट्रभाषा प्रेस,— राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

राष्ट्र भारती



फरवरी १९५४

[आवश्यक सूचना:— राष्ट्रभारती राज्योंके शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कालेजों और वाचनालयोंके लिअे स्वीकृत है। 'राष्ट्रभारती' का चौथा वर्ष आरंभ हो चुका है। राष्ट्रभारती समग्र भारतीय— अन्तर प्रान्तीय साहित्यका प्रतिनिधित्व करती है। अिसने हिन्दीकी मासिक पत्रिकाओंमें अपना अेक प्रतिष्ठित अेवं महत्त्वका स्थान बना लिया है। प्रेमी पाठकोंसे निवेदन है कि अेक अेक नया ग्राहक बनाकर अिस पत्रिकाकी ग्राहक संख्यामें वृद्धि करें और राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके अुत्साहको बढावें। विशारद और 'राष्ट्रभाषा रत्न' परीक्षोपयोगी अुच्च आलोचनात्मक-परिचयात्मक लेख भी प्रतिमास अिसमें छपेंगे। कृपया अिस बातको ध्यानमें रखें कि हमारी लिखित अनुमति लिये बिना कोअी सज्जन या प्रकाशक 'राष्ट्रभारती' के पिछले अंकोंमें या आगामी अंकोंमें प्रकाशित प्रांतीय साहित्यके लेखों, कहानियों और अेकांकी-नाटकों आदिको न छापें।

—मोहनलाल भट्ट, मंत्री, रा. भा. प्र. स. वर्धा]

—: विषय-सूची :—

राष्ट्र भारती

[भारतीय साहित्य और संस्कृतिकी मासिक पत्रिका]

—: सम्पादक :—

मोहनलाल भट्ट : हृषीकेश शर्मा

* वर्ष ४ * वर्धा, फरवरी १९५४ * अंक २ *

स्व. गुरुदेवकी वाणी !

राष्ट्रभाषाका यह तात्पर्य कदापि नहीं कि प्रान्तीय भाषाओंका वह नाश कर दे, न यह अुसका लक्ष्य ही है। राष्ट्रभाषा और प्रान्तीय भाषाओंके सम्बन्धके विषयमें स्वर्गीय विश्वकवि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर कहते हैं

"आधुनिक भारतकी संस्कृति अेक विकसित शत दल कमलके समान है जिसका अेक-अेक दल अेक अेक प्रान्तिक भाषा और अुसकी साहित्य संस्कृति है। किसी अेकको मिटा देनेसे अुस कमलकी शोभा ही नष्ट हो जाअेगी। हम चाहते हैं कि भारतकी सब प्रान्तिक बोलियाँ जिनमें सुन्दर साहित्य सृष्टि हुअी है, अपने-अपने घरमें (प्रान्तमें) रानी बनकर रहें प्रान्तके जनगणकी हार्दिक चिन्ताकी प्रकाश भूमि स्वरूप कविताकी भाषा होकर रहे और आधुनिक भाषाओंके हारकी मध्यमणि बनकर हिन्दी भारत भारती होकर विराजती रहे। मेरे विचारमें प्रान्तीय भाषाओंके पुनरुज्जीवनसे राष्ट्रभाषा हिन्दीकी कुछ भी क्षति नहीं होगी, अुसका अुत्कर्ष ही होगा।'



मृत्युंजयकी वन्दना

: श्री रामकृष्ण श्रीवास्तव :



हे मृत्युंजय मानव ! तुम अवतार बन गये,
दुनियासे उठते-उठते संसार बन गये !

विश्व-पुरुष तुम विश्व-शांतिका दीप जलाये,
पद-दलितोंको कंठ लगाने भूपर आये !
प्रेम-नेम धारण कर जा पहुँचे घर-घरमें,
करते-करते प्यार स्वयं तुम प्यार बन गये !

मानवताको कवच अहिंसाका पहनाया,
शोषित जनको सत्याग्रहका शस्त्र सुझाया !
संघर्षोंकी सरिताकी हिंसक लहरोंमें—
खेते-खेते नाव स्वयं पतवार बन गये !

धर्मोंसे ऊपर मानवताको पदवी दी,
तुमने मानवता प्राणोंके मोल खरीदी !
ईसा-बुद्ध-मुहम्मद तीनोंके स्वर साधे—
गाते-गाते तुम अखंड गुंजार बन गये !

मुक्त किया मानवको अपनी मुस्कानोंसे,
तुमने मस्तक कभी न फेरा बलिदानोंसे !
मंजिल, छाया बनकर पीछे चली तुम्हारे—
बलिपथके पग-चिन्ह स्वर्गके द्वार बन गये !

मानवताके शिल्पी तुम खुद मूर्ति बन गये,
मिटते-मिटते मानवताकी पूर्ति बन गये !
मानवताकी पूजामें सर्वस्व चढ़ाकर—
तुम मानवकी पूजाके अधिकार बन गये !

हे मृत्युंजय मानव तुम अवतार बन गये,
दुनियासे उठते-उठते संसार बन गये !

नागपुर]

आचार्य परमार्थ

श्री कृष्णकिंकर सिंह, अेम अे

प्राचीन कालमें चीन और भारतको सांस्कृतिक अेकताके सूत्रमें बांधनेका प्रयास जितना अिन दर्शोक गृहत्यागी भिक्षुओं और विद्वानोंने किया था अुतना राजा महाराजाओं तथा अुनके द्वारा भेजे गये राजदूतोंने नहीं। परमार्थ भारतके अेक असे ही मनीषि थे जिन्होंने आजसे १४०० वर्ष पूर्व चीनकी भूमिपर भारतीय साहित्य और संस्कृतिका प्रचार किया और अपने अुज्ज्वल चरित्र और विद्वत्ताकी धाक जमायी थी। पर हमारे विशाल भारतीय वाङ्‌मयमें अिस महान साधककी चर्चामें अेक पंक्ति भी लिखी नहीं मिलती। हमें चीनी वाङ्‌मयका सदा कृतज्ञ रहना चाहिअे जिसमें हमारे अिस साधक तथा और भी अनेक भारतीय साधकोंका जीवन वृत्त तथा कार्यकलापोंका विवरण अबतक सुरक्षित है।

जीवन वृत्त

परमार्थ अुज्जैनके निवासी थे। अुनका जन्म सन् ४९८ ई. में अेक विद्वान ब्राह्मण कुलमें हुआ था। वे बचपनमें बड़े मेधावी थे और अल्प समयमें ही नाना शास्त्रोंमें पारंगत हो गये थे। विद्याध्ययनके बाद अुन्हें घरका बंधन खलने लगा। अतः अेक दिन घरसे निकल पड़े। नाना स्थानोंका भ्रमण करते हुअे तथा ज्ञान विज्ञानसे अपनेको और समृद्ध करते हुअे वे पाटलिपुत्र पहुँचे। अुन दिनों मगधकी गद्दीपर अुत्तरकालीन गुप्त राजा थे। परमार्थ पाटलीपुत्रमें रहकर शास्त्र चर्चामें अपना समय व्यतीत करने लगे। थोड़े समयके भीतर अुनकी विद्वत्ता तथा अुज्ज्वल चरित्रकी धाक वहाँ जम गयी। अुत्तरकालीन गुप्त राजा भी अुनसे बड़े प्रभावित हुअे। संभवतः अुस समय जीवित गुप्त प्रथम मगधकी गद्दीपर थे। सन ५३० में अुनके दरबारमें दक्षिण चीनके ल्यांङ राजवंशके सम्राट वुतिका भेजा अेक मिशन पहुँचा। सम्राट वुति पक्के बौद्ध धर्मावलम्बी थे और चीनमें बौद्ध धर्मकी अुन्नति देखना चाहते थे। अतः अुन्होंने भारतसे बौद्ध धर्मग्रंथों तथा अेक प्रसिद्ध भारतीय पंडितको चीन ले आनेके लिअे मिशन भेजा था। अिस मिशनके अनुरोधपर जीवित गुप्त प्रथमने परमार्थसे चीन जानेके लिअे अनुरोध किया। परमार्थके हृदयमें भगवान बुद्धकी मैत्री तथा करुणाके अुपदेशोंका प्रचार अपने देशसे दूर जाकर करनेकी चाह तो थी ही अतः वे चीन जानेको राजी हो गये। चीन जानेके लिअे अुन्होंने अेक विशाल भारतीय वाङ्‌मयका संग्रह किया और अुसे लेकर सन ५४८ ई. में ताम्रलिप्ति बंदरसे समुद्र मार्ग द्वारा चीनके लिअे रवाना हो गये। दो वर्षोंकी यात्राके बाद वे सन ५४६ ई. में चीनके नानकिंग नगरमें पहुँचे। अिन दो वर्षोंके बीच वे संभवतः दक्षिण पूर्वके देशोंका भ्रमण करते हुअे चीन गये थे क्योंकि अुस समय अुन देशोंमें बौद्ध धर्म और भारतीय संस्कृतिका काफी बोलबाला था।

नानकिंगमें ल्यांग सम्राट वुतिने परमार्थका राजकीय स्वागत किया। वे वहाँ पाअुन प्रासादमें रहकर धर्म प्रचार तथा साथमें लाये हुअे ग्रंथोंका चीनी अनुवाद करनेमें लग गये। पर परमार्थके भाग्यमें शांतिसे बैठकर कार्य करना नहीं लिखा था। अुन दिनों चीनकी राजनीतिक अवस्था बड़ी डावाँडोल थी। राजनीतिक दृष्टिसे चीन अुत्तर और दक्षिण दो खण्डोंमें बँट गया था। दोनों खण्डोंमें राजकीय षड्‌यंत्र तथा राजवंशोंका परिवर्तन आम बात थी। ल्यांग राजवंशके विरुद्ध भी षड्‌यंत्र रचा गया और विद्रोह हुआ। राजधानी अिन षड्‌यंत्रों और विद्रोहोंका प्रधान केन्द्र होती थी। अतः, अराजकताके बीच परमार्थको भला कहाँ शांति मिल सकती थी। अुनके सरक्षक सम्राट वुतिके विरुद्ध सेनापति हुचिङने विद्रोह कर अुनकी हत्या कर दी। अैसी परिस्थितिमें परमार्थको नानकिंग छोड़ना पड़ा और वे अपने साहित्यका भंडार लिये आश्रयकी खोजमें

भटकते अेकदम दक्षिण चीन चले गये । सौभाग्यसे दक्षिणमें फु छुअेन्का शासक पक्का बौद्धधर्मावलम्बी था। अुन्होंने परमार्थका स्वागत किया तथा आश्रय दिया। अिस शासकने धर्म प्रचार करने तथा धर्मग्रंथोंका अनुवाद करनेकी सभी सम्भावित सुविधाअें दीं। पर वह युग ही शांतिसे काम करनेका नहीं था। दक्षिणमें भी अराजकता फैल गयी और परमार्थको अपना अधूरा काम छोडकर पुन आश्रयकी खोजमें भटकना पडा। सेनापति हु चिङ् त्याङ् सम्राट् वुतिकी हत्याकर नान्‌किङपर आधिपत्य जमा बैठा था सो अंतमें मारा गया। अल्पकालके लिअे पुन शांति कायम हुअी। परमार्थ नान्‌चिङ् लौटे और चङ् नान विहारमें रहकर कार्य करने लगे।

लेकिन चीनका राजनीतिक आकाश साफ नहीं हुआ था। अपना अपना प्रभुत्व स्थापित करनेके लिअे विभिन्न राजपुरुषों, मन्त्रियों और सेनापतियोंके बीच घात प्रतिघात चलते रहते थे। फल यह हुआ कि सन् ५५७ अी में छन् पा शिअेन् नामक अेक सेनापति ल्याङ् राजवंशको समाप्त कर स्वयं सम्राट् बन बैठा और छन् राजवंशकी स्थापना की। अिस अशांति और अराजकताके बीच करुणा और मैत्रीके प्रचारकका मन भला कहाँ तक रम सकता था। अुनका मन चीन छोडनेको अुतावला हो अुठा। पर अुनकी विद्वत्ता और अुज्ज्वल चरित्रकी धाक अितनी जम चुकी थी कि अुनके अनुयायी, शिष्य और प्रशंसक अुनके चीन छोडनेकी बातसे घबडा अुठे। सबके बार-बार अनुनय विनयके फलस्वरूप अुन्होंने चीनमें रहना स्वीकार किया और नान् चुअे नामक स्थानपर रहकर पुन धर्मोपदेश तथा अनुवाद कार्यमें जुट गये। स्वतंत्र अनुवादके अतिरिक्त अुन्होंने पहलेके बहुतसे अनूदित ग्रंथोंका संशोधन भी किया।

परमार्थकी विद्वत्ता तथा धर्मोपदेशकी ख्याति दिन दिन अधिक फैलने लगी। दूर-दूरसे लोग अुनका अुपदेश सुनने तथा अुनसे ज्ञान सीखने अुनके पास जुटने लगे। छन् राजवंश (सन् ५५७-५६९ अी) के सम्राट वर्नातिके राज्य कालमें नान्‌किङ् निवासियोंके अनुनय-विनयपर अुन्होंने नान्‌किङ्में कभी वर्षों तक धर्मशास्त्रपर अुपदेश दिये। पर परमार्थका मन चीनसे अुचट चुका था। अेक और अुनके शिष्यों तथा प्रशंसकोंके प्रेम और श्रद्धाका बंधन अुन्हें चीनमें रहनेको बाध्य कर रहा था तो दूसरी ओर चीनकी राजनीतिक अशांति और घात प्रतिघातका वातावरण अुनके मनको चीन छोडनेको प्रेरित कर रहा था। स्वदेशसे दूर परमार्थ अिसलिअे ही तो आये थे कि वे डटकर बौद्ध धर्मका प्रचार कर सकेंगे-युद्ध और हिंसारत मानवको मैत्री तथा करुणाका अुपदेशामृत पिलाकर सत्य कर्तव्य पथपर लगा सकेंगे। पर अुन दिनों चीनका राजनैतिक वातावरण अितना भयप्रद और हिंसायुक्त हो गया था कि शनै शनै -बौद्ध धर्मकी अवनति हो रही थी। सतत प्रयत्नोंके बाद भी परमार्थको अपने अुद्देश्यमें सफलता नहीं मिल रही थी। अत, वे स्वदेश लौटना चाहते थे और अिसी अुद्देश्यसे वे अेक दिन नावमें बैठकर समुद्र तटके अेक बन्दरगाहपर पहुँच गये। वहांसे अेक बडा जहाज पकडकर स्वदेशकी ओर प्रस्थान करनेको तैयार थे। परन्तु अुनके शिष्य भला अुनका पिंड कब छोडने वाले थे। अुन सबने बन्दरगाहपर ही अुन्हें जा घेरा। बाध्य होकर परमार्थको समुद्र-तटपर ही रुक जाना पडा।

समुद्र-तटपर परमार्थ कुछ दिनों तक टिके रहे और अपने अुपदेशोंसे लोगोंको तृप्त करते रहे। वहाँ अुनका मन नहीं लगा। अत, अेक दिन अुन्होंने अेक जहाज पकडा और स्वदेशकी ओर रवाना हो ही गये। पर स्वदेश लौटना अुनके भाग्यमें नहीं था। शायद परमार्थका जन्म चीनकी भूमिपर रहकर कार्य करनेके लिअे ही हुआ था। स्वदेश लौटनेके लिअे जहाजपर वे सवार तो हो गये पर प्रकृतिने अुनका साथ नहीं दिया। चीनके लोग प्रकृति पूजक अधिक होते हैं। प्रकृतिने अपने श्रद्धालुओंकी ही विनती सुनी। हवा प्रतिकूल हो गयी और जहाज आगे नहीं बढ सका, केन्टनके पास जाकर वह रुक गया। परमार्थ जहाजसे अुतरकर पुन चीनकी भूमिपर पाँव रखनेको बाध्य हो गये। अुनकी ख्याति सब जगह फैल चुकी थी अत वहांके शासकको परमार्थके आगमनकी बात मालूम हुअी तो अुन्होंने अुनका अत्यधिक स्वागत और अभ्यर्थना की। अिस

शासकके अनुरोधपर वे वहाँ बौद्ध धर्मका अुपदेश देने लगे। अुन्होंने विशेषकर वहाँके बौद्ध भिक्षुओंको महायानधर्मपर्याय शास्त्र तथा विज्ञप्तिमात्र सिद्धिके गूढ तत्त्वोंकी शिक्षा दी। अिस स्थानपर भी परमार्थके पास अेक बड़ी शिष्य मण्डली जुट गयी जो अुनकी सेवामें मगन लगी रहती थी। पर ज्ञानके अिस साधकको अपने मनमें सदा यह बात खटकती रहती थी कि अुन्हें अपने जीवनके अुद्देश्यमें सफलता नहीं मिली, अत अुनका जीवन व्यर्थ है। अिसीलिअे वे अेक दिन आत्महत्या करनेपर अुतारू हो गये। अपने गुरुके अिस कार्यसे शिष्यगण बड़े दुखित हुअे। दिन रात वे सजग और सजग होकर गुरुकी सेवामें जुट गये। पर परमार्थ अपने जीवनसे सर्वथा निराश हो चुके थे। अिस पार्थिव शरीरको त्याग देना ही अेकमात्र शान्तिका मार्ग अुनके लिअे रह गया था। अिस तरह स्वदेश और अपने परिजनोंसे दूर अपनी मातृभूमि लौटनेकी अतृप्त अिच्छा लिये हुअे अपने जीवनसे निराश होकर ज्ञानका यह साधक अपने अनगिनत शिष्यों, अनुयायियों और प्रशसकोंको रोते छोड़ ७१ वर्षकी आयुमें सन् ५६९ ई. में यह लोक छोड़ गया। अपने गुरुके प्रति चीनी शिष्योंमें जो अगाध श्रद्धा और भक्ति थी अुसे प्रकट करनेके लिअे कोअी भी पार्थिव साधन यथेष्ट नहीं था। पर वे अपने गुरुका स्मारक बनाना चाहते थे सो अुन लोगोंने परम्पराका पालन करते हुअे अुनकी समाधि-पर अेक स्तूप निर्माणकर सन्तोष किया।

परमार्थका प्रचार कार्य

परमार्थके चीन जानेका अुद्देश्य था मैत्री और करुणाके अुपदेश द्वारा हिंसक हो अुठे मानव समाजमें शान्तिकी स्थापना करना। वहाँ पहुँचकर अुन्होंने अुत्साह और लगनके साथ अपने अुद्देश्यकी पूर्तिके लिअे कार्य आरम्भ किया। अुनकी विद्वत्ता तथा मर्मस्पर्शी व्याख्यासे लोग अुनकी ओर आकर्षित हुअे और अुनपर प्रभाव भी पड़ा। पर जान पड़ता है कि परमार्थ जिस समय चीन गये थे वह अुनके अुद्देश्य-पूर्तिके लिअे अुपयुक्त समय नहीं था। चीनकी राजनीतिक अुथल पुथल अुनके मार्गमें सबसे बड़ा रोड़ा था। अिसलिअे अुन्हें अपने अुद्देश्यमें सफलता नहीं मिली और वे अपने जीवनसे निराश हो गये। अन्तमें अुन्होंने अपने अेक शिष्यसे कहा— "मैं जिस याचनाको लेकर यहाँ आया वह कभी भी पूरी नहीं होगी। अिस कालमें धर्मकी अुन्नति होगी अिसकी जरा भी आशा हम लोगोंको नही रखनी चाहिअे।" शान्ति प्रचारकके रूपमें परमार्थका कार्य और जीवन असफल रहा और यह असफलता-जन्य निराशा ही अुनकी मृत्युका कारण बनी।

परमार्थका साहित्यिक कार्य

शान्ति-प्रचारकके रूपमें जहाँ परमार्थ असफल रहे वहाँ साहित्य निर्माणके क्षेत्रमें अुन्हें अभूतपूर्व सफलता मिली। अुत्तर चीनके ल्याङ् (सन् ५४८-५५७ ई.) और छन् (सन् ५५७-५६९ ई.) दो राजवंशोंके समय कार्य करनेका अवसर मिला। राजनीतिक दृष्टिसे अिन दोनों राजवंशोंका समय यद्यपि अशान्तिका युग था और परमार्थको शान्तिसे बैठकर काम करनेका कम ही अवसर प्राप्त हुआ तथापि वे अितने प्रतिभाशाली और अगाध विद्वान् थे कि कम समयमें भी बहुत कार्य कर लिये थे। अुन दिनों चीन पहुँचनेवाले भारतीय विद्वानोंका प्रधान साहित्यिक कार्य होता था बौद्ध धर्मके ग्रन्थोंका चीनी अनुवाद प्रस्तुत करना। परमार्थने भी विशेषकर यही कार्य किया। अुनके कार्यकी महत्ता और अनुवादकके रूपमें अुनकी सफलताके सम्बन्धमें प्रसिद्ध जापानी विद्वान् श्री ताका कुसुकी प्रशसा अुल्लेखनीय है —
"अिनका अनुवाद-कार्य अत्यन्त ही प्रशंसनीय और सन्तोषप्रद हुआ है। असंग वसुबन्धु आदि विज्ञानवा-दियोंके प्रसिद्ध ग्रन्थोंको, अीश्वरकृष्णके भाष्य सहित साख्यकारिकाको तथा नागार्जुन, अश्वघोष, वसुमित्र और गुणमतिके कुछ ग्रन्थोंको अनुवाद रूपमें सुरक्षित रखनेके कारण ये सचमुच धन्यवादके पात्र हैं।" अुन्होंने जिन भारतीय ग्रन्थोंका चीनी भाषामें अनुवाद प्रस्तुत किया अुनमेंसे कुछ ही अब मूल रूपमें भारतमें प्राप्त हैं। अत अुनके अनुवाद-कार्यकी महत्ता अिससे आँकी जा सकती है कि अुन ग्रन्थोंके पुनरुद्धार करनेका अेकमात्र स्रोत चीनी अनुवाद है।

परमार्थके सैकड़ों वर्ष पहले बौद्ध धर्म महायान और हीनयान दो शाखाओंमें बँट चुका था। अुनके समय तक प्रत्येक शाखामें कितने ही सम्प्रदाय भी बन चुके थे। परमार्थ महायान शाखाके अनुयायी हैं। बहुतसे विद्वान् प्रसिद्ध कवि-दार्शनिक अश्वघोषको महायान शाखाका प्रवर्तक मानते हैं। अेक ग्रंथ जिससे अिस मतकी अधिक पुष्टि होती है वह है 'श्रद्धोत्पादशास्त्र'। क्योंकि कअी विद्वान् अश्वघोषको अिस ग्रंथका प्रणेता मानते हैं। अिनमें भूततथताकी धारणा त्रिकाय सिद्धान्त और सुखावतीव्यूह अिन तीन बातोंका प्रतिपादन बड़ी दृढ़तासे किया गया है। महायानशाखाके माध्यमिक सम्प्रदायके शून्यतावाद दर्शन और योगाचार सम्प्रदायके आलय विज्ञान सिद्धान्तका बीज रूप हमें श्रद्धोत्पाद शास्त्रके भूततथताकी धारणामें मिलता है। अिसी तरह यह ग्रंथ त्रिकाय सिद्धान्तकी व्याख्या तथा चर्चा करता है जिसमें करुणा, ज्ञान और कर्म अिन तीनोंका सम्मिलित रूपसे कार्यान्वित होना माना गया है। यह त्रिकाय सिद्धांत महायानकी अेक प्रमुख विशेषता है जिसके कारण वह हीनयानसे अलग माना जाता है। अिस श्रद्धोत्पाद शास्त्रमें सर्वप्रथम सुखावती व्यूह अर्थात् धर्म द्वारा निर्वाण प्राप्तिके सिद्धांतकी चर्चा हुअी है। अत. बौद्ध धर्ममें यह ग्रंथ अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अिस ग्रंथको सर्वप्रथम चीनी भाषामें अनुवाद करनेका श्रेय परमार्थको ही है। सुदूरपूर्वके देशोंमें बौद्धधर्मके विकासमें अिस अनुवादसे अत्यन्त सहायता मिली है। अिस अनुवादपर फा चाङ् नामक अेक चीनी विद्वान्ने बड़ा ही तथ्यपूर्ण और विशद भाष्य लिखा है जिसका प्रचार मूल अनुवादसे भी अधिक हुआ।

बौद्ध धर्मके अितिहाससे पता चलता है कि महायान शाखाके अेक प्रसिद्ध आचार्य असंगने योगाचार सम्प्रदायकी नींव डाली। असंगके छोटे भाअी वसुबन्धुने अपने भाअीके ग्रंथोंपर भाष्य लिखकर योगाचारके प्रचारमें ही हाथ नहीं बँटाया, प्रत्युत, स्वतंत्र रूपसे विज्ञानवाद दर्शनका प्रतिपादन, स्थापन और व्याख्या कर जहाँ अपनी प्रतिभासे लोगोंको कायल किया वहाँ अेक दार्शनिक शाखाके रूपमें योगाचारको सुदृढ़ बनाया। योगाचार और विज्ञानवादके सिद्धान्तोंको सर्वप्रथम चीनमें प्रवेश करानेका श्रेय परमार्थको है। यह काम अुन्होंने असंगके तो कम पर वसुबन्धुके कअी ग्रंथोंका चीनी भाषामें अनुवाद प्रस्तुत करके किया। परमार्थने असंगके महायान सम्परिग्रह शास्त्रका चीनी अनुवाद सन् ५६३ अी में किया और अुसके बाद अिस ग्रंथपर वसुबन्धुके लिखे भाष्यका भी अनुवाद किया। असंगके ग्रंथ 'अभिधर्म संगति सूत्र' का अनुवाद परमार्थके बहुत पीछे शुआन चाङने प्रस्तुत किया पर अिस ग्रंथपर वसुबन्धुके भाष्यका अनुवाद स्वयं परमार्थने किया था।

कहा जाता है कि वसुबन्धुने २८ ग्रंथोंकी रचना की थी। अिनमें कुछ दूसरे आचार्योंके ग्रंथोंपर वसुबन्धुके लिखे भाष्य थे और कुछ स्वतंत्र रूपसे अुनके द्वारा प्रस्तुत ग्रंथ। और अैसे कुछ ग्रंथोंपर स्वयं अुनके लिखे भाष्य। परमार्थने वसुबन्धुके आठ ग्रंथोंका अनुवाद चीनी भाषामें किया। अिनमें सबसे प्रसिद्ध है अभिधर्मकोश-कारिका और अुसका भाष्य। ये दोनों ग्रंथ वसुबन्धुकी प्रतिभाकी स्वतंत्र अुपज हैं। बहुत दिनोंतक अिन दोनोंका मूल संस्कृत रूप अप्राप्य था पर सौभाग्यसे अब मिल गया है। अिन ग्रंथोंमें वसुबन्धुने अपने विज्ञानवाद दर्शनका प्रतिपादन और व्याख्या बड़ी ही विद्वत्ता और तर्कपूर्ण ढंगसे की है। परमार्थके लगभग ८० वर्ष बाद शुआन् चाङने पुन अिन दोनों ग्रंथोंका अनुवाद चीनी भाषामें प्रस्तुत किया। वसुबन्धुके दूसरे प्रसिद्ध ग्रंथ जिसका अनुवाद परमार्थने किया वह था 'विज्ञप्तिमात्र सिद्धि' या विंशतिका। अिसमें वसुबन्धुने अपने विज्ञानवादके सिद्धान्तको संक्षिप्तरूपसे प्रतिपादित किया है। परमार्थके बाद भी अिस ग्रंथके दो चीनी अनुवाद हुअे। अिन ग्रंथोंके अतिरिक्त परमार्थने वसुबन्धुके 'मध्यान्त विभाग शास्त्र', 'तारक शास्त्र', 'बुद्धगोत्र शास्त्र', 'बुद्धके अंतिम अुपदेशोंपर लिखा गया शास्त्र' आदिका भी अनुवाद किया। अिन ग्रंथोंकी विशेषताकी चर्चा अिस छोटे निबंधमें संभव नहीं। अिनमेंसे अधिकांशके मूल संस्कृत रूप लुप्त हो गये हैं और हम लोगोंकी जानकारीका अेक मात्र साधन चीनी और तिब्बती अनुवाद है।

वसुबन्धुके ग्रंथोंका चीनी अनुवाद करनेके अतिरिक्त परमार्थने जो सबसे प्रसिद्ध काम किया वह है चीनी भाषामें अुनकी लिखी हुअी वसुबन्धुकी जीवनी। अिसके अभावमें हम लोग वसुबन्धुके जीवनके संबंधमें अुनके नामको छोड़कर और कुछ नहीं जान पाते। वसुबन्धुकी जीवनी लिखते हुअे प्रसंगवश परमार्थने अुनके

बड़े भाई असंगके जीवनपर भी काफी प्रकाश डाला है। परमार्थके अिस कार्यकी महत्ताके सम्बन्धमें प्रसिद्ध जापानी विद्वान् ताका कुसु के मतका निम्न अुद्धरण यथेष्ट है— "परमार्थके जिस कार्यका सबसे अधिक मूल्य है वह है अुनकी लिखी वसुबन्धुकी जीवनी। अिससे अैसे अनेक विस्मृत आंकड़ों तथा तथ्योंका पता चलता है जिनके जाननेका कोअी दूसरा साधन नहीं शेष रहा था। साथ-साथ अिससे साधारण रूपसे भारतीय साहित्यपर तथा विशेष रूपसे सांख्य सम्प्रदायके बौद्ध धर्मके अितिहासके अन्धकार युगपर असम्भावित प्रकाश पड़ता है।"*

आचार्य दिङ्नाग बौद्ध तर्कशास्त्रके जनक माने जाते हैं। अुनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'आलम्बन-परीक्षा' या 'आलम्बन प्रत्ययध्यान शास्त्र' का अनुवाद भी परमार्थने चीनी भाषामें प्रस्तुत किया पर दूसरे नामसे। बादमें ह्युआन् चुआङ्ने भी अिस ग्रंथका अनुवाद किया। परमार्थ और ह्युआन् चुआङ् दोनोंके अनुवाद मिलानेपर पता चलता है कि ये दोनों अेक ही ग्रंथके अनुवाद हैं। पर परमार्थने ग्रंथका चीनी नाम दिया है जिसका अर्थ होता है 'अर्थ विचार-रजपर लिखा गया शास्त्र।'

परमार्थने सांख्य दर्शनके ग्रंथोंका भी चीनमें प्रवेश कराया। 'सुवर्ण सप्तति शास्त्र' नामक ७० श्लोकोंकी सांख्य कारिका और अुसके भाष्यका अुन्होंने अनुवाद किया। अिस कारिका और भाष्यके लेखकके संबंधमें विद्वानोंमें बड़ा मतभेद है। अनुवादके प्रारम्भमें अेक टिप्पणी है जिसमें ग्रंथके रचयिताका नाम ऋषि कपिल बताया है। पर अन्तमें अिस बातका अुल्लेख है कि ऋषि कपिलके शिष्य आसुरीके शिष्य पञ्चशिख (कापिल्य) ने ६०००० श्लोकोंमें अिसकी रचना की। जिनमेंसे अीश्वर कृष्ण नामक ब्राह्मणने ७० श्लोकोंको चुनकर अलग किया। 'सुवर्ण सप्तति शास्त्र' की कारिकायें अीश्वरकृष्णकी ७२ कारिकाओंके 'सांख्य सप्तति' नामक ग्रंथका, जो संस्कृतमें मिलता है सारांश है। अिस ग्रंथके भाष्यको कोअी गौडपाद रचित भाष्य और कोअी अीश्वरकृष्णको ही कारिकाओं और भाष्य दोनोंका रचयिता मानते हैं। परमार्थने आचार्य गुणमतिके 'लक्षणानुसार शास्त्र' नामक सांख्य दर्शनके ग्रंथका भी अनुवाद किया। यह ग्रंथ मूल संस्कृतमें नहीं मिलता है। यहाँ तक कि अिसका मूल संस्कृत नाम भी नहीं ज्ञात है। यह 'लक्षणानुसार शास्त्र' नाम चीनी अनुवादमें दिये चीनी नामका संस्कृत रूप है।

अूपर कहा गया है कि परमार्थको दक्षिण चीनके स्याङ और छन् दोनों राजवंशोंके समय कार्य करनेका अवसर मिला था। अपने चीन प्रवासके २३ वर्षोंमें अुन्होंने ७० ग्रंथोंका अनुवाद प्रस्तुत किया। अूपरके जीवनवृत्तसे पता चलता है कि अुन्हें अशान्तिपूर्ण जीवन चीनमें बिताना पड़ा था। २३ वर्षके अशान्त जीवनके बीच ७० ग्रंथोंका अनुवाद प्रस्तुत करनाही पर्याप्त प्रमाण है कि वे कितने मेधावी विद्वान् और कर्मठ व्यक्ति थे। अगर अुनका जीवन शान्तिसे चीनमें व्यतीत होता तो न मालूम और कितने अमूल्य ग्रंथ-रत्न चीनी वाङ्मय रूपी हारमें और पिरोये जाते। अूपर अुनकेद्वारा अनूदित कुछ प्रसिद्ध ग्रंथोंकी ही चर्चा हुअी है। अिनके अतिरिक्त अुन्होंने नागार्जुन, अश्वघोष, वसुबन्धु, वसु-मित्र आदि महायानके महान् आचार्योंके ग्रंथोंका भी अनुवाद प्रस्तुत कर अुन्हें मूल संस्कृतमें नहीं तो कमसे कम चीनी भाषामें सुरक्षित रख छोड़ा है और अिस तरह अुन्हें सदाके लिअे लुप्त होनेसे बचा लिया है।

परमार्थने जहाँ अपने अुज्ज्वल चरित्र और धार्मिक आस्थाके कारण चीनके बौद्ध धर्मप्रेमी जन समूहकी श्रद्धा तथा प्रेम प्राप्त किया वहाँ अुन्होंने अपनी साहित्यिक प्रतिभा और कार्यदक्षताके कारण चीनके सुधीवृन्द तथा मनीषियोंको भी अपनी ओर आकर्षित कर अुन्हें अपना प्रशंसक बना लिया। अिस साधकने बौद्ध धर्मके विज्ञानवादका प्रचार कर वहाँ अिस सिद्धान्त-की जड़ जमा दी। कितने ही चीनी विद्वान् अुनसे प्रभावित होकर बौद्ध धर्मके प्रचार तथा बौद्ध ग्रंथोंके अनुवाद कार्यमें लगे। राजनीतिक क्षेत्रको छोड़ अुनका प्रभाव अुस कालके चीनके धार्मिक, साहित्यिक, सांस्कृ-तिक आदि क्षेत्रोंपर अितना पड़ा कि चीनके बौद्ध धर्मके अितिहासमें वह युग ही परमार्थका युग कहलाता है। अिस प्रकार भारतीय संस्कृतिको चीनमें फैलाने तथा अुसे समृद्ध करनेकी दिशामें परमार्थकी सेवा अमूल्य रही है जो हमारे लिअे गर्व तथा अनुकरण करनेकी वस्तु है।

[बरहज, बिहार

* अिस ग्रंथका अनुवाद चीनी भाषासे हिंदीमें चीन-भवन, शान्तिनिकेतनके प्रो० शान्तिभिक्षु शास्त्रीजीने किया है। देखिअे—'विशाल भारत', अक्टूबर, १९४६।

'३० जनवरी' की पुण्यस्मृति-लहरी

:श्री आर. के. षण्मुखम् चेट्टियार:

[स्वर्गीय श्री आर के. षण्मुखम् चेट्टियारका जन्म कोयमुत्तूरके अेक प्रतिष्ठित चेट्टियार कुलमें हुआ था। आपकी विद्वताकी प्रशंसा दुनियाके बडे-बडे विद्वान करते हैं। आप अपनी मातृभाषा तमिलके बडे पंडित थे। आपकी लेखनीने अनेक प्रकारके राजनीतिक, सामाजिक साहित्यिक लेख सृजन किये हैं। 'शिलप्पधिकारम्' तमिल साहित्यके पंच महाकाव्योंमें सबसे अधिक प्रसिद्ध है। अुसके 'पुहार कांड' पर आपने जो टीका की है, वह बहुत ही अुत्तम मानी जाती है। तमिलके अधिकारी विद्वानोंने अुनकी भाषा व शैलीकी बड़ी प्रशंसा की है। आप साहित्यिक ही नहीं, संगीत, नृत्य आदि ललित कलाओंके भी बडे प्रेमी थे। संगीतके रसानुभवके लिअे साहित्य भी जरूरी है-अिस पक्षके आप समर्थक थे और 'तमिल अिसै' अर्थात् तमिल संगीतके आन्दोलनके भी आप प्रवर्तक थे।

राजकाज दरबारके क्षेत्रमें भी आपका बड़ा हाथ रहा है। आप भारतकी अनेक रियासतोंके दीवानके पदपर भी आसीन रहे और शासनकी बागडोर सुचारु रूपसे संभाली। संसारके अिनेगिने अर्थशास्त्रविशारदोंमें आपका प्रमुख स्थान रहा है। भारतके स्वतन्त्र होनेपर, भारत सरकारके वित्तमंत्री भी रहे।

आप बडे मिलनसार थे। मित्र और मेहमानोंकी खातिरदारी करनेमें बडेही कुशल!

स्वर्गीय चेट्टियारका राष्ट्रपिता बापूके साथ बड़ा निकट सम्बन्ध रहा। बापूजीके निधनके बाद, चेट्टियारजीने जो संस्मरण लिखा है अुसीका हिन्दी-रूपान्तर, 'राष्ट्रभारती'के पाठकोंके सम्मुख हम प्रस्तुत कर रहे हैं, श्री रा वीलिनाथनजी द्वारा अनूदित राष्ट्रपिता पू बापूकी स्मृति और श्रद्धांजलिके रूपमें। —सम्पादक]

मैं अुस वक्त मदरासके कालेजमें पढ रहा था। दक्षिण अफ्रीकाके प्रवासी भारतीयोंकी जो दीन हीन शोचनीय दशा थी, अुसकी मार्मिक जानकारी भारतीयोंको देनेके हेतु गांधीजी मदरास आये थे। 'सुकुराम-चेट्टी' गलीमें श्रीयुत जी. अे. नटेशनके घरमें अुनसे मिलनेके लिअे हम कुछ छात्र गये। सफेद अंगा, सफेद काठियावाडी पगडी और कंधेपर अेक स्वच्छ दुपट्टा पहने हुअे थे। फर्शपर बिछे कालीनपर बैठे हुअे थे। हम सब छात्र अुन्हें चारों तरफसे घेरकर बैठ गये। वे धीमी आवाजमें दक्षिण अफ्रीकाके प्रवासी भारतीयोंके सम्बन्धमें बातें कर रहे थे। अुस दिन हमने जिन महाशयको देखा था, वे काठियावाड गुजरातके अेक साधारण सामान्य मनुष्यही दिखलायी दिये। अुस वक्त हमारे मनमें यह विचार लेशमात्रभी नहीं अुठा कि हम महान अवतारी पुरुषसे बातें कर रहे हैं।

× × ×

अुसके बाद दस साल गुजर गये। महात्मा गांधी तमिलनाडमें भ्रमण कर रहे थे। मालूम हुआ कि कोयमुत्तूर भी पधार रहे हैं। अुस वक्त मैं अुस नगरकी नगरपालिकाका अेक सदस्य था। नगरपालिकाकी सभामें जब यह प्रस्ताव आया कि महात्माजीको स्वागतमें अेक बढिया मानपत्र दिया जाअे तब अुस प्रस्तावका जोरदार विरोध हुआ। तरह-तरहके आक्षेप अुठे। सदस्योंने यह दलील पेश की कि महात्माजी तो असहयोग आंदोलनके प्रवर्तक हैं और अुसका जोरशोरसे प्रचार कर रहे हैं। नगरपालिकाका कर्तव्य तो यह है कि वह सरकारको अपना पूरा सहयोग प्रदान करे। अैसी हालतमें वह अेक असहयोगीको मानपत्र देकर अुसका स्वागत कैसे कर सकती है?

पर बहुतसे सदस्योंने अुस दलीलका अुत्तर यों दिया, 'यद्यपि हम असहयोग आन्दोलनके पक्षपाती नहीं, फिरभी अुनके मद्यपान निषेध, अस्पृश्यता निवारण,

खादीका प्रचार आदि समाजोपयोगी सुधारोंके कामोंको हम क्यों न महत्त्व दें ?"

मैंने कहा, "स्वागत-मानपत्रमें हम केवल प्रशंसाके शब्द न लिखकर, अपने आन्तरिक सच्चे विचार स्पष्ट रूपसे रख दें और यह भी निस्संकोच कह दें कि हम आपके असहयोग आंदोलनका विरोध करते हैं।'

यह सुनकर अनेक सदस्योंने यह विचार प्रगट किया कि अिस ढंगका मानपत्र देना महात्माजीका अपमान करना होगा, अिससे मानपत्र न देना ही अच्छा है।

मेरा विचार यह था कि महात्माजी सत्यवादी हैं। हम अपने मनकी बात बगैर लुकाये छिपाये कह दें तो वे जरूर ही खुश होंगे।

आखिर अधिकांश सदस्य मेरी रायसे सहमत हुअे और मेरे कहे अनुसार मानपत्र लिखाने और प्रदान करनेको राजी हो गये। प्रस्ताव नगरपालिकामें सर्व-सम्मतिसे स्वीकृत हुआ।

मानपत्र तैयार करनेका कार्य मुझे ही सौंपा गया। अिस प्रकारके मानपत्रोंमें प्रशंसाके जो शब्द कहे जाते हैं अुन्हें मैंने थोड़ेमें और नगर-पालिकाके ज्यादातर सदस्योंके विचारों और विश्वासोंको स्पष्ट शब्दोंमें रखा। –

"आपके असहयोग आंदोलनपर हमें जरा भी विश्वास नहीं। सहयोग द्वारा ही हमारा देश स्वतन्त्र हो सकता है। लेकिन सुधारके जो कार्य आपने अपने हाथमें लिये हैं, अुनका हम हृदयसे स्वागत करते हैं। अस्पृश्यता निवारण, मद्यपान निषेध खादी प्रचार, ग्राम-सुधार जैसे कार्योंमें हम आपको अपना पूरा-पूरा सहयोग प्रदान करनेको प्रस्तुत हैं।"

अिस प्रकार मान-पत्र तैयार कर दिया गया। हम सब सदस्य अिस बातकी बड़ी अुत्सुकतासे बाट जोह रहे थे कि महात्माजी अिस नये ढंगके मानपत्रका क्या जवाब देते हैं ? परन्तु मैंने जो विचारा था, वही जवाब महात्माजीने दिया।

महात्माजीने मानपत्रके अुत्तरमें कहा, "अधिकांश लोगोंका यह ख्याल होगा कि आज मैं अपने विरोधियोंके बीचमें हूँ। लेकिन मैं यह समझता हूँ कि कोयमुत्तूरकी नगरपालिकाके सदस्य मेरे सच्चे दोस्त हैं। मानपत्रमें प्रशंसाके प्रचलित शब्द नहीं कहे गये, मुँहके सामने मीठी बोलनेकी रीति या नीति नहीं बरती गयी। वरन् अपने आंतरिक विचार निस्संकोच भावसे प्रकट किये गये हैं, यह देखकर मुझे अपार हर्ष हो रहा है। मेरे असहयोग-आन्दोलनके प्रति आप लोगोंको विश्वास नहीं हो तो अुसे अेकदम बिल्कुल भूल जाअिये। अिसका मुझे जरा भी दुख नहीं होगा। मैं यही पर्याप्त समझता हूँ कि आप लोगोंको सुधारके अुन कार्योंमें पूरा विश्वास है, जिनकी ओर आप लोगोंने अपने मान पत्रमें अिशारा किया है। मैं चाहूँगा कि आप लोग अुन कामोंमें लग जाअें, जिससे मेरे मनको तसल्ली मिल सके।'

× × ×

सन् १९२६में फिर अेकबार महात्माजी कोयमुत्तूर पधारे। तब अेक हफ्तेके लिअे मेरे ही घरपर ठहरे थे। अिस समय अुनसे निकटतम परिचय प्राप्त करनेका सुयोग हाथ लगा। नित्य प्रातःकाल वे टहलने जाया करते थे। मैं भी अुनके साथ हो लिया करता था।

अेक दिन किसी कारणवश मैं अुनके साथ नहीं जा सका। सुबह आठ बजे वापस आये तो अुन्होंने कहला भेजा 'मैं तुरन्त तुमसे मिलना चाहता हूँ।" बात जाननेके लिअे मैं अुनके कमरेमें पहुँचा।

अुन्होंने पूछा, "यहाँके पुलिसके अधिकारीको तुम जानते हो ?"

मैंने अुत्तर दिया, "हाँ, जानता हूँ। पर अधिक मेल-जोल नहीं।"

"तुम्हें अभी पुलिसके अुस अधिकारीके पास दूत बनकर जाना होगा!"---अुन्होंने आदेश दिया।

मेरी समझमें तो कुछ नहीं आया कि मामला क्या है ? पूछनेपर मालूम हुआ कि जिस वक्त गांधीजी सुबह घूमने सड़कपर जा रहे थे, अुसी वक्त अेक गरीब तेली भी कांवरके दोनों सिरोंपर तेल भरे

टीनके डब्बे लटकाये जा रहा था। सामनेसे पुलिसका अेक दल तेजीसे दौड़ता हुआ आ रहा था। तेली बीच रास्ते जा रहा था। अेक पुलिसवालेने, जो तेज चाल चल रहा था, धक्का देकर तेलीको गिरा दिया। तेली अचकचाकर नीचे गिर पडा और टीनमें भरा तेल भी जमीनपर बह गया। पुलिसवालोंमेंसे किसीने अिस बातकी चिन्ता नही की कि तेल लुढक गया है। किसीने जबानी हमदर्दी भी नही जाहिर की। अुलटे कुछ पुलिसवालोंने ताली पीटकर अुसकी हँसी अुडायी। महात्मा जीने यह दृश्य देखा तो अुनके दिलको बडी ठेस पहुँची और तेलीको साथ लेकर वे मेरे घर आ पहुँचे।

सारी घटना अुनके मुखसे सुननेपर मैंने अुनसे पूछा, 'क्या अिसके लिअे नालिश करें?"

अुन्होंने अुत्तर दिया, "नालिश करनेकी कोअी जरूरत नहीं। पुलिसके अुस अधिकारीके पास शान्तिदूत बनकर तुम जाओ और अिसकी निवृत्तिका कोअी मार्ग खोज निकालो।'

क्या खोज निकालूँ?— मैं सोच-विचारमें पड गया। गांधीजीने मुझे विचार-मग्न देखकर कहा, "अुस पुलिसवालेको, जिसने गरीब तेलीका तेल फेंक देनेका जुल्म किया है और पुलिसके अुच्च अधिकारीको, जिसके मातहतने अैसा जुल्म किया है, चाहिअे कि तेलीसे माफी माँगे और तेलका दाम चुकाकर नुकसान भर दे। यही काम तुम्हें करना होगा।"

वहाँके पुलिस अधिकारी तो सभी गोरे थे और स्वभावके भी बडे तीखे! मुझे अपने दौत्यकार्यमें सफलता मिलनेकी आशा नहीं थी। फिर भी मैं निराशा लेकर पुलिसके अुस अधिकारीके पास पहुँचा और सारी बातें कह सुनायीं। गांधीजी अिसका किस प्रकार न्याय चाहते हैं?— यह बात भी बता दी। पर पुलिसके अधिकारी वह बात मानने ही न थे।

मैंने अुनसे कहा, "आप स्वयं महात्माजीके पास चलकर अपनी बात कह दें तो बडा अच्छा हो।"

वे अनमने होकर बडबडाते हुअे मेरे साथ चलनेको तैयार हुअे। दस मिनट तक महात्माजी और अुनमें बातें हुअीं। गोरे पुलिस अफसरकी अेकदम कायापलट गयी। वे स्वयं तेलीसे माफी माँगने और तेलका दाम चुका देनेको तैयार हो गये!

गांधीजीका प्रेम-मार्ग कैसा सद्य फल देनेवाला है?— मैंने तब अपनी आँखों देखा।

* * *

अुसी दिन शामको महात्माजीका अेक फोटो हाथमें लेकर, अुसपर अुनका हस्ताक्षर लेनेके विचार से अुनके कमरेमें गया।

मेरी अिच्छा मालूम होनेपर अुन्होंने पूछा "तुम चाहते हो कि मैं अिस फोटोपर अपना हस्ताक्षर करूँ! क्या तुम अुसका अुचित मूल्य देनेके लिअे तैयार हो?"

देखें, ये कितने रुपये माँगते हैं?— यह सोचकर मैंने अुनसे पूछा, "मैं तैयार हूँ। हाँ, बताअिअे, आप अिसके लिअे कितनी रकम चाहते हैं?"

"मैं तुमसे रुपयों-पैसोंकी आशा नहीं रखता। पर मैं तुमसे अेक वचन चाहता हूँ। वह वचन दो तो वही अिसका अुचित मूल्य होगा!" अुन्होंने कहा।

मेरी समझमें कुछ नहीं आया कि वह वचन क्या हो सकता है? मैंने सोचते-सोचते पूछा, "मुझसे आप क्या कराना चाहते हैं?"

"तुम्हें यह वचन देना चाहिअे कि मैं रोज कमसे कम आधा घंटा चरखेपर सूत कातूँगा। क्या, तुम्हें मंजूर है?"

अुनके अिस प्रश्नपर थोडी देरतक अच्छी तरह सोच लेनेके बाद मैंने अुत्तर दिया कि "यह काम मुझसे नहीं हो सकेगा।"

मैंने समझा था कि मेरा यह जवाब अुन्हें अवश्य असन्तुष्ट कर देगा। लेकिन अुन्होंने कहा, "तुम्हारे अिस निर्भीक अुत्तरकी मैं दाद देता हूँ। तुमने अपनी असमर्थता प्रकट कर अच्छा ही किया। मैं तो यह कहूँगा कि वचन देकर अुससे मुकर जानेसे यह अुससे कहीं बेहतर है। मैं तुमसे नाराज नहीं हूँ, बहुत खुश हूँ।"

मैंने अुनसे पूछा, "आपसे तो मैंने कोअी बात छिपायी नहीं। सच-सच बता दिया। अब किसीको अपने हस्ताक्षरका दाम मानकर अिस फोटोपर आप हस्ताक्षर करके नहीं दे सकेंगे ?"

"मैं भी बनिया हूँ और तुमभी बनिया हो। आखिर अिस व्यापारमें तुम्हीं जीते!" – यह कहकर हँसते हुअे अुन्होंने फोटोपर हस्ताक्षर कर दिये।

*   *   *

तिरुविताकूर (ट्रावनकोर) रियासतमें हरिजनोंके लिअे मन्दिर खोले जा रहे थे। अिस अुत्सव के लिअे महात्माजी तिरुवनन्तपुरम् (ट्रीवेंड्रम) गये थे। अुस समय मैं अर्नाकुलं कोचीन रियासतमें दीवानके पदपर था। तिरुविताकूरके मन्दिर-प्रवेशका अुद्घाटन देखकर कोचीनमें भी आन्दोलन जोर पकड़ने लगे। अिस विषयमें मेरा अुत्साह यद्यपि अधिक मात्रामें था, तथापि कोचीनके महाराज बड़े ही कट्टर, वैदिक परंपराके पालनहार थे। हरिजनोंके मन्दिर-प्रवेशकी बात वे कदापि माननेवाले न थे। मेरी दशा साँप-छछूँदरकी-सी हो गयी। तिरुवनन्तपुरमसे महात्माजीने मुझे अेक तार भेजा था।

अुन्होंने अुस तार द्वारा मुझसे पूछा था, "कुछ लोग अिस बातपर बड़ा जोर देते हैं कि हरिजनोंके मन्दिर प्रवेशके प्रचारके लिअे मैं कोचीन रियासतमें भी आअूँ। तुम अपना दीवान पद भूल जाओ और अेक मित्रके नाते मुझे यह सलाह दो कि मैं अिस वक्त क्या करूँ ? अपनी आतरिक रायसे जल्दी से जल्दी मुझे अवगत कराओ। मैं कोचीन आअूँ या नहीं ?"

गान्धीजीका तार देखकर मेरी समझमें नहीं आया कि क्या जवाब दूँ। किसीके मनमें भी कैसे यह बात अुठ सकेगी कि महात्माजीसे कहा जाअे कि आप मेरे यहाँ न आअिअे ? पर अुनसे यह भी कैसे कहें कि आप आअेंगे, तो कोचीन राज्यमें आन्दोलनके जोर पकड़नेका अन्देशा है और वयोवृद्ध कट्टर वैदिक विचारवाले कोचीन-महाराजके दिलको ठेस पहुँचनेकी संभावना है। अिन समान बातोंपर खूब विचार कर लेनेके बाद मैंने अुत्तर दिया।

"यह हमारा अहोभाग्य है कि आप कोचीन पधारना चाहते हैं। मुझे भी बड़ी प्रसन्नता होगी। लेकिन वृद्ध महाराजका दिल टूट जाअेगा—चिन्ता अिसी बातकी है। सारी बात आप खूब सोच-समझ लें और जैसा अुचित समझें करें।"—तारका जवाब मैंने तारसे दे दिया।

तुरन्त गान्धीजीका प्रत्युत्तर भी आ गया। अुसमें लिखा था — "कोचीनकी हालतमें मैं भलीभाँति परिचित हूँ। तुम्हारी श्रम दशा भी भली भाँति समझ पाता हूँ। अब मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं अिस बार कोचीन नहीं आअूँगा।"

×   ×   ×

देहलीमें वित्तमंत्रीके पदपर मैं कार्य कर रहा था। बंगालसे महात्माजी देहली आ पहुँचे थे। दूसरे ही दिन अुनके दर्शन करनेके विचारसे मैं बिड़ला-भवनमें पहुँचा। सहज विनोदी हँसी हँसते हुअे अुन्होंने मेरा स्वागत तमिल बोलीमें किया, "आअिअे, साहब! आअिअे! बैठिअे! कुशलसे तो हैं न ?"

मैंने भी तमिलमें कहा, "हाँ, स्वामी! कुशलसे हूँ। मैं प्रार्थना करता हूँ कि आजसे आपको मेरे साथ तमिल ही में बोलना चाहिअे।"

यह सुनकर वे खिलखिलाकर हँसे। अिससे ज्यादा तमिल बोलना वे जानते न थे। दक्षिण अफ्रीकामें तमिल भाषा-भाषियोंके साथ काम करते हुअे अुन्होंने तमिलके थोड़ेसे शब्द सीख लिये थे। आगेकी बातचीत अंग्रेजीमें हुअी।

अुन्होंने कहा, "स्वतन्त्र भारतमें तुम मन्त्री-पद ग्रहण कर चुके हो। अपने सहयोगी मंत्रियोंको तुम्हें तमिल सिखाना चाहिअे। अगर यह काम तुमसे नहीं हो सके तो, तुम्हें हिन्दी सीख लेनी चाहिअे। समझे ?"

मैंने कहा, "मुझे हिन्दी सीखना आसान नहीं मालूम होता। तीस वर्षोंसे आपसे निकट संबन्ध रखनेवाले राजाजी (राजगोपालाचार) ही जब ठीक तरहसे हिन्दी बोलना नहीं सीख पाये तो मुझसे यह काम कैसे संभव हो सकता है ?"

यह सुनते ही गांधीजी ठठाकर हँस पड़े।

×   ×   ×

देहलीमें महात्माजीने अनशन आरंभ कर दिया था। हिन्दुस्तान और पाकिस्तानके बीचके विभाजनके अवसरपर यह निर्णय हुआ था कि हम पाकिस्तानको पचपन करोड रुपये देंगे। अिस रकमको लेकर भारत सरकार और पाकिस्तान सरकारके बीच तकरार अुठ खडी हुअी।

अनशनके दूसरे ही दिन मुझे अिस बातकी सूचना मिली कि बापूजी मुझसे मिलना चाहते हैं। सवेरे नौ बजेके करीब मैं बिडला-भवनमें पहुँचा।

देहलीमें तब सख्त सरदी पड रही थी। बिडला-भवनकी फुलवारीमें बापूजी अेक पलंगपर धूप सेवन करते हुअे लेटे थे। मेरे जाते ही, श्री जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल और डाक्टर मथाअी भी आ पहुँचे।

भारत और पाकिस्तानके बीच जो तनातनी खडी हो गयी थी अुसपर तीन घंटेतक वाद-विवाद हुआ। मैंने और सरदारने यह तर्क अुपस्थित किया कि कानून और पारस्परिक समझौतेके मुताबिक हम किसी तरह अिस समय वह रकम देनेको बाध्य नहीं। गान्धीजीने बडे गौर और सब्रसे हमारी बातें सुनी और धीमे स्वरमें अेक घंटेतक अिस बातकी तर्कपूर्ण विवेचना कर हमें समझाया कि यद्यपि मैं मान लूँ कि पाकिस्तान ही कसूरवार है और अुसका पक्ष कमजोर है, फिर भी मैं यही कहूँगा कि आप लोगोंकी मनोभावना हमारे भारतके अहिंसा धर्मके अनुकूल नहीं, बहुत ही प्रतिकूल है।

अुनकी बातें सुनते-सुनते हमारे मनमें यह विचार जड पकड गया कि हमारा फैसला ठीक नहीं है।

दूसरे ही दिन हमने 'कैबिनेट' की बैठकमें निश्चय कर लिया कि "पचपन करोड रुपये' तुरन्त पाकिस्तानके हवाले कर दिये जायें।

अिस बातचीतके समय तमाशेकी अेक बात हुअी। धूप तेज हुअी तो मैंने अपना रूमाल निकालकर सिरपर बाँध लिया। यह देखते ही बापूजीने न जाने, धीमे स्वरमें पंडित जवाहरलालजीके कानोंमें क्या कहा? झट जवाहरलालजी अुठकर भवनके अन्दर गये। लौटने हुअे अुनके हाथमें टोकरी जैसी अेक बडी टोपी थी, जिसे ब्रह्मदेशवाले धूपसे बचनेके लिअे अिस्तेमाल करते हैं, अुन्होंने अुसे महात्मा गांधीके हाथोंमें रख दिया। मैंने सोचा कि महात्माजी धूपकी गरमी सहन न कर सकनेके कारण वह टोपी पहनने जा रहे हैं। पर अुन्होंने वह टोपी मेरे सामने बढा दी और कहा, "अिसे पहन लो न!"

* * * *

१९४८ की तीस जनवरीको साढे पाँच बजे होंगे, मैं देहलीके अपने कार्यालयमें बैठा कोअी काम कर रहा था। मेरे सेक्रेटरी दौडे हुअे आये और काँपते स्वरमें बोले, "महात्माजीपर किसीने गोली चला दी!"

अुस समय मेरी समझमें कुछ नहीं आया कि अुन्होंने क्या कहा? मेजपरके सारे-के-सारे कागजात जैसेके तैसे छोडकर मैं बाहर दौडा आया और अपनी गाडीमें बैठकर बिडला-भवनकी ओर चल पडा। अिस समय वहाँ ज्यादा भीड नहीं लगी थी। मैं दौडा हुआ महात्माजीके कमरेमें गया।

फर्शपर बिछे गद्देपर महात्माजी लिटाये गये थे। पंडित जवाहरलाल नेहरू भी आये। सरदार पटेल पास ही बैठे थे। सिरहाने महात्माजीकी पोतियाँ फूट फूटकर रो रही थीं और गीताके श्लोक पढती जा रही थीं। मैं अपने जीवनमें तीन बार आँसू बहाकर रोया हूँ। यही तीसरी बार था।

महात्माजीको देखते समय यह नहीं मालूम होता था कि अुनके शरीरने गोली खायी या अुनके प्राण-पखेरू तनरूपी पिंजडा छोडकर अुड गये हैं!

दूसरे दिन सरदीकी सान्ध्यवेलामें पाँच और छह के बीच, अैतिहासिक यमुनाके राजघाटपर ढेरा चंदनकी लकडी चिताकी आगमें धधककर प्रकाशमान हो अुठी। दुनियाको प्रकाश देनेवाली दिव्य ज्योति, भारतकी आधार प्रकाशराशि अुसमें जल रही थी। सबका विश्वास बुझ रहा था। फिर भी कभी न बुझनेवाली अुनकी दिव्य-आत्माकी ज्योति तो सदा प्रकाशमान रहेगी और सारी दुनियाको प्रकाश देती रहेगी।

[तमिलसे अनुवादकः— श्री रा० धीळिनाथन]

[मद्रास

गान्धीजीका कुसूर ?

: श्री अब्दुल हलीम अन्सारी :

महात्मा गान्धीको गुजरे पूरे ५ साल हो गये। दुखी भारतके लिअे ये पाँच साल कुछ कम नहीं होते जबकि अुसको प्यार करनेवाला आजाद करनेवाला और अपनी जिन्दगीमें ज्यादासे ज्यादा त्याग और बलिदान करनेवाला दुनियाका सबसे बड़ा व्यक्ति अुसके बीचमें न रहा। क्या कारण है जिसका ? भारतमाताकी शान्तिदायिनी गोदसे अुसका भक्त सपूत छिन गया। हमें यह कारण खोजना है। अैसा क्यों हुआ ? जब हम अिस सवालपर विचार करते हैं और महात्माका कुसूर ढूँढ निकालनेमें लग जाते हैं तो हम बड़ी कठिनाअीमें पड़ जाते हैं। बार बार हमारे दिमागमें यह खयाल घूमने लगता है कि कौनसा दोष था और वह भी विश्वप्रेमी महात्माका दोष ? दोषका या दोषीका सम्बन्ध दुराचारसे होता है, खराब चाल चलनसे होता है। पर गान्धीजीकी बातोंमें और आदतोंमें कौनसी बुराअी थी। अुनके सन्देशमें भारतके हिन्दू, मुसलमान, ख्रिस्ती, पारसी, सब धर्म और सब कौमके लिअे प्रेम जगमगाता था। अुसके सदाचारसे हमारा जीवन आगे बढ़ता था। अुसके चरण चिन्होंसे जीवनका निर्माण होता था। आपसमें प्रेम और अेकताका, सद्भावनाका केन्द्र अुस महात्माका हृदय था। अुसी केन्द्रको तोड़नेके लिअे निशाना बनाया गया। शामके ५ बजे जब कि वे भगवानसे मानवजातिकी भलाअीके लिअे प्रार्थनास्थलपर जा रहे थे, अुस ३० जनवरीकी शामको। महात्माके अुसी हृदय केन्द्रको पिस्तौलकी गोली लगी। बुद्ध, महावीर, अीसाके बाद दुनियाका अेक सबसे बड़ा मानवताका पुजारी, सच्चा अहिंसक सत पुरुष अुठ गया! मानवताके मर्मस्थलपर गोली लगी थी। गान्धीजीका कुसूर ?

[भोपाल



बुद्धदेव वसु

: श्री मन्मथनाथ गुप्त -

[भारतीय भाषा-साहित्यमें बंगलाका प्राचीन और आधुनिक सत्यं-शिवं-सुन्दरं साहित्य सबसे समर्थ और समुन्नत साहित्य है। काव्य भाव सिन्धुमें उत्ताल तरंगें हिलोरती हैं। कहानी, उपन्यास, नाटक, समालोचना चरित्र आदि साहित्यके सभी अंगोंमें पुष्टि, नव उन्मेष, सौष्ठव, नवनव नयी रमणीयता, मर्म उद्घाटनमें अनुष्ठापन और सम्पूर्णता है। आधुनिक बंगला साहित्यके श्रेष्ठ साधकोंमें श्री बुद्धदेव वसुकी भी अधिक प्रतिष्ठा है। साहित्यके सभी क्षेत्रोंमें उन्होंने अपनी प्रतिभाको बिखरा है। बंगलाके अेक महान् लेखकका यह परिचय श्री मन्मथनाथ गुप्तजीने 'राष्ट्रभारती के लिअे ही भेजा है। —सम्पादक]

बंगला साहित्यमें श्री बुद्धदेव बसुका अपना स्थान है। उन्होंने कविता, उपन्यास, कहानी, आलोचना सभी क्षेत्रोंमें रचनायें करके अपना अतुल साहित्यिक शक्तिसामर्थ्य व्यक्त किया है। और उनको पूर्ण यश मिला है। कुछ आलोचकोंने यह लिखा है कि जिनके निकट कविता और दर्शन अेक वस्तु है या जो यह मानते हैं कि कविताका प्रधान उद्देश्य कोअी जीवन-दर्शन देना है, उनके लिअे बुद्धदेव कवि नहीं हो सकते। पर क्या यह बात सही है? क्या बुद्धदेवका कोअी दर्शन-शास्त्र नहीं? मेरा तो अैसा विचार है कि बुद्धदेवकी कृतियोंमें जीवनके सम्बन्धमें अेक दृष्टिकोण अन्तर्निहित है, और वही उनका दर्शन शास्त्र है।

उनमें जीवनको भोग करनेकी अदम्य स्पृहा है, साथही साथ दुखवादकी अेक अन्तर्धारा भी है। दूसरे शब्दोंमें कहा जाअे तो वे जीवनकी गुत्थियोंको सुलझानेमें असमर्थ रहकर यतिवाद या संसार-त्यागवादके दलदलमें न फँसकर भोगवादकी कोमल गोदमें आकर अपनेको भूलनेकी कोशिश करते हैं। अिस रूपमें देखा जाअे तो बुद्धदेव बंगालके अवक्ष्याक्रान्त उच्च वर्गके प्रतिनिधि-लेखक हैं।

बुद्धदेव जिस समय पहले पहल साहित्यिक क्षेत्रमें अवतरित हुअे याने १९२०-३० के युगमें बंगालके युवकोंमें दो धाराओंका जोर था, अेक तो क्रान्तिकारी धारा जिसका प्रतिनिधित्व शरत बाबू तथा काजी नजरुल अिस्लामने किया, और दूसरी धारा भोगवादी थी, जिसका प्रतिनिधित्व बुद्धदेव आदिने किया। सरोज बन्द्योपाध्यायने यह ठीकही लिखा है कि बुद्धदेव उन लोगोंमें नहीं है, जो नजरुलकी तरह स्फुट रूपसे, बल्कि उल्लसित होकर जेलखानोंके तोडनेका नारा लगाते हैं। उन्हें तो अपनेसे अधिक मतलब है। जनगणके दुख कष्टसे उन्हें कोअी सरोकार नहीं। वे व्यक्तिवादी हैं। वे अपनी समझसे कवि और कविताका क्या उद्देश्य होना चाहिअे, अिसपर कहते हैं—

"आमार आकांक्षा ताअी कवितेर अद्वितीय व्रत सघहीन मज्ञातीत अेककेर आदिम ज्यामितिस्तब्ध तार निलिमाय आ मजात पूर्णतार वाणी।"

याने—अिसलिअे मेरी आकांक्षा है कविताका अद्वितीय व्रत। संघहीन सज्ञातीत अिकाअीकी आदिम रेखागणित स्तब्धताकी नीलिमामें आत्मजात पूर्णताकी वाणी।

अिनके अिस कथनको पूरी तरह समझनेका दावा मैं नहीं करता, पर अितना तो स्पष्ट है कि उनका संकेत यह है कि कवितका अद्वितीय व्रत व्यक्तिवादका गुण गाना है। बुद्धदेव बसुकी कविता अक्सर समझमें आती है, पर कहीं वह स्पष्ट नहीं हो पाती। क्या यह आधुनिक कविताकी अेक विशेषता है? अिस विषयपर मैंने अपनी नव प्रकाशित पुस्तक 'साहित्य कला-समीक्षा' में विस्तृत रूपसे विचार किया है। अिस प्रसंगमें केवल अितना ही कहना पर्याप्त है कि जब विचार धुंधला होगा, तो उसका प्रकाश भी धुंधला होगा। अध्यात्मवादियोंकी

बातें अेक हदके बाद समझमें नहीं आतीं और यही हाल अिन निराशावादी भोगवादियोंका है।

स्वयं बुद्धदेव वसुने बार-बार यह कहा है कि कविता केवल बातें हैं, सौभाग्यसे बुद्धदेवकी सब कविताओं अिस श्रेणीमें नहीं आतीं। अवसरपर वे जो बातें कहते हैं वे समझमें आती हैं और भाषापर अुनका बहुत अधिक अधिकार होनेके कारण वे हमारे सामने अेक चित्र खड़ा कर देनेमें समर्थ होते हैं। अुनकी कविताका रसास्वादन करानेसे पहले यह बता देना जरूरी है कि वे साहित्यके क्षेत्रमें क्यूबिस्ट या घनवादी नहीं हैं। अिस दृष्टिसे भी अुनकी परिस्थिति बहुत ही विशिष्ट है। वे अेक तरफ तो मार्क्सके शान्तिवादी या प्रगतिवादी से जँचते हैं दूसरी तरफ अपनेको घनवादियोंमें ले जाकर नहीं खड़ा करते। अुनकी लड़ाअी दो मोर्चोंपर जारी रहती है। वहीं अस्पष्टता भलही आ जाअे, बात यह है कि वे अेक साथ बहुतसी बातें कहना चाहते हैं, पर वे अस्पष्टताकी साधना नहीं करते और न अुसे पाषाणमूर्ति बनाकर पूजते हैं। वे जिस प्रियाको सम्बोधित करके बात करते हैं अुसके निकट पहुँचीही पंक्तिसे स्पष्ट हो जाता है कि वे अुससे क्या चाहते हैं—

आज आधी रातके समय जब चलेगी ठंडी बयार
नींदको अुतार फेंककर तुम चली आना, क्यों ?

हम दोनों जने आमने सामने बैठकर कविता पढ़ेंगे।
फिर लिखते हैं—

पेड़का हरा पूर्वकी रेखासे गहरा हो गया।
वहीं पर मुट्ठी भर चाँदका अबीर खिल अुठेगा
हम दोनों जने आमने सामने बैठकर कविता पढ़ेंगे।
जंगलके पाससे हवा हहरा कर जाअेगी पर
जंगलके पास मेरा आकाश मूर्छित हो गिर पड़ेगा
पूर्वका हरा सफेद होकर भोरका आकाश खिलेगा।
रात और दिनके बीचमें पड़कर हवा अूघती है,
पुस्तक समाप्त हो चुकी हम दोनों बैठे हैं चुपचाप।
हेलेनके वक्षमें मनकी वासनाने बनाया है घोंसला
सर्वकालके सब पुरुषोंके मनकी वासना
टूट कर चूर चूर हो गया ट्राय।

वे अपनी बात बिल्कुल साफ कर देते हैं, किसी प्रकार धुँधलापन अुसमें नहीं रहता। कवितामें बहकर वे तटसे नहीं हटते।

अफरोदीके मन्दिरमें अर्घ्य देनेके लिअे
स्पार्टाकी रानी हेलेन गयी, सब पुरुषोंकी वासना।
टूट कर चूर चूर हो गया ट्राय।
हेलेनके अपने वक्षके छविपर अर्घ्यकी रचना की है
वह सोनेका कटोरा है, सब पुरुषोंके मनकी वासना
टूटकर चूर चूर हो गया ट्राय।

अुनकी कवितामें प्रकृति है, प्रतीक भी है, पर असली जान जब शुरू होती है तब प्रकृति पीछे छूट जाती है और प्रतीक स्वयंके लिअे नहीं बल्कि वासनाको और घना करनेके लिअे प्रयुक्त होते हैं। वे अिसी कवितामें कहते हैं कि बाग़ और आमोंमें नींदस जगाये हुअे लाल आधे चाँदकी टिमटिमाती ज्योत्स्ना अुस समय छा जाअेगी, जब कविता पढ़नेका कार्यक्रम चलेगा। यहाँ

तो चाँद बेचारेको नाहक घसीटा गया है पृथ्वीसे हजारों मीलकी दूरीपर रहनेवाले चाँदको अिसलिअे रिवदीजीशन (तमन्ना) किया गया है कि वह आकर वासनाको स्पष्ट करे। कविता पढ़ना भी अिसी तरह अेक प्रतीक है।

वे दूसरे ढंगकी भी कविता लिखते हैं। जैसे—लीजिअे अेक टुकड़ा —

कल अुसका अन्त नहीं है, •
हम तो केवल आजको लेकर जीते हैं,
जो कभी नहीं हुआ, हो सकता है, अुसीका नाम कल है,
जो निरन्तर हो रहा है, हो चुका अुसका नाम आज है,
यह पृथ्वी आज भरके लिअे मेरे लिअे व्यस्त है,
पृथ्वी मनुष्यसे भरी अुसपर सबका दावा है,
पृथ्वी कामकी कल है, अुसपर सभी पहिये हैं,
अिसे ही लेकर मेरा आज कटता है।

अिस कवितामें रवीन्द्र प्रभाव स्पष्ट है, पर आगे जो कुछ आता है वह अुनका अपना है और अुसमें हम अुनका विशेष सम्भोगवादी स्पर्श पा सकते हैं।

पर कल, कौन जाने कल क्या होगा, शायद वह आये।
मैंने अिसे देखा है, शायद कि कल वह आये
मैंने तो अुसे देखा है, अेक ही बार क्यों न हो
सोनेकी तरंगोंकी तरह अुनके अुन केशोंका अुच्छ्वास
आँखोंमें झिलमिल रोशनी, मानो तरंगोंमें दीपकी छाया,
मैंने तो अुसे देखा है, जब आँख मस्यन्न होकर लिखती है
वे कितने हैं जिन्होंने अुसे नहीं देखा है।

कहना न होगा कि बुद्धदेवमें अपनी विशेषता है। अेक कविता और लीजिअे—

हम बैठे हैं, मैं और नयनकुमार,
नयन मेरा मित्र है, सात सालसे हम लोगोंकी है
जान पहिचान।
हम बैठे हुअे हैं, बीचमें चायकी मेज है,
सफेद प्यालेके मुहसे सूक्ष्म सफेद धुआ निकल रहा है
अेक घूंटके बाद- 'आज कितनी गर्मी है।'
अिसके बाद पन्द्रह मिनिट चुपचाप।
प्याला अधिया गया- 'क्या तुमने पढ़ी है
बर्नार्डशाकी नयी किताब? नयन सिर हिलाता है।
नयन बात नहीं करता।
मैं सिगरेट निकालकर कहता हूँ 'दियासलाअी है?'
प्याला समाप्त होनेपर है, मुहूर्तमें मुहूर्त कट जाता है।
प्रत्येक मुहूर्त कटता है, अुसीको हम बैठकर गिनते हैं।
'परेशाने पत्र लिखा है।'
'अच्छा?' बात आगे नहीं बढ़ती
'आज सिनेमा चलोगे?' नयन फिर सिर हिलाता है,
नयन बात नहीं करता।
और क्या कहा जाअे।
मैं आकाश पाताल ढूंढ़ता रहता हूँ।

अिसे चाहे कविता मानिअे या न मानिअे, अिसमें सन्देह नहीं कि यह हमारे यहाँके मध्यम वर्गका अेक अच्छा चित्रण है। कहा गया है कि अितनी सामान्य वस्तुको विषय बनाकर कविता लिखना बड़ी भारी बात है, यह बात सही हो या न हो, कविताको कल्पनाके स्वर्गसे अुतार लाना यह आधुनिक कविता, बल्कि आधुनिक साहित्यका विशेष गुण है।

अभी अुनकी कविताओंकी अेक चयनिका प्रकाशित हुअी है जिसका नाम श्रेष्ठ कविता है। अुसकी सर्वत्र अच्छी आलोचना हुअी है। अेक आलोचक श्री अरुणकुमार सरकारने अुसकी आलोचना करते हुअे लिखा है—'बुद्धदेवकी रचनामें जरा ध्यान दिया जाअे, तो यह ज्ञात होगा कि अुनमें कविता और जीवन अेकाकार हो गया है। कविके निकट ये दोनों शब्द समपर्यायवाची हैं, दूसरे शब्दोंमें कहा जाअ तो अुन्होंने कविताको हमेशा जीवन और यौवनके प्रतीकके रूपमें अिस्तैमाल किया है। संसारकी ग्लानि, दैनिक जीवनकी धुंधली, प्राणधारणका मिथ्याचरण, अस्तित्वकी परेशानीने अुन्हें छेड़ तो दिया है पर अुन्हें पीड़ित नहीं कर सकी। बात यह है कि विस्मय कवि-कल्पनाही अुनका असली जीवन है और अुनके वाणिविहगकी आश्रय शाखा है जो कल्पना-वासनाके अिन्द्रजालसे नियके स्वर्गकी रचना कर सकती है। यापी वस्तुअें जिसके स्पर्शमात्रसे सुन्दर होकर मिट्टीके फूल और आकाशके तारे हो जाती हैं, वही अुनका अुपजीव्य है। जिस कविके हाथमें अलादीनका चिराग है, वह किसी मामूली हीन प्रभुको प्रभु कैसे

मानें। यदि बाहर आंधी और तूफान आजे, अंधेरा अुतरे, तो भी भीतरकी रोशनी हैं, स्वप्न है दिग्विजयी चिन्ता है।' -

अिस प्रकारकी आलोचनासे कुछ हाथ लगना असम्भव है, विषयवस्तुका स्पष्टीकरण करनेके बजाय अैसी आलोचनाओंसे वह और भी अस्पष्ट हो जाती है। हां, अिस आलोचनासे भी यह स्पष्ट हो जाता है कि बुद्धदेव पलायनवादी हैं या कुछ अुसीके अिर्दगिर्द, अुक्त आलोचक भी मानते हैं कि मध्यवित्त जीवनके परिप्रेक्षियमें बुद्धदेव वसुने वर्तमान समाज व्यवस्थाको चित्रित किया है। श्री सरकार लिखते हैं कि मध्यवित्त-जीवनमें 'केवल पतझड़का चीत्कार है हृत्पिंडमें हताशाका डमरू बजा करता है, पर बुद्धदेवने पराजय स्वीकार नहीं की, बिना लड़ाअीके ही विजयी हुअे हैं। अुस राज्यमें अपनी पुकार अुठायी है, जो राज्य शब्द, ध्यान रूप, और प्रेमका है। जहां मनुष्य अकेला है, अकेला और स्वाधीन, अपने भयसे मुक्त। या मनुष्य जहां हृदयके सम्पर्कसे दूसरेके साथ युक्त है, और अुसी अेकात्मीभूत शक्तिमें ही वह विरुद्ध-रूपी विश्व-व्यापारकी पहुंचके बाहर है। अिसीलिअे अुनकी कवितामें गरीब बर्नार्ड भी कह सकता है—

अहह ! सुन्दर यह पृथ्वी, सुन्दर यह जीवन।
बिना मूल्यके ही, अमूल्य दान है
पण्यराशिकी जघन्य कमी है,
देहधारीको जिससे चाहे जितना दुख ही
अमल आगममें हैं मुक्त मेरा प्राण।

श्री सरकार अिस अुदाहरणके द्वारा अपने मुकदमेको साबित करनेके बजाय अुसे बुरी तरह बोर देते हैं। बल्कि जो कुछ कहता है वह स्पष्टतासे अिस दुनियासे निराश होकर दूसरी बातोंमें भरोसा करना है। यह सब होनेपर भी बुद्धदेव वसुको हम दोष नहीं देते, क्योंकि जैसा युग है, वे अुसीको लेकर चलते हैं। वे दुनियाको बदलनेके लिअे अुत्सुक नहीं, शायद वे अुसकी आशा छोड़ चुके हैं, अिसलिअे वे अुससे भागकर जान बचाते हैं। पर कवि होनेके नाते वे अपने भगोड़ेपनको सुन्दर वाक्योंके धूम्रजालमें छिपाना जानते हैं, और अैसा भ्रम अुत्पन्न करनेमें समर्थ होते हैं कि वे संग्राम कर रहे हैं। अिसमें कोअी सन्देह नहीं कि वे अेक शक्तिशाली कवि हैं और भाषापर अुनका बहुत अधिक अधिकार है।

हमने अिस लेखमें मुख्यतः कवि बुद्धदेवकी ही आलोचना की है, पर वे कवि होनेके अतिरिक्त अेक आलोचक, अुपन्यासकार तथा कहानीकार भी हैं। अुन्होंने अंग्रेजीमें 'अैन अेकर आफ ग्रीन ग्रास' लिखा है, जिससे बंगालके बगला साहित्यका परिचय बंगालके बाहरके लोगोंको मिलता है। यह पुस्तक तथ्यपूर्ण है। अेक हदतक वे निष्पक्ष भी रहते हैं। आलोचनामें गहराअीतक जानेकी चेष्टा करते हैं। बहुश्रुत और सुपठित हैं, दूर-दूरकी कौड़ी लाते हैं। अुनकी लिखी हुअी चीजोंको समझनेके लिअे अुनकी तरह स्वाध्यायी होना आवश्यक है।

अुपन्यास और कहानी क्षेत्रमें श्री बुद्धदेव वसुका नाम अग्रगण्य लेखकोंमें प्रमुख है। अुनका पहला अुपन्यास 'साड़ा' १९३० में प्रकाशित हुआ था। १९३३ में 'जेदिन फुटलो कमल' और 'धूसरगोधूलि' १९४२ में 'कालोहवा' और १९४६ में 'विशाखा' १९४९ में तिथिडोर' प्रकाशित हुअे। अुनकी पुस्तकोंमें यौन-आवेदनकी प्रबलता है। मैंने अपनी 'प्रगतिवादकी रूपरेखा' नामकी पुस्तकमें अिनके सम्बन्धमें लिखा है। कुछ अुन्हें प्रतिक्रियावादी भी मानते हैं। पर यह कोअी नहीं कहता कि बुद्धदेव वसु कलाकार नहीं हैं। वे अेक अूंचे दर्जेके कलाकार हैं, और अुनमें हम मध्यवित्तवर्गके अेक रूपको देख सकते हैं।

[दिल्ली

अेक साधारण अनुभव

: श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी :

रघुनन्दन और मैं जिगरी दोस्त थे। बचपनमें हमारी पटाअी ही साथ नहीं हुअी थी, बरन् प्रत्येक प्रकारकी भविष्यकी आशाओंके जो बड़े-बड़े हवाअी किले हम बनाते थे अुनमें भी हम रात-दिन साथ रहते थे। कालिजमें पढ़नेवाले अनुभवहीन युवकोंकी स्वच्छन्द कल्पनासे हम अनेक प्रकारकी बातें सोचते थे। हम समझते थे कि हममें विश्वव्यापी आन्दोलनोंके अग्रगण्य नेता होनेकी शक्ति है और प्रलयकालके समुद्रकी तरंगों जैसी न्यूटनकी आत्मा और बुद्धिका अुत्साह। यही नहीं, हम अपनी अिन समस्त शक्तियोंको संसारकी अुन्नतिके लिअे अुपयोग करनेका भी दृढ़ निश्चय करते थे। अिसमें भी मेरी अपेक्षा रघुनन्दनमें टीमटाम कुछ अधिक था। वह बातें भी बढ़-बढ़ कर करता था। अिसलिअे मेरी समझमें यह नहीं आता था कि वह कौनसा अुच्च पद प्राप्त करेगा। कभी अैसा लगता कि वह धार्मिक सुधारक होकर सत्यके लिअे अीसामसीहके समान सयकर मृत्युको अपनानेका गौरव पाअेगा। कभी अैसा लगता कि देश-प्रेमपर बलि होकर कोअी वीर पुरुष बनेगा और कभी अैसा लगता कि सुरेन्द्रनाथके समान अनुपम वक्तृत्व-कलाका धनी होकर देशकी चारों दिशाओंको दहकते हुअे शस्त्रागारोंसे भर देगा।

बादमें वह बम्बअी आया। पैसेकी कुछ कमी होनेसे मुझे तो अेक अंग्रेजी स्कूलकी चालीस रुपयेकी मास्टरीमें अपने कल्पना-जगतको छोड़ना पड़ा। पर रघुनन्दनने अपना अध्ययन जारी रखा। हमारा पत्र-व्यवहार बराबर चलता रहा और मैं यह सोचकर संतोष प्राप्त करता रहा कि यदि मैं नहीं तो कम-से कम मेरा मित्र तो बचपनके स्वप्नोंको मूर्तिमान करेगा ही।

अेक वर्ष बाद हम मिले। मुझे कुछ खेद हुआ। मैं सोचता था कि रघुनन्दनके निर्मल हृदयकी स्वच्छता-पर कभी तनिक भी मैल नहीं चढ़ेगा परन्तु अुसकी चाल-टाल देखकर मुझे अचम्भा हुआ। अंतरके अुल्लासकी अपेक्षा अुसमें बाह्य प्रदर्शन अधिक दिखायी दिया। प्रेम और अुत्साहके निर्मल स्रोतमें दुनियादारीकी कीचड़ अधिक जमती जान पड़ी। मैंने ये विचार मनसे निकाल डाले। सोचा, संभव है, मेरी दृष्टिका दोष हो! मैंने पुराने, स्वप्नोंको, खास, रंगोंको, अुसने, पुराने थोड़ा-सा रस लिया लेकिन मुझे लगा कि वह बम्बअीकी रंगीनी, वहांके नाटक और वहांके फैशनमें अपेक्षाकृत अधिक रस लेने लगा है। अैसा अनुभव हुआ जैसे अुसने हमारी आशाओंकी अूंची-अूंची अट्टालिकाओंमें कुछ रद्दोबदल कर दिया हो। अितना होनेपर भी अुसमें मेरी श्रद्धा अचल रही। मैंने सोचा कि सांसारिक सुखोंको अिष्ट माननेवाले पाश्चात्य संस्कृतिके अनुपम केन्द्र बम्बअीके वातावरणसे मनुष्यके दृष्टिकोणमें परिवर्तन होना स्वाभाविक है अिसलिअे अपने स्नेहाधिक्यके कारण मैंने अुसके स्पष्ट परिलक्षित होनेवाले अधःपतनकी ओर कोअी ध्यान नहीं दिया।

रघुनन्दन और अेक सुशील बालिकामें परस्पर प्रेम था। वह मुझे सदैव पत्रोंमें अुसके गुणोंके विषयमें लिखा करता था। मैं समझता था कि कुछ दिन बाद वह अुसीसे विवाह करेगा। लेकिन अुसने मुझसे कहा कि अुस लड़कीके बापकी स्थिति अच्छी न होने कारण अुसने विवाह स्थगित कर दिया है।

दो-अेक महीने बाद मुझे अेक पत्र मिला कि रघुनन्दन अेक धनवानकी लड़कीसे विवाह कर रहा है। पहले मैंने विश्वास नहीं किया। यहां तक कि रघुनन्दनके लिखनेपर भी मुझे कोअी जवाब नहीं दिया। कारण, मैं कभी यह मान ही नहीं सकता था कि रघुनन्दन जैसा अुच्चादर्शवाला मनुष्य प्रेम-सम्बन्धद्वारा अपनायी गयी अपनी प्रियतमाको छोड़कर किसी दूसरी स्त्रीसे विवाह करेगा। लेकिन अिसी बीच मुझे बम्बअी

जाना पड़ा। पहले जब कभी मैं बम्बअी जाता था तो रघुनन्दन पत्र पाकर दौड़ता हुआ स्टेशन आता था पर अिस बार मेरे पहुँचनेके अेक दिन बाद तक भी वह नहीं आया। मेरे मनमें अनेक भ्रम अुत्पन्न हुअे। मेरा हृदय भी बहुत दुखी हुआ। रघुनन्दनके अुज्ज्वल भविष्य और देशोपयोगितापर मेरी अितनी श्रद्धा थी कि मैं यह मानने लग गया था कि यदि अुसका अधःपतन हो गया तो देश और समाजके लिअे अेक भयंकर आघात होगा।

दूसरे दिन भाअी साहब दिखायी दिये। विलायती रंग-ढंग और बहुमूल्य वस्त्रोंसे सुसज्जित रघुनन्दनको देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। 'सादा जीवन अुच्च विचार' के पवित्र आदर्शकी साधना करनेवालेमें यह शान शौकत कैसी? साहब बैठे। अूँची सोसायटी-वाली चालाकीसे कुछ देर अिधर-अुधरकी बातें कीं। मुझसे न रहा गया। मैंने विवाहके सम्बन्धमें पूछा।

"हाँ, अमुक सेठकी अिकलौती लड़कीके साथ अगले महीने मेरा विवाह होगा", अंगुलीकी अंगूठीके चमकते हुअे नगको अूपर लाते हुअे अुसने कहा, "तुझे भी आज ही वालकेश्वर चलना पड़ेगा। तेरा परिचय कराअूँगा।" सत्यको छुपाकर कपट द्वारा किया गया मित्र द्रोह, गरीब माँ बापकी निराधार लड़कीको आशा देकर किया गया प्रेम द्रोह, धनके लालचमें नये सम्बन्धको स्वीकार करनेके साथ-साथ फैशनमें डूबकर किया गया अन्तरका आच्छादन और आत्मद्रोह, यह सब मैंने देखा और बिना शरमाये अुसे अैसी धृष्टता करते देखकर मुझे अुसके प्रति घृणा अुत्पन्न हुअी। यह रघुनन्दन! मैंने अुसे आड़े हाथों लिया। घण्टे भर तक जो कुछ मुझसे कहा गया सो कहा, और तिरस्कारका समस्त शब्दकोष खाली कर दिया, लेकिन वह हँसता ही रहा।

अन्तमें अुसने जवाब दिया "देख भाअी, ये सब अपने स्वप्न थे। क्या हममें त्यूथर अथवा शंकरकी प्रतिभा है? हम लोग अल्पशक्तिवाले हैं। अितना होनेपर भी यदि हमारे पास काफी पैसा हो तो हम किसी अंशमें अुसका सदुपयोग कर सकते हैं। केवल भाषण देनेकी अपेक्षा पैसेका त्याग करके देशकी सेवा करनेमें अधिक शोभा है। तू जरा सोच कि अिसमें मनको तो थोड़ा मारना पड़ता है पर अिसके द्वारा अिस समाजको कितना अधिक लाभ पहुँचा सकता है।" यह बात थी तो हलकी पर ठीक मालूम पड़ती थी। मुझे लगा कि रघुनन्दन अब अवश्य कुछ करेगा। वह लखपती होकर अुच्च त्यागका आदर्श रखेगा। लक्ष्मी और सरस्वती दोनोंको प्रसन्न करेगा और वास्तवमें अपनी भावनाओंको किसी-न-किसी अंशमें पूर्ण करेगा।

कुछ समय बाद धूमधामसे रघुनन्दनका विवाह हुआ। जैसा कि सुना गया छह महीने बाद अुसकी परित्यक्ता प्रियतमा विरहसे क्षीण होकर स्वधाम चली गयी। अुस समय रघुनन्दन महाबलेश्वरमें आनन्द लूट रहा था। नयी स्त्रीके सघन स्नेहमें निर्धन अभागिनीकी अकाल मृत्युकी कौन चिन्ता करता? पत्र पढ़कर अुसे रद्दीकी टोकरीमें फेंककर रघुनन्दन पत्नीके साथ टैनिस खेलने चला गया।

अुसके तीन वर्ष बादमें फिर बम्बअी पहुँचा। मेरे लिअे स्टेशनपर मोटर तैयार थी। अपार धन वैभवमें विहार करनेका यह अनुभव मेरे लिअे नया था। तेजीसे हम वालकेश्वर पहुँचे। आदमियोंने आकर मेरे लिअे निश्चित कमरा दिखाया। सारे मकानका ठाट-बाट राजाओंके गर्वको चूर करनेवाला था। यदि केवल बंगलेके ही बेकारके साज-सामानको बेचकर पैसा अिकट्ठा किया जाता तो त्योरसकी सालके अकालमें अेक भी प्राणी या जानवर न मरने पाता। काठियावाड़में पैसेके अभावके कारण अनाजके बिना तड़पते हुअे मृत्युशैय्यामें पड़े प्राणीकी अपेक्षा अेक घृणित व्यक्तिको प्रसन्न रखनेके लिअे अुसकी तृष्णाको शान्त करनेके लिअे कितना खर्च, कितनी मेहनत! कितनी खुशामद!

तदनन्तर मैं रघुनन्दनसे मिला। अपने विद्वान बालमित्रकी मानसिक अुत्साहसे चमकती आँखें, अुच्चाभिलाषासे गूँजती वाणी, और अध्ययनकी गरिमासे दीप्त भालके स्थानपर अस्थायी हुअी विषयी आँखें,

फराशेवुल समझी जानेवाली पारसियोंकी-सी भाषा कठिनाओसे निकलनेवाली लम्बीसी आवाज और अनेक सुगन्धित पदार्थोंसे झकझकाता हुआ मुख देखकर मैं चौंक पड़ा।

अिसके बाद जैसे ओट-पत्थर या शीशे-लकड़ीमें कोअी बड़ी भारी सभ्यता हो अैसे वह मुझे अपना बंगला दिखानेके लिअे साथ लेकर चला। अुसके वर्णनसे किसको लाभ होनेवाला था? मुझे ग्रीसके अेक महात्माकी याद आयी। अेक पैसेवाले शिष्यने डायोजिनीसको अपना भव्य महल दिखाकर प्रशंसाकी दृष्टिसे अुसके सम्बन्धमें अुस तत्ववेत्ताका अभिप्राय पूछा। डायोजिनीसने शिष्यके मुखपर थूका और हँसकर बोला—"और सब तो सुन्दर है पर अितनी ही सी जगह गन्दी है।" मुझे भी रघुनन्दनको अैसा ही कोअी प्रशंसा-पत्र देनेकी अिच्छा हुअी।

यह अमुक 'हाल' और यह 'पलौ' रूम करते-करते हम लायब्रेरी कही जानेवाली जगहपर आये। वहाँ मैंने अनेक चमकती हुअी अलमारियोंमें अत्यन्त शानदार जिल्दों और सुनहरे नामोंसे सुशोभित कभी अेक अस्पर्द्य और विलासियोंकी वासना तृप्त्यर्थ लिखे गये अुपन्यास देखे। कुछ अलमारियोंमें साहित्यिक ग्रंथ ज्योंके-त्यों—बिना पन्ना चीरे—शोभा दे रहे थे। गत पाँच वर्षोंमें किसीने भी अुन्हें छुआ हो, अैसा नहीं जान पड़ता था।

"रघुनन्दन! तेरी कालिजकी छोटी किताबोंका क्या हुआ? वे तो तुझे प्राणोंसे भी अधिक प्यारी थीं।"

"कौनसी, वे छह-छह आनेवाली। हाँ, वे तो बिल्कुल बेकार थीं। अुन्हें मैंने फेंक दिया।" सच है, जब अूँचे विचारोंको जन्म देनेवाली ही चली गयीं तब अूँची भावनाअें ही कहाँसे रह सकती हैं?

अितनेमें अेक नौकरने आकर कहा कि जोसफाअिन बीमार हो गयी है। यह नाम सुनकर मुझे महान नेपोलियनकी स्त्रीका स्मरण हो आया। रघुनन्दनका चिन्ताग्रस्त मुख देखकर मुझे यह जाननेकी जिज्ञासा हुअी कि यह जोसफाअिन कौन है। हाँफते-हाँफते हम अेक कमरेमें आये। वह कमरा कुत्तोंका अजायबघर जैसा लगता था। कारण, मैंने वहाँ १५–२० कुत्तोंको मौज करते हुअे देखा। अुन्हें देखकर जब मैं अुपर्युक्त घृणाके भावसे भर रहा था तब मुझे पता चला कि जोसफाअिन अेक कुतिया है। जिस भाग्यशाली जानवरके लिअे मोटरमें डाक्टर आया और जब अुसे कुछ आराम मिला तब रघुनन्दनकी जानमें-जान आयी। अुस समय मुझे अुस स्वर्गवासिनी, प्रेममयी नारीका ध्यान आया जो रघुनन्दनकी नीचताके कारण बचपनमें ही मर गयी थी। मुझे कँपकपी आ गयी। अुसके बाद अुसने मुझे प्रत्येक कुत्तेकी जाति, कुटुम्ब, गुण आदिका अितिहास बताया। यदि अितनी अधिक स्मरण-शक्तिका प्रयोग अन्यत्र किया गया होता तो निस्सन्देह हिन्दुस्तानका अितिहास लिख जाता।

अिसके बादकी अपनी तबेलेकी यात्रा और अुसके घोड़ोंके गुणोंका विवरण देकर मैं पाठकोंको अुबाना नहीं चाहता। मुझे तो यही लगा कि यदि रघुनन्दन कुत्तों अथवा घोड़े-गधोंका व्यापारी होता तो बहुत अच्छा काम करता और दुनियाके लिअे कहीं अधिक अुपयोगी सिद्ध होता। तत्पश्चात् रघुनन्दनने अपनी समृद्धि और वस्तुओंका वर्णन किया और मुझसे पूछा—"क्यों दोस्त! सब लाजवाब है न? केवल अेक ही तकलीफ है।"

"क्या?" मैंने अुपेक्षा भावसे पूछा।

"खर्च नहीं चलता। क्या करूँ? बड़ी मुश्किल पड़ती है।"

अुस समय मुझे थोड़ी देर पहले देखे हुअे अेक दर्जन घोड़े, दो दर्जन कुत्ते और पाँच दर्जन जूते याद आये, पर मैं बोला नहीं।

"तब तो किसी दूसरे काममें पैसा शायद ही लगता हो?" मैंने पूछा।

"नहीं भाअी। अेक कौड़ी भी नहीं बचती। मैं क्या करूँ?" यह बात अुसने अैसे कही जैसे अिसमें कौड़ीका दोष हो! और फिर पूछा—"लेकिन दोस्त सच कहो, सब वस्तुओंकी व्यवस्था तो ठीक है न?"

'बिलकुल ठीक है रघुनन्दन, लेकिन अेक बात है और वह यह कि मेरे यहाँ सब वस्तुओंके लिअे तो जगह है पर अेक वस्तु रखनेकी जगह कहीं नहीं दिखायी देती।"

'किसकी ?"

'किसकी ! यहाँ सब कुछ है पर तेरी भावना पुरुषार्थके अूँचे आदर्श, त्याग और सेवाके शुद्ध सबका स्थान यहाँ कहीं नहीं दिखायी देता। अुनके लिअे कहीं जगह नहीं है। अैसा लगता है कि वे सब भारत देवीकी अुस छोटी और गदी कोठरीमें रह गयी जिसमें कि तू पहले रहता था। न केवल वे बल्कि पुराना रघुनन्दन भी वहीं रह गया। क्या अैसा नहीं है ?"

मैंने अपने छोटे-से गाँवमें और थोड़ी सी तनख्वाह में अपनी भावनाओंको रघुनन्दनकी अपेक्षा अधिक अच्छे ढंगसे सुरक्षित रखा था। अिसलिअे पाँच छह दिनमेंही आनन्दके अपरिक अुपभोगसे अूबकर मैं अपने गाँवको चल दिया। बंगला छोड़ते समय मुझे भर्तृहरिका यह श्लोक याद आया—

साहित्य संगीतकला विहीन साक्षात् पशु पुच्छविषाणहीन।
तृण न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशूनाम्॥"

गुजरातीसे अनुवादकः- श्री पद्मसिंह शर्मा, 'कमलेश', अेम अे

[आगरा

खरा नाटककार

: श्री भा वि. वरेरकर :

(मराठी)

नाटककार म्हणजे- नाट्य लेखक नव्हे-नाटकाची निर्मिती करणारा नाटककार हा प्रतिसृष्टि निर्माण करणारा अेक विश्वामित्र आहे विधात्याला जें सुचलें नाही, जें सुचत नाही, की रचत नाही तेंच निर्माण करण्याचें सामर्थ्य ज्याच्या अंगी आहे, तोच खरा नाटककार

समाजातील गुणावगुण टिपून निवडून काढून, त्यांतील गुणदोषांचें प्रदर्शन जो प्रत्यक्ष स्वरूपांत करून दाखवतो त्या गुणदोषांच्या बेरीज, वजाबाकी आणि गुणाकारांतून कोणत्या तरी प्रमेयाचें निश्चित स्वरूप जो समोर मांडू शकतो तोच नाटककार

(हिन्दी)

नाटककारका मतलब—नाट्यलेखक नहीं—नाटककी निर्मिति करनेवाला नाटककार प्रतिसृष्टि निर्माण करनेवाला अेक विश्वामित्र है। सिरजनहार—विधाताको जो नहीं सूझा जो नहीं सूझता न रचा वह निर्माण करनेका सामर्थ्य जिसके दिल दिमागमें है, वही है खरा नाटककार।

समाजके गुणावगुण देख-परखकर, चुन चुनकर, अुसके गुण-दोषोंका प्रदर्शन जो प्रत्यक्ष रूपमें कर दिखाता है, अुन गुण दोषोंके धन, ऋण, गुणितमेंसे किसी-न किसी प्रमेयका निश्चित स्वरूप जो सामने रख सकता है, प्रस्तुत कर सकता है वही है नाटककार।

राजस्थानका अेक लोकगीत 'मणिहारी'

: श्री कन्हैयालाल सहल, अेम. अे. :

अेक बार राधाने कृष्णसे कहा कि मैं अैसी मनिहारिनसे चूडियाँ पहनना चाहती हूँ जो मुझसे भी अधिक सुन्दर हो। कृष्णने कहा—'प्रिये ! तुम्हें सुन्दर चूडियोंसे काम है अथवा मनिहारिनके सौन्दर्यसे ?' 'दोनोंसे" राधाने सगर्व भौंहोंमें मुस्कराते हुअे अुत्तर दिया।

कृष्णके सामने विकट समस्या थी—राधासे सुन्दर मनिहारिन भला कहाँ मिलेगी ? मनमोहनने सोचा—मैं ही क्यों न मनिहारिनका वेश धारण कर लूँ ? त्रिया-हठ भी पार पड जाअेगा और खासा अच्छा मनोविनोद भी रहेगा। राजस्थानी लोकगीतकारके शब्दोंमें—

"हर ने रूप धरया मणियारी
होके तो हुस्यार हर ने रूप धरया मोहनी
सजै है सिणगार हर की सूरत लागै सोहणी
लक्ष्मीके औतार दालिद्दरको खोवणी
मनुष्यका गुवाल मेरा सीस गूंथ दे रे जाली
पटियाँ सुधार जुल्फी छोड़ दे ने काली
पैर लिया छाप छल्ला हमलो हमेल घाली
चूप बाजूबंद सोवै कानों में अकाली वाली
घेर घुमंता घाघरा चोली पैरी चोपाली
चूड़ा लिया दो च्यार होगा बरसाणैको त्यार
जड़े पन्ना और जंवार
लिया टोकरीमें डाल
हर कै पग पायल झणकारी॥"

कृष्णने मनिहारिनका रूप धारण कर लिया, हुशियार होकर भगवानने मोहिनीका रूप बना लिया। शृंगार कर लेनेपर कृष्ण अत्यन्त शोभित हुअे, अुनकी मुखाकृतिसे नूर बरसने लगा, दरिद्रताको दूर भगाने-वाली साक्षात् लक्ष्मीके अवतार-से वे जान पडे।

राधाने कहा—'हे गोपाल ! मेरा सिर गूंथ दे, बालोंके पट्टोंको सँवार दे।"

अिधर कृष्णने अपना सुन्दर स्त्रियोचित वेश बना लिया—छाप-छल्ले पहन लिये, गलेमें हँमली डाल ली, चूप और बाजूबन्द शोभित होने लगे, कानोंमें वाली पहन ली। घेर-घुमेर 'घाघरा' और चापाली चोली पहन ली। दो चार सुन्दर चूडे ले लिये और बरसाना जानेको तैयार हो गये। पन्ने और जवाहरात टोकनीमें डाल लिये। अुनके पैरोंमें पायलकी झनकार होने लगी।

यदुराज चलने लगे, पायलोंका 'छम-छम' शब्द होने लगा, धरती 'धम-धम' हिलने लगी। 'गम्म-गम्म' करते हुअे श्रीकृष्ण बरसाने जा पहुँचे। द्वारपालोंने कहा—हे मनिहारिन ! तनिक ठहर, अपना पसीना सुखा ले, जरा विश्राम कर, कुछ सुस्ता ले। कृष्णने चोलिअेको अुतार दिया और वे शीतल पवनका सेवन करने लगे। कुछ देर बाद बोले—"मैं चूडा बेचने आयी हूँ, मुझे राधिकाका भवन बतलाओ, अुसके बिना मेरा चूडा और यहाँ कौन खरीद सकता है ?"

राधिकाकी सखी ललिताने मनिहारिनसे कहा—"बहिन ! कौनसा तुम्हारा गाँव है? कहाँसे चलकर आयी हो और क्या तुम्हारा नाम है ? राधा तेरा चूडा अवश्य खरीद लेगी, रोक-रोककर तुझे दाम देगी। मेरे पीछे होले, बरसानेकी सैर कर ले। तुझे राधिकाके महल दिखलाअूँगी और तेरी बडी टहल करूँगी।" मनिहारिन वेशधारी कृष्ण बोल अुठे—"तेरा गुण मानूँगी, मुझे राधिकासे जरूर मिला। रोक-रोक दाम दिलवा दे तो तुझे भी अेक रुपया अिनाममें दूँगी।" ललिता चलकर राधिकाके महलमें पहुँची और कहने लगी—राधे ! अेक नयी मनिहारिन आयी है; अुसके रूपका तो कहना ही क्या ! धरतीपर अैसा रूप पहले कभी देखनेको नहीं मिला। अद्भुत सुन्दरी है वह, मानो सूर्यकी किरणोंने स्वयं अुसका साज-शृंगार किया हो।

"चाले जादूराअी जिणकी पायल बाजै छिम छिम
चाल जो घुमायो दाना धरती हालै धम्म-धम्म
बरसाणै में जाय पूंच्या जादूराअी गम्म-गम्म
ड्योडी कै दरवाणो बोल्या मणयारी तू थम्म थम्म
सीने को मेट प्यारी जरा ले-ले गम्म गम्म
चोलियेको दिया तार लेणे लाग्या ठंडी पून
चूड़ा बेचण आयो मन्नै राधेका बताओ भौन
राधे बिन चूड़ा मेरा और यहाँ पर लेगा कौन?

मणियारी से ललता बोली कूणसो तुम्हारो गाँव
कठे सेती आओ भाण बताय ना तेरो नाव
राधे तेरो चूड़ो लेगी रोक रोक कर देगी दाम
होले मेरी गैल करले, बरसाणेकी सैल
तनैं राधेका दिखाअूं म्हैल
भीत करूँगी तेरी टहैल ।
तैरा गुण मानूं प्यारी राधे से मिलावे सही
रोक रोक दाम दिवा दे अेक बदयो दूणी सही
ललिता सखी चालकै राधेजीके म्हैल गयी
सुण हे राध बात अेक मणियारी तो आयी नयी
रूप है अपार अैसी धरती अूपर देखी नाओं
वा बडी अनोखी नारी
जैसें सूरज किरण सुधारी ॥

राधिका तुरन्त बोल उठी–यदि वह मुझसे भी अधिक सुन्दरी है तो शीघ्र असके दर्शन करवा तनिक भी देर न लगा। ललिता चलकर दरवाजेपर आयी और कहने लगी–हे मनिहारिन! तू शीघ्र चल मुझे राधिकाने अभी बुला भेजा है। ललिताके साथ कृष्ण राधिकाके महलमें पहुँच। रूपसे अभिभूत होकर राधिकाने मनिहारिनके लिअे जाजिम बिछवा दी। राधिकाके वचन सुनकर मनिहारिनने अपना छबडा खोला और चूड़ी दिखाने लगे। कहा–अिन चूड़ोंका मूल्य बहुत अधिक है, हीरे-पन्ने और नगीने जड़े हैं, कान्तिसे जगमग जगमग कर रहे हैं चतुर है तो पहन ले मूर्ख तो अिनका मोल लगा नहीं पायगा। राधिकाने कहा—अिससे भी बहुमूल्य चूड़े निकालो, मैं अुनका मोल कर सकूँगी। चूड़ पहननेके लिअे राधिकाने अपनी भुजा फैला दी।

'मेरे से सख्य हैं तो दरसण हे कराओ ना
जल्दी करके जा हे ललना ! बार मत लाओ ना
ललता सखी चालकर ड्योढी अूपर आयी है
मणियारी ! तू चाल तनैं राधजी बुलायी है
ललिताजी के [illegible] य क्रिसण महला भीतर आया हैं
देख देख कै रूप जिन्नें जाजम तो बिछायी है
राधेजीका सुणकर बोल
चोलिवेको दिया खोल
पा ले चूड़ा पैर प्यारी
थारी अिनका कहिये मोल।
हीरा पन्ना नग जड़्या
रगमें होऱ्या झकझोल

चातर है तो पैर प्यारी
मूरख नै पटै नै तोल
राधजी तो बोल्या बोल
अीसें बधका खोल
मन्नै सब कीमतका तोल
राधे पैरणने भुजा पसारी
मेरी भर दे कलैया सारी ॥

राधिका कहने लगी—अरी! तू अजीब मनिहारिन है बाँहोंमें चूड़ा पहनाते हुअे भुजा क्यों मरोड़ रही है? किन्तु त्रिलोकीनाथ कृष्ण राधिकासे आँखें चार नहीं करते, अिस भयसे कि कहीं सब भेद प्रकट न हो जाअे! हे त्रिलोकीके स्वामिन! तुम्हारी मायाको कौन समझ सकता है? ज्ञानी गंगादासने कृष्णके रूपका बखान किया है। वही लीलाधारी सृष्टि रचता है और फिर अुसे समेट लेता है।

बड़भागिनी है राधा जिसके यहाँ कृष्ण पाहुन बनकर आये हैं।

अरे! अिधर तो देखो कृष्णने अपनी साड़ी अुतार दी और अेक क्षणमें ही मोर मुकुट धारी बन वारी बन गये!!

"बैंयां मे चूड़ा पहरावे भुज्जा क्यूं मरोड़े है?
तिरलोकीको नाथ देखो निजरा नहीं जोड़े है
तिरलोकीका नाथ थारी माया नै कुण जाणै है।
गंगादास ज्ञानी हरकै रूपनै बखाणै है
मणियारीको लीला सुणके भरम नै बधावणा
वाहीकी है सृष्टी या तो वाहीका खपावणा
राधेजीका बडा भाग किसण आया पावणा
हर नै सार बगारी साड़ी
बने मोर मुकट बनवारी!!

जहाँ कृष्ण साड़ी अुतारकर मोर मुकुटधारी बन जाते हैं वहाँ ही यह गीत अुत्सुकताकी चरम सीमाको छू लेता है और यही अिसका अन्त भी हो जाता है। चरम सीमाके बाद यदि गीत आगे चलता तो यह नीरस हो जाता। बड़ी सरल सुबोध भाषामें यह गीत लिखा गया है और बड़ा प्रवाह है अिसमें! राजस्थानमें जोगी लोग बड़ी सरस अेवं मधुर लयमें सारंगीपर अिस गीतको गाते हैं और गृहस्थोंका मनोरंजन करते हैं।

कितनी मुग्धी गृहस्थोंका मुग्ध श्रुतिमनोहर गीत है यह।

[पिलानी।

पद्मावतका गूढ़-तत्त्व

: श्री रामपूजन तिवारी, अेम. अे. :

जायसीके 'पद्मावत' के अन्तमें निम्नलिखित पंक्तियाँ मानो 'पद्मावत' के गूढ़-तत्त्वोंको समझनेके लिअे कुञ्जी स्वरूप दी गयी हैं।

तन चितअुर, मन राजा कीन्हा।
हिय सिंघल, बुधि पदमिनि चीन्हा॥
गुरु सुआ जेअि पंथ देखावा।
बिनु गुरु जगतको निरगुन पावा॥
नागमती यह दुनिया धंधा।
बाँचा सोअि न अहि चितबंधा॥
राघव दूत सोअी सैतानू।
माया अलाअुदीं सुलतानू॥

अर्थात् यह शरीर चित्तौर है और मन ही राजा है। हृदय सिंहल द्वीप और बुद्धि पद्मावती रानी। सुग्गा गुरु है जो परमात्मा तक पहुँचनेका मार्ग दिखलाता है, क्यों कि बिना गुरुके संसारमें परमात्माको कौन पा सकता है? नागमती, सांसारिक जंजाल है और अुसमें जो नहीं बँधा, वही बच सकता है? राघवदूत ही शैतान है और सुल्तान अलाअुद्दीन माया है।

मैं अिन पंक्तियोंको सूफियोंके दृष्टिकोणसे समझनेकी कोशिश करूँगा और देखना चाहूँगा कि अुपर्युक्त पंक्तियोंमें पद्मावतीको बुद्धि समझनेके लिअे जो कहा गया है वह कहाँतक युक्तिसंगत है।

सूफी परमात्मा विषयक ज्ञानकी प्राप्तिके लिअे बुद्धिको कोअी स्थान नहीं देते। लेकिन मुतजिला-सिद्धान्तको माननेवाले कहते हैं कि परमात्मा सम्बन्धी आध्यात्मिक ज्ञान (मारिफत) वास्तवमें मस्तिष्क और बुद्धिका व्यापार है, अतअेव बुद्धिके द्वारा ही आदमी अिस ज्ञानको पानेमें समर्थ हो सकता है[1]। अधिकांश सूफी अिसे स्वीकार नहीं करते। हुजवीरीने बतलाया है कि वह ज्ञान हाली अर्थात् हृदय-प्रसूत है। वह अिस ज्ञानको हृदयका विषय मानता है[2]। अबुल हुसन नूरीका कहना है कि परमात्माको पानेका रास्ता परमात्माके सिवा कोअी नहीं बता सकता। अपनी बुद्धिके द्वारा मनुष्य अुस परमात्माको जानना चाहता है लेकिन अेक सीमातक पहुँचकर अुसकी गति अवरुद्ध हो जाती है और मनुष्यको अपनी असहायावस्थाका बोध होने लगता है। अुस समय किसी प्रकारका मानवीय ज्ञान अुसकी सहायता नहीं करता, चूँकि वह ज्ञान परमात्माके गुणोंसे ही सम्बन्ध रखता है और परमात्मा अुन गुणोंको अपने ध्यानमें लगे हुअे साधकोंपर प्रकट करता है।

सूफियोंका कहना है कि मारिफ (परमज्ञान) परमात्माके द्वारा ही शक्ति-सम्पन्न होता है; अन्यथा बिना परमात्माकी सहायताके परमात्माको नहीं जाना जा सकता। कहा जाता है कि जब परमात्माने बुद्धिका निर्माण किया तब अुसने पूछा कि 'मैं कौन हूँ?' बुद्धि मौन रह गयी। तब परमात्माने अपने 'अेकत्व' का प्रकाश अुसपर डाला और अुसने बतलाया कि 'तुम परमात्मा हो[3]।'

अिससे यह सहज ही समझा जा सकता है कि अगर बुद्धिका यही अर्थ समझा जाये तो बुद्धि और पद्मावतीको अेक समझना ठीक नहीं होगा। जायसीने जगह-जगहपर संकेत किया है कि पद्मावती वह परोक्ष सत्ता है जिसके लिअे रत्नसेन अर्थात् साधक सभी प्रकारके कष्टोंका वरण करता है। कहीं सर्वत्र अिसी रूपमें पद्मावतीका चित्रण नहीं किया गया है। बुद्धिके सम्बन्धमें सूफियोंके दृष्टिकोणको समझ लेनेपर यह

---

1 करफ अल-महजूब, पृ २६८।

2 वही, पृ २६७।

3 मार्गरेट स्मिथ स्टडीज अिन अर्ली मिस्टिसिज्म अिन दि निअर अीस्ट मिडिल अीस्ट पृ २०१

निस्संकोच कहा जा सकता है कि बुद्धिको पद्मावती समझनेके लिअे जो कहा गया है अुसे ठीक नहीं माना जा सकता।

अब हम अुद्धृत पंक्तियोंको दूसरी तरहसे समझने की चेष्टा करें। अगर पद्मावतीको परोक्ष सत्ता मानते हैं तो आत्मा, परमात्मा, मनुष्य और सृष्टिके संबंधमें सूफियोंका क्या कहना है अिसकी थोड़ी सी चर्चा कर लेना आवश्यक है। अिससे सूफियोंके दृष्टिकोणको हम अच्छी तरहसे समझ सकेंगे कि 'मनुष्यके भीतर परोक्ष सत्ताके वास' का अर्थ क्या है? अिससे यह भी स्पष्ट हो जाअेगा कि पद्मावतीको परम सत्ता मानते हुअ शरीरके भीतर अुसकी स्थितिकी कल्पना कहाँतक सार्थक है? साथ ही यह समझना भी कठिन नहीं होगा कि अुसे बुद्धि नहीं कहा जा सकता।

सृष्टि और परमात्माके संबंधमें सूफियोंका कहना है कि अुस निरपेक्ष, परम सत्ताको जो परम सौन्दर्य और परम-कल्याण भी है अपनेको प्रकट करनेके लिअे अिस अ-सत्, क्षण भंगुर जगत्की सृष्टि करनी पड़ी। किसी तत्त्वका परिचय, विरोधी तत्त्वकी वर्तमानतासे सहज ही हो जाता है। अंधकारका होना प्रकाशका ज्ञान कराता है। अतअेव अुस परम सत्ताका ज्ञान अिस अ सत् सृष्टिके द्वारा संभव है। मंगलका ज्ञान अमंगलके द्वारा, सुन्दरका ज्ञान असुन्दरके द्वारा और अच्छाअीका ज्ञान बुराअीके द्वारा सहज प्राप्त है। जलालुद्दीन रूमीका कहना है कि बुराअियों (विरोधी तत्त्वों) की सृष्टिके द्वारा परमात्माकी सर्वशक्तिमत्ताका पता ठीक लग जाता है। अच्छाअियोंको प्रकट करनेके लिअे बुराअियोंका होना जरूरी है। अिसपर आक्षेप किया जा सकता है कि बुराअियोंकी सृष्टि करनेवाला तब स्वयं भी बुरा होगा। अिसके समाधानमें जलालुद्दीन रूमीका कहना है कि किसी तसवीरमें अगर कुरूपता प्रदर्शित की गयी हो तो अिसका यह अर्थ नहीं है कि चित्रकार ही कुरूप है।[४]

अिसको स्पष्ट रूपसे यों समझ सकते हैं कि सूर्यका प्रकाश जलमें पड़ता है और जलमें पड़नेवाले अुसके प्रतिबिम्बसे हम सूर्यको देख सकते हैं। यह प्रतिबिम्ब वास्तवमें सूर्यके कारण है। अगर सूर्य नहीं है तो यह प्रतिबिम्ब भी नहीं है। अुस प्रतिबिम्बको अपने अस्तित्वके लिअे सूर्यपर निर्भर करना पड़ता है लेकिन सूर्यका अस्तित्व प्रतिबिम्बके कारण नहीं है। यह प्रतिबिम्ब हजारों बार बन बिगड़ सकता है। अुससे सूर्यका कुछ आता-जाता नहीं। अिस प्रकारसे जल, सूर्यके दर्पणकी नाअी है, जो सूर्यको प्रतिबिम्बित करता है। यहाँ सूर्यकी नाअी परम-सत्ता है, जलकी तरह अ-सत है जो अुसे प्रतिबिम्बित करता है और जो सत्ताका न-कारात्मक रूप है। और सूर्यके प्रतिबिम्बकी नाअी यह दृश्यमान जगत है जो परमात्माका प्रतिबिम्ब है। यह दृश्यमान जगत् परमात्माकी सत्तापर ही निर्भर करता है अिसकी अपनी कोअी सत्ता नहीं।

अिस दृश्यमान जगत् और मनुष्यके संबंधमें सूफियोंका कहना है कि दर्पणमें देखनेवाला अपनेको अपनी प्रतिच्छविमें दीख पड़नेवाली आँखकी पुतलीमें देखता है, अुसी प्रकारसे परमात्माकी प्रतिच्छवि जो यह दृश्यमान जगत है अुसमें मनुष्य अुस प्रतिच्छविकी आँख जैसा है। अिस प्रकारसे परमात्मा अपनी प्रतिच्छवि (दृश्यमान जगत्) में प्रकट होता है तथा मनुष्य (प्रतिच्छविकी आँखकी पुतली) में भी अपने आपको प्रकट करता है। अतअेव मनुष्य अुन संपूर्ण गुणोंको, जो अलग अलग ब्रह्माण्डमें अभिव्यक्त हो रहे हैं, अुनको अपनेमें ग्रहण करता है और अुन संपूर्ण गुणोंके समाहारको भी अभिव्यक्त करता है। वह मानव रूपमें 'आलमेकुब्र' (क्षुद्र जगत्) है जो 'आलमकुब्र' (बाह्य समस्त वृहत् जगत्) को अपनेमें धारण किये हुअे है। परमात्माके सभी गुण हृदयमें प्रतिबिम्बित होते हैं अिसलिअे मनुष्यके हृदयको जाननेसे परमात्माको जाना जा सकता है।

अिस हृदयको कैसे जाना जा सकता है और अुसमें परमात्माका साक्षात्कार कैसे हो सकता है? आत्मा-संबंधी सिद्धान्तको लेकर सूफियोंमें नाना प्रकारके मत

---

४ निकोल्सन मिस्टिक्स आफ अिस्लाम, पृ० ९९।

प्रचलित है लेकिन साधारणतः सूफी आत्माके दो भेद करते हैं, (१) नफ्स, (२) रूह। नफ्स, निम्नस्तरीय है और सभी प्रकारकी कुप्रवृत्तियोंका स्थान है। रूह, सद्वृत्तियोंका अुद्गम-स्थल है। नफ्स, भावावेगसे परिचालित होता है और रूह विवेकसे। अिन दोनोंका संघर्ष निरन्तर चलता रहता है और ये आत्माको विपरीत दिशाओंमें खींचते रहते हैं। सूफी साधकोंने नफ्ससे बचनेके लिये बराबर सावधान किया है। अबू सुलैमान दारानीने कहा है कि नफ्स (जड आत्मा) बडा धोखेबाज है और जो परमात्माके रास्तेपर चलनेवाले हैं अुन्हें बाधा पहुँचाता है। 'पद्मावत'की नागमतीको नफ्स कह सकते हैं।

सूफियोंके मतानुसार अुच्चतर आत्मा शरीरके पहलेही निर्मित हो जाता है और अुसे परमात्मा, मनुष्य शरीरमें भेजता है। अिन अुच्चतर आत्माके भी तीन विभाग किये गये हैं, कल्ब, रूह और सिर्र। यह सिर्रही सबसे भीतरका हिस्सा है जहाँ सूफी साधक परमात्माके दर्शन किया करता है। यहाँ किसी प्रकारका कलुष प्रवेश नहीं कर सकता। यही मानो परमात्माका वासस्थान है, जहाँ वह मनुष्यको जान पाता है और मनुष्य वहीं परमात्माका ज्ञान प्राप्त करता है।[5]

५. किताब-अल-लुमा, पृ० २३१।

जीलीने रूह (आत्मा) तथा रूहुल कुदुस् दो विभाजन किये हैं। अुसके अनुसार परमात्माने अपनी ज्योतिसे रूह (आत्मा) की सृष्टि की और फिर अुससे जगतका निर्माण किया। रूहुल कुदुस (पवित्र आत्मा) ही मानव शरीरमें सर्वश्रेष्ठ आध्यात्मिक शक्ति है। यह परमात्मासे अलग नहीं और मनुष्यसे संयुक्त भी नहीं है। अिसीमें परमात्मा अपने आपको अभिव्यक्त करता है लेकिन परमात्माकी अभिव्यक्ति परमात्माके सिवा अन्य कहीं नहीं हो सकती। अतअेव यह रूहुल कुदुसही मनुष्यके भीतर अीश्वरात्मा है। यह स्वयंही अीश्वर-स्वरूप है जो मनुष्यके अन्तस्तलमें वास करता है। अिसेही जानने और प्रत्यक्ष करनेकी साधना की जाती है।

अुपर्युक्त विवेचनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि पद्मावतीको रूहुल-कुदुस् कहा जा सकता है, लेकिन रूहुल कुदुसको बुद्धिका पर्याय नहीं बनाया जा सकता। अिस दृष्टिसे विचार करनेपर पद्मावतीको बुद्धि मानना भूल है। साथही 'पद्मावत'की अुपर्युक्त पंक्तियोंके सम्बन्धमें भी सन्देह अुत्पन्न हो जाता है कि क्या सचमुच वे जायसीकीही लिखी हुई हैं?

[शान्तिनिकेतन



अच्छा !

: श्री ' कुमार " :

अच्छा, तो तुम्हें अेक बात बताअें। जी हां, बहुत अच्छी बात है और अेक बहुत ही अच्छे आदमीने हमें बतायी है। और अच्छे आदमी तो आप जानते हैं अच्छी ही बात करते हैं। बात यह है कि हमारे संसारका सारा व्यापार अेक दम्पतीके सहारे ही चल रहा है। अच्छा, तो अब आपने ध्यान दिया। परन्तु अिसमें आपका कोअी दोष नहीं, सब समयकी बात है। आजकल लोग बात किसी बातपर तभी ध्यान देते हैं, जब अुसमें कोअी रोमांटिक बात हो। यही किसी दम्पतीकी बात हुअी नहीं, कि लोग कान खड़े कर लेते हैं।

अच्छा तो यह बात छोड़िअे। मैं आपको बता रहा था कि संसारका सारा व्यापार अेक दम्पतिके सहारे ही चल रहा है। और वह श्रीमान् अच्छा और अुनकी पत्नी श्रीमती अच्छी। पर श्रीमान् और श्रीमती तो केवल झूठे शिष्टाचारके नाते ही कहा जाता है, वरना आजकल कौन श्रीमान् है और कौन श्रीमती है, सभी कामरेड बनते जा रहे हैं। हां तो, सीधे-सादे शब्दोंमें कहा जाअे तो वे हैं अच्छा और अच्छी। अिन अच्छा और अच्छीके बिना हम कोअी कार्य भी नहीं कर सकते। आप कहेंगे, अच्छा तो प्रमाण दो। तो लो, प्रत्यक्ष प्रमाण आपके सामने प्रस्तुत है, भला हाथ कंगनको आरसी क्या ?

अब चाहे आप किसी कलाकी बात करिअे और चाहे भिंडी तोरअी, करेलेकी, चाहे कविता-कहानीकी बात करिअे और चाहे बूट-पालिशकी और चाहे आप किसी फिल्मकी बात करिअे और चाहे किसी पालतू कुत्तेकी, हमें पूरा विश्वास है कि अिस दम्पतीके बिना आप कोअी वार्ता नहीं कर सकते, कहीं अपने विचार प्रकट नहीं कर सकते। अब कलाकी ही बात लीजिअे। कोअी चित्र आपको पसन्द आ गया, तो आप अवश्य ही कहेंगे कि यह चित्र बहुत अच्छा है। अिस चित्रका दृश्य बहुत अच्छा है या पोज बहुत अच्छा है। या फिर रंग बहुत अच्छे हैं। सार यह कि चित्र बहुत अच्छा है। अवश्य ही यह किसी अच्छे कलाकारकी कृति होगी। परन्तु अच्छा आपकी सेवामें अुपस्थित न होता तो आप क्या करते। निश्चय ही आपके कला प्रेमको बहुत धक्का लगता और आप अपने मनके भाव प्रगट न कर पाते। यह तो अच्छी बात है कि अच्छा आपके सब काम आसानीसे कर देता है सब भाव आसानीसे प्रगट कर देता है जिसे सुनकर सब लोग आपको भी कलाका अच्छा जानकार या अच्छा कलाकार समझने लग जाते हैं।

पर केवल कला सम्बन्धी विषयोंपर ही अच्छा आपकी सहायताके लिअे नहीं आता। यदि आप बाजारसे भिंडी-तोरअी आदि शाक तरकारी खरीदने जाअें, तो भी वह आपकी सेवामें तत्पर रहेगा। अच्छे आदमी हर समय सहायता करते हैं, और अच्छा मित्र भी वही है जो मुसीबतके समय काम आअे। और भिंडी-तोरअी है भी अच्छी सब्जी। सभी अच्छे डाक्टर यही बताते हैं कि अिसमें लोहा विटामिन और न जाने क्या-क्या पौष्टिक पदार्थ होते हैं। वैसे तो हमें तोरअियोंके बीज या सड़ी गली तोरअियोंमें कीड़ोंके सिवा और कभी कुछ दिखायी नहीं देता। परन्तु डाक्टरोंके साथ तर्क कौन करे क्योंकि आजकल तो वह यह भी बताने लग गये हैं कि टिड्डियों और मकड़ियोंमें भी अधिक विटामिन होते हैं। अब आप ही कहिअे कि यदि भिंडी तोरअीके सम्बन्धमें हां न करें तो डाक्टर हमें मकड़ियां ही खिलाकर दम लें। सो चुपचाप कह देते हैं कि अच्छी बात है जो लोहा-टीन या फौलाद आदि वह बताते हैं, होगा अिन भिंडी तोरअियोंमें।

अच्छा तो अिन डाक्टरोंकी बात तो छोड़ो और भिंडी तोरअियोंकी ही बात लो। सर्वप्रथम तो आप किसी

अच्छे दूकानदारके पास ही जाअेंगे। फिर वहाँ या तो अच्छी-अच्छी तोरअी आप ही चुनने लगेंगे, नहीं तो अुमीको कहेंगे कि भाअी अच्छी-अच्छी तोरअी डालना। साथ ही तोलके सम्बन्धमें अुसे चेतावनी दे देना कि भाअी अच्छा तोल तोलना, स्वाभाविक ही है। और दूकानदार भी तो अच्छी चीजके अच्छे ही पैसे माँगेगा। अच्छा, अब आपको सब्जी खरीदने काफी देरी हो गयी है, अब घर चलिअे।

तो फिर आप कविताकी बहार ही देखिअे। यदि आपको पसन्द आ गयी तो आप अवश्य ही कहेंगे कि यह अच्छी कविता है। परन्तु आजकलकी अच्छी कवितायें प्राय समझमें नहीं आती। अेक समालोचक महोदय बता रहे थे कि अुनमें अच्छाअी यही होती है कि अुनके भाव आसानीसे नहीं समझे जा सकते। आधुनिक कविताओंको समझनेके लिअे अच्छा खासा परिश्रम करना पड़ता है। अब बताअिअे कविता क्या हुअी, मानो मानसिक व्यायाम करनेका अच्छा खासा अखाड़ा हो गया। अैसी अच्छी कविताको भी कोअी क्या करे, जिसके भाव चाहे वह कितने ही अच्छे क्यों न हों, समझमें ही न आअें। यही हाल कहानियों और अुपन्यासोंका है। कोअी कथानक नहीं होता, आरम्भ और अन्त भी मेल नहीं खाते, फिर भी कहते हैं कि कहानी अच्छी है। बस वही शताब्दियों पुरानी कहानियोंको थोड़ा बहुत हेर फेर कर, नये ढंगसे पेश कर दी जाती है। वही पुरानी शराब नयी बोतलोंमें दृष्टिगोचर होती है। वही अेक लड़का और दो लड़कियाँ या अेक लड़की और दो लड़के, थोड़ा-बहुत अुतार-चढ़ाव, थोड़ा-बहुत विघ्न और फिर मिलाप, बस कहानी तैयार है।

परन्तु चाहे आपकी कविता, कहानी अच्छी हो न हो, चिन्ता न कीजिअे। बस दस बीस अिकट्ठी कर, किसी अच्छे प्रकाशकके यहाँसे छपवा लीजिअे और पुस्तकका नाम भी कोअी अच्छा सा रख दीजिअे। कोअी लम्बा चौड़ा नाम रखनेकी आवश्यकता नहीं, बस छोटे से छोटा नाम आप रख सकते हैं। अब अैसा ही रिवाज चल निकला है। कभी लेखक तो पुस्तकका नाम रखते ही नहीं, और नाममें धरा भी क्या है। अेक विद्वानके अनुसार है, हूँ ओह, तो आदि कोअी भी नाम अुपयुक्त हो सकता है। और नहीं तो बाहरके पन्नेपर कामा, विराम, फुलस्टाप या प्रश्नसूचक चिन्ह ही लगा दीजिअे, वह भी पर्याप्त होगा।

हाँ, तो पुस्तक छपवाकर आप दो-चार अच्छे समालोचकोंको अेक-अेक प्रति अवश्य भेज दीजिअे और यदि हो सके तो अेक-आध फालतू भी भेज दीजिअे, ताकि यदि वह पुस्तकको सेकंडहैंड पुस्तकोंकी दूकानपर ले जाअें तो कुछ तो जेब गर्म हो जाअे। बस वह भी आलोचनामें पुस्तककी प्रशंसा ही करेंगे। लिखेंगे कि लेखकने बड़े परिश्रमसे पुस्तक लिखी है, लेखक बड़े अनुभवी सज्जन हैं। पुस्तककी लिखाअी छपाअी अच्छी है और टाअिटल पेज भी अच्छा है। और मूल्य भी अच्छा ही है। विषयके बारेमें समालोचक प्राय कुछ लिखना भूल ही जाते हैं। सो यह भी अच्छा है, नहीं तो न जाने वह क्या-क्या-क्या लिख देते। परन्तु लिखते भी कैसे, अुन्होंने कौन-सी पुस्तक पढ़ी होगी। खैर, अुनके विचार दो-चार अच्छे पत्र-पत्रिकाओंमें छपनेसे आपकी पुस्तक गर्म-गर्म पकौडियोंकी तरह बिक जाअेगी। और लो, आप बातकी बातमें अच्छे लेखक बन गये। देखा आपने, लेखक बननेका कितना सरल अुपाय बताया आपको। परन्तु अिसका सारा श्रेय किसी 'अच्छा' महोदयको है।

अब तो आप समझ ही गये होंगे कि अच्छा आपके कितना काम आता है। यदि नहीं तो और अुदाहरण देखिअे। आप पिक्चर देखने तो जाते ही हैं। निश्चय ही आप अच्छी पिक्चर देखना पसन्द करेंगे जिसमें अच्छे कलाकार काम कर रहे हों और जिसमें अच्छे नाच-गाने हों। अच्छी पिक्चरमें और होना ही क्या है? और फिर छोटे-मोटे सिनेमामें तो आप जाना ही न चाहते होंगे। जी हाँ, सिनेमा-हाल अच्छा हो, जिसमें सीटें भी अच्छी हों, तभी पिक्चर देखनेका आनन्द आता है। और फिर यदि कम्पनी (सगी-साथी) भी अच्छी हो, तो बहुत ही अच्छा है।

पिक्चर देखकर आप काफी-हाअुसमें काफी पीने जाअेंगे ही। काफी भी आजकल बहुत लोकप्रिय हो गयी

है और यह है भी अच्छा पेय। सभी सभ्य और अच्छे आदमी असे पीते हैं। वहां बैठते ही बैरा आपके सिरपर सवार हो जायेगा। तो आप दूसरी बातोंको समाप्त करते हुअे अपने साथीसे पूछेंगे कि अच्छा बताओ खाओगे क्या? निश्चय ही आप किसी अच्छी चीजका आर्डर देंगे। और फिर बैरेको यह तो बोलना ही कि बाकी और दूसरा सामान जल्दी लाना। वह भी अच्छा साहब कहकर लोप हो जाता है। अिस अच्छे वाता वरणमें बैठकर, अच्छी अच्छी बात कर गरम गरम पेय पीकर और अच्छी सूरतोंको देखकर तबीयत भी अच्छी हो जाती है। पर बातों ही बातोंमें देरी भी हो जाती है और अपने मित्रोंसे छुट्टी लेनेके लिअे कहते हैं अच्छा भाअी, अब तो हम चलें।

मार्गमें आपको कोअी शरणार्थी मित्र मिल जाता है, वह हर समय अपनी ही रामकहानी सुनानेको अुतावला होता है। अुसके कहनेका सार यह होता है कि कभी अुनकी भी आर्थिक अवस्था अच्छी थी पास अच्छे पैसे थे, अच्छा खाने पीने थे अच्छी रहन सहन थी, बस यही समझिअे अच्छे दिन कट रहे थे। पर पाकिस्तान बननेपर अुनके अच्छे दिन हवा हो गये। और हो सकता है कि वह दें कि हमारी सरकारकी नीति भी अच्छी नहीं है। आप भी मजबूरन सहानुभूतिका नपा-तुला वाक्य कहकर कह सकते हैं कि यह सब किस्मतकी बात है। कोअी बात नहीं अच्छे दिन फिर आअेंगे। परिश्रम करते जाओ, अुसका परिणाम भी अच्छा ही निकलेगा। और अीश्वर जो करता है अच्छा ही करता है। बस अुसीपर भरोसा रखो। वह भी हारकर कहेगा अ च्छा, और फिर चल देगा। अच्छा आप ही बताअिअे कि अिसके सिवा और किया भी क्या जा सकता है।

और फिर जब अच्छा अच्छा करके आप घर पहुँचते हैं तो श्रीमतीजी छूटते ही पूछती हैं अच्छा, यह बताओ कि अितनी देर कहाँ रहे? आप कहेंगे कि अच्छा, खाना तो लाओ, अभी बताये देता हूँ। तो वह दूसरा वार करेंगी अच्छा यह तो बताओ कि नलपालिश और मुन्नेकी जराबें लाये हो कि नहीं? आप कहेंगे ओ अच्छा, वह तो मैं भूल ही गया। फिर आप सफाअी पेश करनेके लिअे कहेंगे कि अच्छा बात यह है पर वह बीचमें ही बात काटकर कहेंगी, अच्छा अच्छा रहने दो अब बहाने। सो अब तो आप चुप चाप खाना खाअिअे और सो जाअिअे देखिअे रात भी अच्छी हो गयी है। फिर कल सवेरे ही मिलेंगे।

परन्तु आपको नींद भी अच्छी ही आती है। अुधर श्रीमतीजी हैं कि सवेरे ५ बजे ही कहेंगी कि, अच्छा अब अुठो भी न! परन्तु ५ बजे भी भला कोअी अुठनेका समय है। आजकल सर्दीमें कोअी अच्छा आदमी ८ बजेसे पहले नहीं अुठता। कोअी बात नहीं, आप अच्छा कहकर सो जाअिअे। घंटे डेढ़ घंटे बाद श्रीमतीजी फिर आअेंगी और कहेंगी अच्छा तो आप अभीतक सो ही रहे हैं। कोअी बात नहीं श्रीमतीजीसे पीछा छुड़ानेके लिअे अेक बार और अच्छा कहिअे और सो जाअिअे। परन्तु अब तो आठ बज गये। अच्छा अब तो अुठना ही पड़ेगा नहीं तो सम्भव है कि श्रीमतीजी झाड़ू या बेलन लेकर ही आ पहुँचें। अच्छा तो खैरियत अिसीमें है कि अब अुठा जाये। प्रातः चाय पीना तो स्वाभाविक ही है और आवश्यक भी। चाय पिये बिना तो बिस्तरसे नीचे अुतरना भी कठिन होता है। पर श्रीमतीजी हैं कि अपने अगले राअुन्डमें फिर आअेंगी और कहेंगी, अच्छा आप अभीतक अुठे नहीं। परन्तु अुनके अुठनेका तात्पर्य है, नहाने धोनेका। परन्तु आपको तो चाय पानी है सो आप हौसला कर पूछेंगे ही, अच्छा बताओ चाय तैयार है।

सो आप चाय पी मुँह हाथ धो, रोटी खा और श्रीमतीजीसे बाजारसे खरीदनेवाली वस्तुओंकी लम्बी सूची ले दफ्तर जाअेंगे। और अितने काम करनेमें देरी होना तो स्वाभाविक ही है। पर रोज ही तो अैसे काम होते हैं और रोज ही अच्छी देरी भी हो जाती है। बस साहब भी पूछेंगे अच्छा आज क्या कारण है? कारण तो कोअी नया नहीं है और नित्य प्रति कोअी न कोअी कारण बतानेसे और कोअी कारण भी बाकी नहीं रह गया। कोअी बात नहीं आप कोअी घिसा पिटा कारण ही बता दीजिअे। साहब अितना ही तो

कहेगा, अच्छा आगेसे समयपर आना । तुम्हारे हकमें रोज देरसे आना अच्छा नही । पर साहब तो रोज ही असा ही कहते है । तो क्या हुआ, साहबके सामने जरासा अच्छा ही तो कहना पडेगा । आना तो फिर अपने समयपर ही है ।

अब कहिअे अगर आपका सच्चा और अच्छा साथी यह "अच्छा" न हो तो आपका सारा व्यापार ही ठप हो जाअे । आपको नौकरी चाहिअे तो अच्छी और वेतन भी अच्छा ही चाहिअे । मकान भी अच्छा ही होना चाहिअे और अच्छी लोकेलिटी (पास पडौस) में होना चाहिअे । पडोसी भी आप अच्छे ही पसन्द करेंगे। आप कोअी वस्तु बाजारसे खरीदने जाअें, तो यही यत्न करेंगे कि अच्छी वस्तु मिल जाअे । चाहे कपडा हो या नेलपालिश, बूट हो या क्लिप, साअीकल हो या टाअी, बस सभी वस्तुअें अच्छी ही होनी चाहिअें । और फिर सूट भी तो अच्छा होना चाहिअे क्योंकि आजकल आदमी अच्छे कपडोंसे ही पहचाना जाता है । कपडे अच्छी तरह पहनना भी अेक कला है । पुराने लोग तो कपडे क्या पहनते है, बस अपनेको कपडोंमें लपेट लेते हैं । परन्तु आजकलके युवकोंको देखो, क्या ढंगसे कपडे पहनते हैं । अिस कलापर वे घंटों लगाते हैं, कभी सप्ताह अच्छी योजना बनानेमें लगाते हैं और कभी मास नया स्टाअिल ढूंढनेमें लगाते हैं, तब कहीं जाकर अुन्हें अच्छे कपडे पहननेकी कलाका अच्छा अभ्यास होता है ।

और फिर अच्छे कपडोंमे परसनैल्टी (व्यक्तित्व) भी तो अच्छी हो जाती है । पर अच्छे कपडोंके लिअे न केवल अच्छे पैसे ही लगते हैं परन्तु अच्छे दर्जीकी भी आवश्यकता होती है । अच्छे दर्जी बिल्कुल अपटूडेट चट्के, जो अभी-अभी हालीवुडसे आया हो, कपडे सीते हैं । और अच्छे कपडे पहनकर आप भी अच्छे लगेंगे । अच्छे आदमीकी और पहिचान ही क्या है । किसी जमानेमें कहते हैं, कि अच्छा आदमी बननेके लिअे विद्याका अच्छा अध्ययन करना पडता था, अच्छे कर्म करने पडते थे, अच्छा स्वभाव बनाना पडता था, अच्छा चरित्र बनाना पडता था । बस, अच्छा बनना भी मुसीबत थी । परन्तु अब अच्छा बनना तो बिल्कुल सरल हो गया है, अितना ही सरल जैसे गर्म-गर्म तेलमें पकौडियां तलना । बस, अच्छे कपडे पहनो तो आप अच्छे आदमी बन गये । और यदि आपके पास अच्छा पैसा हो तो समझो सोनेपर सुहागा है । फिर क्या है आप अेक अच्छी कार रखिअे, अच्छे होटलोंमें जाअिअे, अच्छे कपडे पहनिअे, अच्छे बंगलोंमें रहिअे और आप शतप्रतिशत अच्छे आदमी बन गये । क्या ही अच्छी बात है ।

परन्तु कभी-कभी लोग अच्छी बात नहीं करते और लड पडते हैं । यह तो बिल्कुल ही अच्छी बात नहीं । अुनको झगड़ा निपटानेके लिअे आपको कहना ही पडेगा, अच्छा-अच्छा जो हो चुका सो हो चुका, अब झगडा बन्द करो । परन्तु वह कहां सुनते हैं । वह तो कहे जा रहे हैं, अच्छा अबके मारके देख, अच्छा फिर कभी तुमसे समझ लूंगा या फिर अच्छा तुम्हें अिस बातका मजा चखाअूंगा । तो आपको फिर कहना ही पडेगा कि अच्छा समझ लेंगे ।

खैर अुन्हे छोड़िअे, बाजारमें देखिअे रातको क्या अच्छी रोशनी होती है । भीड़ भी वहां अच्छी होती है । लोग जब सैर-सपाटेको निकल आते हैं तो अच्छी चहल-पहल हो जाती है । मौसम भी अच्छा हो तो और भी अच्छी रौनक हो जाती है । परन्तु अिस चहल-पहलमें आगे बढना कठिन हो जाता है । कुछ तो लोग भीडभाड कर देते हैं, और मित्रगण और परिचित लोग आगे बढने नहीं देते । अुनको देखो मिलेंगे भी तो भीड़में, और सरे बाजार । क्या अच्छी जगह ढूंढी है ? और फिर नमस्ते भी अवश्य ही करेंगे, और हाल भी तो पूछेंगे । अब असी भीडमें किसका हाल अच्छा हो सकता है, अच्छा खासा अपटूडेट आदमी भी 'ओवर हाल' करने योग्य हो जाता है अितनी मिट्टीमें, परन्तु अुन्हें क्या पता अिस बातका । सो पीछा छुडानेके लिअे कहना ही पडता है कि भाअी अच्छा हाल है । फिर किसीपर दृष्टि न पडे तो यूं ही ताने कसने लग जाते हैं, अच्छा भाअी अब क्यों देखने लगे अिधर, या यूं ही कुछ और । आप ही कहिअे अुनको क्या

अुत्तर दिया जा सकता है। सब यही मुँहसे निकलना है, अच्छा भाओ जो मनमें आओ वह लो।

यह मित्रता भी अेक अच्छा खासा मजाक है, जो किसीके मनमें आओ वह दे, पर आप कुछ कहने लगे तो मुसीबत और न कहो तो मुसीबत। परन्तु आजकल अिन प्रतियोगिताओंने भी तो दखो क्या अच्छा मजाक बन गया है। पहले तो सबसे अच्छे लिखनेवाले, सबसे अच्छे पढ़नेवाले सबसे अच्छे कूदनेवाले सबसे अच्छा बोलनेवाले आदि लोगोंको पारितोषिक मिलते थे परन्तु अब देखो सबसे अच्छे मूर्ख सबसे अच्छी गप हाँकनेवालेको भी पारितोषक मिलने लग गये हैं। और फिर आजकल सौ दर्य-प्रतियोगिताओ (खूबसूरती की होड़) की भी अच्छी हवा चल निकली है। पर अब अच्छा बुरा कौन देखता है, सब मनमानेकी ही करते हैं।

न अच्छे भाव हैं, न अच्छे कर्म न अच्छा व्यवहार है और न अच्छा चरित्र। तो फिर लोगोंमें अुच्छृंखलना न बढ़े तो और क्या हो। आजकलके लड़कोंको देखो क्या अच्छा व्यवहार करते हैं। अभी अुस दिनकी बात है कि दो लड़के जा रहे थे। अेक लड़कीको जाते देख पहले तो अुसे घूरने लगे, फिर गाँसना आरम्भ कर दिया और फिर आँखें मटका अेक कहने लगा, 'अुनके देखेसे जो आ जाती है मुँहपे रौनक, वह समझते हैं बीमारका हाल अच्छा है।' मुखसे अनायास ही निकल पड़ता है कि 'अच्छी सभ्यता है!'

पर लड़कियोंकी तो बात ही मत कीजिअे। अुन्हें तो कुछ भी अच्छा नहीं लगता। न किसीका कहा मानना और न किसीकी कोअी अच्छी बात सुननी। अुन्हें तो बस बन ठनकर घूमना अच्छा लगता है। अेक लड़केको अेक बार कहते सुना कि बड़ोंकी बातपर 'अच्छाजी', 'अच्छा जी' कर देना चाहिअे, और यह आवश्यक नहीं कि अुनकी बात मानी हो जाअ। अुस लड़केके अनुसार यदि बड़ोंकी बातें मानी जायें तो चाय काफी, सिगरेट, सिनेमा सब कुछ ही छोड़ना पड़े और अिन सब चीजोंके बिना जीनेसे तो मौतही अच्छी। यह विचार सुनकर क्या आप किसी लड़केसे कुछ अच्छे कामकी आशा कर सकते हैं? लड़कोंका तो बिलकुल भरोसा नहीं है। वैसे मृत्युका भी क्या भरोसा है। रायसाहब लाला शम्भूदयालकी बात ही लो कल प्रातःकालतक अच्छा भला था परन्तु शामको हृदयकी गति बन्द होनेसे दूसरी दुनियामें जा पहुँचा। अच्छा, जैसी भगवानकी अिच्छा।

परन्तु हमारा तो कहना है कि यदि 'अच्छा और 'अच्छी' सहायतापर न आअें, तो क्या आप कुछ भी कर पाअें। अब कहिअे विवाह करना हो तो कोअी अच्छा लड़का ढूंढना पड़ता है जिसका स्वभाव अच्छा हो, चरित्र अच्छा हो और अच्छा पढ़ा लिखा हो अच्छे कुलका हो अच्छे पैसे कमाता हो बस अच्छा लड़का हो। यदि लड़की चाहिअे तो वह भी अच्छी होनी चाहिअे अच्छे गुणोंवाली हो अच्छा खाना पका सकती हो, सीना परोना भी अच्छा जानती हो और देखनेमें भी अच्छी हो बस अच्छी हो। अब क्या आप अच्छा और अच्छीके बिना विवाह कर सकते थे? कदापि नहीं। और विवाह करने या कराने लिअे पैसा भी तो अच्छा चाहिअे।

और फिर आजकल क्रिकेट टेनिस वाजीबालके मैचोंमें भी जबतक दशक तालो न पीटें और अेक दो मिनट बाद ताली न बजाअें या 'बहुत अच्छे' बहुत अच्छे न चिल्लाअें, तो सारा खेल ही नीरस हो जाअे। और हो सकता है कि लोग यह खेल खेलना ही बन्द कर दें। परन्तु आप सोचते होंगे कि हम अच्छाके पीछे अच्छी तरह हाथ धोकर पड़ गये हैं। हाँ, तो हाथ हमने धो ही लिये थे, पर पीछे पड़ना हमारा काम नहीं। राजपूतोंके समान उसके भी सदा सामनेसे ही वार करते हैं और अिसीलिअे तो यह लेख आपके पीछे न होकर आपके बिलकुल सामने है। और आप यह लेख क्यों पढ़ रहे हैं? जो हाँ यदि अपने मुँह मीयाँ मिट्ठू बनूँ तो कह सकता हूँ कि आप अिसलिअे यह लेख पढ़ रहे हैं कि यह लेख अच्छा है और जिसका शीर्षक भी "अच्छा" है और फिर अच्छे पत्रमें छपा है।

पर आखिर अच्छा है क्या? हम तो क्या बतायें परन्तु शेक्सपियरने अेक स्थानपर कहा है। शेक्सपियर तो आप जानते हैं अेक अच्छा कवि और नाटककार था। अुसने बहुत लिखा है और अच्छा लिखा है। अुसकी कलम अच्छी चलती थी (शायद वह पार्कर पेनसे लिखता था) और कुछ चीजें तो अुसने बहुत ही अच्छी लिखी हैं। हाँ तो अिन अच्छे शेक्सपियर महोदयने कहा है या लिखा है कि कुछ भी अच्छा नहीं और कुछ भी बुरा नहीं, बस हमारे विचार ही किसी भी वस्तुको अच्छा या बुरा बना देते हैं।

अब यह भी अच्छी रही। अच्छा-अच्छा चिल्लाते रहे और अुन्होंने गुड़-गोबर अेक कर दिया। क्या बात बतायी है। अब यदि अच्छा बुरा अेक ही है तो फिर कोअी अच्छा काम करनेसे लाभ। अिसी गड़बड़के कारण लोगोंको अच्छे और बुरेके भेदका ज्ञान ही नहीं रहा। अेक विद्वानने बताया कि लोग बुरा काम भी अच्छा समझकर ही कर रहे हैं। और जब कुछ भी तो अच्छा नहीं मिलता, न दूध अच्छा मिलता है और न घी, न आदमी अच्छे मिलते हैं और न अच्छे नौकर और कहते हैं कि नेलपालिश और क्रीम भी अच्छी नहीं मिलती। तब प्रश्न फिर वहीं रह जाता है कि अच्छा क्या है और बुरा क्या है? जो कल अच्छा था, वह आज अच्छा नहीं रहा, जो आज अच्छा है वह कलतक अच्छा रहे, कह नहीं सकते। अच्छे बुरेका मापदण्ड भी तो समय, देश और फैशनके साथ बदलता रहता है। और आजकल तो कहते हैं, अच्छाअीका समय हो नहीं रहा। किसीसे अच्छाअी करो, तो भी वह बुराअी ही करना है। क्या ही अच्छा हो यदि आप अिसपर विचार करें।

परन्तु आप तो अच्छा-अच्छा सुनते थक गये प्रतीत होते हैं। अच्छा तो लो हम भी चले। अच्छा फिर मिलेंगे, फिर अच्छी-अच्छी बातें होंगी। अच्छा, तो जय रामजीकी!

[नयी दिल्ली

कविता :

स्वर भरूँगा

: श्री नर्मदाप्रसाद खरे :

मैं तुम्हारी बांसुरीमें स्वर भरूँगा।
अेक स्वर अैसा भरूँ कि तुम जगतको भूल जाओ;
अेक स्वर अैसा भरूँ कि चन्द्रको तुम चूम आओ,
स्वर-सुधा तुममें बहाकर, ताप सब पलमें हरूँगा।
स्वर भरूँगा ॥
तार कुछ अैसे मिलें कि स्वर्ग तुम भूपर अुतारो,
मरणको देकर चुनौती स्नेहसे जीवन सँवारो;
जागरणकी ज्योतिसे मैं तब तुम्हें ज्योतित करूँगा।
स्वर भरूँगा ॥
दूर, — सुन भुवतारिकामें, लक्ष्य तुम अपना निहारो;
प्रेम-गंगामें नहाकर, मुक्तिका घूँघट अुघारो,
मुग्ध वासन्ती पवन बन, सुरभि-घन तुमपर झरूँगा।
स्वर भरूँगा ॥
ज्वार कुछ अैसा अुठे जो दो तटोंको अेक कर दे;
प्यारकी अठखेलियोंसे, मृत्युका अभिषेक कर दे;
मिलनका मधु-पर्व होगा, और मैं तुमको वरूँगा।
स्वर भरूँगा ॥
मैं तुम्हारी बांसुरीमें स्वर भरूँगा।

[जबलपुर

अंग्रेजी सॉनेट : परंपरा और अितिहास

प्रो. वि. म. कुलकर्णी और प्रा. मा. ग. बुद्धिसागर

[अंग्रेजी काव्यके अनुकरणसे भारतीय काव्यमें जो विभिन्न पद्धतियाँ प्रचलित हुईं अुनमें सॉनेट का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। सुनीत अंग्रेजी सॉनेट का मराठी नामकरण हुआ। अिस लेखमें जहाँ-तहाँ सुनीत शब्द प्रयोग सॉनेटके ही अर्थमें समझा जाय। प्रस्तुत लेखमें सॉनेटके अिटालियन साहित्यसे अंग्रेजी साहित्यमें प्रवेशका, अुसके विविध रूप-परिवर्तनका अितिहास तथा अंग्रेजी काव्यमें अुसकी दो प्रमुख पद्धतियोंका सविस्तर दिग्दर्शन किया गया है। सॉनेट हिन्दीमें भी लिखे गये हैं—यथा श्री प्रभाकर माचवे, बालकृष्णराव, त्रिलोचन आदि द्वारा। आज भी कभी कभी मुक्त छंद पत्रिकाओंमें हिन्दी सॉनेट दिख जाता है। परन्तु अुनमें चौदह पंक्तियोंके मोहके अतिरिक्त सॉनेटकी कोई अनुकरणीय विशेषता नहीं होती। सॉनेटकी अनेक विशेषताओंकी प्रस्तुत लेखमें गंभीर चर्चा की गयी है। —अनुवादक]

'सॉनेट' अंग्रेजीसे भारतीय भाषाओंमें आविर्भूत हुआ। परन्तु वह मूल निवासी अिंग्लैंडका नहीं। अुसकी जन्मभूमि है दक्षिण यूरोप। अंग्रेजीमें प्रारंभिक सुनीत थॉमस वॉट (सन् १५०३–१५४२) ने लिखे। किन्तु अिससे दो सौ साल पूर्व ही अिटलीमें अिस शैलीकी काव्य रचना शुरू हो चुकी थी। प्राचीन समयमें प्रणय-गीतोंकी अेक परंपरा अिस काव्यमें चल पड़ी और तमाम यूरोपीय भाषाओंमें वह प्रतिबिम्बित हुई। सिसिलीके दूसरे फ्रेडरिक नामक राजाके अिस काव्यपर दरबारी संस्कार होकर जो जो पद्धतियाँ प्रचलित हुईं अुनमें सॉनेट (Sonnet) प्रमुख था। Sonnetto अिस अिटालियन शब्दका व्युत्पत्ति अर्थ Sonare याने वाद्य बजाना अिस अर्थकी धातुसे निर्मित माना जाता है। वाद्यके साथ गाये जानेवाले संक्षिप्त गीतको Sonnetto कहा जाता है। पूर्वकालीन तेरहवीं सदीके गुइत्तोने द अरेज्जो को आदि अिटालियन सुनीतकार (Sonnet) रूपमें माना जाता है। अिसके पश्चात सुनीत रचना महाकवि दान्ते (१२६५–१३२१) ने की। प्रेमिका बिआट्रिसके प्रथम दर्शनसे अुत्पन्न नव दर्शनीय प्रेमका चित्रण अुसने अेक पद्य गद्य मिश्र ग्रंथके रूपमें किया। अिस ग्रंथकी पद्य रचना मुख्यतः सॉनेट शैलीकी है। दान्ते द्वारा प्रयुक्त सुनीत शैलीको प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। किन्तु अुसका विकास और स्वरूप निश्चित किया पेत्रार्क (१३०४–१३७४) ने। 'लॉरा' नामक प्रेयसीको संबोधित कर लिखे गये अुसके सुनीत यूरोपियन साहित्य जगत्में विख्यात हुए। केवल अिटालियन ही नहीं बल्कि अन्य यूरोपीय भाषाओंके सुनीतकारोंने भी पेत्रार्कको सुनीत रचनाका आदर्श माना है।

सर थॉमस वॉट प्रथम अंग्रेजी सॉनेट लेखक हैं। अुनके सॉनेट पेत्रार्ककी शैलीके हैं। कुछ तो पेत्रार्कके अनुवाद ही हैं। अुनके समकालीन अनुयायी हेनरी हावर्ड (अर्ल आफ सरे) ने अिसका काम आगे बढ़ाया। सॉनेटके मूल अिटालियन रूपमें अुसने परिवर्तन किये। रानी अेलिज़ाबेथके राजदरबारी अितिहास विख्यात सर फिलिप सिडनीने अपनी प्रेमिकाको संबोधित कर Astrophel and Stella नामक सुनीत संग्रहकी रचना की। कविके व्यक्तित्व और काव्यकी रमणीयताके कारण अुक्त सुनीत संग्रह अत्यधिक लोकप्रिय हुआ, जिससे सिडनीका अनुकरण करनेवाले सुनीतकारोंकी बाढ़ आ गयी। काव्य अितिहासकारोंका अनुमान है कि सिडनीका सॉनेट संग्रह प्रकाशित होनेके बाद सात वर्षोंमें कमसे कम दो हजार सुनीत लिखे गये।

अेडमंड स्पेन्सर, शेक्सपियर और अन्य समकालीन कॉन्स्टेबल, डॅनियल, ड्रेटन आदि कवियोंने सुनीत जैसे काव्य लिखे गये। अिन कवियोंमें अेडमंड

स्पेन्सर 'कवियोंका कवि' माना जाता है। किन्तु अुसके सुनीतोंमें सुनीत-शैलीके विशेष गुणोंका अभाव होनेके कारण अुन्हें विशेष मान्यता नहीं मिली। किन्तु शेक्सपिअरने सर्वरचित अिस काव्य-शैलीको अपनी अलौकिक प्रतिभाके संस्कारोंसे चमत्कार अभिनव रूप, ओज और सौन्दर्य प्रदान किया। अिस दिशामें अुसका कार्य अितना महान् सिद्ध हुआ कि 'वॅट' द्वारा अंग्रेजीमें प्रयुक्त तथा रानी अेलिज़ाबेथके शासन-कालकी समाप्ति तक विशेष पद्धति द्वारा विकसित होनेवाली सुनीतकी अिस शैलीका आलोचकोंने 'शेक्सपीरियन' नामकरण किया। यह 'शेक्सपीरियन' शैली पेट्रार्ककी आरंभिक सुनीत-शैलीसे अनेक दृष्टियोंमें भिन्न थी।

शेक्सपिअरके बाद अिस क्षेत्रमें विख्यात नाम महाकवि मिल्टनका है। अितालियन काव्य-साहित्य अेव दर्शन-सम्बन्धी मिल्टनका अध्ययन पर्याप्त गंभीर था। अुन्होंने पेट्रार्क प्रणीत सॉनेटके मूल रूपको अंग्रेजीमें पुनर्जीवन प्रदान किया। मिल्टनके अधिकांश सॉनेट 'सामयिक' हैं। हृदय मथित होकर चित्तवृत्तियोंके अुद्वेलित हो अुठनेके महत्त्वपूर्ण क्षणोंमें कवि-मुखसे प्रसृत ये अुद्गार हैं। अुदाहरणके लिअे मिल्टनका Avenge O, Lord सॉनेट[1] परंपरासे प्रणय-अभिव्यक्तिका वाहन बने हुअे सॉनेटमें जीवन-संग्रामकी रण-भेरीका स्वर भर देना मिल्टनकी महानता है। मिल्टनके व्यक्तित्वका अैसा गहरा प्रभाव अुसके द्वारा पुरस्कृत अिस शैलीपर पड़ा कि पुनरुज्जीवित अुक्त पेट्रार्कन सुनीतको 'मिल्टनी' (Miltonic) सुनीतकी संज्ञा समीक्षकों द्वारा मिली। मिल्टनके बाद करीब-करीब सौ साल तक सुनीत-रचनाका अभाव रहा। अुन्नीसवीं सदीका विख्यात और कवियोंकी दृष्टिसे सर्वश्रेष्ठ सुनीतकार वर्ड्सवर्थ माना जाता है। अुसने सुनीत-रचनामें मिल्टनकी परंपराका अवलम्ब ग्रहण किया। और कीट्सका अेक अुल्लेखनीय अपवाद वर्ज्य छोड़कर अुसके बादवाले मुख्यतया सभी कवियोंने 'मिल्टनी' अथवा 'पेट्रार्कन' शैलीकेही सुनीत लिखे हैं।

वर्ड्सवर्थके बाद प्रमुख अुल्लेखनीय सुनीतकार हैं – कीट्स, मिसेज ब्राअुनिंग, और रोज़ेटी। कुछ समीक्षकोंकी दृष्टिसे शेक्सपिअर, मिल्टन, वर्ड्स्वर्थ, कीट्स, मिसेज ब्राअुनिंग और रोज़ेटी अंग्रेजीके सर्वश्रेष्ठ सुनीतकार हैं। किन्तु अन्य समीक्षकोंने सही अेडमंड स्पेन्सरको तरह कीट्सको भी— अुसकी काव्य-वर्णनकी श्रेष्ठता स्वीकार करते हुअे भी—सर्वश्रेष्ठ सुनीतकारोंकी पंक्तिमें स्थान नहीं दिया जा सकता। सॉनेटके सम्बन्धमें दो बातें ध्यान देने योग्य हैं —अेक है, स्पेन्सर और कीट्स जैसे श्रेष्ठ कवि भी कवियोंकी दृष्टिसे, सॉनेट लेखनके लिअे आवश्यक विशिष्ट काव्यगुणोंका सापेक्षतया अभाव होनेके कारण, प्रथम श्रेणीके सुनीतकार नहीं माने जाते। दूसरी बात है टेनिसन, ब्राअुनिंग, मॉरिस आदि श्रेष्ठ कवियोंने सॉनेट लिखेही नहीं। 'शैली' जैसे कुशल कविके अच्छे सॉनेट संख्यामें बहुत थोड़े हैं।

फिर भी महाकवियोंकी अुपेक्षासे सॉनेट-लेखन-परंपरा बन्द नहीं हुअी। अर्नोल्ड, मेरिडिथ, स्विनबर्न रॉबर्ट ब्रिजेस, अेंड्यू लॅंग, ऑस्कर वाअील्ड, ऑलिव मेसेल, हेनले और अन्तमें रूपर्ट ब्रुक आदि कवियोंने अुन्नीसवीं सदीके अुत्तरार्द्ध और बीसवी सदीमें भी अुसे अबाधित रखा। सारांश, अंग्रेजी-सॉनेटका सम्पूर्ण क्षेत्र संख्या अेव गुणकी दृष्टिसे अत्यंत समृद्ध है।

अितालियनसे अंग्रेजीमें प्रविष्ट होनेपर सॉनेटके रूपोंमें वॅटसे मिल्टनतक अनेक परिवर्तन हुअे, जिससे अुसके दो रूप प्रचलित हुअे; अिन रूपोंमें क्रमशः शेक्सपिअर और मिल्टनके आधारपर अिन्हें 'शेक्सपीरिअन' और 'मिल्टानिक' सॉनेट कहा जाने लगा। मिल्टानिक सॉनेटका मूल रूप 'पेट्रार्क' प्रणीत था। अतः अंग्रेजीमें अुसे 'पेट्रार्कन' भी कहा जाता है। 'शेक्सपीरिअन' सॉनेटको 'अिंग्लिश' तथा मिल्टानिकको (मूल रूप अितालियन होनेके कारण) अितालियन कहा जाता है।

'मिल्टनी' सॉनेटमें चौदह पंक्तियाँ होती हैं। तुकान्तके विशिष्ट बंधन अेव विषय-विस्तारकी दृष्टिसे अिसके दो भाग होते हैं। आठ पंक्तियोंका अष्टक (octave) सम्बोधित अेक विभाग और षट्क

(sestet) के रूपमें छह पंक्तियोंका दूसरा विभाग। दोनोंमें आठवीं अथवा कभी-कभी नौवीं पंक्तिके बीच विराम होता है, जिससे सानेटके दो भाग होते हैं।

प्रथम आठ पंक्तियाँ दो चतुष्पदियोंमें बनती हैं और दूसरे विभागमें दो त्रिपदियोंका अन्तर्भाव होता है।

अष्टकमें तुकान्त सम्बन्धी अेक विशेष बन्धन है। पहली-चौथी और दूसरी तीसरी पंक्तियोंमें तुक मिलती है अथवा पहली-तीसरी और दूसरी-चौथी पंक्तियोंमें अन्त्यानुप्रास साधा जाता है।

षट्कमें पहली-तीसरी पंक्तियोंमें तुकान्त मिलता है। अथवा पहली-चौथी, दूसरी पाँचवी, और तीसरी-छठवीं पंक्तियोंमें भी तुक सम्बन्ध जोड़ा जाता है।

मिल्टनी सानेट भाव-दृष्टिसे भी दो भागोंमें विभाजित होता है। अष्टकमें अिच्छित काव्यार्थकी रूपरेखा और विस्तार होता है तथा षट्कमें अिसका अुत्कर्ष अेव परिणति। अुदाहरणार्थ यदि अष्टकमें भावना विशेष, भावनाजनित विचार अथवा प्रसंग वर्णित होगा, तो षट्कमें भावनासे अुत्पन्न विचार, विचारका दूसरा पक्ष अथवा पहले विभागमें वर्णित प्रसंगका निष्कर्ष होगा। अष्टकमें विषयका अेक पक्ष रखकर, षट्कमें अुसका दूसरा पक्ष दिखाते हुअे अुसे पूर्ण किया जाता है। अिसीसे सॉनेटका निर्णायक स्वभावगुण माना जानेवाला 'अर्थका आन्दोलन' गुण अुत्पन्न होता है।

मिल्टनी सुनीत-शैलीके अष्टक और षट्क दो विभाग करीब-करीब सम्पूर्ण अेव स्वयंपूर्ण होते हैं। समीक्षक Crossland लिखता है कि मिल्टनी सानेट, अेक सम्बद्ध काव्य न होकर करीब-करीब दो काव्यांश होता है। और अष्टक अलग हटाकर रख दिया जाअे तो दो चतुष्पदियोंका यह स्वतंत्र काव्य ही प्रतीत होगा। परन्तु यही आलोचक आगे लिखता है कि अष्टक और षट्कका संयोग अैसा कलात्मक साध लिया जाअे कि अभिन्नता प्रतीत हो। किन्तु आलोचककी यह भूमिका मानी नहीं जा सकती। Enid Hamer अथवा Sir Arthar Quiller-couch जैसे समीक्षकोंने लिखा है कि मिल्टनहीके सानेटमें काव्यार्थका अखण्ड प्रवाह आरम्भसे अन्ततक अविरत प्रवाहित रहता है।

ये दोनों रूप सम्भव हो सकते हैं। जहाँ अष्टक और षट्क अेक दूसरेसे भिन्न, स्वतंत्र अेव स्वयंपूर्ण प्रतीत होने लगते हैं, वहाँ भी अुनको अज्ञात तरीकेसे सम्बन्ध जोड़कर अेक ही काव्य शरीर निर्माण करनेका अुत्तर-दायित्व मिल्टनी-सॉनेटमें कविको निभाना पड़ता है। आठवीं अथवा नौवीं पंक्तिके बीच योग्य स्थानपर विराम-योजनाकर, भिन्न अर्थसूत्रोंके कलापूर्ण गुम्फन द्वारा कविकी कुशलता व्यक्त होती है।

अिस अितालियन (मिल्टनी) सॉनेटका अंग्रेजी-भाषी शेक्सपीरियन सानेट कहलाता है। वास्तवमें यह शेक्सपियरसे भी काफी पुराना है। अिसका मूल निर्माता थामस वेट माना जा सकता है। अितालियनसे अंग्रेजीमें लाते हुअे थामस वटने सानेटका मूल रूप (Form) सुरक्षित रखा। दो चतुष्पदियोंका द्विपदकी अष्टक और दो त्रिपदियोंका त्रिपदकी षट्क यह विशेषता अंग्रेजीमें मूल अितालियनसे आयी। मात्र षट्कमें अन्तिम दो पंक्तियोंकी तुकबंदी नवीन शैलीसे जोड़नेकी पद्धति अुसने प्रचलित की। यह साधारण परिवर्तन अितालियन सॉनेटके मूल रूपको विघटित करनेवाला साबित हुआ। सरेने वेटकी शैलीका अनुकरण किया और साथ ही अष्टक और षट्क भिन्न दो भागोंकी अपेक्षा दो तुकान्त-वाली तीन चतुष्पदियाँ और अन्तिम दो पंक्तियोंका युग्मक-अिस प्रकार सॉनेटका अेक नया रूप (Form) अुसने प्रचलित किया। अिसीका अनुकरण सर फिलिप सिडनेने किया। कुछ समय बाद "अष्टक-षट्क और मध्यस्थानीय विराम" वाली सानेटकी परिभाषा क्षीण होकर बारह पंक्तियाँ और दो पंक्तियोंवाला रूप व्यवहृत हुआ। प्रारंभिक बारह पंक्तियोंमें विकसित भावधाराका अन्तिम दो पंक्तियोंमें सूक्ति अथवा सुभाषित-रूप समारोप किया जाने लगा। अिसी प्रचलित प्रयोगको सुव्यवस्थित रूप देकर ड्रेटन और शेक्सपियरने आगे चलकर 'शेक्सपीरियन' कहलाने-वाली सानेट-शैली अंग्रेजीमें आविर्भूत की।

मिल्टनी और शेक्सपिअरी सॉनेट भाओ-भाओ होनेके कारण अुनके कुछ अवयवा और स्वभाव गुणोमें समानता होना स्वाभाविक है। मिल्टनी सॉनेटके अष्टक समान ही शेक्सपिअरी सॉनेटकी प्रथम बारह पंक्तियोमें विषय विवेचन अेव अुनका परिपोष होता है। अष्टककी अपेक्षा अिसका क्षेत्र विस्तृत होनेके कारण अिसम पुनरवित विस्तार अेव कल्पनाकी बारीकियोको अधिक अवसर मिलता है। मिल्टनी सॉनेटके षट्कमें अष्टकके विषयका अुत्कर्ष अेव परिणति होती है तो शेक्सपिअरी सानेटकी द्विपदीमें । बारह पंक्तियोमें व्यक्त विषयका चमत्कृतिपूर्ण अुपसहार किया जाता है अथवा अर्थान्तर-न्यासके रूपमें अुसे घुमा दिया जाता है।

मिल्टनी और शेक्सपिअरी सॉनेटमें अूंच-नीच निश्चित करना कठिन है। सॉनेटकी श्रेष्ठता--अुसकी शैली, रूप और शास्त्रीयताकी अपेक्षा कविकी प्रतिभा पर होना अधिक अवलंबित होती है। शेक्सपिअर और अुसके समकालीन कवियोने शेक्सपिअरी शैलीको लोक-प्रिय बनाया है, तथापि सॉनेटकी मिल्टनी शैली ही भावनाके सूक्ष्म आन्दोलन अभिव्यक्त करनेकी दृष्टिसे श्रेष्ठ मानी जाती है।

सॉनेटकी स्वरूप चर्चा करते हुअे अेक महत्त्वपूर्ण प्रश्न अुत्पन्न होता है। सॉनेट किन विषयोपर लिखा जाअे?

वास्तवमें सॉनेट विविध विषयोपर लिखे गये है। प्रणय तो अिसका प्रमुख विषय है ही। किसी समय यही अिसका अेकमात्र विषय माना जाता था। परन्तु प्रेममें भी मिलन परिपूर्तिकी अपेक्षा विरह, वचना, ममुत्सुकता और निराशा आदि स्थितियोका वर्णन सॉनेटकी रसपूर्तिके लिअे अधिक अनुकूल सिद्ध हुअे है। सॉनेटका नायक प्रणय-सफलता शायद ही अनुभव करता है। 'Our Sweetest songs are those that tell of saddest thought' शैलीके ये अुद्गार सॉनेटके सम्बन्धमें विशेष अर्थमें सत्य है। नारी प्रेम और मित्रप्रेमका विरोध तथा मित्र-प्रेमकी विजय शेक्सपिअर-कालीन सुनीतकारोके प्रिय विषय थे। प्रेमके साथ ही मृत्युका अुल्लेख आता है। मृत्यु भी सुनीतकारोका प्रिय विषय है।

अिटालियन और अंग्रेजी राजदरबारोमें बचपन बिताकर सॉनेट प्रौढ़ हुआ, अत राजस्तुति और स्वामि-प्रशसा भी अुसका अेक विषय बना। जीवित अेव मृत-मित्रोका गुणगान, महापुरुषोके प्रति आदर-प्रदर्शन, कवि और कविताका सम्बन्ध और स्वरूप वर्णन, अीश्वर स्प-चिंतन आदि सभी विषयोपर सॉनेट लिखे गये।

केवल निसर्ग-वर्णन सॉनेटके लिअे पर्याप्त विषय नही हो सकता। भावों अथवा विचारोंकी पृष्ठभूमि होना अुसके लिअे आवश्यक है।

अुपरोध, अुपहास, नर्म विनोद, व्याजोक्ति आदि विषय सॉनेटके लिअे कहाँतक अनुकूल हो सकते हैं यह प्रश्न बार-बार पूछा गया है। सॉनेटके जन्मकालसे अबतक राजनीतिक प्रतिद्वंद्वीके प्रति वक्रोक्तिपूर्ण आलोचनाके लिअे अुसका अुपयोग किया गया है। व्याजोक्ति, अुपरोध और प्रकट अुपहासका अुसमें अन्तर्भाव हो ही जाता है। निरे हास्यरसपूर्ण सॉनेट भी लिखे गये हैं। परन्तु अुनकी सख्या परिमित है। विचार और भावनाकी सुश्लिष्ट अेवं गभीर अभिव्यक्ति सॉनेटकी विशेषता मानी जाती है। विनोदप्रधान सॉनेटमें यह समव नही होता, अत विनोद सॉनेटके लिअे वर्ज्य माना जाता है। सॉनेट अमुक विषयपर लिखा जाअे और अमुक विषयपर नही, अिस प्रकारका नियम नही बनाया जा सकता। कविकी प्रतिभा-शक्तिपर ही सॉनेटकी गुणसम्पन्नता अवलंबित रहेगी। परन्तु साथ ही सॉनेटकी प्रकृतिको कुछ विषय अनुकूल होंगे तो कुछ अुतने अनुकूल नही होंगे—यह भी स्पष्ट है। अनुकूल विषय तथा प्रतिभा और रचना-कौशल्य सम्पन्न कविका 'समसमा सयोग' होनेपर ही प्रथम श्रेणीके सॉनेटका सृजन होता है। ❀

❀ मराठी 'सुनीत-सग्रह' की भूमिकासे साभार।

(मराठीसे अनुवादक—श्री अनिलकुमार, साहित्यरत्न)

अुर्दू कवितामें राष्ट्र-विभाजनके प्रति वेदना और आक्रोश

श्री रतनलाल बंसल

राष्ट्र विभाजनकी घटना और अुसके फलस्वरूप हुअे भीषण साम्प्रदायिक अुत्पात भारतीय अितिहासके विद्यार्थीके हृदयमें सदैव वेदना और आक्रोशकी भावनाअें अुत्पन्न करते रहेंगे, फिर अुनकी मनोभावनाओंका तो कहना ही क्या है जिनके अभाग्य नेत्रोंके सम्मुख यह सब कुछ घटित हुआ अथवा अिन अुत्पातोंमें जिनको व्यक्तिगत रूपसे भी बहुत कुछ भुगतना पड़ा। अैसे भुक्तभोगियोंमें जो कलाकार थे या विशेषत कवि थे वे अपनी प्राकृतिक संवेदनशीलताके कारण स्वभावत अिन घटनाओंसे बहुत अधिक प्रभावित हुअे और अुसके फलस्वरूप अिस युगमें अिन घटनाओंसे सम्बन्धित बहुत सा साहित्य लिखा गया। विभाजनका प्रभाव विशेषत अुस भूभागपर पड़ा जिसकी भाषा सिंधी अुर्दू तथा बंगला थी। अिसलिअे (सिंधी और बंगलाका तो हमें पता नहीं है) अुर्दूमें गद्य और पद्यकी अनेक प्रभावशाली तथा कलात्मक रचनाअें अिस दर्दभरे विषयको लेकर रची गयी। यह विशेष रूपसे आशा तथा प्रसन्नताकी बात है साथ ही साहित्यिक समाजके लिअे गौरवकी भी कि अिन रचनाओंमें हमें अुत्कट अिन्सानियत और अुच्चकोटिकी हार्दिक विशालताके दर्शन होते हैं। अिसका अर्थ यही है कि जब लाखों मनुष्य साम्प्रदायिक विद्वेषकी आगमें जल रहे थे और हमारे अधिकांश राजनीतिक नेता अुस विनाशकारी आगको जान या अनजान हवा दे रहे थे तब भी अुर्दूका कवि अपने पथसे विचलित नहीं हुआ था। क्या हिन्दू और क्या मुसलमान क्या भारतीय क्या पाकिस्तानी सभीने अपनी काव्यकलाका अुपयोग झुलसती हुअी मानवताके अुपचार और अुद्धारके हेतु ही किया। जब भारत और पाकिस्तानमें हिन्दू और मुसलमान अेक दूसरेके खूनके प्यासे हो रहे थे और अेक दूसरेको बरबस अपने-अपने वतनसे निकाल रहे थे जब कल तक अेक माने गये देशकी छातीको दुधारासे काटकर अुन दो टुकड़ोंकी सरहदें तय की जा रही थीं तब पाकिस्तान निवासी अहमद रियाजने अपने हिन्दुस्तानी साथियोंको पुकारते हुअे कहा था —

'साथियो! हाथ बढ़ाओ कि है हम आजभी अेक
कौन कर सकता है तकसीम[1] अदबकी जागीर[2]।
कौन अफकार[3] की कन्दील[4] बुझा सकता है
कौन कर सकता है अहसास[5] की शिद्दत[6] को असीर[7]॥

× × ×

साथियो! आओ अधूरे हैं हमारे सपने
साथियो! आओ अभी काम बहुत बाकी है।
अपने बेदार-तकाजों[8] का फिर अैलान[9] करें,
जिन्दगी अब भी हमें सिर्फ हमें तकती है।'

और अिस आमंत्रणके साथ ही कविने तत्कालीन वर्तमान स्थितिका चित्र खींचते हुअे कहा था —

'शहर बाँटे गये, तकसीम हुअीं गलियाँ भी
बुलबुल ओ गुल[10] की मुहब्बतका फसूँ[11] खत्म हुआ
कितने चेहरे हैं जिन्हें देख न पाअेंगी कभी
कितनी आँखोंकी लताफत[12] का फुसूँ खत्म हुआ।

और नासिर काज़मीने अपने पाकिस्तान प्रवासके पश्चात् जैसे आँसुओंमें कलम भिगोकर लिखा —

'वो जिन्दगीके सहारे नजर नहीं आते,
कहाँ है दोस्त हमारे नजर नहीं आते।

× × ×

हजूमे-यास[13] है और मंजिलों अँधेरा है
वो रात है कि सितारे नजर नहीं आते।'

अेक और स्थानपर अिन्हीं नासिर साहबने लिखा है —

जिन्हें हम देखकर जीते थे 'नासिर',
वो लोग आँखोंसे ओझल हो गये हैं।

---

१ बाँट सकता है। २ साहित्यकी सम्पत्ति। ३ चिन्तन। ४ दीपक। ५ अनुभूति। ६ अुष्णता। ७ बन्दी। ८ जागृत अुत्तरदायित्व। ९ घोषणा। १० फूल और बुलबुलके प्रेमका जादू। ११ सरसता। १२ निगाहोंका समूह।

राष्ट्रका विभाजन और अुसके कारण लाखों-लाख व्यक्तियोंपर अैसी भीषण आपत्तियाँ अुस समय आयीं, जब राष्ट्रको स्वाधीनता प्राप्त हुअी। गलत या सही, लाखों व्यक्ति आज भी यह विचार रखते हैं कि हमारे नेताओंने राष्ट्रके विभाजनकी शर्तके साथ स्वाधीनताको स्वीकार करके भारी गलती की और अिसीलिअे जो साम्प्रदायिक अुत्पात हुअे, अुनकी जिम्मेदारी भी अिन नेताओंपर ही है। ये भावनाअें अिन दिनों अिस विषय-पर लिखी गयी अुर्दूकी कविताओंमें बड़े ही सशक्त रूपमें प्रकट हुअी हैं। 'हफ़ीज़ होशियारपुरी'ने अैसी स्वतन्त्रता और नेताओंकी ओर अिंगित करते हुअे कहा,

"कुछ अिस तरहसे बहार आयी है कि अुसने लगे
हवाअे-लाला-ओ-गुलसे चिराग़े दीदा ओ दिल।

× × ×

प अिज्तराब ये शौके अुरूसे आज़ादी
अुठाके देख तो लेना था परदये महमिल।

अर्थात्, कैसी अजब बहार आयी कि फूलोंसे अैसी गन्ध निकलने लगी, जिसके स्पर्शसे नेत्र और हृदय प्रसन्न होनेकी अपेक्षा अुदास होने लगे।

नेताओ! तुम्हें स्वाधीनतारूपी दुलहनको पानेकी अैसी आतुरता, अैसी आसक्ति थी? अरे! पाल्कीके पर्देको तो अुठाकर जरा देखा होता कि वह दुल्हन वास्तवमें कैसी है? पाणिग्रहण हाथ पकड़ने योग्य है भी या नहीं।

अेक और कविने अिन दिनोंका चित्रण करते हुअे लिखा है,—

शहर दर शहर खू बहाये गये,
यों भी जश्ने तरब[१४] मनाये गये।
क्या कहूँ किस तरह सरे बाजार,
अस्मतों[१५] के दिये बुझाये गये।
रहनुमाओं[१६] की गफ़लतों[१७]के तुफ़ैल[१८],
क़ाफ़िले राहमें लुटाये गये।
आह वो खिलवतों[१९] के सरमाये[२०],
मजमये—आम[२१] में लुटाये गये।

१४ आनन्दपूर्ण अुत्सव। १५. सतीत्व। १६ नेताओं। १७ भूल। १८ कारण। १९ अेकान्त। २० सम्पत्ति। २१ सर्व साधारणके समक्ष।

अिक तरफ़ झूम कर बहार आयी,
अिक तरफ़ आशियाँ[२२] जलाये गये।

श्री 'साहिर' लुधियानवीने, जिनको अुस समय पाकिस्तान चला जाना पड़ा था, विभाजनके लिअे आग्रह करनेवाले अपने सजातीय मुस्लिम नेताओंसे व्यंग्य भरे स्वरमें पूछा था—

"मेरा जिहाद[२३] तो खैर अेक लानत[२४]था सो है अबतक,
मगर अिस आलमे-वहशत[२५]में ओमानों पे क्या गुज़री!

× × ×

चलो, वो कुफ़्रके घरसे सलामत आ गये लेकिन
खुदाकी ममलकत[२६]में सोख़्ता-जानों[२७] पे क्या गुज़री?

और भला कौन था, जो 'साहिर'की अिस बातका जवाब देता? अलबत्ता अुनको पाकिस्तान छोड़ देनेके लिअे अवश्य विवश कर दिया गया।

फिर अुर्दूका कवि अिस भयानक स्थितिसे निराश होकर नहीं बैठ गया, या अुसने केवल स्वतन्त्रता और नेताओंको कोसने तक ही अपनेको सीमित नहीं रखा, अुसने यह भी गाया कि—

'छोड़ो भी नफ़रतकी बातें आओ कोअी काम करें
मुल्कों मुल्को अम्नो-मुहब्बत[२८] के अफ़साने[२९] आम करें।
वक़्तकी जिन्दा क़द्रें[३०] हमसे क़ुरबानी[३१]की तालिब[३१] हैं,
आज ये अपना काम नहीं है जिक्रे-मये-गुलफ़ाम[३२] करें।

वह अैसा अिसलिअे कह सका, क्यों कि अुसे आशा है कि—

'ये जुल्मत[३३] भी छँट जाअेगी हैं दिलमें हमारे चश्मे-फ़िरन'
बदलेगा जमाना बदलेगा अुम्मीदका क्यों छोड़ें दामन[३४]।

और कौन नहीं चाहेगा कि हमारे अुर्दूके कवियोंकी यह आशा फलवती हो?

२२ घोंसले। २३ धार्मिक कट्टरताका विरोध। २४ घृणित। २५ अुन्मादके वातावरण। २६ राज। २७ धूलसे हुअे प्राण। २८ शान्ति और प्रेम। २९ कहानियाँ फैलायें। २९-३२ समयकी सजीव आवश्यकताअें हमसे बलिदान चाहती हैं, आज मदिरा और सुन्दरियोंकी चर्चा करना हमारा काम नहीं है। ३३ अँधेरा। ३४. आँचल।

[फीरोज़ाबाद

मेरे सपने थक गये

: श्री राजेन्द्र यादव, अेम. अे. :

मेरे सपने थक गये,
भटकती राहें आपसमें युलझी-अुलझी
जीवन भूल-भुलैयों-सा रह गया
कि छूटी सारी सुधियां दूर
साध सब चूर
बुझा मन हारा-हारा पस्त,
　　　　पस्त मजबूर !

तुम अपनी बाँहोंकी कोमल सीमाओंमें घेर अिन्हें
वासन्ती चुम्बन अंकित कर दो दीप्त-मधुर
सच, ये बालकसे लहरा जायेंगे खिलकर !

मेरा मानस,
मुक्ते हासोंकी अुज्ज्वल परछाओंके नीचे
मोतीकी फसल मुगाना जो
अब केवल विशाल रेतीला सागर
करवटें बदलता
छूता रहता दो छोर
'सहारा' हँसता है।
तुम अपने भावुक मत सबेती सजल—
　　　　नयनोंमें अिन्द्र-धनुष घोले,
बस, अेक अिशारा भर कर दो,
शत शत नखलिस्तान किलककर अंगडायी लें !
　　　　सच, मैं बहुत अकेला,
　　　　अिन सपनोंके कातर पंखोंमें छिपकर
　　　　दिन-रात छटपटाया करता हूँ !
　　　　अैसे मेरा युल्लास
　　　　जवानीकी झरनों-सी निर्द्वन्द्व हँसी
　　　　मस्तीके सपने सतरंगी,
　　　　भावोंके जूडोंमें गुंथे सजे, गीतोंके मुकुलित पारिजात
　　　　कल्पनाके पायलकी मदिर झनक
　　　　सब भीतर ही घुट घुटकर सिसक रहे चुपचाप !
　　　　किसी केकडेके पाशोंमें बंध गया विवश,
　　　　जो चूस-चूसकर मुझे सोखता जाता है।

बाहोंमें ताकत नहीं कि हिल तक सके तनिक
यों जीवनका नवनीत चुक रहा शनैः शनैः
संगीत चुप रहा शनैः शनैः !

जो सीमासे अुमंग-अुमंगकर
सरिता-सा बह अुठे — या अुठे
में अुफान था !
सत्यवान था !
लेकिन सब 'सत' चुका,
न पतझर रुका
भाग्यकी शाखें झुक न सकीं—
फिर भी केवल अेक अजाना मरता-सा विश्वास
कभी बल दे जाता झकझोर
किसी दिन 'सावित्री' की ज्योतिर्मय साँसें
अिस अन्धकारके कुंजोंमें आलोक बिखेरेंगी आकर,
मेरा अवसाद ओस बनकर चमकेगा,
म रक्षित हूँ अेक सुगन्धित अलक जालसे
जो यह सर्पोंके जाल काट दे सकता है
स्नेहका सम्बल यमसे भी लौटा लायेगा ! [आगरा

कविता :

मैं तो अुनको देख रहा था।

: श्री 'निर्शंक', अेम. अे., सा. र. :

मैं तो अुनको देख रहा था।

जीवनकी निधि खोकर भी मैं
जीवन-धनको देख रहा था।
मैं तो अुनको देख रहा था॥

कोयलने सदेश सुनाया—
"मधुरितु आयी, ऋतुपति आया",
किसने खोया किसने पाया ?
कौन रो पड़ा, किसने गाया ?

जान न पाया मैं तो अपने
पागलपनको देख रहा था।

अधरोंमें मृदु हास छिपाये,
नयनोंमें मधुमास छिपाये,
आये थे वह अिंगितमें ही
मेरा भाग्याकाश छिपाये,

तब मैं मौन खड़ा अपने ही
चंचल मनको देख रहा था।
मैं तो अुनको देख रहा था।

अुपन्यासकार श्री निराला

श्री आनन्द माधव मिश्र, बी अे, विशारद

निरालाजी कविके रूपमें ही अधिक प्रख्यात हैं। पर अुनका गद्य साहित्य भी अनुपमेय और निराले गुणोंकी खान है। जिस तेजीसे अुनका कवि अद्वैत और रहस्यवादसे मुड़कर प्रगतिकी ओर अुन्मुख हुआ है अुनका गद्यकार भी अप्रतिहत गतिसे गद्य साहित्यमें भी नूतन प्रयोग करनेमें अग्रसर रहा है। अुन्होंने अपनी चुटीली व्यंग्यात्मक भाव शैलीमें अपने समालोचनात्मक निबंधों द्वारा रीति कालीन अभिवृत्तिके घूंघट पटमें अुलझी साहित्य धाराको जन सुलभ साहित्य छटा प्रदान की है। साप्ताहिक मतवाला कालमें भावुक दीपकसे लिखी गयी अुनकी व्यंग्यात्मक टिप्पणियां साहित्य गगनमें छाये धूम समयके कुहासेको निरन्तर विनष्ट कर सकनेमें ही सफल नहीं हुअीं बल्कि तत्कालीन तरुण-साहित्यकारोंके पथके पथको भी आलोकित करने और अुन्हें नयी दिशा नयी सूझ और नयी प्रेरणा देनेका भी अुन्होंने काम किया है। साथही अुन्होंने साहित्यकारोंकी तत्कालीन कूप मंडूकतापर भी कसकर प्रहार किया है। सामाजिक प्रश्नोंके महत्वको भी अुनके कलाकारने प्रारम्भसे ही महत्वकी दृष्टिसे देखा है। अुन्होंने स्पष्ट घोषित किया कि– 'भोजन वस्त्रकी समस्या किसी अकके लिअे नहीं है अनेकोंको अुसके हल करनेकी आवश्यकता है।'

निरालाजीका जीवन संघर्षोंकी अटूट शृंखला है। पद-पदपर अुन्होंने दर्दभरे तूफानी द्वन्द्वोंको झेला है। अनवरत आपदा जीवन-आवर्त्तों और हलचलोंके साथ अुन्होंने होड़ ली है। पर अुनका सौंदर्य शिल्पी सत्य दर्शी कलाकार न कहीं झिझका है न थका है न झुका है। अक अपूर्व वेगसे अुसने चलना शुरू किया और अुसी निराली शानसे आज भी चुनौती देता बढ़ता चला जा रहा है। डा० रामविलास शर्माने निराला विषयक अपनी पुस्तकमें लिखा है— अुनका (निराला जीका) जीवन अिस बातका प्रमाण है कि अक सहृदय व्यक्तिके लिअे अक चुनौती है कि वह अिस सड़ी गली व्यवस्थाका अन्त करके अक नये समाजका निर्माण करे। स्वयं निरालाजी अिस अुद्देश्यकी पूर्तिके लिअे सतत साहित्य सृजन करते रहे हैं और विषम परिस्थितियोंमें भी युग प्रेरणाके अविचल केन्द्र रहे हैं।

निरालाजीका पहला अुपन्यास अप्सरा सन १९३१ अी० में प्रकाशित हुआ। तत्पश्चात वे अक नियमित गतिसे अलका निरुपमा प्रभावती चतुरी चमार (रेखाचित्र) कुल्ली भाट और बिल्लेसुर बकरिहा आदिका सृजन करनेमें लग रहे हैं। आध दर्जनसे अधिक अुपन्यास और दर्जनों कहानियों (रेखाचित्रों) का अुन्होंने प्रणयन किया है। काव्य और निबंधोंके क्षेत्रमें जिन बौद्धिक तर्कशीलता और भाव पटुतासे अुन्होंने सिंहासनासीन साहित्यकारोंको हिला दिया था अुनके कथा साहित्यने अुनके पैरों तलेकी भूमिको ही खिसका दिया। अपने पहले ही अुपन्यासमें अक वेश्या माताकी कन्याको नायिकाकी भूमिकामें अवतरित करके पूरे रोमांटिक दल बलके साथ अुन्होंने अुपन्यास जगतमें अक क्रान्तिकारक हलचल अुत्पन्न कर दी। प्रेमचन्दने यदि गांवोंकी गोदसे धूल भरे पात्र अुठाकर अुन्हें अूंचा अुठाया तो निरालाने समाजकी परम अुपेक्षित शोषित नारीका अुसके पदपर आसीन करनेका तुमुल प्रयास प्रारंभ किया। 'अप्सरा' से 'अलका' 'निरुपमा' और 'प्रभावती' तक अुनका यही क्रम जारी है। काल्पनिक पात्रोंकी आदर्शोन्मुख रचना कर लेखक सतत ही आगे बढ़ता चलता है। अुसने अपने अिस प्रयासमें भारतीयताकी पूरी रक्षा की है। नारीको पाश्चात्य रंगमें रंगकर अुद्धत-अुच्छृंखल आधुनिकताकी वेष भूषा प्रदानकर अंग्रप्राप्ति विगलित लताको अुसने जन्म नहीं दिया है। वरन भारतीय संस्कृतिकी गौरव सतीके सतीत्व और ममतामयी, त्यागमयी साध्वी नारीको अुसने पद-पदपर प्रतिष्ठित

करनेका प्रयास किया है। 'अप्सरा', 'अलका', 'निरुपमा' यदि अुनकी प्रारम्भिक रचनाअें हैं तो 'प्रभावती' अुनके सङ्क्रमण-कालीन भावोंकी थाती है और अन्य कृतियाँ कुल्लीभाट, चतुरीचमार और बिल्लेसुर बकरिहा अुनके स्वस्थ, प्रौढ़ यथार्थवादी कलाकारके दृढ़ रचना-चिह्न हैं।

निरालाजीने अपनी प्रारम्भिक रचनाओंमें काल्पनिक आदर्शोन्मुख पात्रोंका चित्रणकर समाजमें भव्य आदर्शोंकी प्रधान भूमिकाको जहाँ अेक ओर सुलभ बनानेका सफल प्रयास किया है, वहीं नवयुवक स्वस्थ चेतनावाले तरुण-वर्गको सामाजिक प्रगतिके लिअे असीम वेगसे अुभाडा है। निश्चय ही, समाजकी वीभत्स समस्याओंके हल का यह प्रयास नहीं है, फिर भी प्रेरणा और अुत्साहका क्षेत्र तो है ही। अिससे अिनकार करनेका अर्थ कलाकारकी भावनाको न समझना ही होगा। यहाँ केवल देखना यह है कि कलाकार अिन काल्पनिक अुडानोंमें अुड तो नहीं जाता, भूमिका आधार तो नहीं छोड बैठता, जन-जीवनसे कट तो नहीं जाता। और फिर किसी कलाकारकी प्रारम्भिक रचनाओंमें ही क्रान्ति अथवा प्रगतिका अुच्चतम स्वर ढूँढना भी तो श्लाघ्य नहीं है। अुसकी कृतियोंमें गतिके कणोंकी अुपलब्धि आवश्यक है, जो अुसे अेक दिन सही पथपर ले ही आअेंगे। अैसा ही कुछ निरालाके कथाकारका है। वह आदर्शसे-कल्पनासे चलता है और फिर अपनी भूमिपर, अपने यथार्थको देखने लगता है। यही, अुसकी महानताका, चिर प्रगतिका द्योतक है।

अिस प्रकार हम निरालाजीके कथा-साहित्यको पूर्व और अुत्तर-कालीन रचनाओंमें बाँटकर देख सकते हैं। निश्चय ही अपनी पूर्व कृतियोंमें अुनका कलाकार युगकी समस्याओंको पूर्ण-वेगसे आत्मसात नहीं कर पाया है। पर अुनमें सतत बढनेकी अुत्कंठा है, वेग है जो कि अुनकी अुत्तर-कालीन कृतियों (कुल्लीभाट और बकरिहा)में अुभडकर सामने आ गया है। यह भी सही है कि अुनकी पूर्वकालीन रचनाओंमें किसान-मजूरकी सही शक्तिके मूल्यांकन-चित्रणका भी अभाव है, और अुनका कलाकार अेक सही पथका निर्देशन करनेमें भी सफल नहीं हो पाया है। पर छायावादी कलाकार जो अभी अपने भीतर ही द्वन्द्व कर रहा है, जो अभीतक रोमांसमें ही झाँक रहा है, अुससे अिस कालमें अिससे अधिककी आशा भी नहीं रखी जा सकती। हमारे लिअे गौरवकी जो बात है वह यह कि निरालाका कलाकार अिन छायावादी मदिर रंगीनियोंको छिन्न भिन्नकर तीव्र वेगसे यथार्थ पथकी ओर सङ्क्रमण करनेमें लगा है। वह यह अनुभव करने लगा है कि—"कलाके विकासके लिअे जनताके दुख-दर्दकी तसवीरें खींचना जरूरी ही नहीं, अनिवार्य है।"

निरालाजीकी पूर्ववर्ती रचनाओंमें पात्रोंको खुल-कर विकसित होनेका अवसर भी नहीं मिल सका है। कथानकोंमें अुपकथानकोंकी सूत्रबद्धता भी कहीं-कहीं नहीं निभ पायी है। अिस सबमें कविके अूपर छाये हुअे अद्वैत और रामकृष्ण-मिशनकी तत्कालीन छाप है। परन्तु अपनी अिन रचनाओंमें कलाकार अप्रतिम शैली, शब्द-विन्यास, भावोंकी ग्रहणशीलता और अद्भुत दृढ़तामें अपराजेय है, अद्वितीय है। हास्य और व्यंग्यके साथ विषय वस्तुकी रसमयता सर्वत्र व्याप्त है जो सहज ही पाठकका मन मोह लेती है और अपनी छाप बिना लगाये नहीं छोडती। ये कवि-कलाकारकी सहज अनु-भूत रचनाअें हैं। ये पूरे वेगसे चलती हैं और हृदयपर छा जाती हैं। 'अप्सरा' में कलकत्तेकी कहानी है। 'अलका' और 'निरुपमा' में लखनअू और गढाकोला (कलाकारकी पितृ-भूमि) के अनुभव गुम्फित हैं। 'अप्सरा' और 'प्रभावती' अुनके कवि-सुलभ सौंदर्यमिश्रित प्रेम-परिणितिके चरम बिन्दु हैं। अिन सभी कृतियोंमें अुनकी भाषा, अुनके काव्यकी भाँति ही अेक सरगम-लयका बोध कराती चलती है। भावोंकी गुम्फियोंमें भी भाषाकी यह गेयता पाठककी गुदगुदीको चेतन बनाये रखती है। और अुसे 'बोर' नहीं अनुभव करने देती। अुनके शब्द सहज ही हृदयको बेधते चलते हैं और अेक अैसे रसोद्रेकको अुद्वेलित करते रहते हैं जिसकी मिठासका अनुभव भीतर ही भीतर पाठक करता रहता है। यही अुसकी सफलताकी कुंजी है। यही नहीं, अुनकी अिन प्रारम्भिक कृतियोंमें सिनेमाका-सा दृश्य-विधान तना रहता है। रोमांसके साथ देश सेवाका पुट, पढा-लिखा

नायक, अुपेक्षित नारी वर्गकी नायिका और कमी जाति वाली युवक नायक और धनी नायिका, अुनके त्यागमय पूत जीवनका चित्रण सिनेमा जैसे मनहर, हृदयहारी दृश्य ला अुपस्थित करते हैं जो पूरे वेगसे जन-मानसपर छा जानेकी सफल शक्ति रखते हैं।

निरालाजीकी अुत्तरकालीन रचनाअें ग्रामीण जीवनकी चित्र-रेखायें हैं। ये अुनके सतत जागरूक कलाकारको हिन्दी साहित्यके लिअे वजाड देन हैं। कलाकारने अपने अुत्तरदायित्वकी पूरी क्षमताय अिनमें ओढ लिया है। जीवनकी विविधताको 'चतुरी चमार' में रेखकका समारोपित करनेका प्रेमचंदके गोदानमें होरीकी भांति, अेक अभिनव प्रयास है। चतुरी गांवमें पैदा हुआ है। वह अपने बेटेके लिअे आशाअें रखता है। अुसे पढाना लिखाना चाहता है। सन् ३०-३२ के किसान आन्दोलनके दिन हैं। चतुरी आदिपर जमींदारका प्रकोप होता है। मुकदमें होते हैं। हारकर भी चतुरी खुश है कि अुसने जान लिया— "जूता और पुरवाली बात अब्दुल अर्जमें दर्ज नहीं है"— अुसे ज्ञान हुआ कि जमींदारको जबरदस्ती दो जोडे लेनेका अधिकार नहीं है। वैसे यह घटना अपनेमें अेक साधारण घटना है। पर यथार्थका अन्त कैसे होता है निरालाजी चतुरीके जीवनमें यह समझानेमें सफल हुअे हैं। यही अिस कृतिका मूल प्राण है। अिसी प्रकार, 'कुल्ली भाट' के रूपमें किया गया व्यंग्य अेक पूरे युगपर व्यंग्य है। पात्रोंकी सजीवता, सधी हुअी, सरल भाषा, व्यंग्य और हास्य अिसमें देखतेही बनते हैं।

'बिल्लेसुर बकरिहा' निरालाजीका सर्व सफल ग्रामीण चित्र है। अवधके किसानोंकी अेक भरी-पूरी तसवीर लेखकने खींची है। बिल्लेसुरके पास निरुपमाके नायककी भांति शिक्षाकी अूंची डिग्री नहीं है। पर वह व्यवहारिक जीवनमें अुससे अधिक सफल अुतरे हैं। वे तीन भाअी हैं—मन्नी ललअी और दुलारे। वे स्वयं बकरी पालते हैं, अिसलिअे अुनका नाम बकरिहा पड गया। सामाजिक जीवनपर जैसा तीखा व्यंग्य चित्र निरालाजीने खींचा है कि सामाजिक अहमका सारा ढांचाही चरमरा गया है। बर्रागिहा तराके शुक्ल हैं। फलतः छोटे ब्राह्मण होनेसे व्याहकी समस्या सामने है। अेक भाअी अेक विधवाकी अत्रोध कन्याम सगाअी फंसाते हैं। दूसरे गुजरातके अेक ब्राह्मणके यहां नौकरी करते हुअे अुसके मरनेपर अुसकी पत्नी-पुत्री समेत माल असबाब समेट लाते हैं। समाज स्वीकार नहीं करता। तीसरा भाअी सुकुल परिवारमें विधवा विवाह कर आयी नारी-रत्नसे अपना घर आबाद करते हैं। बिल्लेसुरका वर्णन सबसे रोचक है। वे बंगाल जाते हैं। जमादार खलीदीन सुकुलके यहां ठहरते हैं। अुनका बाबाकी छेड छाडपर कंठी माला पटककर घर लौटते और बकरियां पालते हैं। सारा गांव अुनकी अुन्नतिसे अीर्ष्या करता है। अेक विवाहका प्रस्ताव आता है। रातों रात वे स्वप्न देखते हैं—'बहुत गोरी है। सोलह सालकी है। बडी बडी आंखें होंगी, जैसी युवराजश्रीकी लडकी हुसीनाकी हैं।' बिल्लेसुर नयी पोशाक बनवाते हैं और मंगनूके घरकी ओर चलते हैं। प्रस्तावका भेद खुल जाता है तो निराश न होकर अपने भाअीकी ससुराल चले जाते हैं और सासजीसे विवाहका वर प्राप्त करते हैं।

अिस प्रकार, अिस चित्रणके द्वारा समाजकी जिस वीभत्स, सडी-गली अवस्थाका निरालाजीने पर्दाफाश किया है लाचारी और लोभका जो सडांधभरा-दर्दनाक चित्र खींचा है वह समाजकी छातीपर अंगदके जैसा भीषण पदाघात है। अन्तमें खेतिहर मजदूरके रूपमें बिल्लेसुरके जीवन-संग्रामका जो चित्र निरालाजीने खींचा है—साधन न होनेपर भी रोटीके लिअे लडनेवाले किसानकी जो रण-गाथा निरालाजीने बहायी है वह हिन्दुस्तानी किसानको अपराजेय, पौरुषेय शक्ति है। हिन्दीके यथार्थवादी साहित्यको 'बिल्लेसुर बकरिहा' निरालाजीकी वैसी अमर देन है जैसे कि प्रेमचंदका अमर किसान-काव्य (अुपन्यास) 'गोदान'।

[चर्चा

यमुने !

(राजघाटकी समाधिके समीप)

: श्री गुरुनाथ जोशी :

यमुने,

युग-युग पूर्व द्वापरमें, तुम्हारे तीरपर कुरुक्षेत्रमें अर्जुनको गीताका अुपदेश देनेवाले श्यामसुन्दर मोहनने अपने बाल्य-कालमें अहीरके बालकोंके साथ न जाने कितने सलोने खेल खेले थे। कालियका फन कुचलकर अुसपर वह खड़ा हो गया था, तुम्हारी गोदमें क्रीड़ा करके तुम्हें हँसाया था, गोपिकाओंके साथ रास-क्रीड़ा की थी। जनताका मन आनंद-प्रवाहमें आलोड़ित किया था, नचाया था। अुन दिनों जो खेल अुसने खेले थे, अुनका स्मरण कर अुसकी बंसीकी रसीली वाणी कानोंमें भरके कल तक जनता आनंदसे विभोर होती, पुलकित हो आनंदाश्रु बहाती, जनताके आनंदमें तुम भी साथ देती, कलकल निनादसे सर्व जनोंके मनको आनंद-रस-भोग कल तक कराती आयीं। पर क्या जनताका तथा तुम्हारा वह आनंद शायद अुस परम पिता महादेवको न भाया ? तुम्हारा आनंद लूटना तथा औरोंको लूटने देना अुस परमेश्वरको अच्छा नहीं लगा क्या ? मानवको अितना सुख और आनंद मिलना अुचित नहीं जानकर या अितने सुख-आनंदमें अपनेको भूल गया है, यह जानकर शायद अुसने तुम्हारे और हमारे सुखका, आनंदका अपहरण किया क्या कालिंदी !

यमुने,

युगयुगोंसे मानव-मनको आनंद देती आयी हुअी तुमको आज हमें अपार शोक-सागरमें ढकेलनेका दुर्भाग्य क्यों प्राप्त हुआ ? तुम्हारे बूढ़े प्यारे मोहनका दाह-संस्कार तुम्हारे ही तीरपर देखनेका दुर्भाग्य क्यों तुम्हारे और हमारे सिरपर आकर अचानक अनभ्र वज्रपातकी तरह गिरा ? आनन्दाश्रुओंको बहाती हुअी तुम्हारी और हमारी आँखोंको आज क्यों दुखाश्रु बहाना पड़ रहा है माँ ! तुम अकेली अपने प्यारे मोहनकी अमानवी हत्यासे शोक नहीं कर रही हो, पर, देखो, देखो तो, सारी दुनिया ही आँसू बहा रही है। तुम्हारे पिताके आँसुओंको शायद बहना पसंद नहीं आया, अिसीलिअे वे वहीं जमकर नगाधिराज हिमालयके अडिग खड़े हैं। तुम्हारा प्रियतम सागर संसारके कोने-कोनेसे वह आये नयन-नीर अपनेमें संकलित कर, अपने सर्वश्रेष्ठ, संसारके प्रिय, महात्माकी अुपाधि प्राप्त, अमर कीर्तियुक्त पुत्रका अंत्य-संस्कार कैसे देखूँ, यह सोचते हुअे हृदयविदारक स्वरसे रोते हुअे जहाँका तहाँ खड़ा है ! जाओ कालिंदी जाओ, अपने अश्रुप्रवाहको दिखा, अुसके आँसूमें अपने आँसू मिलाकर अपने प्रीतमका दुख हलका करो, धीरज बधाओ। यह कहने जाओ कि बाकी पुत्रोंकी आयु स्थिर रखनेकी प्रार्थना हम परमात्मासे करें।

देवि,

तुम और तुम्हारी बहन गंगा दोनों मिलकर बूढ़े भारतके बापू-मोहनकी अस्थिपर लगे रक्तको धोकर क्या यह दिखाना चाहती हो कि अुसकी अस्थि भी परिशुभ्र है, राख भी परिशुभ्र है तो अुनकी आत्मा तो परिशुभ्रताकी प्रतिमूर्ति ही थी या क्या तुम यह दुनियाको बताना चाहती हो कि अुसकी आत्मा सत्य और अहिंसा तथा प्रेमके रूपमें करोड़ों लोगोंके हृदयोंमें प्रवाहित त्रिवेणी तीर्थराज होकर अमर है।

कालिंदी,

आज भारतमें द्वेष, असूया, संकीर्ण साम्प्रदायिकता, नास्तिकताका ताण्डव हो रहा है। तुम अिनको अपने प्रबल-प्रवाहसे दहन-दहन करोगी कि नहीं ? क्या युग-युगतक अिसी तरह तुम रोती हुअी,

हमें भी रुलाती हुई रहोगी ? क्या तुमको अपने भक्तोंकी लाशपर नाचना, आनंदगीत सुनना पसंद नहीं है ? क्या हमेशा शोकगीत सुनते रहना ही पसंद है ? न मां ! न ! पाश्चात्य संसारसे और पश्चिमी सभ्यतासे हमारा संबंध जबसे शुरू हुआ है तबसे हमने बहुत कष्ट भोगे हैं। तुम्हारे और अपने प्यारे बापू मोहनके अवसानसे तो हमारे दुखकी सीमा ही नहीं रही। तुम अपने और पुत्र रत्नोंकी सहायतासे हमारा दुख दूर करके हमें हँसाकर स्वयं भी हँसोगी कि नहीं ? कहो यमुना मैया कहो। हम तो अुस विनाके अवमानसे हुअ दुखोंको सहते अुसके बताये हुअ मार्गपर चलने आनंदके दिनोंकी प्रतीक्षा करेंगे कालिंदी ! हम तुमसे यही प्रार्थना करते हैं कि तुम परमात्मासे प्रार्थना करो कि बापूके द्वारा प्राप्त स्वातंत्र्यकी रक्षा करनेकी शक्ति हममें वह भर दे और मुल्कमें अमन चैनके दिन देखनेका भाग्य प्रदान कर दे। तुम्हारी प्रार्थनाके सुरमें हम भी अपना सुर मिलाते हैं यमुने !

[यह श्रद्धांजलि मैंने १९४८ की ३१ वी जनवरीको सायंकालके समय लिखकर हिंदी प्रचार सभाकी शोक सभामें पढ़ी थी।—लेखक]

[धारवाड़

अेक मलयालम कविताका भाव

कवि का पुष्पहार

: श्री चुड्डम्पुषै कृष्णपिल्ले :

[नवीन कालके मलयालम कवियोंमें स्व. श्री कृष्णपिल्लै अेक बहुत मुख्य स्थान पा चुके हैं। सैकड़ों भावात्मक और कलापूर्ण कविताओं लिखकर अुन्होंने मलयालमके पद्य साहित्यकी श्री वृद्धि की। समाजकी भयानक क्रूरताओंको देखकर अुनके दिलमें जो निस्सीम दर्द पैदा हुआ, अुसका दिल पिघलानेवाला आविष्करण अुनकी कविताओंमें हुआ है। यह छोटीसी कविता अुनकी "कविंयुडे पूमाला" का अनुवाद है।]

मुग्ध मनोहर भावनाओंको गूँथकर
कविने आँखोंको लुभा देनेवाला अेक हार बनाया।
प्रतिक्षण अुससे अनुभूतिका सौरभ बह रहा था,
मृदुल भावनाओंकी तरंगें अुसे अूर्मिल बनाती थीं।।
कवि अुस हारको हाथमें लेकर गली गली भटकने लगा,
दयाकी अेक बूंद पानेके लिये
अुसने धनियोंके गृहद्वारोंसे प्रार्थना की।।
लेकिन—
अुपहास भरी नजरोंके सिवा
अुसे किसीसे और कुछ नहीं मिला।
पेटमें आग लगी;
आँखें अश्रुधारामें निमग्न हुईं।।

अेक ओर—
स्वर्ण-मुद्राओंके कटोरोंके अूपर नाचनेवाले नर्तकोंको आलिंगन कर
संसार रंगरेलियोंमें नृत्य करता है।
अेक ओर—
अुच्च वेश-भूषाकी सरीची फैलाकर गंभीर भावसे खड़ा रहता है
और अुसकी छायामें नग्न होकर दुनिया सुन्दर स्वप्न देखती है
अेक ओर धनमदमत्तता लगातार विष अुगल रही है
और मान-तृष्णाके सामने समाजरूपी अुद्यान जल रहा है।
वह मनोहर पुष्पहार हाथमें लेकर
हाय!
कलाकार परम निराशामें, शून्य हृदयके साथ, जीवन कालमें गली-गली घूम रहा है।
अुस हारकी महिमाको जाननेवाला कोअी नहीं था।
कविका गला सूख गया,
अुसकी शिरायें शिथिल बनीं।
अुसी क्षणको वह धरतीपर गिर पड़ा और
फिर न अुठा।

+　　　+　　　+

बहुत दिन बीत गये,
संग्राम-क्षेत्रोंमें शान्ति फैल गयी,
कभी पहाड़ छिन्न-भिन्न हुअे,
कभी कच्चे कुअें भर गये,
और मरुस्थलमें फूल विकसित होकर लहलहाने लगे।
लगातार फूल बरसानेवाले अुस अुपवनके मध्य
अविकल शान्तिका चिह्न जैसा जो कब्र है
वह किसका है?
विश्वके अभिनन्दन गुलदस्ता बनकर
अुस जमीनपर जो बरस पड़ता है,
वहाँ कौन हृदय सुखसुप्तिमें मग्न है?
अेक सदी पहले,
धूलकी आगमें जिस भिखारीके हाथ खिलखिलाकर निर्जीव
बन गये थे, अुसकी रक्त भावनाओंको गूंथकर बनाया हुआ
वह पुष्पहार—
बिना तनिक भी मुरझाये
सुन्दरतामें नहाकर
आज भी प्रशोभित रहता है।
अुसके सामने
समाज करबद्ध आराधना करता है।

[अनुवादक—श्री मोहनकुमार]

[दक्षिण भारत



पंजाब

: श्री दिआनचंद मिगलाणी :

देसां विचों देस सुणींदा सोहणा देस पंजाब
जोबन जिस दा लिश्कां मारे, कोअी न झल्ले ताब
अणखां दे नाल गल्लां करदा अेथे डोल डावाब
लैंठां वरगे गभरू जिस दे दिल दे डाढे, नवाब
विच मैदानां चमके जिसदे, सूरमिआं दी आब
सतलुज, बिआसा माली जिस दे खिड़िआ बाग गुलाब
लहि-लहि करदे खेतां विचों मोती मिलण नायाब
धरती ते सुरगां दा टुकड़ा, वसदा रहे पंजाब

[सुना जाता है कि देशोंमें सुन्दर देश पंजाब है। जिसका यौवन अैसा चमकता है कि कोअी अुसकी ताब नहीं सह सकता। यहाँकी लोग-तरुणाअी आँखोंसे बात करती है। यहाँके जवान लट्ठोंके समान हैं, दिलके बड़े ही अुदार। अिसके मैदानोंमें वीरोंकी चमक चमकती है। सतलुज तथा व्यास नद जिसके माली हैं। यह गुलाबकी तरह खिला हुआ है। अिसके लहलहाते हुअे खेतोंमेंसे नायाब मोतियोंकी प्राप्ति होती है। यह पृथ्वीपर स्वर्गका टुकड़ा है। यह पंजाब बसा रहे।]

बीत गयी हुण रात दुखां दी, सूरज नैण उघाड़े
बन्ह बिस्तरा टुर गये अेथों, जिन्हां बाग उजाड़े
लक्क बन्हके उठ खलोते, अेह पंजाबी लाड़े
लगड़े कदी न यअी यअी करदे, रोंदे रहिंदे माड़े

: अनु०—श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन :

सूरमिआं दियां वारां गाओंदे आखण विच अखाड़े
पलट गेआ किसमत दा पासा, मुक गये तरले हाड़े
पूरा होवेगा हुण छेती आज़ादी दा ख़ाब
धरती उते सुरग नमूना वसदा रहे पंजाब

[अब दुखोंकी रात बीत गयी है। अब सूरजने आँखें खोली हैं। जिन्होंने कभी यह बाग उजाड़े थे, वे अब बिस्तर बाँध चले गये हैं। ये पंजाबी लाडले अब कमर कसकर खड़े हो गये हैं। शक्ति-सम्पन्न लोग कभी 'यअी', 'यअी' नहीं करते। कमजोर ही रोते रहते हैं। वीरोंके गीत गाकर ये अखाड़ोंमें उतर रहे हैं। किस्मतका पासा पलट गया है और मिन्नत-चिरौरी करना समाप्त हो गया है। अब शीघ्रही आजादीका स्वप्न पूरा होगा। पृथ्वीपर स्वर्गका नमूना—यह पंजाब बसता रहे।]

खाण सोने दी धरती, जिद्दन गोआं गुलज़ारां
नवे हाणुके, नवीआं कलीआं, नवीआं अेन बहारां,
नवे जोश दीआं नवीआं लहिरां, भरसन अॅन भण्डारां
सरगोधे ते लॅलपुरे दीआं भुल्ल जाण गोआं बारां
कोठिआं दी थां महिल बणनगे, खड्डिआं दी थां कारां
नवां जनम शहिरां दा होया, रौणक गली-बज़ारां
सूरज वांगू रोशन होवे अेह चढ़दा पंजाब
जनत वी पई रीस करे, जिंदे वसे अेह पंजाब।

[पृथ्वी सोनेकी खान बन गयी है। अब गुलजार खिलेंगे। नये शगूफे, नयी कलियाँ और नयी बहारें होंगी। नये बाँध और नयी नहरें होंगी। अन्नके भण्डार भरे जायेंगे। सरगोधा और लायलपुरकी बारें (नहरोंसे सींची गयी भूमि) भूल जायेंगे। कोठड़ियोंकी जगह महल बनगे और गाड़ियोंकी जगह मोटरकार लगीं। शहरोंका नया जन्म हो गया है। गली-बाजारोंमें रौनक है। यह चढ़ता हुआ पंजाब नूरजकी तरह रोशन हो। स्वर्ग भी जिसकी रीस करे—यह पंजाब इस तरह बसता रहे।] [कालिम्पोङ्

पंजाबी कविता

खेतोंकी भरपूर जवानी

: सुश्री अमृता प्रीतम :

(पंजाबी)

भरपूर जवानी खेता दी, भरपूर जवानी हो !
खेत जो गोड बीजे वाहे—भर सरोवर ते पानी ल्याओ,
झिक झिक ओह ते माजर छमको, बेल जो लीते ओन ।
गिट्ठे गिट्ठ खेत होअे हो गोडे-गोडे खेत होअे,
मौनिया करता पया जो बाना, स्टिट गये खलो ॥
भरपूर जवानी हो !

लम्बड़ा दे विच बाहर पओ, 'हो कावा' दी वाज पओ
भरिया बन्न बन्नके म हारी, भूल ता ले गय लो ।
कच्चा कोठा लिम्बके रखया, झाड पूंजके, लिम्बके रखया,
सलम सलना कोठा मेरा, मूह बले झाके ओह ॥
भरपूर जवानी हो !

आर गयी हाँ, पार, गयी हाँ, ढूड-ढूडके हार गयी हा,
पक्के महलें बडे जो दान, मुड निकली न सो ।
हाड़ी बीजी, सावनी बीजी, दूनी बीजी चूनी बीजी,
सड़दा-बलदा हाड गया, ते ठण्डा बक्कर पी ।
भरपूर जवानी हो !

खेता दी भरपूर जवानी, मेरी भुख दी करे कहानी,
मेरी मुख दे गीत सुनाते, पवे कलेजे खो ।
धुप गुवारा अन्द घड़ियाँ, मैं खेता दी वट ते खड़ियाँ,
सूरज डुब्बा चन्द न चड़्या, न तारे दी लो ॥
भरपूर जवानी हो !

सत्ता आओया, सत्ता गजिया, अँसे वटते दुर्दो रओया,
घुड पओ मेरे पब्बा मुल, राह न दिस्या को ।
घोहे न घुसदे, कनक न गुजदी, ये नहीं सडा सार्यो पुजदो,
न चन पकावे रोटियाँ, न तारा करे रसो ॥
भरपूर जवानी हो !

अनुवाद :

(हिन्दी)

खेतोंका भरपूर यौवन, भरपूर यौवन !
खेतोंको जो जोता, बीजा तो तालाबके पानीसे सींचा,
हर कुओंपर आवाजें गूंज अुठीं, जब खेतोंको जोत लिया ।
खेत फिर टखने-टखने तक हुअे, फिर घुटने-घुटने तक बढ़ गये,
जब मोती जैसे दाने पड़ गये तो सिट्टे बाली-बाली हो गये ।
भरपूर जवानी खेतोंकी !

जब कटन करनेका समय आया, 'ला कुड ला कर' की आवाजोंसे खेत गूंज अुठे,
मैं तो गट्ठे बान्ध बान्ध कर थक गयी, परन्तु (अनाजका) ढेर तो वह अुठाकर ले गया ।
छील कर और झाड पोंछ कर, मैंने अनाज रखनेके कोठेको तैयार किया था ।
मेरा खाली और अुदास कोठा, रह-रह कर मेरा मुंह देख रहा है ।
भरपूर जवानी खेतोंकी !

अनाजके दानोंकी तलाशमें मैं मारी मारी फिरी,
पर अेक बार पक्के मकानमें (के कोठा) में जाकर दाने फिर बाहर न निकले,
सावन और असाढ़की फसल, दुगुनी-दुगुनी और फिर चौगुनी-चौगुनी बोयी,
जलता-जलता अगाड़ गया है, और ठण्डा जमा देनेवाला पोह ।
खेतोंकी भरपूर जवानी !

खेतोंका यह भरपूर यौवन, मेरी भूखकी कथा कह रहा है,
मेरी भूखके नाले सुना रहा है, हृदयमें अेक हूक-सी अुठती है ।
खेतोंके अन्दर धुंधलका-सा छाया हुआ है और मैं खेतोंके किनारे पर खड़ी हूं,
सूर्यास्त हो गया है, और चन्द्रमा अभी निकला नहीं है ।
खेतोंकी भरपूर जवानी !

ऋतुअें आयी भी, और चली भी गयी, पर मैं किसी प्रकार चलती आयी हूं,
धूलमें पांव अटे हैं, और राह सुझायी नहीं देती है ।
चूल्हे जलने नहीं हैं, और आटा गूंधना नहीं है—मन मुझे भान नहीं है,
(परन्तु) न चन्द्र भोजन पकाअेगा, न तारा रसोअी करेगा (और मुझे किसी
प्रकार चलते रहना होगा ।)

(अनुवादक :—श्री घनश्याम सेठी)

[काश्मीर



हिन्दी भाषा भारत आशा

विविध विषय

१. राष्ट्रभाषाका स्वरूप

[पं० जवाहरलाल नेहरूका भाषण]

[दिनांक ५ जनवरीको सायंकाल ४–२१ पर, मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलनके हिन्दी भवनका शुभ-शिलान्यास करते हुअे नागपुरके अैतिहासिक अेवं अनूठे साहित्यिक-समारोहमें भारतके प्रधान मंत्री प्रियदर्शी पंडित जवाहरलालजी नेहरूने जो महत्वपूर्ण भाषण दिया अुसको हम संक्षिप्त रूपमें नीचे दे रहे हैं। पंडितजीने राष्ट्रभाषा हिन्दीकी योग्यता और अुसके स्वरूपके सम्बन्धमें अपना लोकप्रिय मत व्यक्त किया कि राष्ट्रभाषा अुस व्यापक और सार्वजनिक भाषाको कह सकते हैं जो राष्ट्रमें बोली और समझी जा सके और जिसके द्वारा हमारे राष्ट्रीय कार्य बेरुकावट चल सके, वह सरल हो, सबल हो, अुस भाषाके द्वारा देशके सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवहार चल सके और जो सारे देशकी सभ्यता और संस्कृतिकी प्रतिनिधि हो। लीजिअे, आगे पढ़िअे— सम्पादक]

"कोअी भाषा सिर्फ दफ्तरोंके अन्दर ही नहीं गढ़ी और मढ़ी जाती है। कोअी साहित्य केवल दरबारी साहित्य नहीं रह सकता। लेखक या साहित्यिक सिर्फ कविता और कहानीकी रचनाअें करके ही संतोष मानकर न बैठ जाअें। वे देशके अुन हजारों सवालोंपर भी लिखें जिनसे आजकी दुनियाको हमें समझनेमें मदद मिले। अिसलिअे दुनियाको समझनेमें सहायक साहित्यका सृजन आवश्यक है। फूलकी तरह खिलना ही भाषाका मूल स्वभाव है। अैसी भाषा और अुसका साहित्य मुझे प्यारा है। हर देशके लिअे साहित्यका सम्बन्ध जीवनसे साथ बँधा हुआ है। दुर्बल देशका साहित्य दुर्बल होता है, अुसी प्रकार दुर्बल साहित्य देशको दुर्बल बना देता है। किसी देशके साहित्यसे यह जाना जा सकता है कि वह देश कैसा है। साहित्यका सवाल बुनियादी सवाल है। साहित्यके आअिने (दर्पण) में देशको देखा जा सकता है।

राष्ट्रभाषाका प्रश्न विवाद रहित

अब राष्ट्रभाषाके सवालपर बहसकी कोअी गुंजाअिश नहीं। श्री वियाणीजीके कथनका अुल्लेख करते हुअे अुन्होंने कहा कि हिन्दी किसी दूसरी भाषाके मार्गमें बाधक नहीं होगी। भाषाके क्षेत्रमें अेक भाषाके बढ़नेसे दूसरी भाषा कभी घटती नहीं बल्कि विचार-विनिमयके माध्यमसे अुसका विकास होता है। साहित्यकी भाषा और बोलचालकी भाषामें कमसे कम दूरी रखना चाहिअे। यों साहित्यकी भाषा और बोलचालकी भाषामें कुछ फर्क तो रहता ही है। अगर यह फर्क बहुत ज्यादा हो जाअे तो फिर साहित्य कमजोर हो जाता है। वह दुर्बल साहित्य दरबारी साहित्यकी शक्ल अख्तियार कर लेता है या फिर वह अैसा साहित्य बन जाता है जिसे चंद लोग ही आपसमें पढ़-सुन लिया करें। प्रजातन्त्रीय व्यवस्थामें बोलचालकी भाषा और साहित्यकी भाषा अेक दूसरेके निकट होनी चाहिअे।

तुर्कीके कमालपाशा अतातुर्कके जमानेमें यह तय किया गया कि तुर्की भाषासे अरबीके जटिल शब्द निकाले जाअें, आप जानते हैं, अुस समय टर्कीमें क्या किया गया? शब्दोंके लिअे लोग दफ्तरों या साहित्यिकोंके पास नहीं पहुँचे। वे शब्दोंकी पूर्तिके लिअे

(निकाले गये शब्दोंकी खाली जगह भरनेके लिये) गावोंमें गये। अुन्होंने वहाँसे हजारों शब्द ले लिये-- अैसे शब्द जो चालू थे, जानदार थे। हमें शब्दोंके ग्रहण करनेमें अुदार नीति अपनानी होगी। अंग्रेजीमें प्रतिवर्ष हजारों नये शब्द मिल जाते हैं। कोओी सरकार भाषाके मार्गकी कठिनाअियाँ भले ही दूर कर दे, पर किसी सरकारके हुक्मसे भाषाको गढ़ा-मढ़ा नहीं जा सकता। भाषा अेक पुष्पके समान है। क्या किसीके हुक्मसे फूल खिल या निकल सकता है? हम बीज डाल सकते हैं, पर फूल तो आहिस्ते-आहिस्ते ही निकलेगा और खिलेगा। भाषा बड़ी नाजुक चीज है। अुसे तोड़-मरोड़कर नहीं बनाया जा सकता। अगर हालत यही रही तो भय है कि कहीं हिन्दी केवल दफ्तरोंकी भाषा न रह जावे। मैंने हिन्दीका अेक कोष देखा तो मेरा सिर चकरा गया। अगर अैसे शब्दोंको चलानेकी कोशिश की गयी तो कहीं अैसा न हो कि सरकार ही ठप हो जाये। कविता और कहानियोंके अलावा हिन्दीके लेखकोंको अुन हजारों सवालोंपर लिखना चाहिये जो कि रोज अुठा करते हैं। अैसी रचनाअें होनी चाहिये जिससे आजकी दुनियाको समझनेमें सहायता मिले।

साहित्य-सम्मेलनोंको चाहिये कि वे लेखकोंकी हालतकी ओर भी ध्यान दें। मैं प्रकाशकोंका दुश्मन हूँ, (मजाकिया ढंगसे) ये प्रकाशक लेखकोंका गला दबाते हैं। सौ-पचास रुपये देकर लेखकोंसे कापी-राअिट ले लेते हैं और खुद हजारों रुपये कमाते हैं। साहित्य-सम्मेलनको चाहिये कि होनहार साहित्यिकोंकी सहायता करे और अिस बातका ध्यान रखे कि अुनके साथ अन्याय न हो।

× × ×

हिन्दीके पीछे शक्ति है। अुसे संस्कृतका स्रोत प्राप्त है। अुसके दायें-बायें दूसरी-दूसरी भाषायें हैं।..."

२. हिन्दी नवयुगकी देहलीपर

मध्यप्रदेश-हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके अध्यक्ष श्री ब्रिजलाल बियाणीके श्री मोर हिन्दी-भवन नागपुरके शिलान्यास-समारोहके अवसरपर दिया हुआ भाषण।—

आदरणीय नेहरूजी, बहिनो और भाअियो—

प्रान्तीय हिन्दी-साहित्यके अितिहासमें आजका दिन अवश्य अेक घटना बनकर रहेगा। अिससे बड़ा हमारा और सौभाग्य क्या हो सकता है कि जिस अींट, पत्थर और भाव-भाषा-शैलीका भवन हम निर्माण करने जा रहे हैं अुसकी नींवकी शिला आजके अतिथि-श्रेष्ठके कर-कमलों द्वारा रखी जाये? सौभाग्य केवल अिसलिअे नहीं, कि यह संस्कार भारतके प्रधान मंत्री द्वारा सम्पन्न होने जा रहा है। अपने बीच साहित्यके वरद पुत्र, भारतीय आत्माके प्रतीक, शब्दोंके अेक अनोखे जादूगर, प्रणेता और सृजनकारको पा कौन साहित्य सम्मानित न होगा? हम अुनका कैसा स्वागत शिष्टाचार करें जो सारे देशकी पूत प्रेरणा बन गये हों और हमारे जीवनमें अिस तरह भीतर-बाहर समाये हुअे हों? हम तो यही कह सकते हैं कि मध्यप्रदेश-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अितिहासमें यह सबसे गौरवशाली दिवस होगा।

हिन्दीके अितिहासमें भी यह अेक महत्त्वपूर्ण घड़ी है। हिन्दी आज अेक नये युगकी देहलीपर खड़ी है। प्रादेशिक भाषाओंमें राजभाषाका स्थान अुसने प्राप्त कर लिया है और अब राष्ट्रभाषामें विकसित होने जा रही है। यह अुसके लिअे अेक नवनिर्माण काल है। राजभाषा घोषित होनेके बाद स्वभावतः अिसपर अेक महान् अुत्तरदायित्व आ पड़ा है। देशके अेक छोरसे दूसरे छोर तक, भावों और विचारोंके आदान-प्रदानका अुसे माध्यम बन जाना है। राजनीति, शासन तंत्र और विज्ञानकी नित नयी आवश्यकताओंके लिअे अुसे भरपूर अुतरना है। अुसे अितनी सर्वसुगम, लचीली और गुणग्राही होना है कि देशभरकी नाना बोलियों और अर्थात् हर नये परदारों

आश्रय दे सके। यह सब होते हुअे, अेक क्षण भी यह भ्रम न हो कि अुसकी अन्य प्रादेशिक भाषाओंसे किसी तरहकी स्पर्धा है। हिन्दीकी ये सब सहोदरा है, न कोअी श्रेष्ठ न कोअी हीन। अुनमेंसे बंगाली, गुजराती, मराठी, तेलुगु, तमिल जैसी भाषाओंका तो अपना महान समृद्धिशील साहित्य है, जिनसे हम कुछ पाही सकते है। हमारी यही कामना हो सकती है कि अपनी-अपनी जगह यह सब फूले-फले और मिलकर देशका अुत्कर्ष करे। किन्तु अन्य भाषा-भाषियोंके मनमें अकारण बसे अिस सदेहको हमें दूर कर देना होगा कि हिन्दी किसी तरह अुनकी भाषाके विकासके मार्गमें बाधक होगी। दोनोंमें कोअी वास्तविक विरोध नही, क्योंकि दोनोंके क्षेत्र भिन्न है। हिन्दीकी तो आकाक्षा केवल अिसके सिवा और कुछ नही कि वह सही अर्थोंमें राष्ट्रके विभिन्न टुकडोंके बीचकी मजबूत सुनहरी कडी बन जाअे।

हम जानते है कि अिस आदर्श तक पहुँचनेके लिअे अभी कठोर तपकी आवश्यकता होगी। भाषा पूरे समाज और परम्पराकी देन होती है, अेक दिनकी अुपज नही। फिर भी यदि हम चाहते है कि हिन्दी अपना अुचित स्थान ग्रहण करे और अपने अुत्तरदायित्वका ठीक-ठीक निर्वाह करे, तो अुसी प्रमाणमें हमें यत्न करना होगा। अंग्रेजीसे हमारा विद्वेष नही, अुसके तो हम अनेक तरहसे ऋणी रहेंगे। किन्तु यह बात मानी हुअी है कि सच्चा प्रजातन्त्र तभी हो सकता है जब कि अुसका सारा कारबार जनताकीही भाषामें हो, न कि किसी विदेशी भाषामें। और यह जितना शीघ्र हो सके अुतनाही अच्छा। अिस स्थितिसे हम बच नही सकते, कभी न कभी यह करना होगा। अिसलिअे हिन्दी और मराठीको अिस प्रदेशमें राज-कार्यकी भाषा बनानेमें मध्यप्रदेश शासनने निस्सदेह अेक सामयिक, सूझबूझका और साहसका कदम अुठाया है। अिसी प्रदेशमें यह प्रथम प्रयोग हो रहा है और थोडेही दिनोंमें अिसने जो प्रतिष्ठा पायी है वह अेक अुज्ज्वल भविष्यकी सूचक है।

लेकिन भाषाका प्रश्न अितनी सरलतासे हल नहीं हो पाता। अिसके अनेक व्यावहारिक पहलू है जिनका ध्यान रखना पडता है। सबसे पहिले तो परिवर्तन-कालकी कठिनाअियाँ होती है। शासन कार्यको बिना क्षति पहुँचाये ये प्रादेशिक भाषाअें कैसे और कब अंग्रेजीका स्थान ले, यह मुख्य प्रश्न है। अिन भाषाओंका पारस्परिक सबध दूसरा प्रश्न है और अतिम तथा सबसे महत्वपूर्ण है—भाषाके स्वरूपका प्रश्न।

अिस प्रदेशमें हिन्दी और मराठीने तो अब अपना स्थान ले लिया है। यह प्रक्रिया अभी पूरी नही हुअी, फिर भी सेक्रेटरियटसे लेकर गाँव-गाँव तक अब जनताकीही भाषामें कार्य होने लगा है। अिससे अेक मनोवैज्ञानिक क्रातिका अुदय हुआ है। शासन और जनताके बीच अब अंग्रेजी भेदकी दीवार बनकर खडी नही। जैसे-जैसे समय बीतता है, यह सत्य और भी स्पष्ट होता जाता है।

प्रादेशिक भाषाओंका परस्पर सबध भी समय पाकर यहाँ आपसे आप सुलझ गया है। अिस राज्यकी प्रादेशिक भाषाओं—हिन्दी और मराठी—दोनोंको यहाँ समान स्थान प्राप्त है और आज हम गर्वसे कह सकते है कि अिनके आपसी सबधोंमें जरा भी कटुता नही है। अिस सबधमें मराठी-भाषी बंधुओंके सहयोगके लिअे हम आभारी है। अपने कार्योंमें हमें सदा अुनका बल मिला है। हजारोंकी सख्यामें हिन्दीकी परीक्षाओंमें बैठ अुन्होंने हिन्दीको अपनाया है और अुसके लिअे अनुकूल वातावरण तैयार किया है। प्रधानत मराठी केन्द्रहीमें मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य-सम्मेलनका पहला भवन बने यही अुनकी अुदार वृत्तिका परिचायक है। साथ ही, सडककी दूसरी ओर विदर्भ साहित्य सघका भवन खडा है। जो हिन्दी और मराठीके बीचकी बहनापेकी भावनाका सबूत दे रहा है। भाषा और सस्कृतियोंकी मिलन-भूमि अिस मध्यप्रदेशमें सामाजिक शास्त्रकी दृष्टिसे यह अेक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रयोग है। हमें विश्वास है कि देशके सामने सास्कृतिक मेल-मिलाप और भाषा-सहिष्णुताका हम अेक अुदाहरण रख सकेंगे।

भाषाके स्वरूपका प्रश्न अवश्य सबसे जटिल है। अिस सबधमें अुदार और स्वस्थ नीति अपनाना आवश्यक

है। भाषा शब्दकोषकारोंके या सरकारी आफिसोंमें गढ़ी जानेवाली कोअी कृत्रिम वस्तु नहीं। असे तो जनता ही — अुसके कवि, लेखक, गायक, कलाकार और विचारक निर्मित करेंगे। शासनका काम होगा कि अिस भाषाको मान्यता और जहाँ आवश्यकता हो प्रोत्साहन दे।

अिस दिशामें सबसे प्रथम आवश्यकता है अेक अखिल भारतीय वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दोंके हिन्दी शब्दकोशकी। राज्य सरकारने अिस सम्बन्धमें सराहनीय प्रयास किया है जो राष्ट्रभाषाका मार्ग प्रशस्त करेगा। पर स्पष्टतः यह अेक अखिल भारतीय स्तरका काम है। केन्द्रीय शासनसे हमारा निवेदन है कि कार्यके सहयोगसे देशके विभिन्न भाषाओंके विद्वानों और राज्य शासनके सहयोगसे कोअी असी योजना तैयार करे कि यह शीघ्र सम्पन्न हो सके।

लेखकोंको अुनकी रचनाओंके लिअे पुरस्कृत करने और विभिन्न प्रादेशिक भाषाओंके ग्रंथोंका हिन्दी मराठीमें *अनुवाद करनेकी राज्य सरकारकी योजनाका हम* स्वागत करते हैं। भाषाको समृद्ध करने और साहित्यिक समन्वय स्थापित करनेमें अनुवादोंका महत्त्वपूर्ण हाथ होता है। मुझे संदेह नहीं कि अिन योजनाओंको सफल बनानेमें हमारे साहित्यिक पूरा पूरा सहयोग देंगे।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन भी अिस दिशामें अपने कर्तव्योंसे अनभिज्ञ नहीं। हमारे साहित्यिकोंके लिअे यह अेक महान निर्माण-युग है। हिन्दीपर जो अुत्तरदायित्व आ पड़ा है असे अुसके अनुरूप बनाना है ताकि वह अंग्रेजी जानेके बाद रिक्त स्थानकी हर तरहसे पूर्ति करनेके योग्य हो जाअे। मैं अपने कवि, लेखक और हिन्दी-सेवी मित्रोंको आमंत्रित करता हूँ। आजतक हमने हिन्दीके लिअे जो माँग की थी वह पूरी हो गयी। अब हमारी परीक्षाका समय है। हम विचारक व लेखक हिन्दीमें सोचें और हिन्दीमें लिखें। हिन्दीको हम *अितनी समृद्धिशाली बना दें कि वह जन जनका कण्ठहार* बन जाअे और सबकी गलेहार बन जाअे।

बर्षोंसे प्रान्तमें हिन्दी साहित्य सम्मेलनके अपने अैसे भवनकी कमी महसूस हो रही थी *कि जहाँ अनन्त* साहित्य-साधना हो सके। *सम्मेलन* अुसमर निवासी सेठ नरसिंगदासजी मोर, श्री गोपीकिसनजी अग्रवाल और श्री दुर्गाप्रसादजी सराफका आभारी है जिनकी दानशीलतासे अैसे भवनका स्वप्न यथार्थ होने जा रहा है। इस भवनको शानदार बनानेवाले अिस भवनमें अेक मिला जुला रंगमंच और सभा-स्थल रहेगा, अेक पुस्तकालय तथा अनुसंधान शाला होगी और साथ ही अतिथिगृह होगा। हमें आशा है यह साहित्यका केन्द्र स्थायी होगा।

३. देशकी अेकताके लिअे हिन्दी

अुत्तर प्रदेशके परमश्रेष्ठ राज्यपाल और गुजरातके सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार श्री क. मा. मुन्शीने हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा द्वारा आयोजित अेक स्वागत समारोहमें राष्ट्रभाषा हिन्दीके सम्बन्धमें कहा —

हिन्दीके बिना हमारे देशकी अेकता सम्भव नहीं। जो लोग अंग्रेजी तथा अुच्च स्तरके राज-काज व्यवहारमें हिन्दीका माध्यम स्वीकार नहीं करना चाहते वे अिस अेकताके मार्गमें बाधा ही अुपस्थित कर रहे हैं। हमारे देशकी अेकताके लिअे हिन्दी वरदानके रूपमें हमें मिली है और अिस वरदानके महत्त्वको हम समझना चाहिअे।

हम लोगोंने अपने सामाजिक जीवनमें छुआछूत और भेदभावको काफी आश्रय दिया है, किन्तु भाषाके क्षेत्रमें अिस प्रकारकी छुआछूतसे बड़ी हानि होगी। हमें यह नहीं सोचना चाहिअे कि कौन-सा शब्द किस भाषाका है, बल्कि अिस बातकी कोशिश करनी चाहिअे कि जिस भाव या वस्तुके लिअे हमारे पास शब्द नहीं हैं अुनके लिअे हम अपनी सभी भाषाओंसे अुपयुक्त

शब्दोंको लें। हम लोग हिन्दीके लिये संस्कृतसे शब्दोंको ग्रहण करें, किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि अवश्य संस्कृतके सिवाय अन्य भाषाओंके जो शब्द हिन्दीमें आ गये हैं अुन्हें [illegible] निकाल दिया जाअगा तो सर्वविज्ञान युक्त भाषाओंके शब्दोंके लिये दरवाजा ही बन्द हो जाअगा। हम अपने देशकी सभी भाषाओं और विदेशी भाषाओंसे भी आवश्यक शब्द लेने चाहिये। यह अब बहुत अच्छा [illegible] होगा कि हम कम ही वस्तुओं या भावोंके लिये अधिक शब्द प्रयुक्त करें और स्वयं धीरे धीरे आवश्यकताके अनुसार अनेक अुपयोगी शब्दोंको अपनाकर शेष शब्दोंको छोड़ दें। वैज्ञानिक परिभाषाओंके साथ-साथ अन्तरराष्ट्रीय [illegible] शब्दोंको भी हम व्यवहारमें लाअें। [illegible] वैज्ञानिक [illegible] जब [illegible] अनुसंधान तथा [illegible] कर रहे हैं आवश्यक शब्द [illegible]। जिसमें कोई सन्देह नहीं कि अुस समय अुनके आविष्कारके साथ-साथ हमारी शब्दावली भी विकासमें पहुँचेगी।

"कलाका यथार्थवादी दृष्टिकोण ही समाज और राष्ट्रके लिये हितकर हो सकता है। जहाँ चक्की पीसती हुअी स्त्रियोंके लोकगीत और करघेपर कपड़े बुनते हुअे कबीरके जो पद जीवनमें अन्तः स्फूर्ति और कर्मण्यता भरते हैं, वहाँ अन्य नहीं भर सकते। हमारे साहित्यकारों और कलाकारोंको अिस प्रकारके यथार्थको अपनाना चाहिये।"

—श्री गोपीनाथ अमन
(दिल्ली राज्यके विकास-मंत्री)

४. हिन्दी सारे अेशियाकी भाषा बन सकती है।

अुत्कलके राज्यपाल श्री फजलअली साहबने ता० १९ जनवरी ५४ को कलकत्तामें [illegible] हिन्दी [illegible]-परिषदकी ओरसे आयोजित दीक्षान्त समारोहमें भाषण करते हुअे कहा कि हिन्दी भारतकी स्वाभाविक भाषा है। हिन्दीको न सिर्फ राष्ट्रभाषा होनेका अधिकार है बल्कि अगर अुसके प्रचार और विकासकी ओर अुचित ध्यान दिया गया तो वह [illegible] समय आ सकता है जब वह समस्त अेशियाकी भाषा बने। [illegible] विकास सावधानीसे किया जाना चाहिये। [illegible] बहुत ज्यादा कठिन बनानेकी कोशिशोंमें [illegible] मनमें [illegible] पैदा होगा। [illegible] हिन्दी [illegible] शब्दोंका साथ-साथ [illegible] किया है।

५. सामाजिक-प्रतिरक्षा

श्री अ. गो. रामचन्द्रराव, बी. अे. अेल.अेल. बी.

[शनिवार ता. २६ दिसंबर ५३ को हैदराबाद (दक्षिण) में सम्पन्न अखिल भारतीय समाज-सुधारक सम्मेलनके छठे अधिवेशनके सामाजिक-प्रतिरक्षा (सोशल-डिफेन्स) विभागके अध्यक्ष मैसूर राज्यके न्याय, श्रम तथा शिक्षा-विभागके मंत्री श्री अ. गो. रामचन्द्रराव, बी. अे., अेल-अेल. बी., 'राष्ट्रभाषा-विशारद' के हिन्दीमें दिये हुअे भाषणका संक्षेप।—सं.]

सामाजिक व्यवस्था

बिना [illegible] बिना [illegible] समाजकी व्यवस्था [illegible] किये हुअे सामाजिक नियम और मनोविज्ञान आध्यात्मिक [illegible] [illegible] प्रगति [illegible] पद्धतियों और [illegible] दिशामें [illegible] जा सकता है। सामाजिक नियमोंके [illegible]

निषेधके अनुसार ढली हुअी अिन पद्धतियों और रीति-रिवाजोंमें अितिहासकी घटनाओंसे समय-समयपर परिवर्तन होते रहते हैं। किसी समय हम लोग कबीलोंमें बँटे हुअे थे। अब अतिशीघ्र अेक अैसा भी समय आनेवाला है जब कि सारे विश्वके लोगोंके अेक कुटुम्ब या विश्व-समाज (वर्ल्ड सोसाअिटी) के रूपमें परिणत होना अवश्यम्भावी है। अिस तरह हमारे समाजकी प्राचीन व्यवस्थासे लेकर आज तककी व्यवस्थाका विकास सदियोंसे निरन्तर संघर्ष और समन्वयका फल है।

भारतीय विचार-धारा

भारतीय समाजकी व्यवस्था बिलकुल सुसंगठित है। अिस व्यवस्थाके अन्तर्गत विधि निषेधोंको लिये हुअे भारतीय धर्म मनुष्यको अपने जीवनकी प्रत्येक दशामें पुरुषार्थके अुच्च, अुच्चतर तथा अुच्चतम स्तर तक पहुँचानेमें सक्षम है। अिस धर्मके अनुष्ठानसे मानव-सहज दुर्बलताअें प्रत्येक दशामें न्यून, न्यूनतर और न्यूनतम होकर सर्वथा लुप्त हो जाती हैं। अिससे मनुष्य-जीवन प्रत्येक दशामें पवित्र रहता है। यह संगठन प्राचीन ऋषि-महर्षियों और अर्वाचीन साधकोंकी सतत साधना और अनुशीलनके द्वारा निष्पन्न सर्वोत्तम विचारोंका विकसित रूप है। "सत्य वद, धर्मं चर" ही अिसका मूल-मन्त्र है। अिसीलिअे हमारा धर्म सार्वदेशिक तथा सार्वकालिक है। मनुष्यकी सर्वोत्तम शक्तियोंके विकास तथा पोषणके द्वारा व्यक्तिका और अुसके द्वारा व्यक्तियोंकी समष्टि या समाजके विकासकी व्यवस्था ही हमारे साधु-सन्तोंका लक्ष्य रही है। भारतीय आदर्श सम्पूर्णतया सत्यकी गहरी नींवपर स्थित होनेके कारण नित्य है। यही सत्य भारतीयोंके भौतिक तथा आध्यात्मिक जीवनका ताना बाना है। पश्चिमी समाजोंमें आज जीवनके प्रति पर्याप्त मात्रामें अतृप्तिकी भावना दिखायी पड़ती है। क्योंकि अुनके आचार और विचारमें पार्थक्य है। आचार तथा विचारका सामञ्जस्य भारतीय सामाजिक जीवनकी विशेषता है। अतः यह पश्चिमी समाजके लिअे आदर्श बना हुआ है।

समाजकी वर्तमान स्थिति

अितना सब होने हुअे भी यह जानी हुअी बात है कि आज न पूर्वी देशोंकी सामाजिक स्थिति ही तृप्तिकर है, न पश्चिमी देशों की ही। क्योंकि वर्तमान दशामें समाजकी आवश्यक भलाओी तथा योग-क्षेम सध नहीं रहा है। अमरीकाकी अतुल सम्पत्ति, औद्योगिक कारखानोंकी कभी न थमनेवाली हलचलें और संगठनकी असाधारण क्षमता या अिंग्लैंडकी सुसमृद्ध और विशिष्ट सांस्कृतिक परम्परा—अिन सबके होते हुअे भी ये दोनों राष्ट्र विश्व-भरमें अत्यन्त हीन अपराधोंके केन्द्र बननेसे बच नहीं पाये हैं।

डाक्टर अेलेक्सिस कैरेल महोदयकी चेतावनी

सुप्रसिद्ध नोबेल-पुरस्कारके विजेता समाज-दर्शन शास्त्रके विख्यात विद्वान् डाक्टर अलेक्सिस कैरेल (Dr. Alexis Carrel) महोदयके विचार अिस अवसरपर ध्यान देने योग्य हैं। आपने पश्चिमी समाजकी वर्तमान दशाका विवरण संक्षेपमें या दिया है —

"हमारे मनीषियोंके मनमें यह सन्देह अुत्पन्न हो गया है कि वर्तमान सामाजिक दुर्दशाका निदान ठीक है या नहीं। क्या अिस दुर्दशाके कारण केवल आर्थिक या वित्तीय हैं? हम अपने अर्थशास्त्रियोंको अुनकी मृगतृष्णा अथवा अज्ञान और राजनीतिज्ञ तथा धनाधिपतियोंको अुनकी मूर्खता तथा अवैध धन लिप्साके कारण दोषी ठहराये बिना कैसे रह सकते हैं? क्या आधुनिक जीवन-पद्धतिने समूचे राष्ट्रके बौद्धिक तथा नैतिक बलको घटा नहीं दिया है? तरह-तरहके गुण्डोंका दमन करने और आराधियोंसे लड़नेके लिअे प्रति वर्ष अरबों डालरोंका अपव्यय हम क्या करें? आज दिन भी गुण्डे लोग दल बाँधकर बैंकोंको दिन दहाड़े सशस्त्रताके साथ लूटते हैं, पुलिसवालोंको मार डालते हैं, बच्चोंको बेचकर धन कमाते हैं या अुनके ग्राहकोंके न मिलनेपर विलासे-मिलानेके व्यसन बचनेके लिअे अुन्हें मार भी डालते हैं। अिन बातोंको रोकनेके लिअ किये जानेवाले अपार व्ययके होते हुअे भी यह सब क्या हो रहा है? सभ्य लोगोंमेंसे बुद्धि-भ्रष्ट और निर्बल-मनके

व्यक्ति अितनी सख्यामें कहांस निकल आये ? सारे ससारमें आज अशाति अपनी चरम-सीमाको पहुँच गयी है। क्या अिसके कारण केवल आर्थिक हैं या वैयक्तिक और सामाजिक भी हैं ? आशा है कि हमारी सभ्यतामें दीखनेवाले पतनके ये प्रारंभिक लक्षण हमें अिस बात-पर गभीरताके साथ विचार करनेको बाध्य करेंगे कि अिसमें हमारा अपना या हमारी सामाजिक सस्थाओंका कहांतक हाथ है। समाजकी अिस दुर्दशाको दूर करके सामाजिक व्यवस्थाको सशक्त बनानेकी आवश्यकताका क्या हम अब भी अनुभव नहीं करेंगे ?"

[अज्ञात मानव (मैन, दी अननोन) तेरहवाँ सस्करण, १९४८, पृष्ठ सख्या २५८]

यह चेतावनी पश्चिमी सभ्यताके अन्धानुकरणसे पूर्वी देशोंको बचानेके लिअे पर्याप्त है।

प्राच्य देशोंकी दशा

हम आज चीन और जापान जैसे पूर्वी देशोंकी सामाजिक स्थितिको बिलकुल ही अस्थिर पाते हैं।

विदेशी शासन अेवं परतन्त्रताकी लबी अवधिके बाद हम भारतीय अभी-अभी स्वतन्त्र हुअे हैं। आज भारतीय समाज-सुधारकों पर बडा भारी अुत्तरदायित्व आ पडा है। अुनको दूरदर्शिता, श्रद्धा तथा विवेकबुद्धिसे काम लेना चाहिअे। अिस तरह त्याग अेवं सेवाकी मनोवृत्तिसे अुनको आगे बढ़कर विनयके साथ समाजकी सेवा करनी होगी। मेरा पूरा विश्वास है कि अिस महान् अेवं पवित्र कार्यके निर्वाहके लिअे हम अपनेको हर तरहसे योग्य पाअेंगे।

समस्याकी व्याप्ति

डाक्टर रेकलेंज महाशयने अिस समस्याकी व्याप्तिके सम्बन्धमें बडी दृढ़ताके साथ निम्नलिखित मार्गमित बातें कही हैं —

"भारतकी सामाजिक अुन्नतिके लिअे हमें चाहिअे कि अेसी अेक वैज्ञानिक-समाज-सुधार-योजना तैयार करें जो हमारे देशके दार्शनिक लक्ष्यको लिये हुअे हो और जिसका लागू करनेमें सुविधा हो। आज प्रत्येक देशमें आवश्यक यह है कि आरक्षकी-विभाग (पुलिस-विभाग), अपराधियोंको सुधारनेवाली (बोर्सटल-स्कूल जैसी) सस्थाओं और धारा-सभाओंके कार्योंमें अैसा सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो जिससे अेकका कार्य दूसरेका पूरक हो।"

डॉ रेकलेंज साहबके अिस कथनका प्रत्येक शब्द ध्यान देने योग्य है।

मुख्य सिद्धांत

समाज-व्यवस्थामें शिथिलता लानेवाली बातें समाजके भीतर भी होती हैं और बाहर भी। अन्दरकी बातको लीजिअे। निरन्तर "अपराध अेवं कर्तव्य-भ्रष्टताके" लिअे बार-बार दड भोगनेवाले बच्चों और बालिग लोगोंको सुधारनेकी बातपर आज जोर दिया जा रहा है। अिस समस्यामें दो मुख्य बातें अन्तर्निहित हैं। बालिगोंमें बार-बार अपराध करनेकी प्रवृत्तिको दूर करना और बच्चोंमें कर्तव्य-भ्रष्टताकी प्रवृत्तिका निवारण करना—भारतीय दृष्टिसे सामाजिक जीवनमें फिरसे पवित्रता लाना अिसीको कहते हैं। यह बात हमारे देशके लिअे कुछ नयी नहीं है। अपने प्रतिदिनके आचरणसे सामाजिक जीवनको शुद्ध बनाये रखना सदियोंसे हमारा ध्येय रहा है। पाठशाला तथा मठ जैसी सांस्कृतिक सस्थाओंकी सहायतासे छोटी अुम्रके बच्चोंके आचार-विचारपर नियन्त्रण किया जाता है। अिससे बाल्यकालमें ही अिस प्रकारकी सस्थाओंमें शिक्षित होनेपर बच्चे क्रमशः नौजवान और बूढ़े होनेपर भी नियमके पाबन्द होनेके कारण सदाचार अेवं शुद्ध आचार-विचारके सहज ही अभ्यस्त हो जाते हैं। अुनका मन कभी कुपथपर पाँव नहीं रखता। अिससे लोगोंके मनमें भिक्षु, श्रमण, साधु, सन्यासी, जगम, यति, हरिदास और शिव-शरण जैसे चलते-फिरते महात्माओंके प्रति आदर-बुद्धि अुत्पन्न होती है और अभी तक होती आयी है। अैसे लोग समाजमें कभी बोझ बनकर नहीं रहे। अुनका समाजमें हर कहीं आदर-सत्कार होता आया है और अुनकी सेवाओंके हम सदासे ऋणी हैं। ध्यानकी देनेकी बात है कि पाँचवीं और सातवीं सदियोंके चीनी यात्री और पन्द्रहवीं और सोलहवीं सदियोंके पुर्तगाली यात्रियोंने हमारी सुव्यवस्थापूर्ण सामाजिक-व्यवस्थाकी प्रशसा की थी।

कार्यकी योजना

विचार सम्मेलनके अवसरपर एक सीमावार योजना स्वीकृत हुई थी। उसका सार निम्नलिखित है —

(अ) साधारण

१ भिन्न भिन्न राज्योंमें अपराधोंकी रोकथाम और कर्तव्य पुनर्व्यवस्थाकी संस्था कम करने उपायों तथा साधनोंमें आवश्यक सलाह और परस्पर समन्वय देनेका एक केन्द्रीय योजना।

२ न्यायालयोंसे राज्यके सभी बड़ी बड़ी विशेष कारागारोंमें साथ भेजे जायें जहां उनके अपराधोंके कारणोंका निदान किया जाय। ऐसे कारागारोंमें अपराध निदान विज्ञानके ज्ञाता मनोवैज्ञानिक विश्लेषणके द्वारा मानसिक रोगोंकी चिकित्सा करनेवाले समाज दर्शन वेत्ता मनःशास्त्रज्ञ समाज-सुधारक और शास्त्रज्ञ आदि अपराधियोंके सुधारके लिए नियुक्त रहें।

३ सामाजिक प्रतिरक्षा-योजनाके अनुसार काम करनेवाले अधिकारी तथा हर तरहके कार्यकर्ताओंको तैयार करनेके लिए स्नातकोत्तर-काल-स्तरकी शिक्षाकी व्यवस्था।

(आ) बालक

१ केन्द्रीय सरकारकी तरफसे बालकोंसे सम्बन्ध रखनेवाली आधुनिक विधि (A Central Modern Children Act) का निर्माण।

२ कर्तव्यच्युत बालकों (या बाल-अपराधियों) का सुधार कर उन्हें सभ्य समाजमें रहने योग्य बनानेके लिए कुछ उपाय तथा सिखानेवाली संस्थाओंकी योजना और बाल-अपराधियोंके विरुद्ध शिकायतोंकी छानबीन करनेमें पुलिसवालोंकी सहायता करनेवाली संस्थाओंका निर्माण।

३ बाल अपराधियोंके अपराधोंपर विचार करनेवाले विचार न्यायालयोंकी योजनाके साथ-साथ प्रत्येक जिलेमें अपराधियोंको सुधारनेवाली शिक्षण-संस्थाओंकी स्थापना।

४ बाल अपराधियोंपर न्याय विचार करनेवाले न्यायालयमें स्त्री मैजिस्ट्रेटोंकी नियुक्ति।

(इ) नौजवान

अपराधियोंके अपराधोंपर अन्तिम निर्णय करनेके पूर्व उनको स्वतन्त्रताको नियन्त्रित करनेवाली शास्त्रीयता विधि (Probation Act) का व्यवस्था और उन अपराधियोंके नजरबन्दी-कालमें उनकी देखरेख करनेवाले विशेष प्रकारके निरीक्षकोंका सभी जिलोंमें नियुक्ति।

(ई) वयस्क (बालिग)

अपराधियोंकी सजाकी मियादके अन्दर अपराध वृत्तियोंको सम्पूर्णतया मिटानेके द्वारा उन्हें सुधारकर सभ्य समाजमें रहने योग्य नागरिक बनानेके लिए सत्तनधारा प्रमाणीकृत कारागार स्थापित करनेकी योजना।

ये सिफारिशें साधारण हैं पर जिस दिशामें सुधार-कार्यका आरम्भ करनेके लिए ये तात्कालिक रूपमें पर्याप्त हैं। अपराधियोंका सुधारनेके लिए योग्य कार्यकर्ताओंकी बुनियादी शिक्षण-संस्थाओंको हमारे देशमें स्थापित करनेके उद्देश्यसे ये सिफारिशें की गयी हैं। इन सिफारिशोंमें एक कमी है। वह है केन्द्र तथा राज्योंमें योग्य समाज-सुधारकोंको लिए हुए समाज सुधार विभागकी स्थापना और उनका नियन्त्रण एवं पथ प्रदर्शन करनेवाले समाज सुधार-सचिवालय एवं मन्त्रीकी नियुक्तिका अभाव। इन सिफारिशोंमें अभीतक इस बातका उल्लेख न होना खटकता है। इस कमीके कारण शायद इन सिफारिशोंपर अमल करनेमें कठिनाइयां पेश आती हों। इन बातोंसे वर्तमान कार्यका जो प्रगति हुई है उसका सिंहावलोकन करनेपर हमको वास्तविक स्थितिका पता चलता है। तब यहां हम अगले वर्षकी कार्य योजनापर समुचित विचार कर सकेंगे।

कुछ आवश्यक कार्य

बालकोंके साथ समुचित व्यवहार करनेकी आवश्यकता सब विदित है। अपराधियोंको सुधारने योग्य शिक्षा दो प्रकारकी है। एक विधियोंके द्वारा सद्वृत्तियोंकी तरफ आगे बढ़नेके लिए प्रेरित करना है। दूसरी शिक्षा द्वारा अपराधोंका नियन्त्रण करना है।

हमारा प्रस्तुत अुद्देश्य अपराधियोंकी वृत्तियोंको अपराध करनेकी तरफसे मोड देना है। पश्चिमके बालकोंको निम्नलिखित बातोंसे कडाअीके साथ रोक दिया जाता है। अिनपर हमें भी तुरत ध्यान देना चाहिअे।

(१) तमाखूका अुपयोग
(२) होटल जानेका अभ्यास
(३) सिनेमा-घरोंमें प्रवेश

बालकाकी बीडी सिगरेट पीनेकी बुरी लतको रोकनेके लिअे जो प्रयत्न किये जा रहे हैं वे अत्यन्त अपर्याप्त है। हमें और अधिक जागरूकताके साथ अिस कार्यमें लग जाना चाहिअे। सोलह वर्षसे कम अुम्रवाले बालकोंका अपने माँ-बापके साथके बिना स्वयं ही काफी-होटल या सिनेमा-घर जाना आस्ट्रियामें विधिद्वारा निरोध किया गया है। वहाँ अिस विधिका कडाअीके साथ पालन किया जा रहा है। हमारे देशमें भी यही करना होगा। हमें क्या-क्या करना है, अुसकी लंबी सूची यहाँ में देना नहीं चाहता। केवल अुदाहरणार्थ मैंने अूपरकी दो-चार बातें कही हैं।

[मैसोर

६. हिन्दी व्यापक बने-समृद्ध बने !

: डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल :

गत मासमें आगरा विश्व-विद्यालयके अन्तर्गत संस्थापित हिन्दी विद्यापीठकी व्याख्यान-मालाका प्रारंभ करते हुअे सुप्रसिद्ध पुरातत्त्व-विद्वान डॉ. वासुदेवशरणजी अग्रवालने कहा —

राष्ट्रभाषा हिन्दीको व्यापक व समृद्धिशाली बनानेके लिअे प्रान्तीय भाषाओंका हमें आदर करना होगा। अुन भाषाओंके शब्दों, लोकोक्तियों, मुहावरों और भाषा सम्बन्धी विशेषताओंको अपनाना होगा और अुनमें जो अनेक प्रकारका अलभ्य साहित्य अुपलब्ध है, अुसे भी हिन्दी भाषामें अनूदित करके हमें अपनी राष्ट्र-भाषाके भंडारको पूर्ण करना होगा। जब हिन्दीके साधक यह सब कर सकेंगे तभी वह अेक विशाल राष्ट्रके अनुरूप, सच्चे अर्थोंमें भारतकी राष्ट्रभाषा कहलानेकी अधिकारिणी हो सकेगी।

भारत सदासे विभिन्न धर्मों और विविध भाषा-भाषियोंका देश रहा है। आज भी यहाँ अलग-अलग प्रान्तोंमें, जिनकी अलग-अलग भाषाअें—बोलियाँ— हैं, अैसे विविध धर्मावलम्बी जन रहते हैं। अिन प्रान्तीय भाषाओंका अपने-अपने, क्षेत्रमें महत्त्वपूर्ण स्थान है। हिन्दीही अेक अैसी भाषा है, जिसके बोलनेवालोंकी और समझनेवालोंकी संख्या सबसे अधिक है। अिसीलिअे अिसको राष्ट्रभाषा होनेका गौरव मिला। पन्द्रह वर्षकी अवधिमें अिसे अंग्रेजीका स्थान लेना है। अिस १५ वर्षकी अवधिमें अिस राष्ट्रभाषाको अेक व्यापक, शक्ति-शाली और समृद्धिशाली भाषा बनाना है। प्रान्तीय भाषाओंसे अिसका कोअी विरोध नहीं। प्रान्तीय भाषाअें अपने क्षेत्रमें विकसित होंगी, अुनकी विशेषताओंको अपनाकर अपना भंडार बढाना हिन्दीका काम होगा। सत्य संकल्प चाहिअे तभी साहित्यका निर्माण होगा।



[सूचना—'राष्ट्रभारती' में समालोचनार्थ पुस्तकोंकी दो-दो प्रतियाँ हीं सम्पादकके पास आनी चाहिये ।]

साहित्य, शिक्षा और संस्कृति :

(लेखक —श्री डॉ॰ राजेन्द्रप्रसाद)

[प्रकाशक : आत्माराम अेण्ड सन्स दिल्ली । मूल्य ५), पृष्ठ संख्या १८८]

अिस पुस्तकमें राष्ट्रपति डॉ॰ राजेन्द्रप्रसादके समय-समयपर दिये गये भाषणोंका सुसम्पादित-संग्रह है। अिनके सम्पादनमें आचार्य शिवपूजन सहाय और डा॰ नगेन्द्रका योगदान है। लेखकके नाते डा॰ राजेन्द्रप्रसादका स्थान हिन्दी-साहित्यमें बहुत ही अुच्च अेवं महत्वपूर्ण है। अेक गम्भीर चिन्तन, प्रगाढ़ विद्वत्ता और स्पष्ट अभिव्यक्ति अुनकी अपनी विशेषता है। अुनके विचार केवल हिन्दी साहित्यकी ही वस्तु नहीं, वरन् विश्व साहित्यकी वस्तु हैं। भारतीय जीवन, संस्कृति और दर्शन अुनके व्यक्तित्वके प्रत्येक पहलूमें स्पष्ट झलक आते हैं। आज हिन्दीको अैसी कोटिके अनेक लेखकोंकी आवश्यकता है। हिन्दी साहित्यकी बहुमुखी वृद्धिके लिअे डा॰ राजेन्द्रप्रसादकी कोटिके विद्वानोंकी आवश्यकता है जो अध्ययन, अनुभव और गंभीर चिंतन द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दीको प्रेरणात्मक-साहित्य (Literature for inspiration) प्रदान कर सके तभी वह सही अर्थोंमें राष्ट्रीय-साहित्य-वाली राष्ट्र-भाषा बन सकेगी।

अस्तु, प्रस्तुत पुस्तकमें शिक्षा, साहित्य और संस्कृति अिन तीन विषयोंपर निबन्ध हैं। राष्ट्रपतिने अपनी भूमिकामें स्वयं लिखा है—'साहित्य शिक्षा और संस्कृति ये तीन व्यापक शब्द और विषय हैं। जाति-धर्म और देश अिनमें निहित हैं।" जिस पृष्ठभूमिसे यदि हम अिस पुस्तकका अध्ययन करें तो हमें भारतकी शिक्षा, साहित्य और संस्कृतिका यों कहिअे कि वर्तमान भारतकी सभी ज्वलन्त समस्याओंपर निष्पक्ष विवेचन अुपलब्ध होता है।

डा॰ राजेन्द्रप्रसादके विचारोंमें बहुमुखी सामञ्जस्य है। जैसे कि अुनका व्यक्तित्व भिन्न भिन्न रूपों और भाषाओंमें मूलतः अखण्ड हो प्रकृतिमें शुद्ध भारतीय है। भारतकी परम्परागत सांस्कृतिक अुदारताकी दृष्टिसे वे साहित्यको देखते हैं और भाषाकी समस्याओंपर विचार करते हैं। साहित्यमें सचित आदर्शों द्वारा वे शिक्षा और संस्कृतिकी समीक्षा करते हैं।

साहित्यकी चर्चा करते हुअे अुन्होंने अुसके अैतिहासिक विकास और राजनैतिक प्रभावोंका अुल्लेख किया है। अिस सम्बन्धमें अुन्होंने विश्वके सभी महान राष्ट्रोंके साहित्य और अुसपर पड़े अैतिहासिक, राजनैतिक प्रभावोंका विवेचन किया है और समाजके विकासमें भाषा कितना महत्वपूर्ण साधन बनती है अिसके तुलनात्मक अुदाहरण दिये हैं। हिन्दीके विषयमें, अुसके राष्ट्रभाषा बनानेके अधिकारके विषयमें अुन्हें लेश मात्र भी संदिग्धताका अनुभव नहीं हुआ। अुन्हें अिस बातका खेद है कि ("यदि देशी भाषाओं द्वारा राजनीतिक क्षेत्रमें काम किया गया होता तो आज देशकी परिस्थिति कुछ और ही होती।") आज जब हमारे सामने हिन्दीके अधिकाधिक विकासका प्रश्न अुपस्थित

है तो हमारे अितिहासकी देन अुर्दूके प्रति डॉ० राजेन्द्र-प्रसादके विचार अत्यन्त मननीय हैं। अुनका विचार है —"हिन्दी और अुर्दू चाहे अुनकी अुत्पत्ति और विकास जिस क्रम और रीतिसे हुआ हो—दो भिन्न भाषाओं नहीं हैं।" अुर्दूके कोष "फरहंगे आसफिया" से यह बात सिद्ध हो जाती है। अिसमें ५४ हजार शब्दोंमेंसे लगभग ३२ हजार हिन्दीके हैं। भाषाओंकी जटिलता और क्लिष्टताकी प्रवृत्तिके डॉ० प्रसाद विरोधी हैं। संस्कृत और फारसीके शब्दोंकी भरमारने ही अुर्दू हिंदीमें भेद अुत्पन्न किया है। अुनका कहना है 'अुर्दूके अच्छे लेखक अपनी भाषाको जटिल बनानेके पक्षपाती नहीं हैं। सभी भाषाओंके सुलेखक अिस सम्बन्धमें अेक ही मत रखते हैं कि साहित्यकी अुत्तमता सरलता और प्रसाद गुणमें ही है।'

साहित्यके अनेक अुदाहरणोंसे अुन्होंने अपने विचारोंकी पुष्टि की है। हिन्दीकी व्यापकताके विषयमें चर्चा करते हुअे डॉ. प्रसाद कहते हैं कि—"हिन्दी भी यदि जीती-जागती भाषा होना चाहती है तो अुसे अपने शब्द-भंडारको बढ़ाना होगा .. बहिष्कारकी नीतिको कदापि स्वीकार नहीं कर सकती और न विदेशी शब्दोंको बाहर रखकर वह अपनी अुन्नति कर सकती है।"—भाषाका शास्त्रीय विवेचन करते हुअे अुन्होंने सूर, तुलसी बिहारी आदिके अुदाहरण देते हुअे हिन्दीके अनुचित संस्कारके कट्टरपन्थी आन्दोलनके प्रति स्वाभाविक चिंता व्यक्त की है और देहाती बोलियोंकी शक्ति और समृद्धिसे लाभ अुठानेकी ओर मार्गनिर्देश किया है।

हिन्दीके विकासके लिअे अुसके साहित्यकी बहुमुखी अभिवृद्धि परम आवश्यक है। अिसे विस्तृत क्षेत्र और विषय तथा अनुवादकी ओर हिन्दी-लेखकोंको प्रेरित कर पूरा किया जा सकता है। लेखकके सुझाव अिस सम्बन्धमें बहुमूल्य हैं। ललित-साहित्यके दायरेमेंही हिन्दी-साहित्यको देखना अब अुपयुक्त नहीं है। अब अन्वेषण और चिन्तनके अनेक विषय-सम्बन्धी ग्रन्थोंकी आवश्यकता है। राष्ट्रभाषामें राष्ट्र-जीवनके सभी पहलुओंपर अुत्तम साहित्य लिखा जाअे तभी हिन्दी अपना पद सम्मानपूर्वक स्थायी रख सकेगी।

अिन विचारोंके अतिरिक्त लेखकोंने दाक्षिण, व्रज साहित्य और संस्कृत-साहित्यपर भी अुन्होंने बहुमूल्य विचार व्यक्त किये हैं।

डॉ. राजेन्द्र प्रसादके शिक्षा सम्बन्धी विचार विख्यात हैं। वे आजकी शिक्षाको सच्चे मानेमें विकासका साधन नहीं मानते। गांधी-दर्शन अुनकी आत्मामें रमा है अिसीलिअे वे शिक्षाका देशकी संस्कृति और सामाजिक अपेक्षाओंसे समन्वय करनेके पक्षपाती हैं। विश्व-विद्यालयोंमें देशी भाषाके माध्यमसे शिक्षा देनाही अुचित समझते हैं। "बुनियादी तालीम" अुनकी दृष्टिसे आजके भारतमें बहुत लाभदायक सिद्ध होगी। विश्व विद्यालयोंकी शिक्षाकी चर्चा करते हुअे वे कहते हैं—'देशमें केवल बौद्धिक शिक्षाको महत्व न देकर कुछ नया ढंग निकालना है जिससे वह भेद जो आज शहरी और ग्रामजीवनमें पैदा हो गया है—दूर हो जाअे।" समाजके विभिन्न क्षेत्रोंकी आवश्यकताओंसे विश्व विद्यालयका सम्बन्ध स्थापित करनेसे शिक्षामें अपव्यय कम हो जानेकी सम्भावनाकी ओर अुन्होंने हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। डॉ. प्रसादका आख्यान-क्षेत्र सहज-भारतीय है। भारतीय संस्कृतिकी चर्चामें अुन्होंने 'नैतिक-चेतना'का अुल्लेख किया है जिससे भारत सदियोंसे प्रेरित होता आ रहा है। 'विक्रम कीर्ति-मंदिर' और 'सोमनाथमें महादेव प्रतिष्ठा' अिन दोनों लेखोंमें डॉ. प्रसाद 'भारतीय राजधर्म' और 'धार्मिक सहिष्णुता'का विशद् विवेचन करते हुअे भारतकी प्राचीन संस्कृति-परंपरा और दृष्टिकोणकी अुपादेयताकी ओर हमारी पश्चिम-प्रभावित दृष्टिको बार-बार बरबस खींचते हैं। यह पुस्तक निस्संदेह हिन्दी-साहित्यके लिअे अमूल्य देन है। यदि हिन्दीके पाठक अिस तरहकी पुस्तकोंको खरीदकर अपने पढ़नेका दायरा बढ़ा सकें तो हिन्दीके लिअे यह परम सौभाग्यकी बात होगी। अितिहास, भाषा और शिक्षाके विद्यार्थियोंके लिअे यह पुस्तक भारतकी वर्तमान विचार-धाराकी सच्ची परिचायक है। अैसी चिन्तनपूर्ण ग्रन्थ भारतके नवयुवकोंके हाथ पहुँचना और पहुँचाना आवश्यक है।

अिस पुस्तकके प्रकाशक अुन गिनेगिने भारतीय हिन्दी प्रकाशकोंमेंसे अेक प्रतीत होते हैं जो साहस और धैर्यसे गंभीर साहित्य मुद्रित करते जा रहे हैं। पुस्तककी छपाअी बहुत सुन्दर है और गेट-अप कलापूर्ण। रफ् पेपरपर छपी होते हुअे भी अिसकी कीमत केवल ५) है। फिर भी अिसका अेक और सस्ता संस्करण निकला जाअे तो अच्छा हो।

—गोपाल शर्मा, अेम. अे.



सम्मेलन-भवनका शिलान्यास :

अब मध्यप्रदेशकी अेक मात्र हिन्दी साहित्यिक संस्था प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलनका अपना भवन शीघ्र ही बनकर तैयार होगा। अिस प्रान्तके हिन्दी-प्रेमियोंकी चिरकालीन अभिलाषा पूरी होगी। यह भवन सचमुच भव्य भवन होगा। अिसकी विशेष अैतिहासिक भव्यता तो यही है कि आधुनिक भारतके और दुनियाके अेक सबसे बडे भव्य साहित्यिक पुरुष हमारे प्रधान-मंत्री प्रियदर्शी पंडित जवाहरलाल नेहरूने गत जनवरीकी दिनांक पंचमीको अिस भवनकी आधार-शिलाकी प्रस्थापना की। शिलान्यासका यह अुत्सव-समारोह अपने आपमें बडा भव्य था। प्रान्तके साहित्य, कला और संस्कृतिके प्रेमी और साधक श्री ब्रिजलालजी बियाणीका यह संकल्प भी कि अुनके सभापतित्वमें प्रादेशिक साहित्य-सम्मेलनका अपना अेक अैसा भवन हो जहां प्रान्तकी दो बडी हिन्दी-मराठी भाषा परम्पराअें अपनी समृद्धिसे साहित्यके भाडारको भरती रहें और आपसमें सत्य शिव-सुन्दरका अच्छी तरह आदान-प्रदान करे, यह संकल्प भी भव्य है। लक्ष्मीके जिस पूतने लाख-डेढ लाखका सम्पत्तिदान अिस भवनके लिअे दिया, धनका वह अंश भी भव्य है। यह हिन्दी-भवन शीघ्र बनकर तैयार हो। यहां अितना ही हमारा नम्र निवेदन है, सुझाव है—कि अिस भवनका विशुद्ध नाम "हिन्दी-भवन" ही रहे। असीम अिस भव्य भवनकी शोभा है अिसकी भव्यता है। राष्ट्रकी, देशकी अेक मात्र राष्ट्रभाषाकी यह संस्था है। यह कोअी धर्मशालाकी अिमारत तो नहीं है। दानधर्मकी, धर्मादेकी संस्था भी नहीं है। लक्ष्मीके अुस लाडले सुपुत्रका नाम स्वर्णाक्षरोंमें और अेक भव्य तैलचित्र जिसने बडी धनराशि अिस भवन निर्माणके लिअे दी है, भवनके सभागृह (हॉल) में अंकित किया जाअे। यही अुस व्यक्तिका सबसे बडा सम्मान है। अुसके सामने ही अत्यन्त समीप, मराठीके विदर्भ-साहित्य-मन्दिरका भव्य भवन है।

हिन्दी साहित्य-सम्मेलनका यह भवन अेक पवित्र जीवित संस्था हो। राष्ट्रभाषा हिन्दीको सशक्त, समर्थ बनानेकी, क्रियाशील निर्माणकी प्रवृत्तियां यहांसे चलें, जिससे पन्द्रह वर्षकी अवधिसे पूर्व ही हिन्दी और देवनागरी दोनों राष्ट्रकी भव्य भाषा और भव्य-लिपि बन जाअें। यह संस्था निराधार गरीब निराश्रय लेखकों और साहित्य-सेवियोंकी सहायता करे। दलबन्दीके दल-दल और तू तू मैं मैं, मिथ्या प्रशंसा, पक्षपात और राजनीतिक दावपेंचों तथा हथकंडोंसे अिस साहित्य संस्थाकी सदैव रक्षा की जाअे और अिसे स्वच्छ, स्वस्थ साहित्यिक, सांस्कृतिक संस्था ही रहने दिया जाअे।

मध्य प्रदेश शासन साहित्य परिषद :

केन्द्रीय सरकारके साथ भारतके विभिन्न राज्योंकी सरकारोंने अपने-अपने राज्यमें लोक-

प्रिय साहित्य-सृजन और साहित्यकारोके प्रोत्साहनके लिअे कुछ योजनाअें कार्यरूपमे परिणत कर दी हैं। बिहार और अुत्तर-प्रदेशकी सरकारोने अिस दिशामें आगे कदम बढाया है। साहित्यकारोका राजकीय अेव आर्थिक स्वागत-सत्कार होना भी प्रारभ हो गया है। अिस योजनामें मध्यप्रदेशका शासन क्यो पीछे रहता। यह बहुत पहले हो जाना चाहिअे था। खैर, 'देर आयद दुरुस्त आयद'। हिन्दी और मराठीका सगम-स्थल है मध्यप्रदेश। प्रान्तीय सरकार दोनो-हिन्दी और मराठीका समदृष्टिसे विकास करना चाहती है। अेकका राष्ट्रभाषाके और दूसरीका प्रान्तीय भाषाके रूपमें। अुत्तम साहित्यके लेखकोको प्रोत्साहन देनेके लिअे, १ लाख रु० मेसे १०–१० हजार रु० की निधि अुसने घोषित की है। और ८० हजार रुपया साहित्य-निर्माणके लिअे, अुत्तर-दक्षिणकी प्रादेशिक भाषाओसे अभिजात हिन्दीमें और मराठीमें अनुवादो अेव मौलिक हिन्दी-मराठी ग्रन्थ रचनाके प्रकाशनके लिअे सुरक्षित रखा गया है। अिसे शीघ्रही कार्यान्वित करनेके लिअे मध्यप्रदेशकी सरकार समुत्सुक प्रतीत होती है। अुसने अिस योजनाका सचालन करनेके अुद्देश्यसे "मध्यप्रदेश-शासन साहित्य-परिषद" की स्थापना की है। अिसके सगठनमें शासनके मुख्यमत्री सभापति, शिक्षामत्री, अिन दोनोंके दो अुपमत्री, चार साहित्यकार, मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सभापति, विदर्भ-साहित्य-सघके सभापति, सागर-विश्वविद्यालयके अुपकुलपति, नागपुर विश्वविद्यालयके अुपकुलपति, ये सदस्य होगे और राज्यके शिक्षासचिव अिस परिषदके मत्री, भाषा-विभागके सचालक 'कोषाधिकारी' तथा अुपसचालक अिस परिषदके अुपमत्री होगे।

अबतक लक्षण तो अच्छे ही दीख पड़ रहे हैं।

हम तो अिस सगठनमें मध्यप्रदेश शासनको अेक सुझाव देना चाहेगे कि वह राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाको भी अपने सगठनमे अेक प्रतिनिधित्व देवे, जो भारतके कअी हिन्दीतर राज्योंमें राष्ट्रभाषा हिन्दीका पिछले १६ वर्षोंसे काम कर रही है और भारतकी विभिन्न प्रान्तीय भाषाओका सम्मानपूर्वक आदान-प्रदान करती है।

"स्वर्गीय वैशंपायन-स्मृति-अंक":

अपना पद आप निर्माण करनेवाले और जीवनकी अन्तिम श्वास छोडने तक राष्ट्रभाषा हिन्दीकाही सक्रिय, सेवामय, मगल-चिन्तन करनेवाले मराठी और महाराष्ट्रके देशभक्त श्री ग र वैशपायनजी अब अिस ससारमें नही है। गत् अक्टूबरमें दिनाक ९ को ६१ वर्षकी अुम्रमें, लम्बी बीमारीके बाद आपका निधन हो गया। जबसे स्वर्गीय वैशपायनजीने होश सँभाला था, वे राष्ट्रसेवाके व्रती, महा देशभक्त और कठोर कारावासके निर्भीक प्रवासी थे। पूनाकी लब्ध-कीर्ति प्रमुख हिन्दी-प्रचार सस्था "हिन्दी प्रचार सघ"के वे सस्थापक थे। अपने सभी स्नेही मित्रो और साथियोको असमयमें वियोग-दुखमे डुबोकर वे स्वर्गवासी हुअे। अुनकी राष्ट्रभाषा-सेवा सदैव अैतिहासिक स्वर्णाक्षरोमें अकित रहेगी। हमारी सहयोगिनी 'जय-भारती'ने अुनका 'स्मृति-अक' प्रकाशितकर श्रद्धाजलि अर्पित की है। स्व० वैशपायनजीकी हिन्दी-सेवाका सच्चा स्मारक अुनका 'हिन्दी-प्रचार-सघ' है, अुसको स्थाअी अेव परिपुष्ट बनाया जाअे। सभी राष्ट्रभाषाके कर्मी अिस 'स्मारक'में अपनी-अपनी श्रद्धाजलि प्रदान करे।

अपनी-अपनी सराहना !

हमारा यह मतलब नहीं कि हम 'अपने मुंह मियाँ मिठ्ठू' बनें। 'राष्ट्रभारती' की भारतीय साहित्यके क्षेत्रमें की गयी सेवाओंकी, उसकी लोक-प्रियताकी, समय-समयपर अपने आप सराहना होती ही रहती है। इसका सच्चा और समस्त श्रेय तो उन लेखकोंको है जो 'राष्ट्रभारती' पर कृपा करते रहते हैं। बड़े-बड़े लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक तो सदैव हमारे श्रद्धा-आदरके पात्र हैं ही, साथ ही हम कृतसकल्प—निश्चय हैं कि 'राष्ट्रभारती' में उठती हुई पीढ़ीको, नयी पौधके, उदीयमान लेखकोंको भी सर-आँखोंपर रखेंगे। शर्त इतनी ही कि उनकी कृतियोंका स्तर, विषय और शैलीकी दृष्टिसे वे हमें पट जाएँ, फिर वे रचनाएँ चाहे महलोंसे आएँ या किसानों मजदूरोंकी कुटियासे आयी हुई हों। जहाँ धन्यवादपूर्वक लौटानेका सम्पादकका अधिकार है वहाँ अपने लेखकोंसे हाथ पसारकर माँगनेका भी हक है सम्पादकको। राष्ट्रभारतीमें कभी-कभी अच्छी चीजें जो छप जाती हैं तो उनकी प्रशंसा की जाती है, उन चीजोंका उल्लेख किया जाता है। सुप्रसिद्ध साहित्यिक सम्पादक प्रवर श्री देवेन्द्र सत्यार्थीजीने "आज-कल" में, प्रयागकी हमारी बुजुर्ग मासिक श्रद्धास्पद "सरस्वती" में भी इसी (जनवरी १९५४ का अंक देखें और पिछले अंकोंमें भी) समय-समयपर 'राष्ट्रभारती' में प्रकाशित सामग्रीकी सराहना—सम्यक् अर्हणा की जाती है। सहयोगी लेखक बन्धु पत्र भेजकर उस चीजकी तहेदिलसे दाद देते हैं। 'राष्ट्रभारती' के पिछले जुलाई ५३ के अंकमें हिन्दीके उदीयमान कहानी लेखक श्री नन्दकुमार पाठककी एक मार्मिक कहानी "इन्सानका बच्चा" प्रकाशित हुई थी। वह पसन्द की गयी। महान कहानीकार कलाकार यशपालजीने, पटनाकी "अवन्तिका" के यशस्वी सम्पादक साहित्याचार्य श्री लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' जीने, कानपुरकी श्रेष्ठ सचित्र "सुमित्रा" के विवेकशील सम्पादक विट्ठल शर्माजीने और अकोलाके साहित्य संस्कृतिके नव प्रवाह रूप "प्रवाह" के नवनीत सम सुकोमल सम्पादक सुकवि श्री शिवचन्द नागरने "इन्सानका बच्चा"—कहानीकी भावना, मार्मिकता, प्रभाव, लेखन, मनोविश्लेषण और दुनियाकी मान्यताओंको मिटा देनेका भीषण संकल्प, माताके वात्सल्यका चित्रण, कहानी साहित्यका एक नया प्रयोग, कल्पनाका नया कूचा, जीवनकी समाजगत विषमताओंका सजीव चित्रण आदि-आदिकी भलीभाँति सराहा है, दिलखोल प्रोत्साहित किया है।

—हृ० शा०

× × ×

राष्ट्रभाषा हिन्दीका राजनैतिक पहलू :

*इसमें संदेह नहीं कि अब राष्ट्रभाषा-*हिन्दीका प्रश्न राजनैतिक प्रश्न बन गया है। विधानमें हिन्दीको भारतीय संघकी भाषाके रूपमें स्वीकार किया गया है, इसलिए उसका राजनैतिक पहलू सबकी दृष्टिमें आया है। भारतकी एक राष्ट्रीयताके संबंधमें जिनका आग्रह रहा, वे, हिन्दीको राष्ट्रभाषाके नामसे ही जानते हैं और उसे सच्ची राष्ट्रभाषा अर्थात् भारतकी जनताकी सांस्कृतिक तथा परस्परके व्यवहारकी भाषा बनानेके प्रयत्नमें ही लगे हुए हैं। उनके प्रयत्नोंके कारण राष्ट्रभाषाका प्रचार तथा प्रसार भी अच्छा हो रहा है। परन्तु इधर कुछ वर्षोंमें प्रान्तीय भावनाएँ प्रबल हो रही हैं, उसके कारण तथा

जिस काल्पनिक भयके कारण भी कि भारतीय-संघकी भाषा हिन्दी बननेपर, अन्य प्रान्तवालोंको राज्यकी सेवामें हिन्दीभाषी प्रजाके साथ स्पर्धा करनेमें असुविधा होगी कहीं-कहीं हिन्दीका सख्त विरोध किया जा रहा है। विरोध करनेवाले अनेक प्रकारकी दलीलें पेश करते हैं। अुनकी सबसे बडी दलील यह है कि "हिन्दीको ही राष्ट्रभाषा क्यों कहा जाअे, क्या दूसरी भारतीय भाषाअें अराष्ट्रीय हैं? प्रत्येक प्रान्तकी अपनी भाषा ही अुस प्रान्तकी राष्ट्रभाषा हो सकती है"। अैसी दलील देकर वे यह भूल जाते हैं कि अिस तर्कसे तो वे प्रत्येक प्रान्त को अलग 'राष्ट्रका' रूप दे रहे हैं। हिंदुस्तानसे पाकिस्तान अलग हुआ, अुसका अनुभव कैसा दुखद तथा करुणाजनक रहा—यह तो हम सभी जानते हैं। भारतके टुकडे अब नहीं किये जा सकते और न करने ही चाहिअे। भारत अेक राष्ट्र बना रहे और अुसके निर्माणमें राष्ट्रभाषा सहायक हो, अिसीलिअे तो सारे भारतके लिअे अेक राष्ट्रभाषाकी आवश्यकता है। यही राष्ट्रभाषाका सबसे महत्वपूर्ण राजनैतिक पहलू है। हम अुसे कभी भुला नहीं सकते। यदि हमने अुसे भुला दिया, तो वह राष्ट्रके प्रति द्रोह होगा और अुससे पनपते हुअे राष्ट्रको हम हानि ही पहुँचाअेंगे।

हमारी मर्यादा :

परन्तु राष्ट्रभाषाके कार्यकर्ताओंकी अपनी मर्यादा है। राजर्षि टण्डनजीने अभी ग्वालियरमें भाषण करते हुअे कहा कि हिन्दीका भी अेक (राजकीय) दल तैयार करना होगा। सम्भवतः अिससे अुनका अभिप्राय राष्ट्रभाषाके राजनैतिक पहलूपर लोगोंका ध्यान आकर्षित करनेका था। जो लोग राजकीय क्षेत्रमें कार्य करते हैं, राष्ट्रभाषा हिन्दीके राजकीय पहलूको महत्ता समझते हैं, अुसके प्रति केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारोंकी अुदासीन वृत्तिको जानते हैं, और प्रान्तीय भावना या दूसरे कारणोंसे अुसके प्रति कुछ लोगोंका विरोध भी देखते हैं, अुन्हें वे सादर जाग्रत करना चाहते हैं। श्री टण्डनजी चाहते हैं कि यदि आवश्यकता हो तो वे सब अेक होकर राष्ट्रभाषाके प्रश्नमें योग दें। अितना ही नहीं, अवसर आनेपर दूसरे प्रश्नोंको छोडकर भी अिस महत्वके प्रश्नपर अपने राजकीय जीवनकी बाजी लगा दें। सम्भवतः वे यह भी मानते हैं कि अैसा अवसर आज अुपस्थित है अथवा शीघ्र ही आनेवाला है। जब कि अुन्हें अिस प्रश्नको ही सब प्रश्नोंके आगे लाना होगा। अिसीलिअे अुन्होंने समय रहते यह चेतावनी दी है।

श्री टण्डनजीकी अिस चेतावनीसे थोडी गलतफहमी भी हो सकती है। हिन्दीका कार्य करनेवाली, राष्ट्रभाषा-निर्माण तथा अुसके प्रचार-प्रसारका रचनात्मक कार्य करनेवाली संस्थाअें अैसी परिस्थितिमें क्या करेंगी—यह प्रश्न अुपस्थित होता है। हमारे विचारमें श्रद्धेय टण्डनजीका यह अभिप्राय कभी नहीं हो सकता, कि अैसी संस्थाअें अपना कार्यक्षेत्र छोडकर राजनैतिक क्षेत्रमें आअें। रचनात्मक कार्य करनेवाली संस्थाअें राजनैतिक क्षेत्रके कार्यकर्ताओंके सम्पर्कमें तो अवश्य रहेंगी परन्तु वे अपने कार्यको ही अधिक महत्व देंगी और अपनी मर्यादाके बाहर कभी भी नहीं जाअेंगी। अपनी मर्यादाके बाहर जाना न संस्थाओंके लिअे हितकर होगा, न राष्ट्रभाषाके लिअे। रचनात्मक कार्यक्षेत्रमें कार्य करनेवाले कार्यकर्ताओंका बल राजनैतिक क्षेत्रमें कार्य करनेवालोंको मिलेगा और राजनैतिक क्षेत्रमें

राष्ट्रभाषाका कार्य करनेवालोंके कार्यका बल रचनात्मक कार्य करनेवालोंको, जिस प्रकार "परस्पर भावयन्त श्रेयम् परमवाप्स्यथ"।

शिक्षाके माध्यमका प्रश्न :

श्रद्धेय टंडनजीने दूसरा प्रश्न महाविद्यालयोंमें शिक्षाका माध्यम क्या हो? —अिस विषयको लेकर छेड़ा है। यह प्रश्न बड़े ही महत्वका है और विकट भी है। श्रद्धेय टंडनजीका आग्रह है कि विश्व-विद्यालयोंमें शिक्षाका माध्यम हिन्दी ही होना चाहिये। अैसा होनेपर ही हमारी राष्ट्रीय अेकता कायम रहेगी और शिक्षाका स्तर तथा अुसकी अुपयोगिता भी राष्ट्रीय दृष्टिसे समान रह सकेगी।

बड़े-बड़े शिक्षाशास्त्रियोंका तथा गांधीजी अेवं दूसरे महापुरुषोंका कहना है कि शिक्षा मातृभाषा द्वारा ही दी जानी चाहिये, और अुच्च-से-अुच्च शिक्षा भी मातृभाषा द्वाराही दी जाये। साथ ही हमारी राष्ट्रीय आवश्यकताओंको देखते हुअे अुच्च स्तरपर तमाम शिक्षा राष्ट्रभाषा द्वारा देना भी आवश्यक प्रतीत होता है। विज्ञान, कानून, अिंजीनियरिंग आदि विषयोंके पारिभाषिक शब्द यदि सब प्रान्तोंकी भाषाओंमें अेक ही हों, तो अिन विषयोंकी शिक्षाकी अेक बड़ी समस्या आसानीसे हल हो सकती है। फिर यदि मातृभाषा या राष्ट्रभाषा द्वारा शिक्षा देनेका निर्णय विश्व-विद्यालय अपनी स्वेच्छा तथा सुविधानुसार करें, तो अुसमें कोअी हानि नहीं दिखायी देती। गुजरात तथा बड़ौदा विश्वविद्यालयोंने तो गुजराती अथवा राष्ट्रभाषाका पर्यायमें माध्यम स्वीकार कर ही लिया है। हम आजकी परिस्थितिमें अिसे बहुत ही अच्छा मानते हैं।

अंकोंका प्रश्न :

श्रद्धेय टंडनजीने तीसरा प्रश्न अंकोंके सम्बधमें भी अुठाया है। १९४९ में विधान सभाने अंकोंके सम्बधमें जो निर्णय किया था, अुन श्रद्धेय टंडनजीने कभी स्वीकार नहीं किया। विधानमें नागरी लिपिको तो स्वीकार किया गया, परन्तु नागरी अंकोंको स्वीकार नहीं—यह बात अुन्हें हमेशा अखरी है, और अुसका विरोध करनेका अपना अधिकार अुन्होंने कायम रखा है। आज अुन्होंने जिस प्रश्नको अुठाया है, यह शायद अुपयुक्त अवसर समझकर ही अुठाया है। विधानमें जिस समय हिन्दीको स्वीकार किया गया, अुसी समय पाँच साल बाद सरकारी कार्योंमें हिन्दीकी प्रगतिकी जाँचके लिअे अेक कमीशन नियुक्त करनेकी बात कही गयी थी। १९५४ में पाँच साल पूरे हो रहे हैं और संभवत हिन्दीके लिअे अेक कमीशनकी नियुक्ति होगी अुससे पहले विधानमें जो कमी रह गयी है, अुसके प्रति जनताका ध्यान खींचना, आन्दोलन करना तथा आवश्यक कार्य करनेके लिअे आज ही से तैयारी करना चाहिये,—जिसमें संदेह नहीं। श्रद्धेय टंडनजीने ठीक ही कहा है कि हिन्दीको विधानमें स्वीकार करानेमें जो सफलता मिली है, वह आंशिक है। जब तक अंकोंका प्रश्न हल नहीं होता, यह सफलता अधूरी ही रहेगी। फिर भी हम मानते हैं कि यदि आज यह प्रश्न अुठाया न जाता, तो अच्छा होता। अिससे हिन्दीका जो विरोध आज हो रहा है, वह बढ़ेगा ही, घटेगा नहीं।

यह ठीक है कि विधानमें नागरी अंकोंको स्वीकार नहीं किया गया। परन्तु राष्ट्रपतिको तो यह अधिकार दिया ही गया है कि वे चाहें तो

नागरी अंकोंके अुपयोगकी अनुमति दे सकते हैं। अुन्होंने अैसी अनुमति दी है, और आज केन्द्र तथा भिन्न-भिन्न राज्योंके सरकारी प्रकाशनोंमें भी नागरी अंकोका अुपयोग किया जा रहा है। अर्थात व्यवहारिक दृष्टिसे तो नागरी अंकोका अुपयोग करनेकी स्वतंत्रता और सुविधा है। हाँ, जो लोग चाहे वे अंग्रेजी अंकोका भी अुपयोग कर सकते है, और दक्षिणके प्रान्तोंमें अुसका अुपयोग किया भी जा रहा हैं। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार-सभा तक अंग्रेजी अंकोंका ही आग्रहपूर्वक अुपयोग करती है, दक्षिण भारतकी तमिल आदि भाषाओंके प्रकाशनोंमें भी अंग्रेजी अंकोका अुपयोग किया जाता है, अर्थात् दक्षिणकी भाषाओंने अंग्रेजी अंकोको अपना लिया हैं। असलिअे अुन्हे अुन अंकोको अुपयोग करनेमें संभवत अधिक सुविधा भी होगी। असलिअे अुन्हे अैसा करनेका अधिकार भी दिया जाअे, तो वह हमारी पारस्परिक अैक्य भावना तथा प्रेम भावनाके अनुकूल ही बात होगी। हम जानते हैं कि श्रद्धेय टंडनजी हमारे अिस तर्कको नहीं स्वीकार नहीं करेंगे। सिद्धान्त नागरी-लिपिके साथ नागरी अंकोंको स्वीकार करना चाहिअे— अुनका यह आग्रह हम समझते हैं और अुनका आदर भी करते है। हम भी मानते है, कि सिद्धान्तकी दृष्टिसे अुनकी बात ठीक है परन्तु अंकोका आग्रह छोड देनेमें हम सिद्धान्तको ही छोड देते हैं—यह बात नहीं है। उल्टा हमारे कार्यके लिअे राष्ट्रपतिकी अनुमतिने बहुत कुछ सुविधा कर दी है और हमें विश्वास है कि श्री रामदास स्वामीके कथनके अनुसार- "मानत मानत मानावे।" दूसरेकी बातको मानकर फिर अुनसे अपनी बात मनानी चाहिअे—हम भी यदि अपने दक्षिण भारतके भाअियोकी बात मान लेंगे तो आगे चलकर अुन्हे हमारी लिपिके साथ नागरी अंकोको न स्वीकार करनेकी अपनी भूल प्रतीत होगी और वे नागरी अंकोंका अुपयोग सरलतासे करने लगेंगे।

—मो० भ०



वार्षिक चन्दा ६) सालआरम्भमें अर्धवार्षिक ३॥) ओर अंकका मूल्य १० आना

पता —राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दीनगर, वर्धा (म० प्र०)

'राष्ट्रभारती' आपसे कुछ कहना चाहती है !

१. यही कि, ता १ जनवरी १९५८ से, वह अपने जीवनके चौथे वर्षमें प्रवेश कर चुकी है। भारतके प्राय सभी प्रमुख साहित्यकारों, विद्वानों और पत्र-पत्रिकाओंने 'राष्ट्रभारती' की प्रशंसा की, अुसे सराहा, अपनाया, अपनी शुभकामना दी, सहयोग दिया और अुत्साह बढाया। अुन सबकी कृपाको किन शब्दोंमें व्यक्त किया जाअे ?

२ यही कि, वह निश्चित समयपर, हर महीनेकी पहली तारीखको, अपने प्रेमी पाठकोंके हाथोंमें श्रेष्ठ, सुरुचिपूर्ण, स्वस्थ और सरस-सुन्दर, विविध-विषयक गंभीर लेख, कविता, कहानी, समालोचना आदि पाठ्य-सामग्री अर्पण करती है।

३. यही कि फिर भी वह सबसे सस्ती मासिक-पत्रिका है। वार्षिक मूल्य कहिअे या मालाना चंदा कहिअे ज्यादा नहीं, सिर्फ ६ रुपया और अर्ध-वार्षिक (छह माही) ३ र ८ आना और अेक अंकका १० आना।

४ यही कि, राष्ट्रभाषा-प्रचार समितिके प्रमाणित प्रचारकों, केन्द्र-व्यवस्थापकोंको और विद्यालयों तथा महाविद्यालयोंको 'राष्ट्रभारती' अेक रुपया कम करके रियायती मूल्य ५ र वार्षिक चन्देमें और अर्धवार्षिक चन्दा ३ र में दी जाअेगी।

५ यही कि, अिस महान् पवित्र साहित्यिक अेवं सांस्कृतिक राष्ट्रभाषा-प्रचार कार्यमें आप 'राष्ट्रभारती' का हाथ बटाअें। अुसकी सहायता करें। स्वयं ग्राहक बनें और अपने मित्रोंको भी बनाअें।

६ यही कि "राष्ट्रभारती" आपकी अैसी सहायताका सहर्ष आभारपूर्वक स्वागत करेगी।

राष्ट्रभारतीके लेखकोंसे निवेदन

(१) 'राष्ट्रभारती' में प्रकाशनार्थ रचना आदि सामग्री स्वच्छ-सुवाच्य लिखावटमें अथवा अच्छी टाअिप की हुअी कापी भेजनी चाहिअे। प्रकाशन योग्य सामग्री जो कुछ भी आप भेजें वह बहुत भारी-बोझिल और बहुत लंबी नहीं होनी चाहिअे।

(२) यह अच्छी तरह ध्यानमें रहे कि राष्ट्रभारतीमें प्रकाशनार्थ भेजी हुअी आपकी रचना अिसके पूर्व किसी हिन्दी पत्र-पत्रिकामें प्रकाशित न हो चुकी हो; और जो कुछ सामग्री भेजें वह 'राष्ट्रभारती' के लिअे ही भेजें। 'राष्ट्रभारती' अपने लेखकोंको "पत्रपुष्प-पुरस्कार" भी भेंट करती है।

(३) अनुवादक महाशय किसी अनूदित रचनाको भेजनेसे पूर्व अुसके मूल-लेखकसे पत्र द्वारा अनुमति अवश्य प्राप्त कर लें, तभी अनूदित रचना हमारे यहां भेजें।

(४) आपकी स्वीकृत रचना संबंधी सूचना संपादक द्वारा आपको दी जाअेगी और उसके बाद आपको प्रतीक्षा करनी होगी।

(५) अपनी अस्वीकृत रचनाको वापस मंगानेके लिअे डाक-टिकट अवश्य भेजें अथवा आप अुसकी प्रतिलिपि अपने पास सुरक्षित रखें।

(६) लेख, रचना सम्पादकीय आदि सारा पत्र-व्यवहार अिस पतेपर करें —

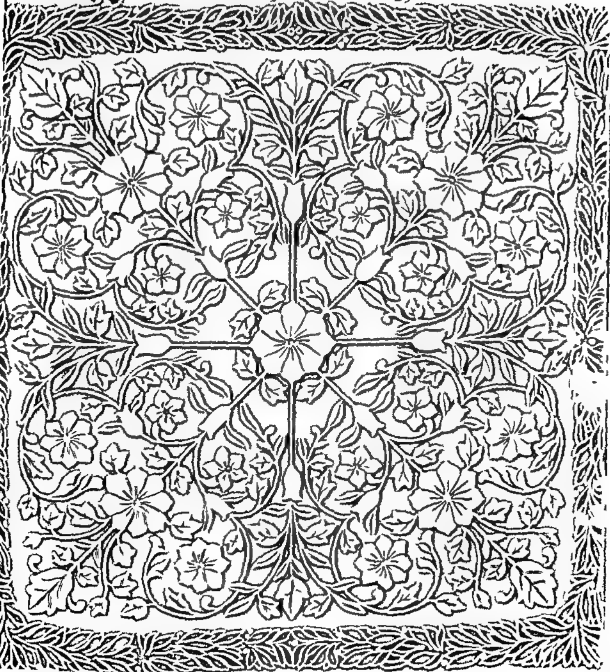
संपादक : 'राष्ट्रभारती'
पोस्ट—हिन्दीनगर (वर्धा, मध्यप्रदेश)

मुद्रक तथा प्रकाशक.— मोहनलाल भट्ट, राष्ट्रभाषा प्रेस.— राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

राष्ट्र भारती

मार्च, १९५४

6.3.'54



वर्ष ४] राष्ट्रभारती, मार्च—१९५४ [अंक ३

—: विषय सूची :—

वार्षिक चन्दा ६) मनीआर्डरसे : : अर्धवार्षिक ३॥) : : अेक अंकका मूल्य १० आना

पता:—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दीनगर, वर्धा (म० प्र०)

राष्ट्र भारती

[भारतीय साहित्य और संस्कृतिकी मासिक पत्रिका]

—: सम्पादक :—

मोहनलाल भट्ट : हृषीकेश शर्मा

* वर्ष ४ * वर्धा, मार्च १९५४ * अंक ३ *

गीत

: श्री 'निराला' :

फेर दी आँख, जी आया,
जैसे रसाल बौराया ।

रहकर दबते मेरे मन,
फूटे सौ-सौ मधु-गुञ्जन,

तनकी छवियाँ नतलोचन
झुमड़ी, मानस लहराया ।

सूखी समीर नव-गन्धित
बह चली छन्दसे नन्दित,

जुग आया सलिल कमलसित,
कोमल सुगन्ध नभ छाया ।

———

भारतीय समन्वय

: डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या :

क्या भारतके और क्या विदेशके, भारतीय संस्कृतिका विवेचन करनेवाले सभी समर्थ विद्वान् यह अेक बात स्वीकार करते हैं कि अिस संस्कृतिके बुनियादी लक्षणका वर्णन विरोधोंमें सुमेल अथवा विविधतामेंसे अेकता पैदा करनेवाले समन्वयके रूपमें किया जा सकता है। अन्य किसी संस्कृतिकी परम्पराकी अपेक्षा यह अधिक बृहत्, विशाल और सर्वग्राही है,— जीवनके समान ही—और अिसने समझने तथा स्वीकार करनेकी अेक अैसी अुदार वृत्तिका निर्माण किया है, जो ज्ञान और अनुभवके किसी अेक ही प्रकारमें बँधना और शेष सबका वर्जन करना नहीं चाहती।

हमारी अिस समन्वयकी प्रवृत्तिने विविध भौतिक सभ्यताओं, धार्मिक और सामाजिक सम्प्रदायों, रूढ़ियों तथा विचारों और सिद्धान्तोंका जो अद्‌भुत सम्मिश्रण किया है, अुसकी अुच्च बौद्धिक और आदर्शगत भूमिका निम्नलिखित तत्त्वोंपर आश्रित है; अेक अदृष्ट सत् तत्त्वकी, जो विश्वसे परे है और अुसमें ओतप्रोत भी है (दैवी तत्त्वके लिअे पुराना तमिल शब्द 'कट-व-अुळ' है), अभिव्यक्तिके रूपमें समग्र जीवनकी अेकताका विचार, जीवन तथा आखिरकार अनुभवके विच्छिन्न और विसंवादी अंगोंको तात्त्विक अेकताके भीतर यथास्थान संयोजित करनेके लिअे प्रयत्नशील समन्वयकी आकांक्षा; बुद्धिका दृढ़ अनुसरण और साथ ही अुच्चतर स्तरपर भावना, स्वयं स्फुरित ज्ञान और गूढ़ दर्शन (Mystic perception) के साथ अुसका मेल साधनेका यत्न; जीवनकी कठिनाअियों तथा दुःखका भान और अिन दुःख-कष्टोंके मूल कारण तक जाकर अुन्हें निवारण करनेका प्रयत्न, यह भावना कि समग्र जीवन पवित्र है; और सबसे विशेष तो दूसरे तमाम दृष्टिकोण और विश्वासोंके प्रति विशाल सहिष्णुता। अिस परम सत्यका साक्षात्कार जीवनका सार-सर्वस्व है और अुसके साक्षात्कारके मार्ग भी वैयक्तिक शिक्षा, स्वभाव और वृत्तिके अनुसार अनेक प्रकारके माने गये हैं— ज्ञानका या प्रेमका (जिसकी पृष्ठभूमिमें कृपा है), आत्मदमनका या सत्कर्मका, जिस प्रकार ये मार्ग अुतने ही विविध हैं, जितनी कि मनुष्यकी दृष्टि और अभिरुचिके सम्मुख अुस परम सत्यकी अभिव्यक्तियाँ। भौतिक जगत्की अुसकी कल्पना देश-कालसे परे है और पदार्थ तथा शक्ति अेक ही पार्थिव तत्त्वके रूप हैं, जो अिस अदृष्ट सत्यका बाह्य आविर्भाव है।

भारतमें बहुत प्राचीन कालसे भिन्न-भिन्न भाषाओं, संस्कृतियों और अुसी प्रकार जीवन तथा विचारकी रीतियोंवाली भिन्न-भिन्न प्रजा अिस भूमिपर मौजूद रही है, अिस सत्यसे अिस समग्र समन्वयकी वृत्तिको प्रेरणा मिली है और अिसका विकास सरल बना है। ये सब अनिवार्य रूपमें अेक-दूसरेकी ओर अेक साथ आकर्षित हुअे और अेक सुग्रथित सर्वग्राही सभ्यतामें सबका समावेश हुआ। अिस सभ्यतामें रंग और जाति-भेदकी स्थापनाके लिअे कोअी अवकाश नहीं था, क्योंकि जाति-सम्मिलन अिसके अपने अेक हमेशाके लक्षणके रूपमें बिलकुल आरम्भसे ही शुरू हुआ था।....... अेफ. डब्ल्यू. टॉमसके कथनानुसार वैदिक या आर्ययुग (ओ. स. पूर्व १२०० से ५००) भारतीय मानवके सर्जनका साक्षी था।

भारतीय मानव अुत्तर भारतमें प्रवर्तमान अिन चार तत्त्वोंके मेलसे सरजा गया था; ऑस्ट्रीक अथवा ऑस्ट्रो— अेशियाअी, मंगोल अथवा चीनी-तिब्बती, द्राविडी, आर्य; अिनके भारतीय, प्राचीन और अर्वाचीन नाम देने हों, तो अनुक्रमानुसार निषाद (अथवा नाग, भील-कोल) किरात, द्रविड़, शुरूके दास-दस्यु तथा शूद्र, और आर्य दिये जा सकते हैं।

सत्य क्या कहता है ?

: महात्मा भगवानदीन :

सत्य आदमीका गुण है। हमेशासे अुसके साथ है, हमेशातक बना रहेगा।

सत्य आदमीसे अलग होकर कुछ भी नहीं। अुसके साथ रहकर सब कुछ है। गुणके गुणीसे अलग होनेकी कल्पना की जा सकती है, अलग किया नहीं जा सकता।

सत्य जब हमेशासे साथ है, फिर अुसकी खोज क्यों? और अितना भी पता क्यों नहीं कि वह क्या है?

आदमी अपनी आंखको नहीं देख सकता। वह जन्मसे साथ है, मरनेतक साथ रहेगी। अुसे देखनेके लिअे दर्पणकी जरूरत पड़ती है।

सत्य हमेशासे साथ है; अगर दिखायी नहीं देता तो घबरानेकी बात नहीं। अुसकी सुनो, अुसने देखनेकी धुनमें न लगो। वह तुम्हें दिखायी देनेके लिअे अितनाही अुत्सुक है, जितने तुम अुसे देखनेके लिअे।

सत्य गुण है, गुणमें समझ और ज्ञान नहीं होती। गुण अपने आप कुछ नहीं कर सकता। सत्य गुणकी हैसियतसे कुछ नहीं चाह सकता। सत्य तुम्हारे साथ अेकमेक होनेसे तुम्हारी भलाओ अैसेही चाहने लगता है जैसे तुम अपना भला चाहते हो।

सत्य तुम्हारा साथी बनकर तुम्हारी भलाओके लिअे वैसे ही तड़पता है जैसे तुम तड़पते हो। अुसके लिअे मुश्किल यही है कि वह यह चाहता है कि तुम्हे दिखायी दे जाअे, पर अिस विषयमें वह कुछ कर नहीं सकता। अुसके और तुम्हारे बीचमें जो पर्दा है अुसे तुम ही तोड़ोगे; कोअी दूसरा नहीं तोड़ेगा। लोहेके अन्दरकी चमक जिस तरह तुम्हारे मांजनेसे तुम्हें दिखायी देती है, अुसी तरह सत्यको मांजनेसे सत्यकी चमक तुम्हें दिखायी देगी।

सत्य यही चाहता है कि तुम अपनी आंख खुली रखो, दोनों कान खड़े रखो, और अपनी सारी अिन्द्रि- [illegible] रखो।

तुम यह कहोगे, हम तो अपने आंख कान हमेशा खुले रखते हैं, अब और किस तरह खोलें?

तुम्हारा सवाल ठीक है, पर अिसका जवाब तुम्हारे पास है। देखो, जब तुम छोटे थे तब भी तुम्हारी आंखें खुली थीं, कान चौकन्ने थे, पर अिन दिनों अिन खुली आंखों और अिन चौकन्ने कानोंसे जो देखते-सुनते थे, क्या आज भी अुसी तरह देखते-सुनते हो?

तुम जब छोटे थे, फूलको देखते थे। खुश होते थे। अुसे तोड़ते थे। अुसे मुंहमें रख लेते थे। जरा बड़े हुअे, मसलकर फेंकने लगे। जरा और बड़े हुअे पेड़के सारे फूलोंको लकड़ी मार-मारकर गिराने लगे। यह भी देखना देखना था।

अब तुम बड़े हो। अब भी फूलोंको देखते हो, अब भी खुश होते हो। अगर तुम बहुत समझदार हो तो अुसे नहीं तोड़ते, क्योंकि अुसकी खुशबू तुम्हारी नाकतक अपने आप पहुँच जाती है। अगर तुम अितने समझदार नहीं, और अपने दिमाग तथा मनपर काबू नहीं है तो तुम पेड़परसे अेक दो फूल तोड़ लेते हो, अुसको न मसलते हो, न मुँहमें रखते हो, न फेंकते हो, रूमालमें रखकर सूंघते हो। यह भी अेक देखना है।

दोनों देखनेमें अन्तर है। पहले देखनेसे दूसरे देखनेतक पहुँचनेमें तुममें सत्यके अूपरसे कअी पर्दोंको खड़ डाला है और यह देखकर तुम्हारे अन्दरका सत्य बहुत खुश हो रहा है। सत्य यही चाहता है कि और आंखें खोलो, और भी कानोंको चौकन्ना करो, और भी सारी अिन्द्रियोंमें चेतना लाओ और मनपर धीरे-धीरे काबू पाते जाओ।

दुनियामें सत्यसे बढ़कर तुम्हें चाहनेवाला कोअी दूसरा नहीं है। मां बाप भी नहीं। अगर अगर कोअी [illegible]

रखा है वह तुमको कभी अितना प्यार नहीं कर सकता जितना सत्य ! अिसका कारण है।

सत्य तुमको कितना प्यार करता है। अिस बातको समझानेके लिअे सत्यभक्तोंने बडी-बडी कहानियाँ लिख डाली हैं और सीतारामकी कथा अैसी ही अेक है।

जैसे सीता बनवासमें साथ रहनेके लिअे मचल अुठी, वैसे ही सत्य अेक क्षणके लिअे अलग नहीं रहना चाहता।

सीताकी जो लगन कवियोंने रामके लिअे दिखायी है, अगर अुस लगनको हम अेक बूंद भी पा लें तो सत्यकी लगन तुम्हारे साथ रहने और तुम्हारे देखनेको सागर जितनी समझी जाअेगी। अब तुम अन्दाजा लगाओ कि सत्यका प्रेम तुम्हारे लिअे कितना है। अैसा क्यों है ?

जो ओीश्वर, जो राम तुम्हारे अन्दर है वही तो सत्य है। अब अगर तुम चोर हो तो वह चोर है। अगर तुम हिंसक हो वह हिंसक है। तुम जो हो, वह वह है।

राम राजकुमार थे, सीता राजकुमारी थी। राम बनवासी थे, सीता बनवासिनी थीं। सीता महलमें सोलह श्रृंगार करके भी रहती बनवासिनी तो कहलाती ही, अुससे भी ज्यादा कहलाती, वियोगिनी। वियोगिनी न बनकर अुसने बनवासिनी बनना ठीक समझा। राम विजयी हुअे, वह अपने आप विजयन्ती कहलाने लगी। राम राजा हुअे वह रानी बन गयी।

सत्य अेक शक्ति है और शक्तिके नाते वह सीता है। सत्यको पहचाने हुअे तुम शक्तिधारी हो। शक्तिधारीके नाते तुम राम हो।

तुम्हारी बडवारीमें सत्यकी बडवारी है। रामके राजा होनेमें सीताके रानी बननेकी बात छिपी हुअी है। फिर कौन हो सकता है जो सत्यसे ज्यादा तुम्हें प्यार करेगा ?

सीताकी यह अिच्छा कि राम विजयी हों, अयोध्याके राजा बनें, यदि अैसा माना जाअे तो सत्यकी यह अिच्छा कि तुम भगवान बनो, लाख और करोड रुपयोंसे भी [illegible]

सत्यके समीप होना यानी सत्यके आमने-सामने आना ही हो तो भगवान बनना है। जिससे आप सत्यकी तड़पका अन्दाजा लगा सकते हैं।

सत्य न अपने आपको मैंज सकता है, न मांजता है, वह तो तडपना भर जानता है। और चौबीसों घंटे तड़पते रहता है। तुम अुसी तड़पनको अनुभव नहीं करते। जब तुम अनुभव करने लगोगे तो अपने सारे अनुभवोंसे मदद लेना सीख लोगे। और दूसरोंके अनुभवोंको रेगमाल बनाकर अुस मैलको मांज डालोगे जो सत्यपर मुद्दतोंसे चढा हुआ है और आये दिन चढता रहता है।

दांत रोज मांजने पडते हैं। मुंह रोज धोना पडता है। आंखोंमें सुर्मा रोज आंजना पड़ता है। तब कहीं दांत, मुंह और आंख साफ रहते हैं। यही हाल सत्यका है। अुसके अूपर रोज धूल चढती रहती है, अुसे तो रोज साफ करते रहना ही चाहिअे। और पुराने मैलको मांजनेके लिअे भी कुछ यत्न निकालना चाहिअे।

बालपनकी आंखसे जवानीकी आंख कम देखती है। पर ज्यादे ठीक देखती है। जवानीकी आंखसे बुढापेकी आंख और भी कम देखती है पर बहुत ज्यादा ठीक देखती है। और अनुभवोंसे हुअी अन्धी आंख बिल्कुल न देखकर बहुत ज़्यादा देखती है। यही हाल मनुष्य समाजकी बालपनेकी आंखका और आजकी आंखका है। मनुष्य-समाज बालपनेमें बहुत देखता था, पर कुछ-का-कुछ देखता था। आज वह कम देखता है पर पहलेसे ठीक देखता है।

सत्य यह चाहता है कि तुम बाहर किसी ताकतको ढूंढकर टोटेमें रहोगे। तुम्हारा नफा अिसीमें है कि मेरे अूपर लगी काओीको मांज डालो, मेरे अूपर अेक मिनिट भी धूल न रहने दो। पर तुम हो कि अुसकी न सुनकर ताकतके लिअे न जाने कहां-कहां भागे फिरते हो। तुम्हारी यह हालत देखकर सत्य घबरा अुठता है।

सत्य यह चाहता है कि जो कुछ आंख देखती है या जो कान सुनते हैं, वह वही नहीं होता जो दिखायी देता या सुनायी पडता है। आंखको जो दिखायी देता है, [illegible]

कहता है कि मैं किताबका पन्ना देख रहा हूँ, लेकिन असका मन न जाने क्या देख रहा होता है। यही कारण है कि पन्नेपर लिखे किसी खास शब्दको देखनेके लिअ कितनी ही बार निगाह डालनी पडती है। तब पन्ना देखनेकी बात कैसे ठीक मानी जा सकती है ?

सत्य यह चाहता है कि तुम आँख नाककी न सुनकर मनकी सुनो, पर वहीं न रुक जाओ।

सत्य यह चाहता है कि मनकी सोची हुआी बातोंको ज्यों का-त्यों न मान लो अुसे अनुभवकी कसौटीपर कसो। अगर वह कसौटीपर ठीक न अुतरे तो अुसे अैसा ही रद्दी समझ लो जैसे आँखका देखा हुआ और कानका सुना हुआ।

सत्य यह चाहता है कि कार्य कारणके मामलेमें सतर्क रहो।

किसी कार्यका अैसा कारण न मानो जिस कारणसे अुस तरहका कार्य तुम खुद न कर सको।

या अगर तुम अुस कारणसे वैसा कार्य नहीं कर सकते तो यह देखो कि अुस कारणसे वैसा कार्य कोआी कर सकता है ?

अगर अैसा भी न हो, तो यह देखो कि क्या तुम्हारे अनुभवोंका भंडार अिस बातमें कुछ भी मदद देता है कि अुस कारणसे अिस तरहका कार्य हो सकता है।

अगर अैसा भी न हो और तुम्हारा अनुभव भंडार अिसमें जरा भी मदद न करे तब दूसरोंके अनुभवोंसे मदद लो, जिनको तुमने अपने अनुभवोंकी कसौटीपर कसकर ठीक मान लिया है। अगर अुन अनुभवोंकी मददसे यह बात समझमें आ जाय कि हाँ अुस कारणसे वैसा कार्य हो सकता है तब मान लो और अगर न हो सकता हो तो न मानो।

दूसरोंके अनुभव या अपने अनुभवोंके आधारपर माना हुआ कार्य-कारण अैसा नहीं है जो यों ही पडा रहने दिया जाय। हाँ, यह ठीक है कि जैसे और खोटी बात धूल तो नहीं फैलाअगी पर भाजनमें सहायक नहीं हो सके तो किसी काम नहीं आ सकती।

सत्य यह चाहता है कि कोआी कार्यकारण जिसे तुमने खुद नहीं किया और तुम्हारे पास पडा हुआ है वह कभी भी बीचके पर्देको न तोड सकेगा और कभी मुझमें और तुममें मेल नहीं होने देगा।

सत्य यह चाहता है कि जब तुम यह देखो कि कोआी आदमी या औरत यह शोर मचा रहा है कि कोआी मुझे मार रहा है जब कि वहाँ कोआी आदमी नहीं है, तब अकदम कोआी बात तय न कर बैठो और न किसीकी तय की हुआी बातको मान बैठो। अपने अनुभवोंका भंडार टटोलो और देखो किन-किन हालतोंमें आदमी अैसी बहकी बात करने लगता है। अैसा करनेपर तुम्हारे अनुभव अुस घटनाके कआी कारण बता सकते हैं। अब देखो कि अुनमेंसे कौनसा ठीक बैठता है। जो ठीक बैठता है अुसीके अनुसार अुस आदमीको समझाओ या अुपचार करो।

सत्य यह कहता है कि जब जब तुम अपने अनुभवोंके बलपर किसी अगले अनुभवके लिअ जान दे देते हो, तब-तब तुम मुझे अपने बहुत करीब पाते हो। यही कारण है कि तुम्हें जल्दी सफलता मिलती है और अगर मौत भी हो जाती है तो अपने साथियोंके लिअ अैसी चीज छोड जाते हो जिसके कारण वह तुम्हें मरने नहीं देते।

लेकिन अगर तुम दूसरोंके अनुभवपर अपनी जान खतरेमें डालते हो तो मैं तुमसे बहुत दूर जा पडता हूँ — और अैसे वक्त तुम्हारी मौत हो जाअ तो तुम कोआी चीज अपने पीछे नहीं छोड सकते और अगर कोआी चीज तुम छोड ही गये तो वह अैसी नहीं होगी जिससे कोआी फायदा अुठा सके। क्योंकि वह वही चीज हो सकती है जो जानवरोंमें ज्यादा मिलती है और आदमियोंमें कम।

सत्य यह नहीं चाहता कि कोआी आदमी दूसरोंके अनुभवोंके खातिर मरकी भी बहादुरी दिखाकर अपनी

और अुसके अंदर रहनेवाले सत्यको कोअी फायदा न पहुँच सकेगा।

सत्य यह नहीं चाहता कि कोअी आदमी दूसरोंके अनुभवके लिअे हदसे ज्यादा अुदार बन जाअे। क्योंकि अुस अुदारतासे अुसके अंदर रहनेवाले सत्यको कोअी लाभ न पहुँचेगा।

सत्य यह चाहता है कि तुम किसीकी बातको सिर्फ अिस वजहसे न मान लो कि वह आदमी बहुत बड़ा विद्वान है।

किसीकी बातको अिस वजहसे न मान लो कि वह बहुत बड़ा त्यागी है। अिस वजहसे न मान लो कि वह किसी पुराने शास्त्रमें लिखी है। किसी बातको किसी अैसी वजहसे न मानो जो अुसका कारण न हो।

सत्य यह चाहता है कि जबतक तुम्हारा अपना अनुभव किसी बातको ठीक-ठीक न बता दे तबतक अुन बातोंको अपने अंदर अेक अैसे खानेमें डाल रखो जो तुम्हारे और मेरे बीचमें आड़े न आने पाअे। तुम्हारी सारी जानकारी मेरे अूपर धूलका काम करती है। अगर वह तुम्हारे अनुभवोंपर ठीक नहीं अुतरती और फिर भी तुम अुसे ठीक समझते हुअे हो।

अिसीका नाम अंधविश्वास है। अिसीका नाम मिथ्या विश्वास है। यही वह जबर्दस्त पर्दा है, जिसे दूर करनेके लिअे सत्य तड़प-तड़पकर मौन रहते हुअे अिशारा करता है।

सत्यका कहना है, मैं आत्मासे अलग होकर कोअी चीज नहीं हूँ। मैं आत्मासे अलग हो ही नहीं सकता। मैं और आत्मा अेकमेव हैं। कहने और समझनेके लिअे हम दो हो सकते हैं। अैसेही अंतर आत्मा, बुद्धि, समझ, विश्वास, ज्ञान, आत्मा, सत्य यह सब अेकही चीज हैं, नामके लिअे अलग-अलग हैं।

प्रकाशका जो रंग है, वह है। पर वह हरे शीशेमें हरा, लाल शीशेमें लाल और नीले शीशेमें नीला दिखायी देता है। ठीक अिसी तरह मैं यानी सत्य अपना प्रकाश लिये हुअे हूँ। मेरे अूपर धूल जमी हुअी है।

और जिस प्रकाशसे आदमी सारा काम चलाता है अिसीका नाम बुद्धि है। बुद्धि अेक चन्द्रमा है जिसे मुझ सत्यरूपी सूरजसे चमक मिलती है। अुसकी चमक और मेरी चमकमें अन्तर होगा ही। जैसे-जैसे अन्धविश्वास-परसे मिथ्या विश्वासके बादल हटते जाअेंगे, वैसे-वैसे बुद्धिकी चमक बढ़ती जाअेगी। अेक दिन अैसा हो सकता है कि बुद्धि और मैं, सत्य, अेक बन जाअें। आदमीका जन्म अिस बातकी कोशिश करनेके लिअे हुआ है।

सत्यका कहना है बुद्धि मेरी है, अुसकी मेरी तरह कद्र करो, अिस विषयमें कभी धोखा न खाओ और अगर तुम अिस धोखेसे बचे रहे तो बहुत जल्दी अपने अंदरकी सचाअियाँ जान लोगे और मेरे दर्शन पा सकोगे। मैं तुम्हें समझ लूँगा, तुम मुझे समझ लोगे।

सत्यका कहना है, यह बात बिलकुल गलत है कि छोटा बच्चा बुद्धिमान नहीं होता। बड़े-बड़े ज्ञानियोंमें और बालकमें कोअी अन्तर नहीं होता। चींटी और हाथीमें कोअी अन्तर नहीं है। देहके छोटे बड़ेका अंतर है। ध्यानसे देखा जाअे तो चींटी जितना बोझ अुठाकर ले जाती है, हाथी अुसी अनुपातसे नहीं ले जा सकता। यही हाल दूध-पीते बच्चेका है। जितनी छोटी अुसे देह मिली हुअी है, जितने छोटे काम अुसके सुपुर्द हैं, अुन सबसे काम लेनेके लिअे जितनी बुद्धि अुसके पास है, वह कहीं ज्यादा है, अुन ज्ञानियोंकी बुद्धिसे जिनको बहुत बड़ी देह और बहुत बड़ा काम मिला हुआ है।

सत्यका कहना है, दूध पीते बालकको न धोखा देकर हिन्दू हिन्दू बना सकते हैं, न मुसलमान मुसलमान, न अीसाअी अीसाअी, बड़ा आदमी बहकाया जा सकता है, दूध-पीते बालकको बहकाना मुश्किल ही नहीं, असम्भव है। धर्मवाले दुनियाको बहका सकते हैं।

सत्यका कहना है, यह कहकर कि जो सच्चा होता है अुसे आग नहीं जलाती, सीता देवीको धोखा दिया जा सकता है और वह धोखेमें आकर आगमें घुस सकती है, पर किसी बच्चेको यह कहकर धोखा नहीं दिया जा सकता कि जो सच्चा होता है वह आगमें नहीं जलता। बालकको अच्छी तरह मालूम है कि वह बिल-

अपनी अंगुली आगमें दी थी और वह जलने लगी थी। अुस बालकका ज्ञान सब धर्मशास्त्रियोंसे कहीं सच्चा ज्ञान है क्योंकि अुसका अनुभव है कि सच्चे आदमीकी अुंगली भी आग जला देती है। फिर अुसकी देह क्यों नहीं जला देगी।

सत्यका कहना है कि आगका काम जलाना है पर हाँ आग जैसी चमकती हुअी चीजें और भी हो सकती हैं जो ठंडी हों और आग जैसी समझी जायें अुनमें बैठकर सच्चे और झूठे दोनों ही जलनेसे बच सकते हैं और आज भी यह तमाशा किसने नहीं देखा कि दहकते हुअे कोयलोंपर झूठे और सच्चे सभी नंगे पाँव निकल जाते हैं और यह भी किसने नहीं सुना कि दूधका जला छाछको फूंक फूंककर पीता है। छाछको गरम दूध समझकर अगर कोअी अपनी अुंगली डाल दे तो वह जलेगी नहीं लोग भले ही यह समझें और यह कहा करें कि अुस आदमीने गरम दूधमें अुंगली डाली थी और वह जली नहीं क्योंकि वह सच्चा आदमी था।

सत्यका कहना है कि बुद्धिके सिवा और कौन है जो हर वक्त तुम्हारे साथ रह सकता है और आड़े वक्तपर तुम्हारे काम आ सकता है।

जो तुम्हें बुद्धिसे काम न लेनेकी बात कहते हैं वे खुद बुद्धिसे काम ले रहे हैं फिर वे कैसे हकदार हो सकते हैं कि यह कहें कि तुम बुद्धिसे काम नहीं ले सकते।

सत्यका कहना है कि मुझे पहचाननेके लिअे या मेरे अूपरसे धूलको हटानेके लिअे जितनी बुद्धिकी जरूरत है अुतनी सबको मिली हुअी है। फिर चाहे बच्चा हो या बूढ़ा पढ़ा लिखा हो या अपढ़ जंगली हो या शहरी। हाँ झूठ बोलनेके लिअे और सत्यको असत्यका रूप देनेके लिअे लोगोंको लूटने और लोगोंका विनाश करनेके लिअे आविष्कारोंको सोचनेके लिअे खास बुद्धिकी जरूरत होती है। यह किसीसे छिपा हुआ नहीं है कि छोटे बच्चे अपनी माँके सामने जब किसी झगड़ेका फैसला करानेके लिअे पहुँचते हैं तो वकीलोंकी जरूरत नहीं होती लेकिन जब अेक डाकू यह साबित करना चाहता है कि अुसने डाका डालकर भी डाका नहीं डाला तब वह होशियारसे होशियार वकीलको अपने साथ लेकर अदालतके सामने पहुँचता है।

सत्यका कहना है कि झूठ बोलनेमें बुद्धिपर जितना जोर पड़ता है अुतना सत्य बोलनेमें नहीं। झूठ बोलनेमें बोलनेवालेको डर लगता है दुःख होता है। सच बोलनेमें आदमी निर्भीक रहता है और आनन्द मानता है।

सत्यका कहना है यह किसको मालूम नहीं कि आदमीकी परछाअी कअी कारणोंसे कभी कभी आदमीसे कअी गुना लंबी हो जाती है कअी गुना मोटी हो जाती है आदमी नहीं काँपता पर परछाअी काँपने लग जाती है आदमी टेढ़ा नहीं होता परछाअी टेढ़ी हो जाती है। ठीक अिसी तरह बुद्धि मुझ सत्यकी परछाअी है पर धर्मशास्त्री वकीलोंकी तरह मिथ्या विश्वासोंको सिद्ध करनेके लिअे अुसको मुझसे लंबी चौड़ी भारी मोटी साबित बना देता है।

सत्यका कहना है आदमीके जीवनका अुद्देश्य आदमीके साथ आया है। अुसे बाहर ढूंढनेकी कहाँ जरूरत है? अुसके जीवनका अुद्देश्य अिसके सिवा क्या हो सकता है कि वह अपनेको पहचाने और अपनेको पहचाननेमें अुसके लिअे मुश्किल नहीं हो सकता न होना चाहिअे और न है। आदमीको किसी बड़े कामके लिअे पैदा होनेका कोअी मतलब ही नहीं जिसे वह आसानीसे अपने जीवनमें न कर सके। अगर आदमीसे कोअी काम नहीं हो पाता तो वह अुसके लिअे पैदा ही नहीं हुआ। आदमी खुद जो मशीन तैयार करता है वह अुस कामको आसानीसे कर लेती है जिसके लिअे बनी है। अगर किसी कामके करनेमें मुश्किल हो तो यही समझना चाहिअे कि मशीनको वह काम दिया गया है जिसके लिअे वह नहीं बनी है। प्रकृतिका बना हुआ आदमी कभी अैसा नहीं हो सकता कि वह अपनेको आसानीसे पहचान न सके क्योंकि वह अिसी कामके लिअे पैदा हुआ है।

सत्यका कहना है कि कम बुद्धिवालोंको बिलकुल नहीं घबराना चाहिअे सत्य झूठको समझनेमें आअेगा पर अेक शर्त है कि अुनको अपनी बुद्धिपरसे मिथ्या विश्वास और अंधविश्वासकी चर्बी निकाल फेंकनी होगी।

गुजरातके लोकप्रिय कहानीकार पन्नालाल पटेल

: श्री गौरीशंकर जोशी :

कलाकार होना केवल पढ़े-लिखे शिक्षित लोगों और डिग्रीधारियोंकी ही बपौती नहीं, यह चुनौती देनेवाले गुजरातके कहानीकार श्री पन्नालाल पटेल आज गुजराती साहित्यमें तरुण पीढ़ीके सर्वश्रेष्ठ कहानीकार माने जाते हैं। आधुनिक युगमें, जब कि शहरी तथा कथित सभ्य, संस्कृतिका बोलबाला है, यह सचमुच बड़े आश्चर्यकी बात मानी जायेगी कि अेक मामूली अपढ़ जैसे परिवारमें पैदा होनेवाला, जिसे ठीकसे पूरी-पूरी शिक्षा-दीक्षा भी न मिली हो, और शहरी समाजसे दूर देहातके किसी अेकान्त कोनेमें बैठकर सरस्वतीकी आराधना करनेवाला व्यक्ति अपने जीवनके १०–१२ वर्षके अल्प सृजन-कालमें ही कभी अितना बड़ा कलाकार सिद्ध होगा।

श्री पन्नालाल पटेलका जन्म ७ मअी, १९१२ को गुजरातकी पूर्व सरहदपर बसे हुअे डूंगरपुर राज्यके अेक छोटेसे देहात माडलीमें आजणा नामक पाटीदार (गुजरातकी अेक किसान जाति) के अेक गरीब परिवारमें हुआ। स्कूली शिक्षाके नामपर अिस गुदड़ीके लालकी केवल चार कक्षा तक पढ़ाअी हुअी। लेकिन प्रतिभाके अिस धनीको अपने छोटेसे विद्यार्थी-जीवनमें भी तीन रुपया प्रतिमास वजीफा मिलता था। नियतिका चक्र कठोर होता है। शायद अुसे यही अिष्ट लगा हो। आर्थिक कठिनाअियोंके कारण आपको विवश होकर अपना पढ़ना-लिखना यहीं समाप्त कर देना पड़ा। कहा जाता है कि अितना भी वे जयशंकरानन्द नामक अेक साधुके प्रोत्साहनसे पढ़ सके।

आपका किशोर जीवन अपने नन्हें और कमजोर कन्धोंपर असमयमें ही आ पड़ी पारिवारिक जिम्मेदारियोंके बोझको ढोने और पेटकी आग बुझानेकी चिन्तामें दर-दर भटकनेमें बीता। नौकरी-धंधेके लिअे आपको काफी कशमकश करनी पड़ी। आपको कहाँ-कहाँ और किन-किन जगहोंपर काम करना पड़ा, यह कहनेके बजाय यह कहना अधिक अुपयुक्त होगा कि आपने कहाँ नहीं काम किया। शराबकी भट्ठीसे लेकर सनवालेके गोदाम, पानीकी टंकी, अिलेक्ट्रिक कम्पनीके ऑअील मैन आदिके रूपमें भिन्न-भिन्न स्थानोंपर नौकरी करनेसे जीवनके विविध पहलुओंको निकटसे देखने और अनुभव प्राप्त करनेका आपको मौका मिला। श्रमजीवी, किसान और मजदूरोंके समाजके बीच रहकर आपने अुनके सुख-दुखको समझनेकी सूक्ष्म दृष्टि पायी। आपकी वाणी मेहनतकशों और मजदूरोंकी वाणी कही जायेगी। आपकी सारी कृतियोंमें अिन्हींकी आवाज प्रधान है।

सन् १९४० में आपकी सर्वप्रथम कृतिके रूपमें 'कळामणा' नामक कहानी प्रकाशित हुअी। अुसमें प्रयोग की गयी ग्रामीण लोक-बोलीकी ताकत, देहाती समाजका चित्रण और सजीव पात्रोंकी सृष्टि देखकर गुजरातके राष्ट्रीय कवि स्व. झवेरचन्द मेघाणीने अिस पुस्तककी बारबार प्रशंसा की थी। बादमें आप धीरे-धीरे अुत्तरोत्तर अिस ओर प्रगति करते गये और अिन पिछले दस-बारह वर्षोंमें गुजरातके साहित्यके चरणोंमें लगभग अेक दर्जनसे अधिक पुस्तकें समर्पित की हैं। अुपन्यासोंमें 'मळेला जीव', 'भीरुसाथी–भाग १, २', 'यौवन–भाग १, २', 'सुरभि' और 'मानवीनी भवाअी' तथा 'सुख-दु:खना साथी', 'जिन्दगीना खेल', 'जिवो दाड', 'पानेतरना रंग', 'लख चोरासी', 'अजब मानवी', 'पाछले बारणे', 'साचा शमणां' आदि कहानी-संग्रह हैं। अिनमें 'मानवीनी भवाअी' और 'मळेला जीव' तो आपके सर्वश्रेष्ठ अुपन्यास कहे जा सकते हैं, जो विश्वकी किसी भी भाषाके अुपन्यासोंसे टक्कर ले सकते हैं। 'मानवीनी भवाअी' में ग्रामीण समाजका हूबहू चित्रण और जगह जगह ऋतुओंके सजीव

वर्णन भरे पड़े हैं। सामान्य किसान-परिवारकी कहानीको लेकर और समग्र समाजकी पृष्ठभूमिमें रखकर लेखकने जिसमें जो वातावरण खड़ा किया है, वह अेक कुशल कथाकारका ही काम हो सकता है। हमारे साहित्यमें स्व. श्री शरद्‌बाबूने नारीको जो गौरव-गरिमा प्रदान की, वह विश्व साहित्यमें क्वचित् ही और कहीं मिलेगी। श्री पन्नालाल पटेलकी शैलीपर श्री शरद् बाबूका काफी असर मालूम होता है। आपके अुपन्यासोंके नारी-पात्र राजु और जीवी शरद् बाबूकी कमला, पारू, राजलक्ष्मी, भैरवी और अन्नदासे किसी भी रूपमें कम नहीं मालूम होते।

'मळामणा' और 'मळेला जीव' में प्राय जीवनको स्पर्श करनेवाली कहानियां हैं। 'मळामणा' में लेखकने नायिका द्वारा बड़ी कुशलतासे विशुद्ध नैसर्गिक प्रेमका चित्रण किया है। 'मळेला जीव' में भिन्न-भिन्न युवक-युवतियोंके बीच हुअे प्रेमकी गाथा है। लगभग तमाम रचनाओंमें अुदात्त भावनावाले प्रेम-प्रसंग और गाँवोंके सुन्दर सौन्दर्यके बीच पात्रोंको खड़ा करनेकी कला लेखक द्वारा हस्तगत की हुअी मालूम होती है। देहाती समाजकी विचार-सृष्टि और अुनके जीवन-प्रवाहको पकड़कर विविध प्रसंगों द्वारा वातावरणको जमाने और अुसे प्राणवान बनाकर अपनी कहानीको अुठाव देनेकी कलाका आपमें खूब विकास हुआ है। अिसलिअे आपकी कहानियां टेकनिककी दृष्टिसे बड़ी लोकप्रिय हुअीं और थोड़े ही समयमें अुन्होंने गुजराती साहित्यमें दीर्घ-स्थान पा लिया। अिसका अेक मजेदार परिणाम यह हुआ कि गुजरातके आलोचक वर्गमें श्री पन्नालाल पटेलकी दिन-ब-दिन बढ़ती हुअी लोकप्रियता और प्रसिद्धिके कारण अेक प्रकारका कुतूहल जाग अुठा और वे अुनके व्यक्तिगत जीवनके बारेमें जाननेके लिअे अुत्सुक हुअे। अिस सम्बन्धमें गुजरातके कवि श्री. अुमाशंकर जोशीके अेक पत्रका अुद्धरण देना अधिक दिलचस्प होगा, जो अुन्होंने स्व० मेघाणीको लिखा था.—

"जब पन्नालाल पटेल जैसे लेखक पैदा होते हैं, तब हमें अिनके प्रति जो आकर्षण पैदा होता है, वह अुनकी कृतियोंके कारण ही होता है। लेकिन हम अिस बातको आसानीसे भूल जाते हैं और अिन कृतियोंकी अपेक्षा अुनके व्यक्तिगत जीवनमें ही अधिक रस लेने लगते हैं।

'हमारे पन्नालालकी ही बात लें तो अुनके अपने आजतकके जीवनमें जो घटनाअें घटीं वे कभी कहानीके रूपमें परिणत होंगी, अैसा शायद ही किसीको महसूस हुआ होगा। 'देखिअे, अैसा अपढ़, हवा बिना, संस्कार-हीन व्यक्ति कैसी बढ़िया चीजें कहानियोंके रूपमें हमें देता है।' यह कहकर चमत्कारप्रिय लोगोंका ध्यान खींचनेका लोभ छोड़कर मेरा मन चले, तो मैं यह खोजने और समझनेकी कोशिश करूँगा कि अितना सब होनेके बावजूद अिस व्यक्तिने अपने हृदयको कब संस्कार-सम्पन्न बनाया, अपने जीवनको किस प्रकार संस्कार दिये? जो पन्नालाल केवल मजदूरी करना जानता है, अुस कलेवरमेंसे यह 'पन्नालाल पटेल' किस तरह पैदा हुआ? मैं अपनी बात कहूँ तो मेरे लिअे मानवीय सम्भावनाकी दृष्टिसे 'पन्नालाल' नामक व्यक्तिकी कीमत दोस्तोयेवस्केके नाटकोंसे कोअी कम न होगी, फिर भी कलाकार 'पन्नालाल पटेल' की बात करते हुअे तो मुझे अिस 'पन्नालाल' नामके व्यक्तिकी जीवन सम्बन्धी असाधारण जल्दी और रसपूर्ण बातें ही करनी चाहिये। ..."

"लिखता हूँ कि यह बात पन्नालाल पटेल जैसेके अुदाहरणमें बहुत साफ रूपमें सामने आती है। बाकी मुझे तो करीबन यह सभी लेखकोंके बारेमें सच होना सम्भव लगता है। प्रत्येक कलाकार अिसी प्रकार अिसके भारके नीचे ही दबकर काम करता होता है।"

यह संयोगकी बात ही कहिअे कि श्री पन्नालाल पटेलको बचपनसे ही गुजरातके लब्धप्रतिष्ठ साहित्यिक श्री अुमाशंकर जोशीका स्नेह और सत्संग मिला। अेक तरहसे यह भी कह सकते हैं कि श्री जोशीजीने ही अपनी सूक्ष्म दृष्टिसे श्री पन्नालाल पटेलमें गुप्त पड़ी हुअी निसर्गदत्त सौन्दर्य-दृष्टिको ढूँढ़ निकाला और अुसे समय-समयपर अुचित प्रोत्साहन तथा प्रेरणा देकर विक-सित किया। नि सन्देह अेक मामूली मजदूरको सफल कहानीकार बनानेमें श्री अुमाशंकरजी जोशीका बड़ा हाथ माना जायेगा।

मानवताकी अुपासना अिस साहित्यकारका मुख्य ध्येय है। महाभारत आपका प्रिय ग्रंथ है। अुपन्यास-लेखन प्रिय विषय है। ग्राम-जीवनका स्वाभाविक चित्रण आपकी मुख्य विशेषता है। समाजके शोषित और पीडित वर्गके प्रति आपको गहरी सहानुभूति है। और अपने अुपन्यास तथा कहानियोंमें आपने अुन्हींकी आवाज बुलन्द की है।

पिछले वर्ष गुजरात साहित्य सभाकी ओरसे "रणजित राय सुवर्ण चन्द्रक" नामक सुवर्ण पदक देकर गुजरातने आपका योग्य सम्मान किया। अुक्त अवसर-पर गुजरातीके लब्धप्रतिष्ठ लेखक श्री किशनसिंह चावडाने आपके बारेमें मराठी 'नवभारत' मासिकके संपादकके नाम अपने पत्रमें निम्नलिखित अुद्गार प्रकट किये थे.

"गुजराती साहित्यमें 'रणजितराय सुवर्ण चन्द्रक' का बडा महत्त्व है। अिसलिअे जिस किसीको वह मिलता है, अुसके बारेमें सहज ही कुछ जाननेकी अिच्छा पैदा होती है। अिस वर्ष यह पदक गुजरातके लोकप्रिय लेखक श्री पन्नालाल पटेलको दिया गया है। गुजराती साहित्यमें अुनका नाम केवल परिचित ही नहीं है, बल्कि वह बहु-जन-प्रिय भी बन गया है। गुजरात और राजस्थानका सरहदी गाँव 'माडली' अुनका जन्मस्थान है। श्री अुमाशंकर जोशीके शब्दोंमें कहें, तो 'माडली' सही रूपमें विशुद्ध देहात है। अिस बारेमें गलती नहीं हो सकती। यही अुक्ति अिस तरह भी कही जा सकती है कि श्री पन्नालाल वास्तवमें कथाकार हैं, अिस बारेमें भी किसी प्रकारकी गलती नहीं हो सकती।

"'मळेला जीव' और 'मानवीनी भवाअी' अुनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। ये अुपन्यास जब प्रकाशित हुअे तो अैसा लगा कि गुजराती साहित्यके वातावरणमें पहली वर्षासे फैलनेवाली सुगन्ध यहाँ-वहाँ फैल गयी। अुनके अुपन्यास और कहानियोंमें विशेष खूबी मालूम होती है। अुनमें धरतीका तेज, वीर्य और मानवता भरपूर मात्रामें पायी जाती है। श्री पन्नालालके साहित्य-क्षेत्रमें पदार्पण करनेसे पूर्व ग्रामीण बोलीकी शक्ति और अुसकी तेज-स्विताके प्रति लोगोंमें अुपेक्षा भाव था। लेकिन श्री पन्नालालने अुसका अिस कलात्मक ढंगसे अुपयोग किया कि अुससे अेक बलिष्ठ शैलीका जन्म हुआ है। ××× अिन सब कृतियोंमें सृजन-शीलताकी कुछ अैसी स्वाभाविक सुन्दरता है कि पाठकके अंतःकरणमें मनुष्यके लिअे करुणा पैदा होती है।

गुजरातीके अुपन्यास-लेखकोंमें 'सरस्वतीचन्द्र' के लेखक श्री गोवर्धनराम त्रिपाठीके बाद 'गुजरातके नाथ' के लेखक श्री कन्हैयालाल मुंशीका नाम आता है। और अुसके बाद निःसंकोच रूपसे 'भारेला अग्नि' के लेखक श्री रमणलाल वसन्तलाल देसाअीका नाम लिया जा सकता है। अिसी प्रकार श्री रमणलाल देसाअीके बाद अब किसका नाम लिया जाअे यह हमें नहीं सूझ रहा था। लेकिन आज अिसके लिअे गुजरातके पास श्री पन्नालाल पटेलका नाम है।"

दरअसल श्री पन्नालाल पटेल आजन्म कहानीकार हैं। गुजरातकी पाटीदार, गरासिया, बाळद आदि जातियोंके रीति-रिवाज, रहन-सहन तथा अुनकी भाषाकी खूबियोंका आपको बडा अच्छा अध्ययन है। कथाका सूत्र, टैक्नीककी पकड, सुघटित संकलन, अुसका विकास और अन्त सारी बातें बडे सहज ढंगसे साधकर अपनी प्रतिभाके बलपर आप अुसमें कुछ अैसा सौन्दर्य भर देते हैं कि सारी वस्तु नखसे शिख तक संपूर्ण मालूम होती है। श्री पन्नालाल पटेलकी सृजन-शक्ति, संवेदन-शक्ति और सौन्दर्य-दृष्टि अितनी व्यापक और विशाल है कि लिखते रहे तो वे बहुत संभव है, गुजराती साहित्यके अितिहासमें सर्वश्रेष्ठ अुपन्यासकार सिद्ध हों।

कहते हैं श्री पटेल अभी-अभी लम्बी बीमारीसे अुठे हैं। अब भी वे बडे कमजोर हैं। फिर भी अपने थके-मांदे शरीरको लेकर ज्यों-त्यों गाडी चला रहे हैं। गुजराती समाजसे, जो अपनी दानवीरताके लिअे देश-विदेशमें मशहूर है, हमारा निवेदन है कि वह अपने अिस लाडले लेखकको आर्थिक चिन्ताओंके बोझसे मुक्त करके लम्बे आरामकी सुविधा कर दे और प्रभुसे हमारी प्रार्थना है कि वह अुन्हें जल्दीसे-जल्दी स्वस्थ और सबल बनाकर सरस्वतीकी सेवामें लगा दे।

मध्यभारतके पुरस्कृत कुछ प्रमुख साहित्यकार

प्रो रामचरण महेन्द्र, अेम अे

अत्यन्त हर्षका विषय है कि सरकार अपने अपने प्रान्तके प्रमुख साहित्यकारोंको प्रतिवर्ष पुरस्कृत करने लगी है। कवि तथा साहित्यकार अैसा आश्रय चाहता है जिसके सहारे वह आर्थिक चिन्ता मुक्त हो निरन्तर शान्तिपूर्वक साहित्य सृजन करता रहे। जनताकी सरकार यदि युगके प्रहरी साहित्यकारोंको प्रोत्साहन संरक्षण न देगी तो कौन देगा ! अिस ओर प्रगति हो रही है यह देखकर संतोष होता है।

मध्यभारत शासनने अपनी साहित्य तथा कलाओंकी अेजेंसी मध्य भारत-कला-परिषद को ओरस साहित्य जगतके वयोवृद्ध तथा प्रतिष्ठित विद्वान निर्णायकोंके निर्णयानुसार ३४०५ रुपयेका पुरस्कार मध्यभारतके सर्वश्री जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द हरिकृष्ण प्रेमी दुर्गाशंकर नागर महेन्द्र भटनागर विश्वामित्र वर्मा नटवरलाल स्नेही आनन्द मिश्र शंकरराव जोशी श्यामसुन्दर व्यास कमलाकान्त पाठक विष्णुप्रसाद व्यास स्वरूपकुमार गांगेय रामचन्द्र श्रीवास्तव तथा जानकीप्रसाद पुरोहितको मिला है। ये सभी साहित्यकार बधाअीके पात्र हैं। अिनमें कुछपर यहाँ विस्तारसे चर्चा प्रस्तुत की जा रही है जिससे अिनके द्वारा की हुअी साहित्य-सेवापर प्रकाश पड़ सके।

श्री जगन्नाथप्रसाद "मिलिन्द"

मध्यभारतके साहित्यकारोंमें मिलिन्द जीका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मिलिन्द जी प्रान्तके सबसे पुराने बहुमुखी साहित्यकार हैं। मिलिन्द जी अनुभूति प्रधान प्रतिभाशाली कवि और कुशल नाटककार हैं। आपके आठ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं—१ जीवन संगीत २ नवयुगके गान, ३ बलिपथके गीत ४ भूमिकी अनुभूति अित्यादि काव्य संग्रह तथा सामाजिक नाटक समर्पण अैतिहासिक नाटक प्रताप प्रतिज्ञा और 'गौतमानन्द' चिन्तनकण निबंध संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। अिस बार आपको 'भूमिकी अनुभूति' और गौतमानन्द पर तीसरी बार मध्यभारतके साहित्यकारोंमें सर्वश्रेष्ठ स्वीकार किया गया है।

मिलिन्द जीका जन्म कार्तिकी पूर्णिमा संवत १९६४ वि को हुआ मुरार हाओीस्कूलमें प्रारम्भिक तिलक राष्ट्रीय विद्यालय अकोलामें मट्रिक तक तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ पूनामें मट्रिक अुसके बाद साहित्य और समाज विज्ञानकी अुच्च शिक्षा काशी विद्यापीठ बनारसके राष्ट्रीय कालेजमें हुअी। आपको हिन्दी संस्कृत और अंग्रजीके अतिरिक्त मराठी अुर्दू बंगला और गुजराती भाषाका अच्छा ज्ञान है।

'मिलिन्द जीका प्रताप प्रतिज्ञा अमर नाटक है। हिन्दीका प्रत्येक विद्यार्थी अिस कृतिसे भली भाँति परिचित है। पढ़कर या अभिनय किसी न किसी रूपमें अिससे परिचय प्राप्त किया है। अिस नाटकसे ही नाटककारोंकी अुच्चतम पंक्तिमें आपको आसन मिल गया था। तदुपरान्त विचार और कला दोनोंहीका पर्याप्त विकास हुआ है। 'समर्पण' का ओज और भाषा सौष्ठव दर्शनीय है। नवीनतम नाटक गौतमानन्द बहुत हृदयस्पर्शी है। अभिनयकी दृष्टिसे भी अुत्कृष्ट है। प्रगतिशीलता अेवं कलात्मकता दोनोंका पूर्ण सामंजस्य अिस नाटकमें हो गया है।

काव्यके क्षेत्रमें मिलिन्द जीका स्थान सर्वश्रेष्ठ है। 'अुनकी कविताकी वेदना और भावना केवल मनको छूनेती नहीं, अुसमें अेक आलोड़न भी अुत्पन्न करती है। अुनमें आजका वह स्वर और चिन्तन भी है जिसमें अेक श्रेष्ठ सुखी और समृद्ध मानव समाजकी आशा है, अेक सन्देश साधनाकी छाप और मानवीय वेदनाकी अेक कसक है। मध्यभारत शासनके शिक्षा विभाग द्वारा नियुक्त साहित्य मनीषियोंकी समितिने आपके काव्य संग्रह बलिपथके गीत को १०००) रु के प्रथम पुरस्कारके योग्य ठहराया था। अुत्तर प्रदेशने आपके

"समर्पण" तथा 'बलिपथके गीत"पर ८००) रु का पुरस्कार मिला था, जो मध्यभारतके साहित्यकारोंमें सर्वाधिक था। "भूमिकी अनुभूति" और "गौतमानन्द" पर सन् १९५३ में ७००)का प्रथम पुरस्कार आपको प्राप्त हुआ है। मिलिन्दजीको हार्दिक बधाओ।

श्री हरिकृष्ण "प्रेमी"

कवि अेव नाटयकार "प्रेमी" जीने काव्य तथा नाटक दोनों ही क्षेत्रोंमें अच्छी ही ख्याति अर्जित की है। काव्य-क्षेत्रमें आपकी "आँखोंमें", "जादूगरनी", "अनन्तके पथपर" "रूप-दर्शन", "वन्दनाके बोल" अित्यादि काव्य-संग्रह प्रकाशित होकर सर्वत्र प्रशंसित हुअे हैं। प्रेमीजीकी कवितामें विभिन्न धाराअें हैं—१ राष्ट्रीय क्रान्ति, २ गांधीवादी दर्शन, ३ वेदना मिश्रित प्रेम संगीत, ४ आध्यात्मिक आदर्शवाद। रोमांटिक कविताओंमें आपकी "आँखोंमें", "जादूगरनी" और "रूपदर्शन" बहुत मर्मस्पर्शी हैं। "अनन्तके पथपर" दार्शनिक विचार प्रधान खण्डकाव्य है। अिसमें प्रेमीजीने आत्माको अेक स्त्रीका रूप दिया है, जो अपने प्रियतमको नहीं जानती, अुसके हृदयमें प्रेमकी वेदना अुत्पन्न होती है, वह परमेश्वरको ढूँढती है, पर सर्वत्र भटकनेके अुपरान्त वह अुसे अपने हृदयमें ही मिलता है। अद्वैतके सिद्धान्तपर अिसकी समाप्ति होती है। "प्रतिमा" और "अग्निगान" आपके फुटकर काव्य-संग्रह हैं। "प्रतिमा" में प्रेमजन्य अनुभूतियाँ हैं। 'रूपदर्शन" में सौंदर्य, प्रेम, और यौवनके विविध चित्र खींचे गये हैं। हिन्दीके गीत और अुर्दूके गजल दोनोंको सम्मिश्रित कर "प्रेमी" जीने अेक नयी चीज हिन्दीको दी है।

नाटकोंके क्षेत्रमें 'प्रेमी' जीके १—"विषपान" २—"रक्षाबन्धन", ३—'शिवासाधना", ४—"प्रतिशोध" ५—"आहुति", ६—'स्वप्नभंग", ७—'मित्र',८—"अुद्धार", ९—'शपथ' अित्यादि अुत्कृष्ट नाटक प्रकाशित हो चुके हैं। ये अैतिहासिक,राष्ट्रीय और सामाजिक तीनों प्रकारके हैं। 'विषपान" में सामन्तवादकी त्रुटियाँ, स्वार्थान्धता तथा अेकताके नष्ट होनेसे अुत्पन्न कमजोरियोंका चित्रण है, तो 'रक्षाबन्धन में हिन्दू-मुस्लिम अेकता, व्यक्तिगत स्वार्थोंके अूपर अुठकर देश और राष्ट्रके हितके लिअे स्वार्थत्याग करनेका चित्रण हुआ है। "शिवासाधना" में शिवाजीकी राष्ट्र-भावनाका चित्रण है। "प्रतिशोध" में छत्रसालका राष्ट्रवाद, 'आहुति" में धार्मिक अेकता, "स्वप्नभंग" में आदर्श पुरुषके रूपमें दाराका चित्रण हुआ है। 'मित्र" में मित्रका आदर्श अुपस्थित हुआ है। "अुद्धार" में राष्ट्रीय विचारधाराकी अभिव्यंजना है। "शपथ" में प्रजातन्त्रके पक्ष तथा राजतन्त्रके विरुद्ध बड़ा सुंदर विवेचन हुआ है। अभिनयकी दृष्टिसे ये नाटक सफल रहे हैं।

'प्रेमी" जी मध्यभारतके पुराने साहित्यकार हैं। सम्पादनके क्षेत्रमें भी आपकी सेवाअें श्लाघनीय हैं। "त्यागभूमि" का १९२७ से ३० तक, 'कर्मवीर" का १९३०–३१ तक, "भारती लाहौर" का १९३२ से १९३३ तक और "रेखा" का १९३५–३७ तक सम्पादन किया है। "रूपदर्शन" पर यू पी से पुरस्कार मिला था। अब "वन्दनाके बोल", "बादलोंके पार" (अेकांकी) तथा "शपथ" नाटकपर ५५०) रु० का पुरस्कार आपको प्रदान किया गया है। "प्रेमी" जीकी जीवन भरकी साहित्य साधनाको देखते हुअे यह राशि स्वल्प है।

डॉ. दुर्गाशंकरजी नागर

योग, आध्यात्म तथा मनोविज्ञानके क्षेत्रोंमें कार्य करनेवाले सुप्रसिध्द आध्यात्म वेत्ता मानस चिकित्सक तथा अुज्जैन-निवासी "कल्पवृक्ष" के सम्पादक स्व० डाक्टर दुर्गाशंकरजी नागर आध्यात्मिक साहित्यके निर्माण तथा क्रियात्मक कार्य कर प्रसिध्दि प्राप्त कर चुके हैं। ३० वर्ष तक आप आध्यात्म विद्याके मासिक-पत्र 'कल्पवृक्ष" का सम्पादन करते रहे। दुर्भाग्यसे नागरजी अब हमारे बीचमें नहीं है, किन्तु अुन्होंने जो रोगोपचार, आध्यात्म जीवनका प्रसार, प्रचार तथा साहित्य सृजन किया है, वह दीर्घकाल तक हमें प्रेरणा प्रदान करता रहेगा। १—"प्राण चिकित्सा', २—'प्रार्थना-कल्पद्रुम", ३—"आध्यात्म शिक्षा-पध्दति", ४—"स्वर्ण-सूत्र", ५—"विशाल जीवन" आदि पुस्तकें नागरजीकी स्थायी कृतियाँ हैं। अिनके अतिरिक्त मानसिक आध्यात्मिक अुन्नतिकी दृष्टिसे किये गये आपके भाषण बड़े ओजस्वी होते थे। नागरजीके सम्पादकीय लेखोंका अेक संग्रह 'विशाल जीवन" नामसे प्रकाशित हुआ है। स्व०

नागरजीको अुनकी पुस्तक स्वण सूत्र पर २५०)६० का पुरस्कार प्राप्त हुआ है। भय चिन्ता क्लेश निरुत्साह आदि मनोविकारोको दूर करने तथा जीवन पथपर अुत्साहसे अग्रसर करनेकी दृष्टिसे यह पुस्तक अमूतपूर्व है। अिसमें सत नागरके विचारोका निचोड़ा गया है।

श्री महेन्द्र भटनागर, अेम. अे

कवि तथा कहानीकार धार निवासी महेन्द्र भटनागर अेम अे काव्य जगतमें अपने प्रगतिशील दृष्टिकोण तथा यथार्थवादी चित्रणकी दृष्टिसे नवयुवक कवियोंकी पीढीमें प्रसिद्धि पा रहे ह। १—तारोके गीत २—टूटती शृखलायें ३—बदलता-युग तीनों काव्य-संग्रह जनवादी प्रगतिशील चेतनाको मुखरित करते ह। शोषक वर्गके प्रति अुनके हृदयमे घृणा है। शोषित समाज तथा पूजीवादी वर्गके मध्यके अन्तर सजीव चित्र अुन्होने अुपस्थित किये ह जिनमें शोषणके प्रति घृणा और अेकता अेव साम्यवादके प्रति रुचि स्पष्ट मिलती है। हिंसा अुत्पीडन पददलित श्रमिक कृषक अेव दिकी भावनाअें आपने अूची की ह। आपकी कविताअें मानव मात्रको अेक ही धरातलपर खड़ा करके प्यार करना सिखाती ह। भटनागरजी देशव्यापी राजनैतिक अुथल पुथलसे प्रभावित हुअे विना नहीं रह सके ह और राजनैतिक घटनाओंपर भी आपने पर्याप्त लिखा है।

बदलता युग मे भटनागरजीने भारतीय जीवन समाज और मानवमे युग परिवर्तनके कारण आनेवाले परिवर्तनोको अेक जागरूक द्रष्टाके रूपमें देखा है। जिस सक्रान्तिकालमें अिन भावनाओंको मूर्त किया गया है अुसकी महत्वपूर्ण घटनाओंका क्रमिक सक्षिप्त अितिहास भी अुपलब्ध हो जाता है। यह वह साहित्य है जो व्यक्तिको जीर्ण संस्कारो और राष्ट्रको अेव दासत्व मुक्त देखना चाहता है। देशकी राजनीति अेव समाजमें जो परिवर्तन हुअे ह अुनका प्रतिबिम्ब अिन कविताओंपर स्पष्ट है। अिसमें काव्यके नवीन प्रयोग भी ह जो हृदयकी रागात्मक प्रवृत्तिसे परिपूर्ण ह। जनवादी विचारधाराको स्पष्ट करनेके लिअे कविने नवीन प्रतीक, अभिव्यजनायें छन्द और अलकारोका प्रचुर प्रयोग किया है। टूटती शृखलाअें में प्रयोगवादी ढगकी भी कुछ कविताअें ह।

श्री भटनागरजीको अुनकी लड़खड़ाते कदम पुस्तकपर पुरस्कार घोषित हुआ है। अिसमें अुनकी यथार्थवादी कहानियोंका संग्रह है। विचारोंमें अुग्रता और क्रान्तिका स्वर अिनमें प्रकट हो गया है।

श्री विश्वामित्र वर्मा

अुज्जनके श्री विश्वामित्र वर्माकी कअी पुस्तके प्रकाशित हो चुकी ह। १—प्राकृतिक चिकित्सा विधान २—प्राकृतिक स्वास्थ्य साधन ३—जीवनके दिव्य साधन ४—दिव्य सम्पत्ति आदि विशेष सुन्दर बन पड़ी ह। वर्माजी मननशील विद्वान ह। योग आध्यात्म तथा व्यवहारिक मनोविज्ञानके अभ्यासी ह। आजकल आप कल्याणके मासिकके सहायक सम्पादकके रूपमे भी कार्य कर रहे ह। वर्माजीका सम्पूर्ण साहित्य दो भागोमे विभाजित किया जा सकता है १—स्वास्थ्य तथा प्राकृतिक जीवन सम्बन्धी साहित्य — अिस वर्गमे वर्माजी प्रान्तमे सर्वश्रेष्ठ विचारक माने गये ह और आपकी यौगिक स्वास्थ्य साधन पुस्तकपर पुरस्कार घोषित किया गया है। दूसरे वर्गमें वर्माजीकी आध्यात्म मनोविज्ञान दिग्दर्शन सम्बन्धी दर्शन ग्रंथ ह। यह बड़ा ठोस और प्रेरणात्मक साहित्य है। जिस वर्गमे १—जीवनके दिव्य साधन २—तथा दिव्य सम्पत्ति पुस्तके दुखो थके अुलझनमे फँसे भ्रान्तनिराश व्यक्तियोंके लिअे जादू जैसा प्रभाव डालती ह। वर्माजीकी दिव्य सम्पत्ति पुस्तक भी पुरस्कृत करने योग्य है। अिसका जितना प्रचार हो थोड़ा है। अिस प्रथका सृजनकर वर्माजी अमर हो गये ह।

अिन विद्वानोके अतिरिक्त मध्यभारत प्रान्तके अन्य विद्वानोको जिस प्रकार पुरस्कार प्राप्त हुअे ह — श्री नटवरलाल स्नेहीको नागरण और गांधी मानस पर ३५० रु आनन्द मिश्र ग्वालियर को साधना पर २५० रु श्री नरहरराव जोशीको फसलके शत्रु' पर २०० रु श्री श्यामसुन्दर व्यासको गिलदके झुमके पर २०० रु श्री कमलाकान्त पाठकको आधुनिक हिन्दी काव्य पर २०० रु श्री विष्णुप्रसाद व्यासको आत्म निर्माण पर १०१ रु श्री स्वरूपकुमार गाधयको रोटियों और नगोंका जुलूस पर १०१ रु श्रीरामचन्द्र श्रीवास्तवको काव्यकी परिभाषा पर १०१ रु तथा श्री जानकीप्रसाद पुरोहितको दामनगीर पर १०१ रु के पुरस्कार प्राप्त हुअे ह। ■ सभी साहित्यसाधक बधाओके पात्र ह।

विचित्र बीन

: श्री "अनाम" :

अेक समयकी बात है। भगवान चिंतामें डूबे थे। मारे चिंताके अुन्हे नीद नही आती थी। रातों जागते, पर सोच न पाते क्या करे। निदान अुदास रहने लगे।

"लुप्लुप" तारे चमकते, चांद हंसता रहता पर भगवानका दुख न भूलता। पृथ्वीपरसे दुख-दर्दकी कराहे अुठा करती और भगवानके कानोंसे टकरातीं। पृथ्वीपर हरअेक दूसरेसे लडता। झगडेका शोर अुठता। वह दूर-दूर तक फैल जाता।

झगडा क्यो होता ? अुसका अितना शोर क्यो होता ? अुस शोरगुलमे भगवान अुदास क्यो होते ? भगवान भी न समझ पाते। फिर झगडा होता क्यो ? क्या बिना कारण झगडा होता था।

बात ही कुछ अैसी थी।

कुत्तेने बिल्लीका पीछा किया। बिल्ली पेडपर चढ़ गयी। कुत्तेने सौगन्ध ली। बिल्लीको पेड़से कभी न अुतरने दूंगा। कुछ देर बाद बिल्लीको भूख लगी। बिल्ली गुर्राने लगी। पर कुत्ता टस-से-मस न हुआ। कुत्तेका पेट भरा था। वह बिल्लीकी भूख क्या जाने ?

रीछने पहाड़परसे चट्टान लुढका दी। लुढकते-लुढकते चट्टान घाटीमें आ गिरी। हिरनका बच्चा चट्टानके नीचे दब गया। रीछने अैसा क्यो किया ?

कबूतरने घोसला बनानेके लिअे तिनके जमा किये। अुनको गीध ले भागा। कबूतर चिल्लाता रह गया।

केवारने अपनी शाखें नालेके आरपार पसार दीं। शाखें फैलकर जाल बन गयी। जालमें नालेकी सब मछलियां फंस गयी।

केंचुअेने जमीनसे अूपर सिर निकाल लिया। वह अपने सीधेपनके लिअे बदनाम था। बदनामी अुसे अच्छी न लगी। अुसने गिरगिटको ललकारा। मेरे साथ दौड सकेगा ? होड लग गयी। हार गये तो गिर-गिट दुश्मन हो गया ! वाह-वाह !!

चूहे-चिडियाँ, मगर-मछली, पेड-पहाडके, घास-पात सब अेक दूसरेके दुश्मन ! अेक दूसरेसे लड़ा करते। जमीनके अन्दर और जमीनके अूपर रहनेवाले सारे जीव-जन्तु झगडा करते। आदमी भी था और वही सबमे ज्यादा हो-हल्ला मचाया करता। झगडा-फसाद खडा करता। मार-पीट करता। अैसी सफाअीसे अपने ही भाअियोकी हत्या करता— देखते-देखते बहुतोंका सफाया हो जाता। लाशोंके अंबार लग जाते।

अैसी हालतमें भगवानको नींद न आती तो और क्या होता ? अुसीने सारी दुनिया बनायी। तमाम जीवधारी बनाये। बेजान चीजें बनायीं पर आज वे सब तो अेक दूसरेका नाश करनेपर तुले है।

"मैं क्या करूं ?" भगवान बार-बार सोचते; पर कुछ निश्चय न कर पाते। अन्तमें हवाको बुला भेजा। हवा दुनियाके हर कोनेमें जा सकती है। अुसे हर जगहकी खबर रहती है। हवाके झोंकेके झोंके आ गये। अुत्तरी हवा, दक्षिणी हवा, पूर्वी हवा, पश्चिमी हवा।

भगवानने कहा— दुनियामें घनघोर अशांति है। बडा हाहाकार मचा है। अिसे कैसे रोकूं ? मैंने सबको खानेकी चीजें दी। पीनेको पानी दिया। गरमीके लिअे सूरज दिया। रोशनी और खुशीके लिअे चांद दिया। सबको साथी दिये ताकि कोअी अकेला न रह जाअे। प्रेमसे रहनेके बदले वे लडते हैं। बताओ क्या करूं ?

हवा चुपचाप सुनती रही। आपसमें धीरे-धीरे अुसने सलाह की। फिर भगवानके कानमें कुछ कहकर जाने लगी।

भगवानने खुश होकर अुसको धन्यवाद दिया। फिर दुनियावालोंको तुरन्त अेक सन्देश भेजा। सब

गोवरधन पहाडपर जमा हो। हरअेक अपनी बढियासे बढ़िया भेंट लेकर आये।

दुनियाके कोने-कोनेसे तमाम जीवधारी और बेजान चीजें पहाडपर अिकट्ठी हुआी। पर आदमी न आया। अुसे बुलाया ही नहीं था तो कैसे आता? पहाडपर बड़ा गुल-गपाड़ा मच गया। किसीको ख्याल ही न रहा कि वे भगवानके मेहमान बनकर आये हैं। सब चिल्ला रहे थे रास्ता छोडो "हमें यहाँ क्यों बुलाया गया" सब जुडनेवाले अेक-दूसरेको धक्का देने रहे।

अितनेमें भगवानकी वाणी अुनके कानोंमें पडी और सब शांत हो गये। चारों ओर सन्नाटा छा गया। भगवान कह रहे थे—

"मैंने तुम सबको यहाँ क्यों बुलाया? तुम सुखसे रह सको अिसका अुपाय बतानेके लिअे। मैंने तुम्हें प्रेमसे जीवन बितानेके लिअे मित्र दिये, अनाज, पानी और वस्त्र दिये। जो तुमने चाहा सब तुम्हें मिला। पर सोचो क्या तुम सुखी हो। क्या तुम्हारा जीवन प्रेमसे बीत रहा है? मैं जानता हूँ। तुम आपसमें लडते हो। अेक दूसरेको नापसन्द करते हो। घृणा करते हो। अिसका मुझे बड़ा दुख है। मैं बेचैन हूँ। हैरान हूँ। परेशान हूँ।

सब खडे रहे। चुपचाप सुनते रहे। बहुतोंके सिर शर्मसे झुक गये। अुस सन्नाटेमें सबने सुना—पेडोंसे झरकर कोमल धरतीमें पानीकी बूँदें समाती आ रही थी—टप् टप् टप्।

चुपचाप-अेकके बाद अेक-सबने अपनी भेंट भगवानके चरणोंमें रख दी।

कुत्तेने पंजा दिया। गीधने पख, बरगदने शाखोंका गट्ठर। गिलहरीने सफेद धब्बोंवाली पूँछ। अिसी तरह सबने कुछ-न-कुछ भेंट दी। जब यह काम पूरा हो चुका तो भगवान बोले—"अब मैं तुम्हें अपनी भेंट दूँगा" और अैसा कहकर ढेरपरसे अेक तूम्बी अुठा ली, अुसमें मधुमक्खीके मोमसे अेक टहनी लगा दी। गीधका पख जोड दिया। बैलके चमडेका ताँत लगा दिया। जितनी चीजें अुपहारमें मिली सबको जोड जोड़कर अेक विचित्र बीन बना डाली। बीनको अिन्द्र धनुषके रंगोंसे रंग दिया।

फिर—?

भगवानने बीनको छू दिया। बीन झनझना अुठी। भगवानने अुसे बजाया। भगवानकी आज्ञा हुआी। बारी बारीसे सबने शान्तिका गीत बजाया। गीत गूँजने लगा। गीतके प्रभावमें सब अपना वैर-विरोध भूल गये। बीन बजती रही। गीत गूँजता रहा।

सब हाथोंमें घूमकर बीन फिर भगवानके हाथोंमें आयी। भगवानने कहा, यह शान्तिकी बीन है। अिसे सबकी मददसे बनाया है। ये तुम्हारे मेल जोलका असर है।

अब तुम सब कोशिश करो कि तुम्हारे वैर-विरोधकी आवाज अिस विचित्र बीनके शान्तिके गीतमें डूब जाअे।

सब चुपचाप सुनते रहे। पर तोतेसे न रहा गया। बोल ही अुठा। सबसे झगडालू तो आदमी है। हम तो फिर भी लडझगडकर अेक हो जाते हैं। आदमी तो हमेशा लडता झगडता रहता है। लडना ही अुसका काम हो गया है ..

तोतेकी बात बढती जा रही थी। अुसे आगेसे बाहर देखकर भगवानने हाथ अुठाया। शांत होनेका अिशारा किया।

फिर बोले—

मैं जानता हूँ। आदमी अिसी कारण यहाँ नहीं बुलाया गया। शायद तुम अुसे सही रास्ता बता सको। पृथ्वीपर जाकर मैंने जैसा बताया वैसा करो। शायद वह तुमसे सबक ले सके।

सबने भगवानकी बात ध्यानसे सुनी। अुसका ठीक-ठीक मतलब समझ पाये। भगवानकी आज्ञा पाकर सब अपने-अपने स्थानको लौट पडे। लडते-झगडते आये थे। गाते बजाते लौटे। देखना है जानवरोंसे आदमी क्या सीखता है।

महिरावण

: श्री 'श्रीरंग' :

[लेखक "श्रीरंग" यह श्रेष्ठ कन्नड नाटककार श्री आद्य रंगाचार्यका आधुनिक साहित्यिक अुपनाम है। आप लंदन विश्वविद्यालयके अेम्० अे० हैं। १८ वर्षतक धारवाडके कर्नाटक कालेजमें संस्कृतके प्राध्यापक रहे। आपने कन्नड साहित्यकी साधनाके क्षेत्रमें अेकांकी नाटक-लेखक और समालोचकके रूपमें पदार्पण किया। सामाजिक कुरीतियोंपर व्यंग करनेमें आपकी समता करनेवाले कर्नाटकमें गिने गिने ही हैं। फबतियां कसनेमें बेमुरव्वती होती है, पर औचित्यका भंग नहीं होने पाता। तीखे व्यंगोंमें समाजके लिअे मार्गदर्शनकी ओर संकेत भी रहता है अिसलिअे आपकी रचनाअें लोक प्रिय हुअी हैं। आपने कन्नड अुपन्यास क्षेत्रमें भी अपना हाथ बढाया है। आपने केवल अेकांकी नाटक ही नहीं लिखे हैं; बल्कि बड़े नाटक तीन अंकोंके नाटक भी लिखे हैं। आपके नाटकोंमें हरिजनवार, संध्याकाल, प्रपंच पाणिपत, जरासंधि, नरकमें नरसिंह आदि प्रसिद्ध नाटक हैं, तो अुपन्यासोंमें विश्वामित्रकी सृष्टि, पुरुषार्थ, कुमारसंभव, अनादि, अनंत आदि अुपन्यास भी मशहूर हैं। अिसके अलावा आपका गीता-गांभीर्य भगवद्गीतापर आलोचनात्मक ग्रंथ पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुका है। भाषाशास्त्रपर भी आपने लिखा है। आपकी प्रतिभा बहुमुखी है। आप कभी साहित्यिक संस्थाओं और सभा-सम्मेलनोंके अध्यक्ष भी रह चुके हैं। अच्छे वक्ता अेवं अभिनेता भी हैं। धारवाड़में अपनी पंचवटीमें निवास करते हुअे केवल साहित्य-सेवीका जीवन बिता रहे हैं। आधुनिक कर्नाटक-युवकोंके बड़े प्यारे हैं।

भारतीय साहित्यका प्रतिनिधित्व करनेवाली 'राष्ट्रभारती' के अिस अंकमें जो महिरावण अेकांकी प्रस्तुत किया जा रहा है वह व्यंग शैलीमें राजनैतिक चुनाव-क्षेत्रकी झांकी करानेवाला है। अुसके पात्रके नामोंमें भी कुछ अर्थ है। सरळण्ण—सरलभाअी, चतुरप्प—चतुरजी, गुबज्ज छिपे रुस्तम या गुप्तदादा, हुबप्प—बुद्धूलाल है। पात्रोंके नाम भी अुनके गुण-दोषोंके परिचायक हैं जो अिस 'अेकांकी' के पठनसे विदित हो जाअेंगे :

श्रीरंगजीने अपनी आत्मकहानी भी बिलकुल संक्षेपमें लिखी है। अुसे हम तैयार करवा रहे हैं। वह भी 'राष्ट्रभारती' के किसी आगामी अंकमें पाठकोंको भेंट की जायेगी।—संपादक]

(सरळण्णके घरकी अटारीपरके कमरेका अन्तःकक्ष (प्रेक्षकोंके) बायीं ओरकी दीवारकी दो खिड़कियोंके बीचमें, दीवारसे लगकर कुर्सी, सामने मेज, अुसपर मतदाताओंकी सूचीके कागज बिखरे पड़े हैं। सामनेकी दीवारके बीचमें नीचेसे अूपरकी ओर जानेका दरवाजा; सामने जंगला दिखता है। (प्रेक्षकोंके) दाहिनी ओरकी दीवारसे कुछ दूरपर तीन-कुर्सियां हैं। मेज और दरवाजेके मध्यके कोनेपर अेक-सा टेबल है, अुसपर भी मतदाताओंकी सूचीके कागजात करीनेसे रखे हुअे हैं। टेबलोंके पल्लोंपर छोटे छोटे कागजके टुकड़े चिपकाये गये हैं जिनपर लिखा हुआ है—पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, अुत्तर। कुर्सीके दाहिनी ओर—रंगमंचके सामनेकी ओर—घरमेंसे अटारीपर आनेका मार्ग है। अिस मार्ग और कुर्सीके बीचके कोनेमें दीवारसे लगकर टेलिफोन रखा हुआ है। समय सुबहके नौ बजे हैं। परदा अुठता है। सरळण्ण अकेला रंगमंचपर है। अुसको देखनेसे अैसा लगता है कि मानो वह अभी कुर्सीपरसे अुठ खड़ा हुआ है। मुंहपर व्यग्रता है। कलाअीकी घड़ीकी ओर बार बार देखता है। दाहिनी ओर मुंह करके अैसा अभिनय करता है कि मानों कुछ सुन रहा है। अेक मिनटमें अटारीकी ओर आनेकी सीढ़ियोंके किनारेपर खड़ा होकर नीचे देखते हुअे—

"क्या कहा ? हाँ...जरा ठहरो अभी कोओी आया नहीं है" कहकर फिर कुर्सीकी तरफ बढता है। अपनी घडी देखता है। बाहरसे आवाज सुनायी पडती है, बाहरकी सीढियोंके किनारेतक जाकर, जंगलेपर हाथ रख नीचे देखते हुओे—)

सरळण्णा :—कौन ? ...क्या चाहिओे आपको ? ... सरळण्णाजीका घर ? क्यों ? मैं ही हूँ सकट, क्या कहा ? ...आगे बढकर पूछिओे...हाँ.. वह नीमका पेड दीखता है न (घूमकर भीतर कदम रखते हुओे बाहर-वालोंके लिओे कुछ अूँची आवाजसे) हाँ, हाँ...(भीतर आते हुओे अुसास छोडकर मुस्कराहटको लिये खिले मुँहसे) 'चुनावके लिओे खडे हुओे सरळण्णा' वाह ! चुनावके लिओे खडा होना मानो माथेपर पडी निशानीकी तरह पीठपरकी प्रथिकी तरह पहचाननेका चिन्ह जैसा हुआ है ! हूँ। (मेजके पास आकर, अभीतक किसीके न आनेके कारण तनिक निराश सा या अूबा-सा भाव प्रकट करनेकी मुख मुद्रासे) खैर किसीके आ जानेतक अिसे जरा जोरसे पढ तो लें (कहकर मेजपरसे कागज अुठाके अैनक नाकपर चढाकर अपने आप जोरसे पढने लगता है।) "आपका देश आजाद, आप भी आजाद हैं, आपके अुम्मीदवार भी आजाद हैं। अगर ये तीनों आजाद अेक तरफ मिल जाअें, तो तीनसे मुक्ति या तीन तेरह जैसे कहते हैं न वैसे, गरीबी और अकालसे आपको मुक्ति जरूर मिलेगी। मैं भी नागरिक हूँ, आप भी नागरिक हैं, तो आपमें और हममें क्या फर्क है ? कुछ भी नहीं, कहा कि कुछ भी नहीं है।" (अचानक रुककर, घरके भीतर जानेकी ओरकी सीढियोंकी तरफ देखकर) क्या कहा ? कुछ नहीं-कहा ? क्या ? कौन हैं पूछती हो ? कोओी नहीं है-कह तो दिया। (पर, अिसके पढने लगते ही, ठीक अुसी समय, अेक व्यक्ति बाहरकी सीढियाँ चढकर द्वार-पर आ खडा होता है। अुस ओर पीठ होनेके कारण सरळण्णाको दीख नहीं पडा था। जब सरळण्णाने कहा था 'कोओी नहीं है कह तो दिया' तब अुस व्यक्तिका बन्द मुँह मुस्कुराहटसे खिलता है।) (खीजे हुओे स्वरसे) क्या है यह ? कोओी नहीं हो तो क्या बोलना न चाहिओे ? क्यों ? क्या कहती हो कि मेरी पहचान मुझे ही नहीं है, जब अकेला रहूँ तब चुप रहूँ ! (दरवाजेके पासका व्यक्ति जब हँसा तो तुरन्त घूमकर) कौन ? (हँसते हुओे) अरी—तुम हो ? (अन्दरकी सीढियोंके पास आकर) अरी, छोड दो, या ही दिल्लगीके लिओे कहा। क्या मुझपर सनक सवार हुअी है—अपने आप बातचीत करनेके लिओे ? चतुरप्पा है, यहाँ वह और मैं दोनों बात कर रहे हैं। क्या कहा ? न-न नहीं चाहिओे, कह तो दिया कि नहीं चाहिओे (कहते हुओे मेजके पास आकर, दायाँ हाथ अुसपर रख चतुरप्पाको देखता है।)

चतुरप्पा :—(हँसते हुओे) कुछ नहीं चाहिओे कहा न तुमने ? (कहते हुओे अन्दर आता है।)

सरळण्णा —'चतुरप्पा आया है' कहते ही पूछा कि चाय बनाअू ? मैंने कहा—नहीं चाहिओे।

चतुरप्पा :—(अेक कुर्सी अुठाकर मेजके पास रखते हुओे) नहीं चाहिओे कहा ! बनानेवाली जब कहती है कि बनाअूँ तो तुमने क्यों कहा कि नहीं चाहिओे ?

सरळण्णा —यह मेरा तत्त्व है, सिद्धान्त है। क्या यह तुम नहीं जानते ?

चतुरप्पा —(बैठकर, सहसा चकित हो अुसकी ओर देखते हुओे) तत्त्व ? सिद्धान्त ? यानी कल जो तुमने कहा अुसे दिल्लगीसे नहीं कहा, क्या तुम कहते हो कि तुमने कल तत्त्व ही मानकर कहा ?

सरळण्णा —(बायाँ पैर नीचे रख, मेजपर बैठकर) हाँ, चतुरप्पा, मेरा स्वभाव जानते हुओे भी पूछते हो ? क्या तुम अैसा समझते हो कि तुमको चाय देना बंद करवानेके लिओे अैसा किया है मैंने ?

चतुरप्पा —(बडप्पनके स्वरमें) पागलोंकी तरह मत बोलो। क्या मैंने वैसा कहा ? कल तुमने मुझे भी चाय न दूँगा, कहा। मैंने अुसे दिल्लगी समझा।

सरळण्णा —तुमको भी, कहा तो क्या ? किसीको चाय दी तो दी के समान ही हुआ न ?

चतुरप्पा —भाअी सरळण्णा, सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्रपर सन्निपात* के चढनेकी भाँति तुमपर भी अुसने चढना शुरू कर दिया ! जैसे मतदाताओंको मोटर नहीं देनी चाहिअे, वाहन नहीं देना चाहिअे, रिश्वत नहीं देनी चाहिअे, कह दिया तो तुम कहने हो कि घरपर आनेवालोंको चाय भी नहीं देनी चाहिअे।

सरळण्णा —याने ? रिश्वत माने क्या ? सिर्फ नकद रुपया ही रिश्वत नहीं है, केवल अपने मनसे, मुझे अच्छा मानकर अुनको मुझे अपना मत देना चाहिअे, अुसके लिअे सूद लानेवाली कोअी भी बात हो तो वह रिश्वत है। अभी देखो न ? तुम तो मेरे मित्र हो। अिस चुनावमें मेरे लिअे दौड़-धूप करते हो। मान लो कि मैंने तुम्हें घरमें चाय-नाश्ता दिया। कल चुनावके दिन तुम विचार करते हो "सरळण्णा मेरा मित्र है, अिसलिअे मैंने अुसके लिअे दौड़-धूप की। भले आदमीने रोज चाय-नाश्ता दिया। अिसलिअे मैंने अुसीको वोट देना अुचित समझा"...अैसे प्रसंगमें, मौकेपर तुम क्या कहते हो ?

चतुरप्पा —(माथा ठोककर) कहता हूँ—कठिन है, कठिन ! अरे, तुमने यह समझा है कि मैं तुम्हारे लिअे यों ही दौड़ धूप करता हूँ तुमको वोट नहीं दूँगा, अगर तुमने चाय-नाश्ता दिया तो अुसके वास्ते तुमको वोट दूँगा ?

सरळण्णा :—क्यों न समझूँ ?

चतुरप्पा —मैं तुम्हारा दोस्त हूँ ! चुनावमें तुम्हारा Agent (अेजंट) मैं हूँ। मुझपर विश्वास नहीं है ?

सरळण्णा —विश्वास तो पूरा है। यह तो तुम भी जानते हो कि मेरा विश्वास तुमपर पूरा-पूरा है।

चतुरप्पा :—तो फिर—?

सरळण्णा —अिसीलिअे दूसरोंको अपना मत देना बिल्कुल आसान है।

चतुरप्पा —(झटपट अुठकर) क्या कहा ?

* सन् (सन्दका)-निपात।

सरळण्णा —(आगे आकर) बैठो जी, बैठो। अनुभवमें मैं यह बात कह रहा हूँ। 'मुझपर जितना विश्वास है जिसका, मैं किसीको वोट दूँ तो वह बुद्धू समझता है कि मैंने अुसीको वोट दिया" मनमें यों समझकर किसीको वोट देना आसान है कि नहीं ? ठहरो तुमको जो योग्य जँचे अुन्हींको तुम वोट दोगे तो मुझे आनंद होगा। अिसलिअे मैं कहता हूँ, बीचमें अिन चाय-नाश्तेका दाक्षिण्य नहीं चाहिअे। तत्त्व माने तत्त्व, दोस्त !

चतुरप्पा —(घृणाके स्वरमें) भाड़में जाअे तुम्हारा तत्त्व ! कल चुनावके दिन तुम्हारे पड़ोसीके घर कोअी मर जाअे तो तत्त्व कहकर, तुम मालूम होता है कि कन्धा नहीं दोगे। (अुठते हुअे) जाने दो, तुम्हारा तत्त्व तुम्हारे लिअे रहे। चुनावकी नाकमें अपने तत्त्वकी सलाअी न घुसेड़ देना।...हाँ...जब मैं आया था तब कुछ पढ़ते थे न ? वह क्या है ?

सरळण्णा :—वह तो अभी कच्ची प्रति है। तुमने कहा था न कि वोटरोंको अेक विनती-पत्र जहाँ-तक हो सके शीघ्र भेजना चाहिअे !

चतुरप्पा :—ठीक है तो। वह सब शीघ्रसे शीघ्र समाप्त कर लेना चाहिअे। पर अभीतक गुरुज्जा और हुच्चय्या अिनमेंसे कोअी नहीं आया ? (द्वारकी ओर जाता है। अेक-दो मिनट बाहर देख, अंदर आते वक्त फ़ैल्सोंकी ओर ध्यान जाता है। झट जिसपर 'दक्षिण' लिखा हुआ है अुस फ़ैलपर रखे हुअे कागज़-पत्र अुठाकर अचरज भरी मुद्रामें अपना मुँह सरळण्णाकी ओर घुमाता है।)

सरळण्णा —मैंने ही वह सब देख रखा है। अिधर अुधरके, दूसरोंमेंके मिले हुअे थे—

चतुरप्पा —कौनसे मिले थे ? अेक-अेक दिशाके अनुसार मतदाताओंके नाम अेकत्र कर रखे थे, यहाँ अितने कम कैसे हुअे ?

सरळण्णा —अुसमें कुछ नाम दक्षिणके नहीं थे—

चतुरप्पा :—(बीचमें ही) अजी, महाशय, यह सब व्यवस्था हमारे जिम्मे छोड़ दो, कहा था न ? कुल,

अेक बार सबसे मिलकर आना तुम्हारा काम.. (कागज अुठाकर देखते हुअे) मैंने सब लगाके रखा था—(बड़बड़ाता है)।

सरळण्णा —(हठसे) अुसमें कभी दक्षिणके नहीं थे, कहा था न मैंने, चतुरप्पा—

चतुरप्पा —(खीजकर) तुमसे किसने कहा? वे सब दक्षिणाके ही थे। (बड़बड़ाते हुअे) सभी कमरमें खड़ानेवाले ही हैं!

सरळण्णा :—(बिना समझे) कमरमें?

चतुरप्पा —(झटसे) वह तो हमारा दिल्लगीका शब्द है। नीचेकी दिशा दक्षिणादिक नीचे कमरकी ओर रहती है—

सरळण्णा —(अूपरकी तरफ) दक्षिणा? दक्षिणा क्यों कहते हो?

चतुरप्पा —(नाराज होकर) क्यों? यह संस्कृत शब्द है। संस्कृतमें 'दक्षिणा दिक्' कहते हैं। वही मुँहमें बैठा है।

सरळण्णा —हाँ—(झट अंदरकी सीढ़ियोंकी ओर) आया! (चतुरप्पासे) अच्छा—तो तुम्ही देख लो, मैं तो हाथ नहीं लगाअूँगा ··· अभी आया (नीचे अुतरनेके लिअे चलता है।)

चतुरप्पा —क्यों? कहाँ चले?

सरळण्णा —चाय पीकर आता हूँ।

चतुरप्पा —हाँ, जरा ठहरो। (सरळण्णा रुक जाता है) यह देखो, क्या है। (जेबमेंसे सिक्का निकालकर दिखाता है।)

सरळण्णा —(अचरजसे) क्या है? अेक आना है।

चतुरप्पा —ठीक है न? अिसे लो। यह मेरा है—यानी मेरा बनाया हुआ नहीं है, मेरा कमाया हुआ है। अिसे लेकर नीचे जाओ, मेरे लिअे भी अेक कप चाय लेते आना।

सरळण्णा —आँ? (मुँह खोल खड़ा रहता है।)

चतुरप्पा —आँ करके मुँह खोलकर क्या दिखाते हो? वैसे पूछोगे तो—(अुसके स्वरकी नकल करते) आँ—(कहकर मुँह खोलके दिखाकर) देखा तो? मेरी भी जीभ सूखी है···अिसीलिअे अिसे लो। अेक आना रिश्वत मैं देता हूँ, अेक कप चायकी रिश्वत तुम दो—

सरळण्णा —(दंग रहकर) अरे—

चतुरप्पा —अरे क्या? घड़ी घड़ी चायके लिअे बाहर जाअें तो काम कैसे हो? मेरा भी तत्त्व है यह। अेक ही आना समझ अिसे छोटा तत्त्व न समझना—(दे देता है।)

सरळण्णा —(लेकर) चारा ही नहीं है।

चतुरप्पा —चारा नहीं कि शरम नहीं? जाओ जी, जाओ, पहले चाय लाओ। (सरळण्णा अंदरकी सीढ़ियोंतक जाकर कुछ कहनेके अिरादेसे रुक जाता है और अुसे चतुरप्पा आँखें फाड़कर देखता है। तब वह बिना कुछ कहे नीचे अुतर जाता है। चतुरप्पा अुसी तरफ देखता रहता है और अचरज तथा निराशासे युक्त अपना मुँह बनाकर सिर हिलाना ही चाहता है कि सरळण्णा गड़बड़ीसे अूपर आकर—)

सरळण्णा —(अचरजके स्वरमें) चतुरप्पा चतुरप्पा—

चतुरप्पा —(आश्चर्यसे) क्या—अितनेमें—? (सहसा अुसका खाली हाथ देख) चाय कहाँ?

सरळण्णा —लाता हूँ, लाया...तुमसे कुछ कहना था, भूल गया, नीचे जाते ही याद आया, क्या मजाक रहा वह, तुम्हारे आनेके पहले कोअी किसीका घर खोजने आया और कहा "चुनावमें खड़े हुअे—सरळण्णाजीके पास है, कहते हैं'—(हँसते) अजी है न मजाक, दिल्लगी?—चुनावमें खड़े हुअे सरळण्णा"—हाँ—चुनावमें खड़ा होना अेक अद्भुत बात हुअी है—हाँ—"चुनावमें खड़ा हुआ सरळण्णा"—ह ह ह! (जाता है।)

चतुरप्पा :—(अूपरकी तरफ सिर हिलाते हुअे 'हूँ' कहते हुअे अुसाम छोड़नेपर सरळण्णा घूमकर खड़ा हो जाता है। (अुसको देखकर) सच, मजाक, दिल्लगी—

हां ? अच्छी दिल्लगी ! "चुनावमें खड़ा हुआ सरळण्णा"--हां--ह ह ह !

सरळण्णा :--ह ह ह !

दोनों :--ह ह ह ! (जोरसे हँसते हैं। सरळण्णा हँसते, सिर हिलाते अन्दर जाता है।)

चदुरप्पा :--(शेल्फ़ोपरके कागज अपनी अिच्छाके अनुसार अुठाकर रखके) क्या कुछ आवाज सुनायी पड़ती है ? (दरवाजेके पास आकर नीचे देखते हुअे) क्यों रे ? कब आया ? अे हुबय्या, कहता हूँ कि देर हुअी है, फिर भी तू हँसते आता है !

हुंबय्या :--(पहले अूपर आकर नीचे देखते हुअे) मैंने कहा था न गुंबज्जा, कि चदुरप्पा मुझपर ही नाराज होगा ? (चदुरप्पासे) गुंबज्जासे ही पूछो कि क्या हम यों ही वक्त बिता रहे हैं ?

गुबज्जा :--(अूपर आकर) दर्जीकी दूकानपर गये थे, देर हुअी।

चदुरप्पा :--(अंदर आते हुअे) दर्जीकी दूकानमें क्या था ? चुनावमें खड़े होनेवाले तुम अेक हो तो त्योहारके लिअे कपड़ा तुमको ?

हुबय्या :--(गुबज्जासे, दोनो अभी द्वारके बाहर ही हैं, चिढानेवालेकी तरह धीमी-ध्वनिमें) कहें क्या दादा ?

चदुरप्पा :--(मालूम न रहनेसे गुस्सेके साथ) और क्या चलाया है जी ?

गुबज्जा :--(अब अंदर आया है) सुनाते हैं सुनाअेंगे, क्यों जल्दी ?

हुंबय्या :--(स्वयं भीतर आकर) क्या दिखा ही दें? हां? गुबज्जा?

चदुरप्पा :--(हुबय्याको ताकते हुअे) अ र र र! क्या बढ़िया भेष बना लिया है ? सरपर साफा, लंबा लबादा, नीचे--छि छि छि छि !--नीचे पतलून--(झट) अरे ! पैरोंमें चप्पल ही पहना है तो ?

हुबय्या :--हमारा आगामी स्वतंत्र अुम्मीदवार है न ?

चदुरप्पा :--यानी ?

हुंबय्या :--गुबज्जाको देखता है। (वह अिशारेसे 'सब्र करो, ठहरो' सूचित करता है।)

चदुरप्पा :--(झट) ठहरो। हां, ठहरो। (जेबमें हाथ डालकर, बाहर निकालके) अर र !

हुंबय्या :--(अचरजसे) क्या है वह ?

चदुरप्पा :--(भीतरकी सीढ़ियोंकी ओर जाते हुअे) बेचारा ! कैसे पूछा, बिना देखे ना कह दिया मैंने !

हुंबय्या :--(आग्रहसे) वह क्या है ? नीचे घरमें जाने क्यों निकले ?

चदुरप्पा :--देखो, नीचे कुछ जरूरत थी, पूछा सरळण्णाने-अेक फुटकर 'अिकन्नी' है ? 'ना' कह दिया। नीचे अूपर ढूंढने लगा बेचारा ! अब जेबमें हाथ डाला, फुटकर अेक आना मिला ! ठहरो, हां, ठहरो। अभी दे आया ! अभी आया !-- (कहते तेजीसे नीचे अुतर जाता है।)

(दोनो अेक दूसरेका मुंह ताकते हैं। 'नहीं समझा, जाने दो' सूचित करके दोनो चलकर जाते हैं और सोफापर बैठते हैं।)

हुबय्या :--गुंबज्जा, कुल आपको कैसे लगता है ?

गुंबज्जा :--चुनावमें लगना झूठ है और जो होगा वह सच है।

हुबय्या :--अिस चुनावमें कुल परिणाम क्या होगा ? वैसे तो हमारे सरळण्णाकी जितनी अक्लमंदी किसी अुम्मीदवारमें नहीं है- (गुबज्जाकी मुस्कुराहट देख, रोकके) है कि नहीं !

गुंबज्जा :--चुनावमें जरूरत बुद्धिकी अक्लकी नहीं; जरूरत है वोट (Vote)की। (ठीक है गुबज्जा, कहते हुअे चदुरप्पा नीचेसे अूपर आता है।)

चदुरप्पा :--ठीक है गुबज्जा तुम्हारा कहना। हां, अब अुठो, काम शुरू कर दें, हूं !

हुंबय्या :--अर र र ! बड़े सुरा दीख रहे हो जी ?

चदुरप्पा :—हूँ, पकडो यह सोफा (सोफा अुठाकर रगमचके बीचमें रखते), पंद्रह आने लाभ अगर हो जावे तो खुशी हो जानी चाहिअे न ? हाँ, यह अेक कुर्सी भी लो ।)

हुबय्या :—(बिना समझे) पद्रह आने लाभ ?

चदुरप्पा :—अेक आना देनेपर पद्रह आनेकी खुशी हो जाअे तो पद्रह आनेका लाभ हुआ कि नहीं ?

(अितनेमें सोफा और अेक दो कुर्सियाँ रगमचके बीच आमने-सामने रखी गयी । सोफाकी पीठ मेजकी ओर है । मेजपरके कागज सोफापर फेंकते हुअे कहता है 'अेक छोटा स्टूल भी रखो बीचमें' । गुबज्जा स्टूल कुर्सी और सोफाके बीचमें रखकर खुद अेक कुर्सीपर बैठता है । अुसके अुपरात तीनों सोफापर पडे हुअे कागज स्टूलपर रखते हैं । खाली सोफेपर चदुरप्पा बैठकर नीचेकी ओर जानेवाली सीढ़ियाँ अेक बार देखकर—)

चदुरप्पा :— (धीमे स्वरमें) गुबज्जा क्या कहा? (गुबज्जा सिर हिलाता है) क्योंकि यह तो समझता ही नही कि चुनावमें कैसे बरतना चाहिअे, समझनेपर भी मानता नही ।

हुबय्या :— (धीमे स्वरमें) क्यों जी, पैसे खर्च करनेके लिअे तैयार नहीं है ?

चदुरप्पा :— (अूँची स्वरमें) खर्च करनेके लिअे अिनकार तो नही करता वह । पर, अिधर अुधर देना पडता है, अिसकी सिवाअीके लिअे वह नहीं रुकता ।

हुबय्या :— (अधैर्यसे, फिर भी धीमे स्वरमें) तो आगे क्या हाल ? चारा !

चदुरप्पा :— अिसीलिअे मैंने तथा गुबज्जाने अेक तदबीर की । अिससे कह दिया कि मतदाताओंके नामपर अेक प्रार्थना-पत्र लिखो । छपाअीके लिअे दस हजारका बिल बनानेके लिअे छापखानेवालेसे भी कहके रखा है ।.. ठहरोजी ! घबराओ मत ! पैसे हमारे हाथमें आ जानेपर, यह प्रबध करेंगे देखकर कि कहाँ-कहाँ कितना खर्च करनेसे कितने मत (वोट) मिलते हैं । फिर प्रामाणिकतापर अिसके व्याख्यानकी जरूरत ही नही पडेगी ।

गुबज्जा — (हुबय्यासे) देखा कि नहीं ? नेहरूजीने कह दिया है कि हमें अीमानदार लोगोंको ही चुनना चाहिअे और बैठ गये । अब अैसे लोगोंको चुननेकी जिम्मेदारी हमपर पडी ।

('चदुरप्पा गुबज्जा आया है क्या ?'—कहते हुअे सरळण्णा हडबडाहटके साथ अूपर आकर गुबज्जाको ही देखते हुअे समाधानसे—)

सरळण्णा — हाँ, आया है गुबज्जा...सुनोजी, किसने कहा कि मैं कांग्रेस पार्टीमें मिल जाअूँ ?

गुबज्जा — मैंने ही कहा है । क्यों ?

सरळण्णा :— अरे, कैसे आदमी हो जी तुम ! जानबूझकर मैं स्वतत्र अुम्मीदवारके तौरपर खडा हूँ । हमने तुमने मिलकर ही विचार किया है—

गुबज्जा — (बीचमें ही) ना किसने कहा ?

सरळण्णा — फिर तुमने ही—

गुबज्जा — (आगे बोलने न देकर) ठहरोजी सरळण्णा ! मैंने तुमसे कभी बार यह नही कहा कि हम पर विश्वास रखकर तुम चुप बैठ जाओ ?

सरळण्णा — पर, फिर तुम ही 'अब मैं कांग्रेसमें मिल जाता हूँ' कहकर—

गुबज्जा — तुम्हारे लिअे किसने कहा ? (सरळण्णा 'आँ' कहकर मुँह खोलता है ।) क्या तुमने अपने मुहसे कहा है कि कांग्रेसमें मैं मिल जाअूँगा ? (सरळण्णा-नही ।) नही, न ? तो काम समाप्त ! तुम मिल जाओ, या छोड दो । मुझे अैसा लगा कि तुम कांग्रेसमें मिल ही जाओगे—

सरळण्णा —(चकित होकर) तुमको अैसा लगा था ?

गुबज्जा :—(हँसकर) पागल हो तुम ! मैं तुम्हारा दोस्त हूँ कि नही ? अगर मैं कहूँ तो लोगोंको विश्वास होगा कि नही ? अिसलिअे मैंने खबर फैला दी थी कि तुम कांग्रेसमें मिल जाओगे—अैसा मुझे लगा ।

हाँ, ठहरो। क्यों पूछते हो? तुम्हारे जैसे काँग्रेसमें मिल जाते हैं कह तो दूसरी पार्टीके लोग डर जाअँगे, जिसमें शक नहीं है। अुसके बाद और पार्टीवाले भी अपनी पार्टीमें तुम्हें मिलानेके लिअे कोशिश करने तुम्हारे पास आवेंगे।

सरळण्णा —हाँ अितना कष्ट अुठाकर यह झूठा व्यवहार क्यों ?—

चतुरप्पा —कहा था न कि यह तुम्हारी समझमें आनेवाली बात नहीं ? तुमको झूठ तो न बोलना पड़ा ? तुम अपने मार्ग पर चलो, हमें अपनी राह चलने दो न ?

हुबय्या —(सहसा हँसकर) हाँ हाँ ! अब समझमें आया। अिसीलिअे यह झगडा हो रहा है क्या ?

सरळण्णा —(बिना समझे) झगडा ? क्या ? कहाँ ? (कहते हुअे सोफापर बैठता है।)

हुबय्या —अुस बड़ी पार्टीमें। सरळण्णा हमारी तरफ हो जाअे तो, जो चुना गया है अुससे शायद कहा गया है कि तुमको छोड़ देना पड़ेगा, अिसपर वह अकड़के बैठ गया है और कह रहा है कि मैं भी स्वतन्त्र अुम्मीदवारके तौरपर खड़ा हो जाअूँगा।—

गुबज्जा —हुबय्या, दूसरोंसे हमारा वास्ता क्या? हमारा काम हमारे लिअे।

सरळण्णा —मैं भी वही कहता हूँ। हाँ, यह अेक अपील (Appeal) लिख रखा है। अुसे देख लो न ? अुसके पहले और अेक बात। मैं अुसमें अेक वाक्य जोड़ देना चाहता हूँ— कि 'संयुक्त कर्नाटक राज्यका निर्माण ही मेरा अुद्देश्य है।'

गुबज्जा —(सिर हिलाते) अुहूँ। किसीके लिअे अितनी जल्दी नहीं करनी चाहिअे, अितना खुल्लम खुल्ला नहीं रहना चाहिअे। अब मान लो कि चुनाव समाप्त होनेके लिअे अभी चार छह महीने और चाहिअे, अुस अवधिमें लोगोंको संयुक्त कर्नाटक राज्यकी आवश्यकता प्रतीत न हो तो—

सरळण्णा —(हँसकर) छि ! कितनी भद्दी कल्पना है !

गुबज्जा —जैसे लोग वैसी कल्पना। अिसीलिअे कहता हूँ। कैसा प्रसंग आ जाअे, कौन जाने ? तुम अकेले हाथ फँसाकर मत बैठो। अैसा जोड़ दो 'मेरी पक्की राय है कि अिसके बिना कर्नाटकका अुद्धार नहीं होगा।' फिलहाल अिससे यह होगा कि तुम्हारे मनमें जो था अुसे कह दिया, और आगे चलकर कैसा प्रसंग आता है देखें। क्यों जी ?

चतुरप्पा, हुबय्या —बस, यही योग्य है।

सरळण्णा —फिर भी—

गुबज्जा —(बीचमें ही) तुम यही गल्ती करते हो, देखो सरळण्णा। अभीसे आदत डालो। चार आदमी बैठे हैं, विचार किया, तीन आदमियोंका बहुमत हुआ, तुमको मान लेना चाहिअे।

सरळण्णा —(हँसकर) अच्छा-वैसा ही सही। मगर कहीं शब्दोंमें कमी-बेशी हो जाअे, तत्वमें भेद हो जाअे तो मैं माननेवाला नहीं।

(सहसा टेलिफोनकी घंटी बजती है। झट गुबज्जा अुठकर जाता है और अुसे अुठाकर बोलने लगता है।)

गुबज्जा —हलो, ? ...जी, आपको कौन चाहिअे? हाँ...हाँ. क्या कहा ?.. पेपर ? कौन पेपर ? .. औं ? क्या ? . किसका पति कहा ? . हाँ हाँ...आपके पेपर का नाम 'लोककाका पति' है न ? हाँ...हाँ हाँ...आप पहिले कहिअे-आपको जो कुछ कहना है .. हाँ हाँ ..क्या ? . हो सकता है किसके साथ ? रावसाहबके साथ ? अभी वे काममें लगे हुअे हैं। क्या कहा आपने ? अच्छा काम है !...गाँवभरमें अुड़ी खबरके लिअे व क्या करें ? क्या कहा ? पेपर चलाते हैं, खबरकी जिम्मेदारी आपकी है नहीं नहीं वे और हम मिलकर ही काममें व्यस्त हैं . प्रणाम...क्षमा करें प्रणाम कहा। (कहकर रख देता है।)

गुबज्जा —(आगे आकर अपनी ओर देखनेवाले चतुरप्पासे) सुना कि नहीं ?

सरळण्णाः—कौन है वह ?

गुंबज्जा — (पहली कुर्सीपर बैठते हुअे) वही सोशियालिस्ट पार्टीका पेपरवाला ।

हुबय्या —अुसको क्या चाहिअे था ?

गुंबज्जा—कैसे पेपर चलाते हैं, क्या करते हैं, खुदा जाने ! पेपर चलानेवाले आप, खबर सच है कि झूठ, कहना चाहिअे हमें !

सरळण्णा —(कुतूहलसे) कौन-सी खबर ?

गुंबज्जा —खबर यह कि सरळण्णा सोशालिस्ट पार्टीमें शामिल होंगे ।

सरळण्णा —(चकित होकर) क्या कहा ?

हुबय्याः—(मजा लगनेसे) क्या ? आँ ? ह ह ह ! अब यह खबर झूठी ? ह ह ह ! ह ह ह ह !

सरळण्णा —(नाराज होकर, हुबय्यासे) अरे, जरा ठहरो तो ! [गुबज्जासे] क्या वह ? मैं और सोशियालिस्ट पार्टी—

चनुरप्पा —(बीचमें ही) अजी सरळण्णा, तुम चुप-चाप अपना काम करोगे या गाँवमें झूठी खबरसे मुखराबाजी करोगे ?

सरळण्णा —(गुस्सेसे) छि ! वह क्या ? क्या मुझे अुन्होंने तृणवत् समझा है कि जैसी हवा बहे अुस ओर झुक जाअूँ ? सोशालिस्ट पार्टी ! कौन है वह ! (अुठकर) वहाँ, ऑफिसमें है क्या वह ? पूछ लूँ अुससे—

(फिर टेलिफोनकी घंटी बजती है । सरळण्णा झट चकित हो, रुकता है । बाकी तीनों अेक दूसरेका मुँह मुस्कुराते हुअे देखते हैं । अुसे देखकर गुस्सेसे सरळण्णा टेलिफोनकी ओर जाकर, और रिसीवर अुठा कर—)

सरळण्णा —(गुस्सेकी आवाजसे टेलिफोनमें) आँ . क्या ? कौन ? हाँ...मैं ही हूँ...आप कौन हैं ?.. कौन ? भूत ? क्या कहा ? हँसिया हथौडेका भूत?...यानी ?...क्या है वह ? क्या ?...क्या क्या? कम्युनिस्ट पार्टी !...क्या है यह ? हाँ .. हाँ— (टेलिफोन झाडते हुअे) यह देखिअे—अरे !—बन्द कर दिया ? अे—

सरळण्णा —मैं अेक बयान ही निकालता हूँ ।

गुबज्जा —कौनसा बयान निकालते हो ?

सरळण्णा —मैं तो स्वतंत्र अुम्मीदवार ही रहूँगा, किसी पार्टीमें शामिल नहीं होना ।

चनुरप्पा —किसी पार्टीमें शामिल होनेका तुम्हारा विचार है ?

सरळण्णा —कभी नहीं ।

गुबज्जा —फिर क्यों चिरला रहे हो? वे कोअी भी खबर क्यों न अुडावें ?

हुबय्या —मेरी युक्ति ही अिन सबकी दवा है ।

चनुरप्पा —(चकित होकर) क्या युक्ति निकाली है तुमने ?

(टेलिफोनकी घंटी फिर बजती है ।)

सरळण्णा —(नाराज होकर) अबकी बार कहके ही छोड़ता हूँ ।

गुबज्जा —(मुंह रोककर) तुम बैठो । तभी तुमने 'हाँ हाँ' कहके गड़बड़ कर दिया । तुम बैठो, मैं देख लेता हूँ । (टेलिफोनके पास जाकर मुंह खुठाकर) हलो...हाँ ठीक है सरळण्णाजीका घर यही है । क्या कहा आपने ? मैं-कौन हूँ ? आप पहले कहिये कि आप कौन हैं ? (सरळण्णाको खुठते देख मुंह रोकने आगे आता है । टेलिफोन कानसे लगाकर सरळण्णाको हाथसे अिशारा करते, चलते, मेजके पास तक आकर सरळण्णाको सोफापर बिठाते हुअे, टेलिफोनमें) हाँ .. क्या ?...क्या कहा ?...साफ कौन—

सरळण्णा :—(आवेशमें खुठके) लाओ, अेक बार अिन सबकी खबर लूं ।

गुबज्जा —(खुसको हाथसे रोकते हुअे, टेलिफोनमें) हाँ, या साफ बात कीजिये न ? (दूसरोंको) किसान...!

हुबय्या :—ह ह ह ! यह पार्टी क्या ?—(गुबज्जाके अिशारेसे रुकता है)

गुबज्जा —(टेलिफोनमें) क्या कहा ?...हो सकता है । खुल्लमखुल्ला स्वतंत्र हैं, जैसा चाहें वैसा कर सकते हैं ..पूछिये खुन्हींसे—(सरळण्णा बोलना चाहता है, मुंह रोककर) हाँ हाँ, पूछिये तो ?...क्या कहा ? .अभी पूछना चाहते हैं ? अभी वे बम्बईमें हैं, वहाँका टेलिफोन नम्बर मालूम नहीं है ।.. प्रणाम । (रख आता है ।)

(अेक मिनट कोओ नहीं बोलता ।)

सरळण्णा —क्या? खबर झूठी है कि मैं किसान-मजदूर पार्टीमें शामिल हूंगा ?

हुबय्या :—(खुठकर) गुबज्जा, अपनी युक्तिका प्रदर्शन कर ही दें ।

चदुरप्पा —(कुतूहलतासे) क्या है यह ? लगातार, बार-बार कह रहे हो ।

सरळण्णा —(दुखी-सा) अे गुबज्जा, यह सब खबर तुम्हींने फैलायी ?

(टेलीफोनकी घंटी बजती है ।)

चदुरप्पा —(जाकर और खुठाकर) हाँ—क्या ?—कौन ?—हिन्दूमहासभा ? ..कौन चाहिये आपको ? . हाँ ! यह प्रधान मंत्रीजीका घर है...नम्बर सही नहीं निकला...प्रणाम । (रख देता है ।)

चदुरप्पा —(हुबय्यासे) अब बताओ तुम्हारी युक्ति ?

सरळण्णा —(पहलेकी तरह) यह तो बिल्कुल असहनीय है !

हुबय्या —यहाँ देखो सरळण्णा, अगर सहनीय असहनीय कहते बैठोगे तो चुनावकी आशा छोड़ देना ही बेहतर होगा । चुनावमें सफलता चाहते हो तो काम हमें सौंप दो । खबर खुड़ानेवालोंको खुड़ाने दो । खुनका मुकाबला करनेके लिये हम मजबूत हैं । यह देखो, क्या देखा? चदुरप्पाने पूछा कि मैंने क्यों अैसा भेष बना लिया है । कहता हूं सुनो · क्या करूँ ? अेक पाठ ही पढ़ाता हूँ (कहते हुअे मेजके पीछेकी कुर्सीके पास जाकर खड़ा होता है) खुठो सब, मेरी ओर मुंह करके सामने बैठो । (चदुरप्पा हंसते, सरळण्णा चकित हो खड़े हो जाते हैं और सामने जाकर बैठ जाते हैं ।) यह देखो मेरा "अनेक रूप रूपाय" भेष । पूछते हो कि यह भेष क्या ? मैं स्वतंत्र हूँ । जैसा चाहूँ, वैसा भेष बना सकता हूँ । देखा ? ठहरो (अपना फग और कोट भी खुतारता है । सापेके नीचे गांधी टोपी और कोटके नीचे नेहरू शर्ट) देखो । जरा और ठहरो (मेजके पीछे पेंट खुतारकर फेंकता है और अदरसे खद्दरकी धोती निकलती है ।) देखा ? पूछते हो क्यों ? कुछ लोग तो अिसे देखकर ही वोट (मत) देते हैं । अिसनेसे सन्तुष्ट होते हैं तो हमारा क्या जाता है ?

सरळण्णा —छि छि ! यह क्या ? खिलवाड़ करते····

हुबय्या —ठहरो जी, अभी समाप्त नहीं हुआ है महिरावणके वेषकी महिमा । तुमको यह भेष

खिलवाड लगा ? अच्छा, अिसीको देखो अब (सिरपरकी टोपी निकालता है। सिरपर अिधर-अुधर बिखरे हुअे लंबे सफेद बाल हैं, पहनी हुअी धोती भी अुतार फेंकता है, अुसके नीचे सफेद पायजामा है।) देखा ? (गुब्बजसे) किसी मनचलीका शौहर कहा न ?

गुब्बजा —टोपकाका शौहर—

हुबय्या —हाँ—टोपकोका शौहर यानी प्रचंड समाजवादी हूँ मैं—(चदुरप्पाके हँसनेपर गंभीरतासे) कौन है हँसनेवाले ? ओह ! यह भेष देख तुम घृणासे हँसते हो न ? समझा तुम्हारा स्वरूप, ठहरो। (नेहरू शर्ट अुतारता है। नीचे लाल रंगका आधे आस्तीनका छोटा कुरता है जो कमरतक लटक रहा है। पायजामा भी अुतार देता है। अुसके नीचे लाल रंगका हाफ-पैंट है।)

चदुरप्पा —(हँसते हुअे) वाह ! वाह ! ह ह ह ! (और भी हँसी बढ़ती है।) ह ह ह ! डिमोक्रसीका वस्त्रापहरण ! ह ह ह !

सरळण्णा —(अशुचि हो जानेपर अुठनेकी तरह अुठकर) समाप्त हुअी कि नहीं यह तुम्हारी वानर-लीला ?

हुबय्या —(बनावटी रोषसे) क्या कहा ? वानर-लीला ? तुमको यह वानर खिलवाड लगा ? हमारे देशकी समस्या तुम्हारे लिअे वानर खिलवाड ? ठहरो, (कहते हुअे वह छोटा शर्ट भी अुतारकर नग्न धडके कंधेपर अुसे डालकर, ताल ठोककर) तुमने क्या समझा है मुझे ?

सरळण्णा —(अचरजसे) क्या है यह ?

हुबय्या —(थकावट भरे हुअे स्वरमें) किसान हूँ मैं-(मवेशियोंको हाँकनेवालेके जैसे करता है।)

चदुरप्पा —वाह ! ह ह ह !

हुबय्या :—(धीमे स्वरसे) मजदूर (कहकर कुर्सी अुठाकर सिरपर रख लेता है।)

चदुरप्पा —वाह ! वाह !!

हुबय्या —(रोदन स्वरसे) प्रजा (कहकर असहाय, शक्तिहीनका-सा बैठता है।)

सरळण्णा :—(अुसकी ओर अेक मिनटतक देखकर, अच्छा, कहकर टेलिफोनकी ओर जाता है।)

चदुरप्पा —(भयके स्वरसे) अजी यह क्या ? क्या करते हो ?

सरळण्णा —टेलिफोन करता हूँ।

चदुरप्पा —किसको ?

गुब्बजा —क्या कहोगे ?

हुबय्या —अभी क्यों ?

सरळण्णा —(चदुरप्पासे) किसको ? अिन्द्रको। (गुब्बजासे) क्या कहूँगा ? मैं यही कहूँगा कि तुम्हारी डैमोक्रसी नहीं चाहिअे। (हुबय्यासे) अभी क्यों ? अगर रहूँ तो डर है कि बुद्धिभ्रष्ट हो जाअे।

गुब्बजा —(अुसको रोककर) समझ गया, छोड दो। (बाकी दोनोंसे) अिसको क्या हुआ है, आप कहते हैं ?

दोनों —(पाठ सुनानेवाले बालकोंकी भाँति) चुनावका बुखार चढ गया है—जी। (तुरंत तीनों हँस पडते हैं। अेक मिनट अुनके मुँह ताकनेवाले सरळण्णाके मुँहपर भी मुस्कुराहट अंकुरित होती है)। *

परदा गिरता है।

* अिस अेकांकीके सभी अधिकार लेखकके स्वधीन हैं। लेखककी अनुमतिके बिना अिसका अभिनय न किया जाअे।

(अनुवादक :—श्री गुरुनाथ जोशी, धारवाड़)

ऋतुराज

- श्री गोपाल शर्मा, अेम. अे. -

अरी मिट्टी ! ये रंगत किन तहोंमें तू छुपाये थी ?
हजारों रूपके नक्शे अभी तक क्यूं दबाये थी ?
अचानक किसने सीनेपर तेरे सिर रख दिया रानी,
कि झरने तेज है तेरी रगोंमें, गर्म है पानी !
समाती ही नही है आपमें तेरी मलय-सी सांस,
अुठे है रोम श्यामल दूबके पहले जहां थी कांस ।
पिया वह कौन जिसकी किरन जुल्फें भर गयी सिहरन,
ये मोती मांगमें ! सतरंग चुनरिया ! ! अी नयी दुलहन !
तुझे यूं देख, है हालत अजब, मालिक विधाता है,
अरे, हर पेड़ बांहें खोल, बेलोंको बुलाता है ।
मगर बेलोंकी जैसी जात, कितने ढंग बताती है,
लपक खुद पेड तक आती, हिला सिर लौट जाती है !
कि पंछी डोलते बेहाल, गाते गा न पाते है,
न नूपुर चैन पाते है, न अम्बरमें समाते है ।
बटी ज्यों-ज्यों कुहू त्यों-त्यों वहां वो आम बौराया,
सिमट शरमाके अमराअीकी गोदीमें छुपी छाया ।
लपेटें हो रहीं टोली, करे वो क्या करे बदली,
पकड़िये अुसको जिसने सबकी हालत जिस तरह बदली !
लहर झकझोर कमलोंको, नशेसे जो जगाती है,
लिपट अुठते हुअे भौंरेसे केसर झूम जाती है !
ये कच्ची कोंपलें ! मचलने मुसकानेकी कलियोंकी !
ये बढ़ते हौसले ! तितलीका चलना गैल अलियोंकी !
सुगंधोंकी ये झीनी तह, ये रंगोंकी घनी अुलझन,
ये पानीकी लहरियादार झीलोंका तरल-कंपन,
हिलोरें दूर तक भरते हुअे मैदान चितकबरे !
पहाडोंके गले बगलोंकी पांतोंके धवल गजरे !

अरे अिस ब्रह्मचारी समयकी गति और जैसी हो,
जो दिल है, अुसकी झाँकी ये न हो तो और कैसी हो !
कि रविकी अधखुली पलकों पे कोअी स्वप्न छाया है,
वही ऋतुराज है ! रे प्यारका त्योहार आया है !
न अिसने बाल-तृण देखा, न बूढ़े गिरिको छोड़ा है,
ये जादू है !–जि हाँ ! सबके सिरोंपर चढके बोला है !
मुझे भी क्या हुआ, आँखोंसे मैं सुनने लगा कैसे ?
स्वरोंको सूंघता हूँ ! गन्ध तन छूने लगा कैसे ?
गली रेखा, घुला स्वर, सुरभि पिघली ! अेक अनुभव है,
बुझी पहचान जैसे,– मन लबालब है, लबालब है !

जिधर देखता हूँ अुधर तू ही तू है !

क्या महात्मा गांधी अकेले थे ? लाखों चर्खोंपर सूत कातनेवाले लोग अुस सूतके द्वारा अुनसे हमेशाके लिअे बंध गये थे। ग्राम सेवा करनेवाले हजारों लोग गांधीजीके साथ जुड़ गये थे। हरिजनोंकी सेवा करनेवाले सैकड़ों भाअी गांधीजीके साथ अेक हो गये थे। हिन्दीका प्रचार प्रसार करनेवाले हजारों लोग गान्धीजीके साथ हो गये थे। हिन्दू-मुस्लिम अेकता स्थापित करनेवाले—साम्प्रदायिक झगड़े मिटानेवाले, शराब बन्दी करनेवाले, सब लोग गान्धीजीके साथ जुड़ गये थे। अिन करोड़ों लोगोंकी, अिस जनता-जनार्दनकी सुदर्शन शक्ति गान्धीजीके आसपास घूमती थी। और क्या जवाहरलालजी अकेले हैं ? पद-दलितोंका पक्ष लेनेवाले, मदान्ध अेश विलासी लोगोंका नशा अुतारनेवाले किसान मजदूरोंके लिअे बलिदान करनेवाले, अुनका संगठन करनेवाले श्रमका महत्व पहचाननेवाले, सच्चे मानवधर्मको पहचाननेवाले और सारे दम्भोंको दूर हटा देनेवाले हजारों लोग जवाहरलालके आसपास खड़े हैं। और जिनके लिअे जवाहरलाल व्याकुल हैं तड़प रहे हैं, वे करोड़ों हिन्दू-मुसलमान भाअी अुनके साथ जुड़े हुअे हैं। अिसीलिअे जवाहरलालके शब्दोंमें तेज है वाणीमें ओज है और दृष्टिमें तेजस्विता है।

महात्मा या महापुरुषका अर्थ है— पुंजीभूत विराट जनता।

—स्व० साने गुरुजी

अुर्वशी

: श्री ग. त्र्यं. माडखोलकर :

"सुकुमार प्रहरण महेंद्रस्य। अलंकार स्वर्गस्य।"
—कालिदास

"अुर्वशी" शब्दका अुच्चारण करते ही हमारे मनमें अनेक रमणीय कल्पनाअें जाग अुठती हैं। यथार्थमें अुर्वशीका चरित्र कल्पनाकी कोमलताको भी लजानेवाला है। आदि कालसे आधुनिक कालतक चचल कालकी बदलती छटाओंपर यदि किसीके अकरुण सौंदर्यकी अनिवर्चनीय सुषुमा छायी होगी तो वह है केवल अुर्वशी। अितना ही नहीं, अिन्द्रसभाकी अिस नर्तकीके रूपने कविकुलगुरु कालिदाससे लेकर कविसम्राटतक अनेक कवियोंको अपनी प्रतिभासे मोहित किया है। अत अुर्वशी लक्ष्मीके समान सागरोंमिसे अुत्पन्न नहीं हुअी और न पार्वतीके समान हिमालयके अुच्च शिखरोंसे ही प्रकट हुअी है। यह भी निर्विवाद है कि विधाताने ससारके सारे सौंदर्यके समन्वयसे तिलोत्तमाके समान अुसका निर्माण नहीं किया। यथार्थमें तपोभग करनेके अुद्देश्यसे भेजी हुअी अप्सराओंके समूहको देखकर नारायणके समान ऋषिने क्रोधावेगमें अपनी तपस्याके प्रभावसे अुर्वशीका निर्माण किया है। यही कारण है कि अुसके अनुपम लावण्यको देखकर पुरुरवाने कहा था कि "वेदाभ्यासके कारण जिसकी बुद्धि कुंठित हो गयी है, अैसा वह बूढा ऋषि अितना मनोहर रूप कैसे निर्माण कर सकता है? चन्द्र, मदन अथवा वसन्तके समान ही किसी कामदेवताने अिसका निर्माण किया होगा?" तपस्याके कारण अेकाग्र और अुन्नतिशील ऋषिकी प्रतिभा ही अिस प्रकारकी अनन्य सुन्दर कृतिको जन्म दे सकती है, यह वह कामुक क्या जाने? सौंदर्य और कठोरताका जो विचित्र मेल अुर्वशीमें दिखायी दिया, अुसकी जड़में अुत्पत्ति तो कारण नहीं?

अुर्वशी केवल अप्सरा नहीं है। वह अेक अुत्तरोत्तर परिणत होते हुअे सौंदर्यका प्रतीक है। ऋग्वेदसे विक्रमोर्वशीतक हजारों वर्षोंकी विकसित होती हुअी अुर्वशी सबधी कल्पनाओंका विचार किया जाअे तो अुसका युगसापेक्ष प्रतीक हमारे मनपर अेक स्पष्ट प्रतिबिंब डालता है। अितना ही नहीं, ऋग्वेदके अैतिहासिककालके पूर्वसे लेकर अिस बीसवीं शताब्दी तक कविके अटल प्रभावके लिअे अुसके सौंदर्यका प्रतीक ही मूल कारण है। स्त्री ससारके सौंदर्यमें श्रेष्ठ, प्रेमका प्रतीक और सारी मंगलताकी मूर्ति है। जब ससारकी बाल्यावस्थामें मनुष्य जातिकी सख्या अत्यत अल्प थी, अुस समय मनोरंजन करनेवाली रमणीकी दृष्टिसे ही नहीं, बल्कि सतति निर्माण करके ससारको सतत प्रवाह प्रदान करनेवाली जननीके नातेसे भी स्त्रीका महत्व अनन्य है। मानव जातिकी अल्पसख्यक परिस्थितिमें स्त्रीने, विशेषत सुदर स्त्रीने सौंदर्य और सततिके लिअे व्याकुल पुरुष जातिको अपने सकेतोंपर नचाया हो तो अिसमें क्या आश्चर्य? ऋग्वेदमें की गयी अुर्वशीकी करुणाहीन कल्पनाअें और पुरुरवाके गाये हुअे दैन्य भरे-स्तोत्र अिसी परिस्थितिमें अुपजे हैं। मैक्समूलरके समान कुछ अन्वेषणकर्ताओंकी यह धारणा है कि अुर्वशी मानव अथवा अमानव न होते हुअे, केवल अुषाका अेक रमणीय रूपक है। अुनकी अिस धारणाका कारण भी हमें अुर्वशी द्वारा पुरुरवाको लक्ष्य करके कहे गये वैदिक सूक्तोंमें मिलता है कि "हे पुरुरवा, मैं तुमसे अुषाके समान दूर भाग चुकी हूँ। तू अब घर लौट जा। वायुके समान चचल होनेके कारण मेरा पीछा करना तेरे लिअे असभव है" लेकिन अुर्वशीके स्वयको अुषाकी अुपमा देनेपर भी यह सिद्ध नहीं होता कि वह अुषा ही है। क्षण-क्षणमें रंग बदलनेवाली और क्षितिजकी नीलभूमिपर नर्तन करनेवाली अुषा, सूर्योदय होते ही जिस प्रकार अपने अस्तित्वको क्षणभरमें मिटा देती है, अुसी प्रकार पुरुरवाके प्राणोंको अपने लावण्यसे पागल करके अुससे दूर

भागनवाली अुर्वशी है पुरूरवा विअम्न था तो अुर्वशी वस्त्रविभूषित थी वह कामुक था तो वह कठोर थी वह अतृप्त था तो वह अनत यौवना थी। असकी और अपनी स्थितियोंकी विषमता देखकर अुर्वशीको सखी हुअी अुषाकी अुपमा अुसके करुणाहीन सौंदर्यका प्रतीक है। अुस अुपमाको रूपक मानकर अुसको स्पष्टताको कसौटीपर रखना भी क्या वेदाभ्यासकी सूक्ष्मताको ओतप्रोत नहीं है?

जब अुर्वशी स्वर्गलोक छोड़कर पुरूरवाके पास रहने आयी थी अुस समय दोनोंके बीच केवल अेक शर्तका अुल्लेख वैदिक सूक्तोंमें मिलता है। शर्त यह थी कि पुरूरवा शयनगृह छोड़कर अन्यत्र कहीं भी अुसे विवस्त्र नहीं दिखायी देना चाहिये। अिस शर्तकी पार्श्वभूमिमें भी अुर्वशीकी सौंदर्याभिरुचि दिखायी देती है। अुर्वशीकी यह साधारण शर्त सुनकर पुरूरवाको हँसी आयी होगी। लेकिन अुस शर्तमें निहित सौन्दर्याभिरुचि अुनके सहजीवनकी अन्तिम रेखा सिद्ध हुअी। पुरूरवाकी प्राप्तिके लिअे अुस कामिनीने अपनी दिव्यताका त्याग किया, लेकिन अपनी सौंदर्याभिरुचिसे विमुख नहीं हुअी। वृद्धावस्थामें मृत्युके द्वारपर पहुँचे हुअे पुरूरवाको अुर्वशी जैसी सुरांगनाका जिसका यौवन पुष्प मुरझाना सर्वथा असंभव था शयन कक्षके सिवाय अन्यत्र नग्नावस्थामें देखना अस्वीकार करना कितना स्वाभाविक था? पुरूरवा कितना ही सुन्दर क्यों न हो लेकिन वह मानव था। नंदनवनकी कल्पलताओंके कोमलपुष्प मंदाकिनीके परागसे आर्द्र वायु अथवा चन्द्र किरणोंके कोमल तन्तुओंसे बुने हुअे वस्त्रोंके सिवाय अन्य वस्तुओंके स्पर्शका जिसे अनुभव न हो और देवेन्द्रको भी जिसके स्पर्श करनेका प्रसंग न आये अुस अुर्वशीको पुरूरवाको नग्नावस्थामें देखकर ग्लानि हो और वह असह्य लगे तो अिसमें आश्चर्यकी क्या बात है? लेकिन शायद शर्तका मर्म न समझनेके कारण अुसने पुत्रवत प्रेमसे पाली हुअी भेड़ोंको गन्धर्वों द्वारा भगा ले जानेपर, पुकार सुनते ही अुन्हें छुड़ानेके हेतु विवस्त्र स्थितिमें ही पुरूरवा शयन-गृहसे दौड़ पड़ा। तात्पर्य यह कि गन्धर्वों द्वारा किये कृत्रिम प्रकाशमें अुसका नग्न शरीर दिखायी देते ही अुर्वशी अुसी क्षण अदृश्य हो गयी। अुर्वशी अुसके प्रेमसे अुद्विग्न नहीं हुअी थी। यदि अुर्वशीको अुसके साथ रहना खटकता तो वह पुरूरवाको पुनर्मिलनका अुपाय क्या बताती? अुसे पुरूरवाकी निर्लज्ज नग्नताने वंचन किया था। नग्नता द्वारा प्रदर्शित अुसके मानवीय शरीरकी मलिनताने अुसे अधीर कर दिया। शृंगारासक्त कालिदासने नग्नदर्शनके अिस प्रसंगको अपने विक्रमोर्वशीमें टाल दिया है। लेकिन ऋग्वेद शतपथ ब्राह्मण और कुछ पुराणोंमें नग्नताकी शर्तके कारण ही वियोग होनेका अुल्लेख मिलता है। यदि अुर्वशी अुषा और पुरूरवा सूर्य होता तो अुनके बीच नग्नताका प्रश्न निर्माण होनेका कोअी कारण नहीं था और अपने प्रियकरको शयन अुसे 'मृत्यु' कहकर अपमानित करनेका दुस्साहस भी अुषा नहीं कर सकती थी। पुरूरवाने अुर्वशीका वर्णन करते हुअे अुसे अपनी प्रभासे अंतरिक्ष प्रकाशित करनेवाली कहा है। विद्वानोंने अुर्वशीको अुषाका रूपक देनेमें अिस वर्णनका आधार तो नहीं लिया होगा? लेकिन पुरूरवा अुल्लिखित अन्तरिक्षसे शायद स्वयंके प्रेमपूर्ण अन्तःकरणका तात्पर्य है।

अुर्वशी अुषाका रूपक न हो लेकिन अुसकी स्वयंकी दी हुअी अुषाकी अुपमा अत्यंत समानार्थी है। वह अुषा जैसी अनंत यौवना अनेक रूपिणी और अमानव थी। अुसे अमानव अिसलिअे नहीं कहते कि वह देवांगना थी—अपितु मानवीय दृष्टिसे किसी भी साँचेमें अुसका चरित्र नहीं बैठता। अिस तात्पर्यमें खोज करते हुअे वनमें भटकनेवाले पुरूरवाने अुसे पहिली बार ही कठोर हृदया संबोधित किया है। लेकिन क्या वह सचमुच कठोर हृदया थी? राजाओं और राजपुत्रों योद्धाओं और युवकोंको अपनी मोहिनीसे पराजित करनेवाली प्रेमभावसे रक्तहीन अुनके स्पर्श और चुम्बनके अुत्सुक ओठोंको देखकर स्वयंको धन्य समझनेवाली अुर्वशी क्या कीट्सके वर्णनानुसार गर्वित नारीकी रूपगर्विता सुंदरी थी? अथवा ग्रीक साहित्यकी चपला अटलांटाके समान अपने प्रेमियोंको तड़पते हुअे मरते देखना ही अुसका स्वभाव था? पुरूरवा जब प्रणय विवश हो प्राण देनेकी धमकी देता है तब अुर्वशीका यह अुत्तर कि "अरे स्त्रियोंका प्रेम केवल प्रेम ही नहीं अुनका हृदय भी भेड़िया जैसा कठोर होता है।" [म व

स्वैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणा हृदयान्येता] हमें यह विचार करनेसे नहीं रोकता कि नारायणकी यह मानस कन्या भी बेंटलाटाके समान भेडके दूधसे ही पली होगी और पुरुरवाके प्रति मनमें सहानुभूति अुत्पन्न होकर कीटसकी भग्न-हृदया प्रेमिकाके समान अपनेको भी कहनेकी अिच्छा होती है कि "अरे ! अरे !! अुस हृदयहीन सुन्दरीने तुझे अपने प्रेमपाशमें फसाया है।" लेकिन क्या अुर्वशी निर्दय थी? अुसके कथनानुसार असका हृदय यथार्थमें कठोर होता तो वह पुरुरवाको अपना स्वर्गीय सुख क्यो लूटने देती? पुरुरवाको सान्त्वना देते हुअे अुसने कहा था कि "राजन, मेरे दिव्य शरीरका त्याग करके मैं तुम्हारे पास चार शरद रही। जब जब तुम मेरी अिच्छा करते, तब तब मैं ससुरके गृहसे निकलकर तुम्हारे मन्दिरमें आती थी। मैंने अपने शरीरपर तुम्हारा यथेच्छ प्रभुत्व रहने दिया।" ससारकी कोअी भी युवती अपने प्रियतमके लिअे अिससे अधिक क्या अुत्सर्ग कर सकती है?

यदि अुर्वशीको पुरुरवाके प्रति अितनी अुत्कट आसक्ति थी, तो अुसने अुसका त्याग क्यों किया? क्योकि वह अप्सरा थी। शतपथ ब्राह्मणकी कथामें अपनी पुनः प्राप्तिका अुपाय सुझाते हुअे अुस सुरागनाने पुरुरवाको स्पष्ट ही बताया है कि 'तेरे मनुष्य देहका त्याग करके गधर्व हुअे बिना तू मेरा पूरा लाभ नहीं अुठा सकता।" वस्तुत. अुर्वशी रभा अथवा मेनकाके समान जन्मसे ही अप्सरा नहीं थी। लेकिन अुसके पिताने जिस समय अुसे अिन्द्रको अर्पण किया, अुसी समयसे अप्सराका जीवन-क्रम अुसके मत्थे पडा। जिस गधर्व लोकमें अप्सराओंको रहना पडता था, वहांका यह रिवाज था कि अप्सराओंका अविवाहित रहकर ही केवल सौंदर्य साधन (साज सिंगार)में अपना जीवन व्यतीत करना चाहिअे। कलाविलास अुनके जीवनका अुद्देश्य और वीरोंका मनोरजन करना अुनका परम कर्तव्य समझा गया। जिसप्रकार प्राचीन ग्रीसमें ग्रीस देशकी परम सुन्दरी स्त्रियां समाजके श्रेष्ठ पुरुषोका मनोरजन करनेके लिअे अविवाहित रहती थी, अुसी प्रकारकी मिलती-जुलती व्यवस्था गधर्व-समाजमें भी रही होगी। देवेन्द्र द्वारा अप्सराका अेक अुपयोग और भी किया जाता था। कालिदासके "विक्रमोर्वशी"में रचा पुरुरवाने अुर्वशीका वर्णन करती है 'या तपोविशेषपरिशङ्किनस्य सुकुमार प्रहरणं महेन्द्रस्य। प्रत्यादेशः रूपगर्विताया श्रिय। अलंकार स्वर्गस्य। सा न प्रिय सखी अुर्वशी"। अर्थात् जिस प्रकार अप्सरा देवेन्द्रके दरबारकी भूषण थी अुसी प्रकार वह अुसके शस्त्रागारका नाजुक हथियार भी थी। क्या आज भी राजनैतिक रहस्योको ज्ञात करनेके लिअे सुन्दर स्त्रियोका अुपयोग नहीं किया जाता है? अप्सरा विवाहके बधनसे भले ही मुक्त हो, लेकिन अुसका जीवन अन्य अनेक बन्धनोंसे जकडा रहता है। वह दूसरोंको मोहित कर सकती है, लेकिन स्वय मोहका शिकार नहीं बन सकती। वह दूसरोंको प्रियतम बना सकती है, लेकिन स्वयं प्रेम नहीं कर सकती। अनिर्बंध और सर्वथा बधन-रहित जीवनही अुसके जीवनका महान् बन्धन है। पति प्रेम और सन्तान-प्रेमके जिन प्रबल पाशोंसे स्त्री-जातिका जीवन बद्ध है, अप्सराको अुन पाशोंसे सर्वथा अलिप्त और निर्मुक्त जीवन व्यतीत करना पडता है। अुर्वशीको बन्धन मुक्त रहनेसे ही पुरुरवाके प्रेमपाशको तोडकर देवेन्द्रके दरबारमें वापस जाना पडा था। अुर्वशीने पुरुरवाको सान्त्वना करते हुअे भाव व्यक्त किये थे कि 'स्त्रियोका प्रेम वास्तवमें प्रेम ही नहीं है।" ये अुद्गार अुसके मनकी कठोरता प्रगट नहीं करते अपितु नैराश्यके सूचक हैं। जिस प्रकार मनुष्य जीवन दु सह होनेपर ससारको दोष देता है, अुसी प्रकार अनिर्बंध स्त्रीत्व असह्य होनेपर अुस देवरमणीने स्त्री-जातिपर अभियोगका टीका लगाया है।

तात्पर्य यह कि अुर्वशीका अकरुण चरित्र भी ससारके साहित्यकी अेक अत्यन्त करुणाजनक प्रेम-कथा है। ऋग्वेदके सूक्तोंमें, शतपथके सवादोंमें, मत्स्यपुराणकी कथाओंमें और विक्रमोर्वशी नाटकमें अुर्वशीके समय-समयपर बदलते हुअे चरित्रसे करुणाका प्रवाह अनन्त सूक्ष्मताके साथ बहता हुआ दिखायी देता है। अुर्वशीके समान देवेन्द्रकी प्रिय अप्सराका भूतलपरके अेक मानव राजाके प्रणयपाशमें फसना ही अुसके अध पतनका सूचक है। लेकिन क्या वह यथार्थमें अध पतन था? पुरुरवा

द्वारा अुर्वशीको स्वीकार कर लेनेपर जब अुसकी सहेली चित्रलेखा अुसे स्वर्गका स्मरण न आ पानेके ढंगसे अुर्वशीके साथ व्यवहार करनेकी प्रार्थना करती है तब पुरुरवाका सचिव माणवक चित्रलेखाकी विनतीका अुपहासात्मक अुत्तर देता है कि "तुम्हारे अुस स्वर्गमें मनको आकर्षित करने योग्य अैसा क्या है? खाना नहीं, पीना नहीं। वहाँ तो केवल पलकें न झुकनेवाले नेत्रोंसे मछलियोंको निहारकर समय नष्ट करना पड़ता है। [किं वा स्वर्गे स्मर्तव्यम्। न खाद्यते न वा पीयते। केवलं अनिमिषैर्नयनैर्मीना विडम्ब्यन्ते।] कालिदासका मूर्ख समझा जानेवाला विदूषक कभी-कभी कितना मार्मिक बोलता है, अिसका यह अत्यन्त सुन्दर अुदाहरण है। सचमुच स्वर्गलोकमें मनको अच्छी लगने योग्य कौनसी बात हो सकती है? जिन नाना प्रकारकी संवेदनाओंसे माया मोह और सुख-दुखके प्रसंग निर्माण होकर मानवीय जीवनमें विचित्रता और मधुरता आती है, अुनका तो अुस अमर लोकमें पूर्ण अभाव ही है। फिर वहां आकर्षण क्या होगा? स्त्रीत्वके विकासके लिअे तो वह सर्वथा निरर्थक है। स्वर्गमें देवताओंका राज्य हो अथवा दैत्योंका, स्त्रियोंको केवल अमृत पीने और नृत्य करनेके अलावा अन्य कोअी काम नहीं होता। अैसी स्थितिमें, सहस्र नेत्रोंसे दीप्त देवेन्द्रके दिव्य शरीरको प्रतिदिन देख-देखकर मस्त और नंदनवनके निरन्तर और नियमित बास सुखविलाससे अूबकर, यदि पृथ्वीके अेक मनुष्यसे अुर्वशीका प्रेम हो जाअे तो क्या आश्चर्य है? प्रेमानुभूतिका आनन्द लेनेके लिअे वह आतुर थी और अैसी मन स्थितिमें देवेन्द्रके सामने खेले गये "लक्ष्मी स्वयंवर" नाटकमें लक्ष्मीकी भूमिका करते समय "पुरुषोत्तम" के बदले 'पुरुरवा' शब्द अुसके मुँहसे निकल जानेपर अुसे नाट्याचार्य भरतके अभिशापका पात्र होना पड़ा और अुस प्रेमोन्मादके कारण अुसे स्वर्ग छोड़नेकी बारी आयी। लेकिन प्रणय-पीड़ित अुर्वशीको वह अभिशाप न होकर वरदान ही लगा होगा क्योंकि अुससे अुसे असह्य और विफल स्वर्गीय जीवनमें परिवर्तन होकर मानवीय जीवनकी अनुभूति लेनेका सुखद प्रसंग मिला।

लेकिन देवताओंको अुर्वशी जैसा स्वर्गका अलंकार और देवेन्द्रको अुसका वियोग कैसे सहन हो सकता था? जब भरतमुनिने अुर्वशीको शाप दिया था, अुसी समय देवेन्द्रने अुसे अैसा प्रतिशाप दे रखा था कि "तुझसे अुत्पन्न सन्तान पुरुरवाको दिखायी देने तक ही तुझे अुसके साथ रहनेका सुख मिलेगा"। अिस प्रतिशाप जैसा मार्मिक अुदाहरण अन्यत्र कहीं न मिलेगा। अुर्वशी जबतक स्वर्गमें थी तबतक अुसके सन्तान होना असम्भव था, क्यों कि अप्सरा जैसी अमर होती है, वैसी ही निसन्तान भी होती है, मानो अुसका यौवन अनन्त होनेके कारण ही विफल होता है। अिसके अलावा जो पत्नी नहीं हो सकती वह जननी कैसे हो सकती है? पिताके आश्रमसे देवलोकमें आनेपर अेक बार सूर्योपासनाके लिअे जाते समय अुर्वशी जब पुरुरवाके प्रेमका विषय बनी, तब अुसके प्रत्यक्ष स्पर्श होनेका प्रसंग न आनेपर भी अुसे पुत्रलाभ हुआ। लेकिन पुरुरवाकी पत्नी बनकर मर्त्य लोकमें रहनेपर अुसे मातृपदके लिअे सभी आवश्यक परिस्थितियोंसे गुजरना पड़ा। अिसलिअे देवेन्द्रने अुसकी मातृपद-प्राप्तिमें ही अुसके सांसारिक जीवनकी समाप्तिका क्षण सीमित कर दिया। मानो स्वर्ग-लोकका अैसा नियम हो कि अप्सराका जन्म केवल मानवीय सुखोपभोगके लिअे ही है-सन्ततिसुख भोगनेके लिअे नहीं। अिसी कारण पुत्र-जन्म होते ही पुरुरवाको पता लगे बिना च्यवनाश्रमकी अेक तपस्विनीको सुपुर्द किये हुअे अपने पुत्रको जब राजाने अचानक देखा, तब अिस पुत्रदर्शनसे अुर्वशीको आनन्द नहीं हुआ, अपितु पुनः स्वर्गलोक जानेकी कल्पनासे वह रो पड़ी। भरतके शापसे अुस अभागिन अप्सराको पति सुखका अुपभोग भले ही मिला हो लेकिन देवेन्द्रके प्रतिशापके कारण अुसे पुत्र-सुखका आनन्द यत्किंचित् भी नहीं मिला। अुर्वशीकी प्रणय-कथामें करुणाकी परमसीमाको कोअी प्रसंग हो सकता है तो वह है पति और पुत्र छोड़कर स्वर्गलोक जानेका। अुसपर आयी हुअी आपत्ति टलकर अुसे अपने प्रियतमके सहवासका सुख पुनः प्राप्त हुआ, यह केवल अुसके अत्यधिक प्रेमका प्रभाव है। लेकिन अिसलिअे अुसके प्रेमजीवनके कारुण्यकी तीव्रता तिलमात्र भी कम नहीं

(शेषांश पृष्ठ संख्या १७७ पर)

भारतका राष्ट्रपति और मंत्रिमंडल

: प्रो. जगदीशप्रसाद व्यास :

भारतके संविधानमें दो बातें अेकदम ध्यान आकृष्ट करती हैं। अेक तो है भारतका राष्ट्रपति और दूसरा है भारतीय मन्त्रिमंडल। राष्ट्रपतिकी मिसाल अमरीकी संविधानसे ली गयी है, किन्तु मंत्रिमंडलका निर्माण ब्रिटिश संविधानके अनुरूप है। अिन दो विभिन्न प्रणालियोंको किस तरह भारतीय संविधानमें संयुक्त किया गया है?

यह राजनीतिके विद्यार्थियोंके लिअे अध्ययनीय है। अध्ययनीय अिसलिअे है कि अिन दोनोंमें अेक बहुत बड़ा विरोध है, अमरीकी राष्ट्रपतिका अुत्तरदायित्व अेकांतिक है, व्यक्तिगत है, किन्तु ब्रिटिश मन्त्रिमंडलका अुत्तरदायित्व सामूहिक है और यह सामूहिक अुत्तरदायित्व अिस प्रणालीका मौलिक आधार है। किस तरह अिन दो विरोधी आधारोंके बीच राज्य अेवं प्रशासनकी कार्यवाहियाँ चलेंगी यह विचारणीय होगा। भारतका संवैधानिक प्रधान कार्यकारी तो राष्ट्रपति है, परन्तु प्रधान सत्ताधिकारी है प्रधानमंत्री, और अिसमें अेक अुलझन और भी है, वह यह कि राष्ट्रपति मन्त्रिमंडलके सदस्योंमें स्वतंत्र और प्रत्यक्ष भी संबंध रख सकता है। प्रस्तुत निबन्धमें हमारे संविधानकी अिसी परिस्थितिपर तथा राष्ट्रपतिकी पदसत्ताओंपर विचार करना अुद्देश्य है। अिस स्थितिके दो पार्श्व हैं। पहला राष्ट्रपति पदके लिअे वोटरोंके समूहोंपर मन्त्रियोंका प्रभाव और तद्भूत तानेबाने तथा, दूसरा मन्त्रिपदपर नियुक्त हो सकनेके मामलेमें राष्ट्रपतिका हाथ।

अध्ययन करनेपर भासित होता है कि यद्यपि राष्ट्रका संवैधानिक कार्यकारी जरूर राष्ट्रपति है परन्तु असल सत्ताधारी प्रधानमंत्री ही है। अतः जब यह कहा जावे कि संवैधानिक दृष्टिसे प्रधानमंत्री तभीतक पदारूढ रह सकता है जबतक कि राष्ट्रपतिकी मर्जीको वह पसन्द हो तब अुसका मतलब यही होता है कि राष्ट्रपतिकी मर्जी अिस समय लोक-सभाकी मर्जीका ही दूसरा नाम है। असलमें विधान कारिणी प्रत्येक कार्यकारिणीके अूपर पदपर आसीन है। व्यवहार रूपमें संविधानके अिस वाक्यका यही स्वरूप पेश होना चाहिअे और अुसीके अनुरूप परम्पराओंका निर्माण भी होना चाहिअे, अिसके अतिरिक्त प्रधान मंत्रीके हाथोंमें और भी महत्वपूर्ण सत्ता है। अन्य मन्त्रियोंकी नियुक्ति राष्ट्रपति प्रधान मन्त्रीकी सलाहसे ही करेंगे। यहाँपर ध्यान देने योग्य शब्द-समूह है "प्रधान मंत्रीकी सलाह" अेसे राज्यके प्रधान कानूनी अधिकारीकी हैसियतसे राष्ट्रपति निःसंदेह अिस नियुक्तिपर कुछ न कुछ असर डालेंगे ही। कभी वे किसी खास व्यक्तिको मन्त्रिमंडलमें शरीक करनेपर जोर देंगे तो कभी किसीका नाम अलग करनेपर, परन्तु आमतौरसे अुसमें अंतिम निर्णय प्रधान मंत्रीकाही होगा। अिधर भारतीय संविधान अिस बातको स्पष्ट कहता है कि प्रधान मंत्री राष्ट्रपतिको राष्ट्रके शासनमें मदद करेंगे, डिक्टेट नहीं करेंगे। अतः अिस स्थितिमें दोनोंके अधिकारकी सीमाअें अस्पष्ट अेवं अनिर्दिष्ट हैं।

अनायास हमारा ध्यान अन्य देशोंके प्रधान मंत्री और राष्ट्रके प्रधान संवैधानिक कार्याधिकारीकी ओर जावेगा। अिंग्लेंडका प्रधान मंत्री बराबरीवालोंमें पहला आदमी गिना जाता है। भारतमें अभी अुसने यह पोजीशन हासिल नहीं की है। जिन परिस्थितियोंने मिलाकर हमारे प्रधान मंत्री पं. जवाहरलाल नेहरूको अेक देवता, अेक किस्मका 'होरो' बना दिया है, अुनका लालन-पालन भी कुछ अेसे ढंगका है, कि अुनकी अनेक कमजोरियोंके बावजूदभी वे जनताके लाडले हैं। और अपनी अिस लोकप्रियताको वे खूब जानते तथा महसूस करते हैं। अंदाज यह हुआ कि सरदार पटेलको छोड़कर बाकी लगभग सब मंत्री बहुत नगण्य पड़े। यदि आत्म-सम्मानवाले व्यक्ति हुअे तो अपने सिद्धान्तकी

बाल बहुतर मन्त्रि मंडलमें सहर्ष रुखसत होना पसंद करते रहे। जिस ढंगसे ९ अप्रैल १९५० के पाक भारत समझौतेको लेकर प्रधान मंत्री और नियोगी तथा श्यामाप्रसाद मुखर्जीके बीच मतभेद हुआ और अिन दोनोंने मंत्रि मंडलके बाहर जाना ज्यादा श्रेयस्कर समझा वह बड़ी खतरनाक घटना थी। पण्डित नेहरूजीका बालभी बाका न हो सका। अैसी परिस्थितिका मतलब यातो यह हुआ कि भारतवर्षका प्रधान मंत्री, अमरीकी प्रेसीडेंटकी भांती अपने अन्य सहयोगियोंको अपनी मर्जीका कठपुतली समझता है या यह कि भारतके प्रधान मंत्रीका मन्त्रि-मंडल अैसे लोगोंसे भरा हुआ है कि जिनके आने जानेसे न तो पार्टीमें काओी हलचल होती है और न पार्टी अुन्हें महत्व ही देती है। साथ ही अिस परिस्थितिमें हमारा संविधान जिस सामूहिक जिम्मेदारीका दम भरता है वह भी बरकरार नहीं रहती। जिस ढंगसे ये दो मंत्री रुखसत हुअे अुससे सामूहिक जिम्मेदारीका सिद्धान्त बहुत खटाओीमें पड़ता है।

मन्त्रि मंडलकी सामूहिक जिम्मेदारीके प्रसंगमें हमें अपने संविधानकी अेक और बातका ध्यान रखना आवश्यक है, भारतीय राष्ट्रपतिको संसदके अवकाश कालमें आर्डिनेंस जारी करनेका अधिकार है। अैसा समझना चाहिअे कि वह आर्डिनंस राष्ट्रपति अपने प्रधान मंत्रीकी सलाहपर जारी करेगा। परन्तु यह भी तो संभव हो सकता है कि वह अुसे किसी भी अन्य मंत्रीकी सलाहसे जारी कर दे? राष्ट्रपति सीधे बिना प्रधान मंत्रीके मध्यस्थ हुअ किसी भी मंत्रीको अपने पास सरकारी कामसे बुला और विचार विनिमय कर सकते हैं। अिंग्लैंडमें सम्राटका संबंध प्रधान मंत्रीके सिवा किसी अन्य मंत्रीसे राजकीय मामलोंमें सीधा और प्रत्यक्ष नहीं होता। जो कुछ भी होता है वह प्रधान मंत्रीसे ही। भारतीय संविधानकी धारा संख्या ७८ के अनुसार हमारे देशमें अैसा कोओी बंधन नहीं। मन्त्रि-मंडलकी सामूहिक जिम्मेदारीके प्रसंगमें हमारे संविधानकी यह धारा बड़ी असाधारण है, क्योंकि अिससे गड़बड़की गुंजाअिश है। राजकीय कार्योंमें अिस तरहसे राष्ट्रपतिका हाथ बड़ा सबल और प्रभावशाली होगा। संयुक्त मन्त्रिमंडलके साथ तो यह संबंध गजबही ढा सकता है और राष्ट्रपति लगभग स्वयही प्रधान मंत्रीके भाग्यविधाता बन सकते हैं। यह प्रणाली अंग्रेजी कैबिनेट प्रणालीके विरुद्ध है तथा मंत्रियोंकी स्थितिको भलही मजबूत कर दे, प्रधान मंत्रीको तो वह कमजोरही बनाती है। अिस तरह संविधानने अेक कठिनाओीकी अुलझन उत्पन्न की है। अगर प्रधान मंत्री अपने सहयोगियोंके साथ कुछ सख्ती करे तो मंत्री राष्ट्रपतिके साथ धुरी कायम करके प्रधान मंत्रीको अुलझनमें डाल सकेंगे। अिधर प्रधान मंत्रीको अुलझनमें डालकर स्वयं अथवा अपनेही चंगुलमें फंसे रहनेका प्रलोभन राष्ट्रपतिके लिअे बहुत अधिक है।

बात यह है कि राजनीतिमें सत्ताधिकारके पीछे पार्टियों-पार्टियोंमें, पार्टीके गुट्ट गुट्टोंमें और गुट्टोंके व्यक्ति व्यक्तिमें—कशमकश चलाही करती है। अिसलिअे भारतीय राष्ट्रपतिका भविष्यमें क्या स्वरूप होगा, यह यद्यपि परिस्थितियोंपर अवलंबित है तथापि आज विचारणीय है। भारतके प्रधान मंत्री और राष्ट्रपतिके बीच कशमकशकी परिस्थितियाँ अवश्यही आवंगी। राष्ट्रपति प्रधान मंत्रीकी सलाहसे बाध्य रहे अथवा न रहे यह प्रश्न अितना कानूनका नहीं जितना कि अुचित परंपराओं और रूढ़ियोंके निर्माणका है। हमें यह निर्माण करना होगा, आज कानून चाहे जो कह रहा हो। यह कशमकश तब और भी गंभीर होगी जब राष्ट्रपति और प्रधान मंत्री विभिन्न पार्टियोंके व्यक्ति होंगे। अिन परिस्थितियोंमें राष्ट्रपति अिस्तीफेकी धमकीका अवश्य ही अुपयोग करेंगे। यदि राष्ट्रपतिने अिस्तीफेकी धमकी दी तो संविधान अुस परिस्थितिका क्या अिलाज करता है, यह भी विचारणीय है।

भारतका राष्ट्रपति फिरसे जितनी बार चाहे अुतनी बार चुनावके लिअे खड़ा हो सकता है। अिसमें कोओी संवैधानिक आपत्ति नहीं अुठती। फिर भी अुसका स्थान रिक्त हो रहता है। संविधानको देखनेपर अुसकी चार हालतें जाहिर होती हैं—पहली तो है पंचवर्षीय अवधिकी समाप्ति, दूसरी है मृत्यु अथवा

कोअी निकम्मा बना देनेवाली घोर बीमारी, तीसरी अुसका अिस्तीफा, और चौथी अिम्पीचमेंट-महाभियोग। अिस तरह जगह खाली होनेके छह महीनोंके भीतर अुसका दूसरा चुनाव होना आवश्यक है। अमेरीकामें अिन हालतोंमें वाअिस प्रेसीडेंट प्रेसीडेंट बन जाता है। परन्तु भारतवर्षमें अुपराष्ट्रपतिके रहते हुअे भी नवीन चुनावके बिना स्थायी राष्ट्रपति नहीं हो सकता। अुप-राष्ट्रपति केवल अन्तरिम कालमात्रके लिअे स्थानापन्न राष्ट्रपति हो सकेगा। हमारे संविधानकी यह धारा मुख्य गडबडकी है। होना तो अमरीका जैसा ही था, क्योंकि मान लीजिअे कि कोअी राष्ट्रपति थोड़ा कम अीमानदार है। दूसरा चुनाव जीतनेकी अुम्मीद नहीं दिखती? परन्तु अिसमें पदलोलुपता विद्यमान है? तब वह कुछ समयके लिअे तो अपनी कार्यावधि अवश्य ही हिकमतके साथ बढा सकता है। वह या तो संसद भंग कर देगा या किसी राज्यकी विधान-सभा भंग कर देगा, और जब तक पूरा निर्वाचक-मंडल फिरसे चुनकर नहीं आ जाता तबतक शानसे गद्दीपर बना रहेगा। हमारे संविधानका कहना है कि जबतक दूसरा राष्ट्रपति पदासीन नहीं हो जाता (मौतकी बात छोड दीजिअे क्यों कि अुसमें अुपराष्ट्रपति स्थानापन्न हो ही जाता है) तबतक पुराना राष्ट्रपति अपनी गद्दीपर बना रहेगा। अतः, कतिपय संविधान पंडितोंका सुझाव है कि जो बात राष्ट्रपतिकी मृत्युपर लागू होकर अुप-राष्ट्रपतिको पदारूढ करा देती है, वही बात अन्य तादृश परिस्थितियोंमें संभव होनी चाहिअे।

साधारणतः राष्ट्रपतिका स्थान खाली तो नहीं होगा, अैसी अुम्मीद हमें करनी चाहिअे, परन्तु यदि मानलो किन्हीं कारणोंसे राष्ट्रपतिको जानबूझकर पद खाली करनेके लिअे मजबूर होना पडे तो अुस अवसरपर अुपरोक्त सुझाव काम आवेगा। खाली होनेके कारणोंमें अिस्तीफा सबसे महत्वपूर्ण है, परन्तु अिस्तीफेकी हालतमें अुपराष्ट्रपति पदारूढ हो जाअे अैसी व्यवस्था संविधानने नहीं दी। संविधानमें यही कहा गया है कि दूसरे राष्ट्रपतिके चुनाव तक पुराने राष्ट्रपति ही पदारूढ रहेंगे। यह दोष होगा। यदि वे पदारूढ होनेके लायक ही होते तो अिस्तीफेकी नौबत ही क्यों आती। कहनेका तात्पर्य है कि अिस्तीफेके कारण बहुत जबरदस्त होने चाहिअे। अेक कारण यही बीमारी हो सकती है। अष्टम अेडवर्डके पदत्यागकी जैसी कोअी परिस्थिति भी आ सकती है जब सवैधानिक संकट खडा करनेके बजाय, राष्ट्रपति स्वयं मंत्रिमन्डलके सामने आत्मसमर्पण कर अिस्तीफा देकर चला जाना चाहे। अैसी ही किसी परिस्थितिमें अुसकी पार्टी ही अुसे अिस्तीफा दे देनेके लिअे आदेश दे सकती है। तीसरी यह भी हालत हो सकती है कि आनेवाले अिंपीचमेंटसे बचनेके लिअे वह खुद बाहर चला जावे। चौथी यह है कि राष्ट्रपति प्रधान मंत्री अेवं मंत्रिमंडलको धमकी देना चाहता है। धमकीके जरिये लोकसभाके बहुमतको किसी गंभीर विषयपर भिन्न मत हो नसीहत देना चाहता है कि वे अपनी स्थितिका नाजायज फायदा अुठा रहे हैं, अिसलिअे लोक सभाको भंग करनेके बजाय अुनकी पोल खोलनेके लिअे संविधानके अभिभावककी नाअी वह खुद अिस्तीफा दे।

राष्ट्रपतिका त्याग पत्र

सक्रिय राजनीतिमें सबसे महत्वपूर्ण घटना राष्ट्र-पतिका त्यागपत्र है। क्योंकि अिस तरह राष्ट्रपति किसी सवैधानिक विवादको सामान्य नागरिकोंके दृष्टि-केन्द्रमें लाना चाहता है और साथ ही यह भी चाहता है कि प्रधानमंत्री, मंत्रिमंडल और अुसके बीचके अिस सैद्धान्तिक प्रश्नका निबटारा लोक सभा करे। वह समझ सकता है कि अमुक मसलेमें अुसका मत ठीक है और मंत्रिमंडलका गलत, परन्तु अितना गलत नहीं कि वह सदन-भंगका कदम अुठावे। यह भी हो सकता है कि प्रधानमंत्रीका व्यवहार ठीक न हो, और अुसकी पार्टीके बहुमतका स्वामी होनेके कारण राष्ट्रपति अुसे डिसमिस करके खामख्वाह पूरी लोक-सभाकी ही दुश्मनी और अीर्ष्या तथा कोपका भाजन बन रहा हो। कहनेका मतलब यह कि राष्ट्रपतिके पास जब अपनी शिकायत पेश करनेका कोअी भी अन्य साधन न हो तब वह अवश्य ही अिस्तीफेकी धमकीका आश्रय ले सकता है। अिधर अदालतोंको भी अिन मामलोंमें हस्तक्षेप करनेका हक हासिल न होनेसे

राष्ट्रपति केवल अपना अिस्तीफा ही पेश कर सकता है। कहा जाता है महारानी विक्टोरिया जिस धमकीका कारी लाभ अुठाकर विरोधी मंत्रिमंडलसे भी अपना काम करा लिया करती थीं। अतः यदि अैसा अवसर आ जाय तो राष्ट्रपतिके सामने अिस्तीफा पेश करनेके अतिरिक्त और कोअी अुपाय नहीं। अेक दफा अिस्तीफा दे देनेपर संविधानने अिस्तीफेके वापिस होनेकी कोअी गुंजाअिश नहीं है जो होनी चाहिये थी।

राष्ट्रपतिको अपने मतभेद संसदके सामने रखने और संसदका मत लेनेकी गुंजाअिश दी जानी चाहिये थी ताकि वह अपनी विजयके प्रसंगमें मंत्रिमंडलको डिसमिस करे अेवं पराजयके प्रसंगमें खुद बाहर चला जाअे और निर्वाचन-दलको दूसरा राष्ट्रपति चुननेका मौका दे। कमसे कम अिस्तीफा मंजूर या नामंजूर होनेके बीचकी अवधिमें अुसे पदपर नहीं रहना चाहिये। राष्ट्रपतिका अिस्तीफा पेश होते ही अुपराष्ट्रपतिको पदासीन करा देनेकी सुविधा संविधानमें होनी चाहिये थी।

अिस तरह राष्ट्रपतिके अधिकारोंके समर्थनकी बात करनेपर जिज्ञासा अुठती है कि भारतीय राष्ट्रपतिके डिक्टेटर होनेकी संभावनाअें क्या न बढ़ जाअेंगी? यों ही अल्पसंख्यक, पिछड़ी तथा आदिम जातियोंके कल्याणकी विशेष जिम्मेदारीके कारण अुसे विशेषाधिकार प्राप्त हैं, सैद्धान्तिक पुरस्कारों हासिल हैं तथा प्रतिनिधियोंको संसदमें नामजद करनेका भी अधिकार है। संसदमें अपना संदेश भेजनेका भी अधिकार है। यह अधिकार अंग्रेजी सम्राटको भी नहीं। अिंग्लैंडमें संवैधानिक स्थितिके मुताबिक सारे मंत्री और प्रधानमंत्री पार्लिमेंटमें बहैसियत सम्राटके नौकराके हैं और अुसकी आज्ञाका पालन करते हैं। अगर सम्राट कोअी विधेयक (बिल) अपने संदेशके साथ फिरसे पार्लमेंटके पास भेजे तो अुसका मतलब यह होगा कि अुसे अपने मंत्रिमंडलमें विश्वास नहीं। यही हाल हमारे राष्ट्रपतिका भी समझिये। अिंग्लैंडमें विधेयक (बिल) वापिस भेजनेका अधिकार दूसरे सदनको है, सम्राटको तो सीधा अुसपर दस्तखत करनेका अधिकार है। यदि वह अुससे असहमत है तो पहले [illegible]

डिसमिसकर दूसरा प्राअिममिनिस्टर खोजना पड़ता है। यदि वह नहीं मिलता तो सदन भंग करना पड़ता है और अुस परिस्थितिकी पुनरावृत्तिका खतरा पड़ता है जिसमें स्टुअर्ट सम्राट चार्ल्स प्रथमको मस्तक छेदनकी बलि जनताकी वेदीपर देनी पड़ी थी।

हमारे देशमें भी यही होता था, विधेयक (बिल) वापिस भेजना तो बेकार है। कोअी संसद और कोअी प्रधानमंत्री अपनी सत्ताको दी गयी अैसी चुनौती बर्दाश्त नहीं करेंगे आत्मसमर्पण करना तो दूरकी बात है। यदि राष्ट्रपति किसी विधेयक (बिल) पर अपनी स्वीकृति नहीं देना चाहता तो वे मंत्रियोंको समझा-बुझा सकते हैं। अिसपर भी यदि वे नहीं मानते और राष्ट्रपति अैसा समझते हैं कि वे सही हैं और मंत्रिमंडल गलत मार्गपर तो अिन्हें डिसमिस करना ही अेक मात्र मार्ग है। राष्ट्रपतिको विशेषाधिकारका ही अुपयोग करना होगा।

कतिपय राजनीति-पंडितोंका कथन है, कि राष्ट्रपतिको शासन करना है तो प्रधानमंत्रीकी मदद और सलाह आवश्यक है। मदद लेने तथा सलाह लेनेके अभावमें राष्ट्रपतिकी सारी शासकीय कार्यवाही अवैधानिक हो जायगी। मतलब यह है कि राष्ट्रपति अपने विशेषाधिकारका अुपयोग भी बिना प्रधानमंत्रीकी सलाह और मददके नहीं कर सकता क्योंकि वह अवैधानिक हो जायेगा। यह प्रसंग संविधानके शब्दोंको अुद्धृत किये और अुनका भाष्य किये बिना स्पष्ट नहीं हो सकेगा। अुपरोक्त भाष्य अथवा विवादका सारा आधार संविधानकी ७४ वीं धारा (१) और (२) है। धारा ७४ (१)में लिखा है—There Shall be a Council of Ministers with the Prime Minister at the head to aid and advise the President in the exercise of his function.— राष्ट्रपति द्वारा अपने कर्तव्यका निर्वाह करानेके लिये, राष्ट्रपतिको सलाह तथा सहायताके हेतु प्रधानमंत्रीके नेतृत्वमें अेक मंत्रिमंडल रहेगा। अिसमें अंग्रेजीके Shall शब्दपर सारा दारमदार है। जिसका अर्थ लगाया जाता है कि राष्ट्रपतिको अपना कर्तव्य पूरा करनेके लिये प्रधानमंत्री [illegible]

तात्पर्य यह भी हुआ कि राष्ट्रपति बिना मंत्रि-मंडलकी सलाह और सहायताके अपना कर्तव्य निभानेका अधिकारी नहीं। यदि वह अैसा करता हैं तो संविधानकी अवहेलना करता है। अुसका अिंपीचमेंट भी (जुर्ममें लपेटा) हो सकता है।

अब धारा ७४ (२) को देखिये—The question whether any and if so what advice was tendered by ministers to the President shall not be inquired into any Court—मंत्रियोंने राष्ट्रपतिको कोअी सलाह दी अथवा नहीं, और दी तो कौनसी सलाह दी अैसे प्रश्न देशकी किसी भी अदालतको पूछनेका अधिकार नहीं रहेगा। —अिस धारामें जिस बातपर अदालतोंको प्रश्न करनेका अधिकार नहीं है वह है केवल 'सलाह' परन्तु कोअी मदद मंत्रियोंने राष्ट्रपतिको दी अथवा कौनसी नहीं दी अैसा प्रश्न पूछनेका हर अधिकारी अदालतको अधिकार रहेगा। अिसका मतलब यह होगा कि यह बंधन केवल सलाह-पर लगा है, मददपर नहीं। अर्थात् राष्ट्रपतिको प्रधान-मंत्रीने कौनसी मदद दी और कौनसी नहीं अिस प्रश्नपर सुप्रीमकोर्टको राष्ट्रपतिसे जवाबतलब करनेका अधिकार है। फिर यह अधिकार सिर्फ अदालतोंका है, लोकसभाका नहीं, लोकसभा कमसे कम प्रधानमंत्री अथवा अुसकी सरकारसे, अवश्य ही यह प्रश्न पूछनेका अधिकार रखती है कि राष्ट्रपतिने कौनसी सलाह या मदद ली और कौनसी सलाह या मदद अुन्होंने नहीं ली? जबतक संविधान स्पष्ट रूपसे अुसका निषेध नहीं करता विधान-कारिणी अवश्य ही अुस प्रश्नको अुठा सकती है क्योंकि अुसमें संविधानकी अेक धाराके अर्थका प्रश्न भी तो निहित है। संविधानकी ५३ (२) वीं और ७५ (१) और (४) धाराओंने अिस प्रकारके निषेध प्रस्तुत भी किये हैं जहां राष्ट्रपति बिना किसी सलाह और मंत्रि-मंडलीय मददके अपना कर्तव्य निभानेका अधिकारी है।

कहा जाता है कि चूंकि राष्ट्रपति अपनी स्वतंत्रतासे बिना मंत्रिमंडलकी मदद या सलाहके कर्तव्य निभानेके अधिकारी हैं, अिसलिअे अिस अधिकारके [illegible] परिस्थितिका भी संविधानने अिंतजाम किया है। यदि अुन्हें यह स्वतंत्र अधिकार न होता तो अुनके 'अिंपीचमेंट' की जरूरत ही क्यों पड़ती जिसका संविधानमें साफ-साफ निर्देश है। अिंपीचमेंटका दंड अिसीलिअे है कि राष्ट्रपतिको अुस प्रकारका अेक स्वतंत्र अधिकार है, जिसमें अतिक्रमणकी संभावना है और संभावना होनेके कारण अुसपर अंकुश जरूरी है। यदि अुनके हाथोंमें यह स्वतंत्र अधिकार न होता तो अुसके दुरुपयोगकी संभावना ही कैसे अुत्पन्न होती और 'अिंपीचमेंट' की दफाओंकी भी जरूरत क्यों पड़ती? यदि राष्ट्रपतिको प्रत्येक कदम प्रधानमंत्रीकी सलाह और मददसे अुठाना अनिवार्य होता तो फिर अुसके 'अिंपीचमेंट' की गुंजाअिश और विधानकी जरूरत ही क्यों आती? वह अपने त्यागपत्रकी धमकी देकर भले मंत्रिमंडलको झुका ले; परन्तु वह अुनके मतके विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकता। अिस सबका मतलब यही है कि भारतीय राष्ट्रपति यह सलाह और मदद लेनेको बाध्य नहीं और अिसीलिअे अुसे संविधानकी अभिभावकता निभानेके लिअे 'अिंपीचमेंट'का डर रखना पड़ा।

अिसके विरुद्ध अुत्तर दिया जाता है कि 'अिंपीचमेंट' का अस्त्र संविधानने मौजूद है परन्तु जिस ढंगसे अुसने अिसे संचालित करनेकी प्रणालियां और बारीकियां निर्धारित की हैं अुनसे यह स्पष्ट है कि अुस अस्त्रका प्रयोग क्वचित ही किया जा सकता है। अन्य देशोंका अनुभव भी अिसी तथ्यका समर्थन है कि लाखमें अेक दफा कोअी भी महान् राष्ट्र अपने सर्वोच्च राज्याधिकारीको अिंपीच करने (जुर्म लगाने) की लाचारी स्वीकार करेगा। अत बड़ी किसी संगीन अवहेलना और संवैधानिक अपराधपर ही अिस अस्त्रका अुपयोग होगा।

यदि राष्ट्रपति बहुत ही अिस सलाह और मददका अुल्लंघन कर रहा है तो भारतीय संविधानकी ५३ (२) व धारामें अुसका अिंतजाम है। 'अिंपीचमेंट' की नौबत बिना लाये भी संसदको अधिकार दिया गया है कि वह राष्ट्रपतिको अुसके सारे या अंशतः अधिकारोंसे वंचित कर अुन अधिकारोंके अुपयोग किसी अन्य व्यक्ति या अधिकारीको दे दे। अिस दशाकी मानहानीमें संसदको

राष्ट्रपतिके अपीच' करनेकी जरूरत नहीं। शायद ही कोअी अैसा राष्ट्रपति होगा जो खामख्वाह समदका विरोध मोल ले। परन्तु प्रश्न यह है कि अमरीकी सविधानकी यह नियत्रण (Checks) और तुलन (Balances) की प्रणाली अधिकारोंकी सुस्पष्टता और सुनिर्दिष्टताको घटाओीमें न डाल दे? यह समझना कठिन होगा कि सर्वोच्च और अंतिम अधिकार विधान-कारिणीको है या राष्ट्रपतिको अथवा प्रधान-मत्रीको? यह कहना कि सर्वोच्च अधिकार नागरिक-वर्गको है व्यवहारकी राजनीतिमें कोरी बकवास है। आजकी दुनियामें ससारके किसी भी राज्यमें प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र सफलतापूर्वक न तो चल सकता है और न चलाया जाना अभीष्ट ही है।

अिन शकाओंको अुठानेका अुद्देश्य केवल अितना ही है कि अन्य राजनीति शास्त्री अेव राजनीतिके पडित अिनमे सबधित विवेचनको सागोपाग रूपमें राष्ट्रभाषाम प्रस्तुत करे। हमारा सविधान अभी बिल्कुल बच्चा है अुसे प्रौढ होना है। अिसीलिअे अिन तमाम झझटोंसे गुजरना होगा। सविधानके राष्ट्रपतिका फ्रेंच-प्रेसीडेंट जैसा भविष्य होगा, अथवा अग्रेजी सम्राट जैसा, अमरीकी प्रेसीडेंट जैसा, या अग्रेजी वाअिसराय जैसा, कुछ भी अभी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ये तमाम बात भावी राष्ट्रपतियोंकी प्रतिभा, व्यक्तित्व और अुनकी महानता पर निर्भर हैं। हमारे सविधान निर्माताओंने ससारके सभी सविधानों अेव राज्याधिकारियोंकी श्रेष्ठ विशेषताओंके तत्वोंको समवेत करनेका भरसक प्रयास और महत्वाकाक्षाको सामने रखा है।

(पृष्ठ सख्या १७१ का शेषाश)

होती। कालिदासने कुशलतापूर्वक ऋग्वेदकी करुणान्त मूलकथाको दोनोंके पुनर्मिलन द्वारा सुखान्त बना दिया है।

लेकिन अिस कवि कल्पनाकी योजनासे अुर्वशीके हृदयका काटा नहीं निकला। पुरुरवाका सहवास बीचमें ही छोडकर स्वर्गीय जीवनसे भ्रष्ट सुरसुदरीका मानवीय जीवनके प्रति वही आकर्षण बना रहा और सहस्रों वर्षोंके पश्चात् जब पुरुरवाका पराक्रमी वशज अर्जुन अस्त्र प्राप्तिके लिअे देवलोक गया, तब देवेन्द्रकी सूचनानुसार अुर्वशीने अुसकी तरफ अुत्कठा भरी नजरासे देखा। लेकिन मानव समाजकी नैतिक कल्पनाओंमें डूबे अर्जुनने अुसे अपनी कुलजननी समझकर अुसके प्रेमको अस्वीकार किया। अप्सराअें काल और नीतिकी मर्यादा से परे होती हैं, अिसके सत्यको अर्जुन नहीं समझ सका। प्रणयपीडित अुर्वशीको यह प्रेम-भग सहन नहीं हुआ और "तू वर्षभर नपुसक रहेगा" यह कठोर शाप अुसके सामने विनम्रतासे खडे अर्जुनको स्वीकार करना पडा। अुर्वशीके नैराश्यपूर्ण जीवनका यही अन्तिम सस्मरणीय प्रसग है।

रवीन्द्रने सत्य ही कहा है—

"नहमाता, नहकन्या नहवधु,
सुन्दरीरूपसी हे नदनवासिनी अुर्वशी।"

अिसीलिअे लगता है कि अुर्वशी अुत्तरोत्तर परिणत होती हुअी सौदर्य-कल्पनाओंका प्रतीक है। वह न स्त्री है, और न अप्सरा है।

पतंग कट गयी

श्री श्रीराम शर्मा 'राम'

मियां अशफ़ाकअली अुन व्यक्तियोंमेंसे अेक थे कि जिन्होंने जन्म तो गोदड़ीमें पाया परन्तु अपने पुरुषार्थ और बुद्धि-चातुर्य द्वारा यौवनकी भरी दोपहरी और प्रौढ़ावस्थाकी शाम महलोंमें व्यतीत की। मियां अशफ़ाकअलीके बुज़ुर्ग कभी बैलगाड़ीकी सवारी भी नहीं पा सके, लेकिन अशफ़ाक मियांके पास घोड़ा-बग्घी मोटरें। सचाई यह थी कि भाग्यके थपेड़ोंसे मियांजीने अपने रूपको जिस प्रकार देखा वह अुन्हें अनुपम लगा। परन्तु भाग्य अच्छा था या नहीं यह तो किसी ज्योतिषीको ही पता चले लेकिन अितना अवश्य था कि अशफ़ाक मियां दूरदेश थे, हवाका रुख पहचानते थे, कदाचित यही कारण था कि वे नवाब साहबके दरबारमें नौकरी करके साधारण मुंशीसे वज़ीर बन गये। निश्चय ही अशफ़ाक मियांने जीवनकी दौड़में अपने बहुतसे साथियोंको शिकस्त दी — पराजय प्रदान की। वह अैसे भागे कि जितने तेज़ चले कि अेक ही छलांगमें आगे निकल गये। नवाबकी नाकका बाल बन गये, क्या मजाल कि रियासतका पत्ता अुनकी मर्जीके खिलाफ़ हिले। वे अशफ़ाक मियां कि जिनके घरमें पहननेके लिये ठीकसे कपड़े नहीं, चूल्हे-चौकेमें बरतन नहीं, अुनके अब ठाठ कि बड़े राजा-नवाबोंके हों! चौबीस घण्टोंमें किसी अेक समय नवाब साहबका दरबार लगता परन्तु मियां अशफ़ाकअलीका दरबार अैसा था कि वह प्रातःसे रातके बारह बजे तक चहकता रहता। अुस दरबारका अेक अजीब ठाठ था! मियां साहबकी शानो-शौकत और सामन्तशाहीका वह अेक अैसा नमूना था कि जो बड़े बड़े पाअुंड नवाबोंकी याद दिलाता! अशफ़ाक मियांके हाथमें राज्यके प्रत्येक व्यक्तिका भाग्य था! अुस भाग्यका हंसना रोना बनना बिगड़ना अशफ़ाक मियांकी जिह्वापर निर्भर था।

चूंकि अशफ़ाक मियांका बचपन छप्पर तलेके मोहल्लेमें बीता, अिसलिये अुनके अनुरूप मनोरंजन और खेल-कूदका भी अुन्हें शौक लगा। मियां अशफ़ाकने बचपनमें कबूतरबाज़ी तीतरबाज़ी की। बुलबुल भी बहुत दिनोंतक अुड़ायी। साथ ही पतंगबाज़ीका शौक भी किया लेकिन ज्यों ज्यों अुमरमें पैसा आता गया, जीवनका स्तर बढ़ता गया तो अुनके मनोरंजन खेलोंका शौक भी घटता-बढ़ता गया। कभी वह बिलकुल खतम हो गयीं। परन्तु पतंगबाज़ी कायम रही। पतंग अुड़ानेमें मियां अशफ़ाक अितने चतुर बने कि दूर-दूरके पतंगबाज़ अुनसे पतंग लड़ाने आने लगे। जब जब अुनकी बाज़ी बदी बाज़ी लगती, तो देखने वाले भी सैकड़ोंकी तादादमें आते। पतंग लूटनेवाले भी आसमानकी ओर निगाह अुठाते।

कहनेको वह साधारण मनोरंजन तुक्कलका खेल था परन्तु अुसपर हां, अशफ़ाकमियांका हज़ारों रुपया खर्च होता। जब कोअी विशिष्ट बाज़ी लगती, तो महीनों पहिलेसे पतंगकी डोर तैयार की जाती। कअी कअी आदमी काम करते। अुनका रोज़ा चलता। जब बाज़ीका दिन आता तो विशिष्ट दर्शकोंके लिये खातिरदारीका प्रबन्ध होता। पान सिगरेट तो मामूली बात। कभी खान पीनेका भी अिन्तज़ाम किया जाता।

अिस अवसरपर मियां अशफ़ाकको दम लेनेकी भी फ़ुरसत न होती। दास दासियां ठीकसे काम कर रहे हैं, या नहीं, यह अुन्हें देखना पड़ता। मेहमानोंको पान सिगरेट और मिठाअियोंकी तश्तरियां पहुंचा दी हैं, कोअी रह तो नहीं गया है यह देखना अुनका काम था। यद्यपि बेगमसाहिबा परदेमें रहनेका दस्तूर अख्तियार करतीं परन्तु अपने समय झिलमिल करता हुआ चिलमनसे बना बाहर आ निकल आतीं। वह रूपकी परी थीं वे मेहमान निगाह कभी मेहमानोंकी भा लिये आतीं। किन्तु दिक्कत यह था कि बेगमविशाल जितना बड़ा दाम निरन्तर भुगतना देखना पसन्द नहीं था। कुछ दिन देखना करता

था कि अुसे अवसरपर ही नौकर हाथ साफ करने हैं। मियाँ अशफाकके दोस्त भी अपनी चालबाजीसे न चूकते ! अिसलिअे बगम और मियाँमें अुस पतंगबाजी पर प्राय झगड़ा होता। मनमुटाव होता। कभी कभी दिनोंतक बोलना बन्द रहता। अिसका परिणाम यह होता कि प्राय छोटी मोटी पतंगबाजियाँ चुपचाप ही हो जातीं। अुनका बगमको पता भी न चलने दिया जाता। किन्तु बगमकी जो पुरानी लौंडी थी वह बाहरकी सभी खबरें बगमको सुना देती। वह नित्य बता देती कि आज अशफाकमियाँने कितने पतंग काटे, अुनके कितने कटे! और स्वयं अशफाकमियाँका मत यह था कि पतंग जब आकाशमें अुड़ती है अूँची जाती है तो निगाहें भी अूँची होती हैं। दिमागमें अेक अजीब प्रकारकी थिरकन और सिहरन पैदा होती है। प्रतिद्वन्द्वीका पतंग किस पेंचसे काटा जाअे और कितनी ढीली छोड़ी जाअे और कितनी सरत अिसे पतंगबाज ही जानता है। अिस बाजीका खेलनेवाला दुनियाके जीवन-नपत्रम अन्य खेलनेवाली बाजियोंसे भी अपना सम्बन्ध रखता है। अुनमें विजयी बनता है।

जो हो अिस गर्वोक्तिका कोअी और पतंगबाज प्रमाण दे सके या नहीं परन्तु स्वयं मियाँ अशफाक अपनेको पेश कर सकते थे। और वे अिस बातको बताते कि मैं हूँ अेक सफल पतंगबाज — जीवनका अेक निपुण खिलाड़ी — न हारा न पीछे हटा! चला तो चलता गया। दौड़ा तो दौड़ता गया। मेरा भाग्य खुला तो खुलता गया।

अिस प्रकार जीवनके खेलमें पतंगबाजीके खेलमें सिद्धहस्त मियाँ अशफाक अली जब विजयपर विजय पाते गये, तो वे जल्दी ही सामन्तवादके सभ्य बन गये। जीवनके भोग भोगने लगे। चाँदी और सोनेकी चमकमें चौंधिया गये। यद्यपि अशफाकमियाँकी शिक्षा-दीक्षा अधिक नहीं थी परन्तु अनुभव ज्ञानसे वे माना स्वयं सिद्ध हो चुके थे। चूँकि बचपन गरीबीमें बीता यौवन भी गरीबीके थपेड़े खाकर विचलित हुआ तो तब वह अपने साथियोंसे प्राय अिस बातकी शिकायत करते वे कहते कि गरीबोंका जीवन जीवन नहीं अिस जीवनमें शान्ति और चैन नहीं। मानो मौत। दु:ख पीड़ा। अिस प्रकार अशफाकमियाँ न केवल साथियोंसे कहते अपितु वे नवाबकी अुस रियासतमें बसकर भी नवाबके विरुद्ध जनसमाजको भड़काते! वह विद्रोह खड़ा करते! गाँवों कस्बोंकी सभाओंमें भाषण देते और चिल्लाकर लोगोंको सुनाते, मजदूर मर रहा है किसान मर रहा है! अिनके जीवनका परिश्रम बेकार जा रहा है। अिनका शोषण हो रहा है! नवाब मोटा हो रहा है। अपव्ययके भोग भोग रहा है! वह गुर्रा रहा है! कदाचित् यही कारण था कि मियाँ अशफाक अलीको अेक बार रियासतकी पुलिसने पकड़ा और अपभ्रंशके लिअे जेलमें बन्द कर दिया। अुस जेलमें रहते हुअे अशफाकमियाँने जब कैदियोंका सम्पर्क पाया चोर डकैतोंको निकटसे देखा तो अुन्होंने समझा कि हाँ, चोर चोर नहीं। डाकू डाकू नहीं। गुण्डा गुण्डा नहीं। ये सब पूँजीवादके पथरीले महलोंसे निर्मित किये गये हैं क्षुधातुरके पेटपर लात मारी गयी तो वह मचल गया! लेकिन जब वह निरन्तरके अत्याचारसे पिसने लगा तो अुसमें भी प्रतिरोध पैदा हुआ! पूँजीवादने जिस चालाकीसे अुसका शोषण किया तो डाकू गुण्डे और चोरने अुसी भाँति चलाकीके साथ संचित धनको पाया अुसके मालिकका खून किया! क्योंकि मियाँ अशफाकने अुन दिनों अपने मनमें अिस विचारका भी सृजन किया कि पैसा समाजका है — प्रत्येक व्यक्तिको अुसे भोगने और पानेका अधिकार है! पैसा और श्रम विभक्त नहीं। अतअेव जो श्रम करता है पहिले अुसका अधिकार है। जो श्रम नहीं करता वह अधिकार नहीं रखता। वह चोर बनता है। पैदा भेड़िया! बबर हिंस्र बना हुआ वह विठाय ठगी करता है शोषण करता है। अस्त और दुखी समाजको देखकर ही हीं करता है दाँत निपोरता है मूर्ख!

किन्तु विद्रोही अशफाकके समान नवाब भी चतुर था। वह मूर्ख नहीं था। जब अशफाकमियाँकी जेल अवधि पूर्ण हुअी तो अुसने बाहर आकर देखा कि घरकी अवस्था खराब है! पहिलेसे भी बदतर है! बूढ़ा बाप

मर गया, बुढ़िया माँ है। अुसके पास भी रोटियोंका आधार नहीं। अिसलिअे, अशफाकने पहिले माँकी ओर देखा। जीविकाके हेतु प्रयत्न किया और वह नवाबके यहाँ मुन्शी हो गया। नवाबने देखा और मुसक्रा दिया। अुसने अनायास समझ लिया कि कुत्तेके सामने टुकड़ा डाला और वह पूँछ हिलाने लगा।

किन्तु अिस प्रकारका अुपालम्भ पाकर भी, मियाँ अशफाकके मनका विद्रोह अभी गरम था। वह शांत नहीं हुआ। वह किसी न किसी रूपमें नवाबशाही, सामन्तशाहीके विरुद्ध जहर अुगलता रहा। अशफाक मियाँ कहते रहे, यह क्रांतिका युग है.. विद्रोह करना ही, आजके जन-जनकी वाणी है। अुस वाणीमें आग है। टीस है! तड़प है! क्यों? किसलिअे? अिसी-लिअे न कि मानव त्रपित है, पीड़ित है। अधिकारोंसे वंचित है। धरती तो सबकी माँ है। सभीके लिअे अपने अुदरसे अशीष देती है। अन्न प्रदान करती है। यह विराट-प्रकृतिका स्वरूप, जो शोभायमान है, दिख रहा है, आखिर क्यों? क्या किसी अेकके लिअे! किसी नवाब राजाके लिअे? न, सभीके लिअे! आसमान सभीके लिअे! सूर्य चन्द्रमा सभीके लिअे! अिनमेंसे किसीका भी बँटवारा नहीं! किसीके पास अुपेक्षा या दुराव नहीं! प्रकृति मुसकराती है और सभीको जीवन देती है। नव-जागरणका पाठ देती है! गरीबकी झोंपड़ीमें भी चाँद झांकता है, सूर्य प्रकाश देता है। फिर यह अवरोह क्यों! अिन्सानकी अिन्सानके प्रति अुपेक्षा क्यों! अिन्सान गर्वित क्यों! शोषित क्यों! वैभैमान क्यों!

परन्तु नवाबका पैसा, वैभव, जब मियाँ अशफाकने समीपसे देखा, अुस जगमगाहटमें अपनेको विपन्न पाया, हीन पाया, तो निःसन्देह, अशफाकके मनमें भी यह भाव आया कि वह भी अैसा होता तो? वैभवशाली बनता तो! और मानो अशफाक मियाँका भाग्य अिस भावनाको समझ रहा था। वह स्वयं आँख-मिचौनी करनेके लिअे अुद्यत था। निःसन्देह, वह भाग्य अपने अशफाकके प्रति सहृदय और दयालु बननाही पसन्द करता। फलस्वरूप, नवाबके दरबारमें अशफाक मियाँको अेक-के-बाद दूसरी तरक्की मिलती चली। आमदनीके अन्य जरिये भी खुलने चले। वह अशफाक, जो अेक दिन खुले स्वरमें समाजकी चोरी और लूटका विरोध करता, वह स्वयं मानवके अभावमें खेलने लगा। जिसे राज-दरबारमें काम कराना होता, अशफाक अुसकी जेब देखता। अुस जेबके पैसोंको परखना चाहता। वह यह समझनेके लिअे अुद्यत होता कि जो काम अुससे कराया जा रहा है, अुसका मोल क्या है,–अुसे क्या मिल सकता है। अिस प्रकार मानो पैसेकी मोहक्तताने जो अुच्चाटन-मन्त्र अशफाक मियाको पढ़नेके लिअे विवश किया, निश्चय ही, वह स्वयं अपने-आपमें अितना हलका नहीं था जो आसानीसे भुलाया जा सकता, मन या दृष्टिसे ओझल किया जा सकता! क्योंकि अुस मन्त्रके द्वारा ही तो पैसा आता! और पैसेका अर्थ था, शरीर और मनकी अिन्द्रियोंका भोग! समूचे जीवनका भोग! जिव्हाका भोग! आँखोंका भोग! शरीरका भोग! और अुस भोगकी तृप्तिके हेतु जब अशफाकमियाँ पैसा प्राप्त करने लगे, वह पैसा अविरल धाराके समान बहता हुआ अुनकी तरफ आने लगा, तो तब, मियाँजीने समझा कि हाँ, यही है जीवन-साफल्यका परम और श्रेष्ठ सोपान जो अब पाया है, अब मिला है।

किन्तु कहावत है कि जब आदमी तरक्कीकी ओर आता है, अुसे सफलता मिलती है, तो वह अूँचाअीकी ओर ही देखता है। नीचे नहीं देखता। मुड़कर नहीं देखता। तब वह अनुभव नहीं करता कि अेक दिन वह भी भूखा था, नगा था। झोंपड़ीका वासी था। क्योंकि कामनाओंकी अुस भीड़में, अरमानोंके दहकते हुअे अुन अंगारोंपर चलते हुअे,भला अितनी चेतना कहाँ कि आदमी सोचे, हाय! विवशताओंका अेक दिन वह भी शिकार था। वह भी विषमताओंका दास बना था! अतअेव, मियाँ अशफाकअलीकी जब सफलताअें मिलती चलीं, दृष्टि अूपर होती चली, कामनाअें बढ़ती चलीं तो अुन्होंने पीछे छूटे हुअे साथी-संगियोंको तो भुलाया ही, अपनी गत स्थितिको भी भुला दिया। कदाचित् अिसीका यह परिणाम था कि अशफाक मियाँके अन्तरमें दम्भ जाग गया। मानव-कल्पनाका भाव भी मर गया।

किसान और मजदूरका किस प्रकार शोषण किया जाता है, वह सूर्यकी खुली धूपके नीचे किस प्रकार ठगा जाता है, यह भी, उस व्यक्तिके मनलोकसे तिरोहित हो गया। सचमुच, मियाँ अशफाकने भुला दिया कि किसान और मजदूरके श्रमपर ही इस विश्वका सौन्दर्य जीवित है! मजदूरकी छातीपर ही राज-महलोंका निर्माण हुआ है। अपितु, हुआ यह कि मियाँ अशफाकजीने धीरे-धीरे जब अपनी वाणीका पलटा, तो उससे एक और ही विपरीत ध्वनि प्रसारित हुई—जनता मूर्ख है भेड़ोंके समान, जिन्हें सहस्रोंकी संख्यामें एक ही व्यक्ति सञ्चालित करता है! वह कहते, संसारका निर्माण भले ही मजदूरोंने किया, किसानने अन्न पैदा करके पेट भरनेका कार्य सम्पादित किया, परन्तु, इस सबका परिष्कार और परियोजन लोग दियोंसे नहीं, महलोंमें हुआ। बुद्धिजीवीके द्वारा ही, इस संसारका उदय हुआ.. विज्ञानका जन्म हुआ . अभ्युदय हुआ ...

—तो, अशफाक मियाँ चले और आगे बढ़े। वे मुन्शीसे वजीर बन गये। रियासतके सिरमौर! वैभवका साम्राज्य उनके चारों ओर फैल गया। वे उसके स्वामी बन गये। जिन्दगीकी मौजके दरियामें वे जितने बहे, ऐसे बहे कि जैसे समूचे डूब गये। उनका अस्तित्व बदल गया। रूप बदल गया। जबान बदल गयी। स्वर बदल गया। जब पैसा आया, तो निगाह भी बदल गयी। स्वत्वकी भावना उनके मन प्रदेशमें इस प्रकार जागरित हुई कि मानो वह वहींपर थी। समय पाते ही, पनप गयी। सिर उठाकर खड़ी हो गयी। उसकी वाणी भी घोषित हो गयी।

जनतामें सर्वत्र कहा जाता कि अशफाक दूरन्देश हैं, कुशल नीतिज्ञ! ये राज्यकी दरिद्रता दूर करेंगे। सामन्तशाहीको मार देंगे। परन्तु जब उन्हींको लोगोंने उसी बहते हुए दरियामें तैरता पाया, तो जैसे लोगोंकी साँस रुक गयी...मानव तिलस्मी और बहुरूपिया होनेक अतिरिक्त और कुछ न दिखायी दिया। क्योंकि, लोग तो सोचते थे कि अशफाक मियाँकी वाणीमें बल है, बुद्धिमें बल है, तो क्यों न अपने समाजको उठायेंगे। ये क्या अपनी कही हुई बातोंको भूल जायेंगे! अब क्या अपने दिमागमें निकाल देंगे कि आदमी इसीलिए चोरी करता है कि वह भूखा और नंगा होता है। इसीलिए डाकू, गुण्डा! खूनी। निःसन्देह, लोगोंकी धारणा थी कि मियाँ अशफाकजी अपने उस अमर वाक्यको कभी भी दिमागसे दूर न करेंगे कि खून, चोरी और लूट करनेवाले वे कारखानेदार, सरमायेदार और जमींदार हैं, जो वैभवकी जिन्दगी बितानेके लिए भ्रूण-हत्यायें करते हैं, इन्सानका दमन करते हैं।

परन्तु आह! वे वाक्य मानो पीछे छूट गये, दूर! वे पिछले अशफाक मियाँकी मौतके साथ कब्रमें सो गये! अब वजीरे आजम अशफाक मियाँ हैं। जिनके विशाल भवनमें दास दासियाँ हैं। अस्तबलमें घोड़े-बग्घियाँ हैं। मोटरें हैं। हाथी हैं। वे अब नंगी धरतीपर पैर नहीं रखते। छोटे आदमीसे बात नहीं करते। वह उनतक पहुँच भी नहीं सकता। अमीर-उमरा उनकी महफिलके पात्र हैं! अब वे ही साज बजाते हैं, बोलते हैं। पुराने तराने अब गायब हो गये। नये तराने हैं, नयी हवा है। नया साजोसामान! जिसका प्रभाव यह हुआ कि अशफाक मियाँकी दुलहन बेगम अशफाक . . . हीरे जवाहरातोंके जेवरोंसे तो अवश्य लद गयी, सेवाके लिए दास-दासियाँ भी एकत्र हो गयीं, परन्तु उस नारीके मनका सन्तोष जैसे तिरोहित हो गया! उसका मियाँ जैसे उससे जुदा हो गया। वह किसी और दुलहनका खाविंद बन गया। और उसकी दुलहन थी—पैसा! जीवनका आनन्द! जीवनका भोग! जिसका परिणाम यह हुआ कि बेगम रात-दिन इस बातकी जाननेके लिए बेचैन रहती कि मियाजी आके, सोये, या जागे। क्योंकि अब अशफाक-मियाँ अन्दर हरममें कम आते। अब उन्हें इस बातकी जरूरत नहीं थी कि बीबीके पास बैठकर पैसे-पैसेका हिसाब करते...जीवनकी समस्यापर विचार विनिमय करते! अब पैसेका अभाव नहीं! चूल्हेपर कोई मसा बना है या नहीं, सुबह तो मिली थी रोटी, अब शामको मिलेगी या नहीं,—आदि बातोंको समझने या मालूम करनेकी न आवश्यकता थी, न अवसर था।

यह काम अब नौकरोंका था। बीबीका भी नहीं था। वह तो अब बेगम थी। वजीरे-आजमकी दुल्हन! अब सभी काम नौकरोंके अूपर था। अुनकी अलग-अलग ड्यूटियाँ थी। राज्यसे सभीको वेतन मिलता। किन्तु यह सब तो था, दुल्हनको 'बेगम'का पद भी मिल गया, लेकिन अुस नारीको कुछ और भी चाहिये था। सब कुछ पाकर भी अुसे पति चाहिये था। वह पति वजीर हो, या भिखारी, अुस चाहसे अिसका सम्बन्ध नहीं था। बेगमको सुन्दर वस्त्र मिले, कीमती आभूषण मिले, महल मिला, बाग-बगीचे मिले, लेकिन पति नहीं मिला! अिन चीजोंने पति अुससे ले लिया। वह हो दूर गया। वह व्यस्त बन गया। मानो वह अकेले अनेक बीबियोंका खाविन्द बन गया।

कदाचित, अिसीका यह परिणाम था कि बेगम अशफाक रात-दिन अुदास रहती। चिन्तित रहती। वह रानी बनी हुआी थी, मनसे भिखारिन रहती। चूँकि अशफाक मियाँ फुरसतके समय पतंगबाजी करते, तो तब भी, वह बेगम अपनी अटारीपर चढ़ी, दूरसे, पतिकी अूपर चढ़ी पतंगको निहारती। वह अुस पतंगको कटती देखती, काटती देखती। वह यह भी सुनती कि जब अशफाकमियाँ प्रतिद्वंदीकी पतंग काट देते, तो स्वयं खुशीका शोर मचाते, अुनके साथी भी चिल्लाते। किन्तु जब अुनकी पतंग कटती, तो तब, मानो मौतके समान सभी मौन-बे-मौन ठगे रह जाते। अैसे समय बेगमका मन अैंठता। अुस मनमें जैसे जहरीला धुआँ चक्कर काटता। वह अन्तःप्रदेशमें चारों ओर फैल जाता। बेगमको कुण्ठित और परेशान कर देता। जैसे अुसका दम घोटने लगता। अुस समय बेगमके मनमें आया, वजीरे आजमको जीत प्यारी है...हार नहीं! वह कहती, तो हार किसे प्यारी है! सभी जीत चाहते हैं जीतनेका आनन्द पाना हो, मानों सब अपना अधिकार मानते हैं। वह कहती, और यह आनन्द, यह जीवनका भोग क्या स्थिर है! अिन्सान अमर है! अिन पतंगोंका कहीं अन्त है.. अिन अूँचाअियोंका कोअी छोर है! वह देखती कि सचमुच, अुनके पतिकी महत्वाकांक्षा बढ़ रही है! अिच्छा बढ़ रही है! मानों जीवनमें आँधी आयी है। वह अुड़ा रही है। अूँचाअीपर ले जा रही है...

राज्यमें, व्यवस्था यह बन गयी थी कि नवाबका अस्तित्व न होनेके बराबर रह गया था। मिर्जा अशफाककी प्रभुता सर्वोपरि थी, परिस्थिति यह बनी कि नवाब मौन! मानो अनाथ! जनतामें त्राहि-त्राहि थी। भूख थी। पीड़ा थी। दरिद्रता और बेरोजगारी सर्वत्र फैल रही थी। आर्थिक व्यवस्था प्रायः नष्ट हो चुकी थी। खजाना खाली। अधिकारी वर्गमें सर्वत्र लूट मची थी। अुन्हीं दिनों कि बात है कि मिर्जा-अशफाकने पतंगबाजीकी अेक बड़ी बाजी लड़ी। तैयारियाँ पूरी हुअीं। किन्तु जिस दिन वह बाजी लड़ी जानेको थी, अुससे अेक दिन पूर्व प्रातः ही, अेकाअेक जनता चौंक गयी। हतप्रभ रह गयी। अुस समय सर्वत्र अेक ही आवाज गूँज गयी—मियाँ अशफाकअलीने दूसरे नवाबसे सुलह की। सौदा किया। आधी रियासत अुसे देनेकी बात की और आधीका स्वयं नवाब बनना पसन्द किया। अपने देशके साथ विद्रोह किया! गद्दारी की! परन्तु नवाबको यह राज़ पहिले ही मालूम हो गया। अुसने चतुराअी की। बिना किसी खून-खराबीके, तत्परताके साथ, देशके स्वत्वको रखनेके हेतु मिर्जा अशफाकअलीको गिरफ्तार कर लिया ... .. !



नयी हिन्दी कविता और प्रकृति

• श्री सिद्धनाथकुमार :

वर्ड्सवर्थने कहा था- 'प्रेरणा और अभिव्यक्ति देनेमें प्रकृति कभी नहीं चूकती।' सचमुच अति प्राचीन कालसे प्रकृति मनुष्यकी प्रेरणाका स्रोत रही है। उषाकी मधुमय मुस्कान, फूलोंकी हँसी, तरु-लता-गुल्मोंकी हरियाली आदिने युग-युगसे मनुष्यकी सौंदर्य-चेतनाको गुदगुदाया है, और विभिन्न युगोंके कवि अपनी कला-कृतियोंमें प्रकृतिके अनेक रूपोंको अंकित करते रहे हैं। आज भी प्रकृतिका आकर्षण निःशेष नहीं हुआ है। स्वयं कविके शब्दोंमें—

फूलोंके तनमें हास, हासमें सुरभि-रेख अवशेष अभी,
मन रूप और रस, गंध, स्पर्शकी मनमें चाह अशेष अभी।

—नगेन्द्र

आज भी कवि प्रकृतिके सौंदर्यको देखता है, उससे प्रभावित होता है और अपने काव्यमें स्थान देता है, किंतु आजका कवि प्रकृतिको उसी रूपमें नहीं देखता, जिस रूपमें पिछले युगोंके कवि देखते आये हैं। ऐसा संभव भी नहीं, क्योंकि प्रत्येक युगका प्रकृति काव्य अपने पिछले युगोंके प्रकृति-काव्यसे भिन्न होता आया है। बात यह है कि प्रत्येक युगकी अपनी सौंदर्य चेतना होती है, जिसका जन्म युगकी परिस्थितियोंसे होता है। कलाकार युगकी परिस्थितियोंसे उद्भूत नवीन भावना-ओंके भीतरसे ही प्रकृतिको देखता है। कलाकारके लिये प्रकृतिके वस्तुगत रूपका कोई मूल्य नहीं, अपने संस्कारोंसे आबद्ध होनेके कारण वह उसे देख ही नहीं सकता। अत्याधुनिक युगके हिंदी कवियोंने भी प्रकृतिको अपनी दृष्टिसे देखा है। प्रस्तुत निबंधमें यही दिखलानेका प्रयत्न किया जा रहा है कि हिंदीकी नयी कवितामें प्रकृतिका उपयोग किस रूपमें हो रहा है। 'नयी कवितासे' मेरा तात्पर्य छायावाद-युगके बादकी कवितासे है, जिसे दो खंडोंमें विभाजित कर प्रगतिशील और प्रयोगशील कविता कहा जाता है, पर अपने संपूर्ण रूपमें यह अत्याधुनिक या नयी कविता ही है।

आजका युग अस्तव्यस्तताका है। जीवनका संघर्ष बहुत तीव्र हो गया है। मनुष्यके जीवनमें इतना अवकाश नहीं कि वह शांतचित्त हो दो क्षण कहीं बैठ सके। संसारमें चारों ओर हलचल ही हलचल दीख रही है। दुख, कलुषता, शोषण, उत्पीडन और युद्धकी आशंका आदिसे मानव मन त्रस्त है। इनसे मुक्ति पानेके लिये सब लोग उत्सुक हैं। आजका कवि भी इस मुक्ति-संघर्षमें भाग लेना अपना कर्तव्य समझता है, वह कहता भी है—"जन्म, जीवन, जागरण, संघर्षमें हम गर्व-गौरव भाजन हैं।" ऐसी स्थितिमें प्रकृतिके प्रति कवियोंका क्या दृष्टिकोण रहे, यह एक कठिन समस्या है। क्या जीवन संघर्षको छोड़कर कवि प्रकृतिकी गोदमें बैठकर बाँसुरी बजाये? पर क्या यह पलायन नहीं है? 'प्रसाद' जीने लिखा था—'ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे-धीरे' इसके लिये उन्हें पलायनवादी कहा जाता है। 'ग्राम्यामें' पंतजी कहते हैं—

वहीं कहीं जी करता, मैं जाकर छिप जाऊँ।
मानव जगके क्रंदनसे छुटकारा पाऊँ।
प्रकृति-नीडमें व्योम खगोंके गाने गाऊँ।
अपने चिर स्नेहातुर उरकी व्यथा सुनाऊँ।

जीवनकी दाहक हलचलसे दूर हटकर कुछ क्षणोंके लिये विश्रान्तिकी आकांक्षा स्वाभाविक ही है। अत्या-धुनिक कविके मनमें भी यह भावना उठती है, किन्तु उसे भय बना रहता है कि ऐसा करना कहीं पलायन न समझ लिया जाये। संभवतः इसीलिये 'अज्ञेय'जी कहते हैं—

क्षण भर भुला सकें हम
नगरोंकी बेचैन बुदकती गड्डमड्ड अकुलाहट—
और न मानें उसे
पलायन;

क्षण भर देख सके
आकाश, धरा,
दूर्वा, मेघालो,
पौधे,
लता डोलती,
फूल,
झरे पत्ते,
तितली-भुनगे,
फुनगी पर पूंछ झुकाकर ऋतराती छोटी-सी चिड़िया
और न सहसा चोर कह उठे मन में
प्रकृति वाद है स्खलन
क्योंकि युग जनवादी है।

कविके मनमें आशंका बनी रहती है, फिर भी वह प्रकृतिको देखता है, क्योंकि, जैसा अूपर कहा गया, अभी भी अुसके लिअे प्रकृतिका आकर्षण नि:शेष नहीं हुआ है। वह प्रकृतिके अुस सौंदर्यको देखता है, जो सहज है, काल्पनिक न होकर हमारे यथार्थ जीवनका है। वह शीशपर छोटे गुलाबी फूलका मुरैठा बांधे हां ठिगने चनेको देखता है, पीले हाथोंवाली सयानी सरसोंको देखता है, अुसे खेतोंमें स्वयंवरका मनहर दृश्य दिखायी पड़ता है। पर कभी-कभी वह अपनी युग-भावनाका प्रतिबिंब भी प्रकृतिमें देखता है। कली और बबूलके रूपमें अुसे समाजके दो वर्ग दिखायी पड़ते हैं। बबूलको देखकर तो युगायुग संतप्त प्रपीड़ित जनताके चित्र अुभरकर अुसकी आंखोंके सामने आ जाते हैं—

वह बबूल भी
दुबला, धूल भरा, अप्रिय सा, सहज अुपेक्षित
श्याम वक्र अस्तित्व लिये वह रंक तिरस्कृत,
अपमानोंको मौन झेलता चिर अपमानित,
पथके अेक ओर चुपचाप खड़ा है।
फटे हाल जीवनकी नंगी कठिन दीनता साजे गर्हित
वह बबूल है।

—'मुक्तिबोध'

अपने युगकी धरतीपर खड़ा होकर जिस प्रकार प्रकृतिको देखना नये कविके लिअे पूर्णत अुचित अेवं स्वाभाविक है। कवि अपने युगका प्राणी होता है, अुसे अपने युगकी परिस्थितियोंका साहसके साथ सामना करना चाहिअे, युग-भावनाओंके साथ तारतम्य करना चाहिअे। अैसा करना ही अुसकी शक्तिका परिचायक है। फ्रांसिस स्कार्फने सत्य ही कहा है—"The poet must be of his age, however bad the age may appear if he is not 'modern' when he lives, if he is never comtemporary when he is alive, he never will be contemporary, He will be still-born (Auden and after) अिस दृष्टिसे यह अुचित ही है कि नयी कवितामें युग भावनाकी झलक दिखायी पड़े। नये कवि अिस दिशामें जागरूक हैं, यद्यपि कभी-कभी कोअी स्वर अिसके विरोधमें भी सुनायी पड़ जाता है। अुदाहरणके लिअे नरेशकुमार मेहता कहते हैं— 'हम मनुष्यके आदिकालके काव्यसे भावोंकी विराटता ग्रहण करके सुंदर कल्पना प्रधान साहित्य रच सकते हैं।' यह प्रवृत्ति प्रशसनीय नहीं कही जा सकती। आजके कविको आदिकालके काव्यसे नहीं, युग-जीवनके काव्यसे प्रेरणा ग्रहण करनी है। नयी कविता अिस ओर अग्रसर है। अिसे समझनेके लिअे द्विवेदी काल, छायावाद-काल तथा अत्याधुनिक कालकी प्रतिनिधि कविताओंसे अेक-अेक अुदाहरण देखे जा सकते हैं—

तरल-तोयधि-तुंग-तरंगसे।
निविड़-नीरद थे घिर घूमते।
प्रबल हो जिनकी बढ़ती रही।
असितता-घनता-रवकारिता।

—'हरिऔध'

गर्जनमें मधु-लय भर बोले,
झंझा पर निधियाँ घर डोले,
आंसू बन अुतरे तृण-कणने
मुस्कानोंमें पाले।
कहांसे आये बादल काले?
कजरारे मतवाले?

—महादेवी वर्मा

अचानक अेक-सा है रंग
मानों सैकड़ों ग्रामीण मिलकर

अेक दिन त्योहारके हुरदगमें हैं दग
पीकर भग ।
बजती खजडी अभ्यस्त
नचती बेड़नी सस्ती,
कि ढोलकपर किसीकी मस्त
पड़ती ताल्से टकार,
वैसे ही गगनमें गरजते कुछ मेघ ।

—प्रभाकर माचवे

तीनों अुद्धरण स्पष्ट रूपमें तीन युगोंका प्रतिनिधित्व कर रहे हैं— भावना अेव अभिव्यजना, दोनोंकी दृष्टियोंमे । यहाँ हमारा प्रयोजन विषय-वस्तुकी दृष्टिमे अिनपर विचार करनेका है । तीनों अुद्धरण जानबूझकर मेघ सबधी दिये गये हैं, जिससे स्पष्टत ज्ञात हो सके कि युगका प्रभाव अिनपर कितना गहरा है । प्रथम अुद्धरणमें मेघका सामान्य अेव यथातथ्य चित्र देनेका प्रयत्न किया गया है, दूसरेमें बादल मानव अन्तरकी सरल भावनाओमे भीग-सा गया है, और तीसरेमें वह ग्रामीण-जीवनके अत्यन्त निकट आ गया है । आजके जनवादी युगमें मघाको जिस रूपमें देखना कविकी जागरूकताका परिचायक है । यो, ये अुदाहरण मेघ सम्बन्धी हैं, पर प्रकृतिके विभिन्न दृश्योंमे सम्बन्धित अन्य अुदाहरण भी अिस तथ्यकी पुष्टि करेंगे । रात्रिके सम्बन्धमें गुप्तजीने लिखा था—'शुक्लाभरा रजनी-वधू अभिसारिका-सी जा रही' आजका कवि लिखता है—'कोयलेकी खानकी मजदूरिनी सी रात ।' अिसी प्रकार प्रकृतिके दूसरे चित्रोंमें भी सामयिकताकी झलक देखी जा सकती है ।

आजका कवि अपने किसी समकालीनके ही चित्रको दुहराना अपनी प्रतिभाकी पराजय समझता है । अिसीलिअे प्रकृतिके किसी अेक ही दृश्यका विभिन्न कवि विभिन्न रूपोंमे अुपस्थित करते हैं । अुदाहरणके लिअे सध्याके कुछ चित्र देखिअे —

सोनेकी वह मेघ खोल
अपने चमकीले पखोंमें ले अधकार
अब बैठ गयी दिन अड पर ।

—नरेशकुमार महता

लिखा चला जाता है दिनका सोनेका रथ
अूँची-नीची भूमि पारकर ।

—रघुवीर सहाय

अिस दुनियापर
थककर आधी बेहोश हुअी अिस दुनियापर
छोटेकी पाँखें फैलाती
मँडराती
चमकी चिड़िया-सी
धीमे धीमे
अुतरी आती
यह जाड़ेकी मनहूस शाम ।

—धर्मवीर भारती

नहीं
साँझ अेक असभ्य आदमीकी जँभाअी है !

—केसरीकुमार

औंधे पड़े हुअे नीले दर्पनपर रक्खा
वह चमकीला गोला सरका और गिर गया ।

—श्रीहरि

नयी कविताके प्रकृति चित्रोंमें सामयिकताके अतिरिक्त जो दूसरी बात दिखायी पड़ती है, वह है वैयक्तिकता । यह युग ही वैयक्तिकताका है । आजका जागरूक कवि असामान्य सा दीखना चाहता है वह हमारे सामने कुछ अैसे असाधारण चित्र अुपस्थित करना चाहता है, जो अपनी नवीनताके कारण हमारी चेतनाको झकझोर दें । पहलेके लगभग सभी कवि चरण को 'कमल' मानकर सतोषका अनुभव कर सकते थे, पर और, अिस तरहके कितने अुद्धरण बड़ी आसानीसे दिये जा सकते हैं । विभिन्न कवियोंके प्रकृति चित्रोंमें ही विभिन्नता नहीं, स्वय अेक कवि भी अपने अनुभवको दुहराना नहीं चाहता । वास्तवमें कोअी अनुभव दुहराया जा भी नहीं सकता । अेक क्षण दूसरेसे भिन्न होते हैं, अेक अनुभव दूसरेसे पृथक् । चूँकि आजका कवि अपनी सूक्ष्म अनुभूतियोंको सफल अभिव्यक्तिके प्रति सतर्क है, प्रकृतिका अेक ही दृश्य अुसे विभिन्न

कवियोंमें विभिन्न प्रकारका दिखलायी पड़ता है। अुदाहरणके लिअे श्री गिरिजाकुमार माथुरको ले लें। जिनके लिअे रात कभी 'घुमैली' है, कभी 'शरमीली' है कभी 'जवान' है, कभी 'सीपोंके छाये पर्वतों' है, कभी 'हल्की-हल्की' है, कभी 'ठिठुरन भरी' कभी 'रुक कर जाती हुअी'। मैं नहीं कहता कि अितनी सतर्कता सभी कवियोंमें है, पर यह नयी कविताकी अेक प्रवृत्ति है अवश्य।

अुद्दीपन-विभावके रूपमें प्रकृति आदि-कालसे ही चित्रित होती आयी है। अत्याधुनिक कालमें भी प्रकृतिका यह रूप देखा जा सकता है। अिसके लिअे अेक अुदाहरण पर्याप्त होगा—

> घिर गया नभ, अुमड़ आये मेघ काले
> भूमिके कम्पित अुरोजोंपर झुका-सा
> विशद, श्वासाहत, चिरातुर
> छा गया अिन्द्रका नील वक्ष—
> वज्र-सा, यदि तड़ित्से झुलसा हुआ-सा।
> आह, मेरा श्वास है अुत्तप्त -
> धमनियोंमें अुमड़ आयी है लहूकी धार—
> प्यार है अभिशप्त—
> तुम कहाँ हो नारि?
>
> —'अज्ञेय'

नयी कविताके प्रकृति-चित्रणमें जो अेक बात और दिखायी देती है, वह है प्रकृतिके क्षेत्रका विस्तार। छायावाद-युग तकके प्रकृति-चित्रोंमें केवल पृथ्वी आकाश, नद-निर्झर, गिरि-अुपत्यका, सांध्य-प्रात, लता-कुसुम आदिका ही अंकन होता था, पर आजका कवि अुनके साथ-साथ दृष्टि-पथमें आये हुअे मीनार, लैम्पपोस्ट आदिको भी चित्रित कर जाता है। वास्तवमें, ये प्रकृतिसे पृथक् हैं भी नहीं। कान्देल्ने लिखा है—'To separate in this way natural things from artificial is to make as dangerous a distinction as that between environmental and affective elements in the conscious field or between mental and material qualities-Society itself is a part of nature, and hence all artificial products are natural.' आजका कवि जिस कथनको मान्यता स्वीकार करता है और तथाकथित कृत्रिम वस्तुओंका भी चित्रांकन बड़ी सरलतासे कर जाता है। द्विवेदी-युगीन कविके सम्मुख 'कमलिनी कुलवल्लभकी प्रभा' तरु-शिखापर ही रहती थी, पर अत्याधुनिक युगका कवि देखता है—

> हैं ताम्रवर्ण पश्चिम क्षितिजसे
> पड़ता है धुँधला अुजियाला दूर दूर,
> निर्जीव खम्भोंसे आसमानमें झुके हुअे,
> भारी भवनों, मिलशिखरों, लम्बी पेड़ोंपर।
>
> —गिरिजाकुमार माथुर

अतमें कहा जा सकता है कि प्रकृति अभी भी कविताका अेक प्रधान विषय है, पर नयी कवितामें प्रकृति विगत युगोंसे भिन्न रूपोंमें चित्रित हो रही है। नयी कविताका प्रकृति-काव्य अितना विशिष्ट अेवं स्वतन्त्र है कि अिसे द्विवेदी अेवं छायावाद-युगके भी प्रकृति-काव्यसे सहज ही अलग कर सकते हैं। नयी हिंदी-कविताने जितनी कम अवधिमें अपनी अभिनव वैयक्तिकता स्थापित कर ली है, यह अिसकी शक्तिका द्योतक है।



रानी गाअी डाल्

• श्री जितेन्द्रचन्द्र चोधुरी

नागा पहाड़ हमारे असम प्रान्तका अेक पार्वत्य जिला है। हमारे नागाभाअी अिस जिलेके अधिवासी हैं। ये लोग बड़े सरल सचत्र परिश्रमी तथा स्वाधीनता-प्रिय हैं। जब प्रबल प्रतापी आहोम राजा अिस देशमें राज्य कर रहे थे, अुस समय नागा लोगोंने अपनी स्वाधीनताको सुरक्षित बनाये रखनेके लिअ आहोम राजघरानेके साथ प्रबल युद्ध किया था। यद्यपि ये अशिक्षित हैं, फिर भी शिक्षा प्राप्त करनेके लिअ विशेष प्रयत्न कर रहे हैं। नागाओंके बीच यदि शिक्षाका आलोक भली भाँति पहुँच जाअे तो निस्सन्देह किसी न किसी दिन ये असमिया जातिका मुँह अुज्ज्वल करेंगे।

मोरकचुंग नागा पहाड़ जिलेका अेक अिलाका है। जिसके अेक अज्ञात तथा अगम्य गाँवमें अेक नागा कन्याका जन्म हुआ था जिसने अपने स्वदेश प्रेम और असीम साहस द्वारा ब्रिटिश सिंहके सिंहासनको जिस तरहसे हिला दिया था कि तत्कालिन सभी स्वतन्त्रता प्रेमी भारतीयोंकी दृष्टि अिस महाशक्ति रूपिणी नागा कन्याके अूपर पड़ी थी। वह यह समय था जब सारे भारतमें राष्ट्रपिता गांधीका अमोघ अहिंसा आन्दोलन तथा बंगालका वैप्लविक तूफान आसमुद्र हिमाचल नौकरशाही शासक सत्ताको यही पाठ पढ़ा रहा था कि भाअी अब समझो हम जाग गये हैं तुम्हें हम नहीं टिकने देंगे। आधुनिक शिक्षाका आलोक न होनेपर भी अिस कोमलमति प्रकृतिकी गोदमें पली सरल वालिकाके प्राण कैसे स्वदेश-प्रेमकी अुमंगसे अुद्वेलित हो अुठे थे—या किसीकी कल्पनामें भी असम्भव सा लगता है। ब्रिटिश शासनके समय नागा पहाड़ अेक सुरक्षित अिलाका समझा जाता था और अीसाअी मिशनरीके सिवाय किसी भी अन्यका सहज प्रवेशाधिकार वहाँ न था। भारतके अन्य प्रान्तोंमें क्या-क्या विचार भारतीय जीवनमें हल चल मचा रहे हैं अुनका अुन्हें क्या पता? मिशनरी तो साम्राज्यवादी शासन सत्ताके लिअ कायम रखनेका मकसद लेकर, शिक्षाके बहाने, अुन निद्रित सिंहोंका जातीय मेरुदण्ड तोड़ डालनेके लिअ तत्पर थे। जिस प्रकारकी परिस्थितिमें भी रानी गाअी डालू जैसा अपवाद देखकर यह कहना अनुचित नहीं होगा कि यह नागा जाति ही हमारे पवित्र ग्रन्थ महाभारतमें वर्णित वीरांगना प्रसविनी नागा जाति है जिसकी वीर कन्या अुलूपीका पाणिग्रहण करके वीर अर्जुनने अपनेको धन्य माना था।

रानी गाअी डालू जब किशोरी ही थी कि वह अपनी जातिकी गयी बीती दशा और समस्याओंकी ओर ध्यान देने लगी। यह अनुचित नहीं है कि जातीय मेरुदण्डको तोड़नेवाली अीसाअी मिशनरी शिक्षाने ही रानीकी आँखें सदाके लिअे खोल दीं। रानी सदा ही अेकान्तमें बैठकर अपनी जातिका मंगल कैसे हो सोचती रहती थी। अिस प्रकारका अेकान्तवास और सदाही कुछ स्थाअी गंभीर चिन्ताअें अुपमन्हस्कना रानीकी तपस्या थी। किशोरी गाअी डालू हमें और अेक अपनी जैसी देश भक्त फ्रान्सकी किशोरीकी याद दिलाती है जिनके नाम और कामसे सारा संसार परिचित है। जान आफ आर्क और रानी गाअी डालूमें अितना केवल अिस बातकी है कि जहाँ 'जोन' दैवी आह्वान द्वारा अपने देशकी स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिअे अुठ खड़ी हुअी वहाँ हमारी यह वीर भारतपुत्री गाअी डालूने साम्य, मैत्री और स्वाधीनताको सुप्रतिष्ठित करनेके लिअ भारतीय सनातन प्रथाके अनुसार अमोघ मैत्रानस्त्र अहिंसा, असहयोग व सत्याग्रह आरम्भ किया। वास्तवमें गाअी डालू जैसी देश प्रेमिका संसारके किसी भी देशमें मिलना मुश्किल है।

जब महात्मा गांधी सारे भारतमें अहिंसा, असहयोग आन्दोलनके द्वारा सुषुप्तिके प्रगाढ़ आलिंगनमें निद्रित भारतीयोंमें प्राण संचार कर रहे थे, तब गाअी डालू भारतसे विच्छिन्न अज्ञता, अन्धकार तथा अनुशासन रूपी प्राचीरावद्ध नागा पर्वतकी प्रकृति माताकी अंचलाश्रिता मुद्गधारी तापस कन्या थी। न जाने कैसे बापूकी अमृतमयी स्वाधीनताकी वाणी अिस तापस कन्याकी हृदय-तन्त्रीमें लगकर झंकृत होने लगी। जिस प्र-

अुपनिषदके ऋषि ममस्थाके अुपरात महादर्शन लाभ करके अपने आसपासके सभी जीवोंको पुकारकर अमृत मयी वाणी जगद्हिताय सुनाने लगे थे ' शृण्वन्तु सर्व अमृतस्य पुत्राः "—अुसी प्रकार यह नागा रानी गाअी डालू स्वजाति भाअी-बहनोंको पुकारकर स्वाधीनताकी अमृतमयी वाणी सुनाने लगी । 'स्वाधीनता सबका जन्मसिद्ध अधिकार है", विदेशी शासकोंके हाथ अपना अधिकार छोड़कर लाछित, अपमानित अेव अत्याचारित होना मृत्युके समान है । अुठो, जागो और विदेशी शासनके विरुद्ध अपना प्रतिवाद प्रकट करो । नागा जातिके मृतप्राय प्राणोंमें नव जीवनका संचार हुआ । अिस गाअी डालूकी वाणीका प्रतिध्वनित करके नागा जातिके भिन्न भिन्न भाषा-भाषी लोगोंको सगठित किया। अब नागा जाति ब्रिटिश शासनके विरुद्ध तनकर खड़ी हो गयी । शासकके होश अुड गये । नागा भाअी-बहनें गाअी डालूको देवी समझने लगे । अिन्होंने देवीको अपनी रानी बनाया और वे रानीको प्रजाकी भाँति शासकोंसे अहिंसाकी लड़ाअी लड़ने लगे ।

नागाओंके अिस नव जागरणकी खबर ब्रिटिश सिंहके कानों तक पहुँची तो झट अुन्हें फ्रांसीसी कन्या जोन ऑफ आर्ककी याद आ गयी । वे नागा रानीको फँसानेके लिअे बाजी लगाकर कोशिशें करने लगे । अिस व्यापारमें मिशनरियोंका असीम अुत्साह था । कौन यह नहीं जानता कि साम्राज्यवादके अग्रदूत बाअिबल हाथमें लिये हुअे मुसंज्जित पादरी ही होते हैं । अैसा नव जागरण अुनको बाधक प्रतीत हुआ । अकलान्त परिश्रमके बाद भारतके स्वाधीनता अिच्छुक युवकोंके समान नागा रानी को भी शासकोंका आतिथ्य ग्रहण करना पड़ा । किन्तु हाय! मनुष्य दृष्टिके बाहर कितने पुष्प प्रस्फुटित होकर मुरझा जाते हैं—अुसकी खबर कौन ले । अग्रज कविका यह आक्षेप क्या निराधार है ? सभा समिति करके हमने तो शासकों द्वारा अत्याचारित अपने अुन युवक रत्नोंके प्रति समवेदना प्रकट की थी प्रतिवाद व निंदासूचक प्रस्ताव भी स्वीकृत किये थे, किन्तु अपनी रानीके लिअे कुछ नहीं कर सके । नागाओंको अिस बातकी खबर ही थी कि हमारी अेक रानी असामके कैदखानेमें बंदिनी जीवन बिता रही हैं । ब्रिटिश सरकार अिनके विषयमें अेकदम चुप । अिनका कारावास अनिर्दिष्ट कालके लिये था । किस जेलमें वह रहती थीं कैसे रहती थी — राज-कर्मचारी भी नहीं जानते थे । नागा रानीके विषयमें जो असावधानी जो चुप्पी, शासकोंकी नीतिमें, व्यवहारमें रही वह भारतके और किसी भी राजनैतिक बन्दीके विषयमें शायद ही थी । सो क्यों ? समझना कठिन नहीं कि नागा रानीके भीतर स्वाधीनताकी जो ज्वाला, चरित्रका जो बल अपने जनोंको आदर्शके प्रति खींचनेकी जो शक्ति दिखायी देती थी अुससे शासक डर गये । शासकोंके मनमें रानीका नाम भयंकर भीतिको अुत्पन्न कर रहा था । समय-समयपर राजनैतिक बंदी बिना शर्त कारामुक्ति पाते थे, किन्तु नागा रानीके भाग्यमें कारामुक्ति असभव हो थी । अिस प्रकार रानीके जीवनका अमूल्य समय कैदखानेमें ही व्यतीत हुआ ।

विगत महायुद्धके आरम्भ होनेसे पहले हमारे प्रधान मंत्री पंडित जवाहरलालजी असम प्रान्तमें पधारे थे । गाअी डालूकी चर्चा अुन्होंने सुनी और वे सभी बातें सुनकर अैसे प्रभावित हुअे कि नागा रानीकी प्रशंसामें पंचमुख हो गये थे । भाषणोंमें तथा अपने लेखोंमें श्री जवाहरलालजीने आन्तरिक सहानुभूति तथा श्रद्धा प्रकट की । अुसकी मुक्तिके हेतु यत्न किया गया था । भारतमें स्वाधीनताका सूर्य अुदय होनेके पश्चात् अुन्हें मुक्ति मिली, किन्तु यौवनके प्रारम्भमें जिनको स्वाधीनता प्राप्तिके लिअे कारा-यातनाकी तृष्णा अपने रक्त बिन्दुओंसे बुझानी पड़ी, वह अब किस प्रकार स्वस्थ रह सकती । नागा रानीको देखनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ, किन्तु सुननेमें आया है कि अब वे अपना जरा जीर्ण और क्लान्त जीवन अपने गाँवमें ही काट रही हैं ।

स्वाधीनता संग्राममें जिन जिन महात्माओंने अपना सब कुछ न्यौछावर किया है और हमारे प्रातःस्मरणीय बने हैं, अुनमें नागा रानी गाअी डालूका स्थान प्रमुख है । अपने अपूर्व त्याग स्वीकारके लिअे अेव सत्यानुरागिताके लिअे नागा रानी असमका अितिहास प्रसिद्ध रानी जय मतीके और स्वाधीनता तथा स्वदेशके लिअे वे 'जोन आफ आर्क' के समकक्ष हैं।

मिट्टीकी कहानी

डॉ सुधीन्द्र

सुन चुके हो देवताओंकी कहानी
 सुन चुके हो तुम मनुष्योंकी कहानी—
म सुनाता हूँ सुनो तुम आज मिट्टीकी कहानी।

(१)

क्यों युगोंके बाद कविके कण्ठम यह
 जागकर यों आज मिट्टी बोलती ह?
जो न खोला था किसीने आज तक भी
 अब कविकी लेखनी वह खोलती ह।
दूर मिट्टीके परे देखा कि जिसने
 कह दिया संसार मिट्टी ह कि जिसने
आज अुसको भूलको पहिचान कर यों
 यह हृदयकी मर्म गाँठ टटोलती ह—
फिर नयी कुछ चेतना लेकर जगी है—
 आज मिट्टीकी वही गाथा पुरानी!
सुन चुके हो देवताओंकी कहानी
 सुन चुके हो तुम मनुष्योंकी कहानी
म सुनाता हूँ सुनो तुम आज मिट्टीकी कहानी।

(२)

जल रहे ह दीप जो आकाश क ये
 प्रति निशा दीपावली सी लग रही ह
जानते हो कौन अिनम जल रहा ह?
 और यह क्या ह कि मिट्टी जग रही ह?
कोटि सूरज चन्द्र ग्रह नक्षत्र सारे—
 म कहूँगा अक मिट्टी के सवारे
अिन्द्रधनुषी मेघ जो सुन्दर घिरे ह—
 अक मिट्टी ही अन्हें यों रंग रही ह।
अक मिट्टीके लिअ अूषा मधुर ह—
 अक मिट्टीके लिअ संध्या सुहानी
सुन चुके हो देवताओंकी कहानी
 सुन चुके हो तुम मनुष्योंकी कहानी
म सुनाता [illegible] सुनो तुम आज मिट्टीकी कहानी

(३)

वायु मिट्टीकी कि चलती साँस देखो
 जल कि मिट्टीका लहू जो बह रहा ह
अग्नि क्या ह? प्राणकी अुसकी लपट ह
 शून्य क्यों आकाश? यह मिट्टी कहाँ ह?
जन्तु कि पशु नर दन्य दानव देवता ह
 अक मिट्टीकी कि वह विद्रूपता ह!
और जिस पल पूर्ण अतिमानस जगा ह—
 खिल गया बस फूल मिट्टीका वहीं ह
किन्तु मिट्टी ही अमर ह मूल असकी—
 भूल कर भी ह न यह हमको भुलानी!
सुन चुके हो देवताओंकी कहानी
 सुन चुके हो तुम मनुष्योंकी कहानी
म सुनाता हूँ सुनो तुम आज मिट्टीकी कहानी।

(४)

अुठ गयी मिट्टी हिमालय नाम अुसका
 भर अुठी मिट्टी—वही सागर कहाया।
यह नदी अब मन कि मिट्टीका गला था
 खेत मिट्टीका हिया हो लहलहाया।
घर बसे अुस पर कहो तुम देश आय
 और घर अुजड़ा कि फिर वीरान छाया।
फट पड़ा ज्वालामुखी मिट्टी कुपित यों
 हिल गयी मिट्टी वहीं भूकम्प आया
अक मिट्टीकी यहाँ सब चाल हलचल
 ह अचल मिट्टी किसीने पर न जानी।
सुन चुके हो देवताओंकी कहानी
 सुन चुके हो तुम मनुष्योंकी कहानी
म सुनाता हूँ सुनो तुम आज मिट्टीकी कहानी।

(५)

छत्र-सिंहासन बने नरपाल आये
सज गये ये मुकुट मिट्टीने कि चाहा,
चक्रवर्ती राज—ये सुखसाज सारे—
दुर्ग-गढ़ प्राकार मिट्टीने निबाहा।
किन्तु मिट्टीके खिलौने, रूप भूले
खेल मिट्टीके रहे, ये भूप भूले।
डगमगाये और चकनाचूर हैं वे—
अेक पल ही जब कि मिट्टीने कराहा
यह प्रलय या भ्रांति थी यह कौन जाने ?
तुम सुनो यह आज मिट्टीकी जबानी।
सुन चुके हो देवताओंकी कहानी
सुन चुके हो तुम मनुष्योंकी कहानी-
मैं सुनाता हूँ सुनो तुम आज मिट्टीकी कहानी।

(६)

'मनुज,' मिट्टीकी यही तो चेतना है;
'सभ्यता' क्या है कि मिट्टीके चरण ही—
यह 'कला'—शृंगार मिट्टीने किया है,
और यह 'साहित्य' मिट्टीके वचन ही।
'कर्म' है शासित कि मिट्टीके नियमसे,
'धर्म' मिट्टीके कि संयम और शमसे।
काल क्या है यह कि मिट्टीकी प्रगति ही,
और युग क्या ? अेक मिट्टीके कि क्षण ही,
तुम कहो 'भूगोल' मिट्टीकी प्रकृति है
और यह 'अितिहास' मिट्टीकी निशानी !
सुन चुके हो देवताओंकी कहानी,
सुन चुके हो तुम मनुष्योंकी कहानी-
मैं सुनाता हूँ सुनो तुम आज, मिट्टीकी कहानी।

(७)

वर्ण या श्रेणी न जिसकी गोदमें है—
कौन फिर अुसमें बड़ा है कौन छोटा ?
खण्ड ये अपने न मिट्टी मानती है—
कौन फिर अुसमें खरा है, कौन खोटा ?
ये विकट संग्राम आये—क्रांति आयी,
किन्तु मिट्टी ही वहाँपर शान्ति लायी।
यह नहीं है सूक्ष्म तत्वज्ञान-दर्शन,
यह अिसी संसारका सिद्धान्त मोटा —
'जो कि मिट्टीको झुकाकर सिर चलेंगे-
हार निज अुनको नहीं होगी बुलानी।'
सुन चुके हो देवताओंकी कहानी,
सुन चुके हो तुम मनुष्योंकी कहानी-
मैं सुनाता हूँ, सुनो तुम आज, मिट्टीकी कहानी।

(८)

यह, अमित आलोक आत्माका खिला जो,
अन्धतम जिसने दिशाओंका जलाया—
खिल सका है प्राणकी लौको जलाये—
जब अुसे है स्नेह मिट्टीने पिलाया।
प्रेम प्राणोंमें सभी हँसकर खिलेगा,
रूप जब अुनको कि मिट्टीसे मिलेगा।
दीपका जलना सभी हम जानते हैं—
किन्तु मिट्टीने अुसे जलना सिखाया
स्वर्ग या आकाशका सब प्रेम झूठा
है हमें अब प्रीति मिट्टीकी जगानी।
सुन चुके हो देवताओंकी कहानी,
सुन चुके हो तुम मनुष्योंकी कहानी-
मैं सुनाता हूँ, सुनो तुम आज, मिट्टीकी कहानी।

(९)

है जिया जगमें वही जिसने निरन्तर
रस बनाकर प्राण मिट्टीका पिया है,
दूर रहकर कौन मिट्टीसे बताओ—
अिस जगतमें अेक पलको भी जिया है।
मृत्यु मिट्टीको भला कब कौन पायी ?
वह कि मिट्टीमें स्वयं ही आ समायी।
चर अचर हो या कि जड़ जंगम, जगतमें —
क्या न सबकी मृत्युको जीवन दिया है ?
अेक मिट्टीसे बँधे रहकर जियेंगे—
देव-मानवता कि ओश्वरता अजानी,
सुन चुके हो देवताओंकी कहानी,
सुन चुके हो तुम मनुष्योंकी कहानी-
मैं सुनाता हूँ, सुनो तुम आज, मिट्टीकी कहानी।

(१०)

हूं न मिट्टी तुच्छ, यह नश्वर नहीं है
यह प्रलयसे भी न पल भर हारती है !
कौन मिट्टीको दबाकर जी सका है
यह अमर है—मृत्युको भी मारती है।
जो न मिट्टीमें बसा है या पला है
जो न मिट्टीमें रमा है या ढला है—
चक्रवर्ती हो कि वह जगका विजेता—
आज ओीश्वरको वही ललकारती है,
कौन मिट्टीका भला तूफान रोके,
कौन मिट्टीकी भला टोके जवानी !
सुन चुके हो देवताओंकी कहानी,
सुन चुके हो तुम मनुष्योंकी कहानी-
मैं सुनाता हूँ सुनो तुम आज,मिट्टीकी कहानी।

(११)

और मिट्टीका बताओ मोल क्या है ?
क्योंकि मिट्टीपर सहज अधिकार सबका
जिसलिओ यह सृष्टि मिट्टीपर बनी जो
सब जनोंकी है कि है संसार सबका।
देवता ? होगा—कि ओीश्वर ? कौन जाने।
किधरसे अुतरा ? कहींसे कौन माने ?
जो न अुतरे, किन्तु मिट्टीसे अुठे जो—
ओक अुसमें ही रहेगा प्यार सबका!
जो तुम्हें मिट्टी सुनाओेगी किसी दिन—
यो मुझे यह बात मिट्टीकी सुनानी !
सुन चुके हो देवताओंकी कहानी,
सुन चुके हो तुम मनुष्योंकी कहानी
मैं सुनाता हूँ सुनो तुम आज मिट्टीकी कहानी।

कविता :

यह सीमान्तकी रेत

: श्री 'हृषीकेश' :

नहीं यहां जनरव है,
नहीं यहां कुछ भी कोलाहल
ओप चढ़ रहा फूट रहा बादल,
हो रहा विकास विपतिजका है—
और यही है मादकी रंगकी शान्त शाम।
यही छटा है तनकी, मनकी 'औ जन जीवनकी—
अनिर्वचनीय शाश्वत भावोंकी।
यहीं रुकें क्या ? नहीं,
अरे चलें और आगे भी देखें
क्या धरा यहां है
जो लगे प्रीतिकर, सम्मोहन।
यह सन्ध्या ले रही अुबासी अलसाओसी,
ज्यों कोओ बाला कसमस कर अुठती
अपने ही यौवनमें अुमड़ घुमड़कर।

लो! पहुँच गये हम।
यह सीमान्तकी रेत यहां है।
यह सरल, तरल, मखमल-सी
कोमल रेत,
बनी लहरियों सी अुभर अुभरकर
ज्यों अुभर रहा मानव जीवन,
हाँ प्रिय आओ !
यहीं बैठकर मनका ताप मिटाअें,
अघाअें और अुड़ाअें,
पाअें सब कुछ जीव, प्रकृति, सत्य
और सौंदर्य। नहीं नग्न कुछ
जिससे होगा, यही प्रकृति है
जो जीवन है।



भावना भागीरथीके रजकण !

गुजराती

: श्री "धूमकेतु :

१ हजारो दिवसमांथी अेकज दिवस याद छे. प्रकाशनो अने प्रेमनो ।

२ रोवु होय त्यारे हु अेकांत शोधु छु' हसवु होय त्यारे मित्रो ।

३. समुद्रने किनारे तारो पगरव केम संभळाय छे ? बधेज तु छे अेटला माटे, के बीजे क्याय तु नथी, अेटला माटे ?

४ कोअी नाम माटे जीवे छे, कोअी लक्ष्मी माटे जीवे छे, कोअी स्त्री माटे जीवे छे नीलाछम टेकराओ अूपर कांओ पण हेतु विना रखडवा माटे तो, हु अेकलोज जीवु छु ।

५ घणी वखत रात्रि गंभीर होय छे, अने चळकता तारा तेने वधारे गंभीर बनावे छे, त्यारे अेकज अ-अुकल्यो सवाल हैयामां आवे छे 'आ बधु कोणे कर्यो अने शामाटे ?'

६ अूचामां अूचा शिखर अूपर बेसवा माटे हु अेक हजार ने अेक जिंदगी गुमाववा तैयार छु पण शरत अेटलीज के ते अूचामां अूचु हावु जोअीये ।

७ मधरातना सुमसाम अंधकारमां कोअी वखत जरा जेटलो शब्द थअी जतो सांभळ्यो छे ? आमानो अवाज अेटलोज शांत होय छे, ने अेटलोज वेधक ।

हिन्दी

: अनु०-श्री शंकरदेव विद्यालंकार :

हजारों दिनोंमेंसे अेक ही दिन याद है' प्रकाशका और प्रेमका ।

रोना होता है तब अेकांत खोजता हूँ और हँसना होता है तब मित्रोंको ।

समुद्रके तटपर तेरी पद-ध्वनि क्यों सुनायी देती है ? सर्वत्र ही तू विद्यमान है अिस कारण या अन्यत्र कहीं भी तू नहीं, अिस कारण ?

कोअी नामके लिअे जीता है, कोअी लक्ष्मीके लिअे जीता है, कोअी स्त्रीके लिअे जीता है, हरीभरी पहाडी चोटियोंपर, बिना कारण भटकनेके लिअे तो अकेला मैं ही जीता हूँ ।

अनेक बार रात गंभीर होती है और चमकते हुअे तारे अुसको और भी अधिक गंभीर बनाते हैं, तब अेक ही अनुत्तरित (बेजवाब सवाल) दिलमें अुठता है—"यह सब किसने बनाया और किसलिअे ?

अूँचेसे अूँचे शिखरके अूपर बैठनेके लिअे तैयार हूँ—पर शर्त अितनी ही कि वह शिखर अूँचेसे अूँचा होना चाहिअे ।

मध्य-रात्रिके सुनसान अन्धकारमें कभी जरा-सा हो जानेवाला शब्द सुना है ? आत्माकी आवाज भी अुतनी शांत होती है और अुतनी ही वेधक !

८. घणा प्रकारनी मीठाश दुनियामा छे छाना दर्दनी तोले आवे अेवी मजा अेके नथी।

दुनियामें कअी प्रकारकी मिठासे है लेकिन छिपे दर्दका मुकाबला करनेवाली अेक भी मिठास नहीं।

९ अेणे कह्यु के तमे दुःखथी हार्या छो में कह्यु के तमे विश्वासभंग अनुभव्या नथी।

अुसने कहा—तुम दुःखसे हार गये हो। मैंने कहा—तुमने विश्वास भंगका अनुभव नहीं किया है।

१० स्वर्गमा ने पृथ्वीमा बहु फेर नथी। श्रम ने प्रेम बे साथे होय त्या स्वर्ग अ बे जुदा अेटले पृथ्वी।

स्वर्गमें और पृथ्वीमें बहुत अन्तर नहीं है। श्रम और प्रेम दोनों जहाँ साथ साथ होते हैं वहाँ स्वर्ग है ये दोनों जहाँ अलग हो जाअें वहाँ पृथ्वी।

११ वियोगना आसुने चूमनार बालक छे त्या सुधी फिलसुफीना पोथा कोण अुघाडे ?

वियोगके आसुओंको चूमनेवाला बालक (जब तक) विद्यमान है तबतक दर्शनशास्त्रके पोथोंको कौन खोले ?

१२ नीरस संयम अे अपघात छे। धर्मना अचळामा अे छुपायेलो छे अेटलुज।

नीरस संयम अपघात है। भेद अितना ही कि वह धर्मके अचलमें छिपा हुआ है।

१३ आवेश ज्यारे अुल्लासनो झभ्भो पहेरे छे त्यारे, अने पुराणी ज्यारे अेकज सूरे कथा वाचे छे त्यारे अेक अदृश्य मूर्ति धीमे-धीमे स्था सतोष थी हसे छे, अने ते मूर्ति सैतानती छे।

आवेश जब अुल्लासका चोगा (पोशाक) पहनता है और कथावाचक जब अेक ही स्वरमें कथा बाँचता है, तब अेक अदृश्य मूर्ति सतोषके साथ मन्द मन्द हँसती है और वह मूर्ति शैतानकी है।

१४ निराशाना समुद्र जेवा मोटा रणमा तने संभारी संभारीने रडवानो जे मजा मळे, ते मजाने खातर, हुं धोळा फूल, रूपेरी चाँदनी अने कोयलनो सूर मणे जता करुं।

निराशाके समुद्रके समान बड़े रेगिस्तानमें तुझको याद कर-करके रोनेमें जो मजा आता है, अुस मजेके लिअे मैं सफेद पुष्प, रुपहली चाँदनी और कोयलका स्वर, अिन तीनोंको वारनेके लिअे तैयार हूँ।

१५ दुनियानु मोटामा मोटु करुण नाटक माणसना हृदयमां हरेक पळे भजवाअी रह्यु छे।

समारका बडेसे बड़ा करुण नाटक मानवके हृदयमें प्रतिपल अभिनीत हो रहा है।

१६ मने बे चीज सौथी वधु वहाली छे श्रम अने दुःख। दुःख विना हृदय निर्मल थतु नथी श्रम विना मनुष्यत्व समजातु नथी।

मुझे दो चीजें सबसे ज्यादा प्रिय हैं—श्रम और दुःख! दुःखके बिना हृदय निर्मल नहीं होता और श्रमके बिना मनुष्यत्व नहीं समझा जा सकता।

१७ अेणे कह्यु के तमे निराशावादी छो। मे कह्यु के साथ बेसीने घडेलु स्वप्न छिन्न भिन्न करनार कोअी मित्र तमने मळ्या नथी।

अुसने कहा—तुम निराशावादी हो! मैंने कहा—साथमें बैठकर गढ़े हुअे स्वप्नको छिन्न भिन्न करनेवाला कोअी मित्र तुमको मिला नहीं है।

१८ हु निराश थयो छु ? पराजय थी हाफी गयो छु ? ना, ना, अेवु कांअीज नथी! विश्वासना समुद्रमा पडेलु, झेरनु अेक बिन्दु धोवा माटे, आटली जहेमत अुठावी रह्यो छु।

मैं निराश हुआ हूँ ? पराजयसे हाँफ गया हूँ ? न, न, अैसा कुछ भी नहीं! विश्वासके समुद्रमें पड़े हुअे विषकी अेक बूँदको धोनेके लिअे अितनी जहमत (मुसीबत) अुठा रहा हूँ।



[सूचना —'राष्ट्रभारती' में समालोचनार्थ पुस्तकोंकी दो-दो प्रतियाँ ही सम्पादकके पास आनी चाहिये।]

'रजवाड़ा'— लेखक —श्री देवेन्द्रदास माथुर बी अेम । प्रकाशक—आत्माराम अेण्ड सन्स दिल्ली ६ । पृष्ठ संख्या-१४९, मूल्य-५)रु.।

यद्यपि विलीनीकरणके बादसे भारतके रजवाड़ोंका वह राजनैतिक पुराना महत्त्व नहीं रह गया फिर भी अुनका अपना सांस्कृतिक अेवं अैतिहासिक महत्त्व तो तबतक बना रहेगा जबतक लोग अितिहास पढ़ते रहेंगे। भारतीय वीरताके अितिहासमें राजपूतानाका निस्सन्देह अपना अेक विशिष्ट गौरवपूर्ण स्थान है।

पुस्तकके रजवाड़ा नामसे लेखकका संकेत राजस्थानकी ओर ही है और लेखकने भूमिकामें 'राजस्थानसे अपने परिचय' की बातका जिक्र करते हुओ अिसका अुल्लेख भी किया है।

राजदरबारोंमें अधिकांशतः सर्वत्र ही विलासताके दर्शन होते हैं और राजस्थानके दरबार भी अिससे अछूते न थे फिर भी राजस्थानका गौरव 'सुन्दर, राजपूतोंकी वीरतापूर्ण कहानियोंमें ही निहित है, अिसीसे प्रभावित होकर लेखकको कहना पड़ा कि 'रजवाड़ा तो वीरतापूर्ण कहानियोंका देश है। राजस्थानने शृंगारके अुन्मान रूपको भी निखारनेका खूब मौका दिया है। लेखक द्वारा राजदरबारोंकी वर्णित घटनाओंसे हमें अिस सम्बन्धमें पर्याप्त जानकारी मिलती है।

'हल्दीघाटीका युद्ध' यहाँकी अत्यन्त प्रसिद्ध मान-सम्मान-दर्शक वीर गाथा है, मीराका अवतार यहाँकी भक्तिका चरम अुत्कर्ष है और पद्मिनी राजस्थानी सौन्दर्यकी अप्रतिम प्रतीक ! लेखकने अिन सभीके सम्बन्धमें अैतिहासिक दृष्टिको सामने रखकर काफी प्रकाश डाला है। अुनके वर्णनकी भाषा अत्यन्त प्रौढ़ अेवं प्रवाहपूर्ण है। लेखककी अैतिहासिक दृष्टि तथा तत्सम्बन्धी अुसके गम्भीर अध्ययनकी छाप हमें पूरी पुस्तकमें देखनेको मिलती है।

अभिसारकी झलक, हवाओी यात्रा, रसिक जीवन, दरबारी नृत्य, रूप-श्री रानी पद्मिनी, प्रेम-योगिनी मीरा आदि सत्रह विभिन्न शीर्षकोंके अन्तर्गत पुस्तक बँटी हुओी है और ये सभी शीर्षक अपने नामसे ही राजस्थानकी प्राचीन गौरव-गाथाके पूर्ण द्योतक हैं।

राजस्थानसे विदाओीके समय "नमस्कार चारण-कवि ! नमस्कार वीर-गाथा ! नमस्कार रंग-रंगीला रजवाड़ा !" अिन तीन अुद्गारोंमें ही लेखकने राजस्थानके अितिहासके तत्त्वको भली भाँति निहित कर दिया है।

पुस्तकमें राजस्थानके प्रमुख-प्रमुख दर्शनीय स्थलों, नृत्यों, चित्र कलाके प्राचीन नमूनों तथा वेषभूषाओंके चित्र दे देनेके कारण पुस्तक अधिक आकर्षक अेवं अुपयोगी हो गयी है।

छपाओी साफ-सुथरी तथा आवरण आकर्षक है।

—मदन मोहन शर्मा, अेम अे, सा.र.

कविता — [ओड़िया भाषा तथा ओड़िया लिपिमें प्रकाशित द्वैमासिक पत्रिका कविता । प्राप्तिस्थान व्यवस्थापक— अग्रणी प्रकाशनी ४ अ आशुच लेन कलकत्ता—१२]

इस द्वैमासिकका अब सकल्प नामसे निकाला जाता है । आलोच्य अकका नाम शरत सकल्प है (गत सितम्बर-अक्टूबर १९५३ के लिए) । सपादकोंके नीचे दो सज्जनोंके नाम हैं श्री दुर्गाचरण परिडा और श्री कृष्णचरण बेहेरा । श्री दुर्गाचरण ही इसके सपादक हैं । प्रतिप्रतिका मूल्य ६ आना और वार्षिक मूल्य २ रुपया । इस पत्रिकामें केवल कविता या पद्य रचनाओंकी आलोचना की जाती है ।

प्रस्तुत अकमें हिन्दीके दो परिचित प्रसिद्ध कवि निरालाजी और पन्तजी की कविताओंके दो अनुवाद ओड़िया भाषामें दिए गए हैं । ये निराला की 'भिक्षुक' शीर्षक कविता तथा पन्तजीके 'गीत' के श्री विनायके अनुवाद हैं ।

विश्वभारती' शान्तिनिकेतनके हिन्दी अध्यापक श्री शिवनाथ एम ए द्वारा लिखित वर्तमान हिन्दी कविता शीर्षक एक छोटा सा आलोचनात्मक लेख भी इसी अकमें प्रकाशित हुआ है । शिवनाथजीने थोड़ेमें वर्तमान हिन्दी कवितापर अपने विचार प्रकट किए हैं । इससे ओड़िया भाषी पाठकोंको वर्तमान हिन्दी कविताकी गति विधिका कुछ परिचय प्राप्त हो सकेगा । आलोचकके शब्दोंमें ओड़िया भाषामें ही पढ़िए

वर्तमान हिन्दी कविता सम्बन्धरे जाणिबा पूर्वरु आमर अतिकि बुझिबा उचित ये आधुनिक हिन्दी साहित्य ओ काव्य सबु समय ओ समाज सहित गतिशील । भारतीय जीवन ओ समाजर सुखदुःख हर्ष उल्लास आशा आकांक्षा समस्त आधुनिक साहित्यरे अभिव्यक्त होइअछि । आधुनिक हिन्दी साहित्य वर्तेवले जन जीवन विमुख होइनाहि । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र मैथिलीशरण गुप्त प्रेमचन्द्रङ्क साहित्य एहार उज्ज्वल प्रमाण । इत्यादि ।

—लो प्र पा

साभार प्राप्त

(निम्नांकित पुस्तकें और मासिक पत्र साहित्यालोचनार्थ में समीक्षार्थ प्राप्त हुए हैं । इनकी समीक्षाएं समीक्षकोंके द्वारा प्राप्त होते ही प्रकाशित की जायगी ।)

पुस्तकालय सन्देश (मासिक पत्र) सपादक श्री श्रीकृष्ण खडेलवाल । प्रका०—पुस्तकालय सन्देश कार्यालय पो०—पटना विश्वविद्यालय पटना (बिहार) । पृष्ठ स ख्या अनुमान २८ मूल्य ।)

भारतीय राष्ट्रीयता (लेख सग्रह) —श्री चेतदत्त विद्यार्थी । प्रका०—साहित्य रत्न भण्डार आगरा । पृष्ठ स ख्या अनुमान १७० मूल्य २)

भारती (मासिक पत्र) जनवरी ५४ वर्ष १ अक १ —सपादकद्वय—श्री विट्ठल शर्मा चतुर्वेदी श्री बालकृष्ण बलदुवा । प्रका० स्थान—२५ २९ बिरहाना रोड कानपुर । पृष्ठ स ख्या अनुमान ६८ मूल्य ॥)

सयुक्त राजस्थान (मासिक पत्र) —प्र सपा०—श्री श्यामकरण । प्रका०—सार्वजनिक सम्पर्क कार्यालय राजस्थान सरकार जयपुर । पृष्ठ सख्या ८८ मूल्य)

प्रदीप (मासिक पत्र) नव दिसबर ५३ का चड गढ विशेषाक —प्र सपादक श्री देवदत्त वर्मा । प्रका० प्रदीप कार्यालय शिमला २ । पृष्ठ सख्या ३० मूल्य ।)

मरुवाणी (मासिक पत्र) —सपा —श्री रावत सारस्वत । प्रका०—राजस्थानी भाषा प्रचार सभा जयपुर । पृष्ठ सख्या अनुमान ६६ मूल्य १)



"अेक अक्षम्य अपराध!" :

अभी शुभ दिन, लखनअूसे हमारे अुत्तर प्रदेशके परमश्रेष्ठ राज्यपाल, और निस्सन्देह जो भारतीय साहित्य और संस्कृतिके क्षेत्रमें अपना सर्वोच्च स्थान रखते हैं अुन श्रीमान् क० मा० मुन्शीजीने आकाशवाणी द्वारा भारतकी लोक-कल्याण भावनासे प्रेरित होकर अपना सन्देश प्रसारित किया कि—'अंग्रेजी अपनी भाषा है, सबसे महत्वपूर्ण भाषा है वह, और जिस देशमें अुसकी अुपेक्षा करना अेक अक्षम्य अपराध होगा!'

और श्री मुन्शीजीके अिस आकाश-भाषणके पश्चात् ही बंबअी प्रादेशिक कांग्रेस कमेटीके सदस्य, जो स्वयं किसी भी राज्यपालसे कम नहीं हैं, स०का० पाटील साहबने भी फरमा दिया कि—'कोअी भाषा परकीय नहीं है। जिस देशमें अेकताकी निर्मिति और स्थापनाका काम अंग्रेजोंने किया है अत वह विदेशी कदापि नहीं है।'

लीजिअे, अंग्रेजी भाषाके बिना जिस देशमें अेकता नहीं हो सकती और भारतका अुद्धार नहीं हो सकता! अेकताका भाव समस्त देशमें अुत्पन्न करनेके लिअे और अुसे मजबूत बनाये रखनेके लिअे अब अंग्रेजीका ही चतुर्दिक् समर्थन किया जा रहा है। और अभी-अभी १९४७ से पहले, अैसे महापुरुष हमारे बीचमें, भारतीय जनताके बीचमें, मंचपर आ-आकर अुद्घोषित करते थे कि भावनासे भाषाका बहुत अन्योन्याश्रयी सम्बन्ध है। यदि अंग्रेजीको अपनाओगे तो पराधीन बने रहोगे और हममें अंग्रेजी भाव ही पैदा होंगे। हमारी बोली, खाना-पीना, अुठना-बैठना, सोचना आदि सभी अंग्रेजों सरीखे होंगे। हममें भारतीयताका स्वाभिमान बिलकुल न रहेगा।

और अिस 'आकाशवाणी' भाषणको जब हम मन ही मन गुन रहे थे तब अंग्रेजोंके पुरखा स्व. मैकाले महाराजकी गहरी चतुराअी हमारे स्मरणमें आ गयी और झट रोमन साम्राज्यवादके अेक छोटेसे अितिहासकी घटना हमारे नेत्रोंके सामने खड़ी हो गयी। रोमने सिलेसिया देश-पर आक्रमणकर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। रोमन पार्लमेंटने अेक चतुर चालाक सिसरो नामक सामन्तको वहाँ राज्य करनेके लिअे भेजा। सिसरो सिलेसियाका गवर्नर बनकर गया। बड़ा चतुर था वह। अुसने जाते ही सारे सिलेसियामें लगभग १५० विद्यालय स्थापित कर दिये। अितना ही काम करके सिसरो अपना राज्यकाल समाप्त कर अपने देशको वापस चला आया। रोमकी पार्लमेंटमें, पार्लमेंटके सदस्योंने सिसरोपर दोषारोपण किया कि अुसने रोमन साम्राज्यकी वहाँ जड़ जमानेके लिये कुछ भी नहीं किया, अुलटे अत्याचार करके अुनकी प्राचीन सभ्यता और संस्कृतिको

मटियामेट क्यों नहीं कर डाला जिससे वे हमारे हमेशाके लिअे गुलाम बन जाते। रोम साम्राज्यकी जड जमानेके लिअे तुमने वहाँ क्या किया? लेखा-जोखा मागा गया तो सिसरोने अपनी सफाअी देते हुअे क्या कहा, अितिहासविज्ञ मुन्शीजी, पाटीलजी, हम अच्छी तरह जानते हैं और जानते हैं ससारके सभी समझदार कि सिसरोने अपनी सफ़ाअी पेश करते हुअे कहा, 'मैंने रोम साम्राज्यकी लैटिन भाषाके १४० या १५० विद्यालय स्थापित कर अपने साम्राज्यकी बहुत बडी सेवा की है। मैंने सिलेशिया देशकी भावी पीढीको, सिलेशियन लोगोंकी भावी सतानोंको हमेशाके लिअे रोमन बना लिया है। वे लोग लैटिन भाषा अपने स्कूलों-कालेजोंमे सीखेंगे, रोमन पोशाक पहनेंगे, रोमन सभ्यता सीखेंगे, अिस तरह अुनकी रग-रगमें रोमन सभ्यता समा जाअेगी। अुन लोगोंमें अपनापन कुछ भी न रहेगा।"

अेक छोटासा यह दृष्टान्त है, जो काफी है। अंग्रेजी भाषासे तथा विश्वकी किसी और भाषासे फ्रेंच, जर्मन या रशियन और अमेरिकन भाषासे हमारा विरोध नहीं है। देशकी अुन्नतिके लिअे किसी भी भाषासे आवश्यक अेव अुपयोगी ज्ञान-विज्ञान प्राप्तकर देशको हम आगे बढाअें। किन्तु यह तो सर्व निश्चित है कि जर्मनीकी, जापानकी या रशियाकी और नव जागृत चीनकी अुन्नति वहाँ अंग्रेजी भाषाके कारण नहीं हुअी निजभाषाके ही कारण हुअी है। आधुनिक भारतके महात्मा हमारी आँखे खोल गये थे और स्वदेशीश और स्वभाषाका महत्व समझा गये थे कि अिस विशाल देशमें भारतीय सभ्यता और भारतीय भावनामें अेकताकी स्थापना करनी हो, अिस देशमें नाना जाति और नाना धर्मके लोग अेक्य भावसे रहे तो अंग्रेजी शिक्षाका जो अधा मोह हममें आ गया है अुसे छोड देना होगा।

राष्ट्रपिता गाधीने वर्तमान अँग्रेजी शिक्षाकी अेक ढगकी बुराअी बतलायी था और अुन्होंने कअी बार कहा भी कि वे अपनी तमाम ताकत अँग्रेजी-शिक्षाके नाश करनेमें लगा रहे हैं। और वे कहा करते थे कि अगर अँग्रेज भारतमें न होते तो यह देश ससारके अन्य देशोंके साथ-साथ बहुत आगे बढ जाता। अँग्रेजी शिक्षाके साथ अँग्रेजी साहित्यके विवेकपूर्ण अध्ययनके लिअे महात्माजी प्रेरणा करते थे। वे अपने रहते अँग्रजी राज्य नष्ट कर गये और कहीं कुछ वर्ष, हमारे सौभाग्यसे वे हमारे बीच कुछ थोडा और रह जाते, तो अँग्रेजी शिक्षाको भी नष्ट कर डालते।

यह अुर्दूका आन्दोलन :

जितना खतरनाक और अवाछनीय यह पाकिस्तान अमेरीकाके बीचका सैनिक सहायता समझौता है, अुतना ही खतरनाक और अवाछनीय है यह गडे मुर्दे अुखाडने जैसा अुर्दूका आदोलन।

देश जब स्वतत्र हुआ अुसका नया सविधान बना। अुसे अुन लोगोंने बनाया जो अिस विशाल देशके दूरन्देश, दिल व दिमाग वाले सच्चे प्रतिनिधि थे। अुस विधानके अनुसार भारतके सभी जन्मसिद्ध अधिकार मान्य होकर दुनियाके सामने आये। हमारे सविधानने अपने देशके लिअे जिन चौदह भाषाओंको ग्रहण किया, ये हैं —सस्कृत, असमिया, ओडिया, बगला, पजाबी, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगु, कन्नड, मलयालम, काश्मीरी, अुर्दू और हिन्दी। देवनागरीमें लिखी जानेवाली हिन्दीको राष्ट्रभाषाका पद मिला। हिन्दीको सविधानमें अेक अँमी

व्यापक भाषा मान लिया गया जिसमें अुसकी बोलियों और अुपबोलियोंका अन्तर्भाव हो जाता है। काश, अुर्दू भी तब कहीं दाखिल-दफ्तर कर दी गयी होती!

किन्तु हमारे धर्म या सम्प्रदाय निरपेक्ष (सिक्युलियर) संविधानने अुन सारी संकीर्णताओं, दोषों और बुराअियोंको दूर रख अुर्दूको भारतीय भाषाओंके बीचमें अुदारतापूर्वक स्वतंत्र रूपमें रखा। विधानने साफ साफ निर्देश भी कर दिया कि हमारी राष्ट्रभाषा सब प्रांतीय भाषाओंसे कुछ-न-कुछ नये संस्कार ग्रहण करेगी, अुसका तब स्वतंत्र विकास होगा और अुसका बेहद शब्द-भंडार भी बढ़ेगा और तब वह मालामाल हो जाअेगी। हिन्दीने अपने राष्ट्रीय रूपमें, हजार-बारह सौ वर्षोंसे चली आती परम्परामें, हमेशा अपनी समन्वयात्मक अुदारता ही कार्य-रूपमें बतलायी है। चंद बरदाअी, खुसरो, कबीर, तुलसी, सूर, जायसी, रहीम, रसखानसे लेकर, भारतेन्दु, महावीरप्रसाद और आधुनिक युगके प्रतिनिधि—मैथिलीशरण गुप्त और प्रेमचंद तक हिन्दीने अरबी, फारसी, तुर्की, अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओंके हजारों शब्द अपने कुटुम्ब-परिवारमें शामिल कर लिये कि हम अुन्हें पराया नहीं समझते। अुर्दूको हमने बाहरकी भाषा कभी नहीं माना। अुर्दू हिन्दीका अेक विशेष रूप मात्र है, अेक स्टाअिल या शैली, जो फारसी लिखावटमें बाअीं ओरसे दाहिनी तरफ लिखी जाती है, सीधी नहीं चलती, जरा नाज-नखरेके साथ चलती है। यदि कठिन संस्कृत और अरबी-फारसीके शब्द अुसमें बहुतायतसे काममें न लाये जाअें और सर्वसुलभ अेक लिपि नागरीमें लिखी जाअे तो हिन्दू और मुसलमान ही क्यों, सभी अुसे समझेंगे और अिस्तेमाल करेंगे। सदा संस्कृतके अत्यंत निकट रहनेवाली बंगला, मराठी, गुजराती, अुड़िया, तेलुगु, मलयालम् आदि प्रादेशिक भाषाओंके साथ हिन्दीका भी सम्बन्ध है। अुन अुन प्रान्तोंमें भी प्रादेशिक भाषाओंमें अरबी-फारसीके अनेक शब्द संस्कृत शब्दोंके साथ जा बैठे हैं। तब बंगला, मराठी, अुड़िया, तेलुगु आदि भाषाअें अपनी ही मातृ-भाषाके समान बोलनेवाले तत्-तत् प्रान्तवासी मुसलमान अुन भाषाओंमेंसे प्रचलित संस्कृत शब्द चुन-चुनकर अुनका बायकाट थोड़े ही करते हैं? और जो करते होंगे तो वह अुनकी मनहूस ना-समझी ही होगी। बम्बअी, कलकत्ता, दिल्ली और मद्रासमें हम अैसे मुसाफिरों और सौदागरोंसे मिले हैं जिन्होंने बताया कि मध्य अेशियामें भी दूर-दूर तक यह हिन्दी जबान या सरल अुर्दू कह लीजिअे अुसे, समझी जाती है।

हमें काफिर और म्लेच्छ, अिन दो दुर्भावनाओंको अब छोड़ना होगा। मजहबी सनकसे दूर रहकर भारतके मुसलमान समझदारीसे काम ले, और हर बातमें मजहब खतरेमें और कुफ्रका फतवा देना बन्द करे। हिन्दी अुर्दूको मुल्कके नामपर झगड़ेके रूपमें ला-खड़ाकर हम अपनी नालायकी, नादानी, बेहूदगी, बेवकूफी और बेवफादारीको दुनियाके आगे न रखें। आजकल हमारे कुछ बड़े और भले आदमी हिन्दी अुर्दूका झगड़ा लेकर अुत्तर प्रदेशमें अुल्टी गंगा बहाने जा रहे हैं। कृपया गंगाको अुल्टा मत बहाअिअे। भाषा-गंगाका साफ-सुथरा, स्वास्थ्यवर्धक नीर स्वतंत्र रूपसे बहने दीजिअे, अिसीमें अुर्दूका कल्याण है।

—ह० गु०

कुम्भकी दुर्घटना *

कहते हैं १२ वर्ष बाद प्रयागका पूर्ण कुम्भ पर्व आता है। यह भी कहा जाता है कि अिस वर्ष ग्रहोंका कुछ असा योग बना था कि गत सौ वर्षोंमें अैसा योग कभी नहीं आया था। कुछ भी हो अिसमें सदेह नहीं कि अिस वर्ष कुम्भके अवसरपर प्रयागमें यात्रियोंकी अत्यधिक भीड़ रही। अैसी भीड़ पहले कभी किसी भी कुम्भके अवसरपर प्रयागमें नहीं हुअी—लगभग ५० लाख। अधिकारी तथा मेलेके प्रबंधक भी अिस कुम्भके अवसरपर बहुत बडी भीड़की अपेक्षा करते थे। अुसके लिअ अुन्होंने अुचित प्रबंध भी किया था। यात्रियोंकी सुविधा सफाअी भीड़का प्रबंध और आने जानेके मार्गोंके निर्माणपर अुन्होंने लाखों रुपये खर्च किये। परंतु होनहार कहिअ प्रबंधकी अकल्पित त्रुटि कहिअ भीड़को काबूमें रखनेकी पुलिस तथा स्वयं-सेवकोंकी असमर्थता कहिअ अंधश्रद्धालु स्त्री पुरुषोंकी मूर्खता कहिअ प्रकृतिका कोप कहिअ अथवा बड़े बड़े केन्द्रीय अधिकारियोंके आगमनके कारण पुलिस अधिकारियोंका ध्यान बट जाना या कुछ अंशमें अुनका बौखला जाना कहिअ कुछ भी कहिअ मुख्य पर्व मौनी-अमावस्याके दिन सुबह जहाँ अक तरफ हमारे राष्ट्रपति तथा प्रधान मन्त्री त्रिवेणी संगमपर गये और दूसरी तरफसे नागा साधुओंका जुलूस स्नान करने आया अुस समय अक हृदय विदारक असी बडी दुर्घटना हो गयी जैसी पहले कभी सुनी भी नहीं गयी थी। यह दुर्घटना ३ फरवरीके प्रातःकाल ९ या ९.३० बजेके लगभग घटी थी और ४ फरवरीके प्रातःको हम जब प्रयाग पहुंचे हमने देखा कि अिस दुर्घटनाकी काली छाया सारे प्रयागपर छायी हुअी है। प्रत्येकके दिलमें अिसका दुःख था और मन ग्लानिपूर्ण और खिन्न था। हमने अुस गढ़को भी देखा जिसमें अनेकों स्त्री पुरुषोंके प्राण गये और जो आगे कहे जाने लगे और अिस कारण अिसने खूनी गढ़का नाम कमाया। आज तक हमारी समझमें यह बात नहीं आ रही है कि लोगोंके आनेके रास्तेसे लगकर जो गढ़ा पानीसे भरा था अुसे जैसाका तैसा प्रबंधकोंने क्यों रहने दिया? अुसे पाट देनेकी अुन्हें क्यों न सूझी।

मृतकोंकी सख्याके सम्बन्धमें काफी मतभेद दिखायी देता है। सरकारी आकड़ोंमें अुसे ५०० से अधिक नहीं बताया गया है। परंतु कअी प्रत्यक्ष देखने सुननेवालोंकी यह राय है कि वह १००० से अधिक ही होगी—कम नहीं। अिस दुर्घटनाके लिअ किसको दोष दिया जाअ अिसकी चर्चामें हम यहां अुतरना नहीं चाहते। सरकारने अिसके लिअ अक जांच-समिति नियुक्त की है। जबतक समितिकी रिपोर्ट प्रकाशित नहीं होती तब तक अिसकी चर्चा न करना ही हितकर प्रतीत होता है। परंतु अिस दुर्घटनाके अनेक पहलू हैं अुनमें कुम्भका मेला स्वयं अक है। अुसपर कअी दृष्टियोंसे चर्चा की जा सकती है और होनी भी चाहिअ। प्रयागमें ५० लाख स्नानार्थी प्रवासके सब प्रकारके संकट झेलकर और गाँठके पैसे खर्च करके अिकट्ठे हुअ थे वे क्यों आये? प्राणोंका संकट अुठाकर भी वे वहाँ क्यों पहुंचे यह प्रश्न है। हमारा सदियोंका धार्मिक संस्कार भावना तथा तीर्थ तथा पर्वके प्रति हमारी श्रद्धा ही अिसका कारण था। हो सकता है कि यह श्रद्धा अंधश्रद्धा ही हो। परन्तु अससे क्या? आज भी हमारी धार्मिक श्रद्धा हम

प्रेरणा दे रही है। कुम्भमें जानेकी प्रेरणा हमारी दृष्टिसे गलत हो सकती है और यह भी हो सकता है जैसा कि श्रद्धेय टण्डनजी कहते है, हमारी मूर्खता प्रयागम कुम्भके अवसरपर केन्द्रित हुअी थी। यह मान भी लिया जाअे कि कुम्भमें जाना मूर्खता थी तो भी यह तो मानना ही होगा कि वहाँ जो ४०-५० लाख जनता अेकत्र हुअी अुसमें सब मूर्ख नही थे। अर्थात् हमारे सदियोंके धार्मिक-सास्कृतिक सस्कारोमें अितना प्रेरणा-बल है कि बुद्धिमान स्त्री-पुरुषोंसे भी यह मूर्खताका कार्य करवाते है। अिन सस्कारोंमें जो बल है, अुसे देखकर अुसमें यदि कोअी दोष आ गया हो तो अुसे हमें परिमार्जित करना होगा। आज वह सस्कार अन्धश्रद्धाका रूप ले रहा है तो अुसे शुद्ध करके हमें सच्ची श्रद्धाका रूप देना होगा। अुसकी खिल्ली अुडानेसे काम न चलेगा। और अभी भारतीय ससदमें कुम्भ घटनापर जो चर्चा हुअी, अुसमें प. जवाहरलाल नेहरूने भी तो कहा है कि अन्धश्रद्धा अवश्य बुरी है परन्तु वह कहाँ नही है, राजकीय क्षेत्रमें भी अन्धश्रद्धा देखी जाती है। अवश्य हमें अन्धश्रद्धाको दूर करना होगा। परन्तु श्रद्धाको तो हम छोड नही सकते। मनुष्यका या समाजका किसीका भी जीवन श्रद्धासे रहित होकर रह नही सकता और अुसकी अुन्नति या प्रगति तो कभी हो ही नही सकती। गीतामें भी कहा है कि "श्रद्धामयोऽयम् पुरुष।"

हम लोग भारतीय सस्कृतिकी बाते करते रहते है। प्राचीन सस्कृतिकी प्रशसा करते हुअे, हम गौरवका भी अनुभव करते है। परन्तु हम यह भूल जाते है कि जिसी प्राचीन सस्कृतिमेंसे जो सच्ची धार्मिक सस्कृति थी, हमने अेक समयमें सच्ची श्रद्धाका बल पाया था, परन्तु आज वह अन्धश्रद्धाका रूप ले चुका है। अुसे सुसस्कृत बनानेका क्या हम कुछ प्रयत्न कर रहे है? हमारा ख्याल है कि जब हम भारतीय सस्कृतिकी बाते करते है तब सम्भवत लोगोंमें भ्रम ही फैलाते है। सब लोग सस्कृतिकी अलग-अलग व्याख्या करते है और देखा जाअे तो "सस्कृति" शब्द स्वय ही भ्रामक है। हमें सस्कृतिकी नहीं, सस्कारोंकी बात करनी चाहिअे। लोगोको हमें सस्कार देना है, विद्यार्थियोंको हमें सस्कार देना है महिलाओंको सस्कार देना है, और वह सस्कार कैसा हो यदि अिसका विचार किया जाअे तो यह आवश्यक तथा हितकर कार्य होगा। लोग अिसको अच्छी तरह समझ भी सकेंगे और समझानेवाले अिसे समझा भी सकेंगे। प्राचीन कालके ऋषि-मुनि तथा समाजके नेतागण हमेशा सस्कारकी ही बात करते थे और अुसके सम्बन्धमें ही निर्णय देते थे, सस्कृतिके सम्बन्धमें नही। यदि प्रयत्न किया जाअे तो हमारा मानना है कि कुम्भका पर्व भी अेक अच्छा सस्कार देने-वाला मेला बन सकता है। अुसमें सामूहिक-सफाअी, सामूहिक व्यवस्था, नियमन, गमना-गमन तथा पारस्परिक सेवा, मिलन-परिचय, विचार-विनिमय आदिके अच्छे सस्कार दिये जा सकते हैं। गाधीजी हरद्वार कुम्भमें जब गये थे तब सफाअी सम्बन्धी भावना लेकर ही गये थे और अुनके प्रयत्नका अच्छा परिणाम भी तब हुआ था, यह हम जानते है। आगे होनेवाले कुम्भके बारेमें यदि सरकार तथा जनता दोनो अिस प्रकार विचार करने लगे तो हमारा दावा है कि कुम्भकी यह दुर्घटना कितनी भी दुखद क्यो न हो प्रकारान्तरसे आशीर्वादरूप बन सकती है।

हिन्दुस्तानी अेकेडेमी, प्रयाग :

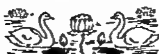
फरवरीके प्रथम सप्ताहमें अिस संस्थाकी रजत-जयन्ती मनायी गयी। अिस संस्थाकी स्थापना १९२७ अी में हुअी थी और तबसे अबतक यह सरकारी अनुदानसे ही चलनेवाली संस्था रही है। हिन्दी तथा अुर्दू साहित्यका संरक्षण तथा अभिवृद्धि अुसके अुद्देश्य रहे हैं। अिस संस्थाने अबतक १२२ पुस्तकें प्रकाशित की हैं-जिनमें हिन्दीकी ७७ और अुर्दूकी ४५ पुस्तकें हैं। अिन पुस्तकोंमें 'हिन्दीके कवि तथा काव्य' (३ खंडोंमें) और 'जवाहर मन्जूर' (४ खंडोंमें) और अभी हाल ही में प्रकाशित अेक वृहद् "तुलसी शब्द-सागर" जैसे ग्रंथ भी हैं। कुछ ग्रंथ छप रहे हैं और जो प्रेसमें हैं अुनमें आचार्य नरेन्द्रदेवजी द्वारा अनूदित वसुबंधुका "अभिधर्म-कोष" भी अत्यन्त महत्वका ग्रंथ है।

अिसमें संदेह नहीं कि अेकेडेमी अच्छा काम कर रही है, परन्तु १९५३ से अुसके सामने आर्थिक कठिनाअीका बहुत बड़ा प्रश्न अुपस्थित हुआ है। अुत्तर प्रदेशकी सरकारसे अुसे जो वार्षिक अनुदान मिलता था, वह बंद कर दिया गया है। अब अेकेडेमीको अपने ही पैरोंपर खड़ा रहनेका प्रयत्न करना होगा। जनतासे अुसे कितनी साहायता मिल सकती है यह भी असके सामने अेक प्रश्न है। सच तो यह है कि सरकारी अनुदानपर ही निर्वाह करनेवाली संस्थाका अब अिस जमानेमें कोअी स्थान नहीं हो सकता। 'हिन्दुस्तानी अेकेडेमी' अिस संस्थाका नाम १९२७ अी में रखा गया था, अुस समय अिस नाममें कुछ आकर्षण रहा भी हो, पर आज तो अुस नाममें कुछ विशेषता नहीं दिखायी देती। यही नहीं, कअी लोगोंको यह नाम खटकता भी है। अिसे बदलना अति आवश्यक होनेपर भी जब तक वह सरकारसे बंधी हुअी थी अैसा परिवर्तन नहीं कर सकती थी। आज भी वह नाम परिवर्तन कर सकेगी कि नहीं यह हम नहीं कह सकते। परन्तु कानूनकी कोअी बाधा अुपस्थित न हो तो वह अब वैसा प्रयत्न अवश्य कर सकेगी। हम जानते हैं कि अहमदाबादकी गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी भी रजिस्टर्ड संस्था थी, फिर भी स्वतंत्रताके नये वातावरणमें यह नाम अुसके लिअे अनुपयुक्त था, अिसलिअे श्री मावलंकर (संसदके स्पीकर) क, जो अिसके अध्यक्ष थे, प्रयत्नसे अुसका नाम बदलकर "गुजरात विद्या सभा" रखा गया है जो अब लोकप्रिय बन गया है। अिसी प्रकार अिस अेकेडेमीके नाममें भी शीघ्र परिवर्तन करनेकी आवश्यकता है।

सरकारी अनुदान बंद हो जानेसे संस्थाको आर्थिक कठिनाअीका तो सामना करना ही होगा, परन्तु हम मानते हैं कि अिससे संस्थाको अंततोगत्वा लाभ ही होगा। अब तो वह स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी कार्य योजना बना सकेगी और राष्ट्रभाषा तथा अुसके पाठकों तथा प्रेमियोंकी आवश्यकताओंको ध्यानमें रखकर योजनाबद्ध कार्य करनेपर सहज ही अुसे जनताका समर्थन प्राप्त होगा। हमें जो जानकारी प्राप्त हुअी है अुसके अनुसार संस्थान अेक अुपसमिति नियुक्त करके सरकारी अनुदान बंद हो जानेपर भी अब कार्य किस प्रकार किया जाअे अिसकी योजना बनानेका काम अुसे सौंपा है और सरकारी अनुदानके बिना भी संस्थाको कायम रखनेका निर्णय किया है। हम अिस निर्णयका स्वागत करते हैं और संस्थाके पदाधिकारियोंका तथा नियामकोंका अिस निर्णयके लिअे अभिनन्दन करते हैं।

संस्थाके अिस 'रजत जयती-महोत्सव'के समय संस्थाकी ओरसे 'राष्ट्रभाषा और अुसका साहित्य' अिस विषयपर अेक चर्चा रखी गयी थी। स्पष्टदर्शी तथा स्पष्टवक्ता विद्वद्वर्य श्री अमरनाथ झा अुसके अध्यक्ष थे और कअी विद्वानोने चर्चामें भाग लेकर राष्ट्रभाषाके सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट किये थे। जितने भी वक्ता अुस मंचपरसे बोले अुनके विचारका दृष्टिकोण पृथक् पृथक् था। राष्ट्रभाषा तथा अुसके साहित्यका कोअी स्पष्ट रुप तो श्रोताओके सामने आ न सका, परन्तु अिस प्रकारकी चर्चाका जो लाभ होना चाहिअे वह लाभ अवश्य हुआ। अिस सम्बन्धमें विचारके कितने दृष्टिकोण है, यह हम समझ सके, कि यह कोअी अल्प लाभ नही। हम चाहते है कि अैसी चर्चा और भी अधिक व्यापक दृष्टिसे की जाअे और जब हम राष्ट्रभाषाकी बात करे अुस समय हमारे सामने केवल हिन्दी और हिन्दीके साहित्यका ही प्रश्न न हो परन्तु राष्ट्रनिर्माण तथा राष्ट्रीय अेकताके लिअे आवश्यक भारतकी दूसरी भाषाओका भी अुपयोगी साहित्य हमारी दृष्टिके सामने रहे। राष्ट्रभाषा तथा अुसके साहित्यका प्रश्न अति महत्वका प्रश्न बन गया है। राष्ट्रभाषाका प्रचार खूब हुआ है, हो रहा है और होगा। परन्तु अुसके साहित्यका प्रश्न-राष्ट्रव्यापी दृष्टिकोणसे हल करनेका प्रयत्न अभीतक किसी भी संस्थाने नही किया है। केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारे भी अिसके प्रति अुदासीन रही है। सरकार अिसके लिअे रुपया खर्च करती है, परन्तु अधिकतर रुपया तो दिखावेके लिअे ही खर्च किया जाता है। साहित्यिकोकी कृतियोपर पुरस्कार देकर अुनका सम्मान करना अच्छा है, परन्तु अिससे साहित्यके सर्जनका कोअी ठोस कार्य हो सकता है, यह हम नही मानते। हिन्दुस्तानी अेकेडेमी जैसी संस्था यदि कोअी योजना साहित्य निर्माणकी बनाये और अिस भूमिदान, श्रमदान, संपत्तिदान आदि त्याग तथा सेवाके आंदोलनोंके युगमें अेकेडेमीके सब सदस्य अपना कुछ समय अुस योजनाको सफल बनानेमें अपनी साहित्यिक प्रतिभाका अुपयोग करे तो राष्ट्रभाषा तथा अुसके साहित्यकी वे बहुत बड़ी सेवा कर सकेंगे। फिर हमारा ख्याल है कि अेकेडेमीको पैसोकी भी चिन्ता न करनी होगी। परन्तु वह लगन, वह श्रद्धा और वह सेवा-भाव अुसके सदस्योमें होना चाहिअे जो बरबस कार्य करनेकी प्रेरणा देते है और अुसे सफल बनानेके तमाम साधन और सामग्री खुदबखुद जुटा देते है।

—मो० भ०



आवश्यक सूचना

राष्ट्रभारती राज्योंके शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कालेजों और वाचनालयोंके लिअे स्वीकृत है। 'राष्ट्रभारती' का चौथा वर्ष आरम्भ हो चुका है। राष्ट्रभारती समग्र भारतीय— अन्तर-प्रान्तीय साहित्यका प्रतिनिधित्व करती है। अिसने हिन्दीकी मासिक पत्रिकाओंमें अपना अेक प्रतिष्ठित अेव महत्वका स्थान बना लिया है। प्रेमी पाठकोंसे निवेदन है कि अेक अेक नया ग्राहक बनाकर अिस पत्रिकाकी ग्राहक संख्यामें वृद्धि करें और राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके अुत्साहको बढ़ावें। विशारद और 'राष्ट्रभाषा-रत्न' परीक्षोपयोगी कुछ आलोचनात्मक—परिचयात्मक लेख भी प्रतिमास अिसमें छपेंगे। कृपया अिस बातको ध्यानमें रखें कि हमारी लिखित अनुमति लिये बिना कोअी सज्जन या प्रकाशक 'राष्ट्रभारती' के पिछले अंकोंमें या आगामी अंकोंमें प्रकाशित प्रान्तीय साहित्यके लेखों कहानियों और अेकांकी नाटकों आदिको न छापें।

मोहनलाल भट्ट,
मंत्री, रा. भा. प्र. स. वर्धा

'राष्ट्रभारती' आपसे कुछ कहना चाहती है !

१ यही कि ता० १ जनवरी १९५४ से वह अपने जीवनके चौथे वर्षमें प्रवेश कर चुकी है। भारतके प्रायः सभी प्रमुख साहित्यकारों, विद्वानों और पत्र पत्रिकाओंने 'राष्ट्रभारती' की प्रशंसा की, उसे सराहा, अपनाया, अपनी शुभकामना दी, सहयोग दिया और उत्साह बढ़ाया। उन सबकी कृपाके लिए कृतज्ञता व्यक्त किया जाय।

२ यही कि वह निश्चित समयपर हर महीनेकी पहली तारीखको अपने प्रेमी पाठकोंके हाथोंमें श्रेष्ठ, सुरुचिपूर्ण, स्वस्थ और सरस-सुन्दर, विविध विषयक गंभीर लेख, कविता, कहानी, समालोचना आदि पाठ्य-सामग्री अर्पण करती है।

३ यही कि फिर भी वह सबसे सस्ती मासिक-सचित्र पत्रिका है। वार्षिक मूल्य कहिए या सालाना चन्दा कहिए ज्यादा नहीं सिर्फ ६ रुपया और अर्ध वार्षिक (छह माही) ३ रु ८ आना और एक अंकका १० आना।

४ यही कि राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके प्रमाणित प्रचारकों, केन्द्र-व्यवस्थापकों और विद्यालयों तथा महाविद्यालयोंको 'राष्ट्रभारती' एक रुपया कम करके रियायती मूल्य ५ रु० वार्षिक चन्देमें और अर्धवार्षिक चन्दा ३ रु० में दी जायगी।

५ यही कि जिस महान पवित्र साहित्यिक एवं सांस्कृतिक राष्ट्रभाषा प्रचार कार्यमें आप 'राष्ट्रभारती' का हाथ बँटाएँ। उसकी सहायता करें। स्वयं ग्राहक बनें और अपने मित्रोंको भी बनाएँ।

६ यही कि 'राष्ट्रभारती' आपकी ऐसी सहायताका सहर्ष आभारपूर्वक स्वागत करेगी।

राष्ट्रभारतीके लेखकोंसे निवेदन

(१) 'राष्ट्रभारती' में प्रकाशनार्थ रचना आदि सामग्री स्वच्छ-सुवाच्य लिखावटमें अथवा अच्छी टाइप की हुई कापी भेजनी चाहिए। प्रकाशन योग्य सामग्री जो कुछ भी आप भेजें वह बहुत भारी-बोझिल और बहुत लम्बी नहीं होनी चाहिए।

(२) यह अच्छी तरह ध्यानमें रहे कि राष्ट्रभारतीमें प्रकाशनार्थ भेजी हुई आपकी रचना इससे पूर्व किसी हिन्दी पत्र-पत्रिकामें प्रकाशित न हो चुकी हो और जो कुछ सामग्री भेजें वह राष्ट्रभारती के लिए ही भेजें। राष्ट्रभारती अपने लेखकोंको पत्रपुष्प-पुरस्कार' भी भेंट करती है।

(३) अनुवादक महाशय किसी अनूदित रचनाको भेजनेसे पूर्व उसके मूल-लेखकसे पत्र द्वारा अनुमति अवश्य प्राप्त कर लें तभी अनूदित रचना हमारे यहाँ भेजें।

(४) आपकी स्वीकृत रचना सर्वथा सूचना संपादक द्वारा आपको दी जायगी और छपनेतक आपको प्रतीक्षा करनी होगी।

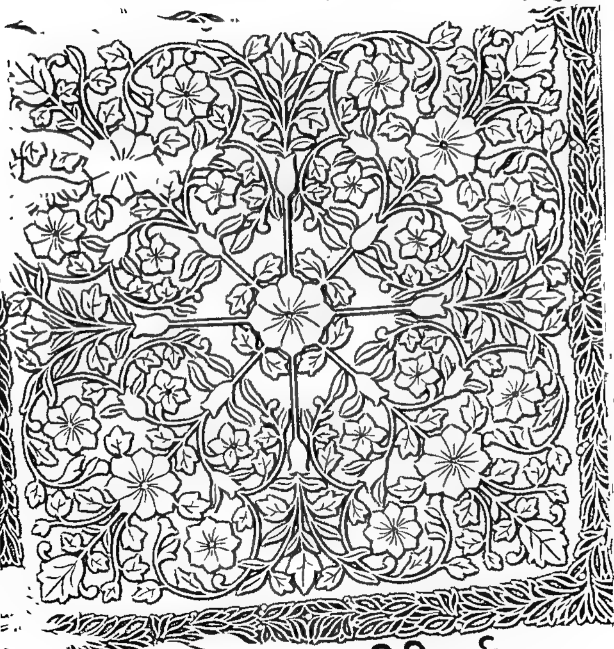
(५) अपनी अस्वीकृत रचनाको वापस मँगानेके लिए डाक टिकट अवश्य भेज दिया करें और उसकी प्रतिलिपि अपने पास सुरक्षित रखें।

(६) लेख रचना समालोचनार्थ आदि सारा पत्र व्यवहार इस पतेपर करें —

संपादक 'राष्ट्रभारती'
पोस्ट—हिन्दीनगर (वर्धा मध्यप्रदेश)

मुद्रक तथा प्रकाशक — मोहनलाल भट्ट राष्ट्रभाषा प्रेस — राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा

भारती



प्रति वर्ष

—: विषय सूची :—

वार्षिक चन्दा ६) मनीआर्डरसे   अर्धवार्षिक ३॥)   अेक अंकका मूल्य १० आना

पता:—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दीनगर, वर्धा (म० प्र०)

राष्ट्रभारती

[भारतीय साहित्य और संस्कृतिकी मासिक पत्रिका]

—: सम्पादक :—

मोहनलाल भट्ट . हृषीकेश शर्मा

वर्ष ४ * वर्धा, अप्रैल १९५४ * अंक ४ *

श्री सुमित्रानन्दन पन्त :—

हमें हिन्दी-अुर्दूको अेक ही भाषाके दो रूप मानने चाहिअे। दोनों अेक ही जगह फूली-फली हैं। दोनोंके व्याकरणमें, वाक्योंके गठन, सतुलन तथा प्रवाह आदिमें पर्याप्त साम्य है—यद्यपि अुनके ध्वनि-सौन्दर्यमें विभिन्नता भी है। साहित्यिक हिन्दी तथा साहित्यिक अुर्दू अेक ही भाषाकी दो चोटियाँ हैं, जिनमेंसे अेक अपने निखारमें संस्कृत प्रधान हो गयी है, दूसरी अरबी-फारसी प्रधान। और अुनका बीचका बोल-चालका स्तर अैसा है जिसमें दोनों भाषाओंका प्रवाह मिलकर अेक हो जाता है। हिन्दी अुर्दूके अेक होनेमें बाधक वे शक्तियाँ हैं जो आज हमारी धार्मिक, साम्प्रदायिक, नैतिक आदि संकीर्णताओंके रूपमें हमें विच्छिन्न कर रही हैं। भविष्यमें हमारे राष्ट्रीय निर्माणमें जो सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनीतिक शक्तियाँ काम करेंगी, वह बहुत हदतक अिन विरोधोंको मिटाकर दोनो सम्प्रदायोंको अधिक अुन्नत और व्यापक मनुष्यत्वमें बाँध देंगी।

अुड़िया साहित्यकी मुख्यधारा

: आचार्य डॉ. मायाधर मानसिंह :

अुड़िया भाषा :

अुड़िया भाषामें विदेशी शब्दोंकी संख्या अंगुलि पोरपर गिनी जा सकती है। अिस भाषाकी बनावट अपने सम्पूर्ण-जीवनकी मौलिक विशुद्धताको लिये हुअे दृढ़ताके साथ कायम है। असमिया, मैथिली, बंगला और अुड़िया अिन चार पूर्व-भारतीय भाषाओंका आपसमें अन्तर अितना थोड़ा है कि अिनमेंसे कोअी भी भाषाभाषी दूसरोंको बड़ी आसानीसे समझ सकता। यह अन्तर अुसी प्रकार है जिस प्रकार कि स्कैंडेनेवियाकी विभिन्न भाषाओं अर्थात् नार्वे, स्वीडन और डेनमार्ककी भाषाओंमें पाया जाता है। अुड़िया और बंगला अिन दो पड़ोसी भाषाओंमें अत्यन्त निकट सादृश्यके कारण अीसाकी आठवीं शताब्दीके बौद्ध 'चर्या-पद' तथा 'बुद्ध-गान' अिन दोनोंको बंगला और अुड़ियाके विद्वान बड़े औचित्यके साथ अपनी-अपनी भाषाओंका आद्य काव्य-ग्रंथ होनेका दावा करते हैं। अिन गीति-ग्रंथको जो ताड़पत्र पर नेपालमें पाया गया था स्वर्गीय महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्रीने "बुद्ध-गान ओ दोहा" के नामसे प्रकाशित किया था।

अुड़िया साहित्यका आरम्भ :

विद्वानोंके अनुमान, अनुसन्धान तर्क और विमर्शके बीचमें अुड़िया भाषा और साहित्यके विषयमें अबतक जो तथ्य प्राप्त हो सका है, अुससे अुड़िया साहित्यका आरम्भ काल १३ वीं शताब्दी माना जाता है। भुवनेश्वरके मंदिरकी दीवारपर १३ वीं सदीका अेक अुत्कीर्ण (खुदा हुआ) लेख है जिसमें हमें सर्व प्रथम अुड़िया गद्यका दर्शन होता है और शायद अिसी कालमें सर्वप्रथम अुड़िया पद्योंका भी। यह बड़े महत्वकी बात है कि आरम्भमें ही अुड़िया-गद्यका प्रयोग राजकार्य कामोंमें होने लगा था। पद्यका प्रयोग तो प्रथम कवियों द्वारा भी धर्मोपदेश अपने विचार पुत्र शौरीके प्रति वात्सल्य-भावनात्मक अुद्गारमें किया गया है, जिन्हें विभोर होकर अश्रुके साथ मधुर रूपसे लिखे प्रस्थान करना पड़ा था। यह [illegible] तुलसी, जिसे केन्द्र [illegible] करते हैं आज भी अुड़ियाके हजारों घरोंमें हजारों बच्चों द्वारा गाया जाता है। अिन सीधे-सादे छन्दोंमें विचित्र पारिवारिक प्रेम और करुणा-पूर्ण भक्तिका प्रवाह अितने सरल और स्वाभाविक ढंगसे आता है कि अिन वृद्ध माता-पिताके कोमल हृदयका आलाप कौन अुद्वेलित न करेगा ?

अुड़िया-साहित्यकी सार्वजनीनता :

अीसाकी १३ वीं शताब्दीसे २० वीं शताब्दीके आधुनिक कालतक अिस साहित्यकी सम्पूर्ण साहित्यके रूपमें परिमाण और प्रकारमें जो वृद्धि हुअी है वह रामायण, महाभारत, काव्य, पुराण, गीतगोविंद, नाट्य तथा अन्य प्रकारके पुस्तकोंसे सम्पन्न है। जिस प्रकार अुत्कल अपने नयनाभिराम स्थापत्यके लिये प्रसिद्ध है, अुसी प्रकार विभिन्न कवियोंके नाना प्रकार अुसके साहित्यको समृद्ध बनाते रहे हैं। अुड़िया भाषा आर्य भाषा है, किन्तु अिसकी छन्द-रचना और गीति विन्यासकी पद्धतिपर द्राविड़ प्रभाव है। अुड़िया कवियों और साहित्यिकोंमें, ब्राह्मण कवियों और नाथोंके अतिरिक्त अुड़िया देशकी सभी जातियाँ, यहाँतक कि आदिवासी भी शामिल हैं।

अब आगेके अेक कवि भक्त शालबेग द्वारा रचित दार्शनिक भजन आज भी लक्ष-लक्ष अुड़िया जनताके हृदयको अुद्वेलित कर आनन्द प्रदान करते हैं। कवियों और अुड़िया-जनतामें अितनी घनिष्ठता है कि अीसाकी १४ वीं सदीसे लेकर अबतक अिस साहित्यमें आदिवासियोंका स्थान बराबर रहा है। जगन्नाथके मंदिरमें कुछ दरका प्रवेश निषिद्ध अुपेक्षित है जिनमें दलित वर्गोंके नाम अुल्लिखित हैं। अिन सभी शताब्दियोंके अितिहासकार द्वारा यह मान लिया

रहा है। ओड़िया साहित्य ताड़पत्रोंपर लिखित अब भी गाँवोंके अन्दर पुस्तकालयोंमें बड़े विशाल परिमाणमें छिपा पड़ा है। प्रान्तके सभी हिस्सोंमें अैसे विशाल परिवार बिखरे पड़े हैं जिनमें हरअेकके पास ताम्पत्रकी पाण्डुलिपियोंका अेक-अेक पुस्तकालय है, जिसकी देख रेखका भार अुस परिवारके पुरोहितपर है। अुड़ीसाके लगभग सभी गाँवोंमें अिस प्रकारके ताड़पत्री पुस्तकालय हैं। अुड़ीसाकी जनता और साहित्यकोंकी अिससे बढ़कर सफलताकी कसौटी और क्या हो सकती है, कि राज्यकी सहायतासे वंचित संस्कृत अध्ययन अध्यापनके ठेकेदार औत्पादु ब्राह्मणोंसे अपहृत साहित्य, तथा अभिजात पंडित वर्गकी सरपरस्ती विलीन होकर भी ओड़िया साहित्य अितनी वृद्धिको प्राप्त हुआ है, और जो सामान्य जनसमूहको अपनी कविताके जादूसे साक्षर और शिक्षित करता रहा है।

अितना कुछ कहनेका तात्पर्य यह है कि ओड़िया साहित्य मुख्यतया सर्वजनीन साहित्य है। धरतीके पुत्रोंके लिअे धरतीके पुत्रोंसे अुत्पन्न हुआ साहित्य है। अुदाहरणके तौरपर लीजिअे—

कवि सरलादास व अुनका ओड़िया महाभारत

ओड़िया साहित्यके क्षितिजपर ओीसवी १४ वी सदीमें सबसे पहले सरलादासका अुदय हुआ। वह ओड़िया महाभारतका प्रथम कवि है। ओड़िया साहित्यकी सबसे बड़ी पहली पुस्तक यही है। यह अिंग्लैंडके प्रसिद्ध कवि चॉसरका समसामयिक है और अुसीके जैसे प्रचण्ड और जीवित गुणोंको लिये हुअे तथा वैसी ही सप्राणवेगी और गम्भीर आँखें और वर्णन तथा चित्रणकी वही अन्तर्दृष्टि प्रवृत्ति अिसमें पायी गयी है। अिसके वंशधर आज भी कटक जिलेमें मौजूद हैं। अुसकी जन्मभूमि और समाधि आज पवित्र तीर्थ बन गयी है। यह निर्विवाद है कि यह कृषक कवि संस्कृत ज्ञानसे सर्वथा शून्य था और स्काटलैण्डके कवि बर्न्सकी भाँति अिसे भी खलोंमें हल चलाते समय कुदरतसे ही कविता करनेकी प्रेरणा मिलती थी। ब्राह्मण पंडितोंसे सुनसे सुनी-सुनायी कथाओंको अेक साथ मिला कर अिस अर्धशिक्षित किसानने अेक अैसी भाषामें महाभारतकी रचना आरम्भ की जिसकी पूँजी तबतक कुछ लोकगीतोंतक ही सीमित थी और जिसे अुस समय तक राजा और बुद्धिजीवी घृणा पूर्ण दृष्टिसे देखा करते थे।

यह सरलादासका महाभारत अेक विशाल रचना है। अिसे मूलका अनुवाद अिसलिअे नहीं कहा जा सकता कि यह कवि संस्कृत ज्ञानसे कोरा था। अिसलिअे यह न्यूनाधिक मात्रामें मौलिक रचना ही है। कविने मूल पुस्तकके क्रम और प्रवाहको अुलट पुलटकर कथा कथनमें अपनी अप्रतिहत कल्पनासे काम लिया है। पुरानीकी जगह नयी कथाअें और परिस्थितियोंका निर्माण किया है—जान अनजान मूलकी अनेक घटनाओं और कथाओंकी अुपेक्षा की है। आश्चर्यकी बात तो यह है कि कविने अपने सीमित अनुभवोंके आधारपर ही अपनी रचनाओंको तत्कालीन अुड़ीसाके जन जीवनका दर्पण बना दिया है।

सरलादासकी रामायण

सरलादासने महाभारतके पूरा करनेके बाद ओड़ियामें रामायणकी रचना भी करनी चाही। वाल्मीकि रामायणके कथानक अुसकी अक्खड़ अल्हड़ कृषक प्रवृत्तिको प्रभावित करनेमें असमर्थ रहे जिसे महाभारतके पात्र अपनी असंस्कृत अुद्दाम तेजस्विताके आजीवन आकृष्ट करते आ रहे थे। कविने जीवनके प्रति अपने कृषक-सुलभ वस्तुवादी दृष्टिकोणके कारण संस्कृत महाभारतके देव सन्तानोंको अुनके काल्पनिक अुच्चासनसे अुतारकर सामान्य नर-नारियोंकी पंक्तिमें ला खड़ा किया है जो क्षुद्र स्वार्थोंके लिअे लड़ते झगड़ते हैं, सामान्य प्रलो भनोंके समक्ष घुटने टेक देते हैं। अिसलिअे सरलादासने राम और सीताके आदर्शवादी चरित्रकी सर्वथा अुपेक्षा करके अपने महाभारतके ढगपर अेक नयी रामायणकी रचना कर डाली। जब कि वाल्मीकिने रावणको लंकाका राजा बताया है, सरलादासने विरंचाका। और रावणके दस मुखोंकी जगह हजार मुखोंका वर्णन किया है। यह हजार मुखवाला रावण रामको अुसके भाअी और मनपसिपाह साथ बार-बार पराजित करता है और अन्तमें सीताके पतिव्रतके बलसे मारा जाता है।

[illegible] पाठको [illegible] महाभारतका [illegible] अनुवाद [illegible] है [illegible] किन्तु [illegible] कविको अधिक [illegible] किया। [illegible] महाभारतका [illegible]।

जगन्नाथ और उनका भागवत

[illegible] बाद [illegible] होता है। [illegible] बिलकुल [illegible] था। [illegible] और [illegible] और [illegible] और [illegible] और [illegible] कर लिया। [illegible] और [illegible] आरम्भ किया [illegible] और [illegible] जा [illegible]। [illegible] ही रहा, [illegible] हो [illegible] था [illegible] किया। [illegible] है। [illegible] बाद [illegible] रहे थे। [illegible] जगन्नाथ [illegible] और [illegible] हुआ और [illegible] हो [illegible]।

[illegible] और [illegible] (— [illegible]) में [illegible] करें। [illegible] लगा। [illegible]। [illegible] और [illegible] है। [illegible] और [illegible] (— [illegible] और [illegible]) [illegible]। [illegible] और [illegible], [illegible] और [illegible] १०३ [illegible]। [illegible] है। [illegible] है। [illegible] है।

इंडिया मुसलमानोंपर हिन्दुत्वका प्रभाव

[illegible]

मुसलमान कवि

[illegible]

[illegible] प्रतिभाका युग

[illegible]

पूरी रामायणकी रचना की है जिसमें प्रत्येक सर्गके लिअे नये छदका प्रयोग किया गया। अिस आश्चर्यजनक काव्यमें केवल प्रथम पंक्तिही 'बा' अक्षरसे आरम्भ होनी नहीं, बल्कि प्रत्येक सर्गमें अैसी अनेक कवितायें है जिनका आरम्भ 'बा' वर्णसे होता है। अिस ग्रन्थकी समाप्ति बारह महीनेमें हुअी थी। ऋतुओंका वर्णन पद्य-बद्ध रूपमें अिस प्रकारसे किया गया है कि यदि अुसका प्रथम अक्षर पृथक कर दिया जाअे तो अुसमे ग्रीष्म ऋतुका अर्थ निकलेगा, और द्वितीय अक्षर अलग करनेसे वर्षा ऋतुका। और अिसी प्रकार अन्य ऋतुओंका भी। अिन सब तथ्योंपर विचारनेसे यह कहा जा सकता है कि अुपेन्द्र 'शब्द-शिल्प-कला'के अुच्चतम शिखरपर पहुँचा हुआ था, जिसकी अुपमा किसी अन्य साहित्यमें मिलना कठिन है। अिसने अपने समयमें प्रचलित सरल और जटिल सभी प्रकारके छन्दोंका बडी छटाके साथ प्रयोग किया है, और कुछ नये छन्दोंका आविष्कार भी। विलासी रोमांचक रचनाओंमें भी यह अपना सानी नहीं रखता। अपनी असाधारण शब्द-शिल्पिताके सहयोगसे अिसने जिस अुद्दाम रति-प्रेमके चित्रणमें असाधारण प्रतिभा दिखायी, अुसने सभी वर्गोंकी जनताको विमुग्ध-विभोर कर दिया है।

किन्तु, जब हम अुपेन्द्रको और अुसकी कृत्रिमताको साहित्यके क्षेत्रसे अलग कर दें, तो अिस युगमें भी अनेक स्थानोंमें हमें सच्ची कविताओंकी निर्मल निर्झरिणीका दर्शन होता है। अिस युगके बडे-बडे कवियोंमें अभिमन्यु सामन्त, सिन्हार दीनकृष्णदास तथा कवितुरीय बलदेव हैं, जिनकी कविताओंमें शब्दाडंबर और शास्त्रीय मर्यादाओंके बावजूद संगीतकी सुन्दरता अुडीसाके जनगण-मनको अुद्वेलित करती है। अिस युगमें अुडिया भाषाको संस्कृत-निष्ठ बनानेका अुत्साह अिस सीमा तक पहुँच चुका था कि कवि बलदेवने अपने प्रसिद्ध "किशोर-चन्द्रानन्द चम्पू" को आधी संस्कृत और आधी अुडियामें लिखा। अिस नाटकका विषय राधा-कृष्णका मिलन है। अुसका क्रमिक विकास संगीतोंमें होता है और अिन संगीतोंका अर्थ वर्ण-पंक्ति मालाके अेक अेक अक्षरसे होता है। प्रत्येक संगीतकी प्रत्येक पंक्ति अेक ही अक्षरसे प्रारम्भ होती है। अिन मर्यादाओंके बावजूद बलदेवके संगीत अनुपम हैं; जिसके स्वर-सन्दोहको अुडिया-संगीत-विशारद आज भी प्रमाण मानते हैं। संगीतकी अुत्कृष्टताके साथ-साथ नायिका श्री राधा और दूती ललिताका- चरित्र चित्रण अितना छटापूर्ण है कि अिसी विषयको लेकर लिखे गये सुकवि जयदेवके "गीत-गोविन्द" की अपेक्षा भी अिसमें अधिक सौष्ठव, माधुर्य और वास्तविकताका परिदर्शन होता है।

ब्रजनाथ बड़जेना :

समर-तरंगके रचयिता ब्रजनाथ बडजेनाका स्थान केवल अुसी युगके साहित्यमें ही नहीं, बल्कि सर्वयुगीन साहित्यमें सुरक्षित रहेगा, और अिस श्रेणीके अखिल भारतीय साहित्यमें भी बहुत कमको यह स्थान प्राप्त हो सकेगा। ब्रजनाथ ढेंकानल राज्यका निवासी था, और समवत अपने राज्यके विरुद्ध मराठा आक्रमणको विफल करनेमें अुसने हाथ भी बटाया था। अिसी विषयको लेकर अुसने युद्धोत्तेजक कविताओंकी रचना की। काव्यमें विभिन्न वीर-छन्दोंका प्रयोग किया और जहाँ अुडिया भाषा भावोंको अभिव्यक्त करनेमें असमर्थ रही वहाँ कविने खुलकर हिन्दी और मराठी शब्दोंका भी प्रयोग किया।

रीति-काव्यकी प्रतिक्रिया :

१८ वीं सदीके अन्तमें अुडिया-साहित्यके मंचपर महान सन्त कवि गोपालकृष्णका आविर्भाव हुआ, जिसकी स्मृतियाँ आज भी बडी पूजा और प्रेमके साथ जन मनमें मौजूद हैं। अिसी समय काव्यमेंसे कृत्रिमताका ह्रास होने लगा। कृष्णकी कथा और अुपदेश अिनके काव्यके विषय थे। अुनके छोटे छोटे मुक्तकोंमें हमें अेक साथ अीश्वर और मानव तथा नर और नारीके प्रेमकी रंगीनियों अेव गंभीरता और अुद्दामताका परिदर्शन होता है। वैष्णव-गीतों और मुक्तकोंके लेखक होनेके नाते गोपालकृष्ण विद्यापति और चंडीदासकी श्रेणीमें आते हैं। प्रेमकी सूक्ष्मता और महानताको अभिव्यक्त करनेके लिअे कथोपकथनकी अुत्कृष्टता अुन जैसे प्रतिभाशालीकी निजी विशेषता है।

आधुनिक युग

गोपालकृष्णकी मृत्युके समय तक अंग्रेजी शिक्षाका प्रसार हो चुका था, यद्यपि वे स्वयं पश्चिमी शिक्षासे सर्वथा अछूते रहे। नवयुगकी अुषाका आविर्भाव हो चुका था, परन्तु अिस अन्तिम मध्ययुगीन महाकविको अुसका आभास नहीं था। नये सुशिक्षित पंछी चहचहाने लगे थे, किन्तु खेद है कि नये और पुराने कवि न मिल सके।

अंग्रेजी शासन कालमें सभी भारतीय भाषाओंका अितिहास लगभग अेक जैसा ही है। यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि साधारण रूपसे स्वतंत्र अेवं सम्पन्न अंग्रेजी साहित्यके सम्पर्कसे भारतीय भाषाओंमें वास्तवमें अेक नया जीवन आ गया। कविताओंमें अभिव्यक्तिके लिअे नये आलम्बनोंका आश्रय लिया गया, व्यवहारिक रूपमें गद्यका जन्म हुआ। नाटक और अुपन्यासमें जीवनके चित्र खींचे जाने लगे और पत्र-पत्रिकाओं धारावाहिक विचारोंकी अभिव्यक्तिका माध्यम बनीं। किन्तु अिस नये साहित्यको अपनी खपतके लिअे अभिजात वर्गीय जनतापर निर्भर रहना पड़ा। अिससे पूर्व पुस्तक निर्माणमें कवि या लिपिके परिश्रमके अतिरिक्त और कुछ व्यय नहीं होता था। लेकिन अब अिसके अुत्पादनमें अुत्पादक और विक्रेता अुभय पक्षके लिअे नकद पूंजीकी जरूरत होती है, जब कि पुराने समयमें मन्दिरों, ग्राम-अुत्सवों और यात्रा दलोंके प्रवचनों अेवं धनियोंके घर नृत्य-गीत-समारोहोंके अवसरपर लोग मुफ्तमें ही अिसका आनन्द लेते थे। माँ सरस्वतीकी परिशिष्ट छापाखानेके प्रवेशके साथ ही यह सब लुप्त हो गया। परिणामतः साहित्य सर्वांगीण बन गया है, धनी और विलासी मध्यवर्गीय जनताकी पृष्ठभूमिपर यह अेक व्यापारिक वस्तु बन गयी है।

अुडिया साहित्यके तीन चमकते तारे

कुछ गिनतीके सरस्वतीके वरद पुत्रोंकी कठोर लगनके परिणाम स्वरूप पाश्चात्य विचारोंका प्रवाह अुडियामें कुछ देरसे पहुंचा। अंग्रेजी शासनमें अुडीसाके खंड खंड कर दिये गये थे। अुडिया भाषाका स्थान पडोसी प्रान्तोंकी भाषाओंने लेना आरम्भ कर दिया था। अिसी समय अुडिया साहित्यके आकाशमें तीन चमकते तारोंका अुदय हुआ। अिनके नाम थे फकीर मोहन, राधानाथ और मधुसूदन। अिन तीन प्रतिभाओं द्वारा रचित साहित्यने ही खंड खंड जहाँ तहाँ बिखरी पड़ी अुडिया जातिको अेक सूत्रमें बांधनेकी प्रेरणा दी।

फकीरमोहन सेनापति

फकीरमोहन सेनापति अेक श्रेष्ठ बड़े अुपन्यासकार होनेके साथ साथ सेनापति नामके अनुसार कर्मठ जन्म जात नेता भी थे। आधुनिक भारतीय साहित्यमें अिनकी गणना अन्यतम असाधारणोंमें की जा सकती है। वे गरीबीमें पैदा हुअे थे। आजीवन बीमार रहे। आरम्भिक शिक्षाकी सीमाको लांघ भी नहीं पाये। किन्तु अिन समस्त न्यूनताओंके बावजूद अुनकी सफलता अद्भुत आश्चर्यजनक है। अेक प्रायमरी स्कूलके शिक्षकसे बढ़ते-बढ़ते अेक बड़ी देशी रियासतके दीवान पदपर पहुँच गये। अुडिया, बंगाली, हिन्दी और संस्कृतकी जानकारी और विद्वत्ताके कारण कई अेक विद्वान अंग्रेज अधिकारी अुनके मित्र थे। साहित्यिक क्षेत्रमें अिनकी सफलता तो अिससे भी अधिक आश्चर्यजनक है। अकेले ही अिन्होंने रामायण और महाभारत जैसे विशाल ग्रंथोंका अनुवाद कर डाला। अितिहास और गणितकी पुस्तकें लिखीं, व्याख्यात्मक ग्रंथ और अुनके अुत्कृष्ट सुस्तक लिखे। अुडियामें सर्वप्रथम अुन्होंने छोटी-छोटी कहानियाँ लिखीं, अुच्चकोटिके कअी अुपन्यास लिखे जिनकी गणना अन्य भारतीय भाषाओंके कथा साहित्यमें भी सम्मानके साथ की जाअेगी और अन्तमें भगवान बुद्धको लेकर अेक अुत्तम काव्य ग्रंथ लिखा। यह अेक प्रकारसे बहुत बड़ा वरदान ही था कि अुडीसाकी अिस प्रतिभापर पाश्चात्य शिक्षाका रंग नहीं चढ़ पाया था। वह सामान्य जन गणसे पैदा हुआ था और अनेक भाषाओंकी गंभीर विज्ञताके रहते भी अुसके सोचने और लिखनेका माध्यम सामान्य जन गणकी भाषा ही थी। वस्तुतः अिस भारतीय लेखकको सर्वप्रथम साहित्यकार कहा जाना चाहिअे। यदि अिसने अपनी रचनाओंमें ग्रामीणोंकी भाषा और

मुहावरोंको जितनी कुशलताके साथ प्रयोग न किया होता तो अब भी यह भाषा साहित्यिक अभिव्यक्तिके अयोग्य ही समझी जाती। किन्तु आजकल अुड़िया कथाकार फकीर मोहनका अनुकरण करनेमें अपना गौरव समझते हैं। किन्तु अुसके कथोपकथन और मुहावरे जिनसे अुड़ीसाकी धरती, ग्राम, खेत और किसानोंकी झोपड़ियोंकी सुगन्धि निकलती है, आज भी अपना सानी नहीं रखते। ५० वर्षोंका भारतीय स्वातंत्र्य आन्दोलनका अितिहास फकीरमोहनके पृष्ठोंमें विद्यमान है।

राधानाथः

राधानाथने रामायण, महाभारत और भागवतके पौराणिक जगतपर कविताअें लिखीं। अुसने स्काट और बाअिरनकी शैलीपर छन्दोबद्ध रोमांसोंकी रचना की। अैन्द्रजालिक और स्वर्गिक वातावरणको लिये हुअे अुसके पात्र अर्ध-अैतिहासिक हैं। अिनकी कविताओंमें मुख्य तत्व है; वह पृष्ठ भूमि जिसमें वे अपने नायक और नायिकाओंको समवय रखते हैं और है अुड़ीसाका सुन्दर स्वर्गिक प्राकृतिक दृश्य। जिस प्रकार प्राचीन भारतका भूगोल कालिदासकी रचनाओंमें अमरत्वको प्राप्त हुआ है अुसी प्रकार अुड़ीसाका भूगोल राधानाथकी पंक्तियोंमें। सबसे प्रथम राधानाथने ही अुड़िया साहित्यमें हमारे सरोवरों, झरनों, नदियों, वनों और पर्वतोंके सौंदर्यसे हमें परिचित कराया। जिस प्रकृतिके पुरोहितकी सर्वोत्कृष्ट अभिव्यंजना चिलका झीलपर लिखी गयी स्तुतिपूर्ण मनमोहक कविताओंमें परलवित होती है। राधानाथने अुड़िया साहित्यमें स्थानीय रंग चढ़ानेके लिअे शब्दविन्यासमें क्रांतिकारी परिवर्तन किया। अुन्होंने मध्ययुगीन अलंकारिकताको त्यागकर अपनी रचनाओंमें सरल, सुन्दर अनुप्रासात्मक और अुपयुक्त शब्दोंका प्रयोग किया। अिनकी कविताओंको बार-बार पढ़कर भी जी नहीं अघाता।

मधुसूदनः

मधुसूदन कट्टर धार्मिक थे। समाजके अु-साही सदस्य और महान शिक्षा-शास्त्री थे। अिनकी रचनाओंमें रहस्यवादकी धारा पुन प्रकट होती है जोकि अुड़िया समाजमें अन्त सलिलाकी तरह सदा प्रवाहित होता रहकर लौकिक साहित्यमें अभिव्यक्त होती रही है। अिस गंभीर प्रवाहका मूल स्रोत ८ वीं सदीकी बुद्धगान तथा दोहा नामक पुस्तक थी, जो बौद्ध-योगिनिकोंमें पाया जाता है और यही अंत प्रवाह आगे चलकर जगन्नाथदास और अुनके शिष्योंकी रचनाओंमें अेकाअेक प्रकट होता है। और यही तत्व १८ वीं सदीके प्रच्छन्न बौद्ध अन्ध कवि भीम भोअीके अेकेश्वरवादी भजनोंमें देखा जाता है, और फिर यही वाद आधुनिक ब्राह्मधर्मका चोगा पहनकर मधुसूदनके भजनों और मुक्तकोंमें अभिव्यक्त हुआ। मधुसूदनने जो कुछ भी लिखा अुससे विशुद्धता और नादिताका आदर्श अुच्छास प्रवाहित होता है। जिन्होंने क्या मनुष्य और क्या प्रकृति, सर्वत्र अीश्वरीय सत्ताका अनुभव किया और अपनी स्वर्गिक बुभुक्षाको अैसे अुत्कृष्ट भजनों और मुक्तकों द्वारा अुडेला है जो किसी भी साहित्यकी बहुमूल्य निधि हो सकते हैं। अिनके भजन और गीत अुड़ियाके प्रत्येक स्कूलमें गाये जाते हैं।

मेहर और नन्दकिशोर :

अुपरोक्त तीनों साहित्य-रत्नोंके अनेक अनुयायी और अनुकर्ता हुअे हैं जिसमें गंगाधर मेहर और नन्दकिशोर विशेषत अुल्लेख योग्य है। सबलपुरके जुलाहा-कवि गंगाधरने तो अपने गुरुओंसे भी कहीं अधिक ख्याति प्राप्त कर ली। अुनकी शैलीमें संस्कृतकी अुत्कृष्टता और विशुद्धता तथा मध्य युगीन अुड़िया कविताओंके संगीतमय छन्दोंका समिश्रण है। दृष्टिकी स्वच्छता और अभिव्यक्तिकी सूक्ष्मतामें तो जिसने अपने गुरुओं और साहित्यकारोंको भी मात कर दिया है। वह अुड़ीसाके दरिद्र कवियों और कलाकारोंकी श्रेणीका था। अपनी जीविकाके लिअे अेक हाथमें अपने पैतृक व्यवसायका आधार करघा और दूसरे हाथमें स्वर्गिक प्रवृत्तियोंकी परितृप्तिके लिअे सदा लेखनी लिये रहता। वह दरिद्र था और अपनी कविताओंमें अुन्हीं अुत्तमताओंको अनुस्यूत किया है, जिनके लिअे सबलपुरके कपडे प्रख्यात हैं। अिस गरीब जुलाहेका चित्र भी अुड़िया भूमिके दिवंगत महापुरुषोंके साथ टंगाकर अुड़ीसा धन्यवादका पात्र है।

दूसरे कवि नन्दकिशोरने तो भाषामें अेक बिलकुल मौलिक प्रवृत्ति चलायी। जिसने पौराणिक और अैतिहासिक संसारके नायकों और राजकुमारोंकी बिलकुल अपेक्षा कर अपने वर्णनका विषय अुड़ीसाके दरिद्र ग्रामोंको बनाया। अुड़िया-साहित्यमें यह पहला ही अवसर था कि ग्रामीण सस्था ग्राम पाठशालाओं, गाँवका

तारों, गाँवकी श्मशान-भूमि, गाँवका मंदिर और गाँवके बाजारने कलाकी अमरता प्राप्त की सर्वप्रथम नन्दकिशोरने ही अुड़ियाके लोक-गीतोंको आधार बनाकर आधुनिक मुक्तकोंकी रचना की और सर्वप्रथम बाल-गीतोंकी भी। जिसके 'ग्राम चित्र' अुनका अुत्कृष्ट कल्पना और पुराने गाँवोंके प्रति आकर्षकताके लिअे सदैव श्रेष्ठ कृति माने जाअेंगे।

पंडित गोपबन्धुदास :

सेनापति राधानाथ और मधुसूदनके बाद जिसने जाने-अनजाने अुड़िया साहित्यको सबसे अधिक प्रभावित किया है, वह हैं प्रातःस्मरणीय गोपबन्धुदास। जिस आधुनिक युगमें अुड़ीसाने अिनसे बढ़कर मानवता-प्रेमी, परोपकारी, सर्वोच्चत्वना राजनीतिक-सामाजिक नेता और शिक्षा-शास्त्रीको पैदा नहीं किया। पं गोपबन्धुका नवनीत जैसा कोमल हृदय मानवीय दुर्दशासे अभिभूत होने ही कविता, गद्य और वक्तृताके रूपमें सहस्रधार होकर अुछल पड़ता था, न-भूतो न भविष्यति'की भाँति अुड़ीसाके जन-गण मनको अच्छोंकी तरह गीत देता है। अुन्होंने अेक कविके रूपमें अपना जीवन-क्रम आरम्भ किया, किन्तु मानवता प्रेमीके नाते अेवं राजनीतिक कार्योंमें लग जानेके कारण साहित्य-सेवामें समय और ध्यान देना अुनके लिअे सम्भव नहीं था। किन्तु अवकाशके क्षणोंमें जब वे जेलमें होते अथवा भावुकताके वशीभूत हो जाते तब आत्मिक शान्तिके लिअे अुनका हृदय कविता बनकर बहने लगता, पवित्र आत्माके आँसूसे हृदय अुद्वेलित हो अुठता, दो प्रेमियोंके मिलनकी तरह वह कविता पाठकोंका हृदय स्पर्श करती। अुड़िया जनताके राजनीतिक और सामाजिक अुन्नतिके लिअे वे अेक मासिक और साप्ताहिक पत्रका सम्पादन करते थे जिनके स्तंभोंमें ध्वनि और प्रभावयुक्त गद्यका विन्यास देखते ही बनता। पांडित्यकी अुत्कृष्टता और शैल्पिककी अभिव्यक्तिको, जिसे अुन्होंने अपनी भाषा-अुड़िया गद्यमें अेक नया रमणीय आविष्कार था।

राधानाथके बादका काल :

यह काल महात्मा गांधीके नेतृत्वमें राष्ट्रीय आन्दोलनका था। गोपबन्धु केवल राजनीतिक नेता ही नहीं थे, अपितु स्वयं अपने आपमें अेक महान राष्ट्रीय संस्था थे। अपनी जातिकी राष्ट्रीय आशा आकांक्षाओंकी अभिव्यक्तिके केन्द्र थे। पुरीके निकट सत्यवादीमें अुन्होंने जंगलों और नालोंसे घिरा हुआ अेक विहार स्थापित किया। अुस समयके सुयोग्य बुद्धिजीवियों अेवं सर्वोच्च अुपाधिधारियोंका समूह अुनके व्यक्तित्वके आगे पीछे सिमट आया। ये लोग केवल पेटपर स्कूल शिक्षक बननेको तैयार थे। यह केवल गोपबन्धुकी प्रतिभा और व्यक्तित्वके लिअे ही संभव था। अिनसे प्रेरित होकर पंडित नीलकण्ठदास, पं गोदावरी मिश्र पं कृपासिन्धु मिश्र जैसे बुद्धिजीवियोंका गिरोह "सत्यवादी" में आ जुटा और जनजागृतिके निमित्त साहित्य सेवामें अपनेको लगा दिया। नाटक, अितिहास तथा भारतीय आदर्श और देशभक्तिकी भावनासे ओत-प्रोत छोटी छोटी कवितायें और मुक्तक रचे गये। किन्तु बड़े खेदकी बात है कि अुड़ीसाका यह सांस्कृतिक विश्वविद्यालय अल्पायु ही में रहा। महात्मा गांधीके असहयोग आन्दोलनकी तूफानी लहरमें वह भी बह गया।

गोपबन्धुके अनुयायियोंके तिरोहित हो जानेपर धारावाहिक परंपरामें अेक आकस्मिक विच्छेद आ गया। अब कालेजके छात्रोंसे अेक दलपर रवीन्द्रनाथकी आदर्श शैलीका असर हुआ। फलतः अुड़िया साहित्यमें जिसकी अभिव्यक्ति होने लगी। जिस दलके नेता अन्नदा सरकार राय थे। जिस दलके आदर्शोंकी जड़ें अुड़ीसासे बाहर थीं, फिर भी अन्नदा सरकार और बैकुंठनाथ पटनायककी कुछ कवितायें और कालिन्दीचरण पाणिग्राहीकी कुछ कहानियाँ और अेक अुपन्यास समालोचकोंकी दृष्टिमें अुड़िया साहित्यकारकी मूल्यवान वस्तु मानी गयीं।

समाजवादी और मुक्त छन्द-काल :

जिस अुपरोक्त दलका अनुगमन करते हुअे साहित्य क्षेत्रमें समाजवादियोंका आगमन हुआ। अब सारा संसार अेक परिवारमें परिणित हो गया है। अुसी मात्रामें साहित्य भी अन्तर राष्ट्रीयताकी ओर अधिकाधिक अग्रसर हो रहा है। अंग्रेजी भाषाके माध्यमसे विश्व-साहित्यमें प्रवेश सुगम हो जानेके कारण सामरके किसी भी हिस्सेमें किये गये नवीन साहित्यिक प्रयोगका प्रभाव बहुत जल्दी विश्वकी अेक वृहद् आधारपर पड़ता है। अुड़ियामें भी समाजवादी कवितायें आधुनिक अंग्रेजी कविताओंका अनुकरण मात्र हैं।

लेकिन कविता और धारावाहिक साहित्यपर निर्णय देना जल्दबाजी कही जाअेगी। काल ही कलाका सर्वोच्च निर्णायक होता है। *

---

* लेखका सर्वाधिकार पूर्ण सुरक्षित। —प्रका०

'छह अप्रैल'

: आचार्य दादा धर्माधिकारी :

[सन् १९१९की छह अप्रैल ! पराधीन भारतकी आत्मशुद्धि और विमुक्तिका प्रख्यात पवित्र दिन। भारत भाग्य विधाता गांधीके महान अहिंसात्मक सत्याग्रह-संग्रामका श्रीगणेश ! और तब ९ अप्रैलको श्री रामनवमी पड़ी थी और १३ अप्रैलको सन्धी अकाल सिखोंकी पुनीत तीर्थपुरी अमृतसरके जलियानवाला बागमें स्वेच्छाचारी अंग्रेजोंकी नौकरशाहीके तानाशाह डायर और ओडायरका वह भीषण नर संहार, हत्याकांड, जगप्रसिद्ध जुल्म अत्याचार ! और जब गांधीजीने अत्यन्त धैर्य, सहिष्णुता और आत्मविश्वासके साथ अंग्रेजोंसे न्यायकी प्रतीक्षा की। किन्तु ? — अिसे गांधी सिद्धांतोंके आचार्य धर्माधिकारीके लेखमें पढ़िये। — सम्पादक]

छह अप्रैलका दिन अधुनिक भारतके अितिहासमें अेक पुण्य पर्वका दिन है। कोअी ३४ साल पहले छह अप्रैलको हमारे राष्ट्रपिताने अिस अुदयोन्मुख राष्ट्रका व्रतबन्ध किया था और अुसे अेक नये राष्ट्रधर्मकी दीक्षा दी थी। अुस दिन अिस भारतीय राष्ट्रके पुनर्जन्मका आरम्भ हुआ, अुसे अेक अपूर्व अर्थमें 'द्विजत्व' प्राप्त हुआ था। छह अप्रैलसे जो राष्ट्रीय भावनाके अनुष्ठानका सप्ताह प्रारम्भ हुआ अुसकी परिसमाप्ति 'जलियानवाला बाग' की 'रुधिर-स्नान' में हुअी। अुस पवित्र रक्तस्नानमेंसे ही यह भारतीय राष्ट्र पुनर्जीवित होकर फिरसे अनुप्राणित हुआ। अिसी दृष्टिसे अेक विशेष अर्थमें यह छह अप्रैल का दिन प्राणदाअी पुण्य पर्व है।



सन् १९१८ अी० में अंग्रेज-नौकरशाह सरकारने दमनके बेलनसे अिस देशके पौरुषको पूरी तरह कुचल डालनेके लिअे 'दो काले कानून' — 'रौलट अेक्ट' गढ़ डाले। अिस दमनका सक्रिय विरोध करना भारतवासियोंके लिअे आवश्यक था। भारतकी जनता अपमानित हुअी थी। वह अपनी स्वत्व-रक्षा कैसे करती? भूखी, नंगी, अपढ़ और निहत्थी जनता अपनी 'मान-रक्षा' किस अुपायसे करती? वह मनप्त और प्रक्षुब्ध थी, किन्तु किंकर्तव्यमूढ़ भी थी।

अैसे अवसरपर बापू आअे। वे भारतीय जनताके बापू थे। भारत माताकी मिट्टीमें जो विशिष्ट गुण हैं अुनसे अुनका पिंड बना हुआ था। मानों भारतकी विशेषताअें अुनमें मूर्तिमती हो अुठी थीं। वे बापूही थे जो भारतीय जनताकी विशिष्ट शक्तिका ध्यान, आवाहन, और आराधन कर सकते थे। अुन्होंने संकल्प किया, 'मैं भूखमेंसे अुपवासकी शक्ति जाग्रत करूँगा, जनतामेंसे जनार्दन अुत्पन्न करूँगा, आसक्तिमेंसे अनासक्ति—निःस्पृहताका विकास करूँगा, निरक्षरतामेंसे साक्षरता पैदा करूँगा और निःशस्त्रतामेंसे आत्मबलका निर्माण करूँगा।' अिसलिअे 'सत्याग्रह आन्दोलन' का सूत्रपात देशव्यापी अुपवाससे हुआ।

जिस देशमें भूखने जनताको क्षीण और हताश बना दिया था, अुस देशमें किसी भी महान् अनुष्ठानका आरम्भ सहभोजनसे नहीं हो सकता था। अिसलिअे सामुदायिक अुपवास ही अुपयुक्त समझा गया। छह अप्रैलके दिन अिस देशके करोड़ों लोगोंने केवल अुपवासका व्रत रखा। देखनेमें यह अेक

बहुतही मामूली सी बात थी। परन्तु अुसके पीछे अेक समूचे राष्ट्रके त्यागकी तत्परता, तितिक्षा–सहनशीलता और क्षमा– का निश्चय और अन्तर्गत सहयोगका संकल्प था। अिसलिअे वह साधारण सा अुपवास भी प्राणवान और तेजपुंज हो अुठा। राष्ट्रके सारे शरीरमें, अुसके रोम-रोममें, विद्युत्‌की गतिसे अेक नये अुत्साह और नयी आशाकी लहर दौड गयी।

तप, त्याग और तितिक्षा, अिस नयी प्रतिकार प्रणालीकी तत्त्वत्रयी थी। व्यक्तिगत मोक्षके लिअे तप, त्याग और तितिक्षाका आचरण करनेकी परम्परा अिस देशमें बहुत शताब्दियोंसे प्रचलित और प्रतिष्ठित रही है। परन्तु सार्वजनिक हित-साधनके लिअे सार्वजनिक और सामूहिक रूपके तप, त्याग और तितिक्षाके आयोजनोंका व्यवस्थित अुपक्रम अर्वाचीन संसारके अितिहासमें हमारे राष्ट्रपिता गान्धीने किया। अेकादशी शिवरात्रि आदि व्रतोंमें जो पवित्रता और आत्मशुद्धिकी भावना है, वही पवित्रता और आत्मशुद्धिकी भावना छह अप्रैलके पुण्य-दिवसमें भी है। तथापि अेकादशी और शिवरात्रिसे छह अप्रैलकी भूमिका अधिक व्यापक और अपूर्व है।

अेकादशी वैष्णवोंका हरिदिन है और शिवरात्रि शैवोंका रुद्रार्चनका दिन है। आगे चलकर शैव अेकादशी रखने लगे और वैष्णव शिवरात्रिके दिन अुपवास करने लगे। अिस समन्वय-वृत्तिका परिपाक 'वैकुंठ चतुर्दशी' में हुआ। 'वैकुंठ-चतुर्दशी' वह पवित्र दिन है जब विष्णु शिवजीकी पूजा करते हैं और शिवजी विष्णुका पूजन करते हैं। वैकुंठ-चतुर्दशीमें शिवरात्रि और अेकादशीका मधुर संगम हुआ। परन्तु छह अप्रैलके अपूर्व पुण्यपर्वमें वैकुंठ-चतुर्दशीका संगम रोजेके साथ हुआ। अिस देशमें रहनेवाले सभी सम्प्रदायों, मत-मतान्तरों और धर्मपन्थोंके अनुयायिओंने बड़े भक्ति-भावके साथ और असीम श्रद्धासे छह अप्रैलको व्रत रखा और देशमें विधायक रूपमें जनता-व्यापी संयुक्तराष्ट्र-भावनाकी प्राणप्रतिष्ठा की। अिस दृष्टिसे धार्मिक व्रतोंकी अपेक्षा छह अप्रैलके राष्ट्रीय-व्रतकी भूमिका अधिक व्यापक और अधिक अुन्नत मानी गयी।

छह अप्रैलके दिन जिस सामुदायिक प्रतिकारका आरम्भ हुआ वह संसारके राजनीतिक अितिहासमें अद्‌भुत और अभूतपूर्व था। निःशस्त्र प्रतिकारके प्रवर्तक और समर्थक कहते थे, 'हम अपने प्रतिपक्षीकी नाकमें दम कर देंगे, अुसकी नींद हराम कर देंगे, कदम-कदमपर अुसे टोकेंगे, रोकेंगे, अुसके कामोंमें अड़चन लगायेंगे, अुसका सारा काम बन्द कर अुसे झुकाकर रहेंगे।' सत्याग्रहके आद्य प्रवर्तकने कहा, 'हम स्वयं कष्ट सहेंगे, हम सारे सुखोंका त्याग करेंगे और अपने तप सिद्ध अधिकारसे अपने प्रतिपक्षीको स्वपक्षी बना लेंगे। हमारे असहयोगके कारण अुसके दुष्कर्ममें बाधा पहुँचेगी, हमारे प्रतिकारसे अुसकी अन्तर्वृत्तिमें ही परिवर्तन होगा'। अिस प्रकार चाहे बाह्य स्वरूपमें निःशस्त्र प्रतिकार और सत्याग्रहमें समानता भले ही प्रतीत हुअी हो परन्तु वस्तुतः अुन दोनोंके मूल तत्त्वोंमें और अुद्देश्यमें बहुत बड़ा अन्तर था। अिसी कारण सत्याग्रहका आरम्भ अुपवास व्रतसे हुआ। छह अप्रैलके अिस रहस्यको यदि हम भूलेंगे तो धीरे-धीरे जैसे-जैसे निःशस्त्र प्रतिकार और 'विघ्ननीति' अपनी अुपयोगिताकी सीमाको पहुँच जायेगी, हमारे लिअे शस्त्र शरणताके सिवा दूसरा कोअी चारा नहीं रह जायेगा।

छह अप्रैलसे तेरह अप्रैलतकका सप्ताह जिस प्रान्तके कारण विश्वविख्यात और अितिहास प्रसिद्ध समझा गया वह पंजाब अब खंडित–विच्छिन्न–हो गया है। सत्याग्रहके अुपक्रमकी कल्याणकारिता सूचित करनेवाली घटना पंजाबमें ही घटित हुअी। हिन्दू, सिख और मुसलमानोंके पवित्र रक्तकी गंगा यमुना सरस्वतीके संगमका तीर्थराज 'प्रयाग' की भूमि [illegible] हमारे लिअे यह सन्देश है कि हम भारतीय कम से कम अपने अन्तर्गत व्यवहारमें त्याग, तप और तितिक्षाके प्रयोगसे अेक दूसरेका स्नेह विश्वास तथा सहयोग प्राप्त कर और भारतीय लोकराज्यकी नींव पुख्ता और मजबूत बनायें। हर व्रतोत्सव और पर्वको मनानेमें हमें अपनी मौजूदा परिस्थितिका भी ध्यान नित्य रखना चाहिअे। तभी हमारे व्रतोत्सव और पर्व प्राणवान् होंगे।

प्रजापति

: श्री शिवनाथ :

संस्कृतिके परिवर्तनके साथ साथ वैदिक कालसे लेकर आधुनिक कालतक 'प्रजापति' शब्दका प्रयोग भारतीय साहित्यमें अनेक अर्थोंमें हुआ है[1]। परन्तु अुन (अर्थों)में अिसका सर्वप्रमुख अर्थ है—'सृष्टिकर्ता ब्रह्मा'। वस्तुतः अिसी अर्थ द्वारा अिसके यथाप्रसंग अनेक क्वणिक अर्थ निकाल लिये गये हैं। मूलतः 'प्राणियोंका स्वामी' ही 'प्रजापति'का अभिधेयार्थ है। यहाँ जिस 'प्रजापति'के दर्शन करने हम जा रहे हैं अुसका संबंध 'प्राणियोंके स्वामी, सृष्टिकर्ता'से अुतना अधिक नहीं है जितना कि अुसकी प्राणमयी सृष्टिसे। हम अुस मरताकी झांकी लेंगे जो सृष्ट होकर भी, प्रजा होकर भी स्रष्टाका, प्रजापतिका, नाम धरे बैठा है। संसारमें अुलट-पलट लगा ही है, किमाश्चर्यमतः परम्।

बात यह है कि अुड़िया और बंगला भाषाओंमें 'प्रजापति' तितलीको कहते हैं—विशेषकर बंगला भाषामें, और अिस अर्थमें प्रयुक्त 'प्रजापति'से बंग प्रदेशकी संस्कृतिका घनिष्ट संबंध है, जिसकी चर्चा यथाप्रसंग होगी। अेक विद्वान्का कथन है कि अुड़ियामें अिस अर्थमें 'प्रजापति' शब्द व्यवहृत नहीं है[2]। परन्तु अुड़िया मित्र द्वारा ज्ञात हुआ है कि अुड़िया भाषामें भी अिसका प्रयोग तितलीके अर्थमें होता है।

बंग प्रदेशमें ग्रामीण लोग 'प्रजापति'का अुच्चारण 'पेजापति' करते हैं, वैसे ही जैसे वे 'प्रणाम'को 'पेनाम, पन्नाम और परणाम' बोलते हैं। बंगालमें पहले तितलीको 'पिगवनी' कहते थे और बादमें 'प्रजापति' शब्द प्रचलित हुआ। 'पिगवनी' संभवतः अिसीलिअे कहा गया कि अुसका रंग 'पीला' होता है, परन्तु रंगीनी पीलेपन तक ही सीमित नहीं है, यह हम जानते हैं। जी हाँ, मराठीमें भी अिसे 'पिंगणी' कहते हैं। बंग प्रदेशके ग्राम्यजन अिसे 'पखी' भी कहते हैं, परन्तु यह प्रयोग अतिविरल ही है। हाँ, असमियामें अिसे 'पखिला' ही बोलते हैं। यह अिसी कारण कि तितलीमें आकार और चित्र-विचित्रताकी दृष्टिसे पक्ष, पंख या पखकी ही सर्वाधिक प्रधानता है।[3]

संस्कृतके अभिधान-ग्रंथोंमें कीट पतंगके अर्थमें 'प्रजापति' का अुल्लेख मिलता है। जैसे—'स्वनामख्यात कीट विशेषश्च'[4], 'स्वनामख्याते कीट भेदे'[5], 'अेस्पिसीज ऑव् अिसेक्ट'[6] आदि। परन्तु अिसके आकार-प्रकार, स्वरूप अित्यादिका कोअी वर्णन नहीं मिलता। अतः अुनमें यह 'स्वनाम प्रसिद्ध अेक कीट विशेष', 'स्वनाम ख्यात कीटका अेक भेद', 'कीटकी अेक जाति' ही रह जाता है। अुनमें अभिव्यक्त अर्थ द्वारा यह 'तितली' के रूपमें गृहीत नहीं हो पाता, जैसाकि बंगला और अुड़ियामें होता है। पालि और प्राकृतके अभिधानोंमें तो अैसा जान पड़ता है कि 'प्रजापति' का पालि प्राकृत रूप 'पजापति' 'पयावअि' बनाकर अिसके अर्थ संस्कृतके अभिधानोंसे ले लिये गये हैं[7]। अतः शुद्ध 'कीट'-वाला अर्थ अुनमें भी मिलता है।

---

१ सर मोनियर मानियर विलियम्स कृत 'अे संस्कृत-अिंग्लिश डिक्शनरी', १८९९ औ०

२ योगश चन्द्रराय, अेम अ., विद्यानिधि कृत बांगला शब्द-कोश, कलकत्ता, बंगला-संवत् १३३०।

३ वही।

४ शब्द कल्पद्रुम।

५ वाचस्पत्य।

६ सर मोनियर मानियर विलियम्स कृत अे संस्कृत-अिंग्लिश डिक्शनरी, सन् १८९९ औ०।

७ (क) टी० डब्ल्यू० रीज डविड्स तथा विलियम स्टीड कृत पालि डिक्शनरी, दि पालि टेक्स्ट सोसायटी, चिप्स्टेड, सरे, सन् १९२१ औ०।

(ख) हर गोविंददास टी० सेठ कृत पाअिअसद्दमहण्णवो, कलकत्ता, सन् १९२८ औ०

संस्कृत, पालि, प्राकृतके अभिधान-ग्रंथोंमें 'प्रजापति' का अेक अर्थ 'कीट' अवश्य मिलता है, परन्तु अिस अर्थमें अिसका प्रयोग न तो वैदिक संस्कृतमें अबतक देखा गया है और न लौकिक संस्कृतमें ही, पालि प्राकृतमें भी नहीं। 'सुश्रुत' आदि वैद्यक ग्रंथोंमें, जिनमें कीट पतंगोंका अुल्लेख मिलता है, अुनमें भी 'प्रजापति'का प्रयोग नहीं है। अैसी हालतमें यह जान पड़ता है कि कीट-पतंगके अर्थमें 'प्रजापति' शब्द केवल अभिधानोंमें ही स्थान पा सका। अिसका अभिधानोंमें स्थान पानेका भी कोअी कारण अवश्य रहा होगा। और अिस सबबमें अनुमान यह किया जा सकता है कि 'कीट-पतंग' के अर्थमें 'प्रजापति' शब्दका प्रयोग लोककी भाषा-जनताकी भाषा-में प्रभूत रूपसे होता रहा होगा और कोशकारोंने अिसके प्रचलनकी बहुलताके कारण वहींसे अिसे ग्रहण किया। यह भी अनुमान किया जा सकता है कि कीटके अर्थमें अिस शब्दके प्रयोगकी बहुलता लौकिक संस्कृत-कालमें हुअी होगी, क्योंकि वेदोंमें अिस अर्थमें अिसका प्रयोग नहीं है।

भाषा-साहित्य (वर्नाक्यूलर लिटरेचर) में, बँगलामें, अिसका प्रयोग तितलीके अर्थमें साहित्यकारोंने किया है, और लोकमें भी अिस अर्थमें अिसका प्रयोग चलता है। यह निवेदन पहले ही कर चुका हूँ। अेक अुदाहरण लीजिये—

'प्रजापति आदि कत शत पतंगम।'[८]

यह पंक्ति हरिश्चन्द्र मित्रकी है, जिनका रचना-काल अीसवी सन् १८६२ और १८७२ के मध्य है। यह सम्भवतः प्राचीनतम प्रयोग है। अिस अर्थमें 'प्रजापति'का प्रयोग रवींद्रनाथने भी खूब किया है। वंग-प्रदेशके 'कवि-गानों' (आशु कविताओं) और लोक-साहित्यमें भी अिसका प्रयोग प्रभूत रूपसे प्राप्त होता है।

अूपर हमने देखा है कि अुड़िया और बँगला-भाषाओंमें 'प्रजापति'का प्रयोग 'तितली'के अर्थमें होता है। यह 'तितली' शब्द हिन्दीके 'तीतर' शब्दके आधारपर बना है, जिस पक्षीको लोग प्रायः खेलने और लड़ानेके लिअे पालते हैं। 'तीतर' संस्कृतके 'तित्तिर' शब्दका तद्भव रूप है, जिसका मतलब है तित्ति' शब्द करनेवाला पक्षी। अिस प्रकार यह ध्वन्यानुकारी शब्द है। 'तीतर' के आधारपर 'तितली' अिसलिअे बना कि तीतरके पंखोंपरके दागों और तितलीके पंखोंपरके दागोंमें अनुहारिता होती है। वैसे तितलीकी अनेक जातियाँ हैं, अुनके पंखोंपर पड़े दागोंमें भी विभिन्नता होती है, जो कभी कभी 'तीतर'के पंखोंके दागोंसे मेल नहीं भी खाती। जो हो, 'तितली'का सम्बन्ध है 'तीतर' से ही। यदि संस्कृतके 'तित्तिर' शब्दसे विशेषण रूप बनाया जाअे तो वह होगा—'तित्तिरीक'; जिसका अर्थ होगा-जिसपर अथवा जिसमें तीतरके पंखोंके दागोंकी भाँति दाग हैं। अैसी हालतमें स्वरूपात्मक अर्थकी दृष्टिसे 'तितली' शब्द 'तित्तिरीक' से सुविधापूर्वक बन सकता है—तित्तिरीक—(तित्तिरीअ) तित्तिरी–तित्तिली–तितिली–तितली।

अब 'तितली' के 'प्रजापति' बन जानेकी सांस्कृतिक कथापर आअें। बंगालमें विवाहके जो निमंत्रण-पत्र छापे जाते हैं अुनपर सबसे अूपर मध्यमें ब्रह्माकी मूर्ति अवश्य छपती है, वैसे ही जैसे अुत्तर भारतमें गणेशकी मूर्ति छपती है। और, वहीं ॐ नमः प्रजापतये, प्रजापतये नमः अथवा "श्री श्रीप्रजापतये नमः" लिखा रहता है। प्राचीन नियम तो यह है कि विवाहके निमंत्रण-पत्रपर ब्राह्मण-वर्ग ॐ नमः प्रजापतये अथवा प्रजापतये नमः लिखें और ब्राह्मणेतर वर्ग श्री श्री प्रजापतये नमः लिखे। परन्तु अिस युगमें ब्राह्मण-वर्ग द्वारा लिखा जानेवाला यह सिरनामा ब्राह्मणेतर लोग भी लिखते हैं, अब कोअी भेद-भाव नहीं है।

लगभग सौ वर्ष पूर्व, जब आजकी भाँति छपाअीकी सुव्यवस्था नहीं थी तब विवाहके निमंत्रण-पत्र पुष्प, लता, तितली आदिके चित्र आँक कर अलंकृत किये जाते थे। होता यह रहा कि शोभाके लिअे 'तितली' का चित्र विशेषकर मध्यमें, अवश्य आँकते थे। परिणाम यह हुआ कि कालान्तरमें शोभाके लिअे आँकी गयी तितली प्रजापतिको पदच्युति देकर स्वयं प्रजापति बन बैठी।

---

८ हरिचरण वंद्योपाध्याय कृत वंगीय शब्दकोश, बँगला संवत् १३४४।

वंग-प्रदेशमें आज भी विवाहके निमंत्रण पत्रोंमें ब्रह्मा-प्रजापतिके चित्रकी जगह तितली रानी ही कभी कभी विराजमान दिखायी पड़ती है। फिर तो तितली, जो अब प्रजापति हो गयी विवाहका प्रतीक हो गयी। बंगालमें यह विश्वास भी प्रचलित है कि यदि किसी विवाहके योग्य वयस्वाली कुँआरी अथवा कुँआरेपर तितली बैठ जाये तो अुसका विवाह शीघ्र ही होगा। तितलीके प्रजापति (ब्रह्मा) बन जानेकी यह कहानी है।

प्रजापति और विवाहका प्रसंग आ गया है, तो दो शब्द और कहूँ। प्रजापति सृष्टिके प्रतीक हैं, और अुनका रंग लाल माना गया है। अिसी प्रकार सर्जन अथवा अिसकी शक्तिका रंग भी लाल ही स्वीकृत है। वैसे प्रलय, नाश, खतरेका रंग भी लाल ही है। पहले जिसे फाँसी दी जाती थी, अुसे लाल वस्त्र ही पहनाया जाता था और जपा कुसुमकी लाल माला भी अुसके गलेमें डाली जाती थी। आजकल अैसे व्यक्तिको काले कपड़े पहनाये जाते हैं। आज भी खतरेका सूचक रंग लाल ही है। अस्तु। विवाहके अवसरपर अब भी कन्याको सिंदूर (जिसका रंग लाल होता है), लाल सिंधोरा, लाल चूड़ी, लाल साड़ी, लाल ओढ़नी आदि दी जाती है। तात्पर्य यह कि सृष्टि-प्रजननके प्रतीक लाल रंगकी ही सभी सामग्री अुसे समर्पित की जाती है। अिस प्रकार प्रजननके प्रतीक लाल रंगकी सामग्री भेंट कर अुसे भी सृष्टि-प्रजननके अुपयुक्त स्वीकार कर लिया जाता है अिसके अतिरिक्त ऋतुमती हो चुकनेपर ही कन्या सृष्टि करने योग्य मानी जाती है, और अुसका ऋतुमती होना भी लाल रंग (रक्त) से संबद्ध है। राग (प्रेम)—अनुरागका रंग भी लाल माना जाता है, जिसका संबंध भी अंततः प्रजनन अथवा सृष्टिसे ही है।

स्व० अिकबाल :—

नशा‌आ दौलतका बद अतवारको जिस आन चढ़ा,
सर पे शैतानके अेक और भी शैतान चढ़ा॥
[नशा‌आ—नशा, बद अतवार—बुरी चाल चलनवाला]



नशा पिलाके गिराना तो सबको आता है,
मज़ा तो जब है कि गिरतोंको थामले साक़ी!



वतनकी फ़िक्र कर नादाँ! मुसीबत आनेवाली है,
तेरी बरबादियोंके मशविरे हैं आसमानोंमें।



फिरा करते नहीं मजरूहे-अुल्फ़त फ़िक्रे-दरमाँमें।
ये ज़ख्मी आप कर लेते हैं पैदा अपनी मरहमको॥
[मजरूहे-अुल्फ़त—प्रेमके घायल, फ़िक्रे-दरमाँमें—अिलाजकी चिन्तामें]



अुठाकर फेंक दो बाहर गलीमें।
नयी तहज़ीबके अंडे हैं गन्दे॥
अिलेक्शन, मेंबरी, कौंसिल, सदारत।
बनाये खूब आज़ादीने फन्दे॥
[तहज़ीब—सभ्यता, सदारत—सभापतित्व, अध्यक्षता]

मंजुला

: श्री पन्नालाल पटेल :

पंछी अपने कलरवसे ग्रीष्मके बाल रविका स्वागत भी नहीं कर पाये थे कि मनोहरकी आँख खुल गयी। अेक क्षणके लिये वह कुछ सोचमें पड गया। 'स्वप्न सच्चा है या मैं यहाँ सोया हूँ, यह बात सच्ची है!' और थोडा होश ठीक होनेपर अभी-अभी असे जो स्वप्न आया था, वह याद करने लगा।

मंजुला और वह दोनों घूमने जा रहे हैं। बातोंकी धुनमें-और वे बातें क्या थीं अिसे याद करनेका निष्फल प्रयत्न किया गया—वे करीब अेक मील दूर स्थित पुलतक निकल आये। अेकाअेक मंजुला रुकी और बोली, *'अजी महाशय, हम तो बहुत दूर निकल आये।'* मनोहरको अपनी स्वप्नवाली बात याद हो आयी। अुसने कहा, 'चलो, मंजु, हम लौट चलें।'

'आपने खूब कही। वापस कितनी दूर जाना है, अिसका भी कुछ ख्याल है?' मंजुके चेहरेपर थकान थी। वह अुसी जगह धमसे बैठ गयी।

'अरे, चाहे जितनी दूर हो, मगर वापस गये बिना कोअी चारा है?' मनोहर बोला। लेकिन मंजु तो बिलकुल लापरवाहीसे कहे जा रही थी, 'माअि गॉड! कितनी दूर निकल आये? यहाँ तो कोअी गाडी-वाडी भी शायद नहीं मिलेगी?'

'चलो मंजु, अुठो। हम अभी बातकी बातमें पहुँच जाते हैं। अिस प्रकार क्यों घबराती हो?'

'आप चाहे तो खुशीसे जा सकते हैं। मगर अपने रामसे तो अब नहीं चला जा सकता।'

मनोहरको फिर अपनी स्वप्नवाली बात याद आयी। अैसा कहते हुअे मंजुका चेहरा अेकदम गंभीर हो गया था। बादमें अुसने अुसे बहुतेरा समझाया भी, लेकिन जब वह किसी भी प्रकार टससे मस न हुअी, तो वह बडा व्याकुल हो अुठा और अिसी बीच अुसकी आँख खुल गयी।

कौन जाने क्यों, लेकिन मनोहरको आज अिस स्वप्नने गंभीर विचारमें जरूर डाल दिया। वह सोचने लगा *'मंजु अेक अमीरकी लडकी है। अबतक मोटरमें* ही घूमी फिरी है। वह भला अुसके साथ अूबड खाबड मार्गमें पैदल किस तरह चल सकेगी? भले आज वह अपने माता-पिताका रोष सहकर विवाह करनेकी हिम्मत कर ले, लेकिन आखिर तो वह अैश-आराममें ही पली है न? कौन जाने वह जीवन भर मुसीबतोंसे टक्कर ले सकेगी या नहीं?'—और अिस प्रकारके अनेक विचार *अुसके दिमागमें घूम गये।*

मंजुने देखा कि मनोहर आज जबसे कॉलेज आया है तभीसे कुछ चिन्तित सा लग रहा है। लेकिन अब तो शामको ही पता चलेगा, अभी पूछा भी कैसे जा सकता है?

मनोहर जब शामको घूमने निकला तो अुसे लगा कि वह आज थोडा जल्दी आया है। लेकिन जब अुसने अपने रोजके निश्चित स्थानपर मंजुको पहलेसे खडी देखा तो वह स्तब्ध हो गया।

'अरे, आज तुम अितनी जल्दी कैसे आ गयी? रोज तो मुझे अिन्तजार करते-करते थका देती थी, और—'

'लेकिन पहले यह बताअिये कि आप कैसे आ गये?' मोहक आँखोंवाली मंजुने पूछा। अुसने देखा कि मनोहरकी आँखोंकी गहराअीमें अब भी थोडी बहुत चिन्ताकी छाया है। थोडा आगे चलकर अुसने पूछा, 'आज जनाबके मुँहपर अिस तरह स्याही क्यों पुती है?'

'तुम्हारी आँखोंको तो हमेशा कुछ न कुछ दीखता ही रहता है।' कहकर मंजुकी ओर ताकते हुअे मनोहर हँसा।

'देखिअे न, आप अैसा हँस रहे हैं जैसे कोअी बीमार हँस रहा हो।' फिर थोडी गंभीर होकर बोली, 'आप माने या न माने, मगर आज आप चिन्तित जरूर हैं।'

अेक क्षणके लिअे मनोहरको अपने स्वप्नकी बात कहनेकी अिच्छा हुअी। लेकिन अुसका नतीजा वह जानता था। मंजु सिवा पेट पकडकर हँसनेके और कुछ न करेगी। अिसलिअे और कोअी बात अेकाअेक न सूझनेपर अन्तमें अुसने सीधी ही बात शुरू की।

'तो यह तय रहा कि हम अपनी शादी अिसी गर्मीमें कर लें।'

मंजुका चेहरा अुतर गया। जैसे वह मनोहरके हृदयसे दूर फेंक दी गयी हो। अुसने पूछा, 'अेक बार तय हो जानेपर फिर यह सवाल क्यों अुठा ?'

'नहीं नहीं अैसी कोअी बात नहीं। यह तो मैंने योंही पूछ लिया।'

'अकारण ?' शब्दोंके बजाय मंजुकी आँखोंने मनोहर पर ज्यादा असर किया।

अुसने गभीर होकर कहा, 'देखो मंजु ! शादी अेक अैसा महत्त्वका प्रश्न है कि अुसके लिअे हमें अवश्य ही गहरा सोच विचारकर लेना चाहिअे। अिसीलिअे—' लेकिन आगे अब क्या और कैसे कहा जाअे, यह वह नहीं सोच पाया। फिर भी वाक्य तो पूरा करनाही था, अिसलिअे बोला, 'यह तो योंही।'

'लेकिन आखिर आप कहना क्या चाहते हैं ? बिना साफ साफ कहे कोअी क्या समझेगा ?' मीठा अुलाहना देती हुअी मंजुकी आँखोंने मनोहरको थोडी हिम्मत बँधायी।

'मुझे तो कुछ भी नहीं सोचना है। लेकिन मैं तुम्हें कहता हूँ कि तुम्हें अपना, अपने माता पिताका और साथही हमारी आर्थिक परिस्थितिके बारेमें खूब अच्छी तरहसे विचार कर लेना चाहिअे।' मनोहरने स्पष्टीकरण किया।

मनोहरने मंजुको सोचनेके लिअे कह तो दिया, लेकिन बादमें अुसे यह डर भी लगा कि मंजु कहीं शादीके लिअे अिनकार कर दे।

. परन्तु मंजु तो यह सब मजाकके रूपमें चुपचाप सुन रही थी। मनमें अेक विचार यह भी आया कि कहीं मनोहर मुझे छोड देनेके लिअे तो यह सब नहीं कह रहा है। लेकिन दिलमें कहीं अिस विचारके लिअे स्थान नहीं था। वह मजाकमें लेकिन गंभीरताके साथ बोली, 'देखिअे, मैं जानती हूँ कि मुझे — मनोहरकी ओर अुंगली करते हुअे— अिनके हाथमें अपना जीवन सौंपना है, (अिस वक्त मनोहरकी छाती फट पडनेको कर रही थी) दूसरे, मुझे अपने माता-पिताके साथ जिन्दगी भरके लिअे मौन लेना है, और तीसरा, जिसका अपना अिस संसारमें कोअी नहीं है, और होगा भी तो केवल बी॰ अे की डिग्री और थोडे-बहुत पहननेके लायक कपडे, अैसी स्थितिवाले पुरुषके साथ मुझे भी ठीक अिसी स्थितिमें रहना होगा। अिसके सिवा, मैंने तो यहाँतक सोच रखा है कि सुबह जल्दी अुठना होगा, अिन महाशयको दातुन देना पडेगा और अिनके लिअे चाय भी बनानी पडेगी'—

'अच्छा-अच्छा, अब बहुत हुआ।' मनोहर हँसते-हँसते लोट पोट हो गया।

अेक पलके बाद मंजु गभीर होकर बोली, 'पागल तो नहीं हो मनोहर ! आप दुख अुठा सकेंगे और मैं न अुठा सकूँगी ? और ' वह सहज थोडी सकपकायी— 'मुझे नहीं लगता कि हम केवल विषय वासनाकी तृप्तिके लिअेही शादी कर रहे हैं।'

'बेशक, अिसमें क्या सन्देह !' मनोहर बीचमेंही बोल अुठा। मंजुके अिस वाक्यको वह गोंद जैसा चिपक गया। मनमें सोचा— सही बात है। विवाह यानी दो आत्माओंका मिलन, शारीरिक मिलन तो गौण चीज है। और मंजुके अिन विचारोंको जानकर अुसके प्रति अुसके मनमें कअी गुना आदर बढ गया।

हालाँकि बादमें अिस विषयपर चर्चा करनेकी अुसे कअी बार अिच्छा हुअी, मगर वह खुदही अिस विषयका कोअी बहुत बडा हिमायती नहीं था, अिसलिअे वह चुपही रहा। अितनेमें अुसे खयाल आया कि रोजकी अपेक्षा आज कुछ आगे निकल आये हैं। साथही अुसे यह भी लगा कि देखें स्वप्न जैसी बात तो नहीं होती है। लेकिन अुसे अिसपर अमल करना ठीक नहीं लगा। 'चलो, लौट चलें न मंजु ?'

आप जैसा चाहे।' कहकर मजु रुक गयी।
मनोहर पूछ बैठा थक तो नही गयी ?

मजु कोअी बच्ची तो थी नही जो अिस तरहके कभी न पूछे गये प्रश्नसे और वह भी आजकी मन स्थितिमे समझ न पाती। बोली थक गयी हूँ कहिअ है अुठा ले जानकी शक्ति ?

मनोहरको सिवा हसनके और कोअी बात न सूझी। दोना प्रकृतिके विविध दृश्य देखने और अुसपर चर्चा करते वापस लौटे।

परीक्षा आयी और चली गयी। अक भिन्न परिणामकी प्रतीक्षामें बैठे मजु और मनोहरने जाना कि कालेजके पहले दो वर्षोंमें दो-दो वर्ष निकालनेवाला मनोहर बडे अच्छे नम्बरसे अुत्तीर्ण हो गया है जब कि आद्यन्त होशियार मानी जानेवाली मजु फेल हो गयी है।

पर अिस बातपर दोनोमसे किसीको कोअी खास अफसोस नही हुआ। हाँ यदि अिससे अुलटा नतीजा निकलता तो जरूर बडे दुखकी बात होती।

अग्रजीमें अानर्स होनके कारण मनोहरको बडी आसानीसे अक अग्रजी दैनिक पत्रमें ६० रुपयेकी नौकरी मिल गयी। अकाध महीने बाद अुसने किरायेपर अक घर लिया और दो आदमियोकी जरूरतके हिसाबसे दूसरी चीजें भी खरीद ली।

जिस प्रकार कोअी यात्री अपनी यात्रा शुरू करनसे पहले अक बार फिर अुसके बारेमें विचार कर लेता है अुसी प्रकार मनोहरने भी विवाहके अगले दिन खूब अच्छी तरहसे सोच विचार कर लिया। मजुकी पढाअी आग जारी रखी जाअ और अुसे भरसक हर प्रकारका सुख दिया जाअ। अलबत्ता शारीरिक सम्बन्धसे बिलकुल दूर रहा जाअ। यह अन्तिम विचार अुसके दिमागमें अुसी दिनसे चक्कर काट रहा था और अुसपर अुसने अपने आप तक भी कर लिया था विवाहका अर्थ क्या है ? विवाह किया ही क्यो जाअ ? आदि। लेकिन अिसका निराकरण गाधीजीके विचारोने कर दिया था। हाँ यह सही है कि गाधीजीके विचारोंको वह कोअी बहुत आदरकी दृष्टिसे नही देखता था।

लेकिन अुस दिन मजुने हम कोअी विषय वासनाकी तृप्तिके लिअ थोडे ही विवाह कर रहे है वाली बात अिसी आशयसे तो कही थी। मनोहरने निश्चय किया कि किसी भी रूपमें मजुकी अिच्छाके खिलाफ न वरता जाअ विशेषत अुससे प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखनेवाली बातोमें तो हरगिज नही।

अिस विवाहके बारेमें वर कन्याके माने रिश्तेदार भले अनभिज्ञ रहे हो पर मित्र लोग तो सब कुछ जानते थे। और अिस साहस भरे कार्यमें अुन लोगोने काफी बडी सख्यामें हाजिरी भी दी। विवाह कार्य सम्पन्न होनेपर सबने वर वधूको बधाअियाँ दी। अक दो सहेलियोने तो चलते चलते मजुसे कहा भी मजु कही हमें भूल तो नही जाओगी ?' मजुकी लज्जाका लाभ अुठाकर दूसरी लडकी बोल अुठी बचारीका मन तो पहलेसे ही लूट लिया गया था, लेकिन आज तो पूरी पूरी लुट गयी।'

अिस बीच मुहफट माधुरी बोली फिर भला वह लूटनेवालेके साथ घूमती या आप लोगोके ? और सारी टोलीमें अक मधुर हसीकी आवाज गूज अुठी।

साथ ही वह माधुरी तो मित्राको विदा करके दरवाजेपर खडे मनोहरको भी कहती गयी देखना फूल जैसी है।

मनोहर प्रगट तो नही मगर मनमें जरूर बोला 'अपनी जानके खातिर है। कुम्हलाने क्यो दूगा ?

विवाह अक अैसा प्रसग है कि वह हर अक समझदार व्यक्तिको कम-ज्यादा रूपमें गभीर बना देता है। मनोहर भी आज कुछ गभीर था।

अक मित्रके यहाँ भोजन आदि करके देरसे रातको घर लौटनेपर मनोहरने मजुसे पूछा, 'कहाँ सोओगी ? छज्जेमें या कमरेमें ?

मजुका चेहरा नामकी गुलाबीसे रग गया। मनोहरके दिलमें अक जबरदस्त आन्दोलन हुआ। हँसनेका प्रयत्न करके वह फिर बोला, 'रोज तुम कहाँ सोती थी छज्जेमें या कमरेमें ? लेकिन मजुकी

आंखोंमें अुसे कोअी और ही भाव दीख रहा था। अिस-लिओ वह पानी पीनेके बहाने कमरेमें चला गया।

मजु बोली, 'छज्जेमें और कहां ? अैसी गर्मीमें क्या कोअी भीतर सोता है ?' और वह कपड़े बदलने चली गयी। अितनेमें अुसके कानमें बिस्तरोंके पड़नेकी आवाज सुनायी दी। 'मनोहर, जल्दी क्यों करते हो ? मैं आ तो रही हूं !' मजुने कहा।

'तो आओ न ? कौन तुम्हें रोकता है !' मनोहरने छज्जेमेंसे ही जवाब दिया।

मजु कपड़े बदलकर आयी और अुसने देखा कि छोटेसे छज्जेके दोनों बाजू दो बिस्तर लगे हैं। बीचमें अेक बिस्तर होने जितनी जगह खाली थी।

'देखो, तुम्हें और तकिया तो नहीं लगेगा ? दो रखे हैं।' मनोहरने अपने बिस्तरपर लेटते हुअे दरवाजे पर खड़ी मजुसे पूछा।

'लेकिन आपको यह सब होशियारी दिखानेको किसने कहा था ? मैं आ तो रही थी।'

'अच्छा-अच्छा, अब सो जाओ, बारह बज रहे हैं।'

'हां सोना तो है ही !' मजुने अेक छिपा निश्वास छोड़ते हुअे कहा। और वह थोड़े गुस्सेमें अपने बिस्तर पर आकर लेट गयी।

यह गुस्सा और बोलनेका ढंग (अलबत्ता असली कारण तो अप्रकट ही था) मनोहरसे कोअी छिपा न था। वह बोला, 'अरे, पर अिसमें अैसी कौन सी बड़ी बात हो गयी ? चलो कलसे तुम बिस्तर करना, बस?'

मजुको अिच्छा तो हुअी कि कहे 'आपका सिर!' लेकिन वह मौन ही रही।

मनोहर अच्छी तरह जान गया कि मजु अुसपर चिढ़ गयी है। लेकिन अुसे तो वह काफी अर्सेसे जानता है। अुसे विश्वास था कि यही मजु कल अुसे दुगुने प्रेमसे बुलाओगी। और सच पूछो तो अैसी बातोंमें मनोहरको अेक प्रकारका मजा आता था। हालांकि अुसका दिल तो अब भी मजुको चिढ़ानेके लिअे तरस रहा था, लेकिन किसी अज्ञात भयके कारण वह चुपचाप करवट बदलकर सोनेकी कोशिश करने लगा।

बिस्तरपर पड़े-पड़े मजु बादलोंमें मुसकराते हुअे जेठके चांदको देखती रही। वह छोटा-सा छज्जा जब-जब कुछ अंधेरेमें डूबता, तब-तब वह सहज कनखियोंसे मनोहरकी ओर देखती, और जब चांदनी छिटक जाती, तब अेक दीर्घ श्वास लेकर वह अपनी आंखें मूंद लेती। काफी समय बाद जब अुसने देखा कि मनोहरका करवटें लेना बन्द हो गया है, तब अुसके मनमें केवल अेक ही प्रश्न अुठा, 'मनोहरने पूर्णिमाके दिन क्यों शादी पसन्द की ?' ...और वह खुद भी तो नहीं समझ पा रही थी कि आज वह अितनी बेचैन क्यों है ? पिछली और आजकी रातमें क्या अन्तर है ?..

सुबह जब वह अुठी तब भी अुसके मनमें यही प्रश्न घुट रहा था—

'मनोहरने पूर्णिमा क्यों पसन्द की ?'

'लो चलो, चाय बनाओ मजु।' हँसते-हँसते मनोहरने कहा,

'नहीं तो फिर मेरी होशियारी निकालोगी।'

'क्यों न निकालूंगी ? आप करते ही अैसा हैं।' मजुने स्टोव सुलगाते हुअे कहा। मनोहर भी पास ही बैठकर चाय शक्करके डिब्बे आदि देने लगा। अुसे आशा थी कि कुछ ही क्षणमें मजु हँसेगी। लेकिन जब अुसे अपनी आशा पूरी होनेके कोअी चिन्ह न दीखे, तो अुससे पूछे बगैर नहीं रहा गया, 'तुम्हारा आज मुंह क्यों चढ़ा है ?'

'यों ही।' लेकिन जब मजुने देखा कि मनोहरका चेहरा अेकदम अुदास हो गया, तब अुसे दयाके कारण सहज हँसी भी आ गयी। 'देखिअे, अबसे बिना मेरी अिजाजतके आपको किसी भी काममें हाथ न डालना चाहिअे। कुछ जाना तो है नहीं !' कहते हुअे मजुने मनोहरको चायका प्याला दिया और अुसकी ओर अिस तरह देखा कि वह पसीने पसीने हो गया।

'बहुत अच्छा ! आजसे तुम जानो और तुम्हारा काम जाने, लेकिन कॉलेज शुरू होनेपर तो मदद लोगी न ?'

'अभी शुरू तो हो।' मंजु चाय पीने लगी।

शामको बिस्तर करते वक्त मंजुको बड़ी देर तक सोचना पड़ा। अन्तमें थककर पिछले दिनकी भाँति ही बिस्तर लगाये और अुसी प्रकार करवटें बदलते रात बितायी।

थोड़े दिन बाद कॉलेज शुरू हुआ। बरतन आदि साफ करनेके लिअे अेक नौकरानी रख ली थी, असलिअे रसोअीके सिवा मंजुने सारा समय पढ़नेमें लगाया। फिर भी कभी कभी अुसकी आँखोंमें अितनी मस्ती और नशा छा जाता कि मनोहर भी अुस मूक निमंत्रणको जान जाता। लेकिन कभी तो वह अुसे अपनी गलत-फहमी समझता या कभी मंजुकी कमजोरी मानता। वैसे भी अिस विषयमें जिम्मेदारी तो अुसीकी है, अैसा मानकर वह अपने मनको अधिक मजबूत बनाता। साथ ही यह आश्वासन भी देता—'बस, अेक बार परीक्षा हो जाअे।'

लेकिन अुसने देखा कि आजकल मंजु कुछ अुदास और अनमनी सी रहती है, दुबली भी हो गयी है, तो वह कारण ढूँढ़नेकी कोशिश करने लगा। यद्यपि वह अिस बारेमें मंजुसे सीधे भी पूछ सकता था, लेकिन अुसे लगा कि अैसी कोअी खास बात होगी तो मंजु अुसे कहे बगैर नहीं रहती।

दूसरे दिन शामको घरमें दाखिल होते ही अुसने देखा कि मंजु खिड़कीके सामने खड़ी है। चेहरा बहुत साफ न दीखनेपर भी वह समझ गया कि मंजु खिन्न मना है। तुरन्त ही अुसका ध्यान पड़ोसके मकानसे आते हुअे रेडियो संगीतपर गया। वह मंजुकी अुदासीका कारण जान गया। अुसे दुःख हुआ। जो लड़की आज तक मोटरमें घूमी फिरी हो, आलीशान बंगलेमें रही हो और जिसने हारमोनियम, फोनोग्राफ सितार, रेडियो आदि साज सुने और बजाये हों, अुसे आखिर कभी न-कभी तो यह दरिद्र जीवन अखरा होगा न?

मनोहरने अपनी थोड़ी-सी जमा रकम, वेतन और अेक ट्यूशन पानेकी आशा रखकर हिसाब लगाया और अिस निर्णयपर पहुँचा कि कल ही अेक रेडियो खरीद लिया जाअे। थोड़े रुपये तो हैं ही। बाकी किस्तोंमें चुका दिये जायेंगे।

अेक दिन शामको कॉलेजसे लौटते हुअे मंजुने मनोहरको छतपर किसी आदमीके साथ दो बाँस खड़े करके कोअी रस्सी जैसी चीज बाँधते हुअे देखा। वह जल्दीसे सीढ़ियाँ चढ़कर कमरेमें पुस्तकें रखने गयी, तो वहाँ अुसकी दृष्टि टेबुलपर रखे हुअे रेडियोपर पड़ी। वह मन-ही मन बोली 'कहीं अिनका दिमाग तो नहीं फिर गया है।' . . .

मंजुने सोचा था यह था कि आज मनोहरकी अच्छी परेड ली जाअे। लेकिन वह अैसा न कर सकी। फिर भी अुसने गंभीर होकर पूछा 'किसका रेडियो है?'

'हमारा और किसका।'

'क्या खरीदा है? अितने पैसे कहाँ थे?'

'जो थे वही तो। थोड़े बाकी हैं। लेकिन अुन्हें तो किस्तोंमें देना है।'

'लेकिन अिस ६० रुपयेके वेतनमेंसे आप किस्त कहाँसे चुकायेंगे? क्या रेडियो बगैर . . .?'

'तुम अिसकी चिन्ता न करो। देखो, अेक पन्द्रहकी ट्यूशन तो तय हो गयी है। अेक और मिलनेकी अुम्मीद है। बस, फिर क्या?'

मंजुको गुस्सा तो बहुत आया, पर वह अधिक कठोर न हो सकी। पासकी कुर्सीपर बैठते हुअे बोली, 'मैं तो यही सोचती हूँ कि आखिर आपको अेकाअेक यह रेडियोकी बात कहाँसे सूझी?'

'क्यों, क्या मैं आदमी नहीं हूँ? . . तब फिर मुझे क्यों नहीं शौक हो सकता?'

मंजु जानती थी कि मनोहर अपने शौकके लिअे नहीं, बल्कि अुसीके लिअे सब कुछ करता है। तब अैसे आदमीको ज्यादा क्या कहा जाअे? कहनेपर भी वह कहाँ माननेवाला था। नहीं तो बिना अुसे पूछे-ताछे क्या अितना अधिक खर्च कर सकता है? अुसे असह्य हो अुठा। स्विच बन्द करते हुअे अुसने कहा, 'मनोहर, क्या यह रेडियो वापस नहीं किया जा सकता? हमें

अिसकी क्या जरूरत है?' अुसने थाडा रिझानेके स्वरमें कहा।

'तुम खामख्वाह चिन्ता करती हो मजु!' और अुसने खडे होकर कुर्सीपर बैठी हुअी मजुको कहा, 'चलो बजाओ, खडी हो।' लेकिन मजुको पूर्ववत स्थिर बैठे देखकर वह सामने आया और बोला, 'अुठनी हो या नहीं? नहीं तो खीचकर खडी कर दूँगा।'

अुसे क्या पता कि अिस वाक्यसे तो मजु खडी होनेवाली होगी तो अुलटी नहीं होगी!

'मेरी कसम यदि तुमने न बजाया!' कहते हुअे अुसने हँसी दबाये यत्रवत बैठी हुअी मजुको हाथ पकडकर खीचा। मजुको रोमाञ्च होआया। अुसके लिअे यह प्रसग यह दिन और कारण-भूत रेडियो सभी धन्य हो अुठे। खिचती-खिचाती वह खडी हुअी और रेडियोका स्विच दबाकर अपने मदभरे नयनोसे मनोहरकी ओर अेकटक देखती रही।

'अच्छा, तुम बजाओ। मैं जरा प्रोग्राम बुक ले आता हूँ।' कहता हुआ मनोहर खूँटीकी ओर बढा और कुछ प्रश्न पूछनेके लहजेमें कमरपर हाथ रखकर तिरछी निगाहसे देखती हुअी मजुकी ओर देखकर जैसे कुछ जानता ही न हो अिस प्रकार कोट पहनते हुअे बोला, 'अभी आता हूँ। फिर हम साथ-साथ चाय पीअेंगे।' और चल दिया। पीछे अेक दीर्घ निश्वास निकल रहा था, अिसका तो अुसे कुछ भान ही नहीं था।

बादमें मनोहर बराबर अिस बातका ध्यान रखता कि मजु खुश रहती है या अुदास। अेक रोज सुबह जब वह अपनी दोनो ट्यूशन निपटाकर घर लौटा, तो अुसने सीढियोंसे ही रेडियोके साथ किसीके गानेकी आवाज सुनी। वह दबे पाँव धीरेसे कमरेमें झाँककर देखता है, तो मजु कपडोंकी तह करते-करते अपनी मधुर आवाजसे गा रही थी। मनोहरने अुसे कॉलिजके समारोहोके अवसरपर गरबे गाते सुना था। लेकिन बादमें अबतक अैसा कोअी मौका ही नहीं आया था। अलबत्ता कअी बार अुसे मजुसे गानेको कहनेकी अिच्छा जरूर होती थी। लेकिन फिर तुरन्त यह खयाल आता कि जोर-जबरदस्तीके बजाय अपनी मर्जीसे गाना ही ज्यादा अच्छा होता है। और वह खामोश रह जाता। किन्तु आज अचानक अुसकी मनोकामना पूर्ण हो गयी। अिसके सिवा, आज अुसे ज्यादा खुशी तो अिस बातकी हो रही थी कि मजु बडी प्रसन्न दीख रही थी। और अिस विचार मात्रसे कि अब तो वह आगे भी अिसी प्रकार रेडियोके साथ गुन-गुनाया करेगी, अुसे बडी निश्चिन्तता हुअी। छिपकर गाना सुननेकी अिच्छासे वह अेक ओर हटकर खडा हो जाता है, लेकिन अिसी बीच मजु गाती हुअी बाहर आ जाती है और मनोहरपर दृष्टि पडते ही कहती है, 'चोर?'

'हाँ भाजी, चोर ही सही। लेकिन तुम गाओ न? बद क्यो हो गयी?'

'किसके आगे?' मजु बोली। और वह तुरन्त ही रसोअीघरकी ओर चल दी।

अिन दो शब्दोने नहीं; लेकिन मजुके चेहरेने फिर मनोहरको चिन्तामें डाल दिया। 'मंजु अिस प्रकार अकारण बात-बातपर चिढती क्यो है? अेकाअेक अुदास क्यो हो जाती है? अुस दिन वह जब साडियाँ लाया था, तब भी अिसी प्रकार चिढ़ गयी थी! लेकिन अिन प्रश्नोका जवाब भी अुसीने खुद दिया। चिढेगी क्यो नहीं! केवल दो साड़ियाँ और वह भी दस-पन्द्रह रुपये-वाली! अुसकी दृष्टिसे तो वे आखिर हलकी ही हुअी न! और अितनी-सी बातमें मैं फूलकर कुप्पा हो रहा था। तब खीझेगी नहीं तो और क्या होगा। अिसके बाद अुसने अेक नयी मिलनेवाली ट्यूशनका हिसाब लगाया और मजुके लिअे अेक बढिया साडी, अेकाध अीयररिंगकी जोड आदि लाने और अुसे खुश करनेके मसूबे वह बाँधने लगा।

सच पूछो तो मजुकी चिढके असली कारणकी शका तो मनोहरकी थी, मगर अुसे वह अपने ही मनकी दुष्टता मानकर अुस ओर तनिक भी ध्यान देनेकी कोशिश न करता।

गर्मीसे तग आकर दोनो खुली चाँदनीमें छज्जेमें बैठे थे। मनोहर अपनी नयी ट्यूशनकी बात कर रहा था। 'मंजु, कलसे अेक तीस रुपयेका और ट्यूशन करना

है।' मजुको चुप देखकर वह फिर बोला, 'मैंने कहा, अब हम यदि लॉजमें ही खाना मँगा लिया करें तो कैसा रहे? तुम्हें भी पढ़नेके लिअे काफी वक्त मिल करेगा?'

लेकिन मजुका ध्यान अिस वक्त और ही कहीं था। यद्यपि अुसे भी पूरा-पूरा यह विश्वास तो नहीं था कि आजका चन्द्रमा चौदसका है या पूनमका। फिर भी अुसकी दाहकता पूनमसे कोओ कम नहीं थी। अेका-अेक वह किसी निश्चयके साथ खड़ी होती हुओ बोली, 'मनोहर! आओ मुझे थोड़ा क्लीओपेट्रा समझाओ। मैं पुस्तक ले आती हूं।' और वह कुछ दूर, फिर भी द्रुतगतिसे पुस्तक ले आयी।

वैसे भी मनोहरको अंग्रेजी विषय पढ़ानेमें मजा आता और दूसरे, क्लीओपेट्राका चरित्र चित्रण और वह भी मजुको, तब तो क्या कहने? वह बड़ी छटासे अेकके बाद अेक चुनिन्दे वाक्यों द्वारा समझाने लगा। मजु भी अुतना ही रसपूर्वक सुनने लगी।

लेकिन थोड़ी ही देर बाद मनोहरने देखा कि मजुका ध्यान कहीं दूसरी तरफ है। साथ ही बीच-बीचमें कभी कभी मजुकी आँखें भी विचित्र-सी हो जाती हैं। अेक बार तो अुसे मजुमें क्लीओपेट्रा ही दिखायी दी। वह चिढ़कर बोला, 'मजु, तुम्हारा ध्यान कहाँ है?

'क्लीओपेट्राके प्रियतममें और कहां?' कहते हुअे मजुने अपने नयनों द्वारा मनोहरपर मदभरा अमृत बरसाया। लेकिन जब अुसने देखा कि अुस अमृतको मनोहरने अेक भारी दवातके साथ पढ़नेमें लगाकर निष्फल जहर बना दिया, तब वह बड़ी खिन्न हो गयी। मनमें यह भी लगा कि कैसा नीरस आदमी है!'

वह कोचसे सम-समाकर खड़ी हुओ और 'बस, अब बहुत हुआ।' कहकर अपने कमरेमें चली गयी।

मनोहरने अन्दर जाकर देखा कि मजु अेक आराम कुर्सीपर अंचलसे मुँह ढाँककर पड़ी है। नीचे-अूपर होनेवाली छाती और धीमी सिसकियोंसे वह अितना तो समझ गया कि मजु रो रही है। लेकिन रोनेका वास्तविक कारण वह नहीं जान पाया।

अुसने पूछा, 'मजु, रोती क्यों हो? अचानक तुम्हें क्या हो गया?' लेकिन मजु तो दुगुने वेगसे रोने लगी। अेक ओर थोड़ा झुककर मनोहर अुसके चेहरेसे अंचल खींचने लगा। मुँहपरसे हाथ हटानेकी भी कोशिश की। साथ ही पूछ भी रहा था, 'लेकिन तुम रोती क्यों हो?'

मजु रोते रोते ही कह रही थी, 'मुझे रोने दीजिये। मेरे भाग्यमें रोना ही बदा है।' लेकिन अिन वाक्योंने मनोहरके दिलपर छुरीका काम किया। वह चुपचाप अुसके आँसू पोंछता रहा। दिमागमें अितना अधिक विषाद छाया हुआ था कि अुसे कुछ भी नहीं सूझ रहा था। अेक ख्याल यह भी आया, बल्कि ठोक-पीटकर बैठाया कहना अधिक ठीक होगा, कि शायद क्लीओपेट्रासे मजुको भी अपने वैभवशाली जीवनकी याद आ गयी होगी।

मनोहर अिस समय मजुके लिअे आकाश-पाताल अेक करनेको तैयार था। लेकिन वह बोला, तब तो कुछ समझमें आये न? अुसने शान्त होती हुओ मजुकी आँखोंको पोंछते हुअे फिर पूछा, 'क्या हुआ मजु? कुछ बोलो तो सही?' और अुसने सामने आकर कुर्सीके हाथे पकड़कर थोड़ा झुकते हुअे कहा, 'बोलो, तुम्हें क्या चाहिअे? तुम कहो तब तो समझू—'

मनोहरका झुका हुआ सुन्दर मुँह अपने मुँहके बिलकुल पास होते हुअे भी मजुको वह क्षितिज जितना दूर प्रतीत हुआ। अपना होते हुअे भी पराया-सा लगा। अुसके मुँहपर पसीनेमें पड़े हुअे बालकका-सा भाव देखकर अुसे फिर गुस्सा आया, 'आप मुझे चुपचाप पड़ी रहने दीजिये। मेहरबानी करके आप यहाँसे चले जाअिये।' और अुसने अपना मुँह अंचलमें छिपा लिया।

मनोहर थककर कुछ तब आकर बिस्तर करके लेट गया। मजु भी सो गयी। लेकिन मनोहरकी आँखोंका और नींदका आज बारहवाँ चन्द्र था। बार-बार अुसके दिलमें अेक ही प्रश्न अुठता था 'मजु बात क्यों छिपाती है? अुसे क्या चाहिये?' अेक आशंका हुओ। 'यह सब विषय वासनाकी वेदना तो नहीं है? लेकिन अगर यह बात भी हो, तो वह छिपाती किसलिअे है?' यद्यपि अुसके मनमें

तो कोओी कह ही रहा था कि वह कहाँ छिपाती है ? अुसके हाव-भाव, अुसके रंग-ढंग और आँखें क्या नहीं दीखती ? पर अिस बीच अुसे मंजुका वह वाक्य याद हो आया और अुसने विरोध किया 'नहीं, नहीं, अैसा नही हो सकता। शादीके पहले अुसीने तो मुझे सावधान किया था। और फिर अभी तो वह पढ भी रही है।' अुसने सिर हिलाया। 'अूं हूँ, अभी मेरी या अुसकी अिच्छा तो..... फिर भी कल पूछ देखूँगा।' अिस तरह निपटारा करके वह देरसे सो गया।

अुस ओर मंजु अपने बिस्तरमें पडे-पडे कोओी दूसरे ही विचार कर रही थी। मनोहरके प्रति अुसे सन्देह पैदा हुआ। सहसा अुसका दिल काँप अुठा। अुसे अपने सामने भविष्यका मरुस्थल दिखायी दिया। लेकिन यह केवल पल भरके लिअे ही। अिस सन्देहके लिअे कहीं कोओी बाह्य कारण न था, और यदि मान लें कि अैसा हो भी तो क्या मनोहर अुससे यह बात छिपाता—किसीका जीवन बरबाद करता—नही अैसा आदमी वह नही है, अिसका अुसे पूरा-पूरा विश्वास था। तब फिर अिस प्रकार विरक्त रहनेका क्या कारण है ! जबसे वह मनोहरके सम्पर्कमें आयी, तबसे अेक-अेक करके वह सारी घटनाओंको याद कर गयी, लेकिन अुसे कहीं लेश मात्र भी अिसका चिह्न नही दीखा। बहुत सोचनेपर अन्तमें अुसे लगा कि शायद अुसके विद्यार्थी-जीवनके कारण ही वे अैसा करते होंगे। बहुत देर बाद वह अपने मनसे यह कहकर कि 'चलो, ठीक है।' सो गयी।

सुबह मनोहरने अपनेको जगाते हुअे मंजुको विशेष खुश देखा। अिसलिअे रातको अुसने जो बात तय की थी वह 'अब तो बादमेंही पूछूँगा'—अैसा सोचकर नहा-धोकर टयूशनके लिअे चल दिया। दोनों टयूशन निपटाकर, लौटकर खा-पीकर दफ्तर जानेके लिअे तैयार हो गया।

मंजुको पिछली रातवाली नयी टयूशनकी बातका स्मरण हो आया। अुसने पूछा, 'क्या तीनों टयूशन कर आये ?'

'अभी तीनों कैसे हो सकती हैं ? तीसरी तो शामको ही हो सकेगी।' मंजुने कटाक्ष किया, 'अेकाध चौथी भी मिले तो कर लीजिअे।' जानेकी जल्दीमें मनोहर अिसका मर्म नही समझ सका। वह सीढियाँ अुतरते हुअे बोला, 'देखता हूँ, यदि कही मिल जाअे तो।'

अेकाकी मंजु व्यग्र हो अुठी। लेकिन थोडी देर बाद न जाने क्यों अुसके अधर हास्यसे फडकने लगे।... भान आनेपर वह भी कपडे बदलकर कॉलेज चल दी।

अुसी रोज शामको टयूशनसे लौटते ही छज्जेमें बैठी हुअी मंजुको मनोहरने कहा, 'मंजु, घूमने चलोगी ? आओ चाँदनीमें थोडा मजा आअेगा।'

'चलिअे।'

'तो तुम कपडे बदल लो।'

'बिस्तर करके निश्चिन्त होकर ही चलें'— कहती हुअी मंजु अुठी और 'आज बारिशकी कोओी संभावना नहीं है, छज्जेमें ही बिस्तर लगा देती हूँ'—कहकर वह अन्दर गयी। मनोहर भी अपना कोट निकालकर बिस्तर करनेमें मदद करने लगा। मंजुको दीवारसे हाथ भर दूर बिस्तर करते देखकर वह बोला, 'थोड़ा और भीतकी ओर जाने दो न ? बीचमें आने-जानेका रास्ता—'

'अजी महाशय, दीवारकी ओर कोओी जन्तु आदि चढ आअेगा। अैसा ही रहने दीजिअे। यही ठीक है।'

बिस्तर हो जानेपर मनोहरने देखा कि दोनों बिस्तरोंके बीच मुश्किलसे अेकआध बालिश्तका अन्तर होगा। अुसकी हृदतंत्रीके सारे तार झनझना अुठे। खड़े होते हुअे अुसने कहा, 'लो अब क्यों सो रही हो, क्या चलना नहीं है ?'

'आग लगे अिस घूमनेको ! मेरा तो सिर चढ गया है !' मंजुने लेटे-लेटे ही जवाब दिया।

मनोहर कुछ समझ न सका। अितनी सी देरमें और सिर कहाँसे चढ गया ? लेकिन फिर अुसे तुरन्त ही खयाल आया। ठीक है। बिस्तर आदि अुठानेमें चढ गया होगा।

'लो मैं बाम मल देता हूँ।' कहकर वह 'अमृताजन' की शीशी ले आया और अपने बिस्तरके अेक छोरपर बैठकर मंजुके मस्तकपर मलने लगा।

'अजी......' बाल खींचते हैं।' मंजुने दर्द भरी आवाजमें कहा। 'अच्छा, अब नहीं खींचूंगा।' कहकर वह मंजुके कुछ अधिक निकट सरक गया और बाल ठीक करके फिर मलने लगा।

मंजु आँख मूंदकर चुपचाप पड़ी रही। बीच-बीचमें अुठनेवाली भारी श्वास दर्दकी थी या शांतिकी यह समझना कठिन था। कभी-कभी वह अपने सारे अंगोंको मरोड़ती और अंगड़ाओी सी लेती।

अिस तरह मलते-मलते जब काफी देर हो गयी, लेकिन मंजुने मना न किया तो वह 'लो अब अुतर जाअेगा'—कहकर मलना बन्द करके शीशी रखने अन्दर गया।

लेकिन अुसने वापस लौटकर देखा तो मंजु अपने दोनों घुटनोंके बीच सिर रखकर बैठी थी। बेचारे मनोहरको क्या पता कि अुसके तो रोम-रोममें चन्द्रिकाका प्रसार हो चुका था? अुसने पास बैठते हुअे पूछा, अब भी दर्द हो रहा है मंजु?' और मंजुको चुप देखकर वह धीरेसे अुसका सिर अूपर अुठानेकी कोशिश करने लगा। प्रश्न तो कर ही रहा था, बोलो न? कुछ कहो तब तो समझ पड़े न?

तपाकसे मंजुने अपना मुँह अूपर अुठाया और मजाकसे मनोहरके गालपर अेक तमाचा लगाते हुअे कहा, 'यह होना है। क्या बिल्कुल ही मूर्ख हो? कुछ समझते ही—'

बस खतम! मनोहरके रोम रोममें जैसे कोअी नशा छा गया। क्षणभरमें वह समझ गया कि अिस क्षणके प्रभावके आगे संयम और विवेक बिल्कुल व्यर्थ हैं। अेकाअेक सारे हृदय मनके बंधन टूट गये। और मनोहरके आवेशने पागल बनकर बहनेवाले पानीकी तरह अपनी मर्यादा छोड़ दी।

आकाशमें विहार करता चाँद जैसे किसीको कोअी बात कहनेके लिअे आतुर हो गया हो अिस प्रकार बादलोंमें दौड़ता हुआ मन्द मन्द मुसकरा रहा था।

—(गुजरातीसे अनुवादक: श्री गौरीशंकर जोशी)

कविता जीवनकी आलोचना है

"मानव-जीवनके साथ कविताका घनिष्ठ सम्बन्ध है। यों कविताने समग्र जगत्‌के जड़-चेतनको अपने दायरेमें लपेट रखा है, फिर भी वह मानव-जीवनका निरूपण करती है। मनुष्यने कविताका निर्माण किया और अुसके अन्दर अपने समस्त जीवनको, विचारोंको और अनुभवोंको प्रतिष्ठित किया। कविता वास्तवमें जीवनका दर्पण है और अेक अंग्रेजी आलोचकका कथन है कि वह जीवनकी व्याख्या है—आलोचना है।"

रूसी लोकसाहित्यमें विलाप-गीत

: श्री वी. राजेन्द्र ऋषि :

[लेखक श्री राजेन्द्र ऋषि अेम अ. 'प्रभाकर' और रूसी भाषा तथा साहित्यमें अधिकृत रूपसे अुपाधि प्राप्त हैं। आप गत १९५०-५२ तक मास्कोके भारतीय दूतावासमें कार्यकर्ता रहे और रशियन भाषा तथा साहित्यका विशेष अनुशीलनकर डिप्लोमा प्राप्त कर चुके हैं। ऋषिजी अेक ५०००० शब्दोंका रूसी हिन्दी कोश बहुत शीघ्र भारतीय भाषा साहित्य भंडारको दे रहे हैं।—सं.]

विशेष ममत्व अेव कवित्वपूर्ण रुदन करके मृतकके लिअे शोक-व्यक्त करनेकी प्रथा संसारमें बहुत प्राचीन-कालसे चली आ रही है। अैसे मृतक-विलाप रूस, सीरिया, मिस्र, भारत यूनान, रोम और यूरोपके सब देशोंमें मिलते हैं। रूसमें अुनका जन्म मृतकके प्रति केवल अपना निजी शोक तथा दुख प्रकट करनेके लिअे ही नहीं हुआ। अिसके अन्य भी कअी कारण हैं। रूसी मृतक-विलापोंमें हमें महत्त्वके तत्त्व मिलते हैं।

प्राचीन रूसी पूर्वज यह अनुमान भी नहीं कर सकते थे कि मृत्यु प्राणीका पूर्ण नाश है। अुनका विश्वास था कि प्राणी मृत्युके बाद भी जीवित रहता है तथा अुनके परिवार या कबीलेकी रक्षा करता है अथवा अुसको दण्ड देनेकी क्षमता रखता है। अुनका यह भी विश्वास था कि मृतक अुसको सम्बोधित किये गये शब्द और प्रार्थना भी सुन सकता है। अिसी विश्वासके आधारपर मृतकका सम्मान करनेकी प्रथा चली। रुदन-विलाप करके मृतकके रिश्तेदार तथा अुसके कबीलेके लोग अुसकी प्रशंसा करते थे। अुनका विश्वास था कि अिस प्रेम अभिव्यक्ति द्वारा वे मृतकसे अपने कल्याणके लिअे प्रार्थना कर सकते हैं तथा भविष्यमें अुसके क्रोध और शापसे बच सकते हैं।

प्राचीन रूसी गाँवोंने अिन विलाप-गीतोंमें सुन्दर भावात्मक कृतियों, पूर्ण कलात्मक पात्रों तथा गम्भीर अनुभूतियों और अभिव्यक्तियोंका सृजन किया है।

अिन विलापोंकी महत्ता केवल अुनके कवितापूर्ण गुणोंमें ही नहीं है। बल्कि प्राचीन रूसके मृतक विलाप क्रान्तिपूर्व रूसी गाँवोंका दुखमय चित्र भी खींचते हैं। परिवारके पालक पिताकी मृत्यु हो गयी— अुसकी पत्नी और बच्चोंकी सहायता तथा पालन-पोषण करनेवाला कोअी नहीं रहा। विवश अपने भाग्यपर फूट-फूटकर रोती थी। अब अुसकी तथा बाल-बच्चोंकी अधिकारी वर्ग, जमींदारों और पुलीससे रक्षा करनेवाला कोअी नहीं, खेती-बाड़ीके कामको सम्भालनेवाला कोअी नहीं। अब अुसकी छोटी-छोटी लड़कियोंको बुद्धि देनेवाला तथा अुनकी सहायता करनेवाला कोअी नहीं रहा। बड़े कष्टसे कमायी थोड़ीसी पूंजी तथा जायदाद कर्ज और टैक्स चुकानेमें चली गयी। कमसिन बच्चोंको भीख माँगने या पराये लोगोंकी दासता या सेवा करनेके सिवा और कोअी चारा नहीं रहा।

माँ मर जाती—अुसकी विवाह योग्य लड़की अुसके लिअे फूट-फूटकर रोती। अब दुष्ट पड़ोसी अुसका जीना दूभर कर देंगे। वे अब अुसे अनाथ, बेचारीका मज़ाक अुड़ाअेंगे। अुसे गालियाँ देंगे और तरह-तरहकी तोहमतें लगाअेंगे।

जवान लड़का मर जाता— माता-पिता अपने बुढ़ापेके अेक मात्र सहारेको रोते। अब अुनकी किसीको आवश्यकता नहीं रही। अब अुनपर कोअी तरस नहीं खाअेगा। अुनकी परवरिश करनेवाला तथा बीमारीमें देख भाल करनेवाला अब कोअी नहीं रहा।

कलात्मक रूपमें किये गये ये रुदन और विलाप न केवल मृतकको दफनानेके समय अुपस्थित श्रोतागणोंके हृदयोंको कम्पायमान कर देते थे, परन्तु आज भी पुस्तकोंमें लिपिबद्ध होकर वे पाठकोंके दिलोंको हिलाकर पिघला देते हैं। यह सच है कि सभी रुदन करनेवाले

अिन विलापोंका अभिनय समान रूपसे सुन्दरता तथा स्पष्टतासे नहीं कर पाते थे। प्रत्येक विधवा या अनाथ अपनी अपनी क्षमताके अनुसार अपने ही ढंगसे विलाप किया करते थे। परन्तु प्राचीन रूसमें अिस कलामें निपुण बड़े बड़े अभिनेता भी थे जिनकी जीविकाका सहारा केवल दूसरोंके लिअे मृतक विलाप करना था। बहुतसी अैसी स्त्रियाँ थीं जिनका व्यवसायही मृतक विलाप करना था। वह घर घर घूमा करती थी* और जो लोग स्वयं विलाप करनेमें असमर्थ होते थे वे अुनकी ओरसे विलाप किया करती थी। अैसी विशेष प्रतिभा सम्पन्न कुछ स्त्रियोंका नाम रूसी लोक साहित्यके अितिहासमें सदा जीवित रहेगा। आजकल अुनके विलापोंका संग्रह किया जा चुका है और वे पुस्तक रूपमें अुपलब्ध हैं। अब वे विश्व लोकसाहित्यका अेक अमूल्य अंग बन चुके हैं।

अिस विषयमें अुत्तरी रूसके ओलोनत्सकी गाँवकी किसान महिला अिरीना अन्द्रेअेवना फदोसोवाका नाम विशेषकर अुल्लेखनीय है। अपनी युवावस्थामें स्वयं गोर्कीने अुसे विलाप करते सुना था और अुसकी स्मृतिमें अुन्होंने सुन्दरतम पाठ लिखे हैं। अिरीना अन्द्रेअेवनाको तीस हजारसे भी अधिक विलाप मुँह जबानी याद थे।

प्राचीन रूसमें मृतक विलापोंका प्रयोग समाजके विभिन्न वर्गोंने किया है। जारकी बोयारों (रओीसों)का सौदागरोंकी तथा बड़े बड़े जमींदारोंकी मृत्युपर विलाप किये जाते थे। सम्राटके महलमें तथा गाँवकी झोंपड़ीमें समान रूपसे विश्वास किया जाता था कि मृतके कमरेमें खिड़कीके पास साफ पानीसे भरा हुआ बर्तन रखना चाहिअे ताकि मृतक आत्मा अुसमें स्नान कर सके। मृतक शरीरको घरसे बाहर ले जाते समय बड़ी सावधानीसे काम लेना चाहिअे ताकि मृतक शरीर किवाड़की चौखटसे न छू जावे वरन् घरमें दूसरी मृत्युका होना अनिवार्य है। दुपहर और शामका खाना खाते समय मेजपर फालतू चीजें रखनी चाहिअे ताकि मृतक गुप्त रूपसे परिवारके साथ खाना खा सके अित्यादि।

प्राचीन रूस अिन रस्मोंको बड़ी सावधानीसे पालता था। अिनसे सम्बन्धित शकुना और अपशकुनों पर अुनका पूर्ण विश्वास था।

पीटर प्रथम द्वारा किये गये सुधारोंके परिणाम स्वरूप अुच्च वर्गके लोगोंका जीवन यूरोपीय ढंगपर तेजीसे बदलता गया। जार और बोयारों (रओीसों)के हरमोंसे विलाप गीत भी धीरे धीरे लुप्त होते गये। सौदागरोंके मध्य यह विलाप गीत चिरकाल तक प्रचलित रहे परन्तु बादमें अुन्होंने भी अिन गीतोंको भुला दिया। रूसमें क्रान्ति पूर्व अंतिम वर्षोंमें मृतक विलापों और दफनानेकी प्राचीन रस्मोंका प्रयोग केवल गाँवोंमें ही किया जाता था।

मृतक विलापोंको लिपिबद्ध करनेका कार्य अत्यन्त कठिन है। अिस समय जब मृतकके रिश्तेदार विलाप कर रहे हों लिपिबद्ध करना बिल्कुल असम्भव है। व्यवसाय रूपसे विलाप करनेवाली जो फुरसतके समय अपनी कृतियोंका संग्रहकर्ताके सामने दुहरा सके अब रूसमें विरली ही मिलती हैं। फिर भी रूसमें विलाप गीतोंके संग्रह करनेका बड़ा सराहनीय कार्य हुआ है। रूसी महिला अेन० कोल्पाकोवाने अपनी पुस्तक कृतीगा ओ रुस्कोम फोकलोरे (रूसी लोक साहित्य)में कुछ अैसे विलापोंको अुद्धृत किया है।

अेक बार कोल्पाकोवा रूसी लोक साहित्य विषयक सामग्रीका संग्रह करने गाँवोंमें घूम रही थी। वहाँ अुसे अेक बुढ़िया मिली जिसका व्यवसाय क्रान्तिपूर्व रूसमें दूसरोंके लिअे विलाप करना था। कोल्पाकोवाने हठ करके तथा चालाकीसे अुस बुढ़ियाको विलाप-गीत सुनानेके लिअे राजी कर लिया। बुढ़िया अेक बेंचपर बैठ गयी और अपनी ठोडी अपने हथेलीपर रखकर कहने लगी

---

* गुजरात, सौराष्ट्र, पंजाब और राजस्थानमें भी अिस प्रकारकी प्राचीन प्रथा है। कओी गाँवोंमें अभी आये जब प्रौढ या बूढ़ी औरतों द्वारा छाती पीटने शोकगीत गानेके- और मातम मनानेके अनोखे दृश्य हमने देखे हैं। --स

"अब मैं तुम्हें ठीक अुसी प्रकार विलाप करके दिखाती हूँ जिस प्रकार मैंने अपनी बहिनके साथ मिलकर अपने पिताकी मृत्युपर विलाप किया था।"

बुढ़िया धीरे-धीरे परन्तु प्रिय और शोकजनक स्वरमें गाने लगी :—

कुदा ती, मोयो जाक्लेन्नोये सेम्येयूश्को,

ओनम्रावल्यायश्स्या ?

ओस्तावल्यायश् ती मिन्या, पोबेदनूयू गोलोवूश्कू,

स कयेम् या स्त्रिवूदू, पोबेदनाया गोलोवुश्का ?

रासप्रोस्तीस् काक ती स खोरोमनोय पोस्त्रोयेन्नयेय,

भी सो अेतोयेयो पान्नानोय बेलोकामेन्नोय,

भी सो सेर्देचोनीमी रोझोनीमी देतुश्कामी।

भी रासप्रोस्तीस् काक ती सो द्वोरोवोय मो स्कोनोनूश्कोय,

भी सो अंनोमी पोल्यामी ख्लेबोरोदनोभी,

भी सो अेनोमी लूगामी सेनोकोस्नोमी।

ती पोस्लूखाओ-का, रोदीत्येल् मोय तात्नेन्का,

स कयेम् मी स्त्रिव् बूदेम नोन्, पोबेदनोये गोलोवूश्को ?

भी काक मी बूदेम व्रापाख़ोवाच् पोल्या दा ख्लेबोरोदनोये

भी ओबकाशीवाच लुगा दा सेनोकोस्नोये ?

रोस्तोम-वज़्रोस्तोम् देद भी दा मीन् मालेदयेन्को,

ने ओबराबातीवाच नाम कॅम्न्यान्कोय राबोनूश्को,

भी ने व्रापाख़ोवाच् पोल्येयी दा ख्लेबोरोदनोय,

भी ने ओबकाशीवाच् लूगोव दा सेनोकोस्नोय......

[अर्थात्.—

कहाँको तू, मेरे कानूनी परिवार, सिधार रहा है ?

छोड़ रहा है तू मुझे, बिचारी गरीबनको,

मैं किसके संग रहूँगी, गरीबन बिचारी ?

अिन महल बाडियोंसे तू कैसे विदा लेगा,

और सफेद पत्थरसे बने अिस घरसे,

और अपने जाये प्यारे बच्चोंसे।

और डगरोंसे बाड़ोंसे कैसे विदा लेगा,

और अन्न-अुपजाअू अिन खेतोंसे,

और घाससे ढंपी अिन चरागाहोंसे।

तू, सुन मेरे प्यारे बापू,

अब हम किसके संग रहेंगे गरीब बेचारे ?

डंगरोंकी हम कैसे देख-भाल करेंगे,

और अन्न-अुपजाअू खेतोंकी कैसे जोताअी करेंगे

और घाससे ढंपी चरागाहोंको कैसे काटेंगे ?

बुद्धिसे तो हम सब बुद्धू हैं,

आयु व कदमें अभी बहुत छोटे हैं,

और अन्न-अुपजाअू खेतकी जोताअी नहीं कर सकेंगे,

और घाससे ढंपी चरागाहोंको नहीं काट सकेंगे......]

बुढ़िया विलाप करती-करती रुक गयी और कहने लगी :—

"नहीं, नहीं, यह काम बहुत कठिन है। आवाज भी नहीं अुठती। और मृतकोंको याद करना भी तो बहुत शोकजनक है। पिताकी मृत्युके पश्चात् हम अनाथ हो गये थे। माँ हमारा पालन-पोषण करनेमें असमर्थ थी। जीविकाका कोअी साधन नहीं था। माँ व्यवसाय-रूपसे लोगोंके लिअे विलाप किया करती थीं। भला आँसू बहाकर भी कहीं जीविका चलती है। हमारी झोंपड़ीपर दरिद्रताका राज्य था। जीवनमें मैंने बहुत दुख अुठाया है। यही कारण है कि ये शोकजनक शब्द अब मेरी हड्डी-हड्डीमें रच गये हैं......"

बुढ़िया चुप हो गयी। कोल्याकोवाने बुढ़ियाका ध्यान आकर्षित करनेके लिअे अुससे पूछा :—

"और तू बूढ़ी अम्मा, विवाहोंमें भी जाया करती थी? विवाहिताके साथ रुदन करने?"

"नहीं बेटी, विवाहोंपर तो मैं नहीं जाती थी। कभी-कभी रंगरूटोंके प्रति रुदन करने अवश्य जाया करती थी" बुढ़ियाने अुत्तर दिया।

"रंगरूटोंके प्रति रुदन-विलाप" यह कृतियाँ भी मृतक-विलापोंसे बहुत मिलती-जुलती हैं। स्वेच्छाचारी बादशाह ज़ारोंके समय रूसमें फौजी रंगरूट कभी वर्षों तक लौटकर नहीं आते थे। साधारणतः वे बूढ़े होकर ही वापस अपने गाँव आते। अिसलिअे अुनको भी मृतकोंकी भाँति ही रोया जाता था। विदाअी करते हुअे मृतकको ही तरह अुनपर विलाप किये जाते थे।

बुढ़िया फिर बोल अुठी —

"हमारे यहाँ पहिले रंगरूट वर्षोंके बाद लौटते थे। वहाँ सामने देखो, वह जहाज़ोंके ठहरनेका स्थान। बस

ठीक वहाँ ही अुनको—जानके टुकडोको—विदा किया जाता था। वहाँसे अुनको पेत्रोजावोत्स्क और फिर पीतरबुग (लेनिनग्राद) ले जाया जाता था। वहाँसे सीधा रणक्षेत्रमें। मेरे तो कोओी लड़का नहीं था केवल लड़कियाँ ही थी। परन्तु मेरी बहनके दो लड़काको ले गये थे। तब मैंने अुनके लिअे विलाप किया था। अिस प्रकार।' बुढ़ियाने फिर शोकजनक रूसी तान निकाली —

ती पोस्लूशाओी-का सेर्देशनो मोयो दित्यात्को
अुस काक धेवना कूचीन्नाया गोलोवुष्का
काक या स्प्रवोला आ ओनपूशको सप्राविला
काक वलोवीला या व वोयन्नोयवो पोसु सवोय
काक स्तोअित मोयो सेर्देशनो रोमानो दित्यात्को
काक वो अस्तोम वो बोयन्नोम वो प्रीसु सवोअी
काक या स्लमाल्कू स्मोअ्यू कूचीन्नाया गोलोवुष्का
काक स्ताला स्ताविच सेर्देशनो मायो दित्यात्को
वा पोव अतूयू परे" मेक गोस्रुदारस्तवू।
आम्रोशाली मेवो रेजवोय तुल मोश को
पोद अलोय पोद मेरोय गोस्रुदारस्तवोय।
ताक अुस जानीलो मवो रेतलीवोय सेर्देचुशको
अुशीवला मवी तोस्का वलीकाया कूचीनशका
ताक अुस अुनीव्रला मी या वेलीकाया कूचीनशका
ताक अुस मदना पोवदनाया गोलोश्नका
औ काक सलोवीला औ वो कुअनी स्र म्रलेजनूय
औ स्लोवाला औ वो ओवच्चा म्रलेजनीय
ओवोन ओवच्च वलाना औ ना स्वोयो मलावुम
गोलोवशकू
दुगोय ओवच्च वलाला या ना स्वोयो रेतलीवोय
सेदचशको
मनी ओवदच वलाला या ना रेजवा स्वोअी मोश को —
ताक अम मुकपोला मा स्वोय रेतलीवोय मस्चास्तनोय
सेदचशको

[अर्थात् —
तू सुन तो मेरे लाडले बच्चे
कितनी गरीबन हूँ शोकग्रस्त बिचारी
मैं किस प्रकार ओनगशका के बारेमें पूछ ताछ करने
गयी।
कैसे दाखिल हुओी मैं फौजी दफ्तरमें
किस तरह मेरा लाडला जाया खड़ा था
किस तरह फौजके अिस दफ्तरमें
किस तरह देखा निहारा मैं शोकग्रस्त बिचारीने
किस प्रकार धरने लगे मेरे लाडले बच्चेको
सरकारके अिस हुक्मके अधीन
अुसकी पतली पतली सुन्दर टाँग काँप रही थी
सरकारके अिस हुक्मके अधीन।
अुसका धड़कता हुआ दिल मरझा चुका था
अुसको गहरे शोकने ग्रस लिया था
मुझे भी गहरे शोकने ग्रस लिया था
गरीबन बिचारीको
मैं कैसे लोहारके पास गयी
और लोहेके तीन पट्ट तैयार करवाये
अेक पट्ट मैंने जवानके सिरपर रखा।
दूसरा मैंने अपने धड़कते हुअे दिलपर रखा
और तीसरा पट्ट मैंने अपनी पतली टाँगपर रखा
अिस प्रकार मैंने अपने धड़कते हुअे अभागे दिलको
मजबूत किया]

अिस प्रकार प्राचीन रूसमें स्त्रियाँ विलाप किया करती थीं।' दुपट्टेके छोरसे अपने आँसू पोंछते हुअे बुढ़ियाने कहा। यह आँसू विलाप करते करते छोटी छोटी बूँदोंके रूपमें अुसके झुर्रीदार गालोंपर जमा हो गये थे।

मृतक विलापों और रंगरूटी गीतोंके अलावा अन्य गम्भीर और जटिल भावनाओंको व्यक्त करनेके लिअे कविताके अिस साधारण प्रकारका प्रयोग करके विवाह गीतोंमें बहुत कुछ भर लिया जाता था।

वर्तमान सोवियत-युगमें अेक विशेष प्रकारके विलापोंका निर्माण हुआ है। वे हैं विलाप कथायें। ये विलाप सोवियत भूमिके प्रमुख कार्यकर्ताओं और वीरोंकी स्मृतिमें लिखे गये हैं। विलाप-कथाओंमें अभिव्यक्त भावनायें किसीके अपने निजी शोककी नहीं प्रत्युत समस्त जनताके शोकको व्यक्त करती हैं।

* लड़केका नाम

डायरीका अेक पृष्ठ :

मा निषाद प्रतिष्ठांत्वम्

: श्री राजेन्द्र यादव :

१२ अक्टूबर, १९५०

"हाँ, आपसे मिलिये, आप हैं श्री राजेन्द्र यादव, कहनेको प्रगतिशील लेकिन मांसाहारके विरुद्ध कहानियाँ लिखते हैं।" मटर चाँपकर अेक बड़ा-सा टुकड़ा काँटेमें अटकाकर मुंहमें रखनेके पहले मेरे अुन मित्रने अेक नवागन्तुकसे परिचय कराया। रेस्त्राँका माहौल, बात हँसीमें अुड़ गयी।

प्रगतिशीलताकी बात छोड़ दीजिये क्योंकि प्रगतिशील होना आसान नहीं है और न होना कम खतरनाक नहीं है। सही-सही प्रगतिशीलता क्या है, जिसपर चारों तरफके विद्वान् अपने दिमागका तेल निकाले दे रहे हैं। लेकिन मैं बड़ी देर तक सोचता रहा कि क्या मांस न खाना अैसा प्रतिक्रियावादी है? यह कटाक्ष मेरे अुन मित्रने मेरी अेक 'वे नरभक्षी' कहानीको लेकर किया था, और चूंकि मैंने अपने अुन मित्रकी कविताओंके सारे शब्द लेकर अुसमें मजाक अुड़ा डाला था—अिसलिये अुनकी बातको विशेष महत्व नहीं दिया। लेकिन जब वह कहानी अेक अच्छे साहित्यिक पत्रमें छपी, और कुछ ही समय बाद जैनियोंके अेक पत्र तथा सनातनियोंके कुछ पत्रोंमें अुद्धृत हुअी—तो वास्तवमें मैं चौंक पड़ा। कहीं मैं अिन प्रतिक्रियावादियोंका हथियार तो नहीं बनाया जा रहा हूँ?

काफी दिन हो गये, भगवानसे मेरा विश्वास कुछ अैसा अुठा कि फिर जमता ही नहीं दिखायी देता। बुड्ढे लोग कहते हैं, "सब जम जायेगा, हमने बड़े-बड़े नास्तिक देखे हैं, बादमें सब मानने लगते हैं!" तो मैंने अुनकी बातको सच मानकर सोच लिया कि बुढ़ापेमें जम जायेगा, तो देखा जायेगा। अभी तो निश्चिन्त हो हूँ। सो भगवानके बोझको मैंने बुढ़ापेमें अुठानेके लिये स्थगित कर दिया है।

भारतीय मनीषियों द्वारा किया गया सात्त्विक, राजसिक और तामसिक भोजनका विभाजन मुझे घोर अस्वाभाविक और अवैज्ञानिक लगता है। और मैं मानता हूँ कि मनुष्यके स्वास्थ्य और बुद्धिपर अिस भोजनका कोअी प्रभाव नहीं पड़ता—जो कुछ प्रभाव अिससे पड़ता दीखता है वह मनोवैज्ञानिक है। क्योंकि आपको अपने भौगोलिक कारणोंसे अैसी सुविधायें प्राप्त हैं कि अपने यहाँ होनेवाले भोजनोंको आप तीन भागोंमें विभाजित कर डालते हैं—अुनमेंसे अेकको श्रेष्ठ बताते हैं शेषको निकृष्ट। मान लीजिये अेक देश, या प्रान्तको ये सुविधायें प्राप्त नहीं हैं और वहाँ केवल वही भोजन साधारणतया अुपलब्ध है (या कॉमन है) जिसे आपने तामसिक या राजसिकके घेरेमें डाल रखा है—जैसे समुद्रके तटवर्ती प्रदेशोंका साधारण भोजन मछली है—अब आपके लिहाजसे न तो वहाँके लोगोंका स्वास्थ्य ठीक है और न वहाँ प्रखर बुद्धि पायी जाती है, क्योंकि माँस मछली तामसिक भोजन है। और सीधा निष्कर्ष यह है कि चूंकि हिन्दुस्तानको छोड़कर—या कहें कट्टर हिन्दू धर्मको छोड़कर सारे संसारमें तामसिक और राजसिक भोजन किया जाता है। (व्यक्तिगत अुदाहरण छोड़ दीजिये) अतः सारी बुद्धि प्रतिभाकी फसल हिन्दुस्तानमें ही होती है जब कि चिन्तन और बुद्धिके नामपर हिन्दुस्तानने जो कुछ दिया वह सब हवाअी है। प्लेटोक्स और मार्क्सको गति देनेवाला चिन्तन हमें अुन्हीं तामसिक और राजसिक देशोंमें मिलता है। और सच बात तो यह है कि भोजनोंसे बुद्धि तेज या मंद होती है यह विभाजन हमें कल्पनाओंका प्रान्तीयता, जातिवाद, अूँच-नीच और रक्तकी श्रेष्ठता (Racialism)

पर ला छोड़ता है— जिसका समर्थन केवल हिन्दुत्व ध्वसावशेष करते हैं।

काफी सोचकर मैं पाता हूँ कि नहीं, मास खानेमें कोओ बुराओ नहीं है। लेकिन कम्न हुअ बकरेकी आँखोंके दर्द और गोली खाय हुअ पक्षीकी तड़पनको मैं क्या करूँ—जो मनपर चाकूकी तरह चल जुकी है। शाम। मुझे बुभानेपर मेरे दर्द न होना, चाकूका घाव मुझे आनन्द दे पाता तब तो शायद मैं अुस दृश्यसे अुन्मुक्त हो सकता था। मैंने अेक बार मुर्गी कटते देखी और मुझे तीन दिन न जाने कैसा-कैसा लगता रहा। अब भी याद करता हूँ तो सिहरनसे भर अुठता हूँ। जो आदमी काट रहा था— जितना प्रेम वे अपनी कार गुजारीपर वह था— अुतना ही क्या नहीं हो पाता। मैं मानता हूँ कि मेरी कमजोरी है। मैं कच्चे दिलका आदमी हूँ, और बाधाकी मैं सख्त प्रतिक्रियावाली मानता हूँ जिसने कहा है— विधिके बनाये जीव जते हैं जहाँ तहाँ खलत फिरत तिन्हें खेलन फिरन देहु।

लेकिन शिकारी प्रदेशका यह नैसर्गिक—?

अज यू लाअिक अिट के दूसरे अंकका पहला दृश्य

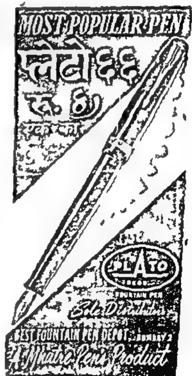
आर्डेनके जंगलमें वनवासी—निर्वासित— ड्यूक, अमीरों और तीन लॉर्ड्स।

ड्यूक कहता है, आओ चलें अपने लिअे कुछ हिरन मारें। लेकिन यह चीज मुझे बड़ा ही कष्ट देता है कि अिस अेकान्त स्थानमें वास करनेवाले ये चितकबरे खालवाले प्यारे पशु अपने घरोंमें भी हमारे तीरों और भालोंसे बच न पायें?

पहला लॉर्ड अुत्तर देता है— सचमुच महाराज जेक्सको अिसीका अफसोस है। मैं और वह जंगलमें चुपचाप खड़े थे वहाँ—अेक ओकके नीचे जिसकी पुरानी जड़ नालेके अूपर झाँकती है, अपने दलसे बिछुड़ा हुआ बेचारा अेक बारहसिंगा जो शिकारीके निशानेमें घायल हो गया था— मरने आया था— और मैं आपसे सच कहता हूँ महाराज कि वह बेचारा अभागा पशु अितने जोरसे दुःखपूर्ण अुच्छ्वास छोड़ रहा था कि अुसके निकलनेसे अुसकी खाल जैसे फटी पड़ती थी। और अेकके बाद अेक बड़े करुणोत्पादक ढंगसे धार बाँधे हुअे बड़े-बड़े आँसू अुसकी प्यारी नाकपर ढुलके पड़ रहे थे।

अिस प्रकार अुस बहुत नाजुक दूसरे किनारेपर खड़े हुअे अुस अभागे जानवरने जेक्सको बड़ा दुःखी कर दिया है। और अिसी प्रकार वह बताता है कि जानवरोंको अुनके घरोंमें जाकर मारनेवाले हम शहरी कम अत्याचारी और नहीं हैं।

बहुत कोशिश करनेपर भी मैं मोपासाँकी कहानी प्रेम नहीं भूल पाता। कितने करुणापूर्ण ढंगसे अुसने यह कहानी कही है। वह अपने चचेरे भाओके साथ यहाँ शिकार खेलने गया। वे बन्दूकें बाँधकर जंगलमें पहुँचे और सुबहकी फूटती रोशनीमें हंसों (डक) को मारने लगे। दो कुत्ते अुनके शिकारोंको ला लाकर पास रखने जा रहे थे। वे लोग बचनेको ही थे कि दो हंस लम्बी गर्दन और पंख फैलाये सिरके अूपरसे गुजरे। मैंने गोली चलायी और अुनमेंसे अेक ठीक पैरोंके पास आ गिरा—यह छोटा जाहिरा सफेद रंगकी छातीवाला हंस था। तभी मैंने सिरपर फैले नीले आसमानमें चिड़ियाकी अेक आवाज सुनी—यह अेक टूटी-फूटी दुहरी



दुहराकर सुनायी जानेवाली-बडी हृदय विदारक चीत्कार थी। और वह छोटीसी चिडिया जो बच गयी थी, नीले आसमानमें अपने अुस मरे हुअे साथीको देखती, जिसे मैं हाथमें अुठाये था,—हम लोगोंके सिरोंके अूपर चक्कर लगाती मॅंडरा रही थी। कार्ल घुटनोंपर झुका कन्धेपर बन्दूक रखे, बडी अुत्सुकतासे देख रहा था कि वह बन्दूककी मारकी सीमामें आ जाअे। "तुमने हसिनीको मार दिया है-अब हंस नहीं अुड़ेगा!" वह बोला।

सचमुच वह नहीं अुडा और चीत्कार करता हुआ लगातार हमारे सिरोंपर मॅंडराता रहा। शायद मुझे जिन्दगी भर कभी कष्ट-पूर्ण रुलाअीको सुनकर अितना दुख नहीं हुआ जितना अुसकी अुन असहाय प्रार्थनाओंको सुनकर,—जितना अुस बेचारी छोटी-सी चिडियाके करुण अभिशापोंको सुनकर, जो शून्यमें खो गये थे! वह बार-बार अुडता और अुसके साथीका मोह अुसे बार-बार अिधर खींच लाता।

"अुसे जमीनपर रख दो। कार्लने मुझसे कहा"—"धीरे धीरे वह बन्दूककी मारके भीतर आ जायेगा। और सचमुच वह पास आ गया—जैसे खतरेकी अुसे कोअी चिन्ता ही नहीं हो—वह अपने अुस पशु-प्रेममें अपने साथीके मोहमें जिसे मैंने अभी मार दिया था—बेहोश था! कार्लने फायर किया और जैसे झटकेसे वह डोरा टूट गया जो अुसे अितनी देरसे अुलझाये था—फिर जैसे कोअी काली चीज जोरसे गिर पडी। कुत्ता-भागकर अुसे मेरे पास अुठा लाया! मैंने अुन्हें अुसी थैलीमें रख दिया—वे ठण्डे पड गये थे—और अुसी शाम पॅरिस लौट आया।

अेण्टन चैखवकी कमजोरी भी कुछ अिसी प्रकारकी थी। जब वह मेलिखोवोमें था-तब अक्सर मिलनेवाले अुसके पास आया करते थे। अेक बार प्रसिद्ध चित्रकार लॅविनन, अुसका मित्र भी दो-अेक दिनको आया और वे लोग शिकारको गये। लॅवितनने अेक जंगली मुर्गेपर गोली चलायी। मुर्गा अेक खुली जगह गिर पडा। चैखवने अुसे अुठा लिया और देखा-लम्बी चोंच, बडी-बडी काली आँखें,—और बहुत सुन्दर पर। मुर्गा आश्चर्यसे अिन लोगोंकी ओर देख रहा था। चैखवकी समझमें नहीं आया कि अिस अभागे मुर्गेका क्या करे! लॅवितनके चेहरेपर वेदना अुमड गयी थी। अुसने अपनी आँखें बन्द कर ली और काँपती आवाजमें बोला—"तुम बडे अच्छे हो, अिसके सिरको बन्दूकके पिछले हिस्सेसे तोड डालो।" चैखवने अुत्तर दिया कि "भाअी, मुझसे यह नहीं हो सकेगा।" लॅवितनने दो बार कन्धे झटके—आँखें झपकी। *वह बडा नर्वस हो रहा था। अुसने फिर चैखवसे* पक्षीको मार डालनेकी प्रार्थना की। आखिर चैखवने ही वह काम पूरा किया।—" अिस प्रकार संसारसे अेक सुन्दर प्राणी कम हो गया—" चैखवने सुवेरिनको अेक पत्रमें घटनाका वर्णन करनेके बाद कहा है—" और *दोनों बेवकूफ चुपचाप सिर लटकाये घर लौट आये—"*

शिकारकी बात याद आते ही संसारके सबसे बडे क्रान्तिकारी लॅनिनके जीवनकी घटना याद आती है। अेक बार वे भी अपने अेक मित्रके साथ शिकार खेलने गये, और अेक जगह छिपकर चुपचाप बन्दूक लिये बैठ गये। तभी सामनेसे अेक लोमडी गुजरी, मित्रने कोहनीसे अिशारा किया, लेकिन लेनिन चुप। मित्रने फिर झटका दिया— लेकिन लैनिन फिर चुप। लोमडी निकल गयी। मित्रने झुझलाकर कहा—"अजब आदमी हो, गोली क्यों नहीं चलायी?" गहरी साँस लेकर लेनिनने कहा—" यार, वह अितनी सुन्दर थी कि अुसे मार डालनेको मेरा मन ही नहीं हुआ।"

मेरी वह कहानी 'प्रगतिशील' है या प्रतिक्रिया-वादी मुझे नहीं मालूम। लेकिन सचमुच मैं दिलसे नहीं चाहता कि अुससे प्रतिक्रियावादियोंका कोअी भी अुद्देश्य सधे। फिर भी भावुकताकी बात नहीं है, यह बात मेरे दिमागमें नहीं घुसती कि हम तो सिर्फ अेक बातसे अैसे घायल हो जाअें कि महीनों अुसे पाले रहें—कोअी हमें नोच ले तो लपककर घूँसा मारें—लेकिन दूसरेकी गर्दन काटनेको अपना खेल समझें अुसकी मौतकी तडपनोंसे आनन्द ग्रहण करें—और घर आकर सूरज-चाँद-तारे और ओसमें प्राणोंका आरोप करके कवितायें लिखें। क्या यह "मैं ही सबसे अधिक ठीक हूँ" की डिक्टेटरी प्रवृत्ति नहीं है? और अुस समय जब ये अपने आपको वाल्मीकिका वंशज बताते हैं तो जी होता है मुँह नोच लें।

ध्वनि-रूपक :

प्रेममें भगवान

'स्व. टालस्टाय

[प्रारंभिक संगीतके बाद मार्टिनका स्वर अुठता है।]

मार्टिन . (स्वगत दुखभरा स्वर) हे भगवान, मुझे भी अुठा लो, तुम कैसे हो कि मेरा अिकलौता नन्हीमी अुमरका जो मेरे प्यारका बच्चा था अुसे तो तुमने अुठा लिया और मुझ बूढेको छोड़ दिया, अब मैं तुम्हे कैसे याद करूँ, क्यो याद करूँ ? मैंने अपने जूत गाठनेके काममें कभी कोताही नही की। कभी किसीको धोखा नहीं दिया, फिर भी तुमने मेरी बीबीको अुठा लिया। सब बालक छीन लिये, अेक बच्चा था, बेचारा बे-मांका बच्चा अुसे मैंने पाला पोसा, बारह वर्षका किया। अुम्मीद बधने लगी थी, कि बुढापेकी लकडी बनेगा, अुसे भी अुठा लिया।

[तभी आवाज आती है]

बूढा यात्री मार्टिन हो क्या ? अजी मार्टिन !

मार्टिन कौन हो ? आओ आजाओ. ओ हो आप हैं ? यात्रा कर आये ?

बूढा यात्री हां कर आया, आठ वर्षसे तीरथ ही घूम रहा था, बडी शान्ति मिली, कहो तुम कैसे हो ?

मार्टिन मेरी क्या पूछते हो ? अेक लडका था। तीन बरसकेको अुसकी मां छोड गयी थी, अेक बार सोचा था कि अुसे देहातमें बहनके पास भेज दूं, पर दूसरेके घर बालकको जाने क्या भुगतना पडे, क्या नही, यह सोचकर अुसे अपने पास रखा। नौकरी छोडकर अुसे पाला। अब बारह वर्षका हो चला था, कि भगवानने अुठा लिया।

बूढा यात्री ओ हो तुम्हारा बेटा चल बसा ?

मार्टिन चल नही बसा, अुसे भगवानने मार डाला। भगवान बडे....

बूढा यात्री हरे राम हरे राम, मार्टिन भगवान जो कुछ करते हैं अच्छा करते हैं, घबराओ नही वे सब ठीक करेंगे।

मार्टिन क्या ठीक करेंगे ? अब तो भाअी मुझे जीनेकी भी चाह नही रह गयी बस भगवान करे मैं जल्दी यहांसे अुठ जाअूं। तुम्ही कहो जगमें अब कौन आशा मुझे बाकी है ?

बूढा यात्री अैसी बात मुंहसे नही निकालते मार्टिन ! *अीश्वरकी लीला भला हम क्या जानें कोअी* हमारा चाहा यहाँ थोडे ही होता है। अीश्वरकी मर्जी ही चलती है, अुनकी अैसी मर्जी है कि बच्चा चला जाअे, और तुम जीओ। अिसीमें कोअी भलाअी होगी। तुम जो निराशाकी बात करते हो अुसकी वजह यह है कि तुम बस अपने ही सुखके लिअे रहना चाहते हो।

मार्टिन अपने सुखके लिअे नही तो भला किसके लिअे रहना चाहिअे ?

बूढा यात्री अीश्वरके लिअे मार्टिन, अुसने हमें जीवन दिया, सो अुसीके लिअे हमें रहना चाहिअे। अुसके लिअे रहना सीख जाओ तो फिर कोअी क्लेश न रहे।

(क्षणिक सन्नाटा)

मार्टिन . (जैसे सोचता हो) अीश्वरके लिअे हमें रहना चाहिअे।

बू. या. हां, अुसने हमें जीवन दिया है।

मा. (पूर्ववत) लेकिन अीश्वरके लिअे रहना कैसे होगा ?

बू. या. वह तो सन्त लोगोंके चरितमें पता लग सकता है। अच्छा तुम बाँच तो सकते हो न ?

मा . हां हां, बांच लेना हूं।

बू या : तो बस अिजीलकी अेक पुस्तक ले आना, अुसे पढ़ना, अुसमें सब लिखा है। अुससे पता लग जाअेगा, कि अीश्वरकी मर्जीके अनुसार रहना कैसा होता है।

मा अच्छी बात है, मैं आज ही जाकर बड़े छापेकी अिजील ले आअूंगा, और छुट्टीके दिन, सातवें रोज पढ़ा करूंगा।

(अन्तराल संगीत फिर मार्टिनका आशा भरा स्वर)

मा यह क्यासे क्या हो गया। पढ़नेमें अैसा मन लगता है कि बत्ती बुझ जाती है तभी पोथी छूटती है। अब बच्चेकी याद करके भी दुख नहीं होता, दारू भी छूट गयी। जीवनमें जैसे शान्ति आ गयी। आनन्द रहने लगा। हे भगवान्, तू ही है, तू ही जगदाधार है, तेरीही चाहा हो, (अिजीलके पन्ने पलटता है) आज तो छठा अध्याय पढ़ना है,· "जो तुझे अेक गालपर थप्पड़ मारे तो तू दूसरा भी अुसके आगे कर दे। जो कोट अुतारना चाहे कुरता भी अुसे सौंप दे। जो मांगे सबको दे। और जो ले जाअे अुससे तू वापिस कुछ ना मांगे, और जो तू चाहता है कि लोग तुझसे अैसे बरतें वैसेही तू अुनसे बरत।" (क्षणिक सन्नाटा, पन्नोंकी खड़-खड़)। 'तुम प्रभु तो पुकारते हो, पर मेरा कहा करते नहीं हो, जो मेरे पास आता है, मेरा कहा सुनता है, और फिर वैसाही करता है, वह अुस आदमीके समान है जिसने गहरा खोदकर अपने मकानकी नींव चट्टानपर जमायी है बाढ़ आयी और लहरें टकरा-टकराकर हार गयी, पर मकान नहीं हिला पर जो सुनता है और करता नहीं, वह अुस आदमीके समान है, जिसने धरतीपर मकान खड़ा किया पर बुनियाद नहीं दी, आयी पानीकी बाढ़ और टकरायी कि मकान ढह पड़ा...." (फिर सन्नाटा) टकरायी कि मकान ढह पड़ा। हूं, मेरा मकान चट्टानपर है, कि रेतपर? चट्टानपर है तो ठीक है, यहां बैठे बैठे तो सब ठीक लगता है। जैसे अीश्वरकी मर्जीके मुताबिकही मैं चल रहा हूं। लेकिन अांख झपकी कि मनमें विकार हो आता है। तो जतन मुझे नहीं छोड़ना चाहिअे। अच्छा अब सोअूं "लेकिन मन नहीं करता। तो फिर सातवां अध्याय भी पढ़ना शुरू करूं, (पन्ने पलटते हैं, पढ़ता है, समय बीतता है, जोरसे पढ़ने लगता है) तब प्रभु अुस स्त्रीकी ओर होकर साअिमनसे बोले अिस स्त्रीको देखा; मैं तुम्हारे घर अतिथि हूं, पर तुमने मेरे पैरोंपर पानी नहीं दिया, और यह है कि अपने आंसुओंसे जिसने मेरे पैर धोये और केशोंसे अुन्हें पोंछा है। तुम मुझसे बचे हो, और जबसे मैं आया हूं यह मेरे पैरोंको ही चूमती रही है, तुमने मेरे सिरपर भी तेल नहीं दिया और यह है कि मेरे पांव स्नेहसे भिगोती रही है....।" (सहसा रुककर सोचमें डूब जाता है) ... अुसने पैरोंपर पानी नहीं दिया, अुन्हें छूनेसे बचा, सिर तेल नहीं दिया, .. (अेक क्षण सन्नाटा, फिर बोलता है) वह आदमी मेरी तरहका रहा होगा, अपनी ही अपनी सोचता होगा। खुद अच्छा खा लेना और आरामसे रहना। बस अपना ही सोच, मेहमानकी चिन्ता नहीं, कुल अपना ही अपना अुसे ख्याल था, मेहमानकी तनिक परवाह नहीं थी। और मेहमान कौन? स्वयं भगवान, जो कहीं वह मेरे घर पधार जावें तो क्या मैं भी वैसा ही करूं?......

(अैसे बोलते-बोलते स्वर धीमा पड़ता है, वह सो जाता है, रात्रिका संगीत अुठता है, फिर जैसे कोअी सूक्ष्म स्वरमें पुकारता हो।)

स्वर मार्टिन,

मा. (चौंककर) कौन है? (चलनेका स्वर) कौन है भाअी?

स्वर. मार्टिन, कल गलीपर ध्यान रखना; मैं आअूंगा।

मा. (चकित) यह कौन बोला, कौन हो तुम... ..अें . यहां तो कोअी नहीं।" शायद मैं सपना देख रहा था, हां सपना ही होगा, नहीं तो अिस वक्त यहां कौन आता? चलो सोअूं।

(फिर सो जाता है, अन्तराल संगीत, फिर मार्टिनके जूते गांठनेका स्वर: अुसके बाद मार्टिन बोलने लगता है।)

मा : (स्वगत) रात वह सपना था या सचमुच कोअी आया था, मुझे तो अैसा लगता है जैसे वह सचमुचकी आवाज थी, पहिले भी तो लोग अैसी

आवाजें सुनते रहे ह किसीके चलनकी आवाज कौन आ रहा है वही है क्या ? अरे यह तो वही है नये चमचमाते जूते पहन ह और यह कहार है और अब कौन ? (घिसे जूतोकी आवाज) ओह बूढा सिपाही स्टपान है किसीके घरमें रहता है। बचारा रात जो बरफ पडी थी असे हटाने आया है (हम पडता है) म भी अुमरसे बुढा गया हूँ नही तो क्या ? देखो न कसे बहकने लगा हूँ, आया तो स्टपान है गली साफ करन और मुझ सूझा कि मसीह प्रभु ही आ गये ह। है न बात कि म सठिया गया हूँ (कहता हुआ जूते ठोकता रहता है कुछ क्षण केवल ठक ठक कर आवाज अुठती है) हूँ अब तो स्टपान बरफ हटा चुका होगा। देखू अरे यह तो दीवारके सहारे सुस्ता रहा है। बचारा बूढा भी तो बहुत हो गया है। कमर झुक गयी है। देहमें बल नही रहा। वह तो हाँफ सा रहा है। क्यो न बुलाकर अुसे चायके लिअ पूछू बनी हुभी तो है ही हाँ हाँ अुसे बुलाअ (खिडकी थपथपाकर पुकारता है) स्टपान भाअी स्टपान !

स्टपान० (दूरसे) कौन है ? क्या है जी ?

मा० आओ अन्दर आजाओ थोडा गरमा लो न तुम्हे ठड लग रही मालूम होती है लो दरवाजा खोलता हूँ (दरवाजा खोलनका स्वर) आजाओ अिधर।

स्टपान० भगवान तुम्हारा भला करे सचमुच मेरी देहमें सरदी बठ गयी है और जोड दद करते ह जरा पर झाड लू तो अन्दर आअू।

मा० अरे अरे गिर पडोग भाअी रहन भी दो फश झड जाअगा सफाअी तो रोज होती ही है कोअी बात नही भाअी आजाओ, यहाँ बठो यहाँ बैठो और लो चाय पिओ।

स्टपान० (विनम्र स्वर) ह ह कसे धन्यवाद दू ? (दोनो चाय पीते ह) सचमुच गर्मी आ गयी आप कितन अच्छ ह ?

मा० लो अक गिलास और लो अरे लो भी (गिलास भरता है पीते ह) गरमी आअगी तो काम भी खूब होगा।

स्टपान० तुम तो भाअी सचमुच लेकिन तुम बार बार सडककी तरफ क्या देख रहे हो क्या किसीकी बाट जोहते हो ?

मा० बाट ? भाअी क्या बताअ ? कहते लाज आती है सच पूछो तो अिन्तजार तो नही है पर रात अक आवाज सुनी थी जो मनसे दूर नहा होती है। वह सचमुच कोअी था या सपना था। कह नही सकता कल रातकी बात है कि म अिजील बाच रहा था असमें प्रभु अीसाका वणन है न कि कसे अुहोन दुख अुठाय और किस भाँति वह अिम धरतीपर प्रम और भक्तिसे रहे सो तुमन भी जरूर सुना होगा।

स्टपान० सुना तो मन है पर म अपढ आदमी हूँ और समझना-बूझना कम हूँ।

मा० तो सुनो भाअी अुनके जीवनके विषयकी बात है म पढ रहा था पढते-पढते वह प्रसग आया जहाँ मसीह अक धनवान आदमीके यहाँ जाते ह वह धनी आदमी मनसे अुनकी आवभगत नही करता।

स्टपान० फिर फिर क्या हुआ

मा० तुम्हे म क्या कहू म सोचन लगा कि कही म होता तो जान क्या न करता पर देखो कि अुस आदमीन मामूली भी कुछ नही किया अिसी तरह सोचते सोचते मुझ नींद आ गयी फिर अकाअक जो जागकर अुठा तो असा लगा कि कोअी मुझ नाम लेकर धीमसे कह रहा है कि देखना अितजारमे रहना म कल आअूगा।

स्टपान० सच असा हुआ ?

मा० असा दो बार हुआ सच कहूँ तो भाअी वह बात मेरे मनमे बैठ गयी यो तो मुझ खुद शरम आती है पर क्या बताअ मनमे आशा लगी ही है कि खुद भगवान कही न आते हो।

स्टपान० बडी अजीब बात है शायद

मा० अरे लो तुम्हारा गिलास खाली हो गया बातोमें लगा रहा लो

स्टपान० नही-नही, अब नही।

मा० लो भाअी, पीओ भी (भरता है) हाँ म क्या कह रहा था हाँ म सोच रहा था कि अिस धरतीपर मसीह प्रम कसे रहते थ। नफरत किसीसे नहा करते थ और मामूलीसे मामूली लोगोके बीच मिल जुलकर रहते थ हम जसे अधर्मी और पापी लोगोंको अुन्हान शरण देकर अुठाया था।

स्टे० सो तो है ही। वे प्रभु थे, प्रभु . ...

मा० . अुन्होंने कहा, जो तनेगा अुसका सिर नीचा होगा, जो झुकेगा वही अुठेगा, अुन्होंने कहा तुम मुझे बडा कहते हो, और मैं हूँ कि तुम्हारे पैर धोअूँगा, अुन्होंने कहा जो दीन है और दयावान है, और प्रीति रखता है वही धनी है।

स्टे० : (भावावेश) कितनी बढिया बात है, तुम कितने भाग्यवान हो मार्टिन, जो प्रभुकी वाणी बाँच सकते हो, तुमने मुझे ये बाते सुनाकर धन्य कर दिया, धन्य कर दिया।

मा० अरे तुम तो रोने लगे, स्टेपाल लो अेक गिलास, बस अेक गिलास और लो।

स्टे नहीं-नहीं अब नही, मैं माफी चाहता हूँ, किस तरह तुम्हारा धन्यवाद अदा करूँ, तुम्हारा मुझपर बड़ा अेहसान हुआ, तुमने मेरे तन और मन दोनोको खूराक दी और सुख पहुँचाया, अब तो चलूँ . ...

मा० : अजी क्या कहते हो, कब तो अतिथि मिलते हैं। भाअी फिर भी अिधर आया करना। मुझे बडी खुशी होगी, (स्टेपान जाता है) गया, चलो मैं भी काम निबटा लूँ, (कुछ क्षण काम करता है फिर सिपाहीके जूतोंकी आवाज अुठती है) . कौन आया ? ओह सिपाही है। सरकारी जूते पहने है और वह मकान मालिक है, वह नानवाअी गया।...अरे हवा चल पडी है, खिडकी बन्द कर दूँ (कुछ चलता है) वह कौन दीवारके पास हवाकी ओर पीठ करके खड़ा है, अेक स्त्री हूँ, अुसकी गोदमें तो बच्चा है, अुसे ढकना चाहती है, पर कपड़ा तो अुसके पास है नहीं। जाडेमें गरमीके कपडे पहने है वे भी फटे हैं, (तभी बच्चा रो अुठता है, रोता रहता है, स्त्रीके चुपकारनेकी आवाज अुठती है, पर बच्चा नहीं चुपता, मार्टिन पुकारता है) सुनना भाअी अिधर सुना ?

स्त्री० मुझे बुलाया तुमने ?

मा० : हाँ, हाँ, मैंने बुलाया है, वहाँ सरदी में बच्चेको लेकर क्यों खड़ी है, अन्दर आ जाओ, यहाँ बच्चेको ठीक तरह अुढ़ा भी लेना, अिधर आओ, अिधर, (स्त्री आती है) वह खाट है, वहाँ बैठ जाओ, आग है हीं, जरा गरमा लो, और बच्चेको भी दूध पिला लो।

स्त्री० दूध मेरे कहाँ है, सवेरेसे मैंने कुछ खाया ही नहीं है ?

मा० : तो फिर रोटी खा लो, शोरबा भी है, हाँ दलिया अभी नही हुआ, क्या हर्ज है रोटी-रसा ही लो, लो बैठ जाओ और शुरू करो, बच्चोंको लाओ मुझे दो। देखती क्या हो ? मेरे भी बच्चे थे, देख लेना मैं बच्चोंको खूब मना लेता हूँ।

स्त्री० : आप तो . क्या कहूँ ..... ?

मा० : कहती क्या हो ? बच्चा मुझे दे दो, हाँ आओ मुन्ना आजाओ, आजाओ, देखो अे, अे, मुन्ना राजा बेटा, (तरह-तरहकी आवाजें करता है पर बच्चा रोता रहता है) तुम तो भाअी, बड़े बुरे हो, अच्छा हम तुम्हें गुद-गुदाअेंगे और हँसाअेंगे। अे हँसो, हँसो, यह देखो यह लो... (बच्चा चुप हो जाता है) देखो चुप हो गया है, पर हाँ तुमने यह तो बताया नही कि तुम कौन हो ?

स्त्री० : मेरा आदमी सिपाही था, कोअी आठ महीने हुअे आने अुन्हें कहाँ भेज दिया गया तबसे कोअी खबर अुनकी नहीं मिली, नहीं मिली तो मैंने रोटी पकानेकी नौकरी कर ली। लेकिन जब यह होनेको हुआ तो काम छूट गया। अब तीन महीनेसे भटक रही हूँ। जो पास था सब बेच चुकी, सोचा धाय बन जाअूँ, लेकिन कोअी रखता ही नहीं,... ..

मा० रखे भी क्यो, कितनी दुबली दीखती हो। दूध कहाँसे अुतरेगा।

स्त्री० : सो तो है ही, अब अेक सेठानीके कहनेपर आयी थी, वहाँ हमारे गाँवकी अेक नौकरानी है, वहाँ गयी तो कहा--कि अगले हफ्ते तक फुर्सत नहीं है फिर आना, सो लौट रही थी, दूर जगह थी, आते जाते दम फूल गया, बच्चा बेचारा भूखा है, देखो कैसी आँखें हो गयी है।

मा० : (साँस भरकर) कोअी गरम कपड़ा पास नहीं है।

स्त्री० गरम कपड़ा कहाँसे हो। ऐसा कर [illegible] उन आगमें अपना चदरा गिरवी रख चुकी हूँ बच्चा [illegible] बच्चेको मुझ [illegible] तुमने [illegible]।

मार्टिन सुनो। मेरे पास एक गरम चोगा है। है [illegible] बहुत पुराना पर फिर भी बच्चेके कुछ काम तो आ ही जायगा। [illegible] जाओ। अब तुम रोना बंद कर दो।

स्त्री भगवान तुम्हारा भला कर बाबा। सच मुच ईश्वरने ही तुम्हें इधर भेज दिया। नहीं तो बच्चा ठिठुरकर मर चुका होता। ऐसा गजबकी [illegible] बयार चल रही है। जरूर यह ईश्वरकी करनी है कि तुमने खिड़कीसे बाहर झाँका और मुझ गरीबनीपर दया की।

मार्टिन सचमुच यह सब ईश्वरकी करनी है। सुमीत मुझ आज ईश्वर दर्शनकी कहा था। मेरे कोठी मधाग हुआ नहीं है कि सब [illegible] सुमने सुमसे गत सपनमें कहा था किन्तु आर करना करके आयगा।

स्त्री कौन जाने ईश्वर क्या नहीं कर सकता। अच्छा मैं अब चलूँ। धन्यवाद [illegible]।

मार्टिन जा रही [illegible]! [illegible] प्रभुका नाम लेकर [illegible]। ठहर जाओ। [illegible] देता।

स्त्री (रुपये लेकर) आज आप [illegible] कर। प्रभु [illegible] आपका भला कर।

मार्टिन प्रभु सबका मालिक है।

(अन्तर्धान मगान)

मार्टिन (स्वगत) अब तो शाम होनेको आ गया। [illegible] यह कौन है जिसके पास [illegible] सबचोरा है। पत्थर मारा है। [illegible] जिसमें [illegible] नहीं [illegible]। जिस बारके कारण अब गया है। [illegible]। अर अर यह क्या? यह लड़का दौड़ता भागा और सब [illegible] भाग (नेपथ्य स्त्रीका स्वर)

स्त्री अर अर दौड़ना दौड़ना यह लड़का सब [illegible] भाग रहा है। हाँ हाँ जाता कहाँ है—मुँहजोर। मुसलको मार समझता है। [illegible] चाहे जितना आर [illegible] और [illegible]। [illegible] [illegible] है

लड़का (रोता हुआ) [illegible] मत छोड़ मत [illegible] लिया। मुझ क्यों मार रही हो। मुझ छोड़ दो।

स्त्री [illegible] तुझे [illegible]। मैं तुझे पुलिसमें दूँगी।

मार्टिन (आकर) जाने दो माई! भगवानके लिये इसे अब माफ कर दो।

स्त्री बजा मैं इसे ऐसा दूँगी। जिससे याद भर याद रखे। बदमाशीका [illegible] जायगा।

मार्टिन (प्रार्थनाके स्वरमें) [illegible] [illegible] जाने भी [illegible] फिर ऐसा नहीं करेगा भगवानके लिये इसे जाने दो। हाँ हाँ [illegible]।

स्त्री तुम कहते [illegible] [illegible] दूँगी पर [illegible]।

मा० आ [illegible]! जिस माँग माफी माँग। और फिर ऐसा न करना। सब तुम्हें [illegible] देखा था।

लड़का (रोते रोते) मैं [illegible] मैं माफी माँगता हूँ। मैं फिर चोरी नहीं करूँगा।

मा० ठीक। अब ठीक है। [illegible] [illegible] सब। आओ [illegible] [illegible] मैं [illegible]

स्त्री जिस तरह [illegible] तुम बिगाड़ [illegible]। जिस [illegible] [illegible] चाहिये थे। इतने मर [illegible] याद रखना।

मा० बाह माई। ठीक ठीक। यह लड़का [illegible] [illegible] भी [illegible] तरीका नहीं है। अगर [illegible] [illegible] लिये [illegible] [illegible] चाहिये तो हम अपने [illegible] लिये [illegible] मिलना चाहिये सोचा हो (मार्टिन [illegible]) [illegible] [illegible] नहीं [illegible] प्रभु तो अपने [illegible] भाग [illegible] [illegible] वह [illegible] लिये अपने [illegible] [illegible] जा [illegible] है। प्रभुका [illegible] है कि इन माफ कर। नहीं तो हम भी माफी नहीं [illegible]। इस किसीको माफ करो। [illegible] दोषको [illegible] और [illegible] मार मिलना चाहिये।

स्त्री [illegible] [illegible] सब है लेकिन [illegible] बिगड़ जा [illegible] है।

मा० । यह तो हम बड़ोंपर है न कि अपने अुदाहरणसे अुन्हें हम अच्छी राह दिखावें ।

स्त्री : यही तो मैं कहती हूँ । मेरे खुद सात बच्चे हो चुके हैं । अुनमेंसे अब सिर्फ अेक लड़की है । अुसीके साथ रहती हूँ । कभी सेवती-धोवते हैं । बूढ़ी हो गयी हूँ फिर भी अुनके लिअे काममें जुटी ही रहती हूँ । नहीं तो अब मुझे छोड़कर किसीके पास जाती ही नहीं ! (स्वर करुण) सो सच तो है अिस लड़केका बचपन था सेव अुठा लिया । अीश्वर अुसकी मदद करे । अच्छा चलूँ । जरा बोरा कमरपर रखवा दो, फिर टोकरी सिरपर ले लूंगी ।

लड़का लाओ बोरा मैं ले चलूँ माँ । मैं अुसी तरफ जा रहा हूँ ।

स्त्री हाँ, हाँ, ले चलो । तुम तो बड़े अच्छे लड़के बन गये ।

मा० : (हँसकर) सब अच्छे हैं, बुरा कौन है ? अच्छा चलूँ, काम निबटा लूँ, वे तो गये ! (चलता है)

मार्टिन . (ठक ठक होती है : अन्तराल) यह जूता पूरा कर ही डालूँ । (फिर ठक ठक, काट छांट, ठक ठक) हूँ अब दुरस्त हो गया । ठीक है । आजका काम खतम हुआ । (औजार समेटता है) अब तो अिजील बांचू । आज प्रभु आये तो नहीं । अच्छा अुनकी माया वे जाने । (पुस्तक अुतारने-रखने-पन्ने पलटनेका स्वर) आज तो यहाँसे पढ़ना है । अरे यह तो कलके सपनेवाला पन्ना है । (तभी जैसे कोअी चलता हो) कौन, कौन है ? कोअी नहीं । पर यह अंधेरे कोनेमें कौन खड़ा है । (अिसी समय स्टेपानके स्वरमें कोअी बोलता है ।)

स्टेपानका स्वर : मार्टिन मार्टिन, क्या तुम मुझे नहीं पहिचानते ?

मा० : (सन्देह) कौन ? .

स्टेपान० (पास आकर) यह मैं हूँ !

स्त्रीका स्वर० : और यह मैं हूँ, (बच्चेकी हँसी)

सेववालीका स्वर : और यह मैं । (हर स्वरके बाद हर्षका संगीत)

लड़केका स्वर और यह मैं ।

मा० (गदगद होकर) प्रभु प्रभु, तुमने क्या लीला दिखायी । तुमने किस किसको भेजा, प्रभु तुम धन्य हो । तुमने मुझे धन्य किया । (पन्ने पलटकर पढ़ता हुआ) मैं भूखा था, और तूने मुझे खाना दिया, मैं प्यासा था तूने मुझे पानी दिया, मैं अजनबी था तूने मुझे ग्रहण किया, अिन भाअियोंमेंसे अेकके लिअे, अदनासे अदनाके लिअे जो तूने किया, वह मुझको किया समझ । जो दिया मुझे पहुँचा समझ ।

(पढ़ते-पढ़ते रुक जाता है) अहा यह तो मेरा सपना सच्चा हुआ, प्रभुने किसीको नहीं भेजा, वे स्वयं प्रभु मेरे घर सचमुच खुद पधारे थे, अुन्होंने ही मेरा आतिथ्य पाया था; खुद अुन्होंने । ओह प्रभु करुणा-निधान अब समझा । वह स्टेपान नहीं था, तुम थे । वह बच्चेवाली गरीब औरत नहीं थी, तुम खुद थे । वह सेववाली औरत और लड़का और कोअी नहीं थे, वह तुम ही थे । प्रभु, ओह प्रभु, आप मेरे घर पधारे, प्रभु मेरे घर पधारे (भावातिरेक और फिर शान्ति) : धन्य हो प्रभु, धन्य हो ।*

---

* यह नाटक बड़ी सरलतासे रंगमंचपर खेला जा सकता है । अेक ही सैटकी आवश्यकता होगी । परिवर्तन, जो केवल समयके हैं— अधिकतर प्रकाशके अुतार-चढ़ावसे सूचित किये जा सकते हैं ।

(रूपांतरकार— विष्णु प्रभाकर)

औवैयार

: स्व० राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्य भारती :

सारे संसारमें स्त्रियोंके लिये नीतिके नियम पुरुषोंके ही बनाये हुये हैं। तमिलनाडकी स्त्रियाँ भी राजनीतिके क्षेत्रमें छोटे दायरेके अंदर पुरुषोंकी निर्धारित नीतिके नियमोंको मानती थीं। तो भी आम तौरपर जन-समाज संबंधी आचार व्यवहारोंके संबंधमें तमिलनाडमें हमेशा औवैयारके नीतिवाक्य तथा नीति-ग्रंथ ही प्रमाण माने जाते आ रहे हैं। पुरुषोंमें भी उच्च शिक्षित अल्प संख्यक लोग ही वळ्ळुवरका[*] कुरल व 'नालडियार' आदिको प्रमाण मानते थे। अर्धशिक्षित तथा अशिक्षित जनता स्त्री पुरुष सबके लिये औवैयारके बनाये हुये नीतिवाक्य ही पथ प्रवर्तक हैं। दो हजार सालोंसे औवैयारका नीतिशास्त्र ही तमिलनाडु-वासियोंमें बहुजनके लिये प्रमाण रहा है।

आम जनता उन्हें मानती है, मानती थी। मेरा ऐसा कहनेका मतलब यह नहीं है कि राजा तथा पंडित लोग उन्हें उपेक्षित समझते थे। पंडित, राजा पामर तथा जनता सब कुरल् नालडियार आदि ग्रंथोंसे अधिक औवैयारके ग्रंथोंको मानते और उनपर गर्व करते आये हैं। (यहाँ यह भी स्मरण दिलाना चाहूँगा कि) एक दल है जिसके लोग कहते हैं कि ये नीतिग्रंथ दो हजार वर्ष पहले जो औवै जीवित थीं, उनके बनाये नहीं हैं लेकिन उस दूसरी औवैके बनाये हुये हैं जो एक ही हजार सालके पहले जीवित थीं। अस्तु।

औवैयार निरी साहित्यकर्त्री नहीं थीं। उनके जीवनकालमें ही राजाओंने उनके राजनीतिक ज्ञानको मानकर उनको राजदूत बनाया था। यही नहीं, वे बड़ी दार्शनिक भी थीं। योग सिद्धिकी महिमासे उन्होंने अपने शरीरको रोग व जरासे बचा लिया था और वे लम्बी आयुतक जीवित रहीं।

'मासार्र कोळहै मनत्तमैन्दक्काल्
ओशनैक्का ट्टुम् उडबु।'

(शब्दार्थ, मासार्र–दोषरहित कोळहै–सिद्धांत, मनत्तु–मनमें, अमैन्दक्काल–रहें तो उडबु–शरीर, ओशनै–भगवानको, काट्टुम–दिखायेगा।—अनुवादक)

अर्थात् हृदयमें पवित्र, निर्भय, कपटरहित, दोष-रहित, द्वेषहीन भावोंको स्थित कर तो शरीरका दैवीपन यानी न मिटनेका भाव (अमरता) उद्भासित होगा। यह कुरल' (दो पंक्तियोंवाला पद्य) औवैका है। वे स्वयं इसमें प्रकटित उपदेशके अनुसार अपना जीवन चला रही थीं यह बात उनके जीवन चरित्रके अध्ययनसे स्पष्ट मालूम होती है।

एक देशकी सभ्यताका उस देशका साहित्य ही श्रेष्ठ प्रतीक है। उदाहरणके तौरपर अंग्रेजी सभ्यताका शेक्सपियर प्रभृति कवियोंकी साहित्यिक कृतियाँ मानदण्ड समझी जाती हैं। मेकालेने एक बार कहा भी था कि हम चाहे भारतपर शासन करनेका अधिकार त्याग दें शेक्सपियरको छोड़नेको कभी तैयार नहीं होंगे।

इस तरहकी गर्वोक्ति हम कम्बन्के नामपर कर सकते हैं। कुरलके रचयिता तिरुवळ्ळुवर, शिलप्पधिकारके कर्ता इळंगोवडिहळ् और ऐसे ही अन्य महानुभावोंके नामपर कर सकते हैं। लेकिन इन सबासे अधिक हम औवैयारपर गर्व कर सकते हैं जिनकी धाक स्वयं कम्बन तथा तिरुवळ्ळुवर आदिने भी मानी थी। अगर कोई हमसे पूछ बैठे कि आप तमिलनाडकी अन्य संपत्तिको खोने तैयार होंगे या औवैयारके रचित ग्रंथोंको? तो हम निःसंकोच कह सकते हैं कि अन्य संपत्तिसे वंचित रहना कोई बड़ी बात नहीं है, उसको फिर

---

[*] वळ्ळुवर—इसी लेखके अंदर पीछे उनका जिक्र आता है। यू० एन० ओ० ने इनके ही कुरलका अंग्रेजी अनुवाद करानेकी योजना बनायी है।

अपने प्रयाससे तमिलनाड् निर्माण कर सकता है। लेकिन औवैयारके ग्रंथ ऐसे नहीं हैं। हम अुन्हें खोनेकी कभी तैयार नहीं होंगे। वे दुबारा पैदा नहीं किये जा सकते। अुनके ग्रंथ हमारी सबसे श्रेष्ठ पुन दुर्लभ संपत्ति हैं। क्या यह हमारी देवियोंके लिये फख्रकी बात नहीं है कि तमिलनाड्की सम्यताका अेक मात्र श्रेष्ठ प्रतीक अुनकी अितनी बड़ी दौलत, अितना अुज्वल अमर दीप अेक तमिल महिलाकी कृतियाँ हैं? हाँ, यह सिर्फ तमिल महिलाओंके लिये कीर्तिवर्धकही नहीं है, बल्कि ये कृतियाँ अुनके लिये रक्षाके विधान भी हैं। अुन देशकी स्त्रियोंको, जिस देशमें औवैयार पैदा हुअी थी, और चूंकि औवैयार भी स्वयं महिला थीं अुस वजहसे हमारे देशकी स्त्रियोंको किसी भी पुरुषसे कम समझनेवाली कह नहीं सकेगा, बेधड़क! अिस संबंधमें अिंग्लैंडका अुदाहरण लीजिये।

वहाँ अेक दल है जो स्त्रियोंको पुरुषोंके समकक्ष मानने तथा अुनको पुरुषोंकी बराबरीके अधिकार देनेके विपक्षमें है। अुनकी दलील है कि स्त्रियाँ प्रकृतिसे ही पुरुषोंसे कम समझवाली हैं। अिसलिये वे घरके अंदरके कामकाज करनेवाली सफल गृहिणी बन सकती हैं लेकिन बाहरके सार्वजनिक क्षेत्रोंमें बुद्धिके बलपर आधारित कार्य निबाह करनेकी शक्ति नहीं रखतीं। अिस दलीलकी पुष्टिमें वे कहते हैं कि पुरुषोंमें जैसे अेक कवि सम्राट शेक्सपियर पैदा हो सका वैसा क्या स्त्रियोंमें अेक कवयित्री पैदा हो सकी है? जो अुनकी बराबरीकी कविता कर सकी हो? पैदा नहीं हो सकी। क्यों? क्या अिस बातसे साफ साबित नहीं होता कि स्त्रियाँ प्रकृतिसेही पुरुषोंसे कम बुद्धि रखती हैं?

तमिलनाड्में यह दलील कारगर नहीं हो सकती, बल्कि अुसके विपरीत यहाँकी देवियाँ यह दावा कर सकती हैं कि औवैयारके समान ग्रंथ रचनेवाला कोअी पुरुष कवि यहाँ पैदा हो सका है? क्यों पैदा नहीं हो सका? क्या अिस बातसे यह स्पष्ट साबित नहीं होता कि पुरुष स्त्रियोंसे प्रकृतिसेही कम बुद्धि रखते हैं?

महिमाशालिनी दार्शनिक औवैयारका रचा हुआ 'औवैकुरळ' नामक ज्ञान ग्रंथ तमिलनाड्के योगी तथा सिद्धोंने अुपनिषद्वत् माना है। योगविद्या तथा मोक्ष शास्त्राध्ययनमें यह ग्रंथ आवश्यक शास्त्रोंमें अेक माना जाता है। अिसमें अेक और विशेषता है। साधारण तथा योगानुभूतिके संबंधमें लिखते वक्त लोग कठिन तथा अप्रचलित शब्दोंका प्रयोग करते हैं और दुरूह तथा जटिल वाक्योंमें भावोंको आबद्ध करना अनिवार्य तथा आवश्यक समझकर काम करते हैं। लेकिन औवैयारका ग्रंथ बहुत ही साफ, सुलझी हुअी रीतिसे लिखा गया है और सब लोग अुसे आसानीसे समझ सकते हैं। "कम शब्दोंमें पूर्णरूपसे भाव समझाना" कविताकी प्रमुख विशेषता है। अिस क्रियामें औवैयारको असाधारण दक्षता प्राप्त थी। अलावा अिसके, गंभीर विषयोंको सबके जानने योग्य सुलझाकर लिखना दैवप्रदत्त प्रतिभासे ही हो सकता है, यह मामूली कवियोंके लिये साध्य नहीं है।' अैसा स्वयं बड़े-बड़े विद्वान कवि भी मानते हैं। अिस अद्भुत क्रियामें भी औवैयार बेजोड़ थीं।

पुरुषार्थ यानी मनुष्य जन्मसे प्राप्य सर्वश्रेष्ठ फल चार हैं। वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष हैं। अिनमें मोक्ष मन और वाक्से परे है, अत वर्णनातीत देखकर तिरुवळ्ळुवरने अुस पुरुषार्थका विस्तार अपने ग्रंथमें नहीं किया। बाकी तीन पुरुषार्थोंका ही विस्तार अुसमें पाया जाता है। चौथे पुरुषार्थका साधन जो भक्ति है, अुसपर ग्रंथके शुरूमें सिर्फ अेक अध्याय है। अिसी कारण वह ग्रंथ 'मुप्पाल'के नामसे (तीन पुरुषार्थवाला ग्रंथ) प्रसिद्ध है और स्वयं वळ्ळुवरको "मुप्पाशिल् नार्पाल मोळिंदान्" (तीन वर्गोंके अंदर चार वर्गोंका विस्तार देनेवाले) कहते हैं। अेक हजार तीन सौ तीस दो पंक्तियोंवाले पद्योंमें अुन्होंने तीनों पुरुषार्थोंका सम्यक् विस्तार बताया है। यह अद्भुत कार्य समझा जाता था। अिसको देखकर औवैयारने चारों पुरुषार्थोंको अेक ही वेण्बा (venba—चार पंक्तिवाला पद्य)के अंदर रखकर गाया है। वह अनोखा पद्य यों है —

ओवतरं, तोविनै विट्टीट्टल पोरुल, अञ्ञानृम्
कादलिरवर् करुत्तोद मिन्–तादरव्
पट्ट दे भिन्बं, परनै निनैन्दि म्मून्र
विट्ट दे पेरिन्बवीड्॥

शब्दार्थ यों हैं :—

ईदल–दान करना। अरं–धर्म है। तीविनै–अन्याय। विट्टु–छोड़कर। ईट्टल–धनार्जन करना। पोरुळ्–अर्थ है। अेञ्ञान्ऱु–हमेशा। कादलिरुवर–प्रेमी युगलका। करुत्तोरुमित्तु–अेक मन हो। आदरवु पट्टदु–आनन्दित रहना ही। अिन्बम्–काम है। परनै निनैन्दु–अीश्वरका स्मरण कर। अिम्मून्ऱुं–अिन तीनोंका। विट्टदे–अुत्सर्ग ही। पेरिन्ब वीडु–परमानन्दधाम है। —अनु०

अिस वेण्बाका भावार्थ क्या है ?

ईदलका अर्थ कृपा करना या दान करना है यानी लोक हितार्थ अपना तन मन-धन अुत्सर्ग करना है। अपना धन खर्चकर, वाक्शक्तिको खर्चकर, अपने शरीरसे श्रम करके दूसरोंका कष्ट दूर करना और अुनका सुख पहुँचाना है। कुछ लोग धन देनेको ही दान करना समझते हैं। वह गलत है। दूसरोंके हित ज्ञान देना क्या दान नहीं है ? किसी बीमारका अिलाज कर स्वस्थ करना भी दान ही है। किसीको विद्या देकर स्वयं अर्थ तथा अन्य आवश्यक स्वार्थोंको कमानेकी शक्ति पैदा करना क्या दान नहीं है ? हाँ, प्रतिदानकी अिच्छा न कर दूसरोंका कष्टनिवारण करना हितपूर्ण कोअी सहायता करना भी दानके अन्तर्गत ही आअेगा। यही मनुष्यका अिह लोकमें धर्म या कर्तव्य है। अस्तु।

बुरा रास्ता छोड़कर बुद्धिके परिश्रमसे हो चाहे शारीरिक परिश्रमसे जो खाना-कपड़ा आदि आवश्यक वस्तुअें, सवारियाँ आभूषण, बाज प्रतिमाअें आदि आरामकी या विनोदकी वस्तुअें और अिनके अुपभोगके लिअे साधनके रूपमें रहनेवाले घर, बाग वगैरह तथा अिनके अदल-बदलका साधारण माध्यम रुपया नोट, मोहरें आदि वस्तुअें हैं वे सब धन या अर्थ हैं। सद्पथसे जाकर अर्जित अर्थ ही हितकारी है। बुरे रास्ते अख्तियार कर कमाया हुआ धन अनर्थ हेतु है। अिसलिअे औवैने अपनी करुण वाणीसे बताया कि बुराअी छोड़कर पैदा किया हुआ धन ही अर्थ है। बुरे जरियेसे कमाअी दौलत बुराअियोंकी खान है।

अब "काम (अिन्ब सुख) की औवै देवीकी व्याख्या अनुपम श्रेष्ठता लिये हुअे है। प्रणय सुखको ही पूर्वजोंने 'सुख' शब्दसे निर्दिष्ट किया है क्योंकि अुसीको श्रेष्ठ सुख माना जाता है। अर्थार्जन तथा धर्मावलम्बनके क्रिया-कलापोंमें ही यत्र-तत्र सुख प्राप्त हो सकते हैं, तो भी वे सब द्वन्द्व प्रणयके अुपागवत् हैं, अतः वे कामके नामके योग्य नहीं हैं। मनुष्य रुचिपूर्ण पदार्थ खानेमें, सरस गाना सुननेमें तथा अच्छे फूलोंकी सुगंध सूंघनेमें जो अिंद्रिय सुख प्राप्त हो सकते हैं अुन्हें पानेके लिअे बहुत प्रयास करते हैं। कीर्तिका सुख, अधिकारका सुख आदि असंख्य सुखोंके सम्पादनके लिअे भी लोग दिन रात परिश्रम करते पाये जाते हैं। तो भी बड़ोंने अिन सबको गौण या अल्प सुख समझकर कामके अन्तर्गत अुनकी गणना नहीं की है। कीर्ति अधिकार यह सब अर्थके अन्तर्गत दरसाया गया है। अिंद्रिय सुखोंमें मीठी तथा सुस्वादु वस्तुओंका चखना, फूलोंकी सुगन्धका सूंघना आदिसे प्राप्त सुख अल्पायु होते हैं और वे सिर्फ शारीरिक रह जाते हैं। अुनसे आत्माको कोअी सुख नहीं मिलता। अिसी कारणसे बड़ोंने अुनका कामके अन्तर्गत नहीं लिया है।

कण्डु केट्टु अुण्डु अुयिर्त्तु अुट्रिरियुम् अैम्बुलनुम्
ओण्डोडि कण्णे युळ यह तिरुवळ्ळुवरका कथन है।

यानी देखकर, सुनकर खाकर, स्पर्शकर अिन पाँचों क्रियाओंसे जो सुख प्राप्त किया जा सकता है वह अिस चमकदार कंगनवाली रमणीके पास है। यही अुसका मतलब है। शरीरकी सभी अिंद्रियोंको ही नहीं, मन तथा आत्माको भी यह द्वन्द्व प्रणय अेक साथ सुख समृद्ध कर सकता है। अिसी वजहसे यह प्रणय सुख सर्वश्रेष्ठ सुख माना गया। अतः जब हमारे पूर्वजोंने 'चार पुरुषार्थ' यानी मानवी जन्मके फलस्वरूप पाये जानेवाले प्रयोजनोंकी बात कही तब प्रणय सुखको 'काम' के नामसे पहचनवाया। औवै देवीयारने भी हमको अपनी अिस वाणीसे अनुगृहीत किया कि यही सुख सर्वश्रेष्ठ सुख है। अुसे अवश्यमेव भोगना है। देवीने अुसे कैसे भोगना है, अिसका विवरण भी अपनी मीठी वाणीमें सरस तमिल् भाषामें व्यक्त किया है।

अुन्होंने कहा है—

नर अेक नारीपर तथा नारी नरपर मन, वाक् तथा शरीरसे प्रेम करे—प्रतीतिमय, अन्योन्याश्रित और अुत्तरोत्तर वर्धित होनेवाला प्रेम करे, दोनों मनसे अेक होकर परस्पराश्रित सुख भोगें वही "काम" है, सच्चे अर्थमें सुख है। अस्तु।

अब मुक्ति क्या है?

ओीश्वरको हृदयमें स्थापितकर, अहंकार-ममकार त्यागकर, ओीशबोध प्राप्तकर, अुपर्युक्त तीना पुरुषार्थोंमें स्वाद छोड़कर रहनेकी स्थिति ही मुक्ति है। अिस तरहकी "मुक्ति" प्राप्त करनेसे कोओी अन्य तीन पुरुषार्थके कमानेमें अपनी जिम्मेवारी छोड़कर क्रियाहीन आलसी बन जाअेगा अैसा समझना गलत है। जबतक जानमें जान है तबतक प्रकृति किसीको चुप तथा निष्कर्मी होने नहीं देती। कोओी भी हो अुसे मनसे हो तनसे हो चाह वाकसे, काम किये बिना हाथपर हाथ धर बैठना अेक क्षणके लिअे भी संभव नहीं है। "सहजात गुणोंके कारण हर कोओी काम करनेको मजबूर है।" यह कृष्ण भगवानने स्वयं गीतामें कहा है।

और भी औवैदेवाके हरेक वाक्य या पद अुद्घृतकर अुनकी महिमा गानी हो तो कओी पुस्तक लिखनी पड जायेंगी। वह काम कभी बादको होगा।

तमिलनाडकी स्नेह तथा आदरकी पात्री बहनों! अिस तमिलनाडके गौरवको बनाये रखना आपके अुत्तम कार्यों तथा प्रयत्नोंपर ही निर्भर है। .....

आज मानव जात् प्रचंड पवनके समान बहनेवाले अुथल-पुथल, परिवर्तन, क्रांति आदिके कारण प्रत्यवर्तन् करनेवाली लहरोंके मध्य फँसी हुओी नौकाकी भांति चक्के खा रहा है, थपेडे खा रहा है। अुलट-पुलट होने जा रहा है, चक्कर खाकर छटपटा रहा है। ओीश्वर आप लोगोंको अपनी विद्या-शक्तिसे तथा चरित्र बलसे अुसे बचानेकी सामर्थ्य प्रदान करे।

—(अनुवादक : श्री विद्वान् ति. शेषाद्रि. मदुरा)

अग्निसे तेजस्वी वैदिक प्रार्थना—

"मयि मेधा मयि प्रज्ञा मय्यग्निस्तेजो दधातु
मयि मेधा मयि प्रज्ञा मयीन्द्र अिन्द्रियं दधातु,
मयि मेधा मयि प्रज्ञा मयि सूर्यो भ्राजो दधातु,
यत्ते अग्ने तेजस्तेनाहं तेजस्वी भूयासम्,
यत्ते अग्ने वर्चस्तेनाहं वर्चस्वी भूयासम्
यत्ते अग्न हरस्तेनाहं हरस्वी भूयासम्।"

अर्थ

अग्नि मुझ बुद्धि, विचार-शक्ति दे। अिन्द्र मुझे बुद्धि विचार शक्ति और सामर्थ्य दे। सूर्य मुझे बुद्धि विचार-शक्ति व तेज दे। हे अग्नि, मुझे अपने तेजसे तेजस्वी होने दे। अपने विजयी तेजसे मुझे महान बनने दे। अपने मलिनताको भस्म कर देनेवाले तेजसे मुझे भी अपनी मलिनताको भस्म करनेवाला बनने दे।

✶ तारे ✶

: श्री "भृंग" तुपकरी :

ये तारे !
बेचारे तारे !
दिनके दूत रातकी दुनिया
में फिरते हैं मारे मारे !
ये तारे !

गत वैभवकी याद संजोकर अपने दिलमें
और थके पथोंसे, पथमें
बैठे हैं मन मारे !
तारे बेचारे !

अिनके पास ज्योति है लेकिन
अिनके पथपर अँधकार है।
अिनका बल अिनका हित करनेमें निष्फल है।
टिम् टिम् टिम् टिम् जलते जाते
मनही मन बेचारे तारे !
काली काली तमकी कारा
अिनको कैदी बना रही है !
किसने छलसे
अिनके बलके
टुकडे-टुकडे कर डाले हैं ?
अँधकारके काले पजेमें व्याकुल
अलग अलग हैं !
लाचारीमें अंधकारसे हार चुके हैं !
ये बेचारे,
टिम् टिम् तारे !

\+ \+ \+

हाँ, सचमुच ये अंधकारसे
हार चुके हैं,
अिसीलिअे हैं शायद अिनकी
प्रतिभा खण्डित
बिखरी बिखरी,
टूटी-टूटी,
और नहीं है अिनके पथपर
हल्की सी प्रकाश रेखा भी !
हो सकता है,
अेक दिवस यों आये धरती
का आकर्षण
अिनके जगमग प्राण तोड़ ले
और गिरें ये
अूचाअीसे टूट टूटकर
नीचे, गहरे किसी समंदरकी गोदीमें
या कि किसी अूंचे पर्वतकी
कठिन क्रूर, निर्मम चट्टानोंके सीनेपर
अपने सिरको दे मारें ये,
मर जावें ये !
पट जाअगी अिनके शवसे
कोअी छोटी मोटी खाअी,
और सदाको नीलाम्बरको
सूना करके चले जावें ये !
अिनके प्राण
पत्थर बनकर
नील गगनमें समा जायेंगे !
ये धरतीके बुद्धिवादियोंके अगुआ हैं,
विद्वद्वर अैसे ही तममें जल जलकर,
घुल घुलकर,
घुट घुटकर अेक दिन
मर जाते हैं अिस भारतके !
अिसी तरह तो लय हो जाते
हैं अुनके भी जगमग प्राण !!

\+ \+ \+

किन्तु अेक दिन यह भी होगा !
चाँद चाँदनी लिये अुगेगा !
जिसके लिअे अंधेरेमें ही
की हैं अिनने कठिन तपस्या।
अंधकार-साम्राज्य मिटेगा।
चांद अुगेगा।
काला पर्दा झिल्ली कागज बन जाअेगा।
स्निग्ध किरणकी शीतल अंगुली
पर्देका तन मन छेदेगी !
तब यह आहत अंधकार
भू-लुण्ठित होगा,
पग पगपर सर धर लोटेगा !
छोटे छोटे झाड़-बबूलों
तकके पैर पकड़कर,
रोकर,
शरण माँगनेको मचलेगा !

पत्ती-पत्तीसे करुणाकी
भीख माँगता हुआ फिरेगा !
पर हर पत्ती किरण-दूधमें नहा-नहाकर
झूम अुठेगी,
औ, जिसके हित नम्र चाँदनीकी मधु बूंदें
बाण बनेंगी।
जिनपर यह छाया रहता था,
अुनके चरण पखारेगा यह !
पछताअेगा,
रोअेगा,
आंसू ढालेगा।
अुस दिन अिन तारोंके मनकी शीतल ज्वाला
शुभ्र चाँदनी बन विकसेगी,
नयी ज्योत बनकर चमकेगी।

दान दो

: श्री प्रो. मित्तल :

भूमिका दान दो।

जग प्राणके लिअे,
शुभ दानके लिअे
सुख मानके लिअे
अिन्सानके लिअे
आज बलिदान दो।

युगकी पुकार है
स्वार्थकी हार है
मनुज अनुदार है
स्नेहकी धार है
प्रणयका गान दो।

मनुजता दीन है
मनुज सुख हीन है
घोर दुख लीन है
तड़पती मीन है
स्नेह-जल दान दो।

कोअी न दीन हो
मनुज न हीन हो
स्वार्थ न आसीन हो
जगत सुख लीन हो
मनुजको मान दो।

जगत बन जाअे नव
मधु-गीत गाअे नव
दुख दैन्य जाअे सब
मनुज बन जाअे नव
वह सुख दान दो।
भूमिका दान दो।

बेकसी

: श्री 'अंचल' :

अब तक मेरा समय न आया !
आकुलता ही रही, तृप्तिका मेरा समय न अब तक आया !

दिलमें अगणित आकाक्षाएँ पर न उन्हे पूरी कर पाता,
काँटोकी नोकोपर जीवनके फूलोको जडता जाता,
आग वचनाकी तन-मनमें जिसको मैंने अब तक गाया !

मेरी भाग्य-क्रान्तिका खोया हूँ प्रतीक किस सूनेपनमें,
तम-अभिशप्त पन्थ जीवनका आ मिलता है भग्न विजनमें;
अब तक मैने पथ-दर्शक आदर्शजयी नक्षत्र न पाया !

तृषित, अतृप्त प्राणका पछी जब उडनेको पर फैलाता,
चाँद कल्पनाका तब सहस्र दुखकी बदलीमें छिप जाता,
रह जाता असफलताका अवशेष क्षुब्ध जीवनपर छाया !

साथ चले थे जो साथी वे निकल गये सब कितने आगे,
पडा रह गया मैं छलनामें गतिके झझावात न जागे,
क्यो मेरी विश्वास-शिखाने सपनोका छल नही मिटाया ?

विद्ध अभावोकी पीडामें जलता है मेरा कटु जीवन,
बलका ऐसा स्रोत नही जो अपराजित रहने दे तन-मन,
मूक विवश प्रतिहिंसा मेरी दग्ध अहं मेरा भरमाया !

हँसते मुखके पीछे मेरा मुरझाया दिल रोता रहता,
मदमें भूले जगके हाथो अपमानोकी ज्वाला सहता,
लोहू अपने ही अरमानोका पीती रहती यह काया !
अब तक मेरा समय न आया !



पूर्ण हो पायी नहीं अुसकी कहानी !

- श्रीमती शांति मेहरोत्रा :

प्रात आया विश्वमें जीवन लुटाने
ताप आया शीतपर सौरभ बिछाने
वायु आयी कुंजका शृंगार करने
रश्मि आयी पथपर मृदु हास भरने
किन्तु कुछ ही दूरपर दृगहीन तारा टूटता बन रातकी अन्तिम निशानी !
पूर्ण हो पायी नहीं अुसकी कहानी !

हो गया मध्यान्ह गति थक-सी गयी कुछ
चर-अचरकी चेतना रुक-सी गयी कुछ
खिल-खिलाती ज्योतिकी कुछ रीति बदली
मुस्कराती प्रीतिकी कुछ नीति बदली
रख न अपनेमें सकी मकरंद मधुको डालसे टूटे सुमनकी सावधानी !
पूर्ण हो पायी नहीं अुनकी कहानी !

साँझकी पायल बजी जब नीडपर आ
शांत कोकिल स्वर हुआ जब पींडपर आ
रात जागी पंख तमने फड़फड़ाये
चाँद आया और तारे मुस्कुराये
दिव्य रविकी अग्नि-सी अुज्ज्वल शिखाने, रातकी धुंधली प्रभासे हार मानी !
पूर्ण हो पायी नहीं अुनकी कहानी !





काश्मीरी

लल्लेश्वरीके वचन

[विश्वके सार्वभौम नन्दनवन काश्मीर देशकी राजनगरी श्रीनगरकी केशर-क्यारियोंसे सदा सुरभित पाम्पुर नामक ग्रामकी पवित्रभ्राजी रमणीया लल्लीका नाम ऐसा कौन काश्मीरी आबाल-वृद्ध हिन्दू मुसलमान है जो नहीं जानता! जहाँ वह सन्तोंकी कोटिमें सिरमौर है वहाँ वेदान्तवेद्य रहस्यवादकी सर्वोच्च कवयित्री भी हो गयी है। अुनकी जीवनभरकी आध्यात्मिक साधनाने ही अुनके देशने अुन्हें "लल्लेश्वरी" के पदपर आसीन कर दिया। भक्तजन अुन्हें योगिनी, त्रिकालज्ञा, कहते हैं। दुर्भाग्यकी बात है कि अुनकी अुक्तियोंका संग्रह समग्र समुचित रूपसे अब तक किसी प्रकाशकने प्रकाशित नहीं किया। सन्त लल्लेश्वरीकी अुक्तियोंके भाव गांभीर्यमें और अर्थ-गहनतामें काश्मीरी भाषाके आधुनिक प्रकांड पंडित भी गहरे पानी पैठनेका प्रयास करते हैं, पर नहीं पहुँच पाते अन्तस्तलमें। नीचे लल्लाकी कुछ अुक्तियाँ दी जाती हैं। 'राष्ट्रभारती' के प्रेमी पाठक काश्मीरकी केशरका आध्यात्मिक सौरभ ग्रहण करें। —सम्पादक]

लल्ल बोह द्रायस लोलरे
छाडान लूस्तुम दान क्योह राथ।
वुछुम पंडित पनुनि गरे
सुय म्य रटुमस नक्षतुर साथ

शब्दार्थ—

लल्ल-(लल्ला या लल्लेश्वरी) बोह द्रायस-मैं निकली लोलरे-अनुरागभरी, छाडान ढूँढ़ते, लूस्तुम-अस्त हुआ दान क्योह राथ-दिन सिवा रात, वुछुम-देखा, पंडित-वेदशास्त्र-पारगत यहाँ ब्रह्मसे अभिप्राय है, पनुनि गरे-अपने घरमें सुय-वही म्य-मैंने रटुमस-पकड़ा, नक्षतुर साथ-नक्षत्र मुहूर्त।

भावार्थ—

लल्ला अपनेही अन्तःकरणमें ब्रह्मके निवासके सम्बन्धमें बोलती हुई कहती है कि मैं ब्रह्मानुराग भरी अुसकी तलाशमें घरसे निकली। दिनके बाद रात और रातके बाद दिन बीते पर वह न मिले। अन्तको मैंने जब अपनेही हृदयमें देखा तो अुसीको शुभ घड़ी और शुभ मुहूर्त समझकर अुसे प्राप्त किया।

दमादम कोरमस दमन हाले
प्रज़ल्योम दीप त ननेयम जाथ
अन्दर्युम प्रकाश न्यबर छटुम
गटिरटुम त कोरमस थप

शब्दार्थ—

दमादम-श्वासोच्छ्वास कोरमस-किया, दमन हाले-धौंकनीसे प्रज़ल्योम दीप-दीपकका प्रकाश हुआ, ननेयम जाथ-जात मालूम हुआ। अन्दर्युम प्रकाश-अन्दरका प्रकाश न्यबर छटुम-बाहर छाट लिया। गटिरटुम-घरमें पकड़ा, कोरमस थप-हाथमें पकड़ा।

भावार्थ—

योगाभ्यासकी विधिसे प्राणायामों द्वारा मेरे अन्दरका दीपक ज्योतिर्मय हुआ। अुससे अन्धकार दूर हुआ जिसके परिणामस्वरूप वह ब्रह्म मुझे अपनेमें ही मिला और अुसे मैं दृढ़तापूर्वक पकड़ बैठी।

(काश्मीरीसे अनुवादक— श्री प्रेमनाथ जाड़)

मराठी : संध्याकाळ

: श्री म. म. देशपांडे :

संध्येचा श्यामल हात कोवळा
पकडू पाहतो
नदीकांठचा अुडता बगळा !
पुसट पुसट क्षितिज-रेषा
मीलनामधली—
दोन जीवांची अस्फुट भाषा !
दिवस मिटतो हळूच पापणी
थकून भागून—
गालांत हासते शुक्राची चांदणी !
क्षणाक्षणानें दाटतो काळोख
जुनी एखादी—
मनात सारखी घोळते ओळख !

हिन्दी : संधिकाल

: अनुवादक— श्री अनिलकुमार :

हाथ साँझका मृदुल साँवला
छूना चाहता
नदी किनारे अुड़ता बगुला !
धुँधली धुँधली रेख क्षितिजकी
मिलनपर्वकी—
अुन दोनोंकी अस्फुट भाषा !
दिन धीरेसे पलक मूँदता
थके पथिक-सा—
हँसती है गालोंमें गोरी शुक्र तारिका !
घिरता जाता हरपल घना अँधेरा
अेक पुरानी—
गूंजा करती है मनमें पहचान !

मज कळतच नाहीं

: श्री आ. ना. पेडणेकर :

मी न राहिल्यें माझी
ती वेळ कोणती
मला न मुळि आठवते
काळास विसरतें
पाउल वळतां तेथें...
पाउल वळें जेथें
तें स्थान कोणतें
मला न ये ओळखता
तें पुसटुन जाते
त्याला पाहत असतां...
ज्याला पाहत बसतें
तो कोण कोठला
मेईल कसें सांगाया ?

मैं न समझ पाती हूँ

: अनुवादक— श्री अनिलकुमार :

मैं न रही अपनी ही
वह समय कौनसा
नहीं स्मरण है कुछ भी
काल भूलती
पाँव अुधर जब मुड़ते...
जिधर पाँव मुड़ जाते
वह स्थान कौनसा
पहचान नहीं पाती हूँ
वह मिट-सा जाता
अुसे देखते रहते...
जिसे देखती रहती
वह कौन कहाँका
कैसे तो बता सकूँगी ?

[illegible]

ऐ अुसको याद [illegible]...
अुत्सुक हैं सपन सजाने...
अुत्सुक हैं जिसे सजाने
यह सपना ही है अथवा
कुछ और (अधिक) ना जाने !
मैं नहीं समझ पाती हूँ
मैं न रही अपनी भी !

[illegible] रजकण

(गुजराती)

[illegible]

१९. [illegible] आवी,—[illegible] ? [illegible] ,सुन्दर [illegible] ?

२०. [illegible] थवी, नाना नाना [illegible], पराजयनो आनन्द [illegible] छे, [illegible] हुं नहि बनी जाअुं ना ?

२१ अेणे कह्युं के तमे मनुष्यने धिक्कारो छो, में कह्युं के मीठी जबानवाळा, विवेकी मनुष्योनो तमने परिचय नथी ।

२२ हुं गांडो छुं ? अुद्धत छुं ? ना, वधारे स्पष्ट छुं । अेमा कुनेह नहि होय, पण सिद्धान्तवादी वळी कुनेहना रमकडाथी रमे खरो ?

२३ दिवसे तो फिलसूफ जेवा भावहीन आकाश करता मोजमां अुछळतो समुद्र वधारे सुन्दर लागे छे । पण रात्रे ?

२४ पवित्र स्त्रीना पडछायामा अूभा रहया पछी आ कलाकारने अेवु ते शु घेलुं लाग्यु छे के ओ कलानी वातो करे छे ? कलाना सान्निध्यमा तो ओ अुमेज हतो ।

(हिन्दी)

अनु०—श्री [illegible]

१९ [illegible] निहारकर [illegible] आ गयी ! पर यह क्या ? [illegible] डाल्के छोरपर, प्रभातके रंगो जैसी कोमल [illegible] कोमल कहाँसे ?

२० पराजय ? पराजयसे तो मैं [illegible] ! छोटी-छोटी विजयोंको निहारकर [illegible] जिस प्रकारकी छोटी छोटी विजयोंमें [illegible] पराजयका आनन्द गँवानेवाले अनेक होते हैं । [illegible] मैं भी वैसा ही न बन जाअुं ?

२१ अुसने कहा—तुम मनुष्यको [illegible] हो ! मैंने कहा—हे मीठी [illegible], विवेकी मनुष्यों [illegible] तुमको परिचय ही नहीं ।

२२ मैं पागल हूँ ? अुद्धत हूँ ? ना, [illegible] स्पष्ट हूँ ! हो सकता है [illegible] ! [illegible] सिद्धान्तवादीको [illegible] देखा है ?

२३ दिनमें तो, [illegible] आकाशकी अपेक्षा [illegible] सुन्दर प्रतीत होता है । [illegible] ?

२४, पवित्र स्त्रीकी [illegible] जिस कलाकारको [illegible] है कि यह [illegible] तो यह [illegible] था ।

२५ जेणे जीवनमा विरह अनुभव्यो नथी, अेणे जीवननी मीठाश पण क्यारे अनुभवी छे ?

२६ तमे कलानी वात करो छो ना ? हा, हा, समज्यो। अेवी वस्तु, जेने लोको जीवनमाथी बहार काढे छे अने प्रदर्शनमा जोवा जाय छे। अेज कला के ?

२७ तु आवजे अेम में क्यारे कह्युं ? तु न आववानो संकल्प करी राखजे।

२८ जे मजा सग्राममा छे ते मजा खोअीने मूरखाओ विजय वाञ्छे छे ! वाञ्छवा दो विजयना जेवो महान पराजय जोअीने कोण नथी पस्ताय ?

२९ मारी वाट जोवानी धीरज पासे, तारी वाट जोवरावबानी शक्ति नमे अे तो मारा जीवन-सग्रामनो पायो छे। तु आवजे अेम विनति करीने हुं शाओ जीवननो पायो खोदी नाखुं ? तु न आवती, न आवती, कलानी अधिष्ठात्री न आवती।

३० में तो अीश्वर पासे अेटलुज माग्युं हतुं. हमेशा आनन्दी– मोजीलु अेवु हृदय न आपतो, थोडु घणु विषादमय अन्तर पण आपजे। अीश्वरे स्पष्ट ना पाडी। 'अन्या तारे जीवननो अमूल्य रस 'विषाद' जोअीअे छीअे ? अे ते वधाय मंगानो हशे ?– अने वळी अे माग्ये मळे पण खरो ? अे तो तारा जीवनमथननुं रत्न छे। अने ते तुज शोधी लेजे। जेने जेने अे रत्न, आनंद सागरने तळिअे थी मळ्युं छे, तेने जीवनभर बीजी काअी वाछना रही नथी: अेमने मन अन्तरनो घेरो अवाज अेज जीवनसर्वस्व बनी रहेल छे।

३१. विलासने कला मानो निष्क्रियताने आनन्द गणो, असमानताने गौरव लेखो व्यवहारने 'धर्म' समजो। क्रांतिना बीज तमे रोपी चूक्या हवे मात्र अेना फळनीज राह जुओ।

२५ जिसने जीवनमें विरहका अनुभव नहीं किया, वह जीवनकी मिठासको भी कब अनुभव कर सकेगा ?

२६ क्या तुम कलाकी बात कर रहे हो ? हां-हां समझ गया ! अैसी वस्तु, जिसे लोग जीवनमेंसे बाहर निकालते हैं और प्रदर्शनीमें देखने जाते हैं। क्या यही कला है ?

२७ जो आनन्द संग्राममें है, अुसे खोकर मूर्ख-लोग विजय चाहते हैं। चाहने दो। विजय जैसी महान् पराजय देखकर कौन नहीं पछताया ?

२८ मेरी प्रतीक्षा करनेकी धीरताके आगे, तेरी प्रतीक्षा करवानेकी शक्ति झुक जाती है, यही तो मेरे जीवन-संग्रामकी आधार-शिला है ! तू आ जाना अैसी प्रार्थना करके मैं क्या अपने जीवनकी आधारशिला खोद डालूं ? तू मत आना, मत आना, हे कलाकी अधिष्ठात्री मत आना !!

३०. मैंने तो अीश्वरसे यही मांगा था— सदा आनन्दमय, अूर्मिमय हृदय मुझे मत देना, थोड़ा-सा विषादमय अन्तर भी प्रदान करना। अीश्वरने स्पष्ट नकार कर दिया— अरे मूर्ख, तुझे जीवनका अमूल्य रस "विषाद" चाहिये ? क्या अुसे भी कोअी मांगता है ? और वह भी कहीं मांगनेसे मिल सकता है ? वह तो तेरे जीवनमथनका रत्न है। अुसे तू स्वयं खोज लेना। आनन्द-सागरके तलेसे जिन-जिनको भी वह रत्न प्राप्त हुआ है, अुन्हें जीवनभर अन्य कोअी आकांक्षा नहीं रही है। अुनकी दृष्टिमें अन्तरकी गंभीर आवाज ही जीवन-सर्वस्व बन जाती है।

३१. विलासको कला समझकर, निष्क्रियताको आनन्द मानकर, असमानताको गौरव समझकर और व्यावहारिकताको धर्म मानकर, क्रांतिके बीज तो तुम बो ही चुके हो। अब तो केवल तुम्हें अुसके फलकी प्रतीक्षा करनी होगी।



[सूचना—'राष्ट्रभारती' में समालोचनार्थ पुस्तकोंकी दो-दो प्रतियाँ ही सम्पादकके पास आनी चाहिये।]

हिमालय-परिचय : लेखक राहुल सांकृत्यायन, मुद्रक और प्रकाशक—लॉ जर्नल प्रेस, अिलाहाबाद। मूल्य छापा नहीं गया।

हिंदीमें शायद भौगोलिक साहित्यकी कमी नहीं है परन्तु साहित्यिक भूगोलकी कमी सदा खटकती रहती है। राहुलजीकी नयी पुस्तक (अिसे पुस्तक-माला कहना अधिक सार्थक होगा क्योंकि अभी हिमालय-परिचय (२) कुमाअूँ और हिमालय परिचय (३) .. नेपाल, प्रकाशित हो ही रही हैं अिस कमीकी पूर्तिमें अेक सराहनीय प्रयास है।

अिस पुस्तकमें गढ़वालके अितिहास, भूगोल अुसकी जातियाँ, प्रथाअें, भूतत्त्व और खनिज, शासन, धर्म, जातियाँ, आकृति, वेशभूषा, आजीविका, यातायात सचार, तीर्थस्थान आदिका ज्ञानकोषात्मक चित्र खींचनेकी लेखकने पर्याप्त सफल कोशिश की है, परन्तु कैनवास बड़ा रखनेके कारण चित्र अुतना अच्छा नहीं अुभर सका है जितनी अुम्मीद की जाती थी। अिस कमीको लेखकने अपने प्राक्कथनमें स्वीकार भी किया है। और स्वीकार करते हुअे आनेवाली पीढ़ीको अिस दिशाकी ओर बढ़नेके लिअे चुनौती भी दी है, जो पर्याप्त स्वास्थ्यप्रद है।

अिसमें कोअी शक नहीं कि पुस्तक अिसके बावजूद भी अुपादेय है, सुन्दर है, विशिष्ट है पर अेक बात थोड़ी सी खटकती है, वह यह कि शैलीमें अुन्होंने अिसी विषयकी अंग्रेजीकी पुस्तकोंकी नकल की है और जिसका फल यह हुआ है कि भाषा कहीं कहीं टूटती सी है, अुसकी सुन्दर शृंखला विशृंखलित सी हो जाती है और राहुल भाषाका अपना निखार पूरी तरहसे सामने नहीं आता है। अिस कमीका भान अिस विषयकी योरोपीय भाषाओंमें लिखी पुस्तकोंके देखनेसे अधिक अच्छी तरह होता है।

तीसरी कमी लेखककी न होकर प्रकाशक या मुद्रककी है। जो चित्र अिसमें दिये गये हैं अुनके ब्लाक अच्छे नहीं बने। अिस विषयकी पुस्तकमें जहाँ प्राकृतिक सौंदर्यका विशद् वर्णन है जो चित्र दिये जायें वे साफ तरीकेसे प्रकाशित हों, यह परमावश्यक है।

अगले पाँच साल : लेखक आचार्य जी. अेस पथिक, प्रकाशक—मेसर्स आत्माराम अेण्ड सन्स कश्मीरी गेट, दिल्ली-६, मूल्य—पाँच रुपये।

प्रस्तुत पुस्तकको यदि मैं पूर्णतः पलायनवादी कहूँ तो शायद अयुक्ति नहीं। यह सामयिक राजनीतिक पत्रकारिताका पुस्तकरूप, सो भी श्री जी० अेस० पथिक जैसे अनुभवी लेखककी कलमसे, जिसने अबतक लगभग अेक दर्जन राजनीतिक पुस्तकें हिन्दीमें लिखी हों, कुछ अव्यवस्थित-सा लगता है।

सबसे पहली बात जो देखनेमें आती है वह यह कि अुनपर कम्यूनिज्म अेक भूतकी तरह सवार है। वे

जिसे अेक होवा समझते हैं। जिससे डरते हैं। जिसके विरुद्ध हैं। भारतमें जिसकी प्रगति देखकर रुष्ट होते हैं परन्तु जिसके मुकाबिलेमें खडी किसी दूसरी आदर्श-वादिताको भी वे सराह नहीं पाते हैं। वे यह तो कहते हैं कि यदि कम्युनिज्मकी भारतमें विजय हुआ तो देश तबाह हो जावेगा। गृहयुद्ध छिड जावेगा। पर यह नहीं जान पाते कि भारतमें साम्यवादी विचारधारा क्यों जोर पकड रही है? जिसकी जड कहां है? वे जिसे आकाशबेलकी तरह समझते हैं।

दूसरी बात यह देखनेमें आती है कि पूंजीवादके विनाशका अुन्हें बहुत दुख नहीं है। परन्तु भारतीय समाजमें जो थोडेसे आर्थिक और सामाजिक सुधार हुअे हैं, अुनसे वे अत्यधिक रुष्ट हैं, अुन्हें नास्तिवाली राजनीति पसंद है। अुन्हें पंडित नेहरूकी परराष्ट्र-नीति खोखली दिखती है। अुन्हें अुसमें न तो कोअी तत्व दिखता है और ना अुसका कोअी विश्वकी राजनीतिपर असर ही। अिसलिअे कहना न होगा कि अगले पांच सालोंके लिअे अुनकी राजनीतिक भविष्यवाणी बहुत काली है। बहुत भयावह है, दाह और विनाशसे पूर्ण है। मैं स्वयं अितना निराशावादी नहीं हूं।

अपने देशमें जो आज नयी जनजागृति, नयी जनचेतना, नयी जनकलायें विकसित हो रही हैं अुनकी ओर पथिकजी आकृष्ट नहीं हो पाते हैं। अुन्हें भाषावार राज्य गलत लगते हैं। अुन्हें सांस्कृतिक विकासकी नयी सीढियां गलत लगती हैं। अुन्हें राष्ट्रका धर्मनिरपेक्ष होना गलत लगता है।

और फिर, कहींपर गंभीर विचारके कन नहीं दिखते हैं। सारी पुस्तक पढ जाअिये, अैसा लगेगा कि किसी दैनिक अखबारमें अेक लेखमाला पढ रहे हों। यों पुस्तककी छपाअी सफाअी अच्छी है। पर २८८ पृष्ठोंके लिअे पांच रुपये दाम कुछ अधिक लगता है।

सब मिलाकर मैं यह नहीं कह सकता हूं कि जिसने हमारे राजनीतिक साहित्यकी कोअी बडी श्रीवृद्धि की हो।

—"लोकचक्षु"

दूबके आंसू : लेखक — श्री पदमसिंह शर्मा 'कमलेश', अेम. अे., सा. र। प्रकाशक—सुशीला 'कमलेश', सहयोगी-प्रकाशन, गोकुलपुरा, आगरा। मूल्य २॥)

जिस पुस्तकमें अिकतीस गीत हैं। गीतोंमें वियोग-पक्षकी ही प्रधानता है। किन्तु कविके आंसुओंमें वडवा-नलकी दाहकता भी है जो कि विप्लवके लिअे व्याकुल है। कविका व्यक्तिगत प्रणय समाजगत प्रेममें परिवर्तित होना चाहता है। —

> मुझे प्यारके बन्धनोंमें न बांधो॥
> असीमित अतृप्तिकी पिपासा लिये मैं
> ससीमित सलिलके कणोंमें न बांधो। ....
> सकल विश्वकी वेदनासे विकल मैं
> अकेले हृदयके क्षणोंमें न बांधो।
> मुझे प्यारके बन्धनोंमें न बांधो॥ (पृष्ठ १३)

विलासके आंगनसे कविका पथ विकासकी ओर अग्रसर होता हुआ दिखाअी देता है —

> अरी, ओ प्राणकी बेहोश कोकिल
> देख जगमें जल रही दावाग्नि पागल
> मत अधिक मोह कीचड़में समा तू
> मुक्तिके पथपर चरण मैं मोड़ता हूं॥
> लो सुराके सुखद प्याले तोड़ता हूं (पृष्ठ ३६)

कुछ गीतोंमें प्रकृतिका मानवीकरण बहुत ही मौलिक हुआ है —

> महाशून्यको आलिंगन कर
> व्यथातिरत अपने जीवन भर
> शत-शत घाव हृदयमें लेकर
> रोती है क्यों रात न जाने!
> रोती है क्यों रात न जाने? (पृष्ठ १९)

कविके कुछ गीत बहुत सुन्दर हैं। गीतोंमें हृदयकी जो तरलता है, अुसका स्वागत भी अवश्य आवश्यक है। पुस्तककी छपाअी-सफाअी तथा बाह्य-आवरण आकर्षक व सुंदर है।

—"अंकुश"



संपादकीय

स्वर्गीय पंडित रघुवरदयालु मिश्र :

अबस कोअी ३४ साल पहले १९२० में म० गांधीके आदेशानुसार कुछ हिन्दी तरुण दक्षिण भारतमें हिन्दीका प्रचार और प्रसार करनेके लिअे देश भर हिन्दी प्रचार सभाके कर्मठ सेनानी अण्णा हरिहर शर्माजीके पास यह दृढ़ प्रण लेकर पहुंचे थे कि "कार्य वा साधयेयं शरीरं वा पातयेयं"— हम वापस लौटनेवाले नहीं हैं, चाहें आप हमें मद्रास तटपर गर्जन-तर्जन करनेवाले हिन्दमहासागरके गहरे समुद्रमें अुठाकर फेंक दीजिअे। श्री रघुवरदयालु मिश्रजी अुनमेंसे अेक कर्तव्यनिष्ठ और कर्मठ हिन्दी-सेवक थे जिनका गत २७ फरवरीको रातके साढ़े दस बजे मद्रासके स्टेनली अस्पतालमें बिलकुल ला-अिलाज रोगीकी दुखद दयनीय दशामें शरीरान्त हो गया। अपने जीवनके सबसे अधिक महत्वपूर्ण ३४-३५ वर्ष मिश्रजीने हिन्दी प्रचार क्षेत्रमें हिन्दीकी सेवामें अर्पण कर दिये। आडम्बर रहित, सब प्रकारकी प्रान्तीयता, साम्प्रदायिकता और पक्षपातितासे दूर सरल सादा जीवन, मधुर भाषण, नम्र व्यवहार और अपने सभी संगी साथी सहयोगियोंको साथमें लेकर चलनेकी प्रसन्न मनोवृत्ति यह स्वर्गीय मिश्रजीका स्वच्छ अेवं स्पृहणीय शील रहा। जिन्हें देखकर, जिनसे भेंटकर, जिनके सम्पर्कमें आकर, जिनसे चन्द मिनट वार्तालापकर और जिनके साथ रहकर हिन्दीका काम करनेवाले सैकड़ों सहयोगी लोग प्रसन्न होते थे अुन स्वर्गीय रघुवरदयालुजीने अपने जीवनकी अंतिम श्वासों तक भारतकी राष्ट्रभारती हिन्दीकी अीमानदारीके साथ बड़ी सेवा की। स्व० मिश्रजी बड़ी निर्भीकता, समझदारी, सज्जनता और गंभीरतापूर्वक अपने बड़से बड़े सहयोगियोंकी कमजोरियोंकी और गलतियोंकी आलोचना करते थे सचाअी और आत्मविश्वासके साथ। मिश्रजीका हमारे बीचसे असमयमें अुठ जाना दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाकी अैसी भारी क्षति है कि वस्तुतः जिसकी पूर्ति नहीं हो सकती। दक्षिण भारतके समस्त हिन्दी सेवकोंको भी मिश्रजीके अिस आकस्मिक निधनसे अेक भारी धक्का पहुंचा है। पूरे छह महीनेतक मद्रासके स्टेनली अस्पतालमें मिश्रजीके जीवनके साथ अनिश्चित औषधोपचार सम्बन्धी प्रयोग धानियोंका तांता होता रहा। अुन सहयोगी बन्धुओंका सौभाग्य कहिअे या दुर्भाग्य जो मिश्रजीके अंतिम समयमें अुनके पास पहुंच सके थे जब अुनकी जीवन चेतना बुझ रही थी और वाणी बन्द हो रही थी। अुनकी काशी रानिपुरी अुदासीको लेकर थायी और अुनकी जिन्दगीका खात्मा पूर्ण विभीषिकाके साथ खत्म हुआ।

स्व० मिश्रजी तो अिस दुनियासे हमेशाके लिअे रुखसत लेकर चले गये और अपने पीछे दुखिया धर्मपत्नी अेक पुत्र दो पुत्रियां और सैकड़ों शोक-संविग्न मानस संतप्त सहयोगी सुहृदोंका अेक बहुत बड़ा समूह छोड़ गये हैं। परमात्मा अुस दिवंगत सात्विक आत्माको शान्ति दे।

प्रार्थनाके दो शब्द— (अिस नाते कि मैं भी दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाका १९१८ से जिस समय बीजारोपण पूज्य बापूके हाथों हुआ—लगातार २० वर्ष तक अेकनिष्ठ सेवक रह चुका हूं।) सभाके कर्णधारोंसे विनम्र समृद्ध-सम्पन्न सभाके वर्तमान सभापति मान्यवर प्रधान मंत्री महोदय सत्यनारायणजीसे कि आप स्व० मिश्रजीकी सेवाओंकी स्मृतिको सभाभवनमें सांस्कृतिक रूपमें सदाके लिअे सुरक्षित रखें तथा अुनके असहाय निराश्रित दुखी परिवारकी सहायता करें। हम सब सहयोगी राष्ट्रभाषा हिन्दीके सेवकगण और अुनका हाथ बटावें।

—हृ० शा०

बम्बअी राज्य-सरकारको बधाअी :

राष्ट्रभाषा हिन्दीको अुसका अुचित स्थान प्राप्त हो, अिसके लिअे केन्द्रीय सरकार तथा अधिकतर राज्य सरकारों द्वारा बहुत कम प्रयत्न हो रहा है। कतिपय राज्य सरकारें, जो अिसके लिअे प्रयत्नशील हैं, अुनमें मध्य-प्रदेश तथा बम्बअी राज्य अुल्लेखनीय हैं। मध्य-प्रदेशकी सरकारने द्विभाषी प्रान्त होनेके कारण मराठी तथा हिन्दी द्वारा राजकाज चलानेका निर्णय करके राष्ट्रभाषा तथा प्रादेशिक भाषा दोनोंकी सेवा की है, अितना ही नहीं मध्य-प्रदेशकी जनताकी भी सेवा की है। बम्बअीकी राज्य-सरकार भी, अपने राज्यमें जिलोंके अूपरके तलमें हिन्दीका अुपयोग हो और अुसके नीचेके विभागोंमें प्रादेशिक भाषाका अुपयोग किया जाअे यह निर्णय करना चाहती थी। अिसके लिअे अुसने अेक विधेय भी तैयार किया था, जो राज्यकी विधान-सभामें रखा जानेवाला था, परन्तु अुसका बहुत विरोध हुआ, अिस कारण अुसे छोड़ दिया गया। अुसे विधान-सभामें भी नहीं रखा गया। अब बम्बअीकी राज्य सरकारने अेक दूसरा निर्णय किया है जो अति आवश्यक है और साथ ही समयानुकूल भी। बम्बअीके शिक्षा-विभागका निर्णय है कि १९५५ से *महाविद्यालयोंमें (कालेजोंमें)* हिन्दीके माध्यम द्वारा शिक्षा दी जाअेगी। शालाओंमें-हाअीस्कूलोंमें हिन्दीकी पढाअी अनिवार्य बनायी गयी है, परन्तु वहाँ शिक्षाका माध्यम प्रादेशिक-भाषा होगा—जो अनिवार्य है, अुचित भी है। परन्तु अुसके बाद, हमारे कितने ही गण्यमान्य नेताओंका अभिप्राय है कि महाविद्यालयोंमें राष्ट्रीय दृष्टिसे राष्ट्रभाषाके द्वारा शिक्षा देना अति आवश्यक है। बम्बअी सरकार भी यही मानती है और अुसने तदनुरूप निर्णय किया है। हम बम्बअीके शिक्षा-मन्त्रालयको अुसके अिस निर्णयके लिअे हार्दिक बधाअी देते हैं। हम जानते हैं कि अिसका बड़ा विरोध हो रहा है, और होगा। परन्तु हम आशा करते हैं बम्बअी सरकार अिस विरोधके बावजूद भी अपने निर्णयपर दृढ़ रहेगी। बम्बअी राज्यके मुख्य-मन्त्री श्री मोरारजीभाअी तथा शिक्षा-मन्त्री श्री दिनकर-भाअी देसाअी दोनों यदि यह मानते हैं कि अुन्होंने सही कदम अुठाया है और वह समयानुकूल है तो जनता किस श्रद्धाके कारण कैसा भी विरोध क्यों न हो, अुसका सामना करनेकी वे शक्ति रखते हैं।

हमने भी समय-समयपर महाविद्यालयोंमें शिक्षाके माध्यमके प्रश्नपर चर्चा की है। महाविद्यालयोंमें शिक्षाका माध्यम राष्ट्रभाषा हिन्दी ही रहे, अिसके पक्षमें बहुत ही महत्वके तथा विशाल दृष्टिके कारण हैं। राष्ट्रीय-दृष्टिसे तो यह अति आवश्यक तथा अनिवार्य ही समझा जाना चाहिअे। परन्तु प्रादेशिक-भाषाका भी अपना महत्व है, अुनका महत्व कम न हो और मातृभाषाके द्वारा शिक्षाके मूलभूत सिद्धान्तकी रक्षा हो, अिस कारण हमने अुसे भी वैकल्पिक रूपसे शिक्षाका माध्यम बनानेकी बात कही है। गुजरात युनिवर्सिटी तथा बड़ौदा युनिवर्सिटीने हिन्दी तथा मातृभाषाके माध्यमको स्वीकृति-का निर्णय किया है, अुसे हमने हमेशा बड़ा ही न्याय-साह्य निर्णय माना है। परन्तु हमने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि मेडिकल, अेन्जिनियरिंग तथा कानून जैसे अखिल भारतीय महत्वके विषयोंको तो हिन्दीके द्वारा ही पढ़ना होगा, क्योंकि परिभाषाका भी प्रश्न अुसमें होगा और परस्पर लेन-देनके प्रश्नका भी अुसमें बड़े महत्वका भाग होगा। सम्भव है अिसके परिणाममें महाविद्यालयोंमें दूसरे विषयोंको भी हिन्दी द्वारा पढाअी करनेमें सुविधा दिखायी देने लगे और अुन विषयोंको भी हिन्दीमें पढानेसे छात्रोंका तथा प्रजाका अधिक हित हो।

महाविद्यालयोंमें शिक्षाके माध्यमके प्रश्नपर बड़ा तीव्र मतभेद है, अिसमें सन्देह नहीं, परन्तु अिसका हमें विचार राष्ट्रीय-दृष्टिसे ही करना होगा। संसारकी आज जो परिस्थिति है अुसमें हमारे राष्ट्रकी सुगठित अेकता का होना-न होना ही हमारे जीवन-मरणका प्रश्न है, यह हमें भूलना नहीं चाहिअे। प्रान्तीय भावनाअें, स्वभाषा-अभिमानके जैसे विचारोंको, जो हमारी राष्ट्रीय अेकताके विरोधी हों, हमें त्याग देना होगा। राष्ट्रभाषाके माध्यमके विरुद्ध जो दलीलें की जाती हैं वे अधिकतर अैसी ही भावनाओं तथा अभिमानसे प्रेरित हैं। मातृभाषाके द्वारा ही विद्यार्थीको शिक्षा दी जानी चाहिअे, अिस मूलभूत सिद्धान्तको सभी मानते हैं, परन्तु अिस सिद्धान्तको

अनुचित खींचातानी करके विचित्र प्रकारके तर्क स्थगित किये जाते है तब बडा ही दुख होना है। यह कहना कि गुजराती मराठी-भाषी प्रदेशोमें अुतनी हि दी ही परकीय भाषा है जितनी कि अग्रजी केवल हास्यास्पद बात ही नही विकृत मनावृत्तिकी भी द्योतक है। सैकडा वर्षासे अिन प्रदेशोमें ही क्यो नीचेके दक्षिण प्रा तोम भी हि दी समझी जाती रही है। साधुओन, धर्माचार्योंन अिमीके द्वारा धर्म भावनाओका प्रचार किया है। अज्ञात जनतामें भी अिसीके द्वारा ज्ञानका प्रसरण (Percolation) होता रहा है और यही कोओ कठिनाओ नहा आयी। फिर भी यह तो कोओ नही कहता कि मातृभाषाका अुपयोग ही न हो। मातृभाषाका अपना स्थान है गौरव युक्त स्वतत्र स्थान है। अपनी मातृभाषाके प्रति सभीको अभिमान होना चाहिये और वह गौरवका विषय होगा। जहा तक जनतासे सम्ब ध है सारा व्यवहार मातृभाषा द्वारा ही होगा। हा शिक्षितोको राष्ट्रभाषामें अधिक काम पडगा और वे अुसम आसानीसे तैयार भी हो सकग। अु हें कोओ कठिनाओ न मालूम होगी। आज भी गुजराती तथा मराठी शिक्षा प्राप्त विद्वान बडी आसानीसे हि दीके ग्रथोका स्वय अध्ययन कर सकते ह और गभीर विषयोपर व्याख्यान देनमें भी अु ह कोओ असी विशेष परेशानी नही होगी। अिसका कारण है प्रादेशिक भाषाओ तथा हि दीका अति निकट सम्बन्ध। दोनो सहोदरा ह और कभी कभी तो अुनको अक दूसरेसे अलग करना भी कठिन प्रतीत होता है। भक्तकवि मीराबाअीकी कवितापर हिन्दी भाषी तथा गुजराती भाषी दोनो दावा कर सकते ह असी प्रकार विद्यापतिकी कवितापर भी हि दी भाषी तथा बगाली भी दावा कर सकते है। हम मानते ह जो लोग बिना कारण आज हि दीका विरोध कर रहे हैं, वे केवल अग्रजी प्रचार-अवशेषक प्रभावमें ह। हमें विश्वास है कि यह अनिष्ट प्रभाव अब दूर होनेवाला है और तब हमारे य बन्धुगण भी स्पष्ट रूपसे यह महसूस करेग कि राष्ट्रके लिअ राष्ट्रभाषा हि दीका माध्यम महाविद्यालयमें होना अति आवश्यक है। अिसस अुनकी स्वभाषाका भी हित ही होगा। प्रादेशिक भाषाओकी समृद्धि बढगी घटगी नही। आज जो भूल हम कर रहे ह और कभी कभी सकुचित दृष्टिका हम भूल जाते ह कि अभी हम सच्चे भारत राष्ट्रका निर्माण करना है। जो राजकीय अकता हमें प्राप्त है अस अक राष्ट्रीय भित्तिपर दृढ करना है और सबस अधिक आवश्यक तो यह है कि हमारी सास्कृतिक राष्ट्रीयताकी परम्पराको मूर्तरूप देकर अुसकी अक अविच्छिन्न सस्कार परम्परा जन जीवनमें की जाअ।

साहित्यिक-अकेडेमी :

केन्द्रीय शिक्षा विभागके प्रयत्नोसे अक साहित्यिक अकेडमीकी स्थापना की गयी है और अुसमें भारतकी तमाम भाषाओके साहित्यिकोके प्रतिनिधि लिय गय ह। वसे देखा जाअ तो यह अक बहुत अच्छा और आवश्यक काम है। परन्तु अिसका नाम साहित्यिक अकेडमी क्यों रखा गया यह समझमें नही आता। क्या अकेडमीका भाव व्यक्त करनके लिअ हि दी सस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओमें कोओ शब्द नही लिया जा सकता था? और अगर अधिक शब्दोका अुपयोग करके भी अुसे भारतीय रूप दिया जाता तो अुसम क्या हानि होती? अकेडमी शब्दसे हमारा विरोध नही है। वसे कओ अग्रजी शब्द जो हि दीम चल गय ह अुनका अुपयोग करनके हम पक्षमें ह। अकेडमी अग्रजीका शब्द है अिसलिअ अुसका हम विरोध नही कर रहे ह। परन्तु अितना बडा महत्वका साहित्यिक मण्डल सरकार बनाय और अुसके नाममें विदेशियोके अनुकरणकी बू आय और अुसम भारतीय वातावरणका अभाव हो यह हमें खटकता है।

अब प्रश्न है यह अकेडमी क्या करेगी? भिन्न भिन्न भारतीय भाषाओके विद्वान साहित्यिक अवश्य हो और देशके साहित्यकी अभिवृद्धिके लिअ प्रय नशील हा—यह अवश्य स्वागतके योग्य बात होगी परन्तु क्या वे सब मिलकर हमें अच्छा साहित्य दे सकग? अुन्हें केन्द्रसे या अन्य प्रकारसे अुसके लिअ प्रेरणा मिल सकेगी? राष्ट्र निर्माणकी दृष्टिसे अुसकी क्या अुपयोगिता होगी? य सब प्रश्न विचारणीय ह।

कहा जाता है कि फ्रान्सकी साहित्यिक-अेकेडेमीके अनुकरणमें अिस अेकेडेमीकी कल्पना की गयी है। परन्तु फ्रान्सकी परिस्थिति भिन्न है। फ्रेंच वहांकी स्वीकृत 'लिंगुवा फ्रेन्का' है और अुसी भाषा द्वारा वहांके साहित्यिकोंको अपनी साहित्य-साधना करनी थी। परन्तु हमारे यहाँ यह परिस्थिति नहीं। विधानमें हिन्दीको राज्य भाषाके रूपमें स्वीकार कर लिया गया है परन्तु राष्ट्रभाषा अभी अुसे बनाना है और भिन्न-भिन्न भारतीय भाषाओंके सब साहित्यिक भी राष्ट्रभाषा हिन्दीके प्रति जैसा चाहिअे वैसा सद्भाव नहीं रखते। केन्द्रीय-शिक्षालय भी हिन्दीके प्रति अुदासीन है। अैसी स्थितिमें अेकेडेमीके सदस्योंमें परस्पर साहित्यिक लेन-देनके लिअे किस अेक सामान्य भाषाका अुपयोग होगा—यह प्रश्न तो अुठता ही है। क्या अंग्रेजी द्वारा यह काम किया जाअेगा या हिन्दीके द्वारा? अगर अंग्रेजीका ही अधिकतर व्यवहार हुआ तो क्या वह हमारे राष्ट्रके हितमें होगा? और यह भी सम्भव है कि यदि राष्ट्रभाषा हिन्दीका आपसके व्यवहारमें अुपयोग न किया गया, तो भारतीय भाषाओंकी आपसकी खींचातानी भी अेकेडेमीका अेक अंग बन जाअेगी। अिस प्रकार विचार करनेसे प्रतीत होता है कि शायद अिसकी स्थापना वह गाडी पीछे घोडा जोतनेके समान है। अिससे गाडी चलेगी नहीं। परन्तु क्या किया जाअे? शिक्षा-केन्द्रालयके द्वारा प्राय: अैसे ही निर्णय किये जाते हैं। पन्द्रह वर्षमें राष्ट्रभाषा हिन्दीको सक्षम बनाकर राजधानीमें अुसे अुसके अुचित स्थानपर प्रतिष्ठित करनेकी बात अति आवश्यक है, परन्तु अुसपर वह ध्यान नहीं दे रहा है।

हम यह नहीं कह रहे हैं कि अेकेडेमीका कोअी अुपयोग नहीं या अुसकी आवश्यकता भी नहीं है। अुसकी आवश्यकता और अुपयोग दोनोंको हम स्वीकार करते हैं, परन्तु हम यह अवश्य मानते हैं कि पहले राष्ट्रभाषाके लिअे शिक्षालयोंकी ओरसे प्रयत्न होना चाहिअे था और फिर यदि अिस अेकेडेमीकी स्थापना की जाती तो वह अधिक अुपयोगी कार्य होता।

अुपरान्त हम यह भी देखते हैं कि अुसके सामने जो कार्यक्रम है अुससे भी किसीको सन्तोष नहीं। हम यह नहीं मानते कि अिससे मौलिक तथा अुपयोगी साहित्यका निर्माण होगा। विभिन्न भारतीय भाषाओंकी कुछ पुस्तकोंको चुनकर अुनपर पुरस्कार देना अथवा कुछ साहित्यिकोंको सहायता करनेसे कुछ साहित्यकारोंकी सेवा अवश्य होगी, परन्तु साहित्यकी सेवा अिससे अधिक न हो सकेगी। अिसके लिअे तो आवश्यक वातावरण चाहिअे, राष्ट्र-निर्माणकी दृष्टि चाहिअे और राष्ट्रके संघर्षोंकी अनुभूति चाहिअे। प्रजाकी भावनाओंके साथ तन्मय होकर यदि साहित्यिक अुसके संघर्षोंकी अनुभूति प्राप्त कर सकते हैं तो वे अच्छे मौलिक राष्ट्रीय परम्पराके साहित्यका निर्माण कर सकनेमें समर्थ होंगे। क्या अेकेडेमी अिन साहित्यिकोंके लिअे अैसा वातावरण तथा साधन पैदा कर सकेगी? अिसमें हमें शंका है। यदि वह यह कर सके, तो अेकेडेमी अवश्य अपनी सार्थकता सिद्ध करेगी, परन्तु यदि वह विभिन्न भाषा-भाषी साहित्यिकोंका, पुरस्कार तथा सहायता प्राप्त करनेके लिअे खींचातानी करनेका अखाडा बन गयी, तो देशके लिअे अेक शाप ही सिद्ध होगी।

केन्द्रमें राष्ट्रभाषाका अलग मंत्रणालय :

नागरी प्रचारिणी सभाके हीरक-जयन्ती-महोत्सवके समय बिहारके राज्यपाल श्री दिवाकरजीकी अध्यक्षतामें जो राष्ट्रभाषा-सम्मेलन हुआ अुसमें अेक प्रस्ताव द्वारा यह मांग की गयी है कि राष्ट्रभाषा हिन्दीका प्रचार, प्रसार, शिक्षा तथा अुसको अुचित स्थान दिलानेके लिअे तथा १९६४ में जब अंग्रेजीके स्थानपर राजकाज, न्याय-विभाग आदिमें अुसको प्रतिष्ठित करनेकी दृष्टिसे अुसको सक्षम बनाने तथा अुसका विकास करनेके लिअे केन्द्रमें अेक स्वतन्त्र मंत्रणालय स्थापित किया जाअे। हम अिस मांगका समर्थन करते हैं। केन्द्रीय शिक्षा-विभागने यदि हिन्दीके प्रति अुदासीनता न दिखायी होती और राष्ट्रभाषाके प्रति अपना कर्तव्य अदा किया होता तो अैसे अलग मंत्रणालयकी मांग करनेका प्रश्न ही अुपस्थित न होता। परन्तु केन्द्रीय शिक्षा विभागने अिस सम्बन्धमें बहुत त्रुटियां की हैं, अितना ही नहीं, अिस सम्बन्धमें अुसकी जैसी चल-विचल मनोदशा आज है अुसे देखते हुअे वह योग्य निर्णय करनेमें असक्षम है। अंग्रेजीको जो पन्द्रह वर्षकी अवधि दी गयी थी, अुनमेंसे पांच वर्ष तो बीत गये हैं, अब केवल दस वर्ष रह गये। अिन पांच वर्षोंमें राष्ट्रभाषा हिन्दीका

जो काम हुआ है वह अति निराशाजनक है। शीघ्र ही हिन्दीकी प्रगतिकी जाँच करनेके लिअ अक आयोग नियुक्त किया जाअगा। वह आयोग जो रिपोर्ट देगा वह सन्तोषजनक नहीं हो सकती और केन्द्रीय शिक्षा विभागके दोषके कारण आयोग द्वारा जो असंतोषजनक रिपोर्ट दी जाअगी अुसके बलपर अंग्रेजीकी अवधि बढ़ाय जानेका निर्णय करनेका प्रसंग अुपस्थित हो तो जनता अुसे क्यों सहन नहीं करेगी। असी स्थितिमें आज यह आवश्यक हो गया है कि सरकार द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दीके लिअ आवश्यक तमाम प्रयत्न प्रामाणिक रूपसे किये जाअें। शिक्षा विभागसे यह आशा नहीं की जा सकती। अभी तक अुसने तो हिन्दीके कायम रोड़े अटकानेका ही काम किया है। अिसलिअ अलग मन्त्रणा लय खोलनेके सिवा दूसरा कोअी अुपाय नजर नहीं आता। आशा है सरकार अिसपर ध्यान देगी और संसद तथा विधान सभाके सदस्य वस्तुस्थितिको समझकर अिस मांगका दृढ़तापूर्वक समर्थन करेंगे। राष्ट्रके हितमें अिसकी आवश्यकता ही नहीं अनिवार्य आवश्यकता है अिसका जनताके प्रतिनिधियोंको अनुभव होना चाहिअ।

हिन्दी भाषियोंकी ओरसे स्पष्टता:

नागरी प्रचारिणी सभाके अिस राष्ट्रभाषा सम्मेलनने और भी अक बड़े महत्त्वका प्रस्ताव पास किया है। यह प्रस्ताव श्री हजारीप्रसाद द्विवेदीजीने रखा था। श्री दिनकरजीने अुसका समर्थन करते हुअ अपने प्रभावशाली भाषणमें स्थितिको बिलकुल ही स्पष्ट कर दिया। सब प्रकारकी शुभेच्छाओंके बावजूद हिन्दीके सम्बन्धमें हिन्दी भाषियोंपर जो बिना कारण आक्षेप किये जाते हैं अुसमें ये दोनों विद्वान बड़े दुःखी प्रतीत होते थे। प्रस्तावमें स्पष्ट किया गया है कि अहिन्दी भाषा भाषी क्षेत्रोंमें जो यह मिथ्या धारणा फैल गयी है कि हिन्दीके समर्थक अन्य क्षेत्रीय भाषाओंके विकासको अवरुद्ध करना चाहते हैं निराधार है। हिन्दीके समर्थकोंने कभी भी अिस प्रकारका कोअी विचार व्यक्त नहीं किया। प्रस्तावमें यह भी कहा गया है कि सम्मेलन सभी राज्य भाषाओंके विकासकी कामना करता है और निर्विवाद रूपसे अैसी कोअी मिथ्या धारणाका निवारण कर देना चाहता है कि हिन्दीके समर्थक अन्य भाषाओंकी अुन्नति नहीं चाहते। सम्मेलन राष्ट्रभाषाके विकासपर राष्ट्रकी सुदृढ़ता और अन्य सभी भारतीय भाषाओंकी सामूहिक अुन्नतिकी दृष्टिसे ही ओर देता है।’

यह स्पष्टता नागरी प्रचारिणी सभाकी हीरक जयन्तीके अवसरपर राष्ट्रभाषा सम्मेलनमें अहिन्दी हिन्दीके विद्वानों तथा समर्थकों द्वारा की गयी है। नागरी प्रचारिणी सभाके अितिहासको जो लोग जानते हैं वे यह भी जानते हैं कि वह हिन्दीका काम करनेवाली तमाम संस्थाओंकी मातामही है और करीब करीब सभी हिन्दीके विद्वानोंका अुसके प्रति सम्मान जैसा आदर भाव है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग अुसीका अक अंग था जो स्वतन्त्र होकर अितना बढ़ गया कि दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धाकी स्थापना की गयी और अुसका काम सारे भारत भरमें फैल गया। हिन्दी साहित्य सम्मेलनके वर्तमान तथा भूतपूर्व पदाधिकारी तथा समर्थक विद्वान भी अिस सम्मेलनमें अुपस्थित थे। अिस कारण यह प्रस्ताव बड़े महत्वका प्रस्ताव बन गया है और आशा की जाती है कि अिससे हिन्दीतर भाषा भाषी विद्वानों तथा जनताका समाधान होगा। हम मानते हैं कि असा प्रस्ताव करके अिस सम्मेलनने बहुत बड़ा काम किया है। सन्दिग्धताके समाधानके लिअ अिससे अधिक कोअी कुछ कर भी क्या सकता है?

दुःखकी बात तो यह है कि आये दिन हिन्दीके साम्राज्यवादकी तथा हिन्दीके समर्थकोंपर यहाँ तक कि राजर्षि टण्डनजीपर भी कीचड़ तथा दूसरे हीन प्रकारके आक्षेप करनेवाली बातें होती रहती हैं। और हमें अधिक दुःख तो अिस बातका है कि असे गलत प्रचारमें विचारवान लोग भी बह जाते हैं। अिसमें आक्षेप करनेवालोंकी देखी राष्ट्रभाषाकी और प्रादेशिक भाषाओंकी सबकी हानि जो हो रही है अुसपर कोअी विचार नहीं करता। जो लोग जानबूझकर असा झूठा प्रचार काम कर रहे हैं अुन्हें तो हम क्या कहें? परन्तु जो लोग विचारवान हैं जिन्हें राष्ट्रभाषासे प्रेम है जो अपनी मातृभाषाके प्रति प्रेम रखते हैं तथा राष्ट्र अवं राष्ट्रकी जनताका हित चाहते हैं अुनसे हम अवश्य अनुरोध करें। कि वे असी आधारहीन बातोंके फेरमें न पड़ें खुद सोच समझें और वास्तविकताका ज्ञान प्राप्त करें और फिर जमा अुचित समझें निर्णय करें। हमें विश्वास है कि अुन्हें यह अनुभव होगा कि राष्ट्रभाषाका निर्माण अुसका प्रचार प्रसार हम सबका काम है केवल हिन्दी भाषियोंका ही नहीं। राष्ट्रभाषा हमारी सबकी अपनी होगी किसी प्रदेश विशेषकी नहीं।

—मो० भ०

आवश्यक सूचना

राष्ट्रभारती राज्योंके शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों, कालेजों और वाचनालयोंके लिअे स्वीकृत है। राष्ट्रभारती का चौथा वर्ष चल रहा है। राष्ट्रभारती समग्र भारतीय— अंतर प्रांतीय साहित्यका प्रतिनिधित्व करती है। अिसने हिन्दीकी मासिक पत्रिकाओंमें अपना अेक प्रतिष्ठित अेवं महत्वका स्थान बना लिया है। प्रेमी पाठकोंसे निवेदन है कि अेक अेक नया ग्राहक बनाकर अिस पत्रिकाकी ग्राहक संख्यामें वृद्धि करें और राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके अुत्साहको बढ़ावें। विशारद और 'राष्ट्रभाषा रत्न' परीक्षोपयोगी अुच्च आलोचनात्मक-परिचयात्मक लेख भी प्रतिमास अिसमें छपते हैं। कृपया अिस बातको ध्यानमें रखें कि हमारी लिखित अनुमति लिये बिना कोअी सज्जन या प्रकाशक 'राष्ट्रभारती' के पिछले अंकोंमें या आगामी अंकोंमें प्रकाशित प्रांतीय साहित्यके लेखों, कहानियों और अेकांकी नाटकों आदिको न छापें।

मोहनलाल भट्ट,
मंत्री, रा. भा. प्र. स. वर्धा

'राष्ट्रभारती' आपसे कुछ कहना चाहती है !

१ गत जनवरी—१९५४ से, राष्ट्रभारती चौथे वर्षमें प्रवेश कर चुकी है। भारतके प्रायः सभी प्रमुख साहित्यकारों, विद्वानों और पत्र-पत्रिकाओंने 'राष्ट्रभारती' की प्रशंसा की, अुसे सराहा, अपनाया, अपनी शुभकामना दी, सहयोग दिया और अुत्साह बढ़ाया। अुन सबकी कृपाको किन शब्दोंमें व्यक्त किया जाअे !

२ वह निश्चित समयपर हर महीनेकी पहली तारीखको, अपने प्रेमी पाठकोंके हाथोंमें राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा प्रान्तीय भाषाओंकी श्रेष्ठ, सुरुचिपूर्ण, स्वस्थ और सरल-सुन्दर, विविध-विषयक गंभीर लेख, कविता, कहानी, अेकांकी, समालोचना आदि पाठ्य-सामग्री प्रस्तुत करती है।

३ फिर भी वह सबसे ज्यादा सस्ती, साफ-सुथरी मासिक पत्रिका है। वार्षिक मूल्य कहिअे या सालाना चंदा कहिअे, ज्यादा नहीं, सिर्फ ६ रुपया और अर्ध-वार्षिक (छह-माही) ३ रु ८ आना और अेक अंकका १० आना।

४ राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति अपने प्रमाणित प्रचारकों, केन्द्र-व्यवस्थापकोंको तथा विभिन्न प्रान्तीय राज्य-सरकारोंके विद्यालयों तथा महाविद्यालयोंको, पुस्तकालयोंको 'राष्ट्रभारती' अेक रुपया कम करके रिआयती वार्षिक मूल्य ५ रु और अर्ध-वार्षिक ३ रु चन्देमें देती है।

५ जिन महान् पवित्र भारतीय साहित्यिक अेवं सांस्कृतिक राष्ट्रभाषा-प्रचार कार्यमें आप 'राष्ट्रभारती' के प्रचारमें हाथ बटाअें। स्वयं ग्राहक बनें और अपने मित्रोंको भी बनाअें।

६ जो हिन्दी-प्रेमी "राष्ट्रभारती" के पाँच ग्राहक बना देंगे अुन्हें अेक वर्षतक भेंट स्वरूप "राष्ट्रभारती" भेजी जाअेगी। अैसी सहायताका सहर्ष स्वागत किया जाअेगा। वार्षिक चंदा मनीऑर्डरसे ही आना चाहिअे। प्रतीक्षामें—

राष्ट्रभारतीके लेखकोंसे निवेदन

(१) 'राष्ट्रभारती' में प्रकाशनार्थ रचना आदि सामग्री स्वच्छ-सुवाच्य लिखावटमें अथवा अच्छी टाअिप की हुअी साफ भेजनी चाहिअे। प्रकाशन योग्य सामग्री जो कुछ भी आप भेजें वह बहुत भारी-बोझिल और बहुत लंबी नहीं होनी चाहिअे।

(२) यह अच्छी तरह ध्यानमें रहे कि राष्ट्रभारतीमें प्रकाशनार्थ भेजी हुअी आपकी रचना अिसके पूर्व किसी हिन्दी पत्र-पत्रिकामें प्रकाशित न हो चुकी हो; और जो कुछ सामग्री भेजें वह 'राष्ट्रभारती' के लिअे ही भेजें। 'राष्ट्रभारती' अपने लेखकोंको "पत्रपुष्प-पुरस्कार" भी भेंट करती है।

(३) अनुवादक महाशय किसी अनूदित रचनाको भेजनेसे पूर्व अुसके मूल-लेखकसे पत्र द्वारा अनुमति अवश्य प्राप्त कर लें, तभी अनूदित रचना हमारे यहाँ भेजें।

(४) आपकी स्वीकृत रचना संबंधी सूचना संपादक द्वारा आपको दी जाअेगी और छपनेतक आपको प्रतीक्षा करनी होगी।

(५) अपनी अस्वीकृत रचनाको वापस मंगानेके लिअे डाक-टिकट अवश्य भेजें अथवा आप अुसकी प्रतिलिपि अपने पास सुरक्षित रखें।

(६) लेख, रचना सम्पादकीय आदि सारा पत्र-व्यवहार अिस पतेपर करें —

संपादक : 'राष्ट्रभारती'
पोस्ट—हिन्दीनगर (वर्धा, मध्यप्रदेश)

तथा प्रकाशकः— मोहनलाल भट्ट, राष्ट्रभाषा प्रेस — राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा